सूद जी ने अपनी बंडी की जेब से बड़ी-सी चाबी निकालकर रल्दू के हाथ में दे दी—"दरवाजा खोल।"

रल्दू ने कोठरी के पीछे की दीवार में दरवाजा खोल दिया। कोठरी के पीछे छोटा-सा हाता था। हाते में लाल ईंट का छोटा दोमंजिला मकान था। मकान के निचले भाग में जीने के अंदर की जगह में छोटा कमरा था। कमरे में एक मामूली सी मेज, लोहे के तार की तीन कुर्सियां और दीवार के साथ भारी-सी बेंच पड़ी थी। साथ के कमरे के एक कोने में सिलंडर मशीन लगी हुई थी और दूसरे कोने में एक छोटी ट्रेडल खड़ी थी। दीवारों के साथ मशीनों में स्याही देने वाले बड़े-बड़े रूल खड़े थे। दीवार के साथ फर्श से छत तक कागज के बंद रिमों के दो खम्बे खड़े थे। एक ओर दीवार के साथ नीचे चबूतरे पर कागज़ काटने की मशीन लगी हुई थी। जान पड़ता था कि उस जगह सब कुछ नियम और सावधानी से काम होता था परन्तु अब सब चीजों पर छाई हुई गर्द उपेक्षा की दुहाई दे रही थी।

× × ×

कमाल प्रेस का मालिक ईसाक मुहम्मद, शांतिप्रिय और व्यवसायी स्वभाव का था। उसके पिता ने पत्थर की सिलों और हैंडप्रेस से काम शुरू किया था। ईसाक मैट्रिक पास करके प्रेस में काम करने लगा था। उसने एक सेकंडहैंड ट्रेडल खरीद ली थी। ट्रेडल को बिजली से चलाने लगा। सन १९३६ के चुनाव से पहले उसने लियो सिलेंडर भी खरीद ली थी। उसका काम अच्छा चल रहा था। उसका मकान मालिक मौलाबख्श बेचारा दमे का दायमी मरीज़ था। मुहल्ला बहादुरगढ़ की गली के अपने गिरे पड़े तीन मकानों के किराये से उसका गुजर था। ईसाक उसे सदा उधार देकर सहायता करता रहता था। आखिर उधार में उसने कोठरी खरीद ली थी। फिर मकान भी मौलाबख्श ने कर्ज में उसके ही नाम कर दिया। ईसाक ने धीरे-धीरे कोठरी के पीछे अपने प्रेस के लिये और रहने के लिये मकान खड़ा कर लिया था। गली में खुलती कोठरी उसकी ड्योढ़ी थी।

जालंधर शहर और आस-पास मीलों तक, चारों ओर बसी हुई बसियों (बस्तियों) में, चमड़ा धोने-रंगने वाले और तरकारी की खेती करने वाले मुसलमान ही अधिक संख्या में थे। शहर में पाकिस्तान के आन्दोलन का जोर था। उन्हें विश्वास था कि जालंधर पाकिस्तान में ही रहेगा। सन ४७' जून मास में, जालंधर भारत में दे दिया जाने पर, बहुत से मुसलमान पश्चिम की ओर

भागने लगे थे। अगस्त के आरम्भ मे पश्चिम से हिन्दुओं के आ जाने पर मुसलमानों में आतंक बढने लगा था परन्तु मुहल्ले के दूसरे बहुत से मुसलमानो की तरह ईसाक का निश्चय भी जालधर मे ही रहने का था। पुश्तो से उसका परिवार जालधर में था और उसके जीवन भर की कमाई प्रेस, जालधर मे था

ईसाक ने पाकिस्तानी आन्दोलन मे भाग नही लिया था। वह लीग और काग्रेस का, मिलने पर सरकार का भी काम छापता रहता था। लीग वाले चन्दे के लिये आते तो पाच-दस देकर छुट्टी पा जाता, वैसे ही काग्रेस वाले चन्दा मांगने आते तो उन्हें भी पाच-दस दे देता था। सूद जी जानते थे, कांग्रेस के खास आडे समय मे भी ईसाक ने चुपचाप कांग्रेस के पर्चे छाप दिये थे। वह सूद जी के खास भक्तो मे से था।

१५ अगस्त ४७ के दिन ईसाक मुहम्मद के समझाने से बहादुरगढ मुहल्ले में, शेष रह गये सभी मुसलमानो ने अपने मकानो पर भारत के राष्ट्रीय झडे फहरा लिये थे। वे लोग अपना वतन छोडकर 'सल्तनते-इलाही' (धर्मराज्य) में चले जाने के लिये तैयार नही थे। हिन्दुओ को, खासकर पश्चिम से आये हिन्दुओ को, मुसलमानों की भारत-भक्ति नही सुहा रही थी। वे पश्चिम मे हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार करके, हिन्दुओं को निकाल देने वाले सम्प्रदाय के लोगों को, अपनी छाती पर कैसे बैठा रहने देते ? उन्हें, उनके मकानों की जरूरत थी। काग्रेसियों, कम्युनिस्टों और स्वयं सूद जी के प्रयत्न करने पर भी, मुहल्ले पर बार-बार हमले हो रहे थे। मुहल्ले के सत्ताईस आदमी कत्ल हो गये थे। गली के पहले दो मकान भी जल गये थे। सूद जी ने डिप्टी-कमिश्नर को सुझाव देकर वहॉ सशस्त्र सैनिको का पहरा लगवा दिया था। ईसाक इतना संकट सहकर भी जालंधर छोड जाने के लिये तैयार न था।

२३ अगस्त प्रातः ही सैनिक अफसर, सैनिक ट्रक लेकर बहादुरगढ मुहल्ले मे पहुच गये। मुहल्ले के सब मुसलमानों को हुक्म दिया गया कि एकदम अपना बोरिया-बिस्तर और जो सामान उठाकर ले जा सकते है, लेकर ट्रकों मे बैठ जाये। सुरक्षा के लिये उन्हें 'मुस्लिम पनाहगजी' कैम्प में जाना होगा।

ईसाक मुहम्मद घबरा गया। उसने सूद जी से मिलकर बात कर सकने के लिये अवसर चाहा। अफसर आर्डर के विरुद्ध कुछ सुनने को तैयार न था। रुल्दू पिछले तेरह साल से ईसाक के यहॉ था। प्रेस के बाहर की कोठरी मे ही वह रहता भी था। ईसाक ने रुल्दू के हाथ एक पत्र और प्रेस की चाबिया सूद जी के यहाँ भिजवा दी थी। रुल्दू से भी कह दिया था—बेटा तू यहॉ ही रहना, खबरदारी रखना। हम महीने दो-तीन-चार मे आ ही जायेंगे। तेर

पैंतालीस रुपया महीना हम देते रहेंगे। एक माह की तनखाह ईसाक ने रुल्दू को पेशगी दे दी थी।

पत्र में ईसाक ने सूद जी को 'मोहतरिम बिरादर' (आदरणीय भाई जी) सम्बोधन कर उनकी पुरानी कृपाओं और सम्बन्धों की याद दिलाकर प्रार्थना की थी कि उसे पनाहगर्जी कैम्प से वापिस अपने घर पर भिजवा देने की कृपा करें। मुमकिन न हो तो प्रेस की चाबियां अपने पास रख लें। इंशाअल्ला वह लौट आया तो चाबियां ले लेगा या खुदा को जैसा मंजूर होगा। वह उन्हें लिख देगा तो उसका प्रेस बिकवाकर उसे रुपया भिजवा देने की मेहरबानी करेंगे। ईसाक ने यह भी लिख दिया था कि दोनों रिबिल्ट मशीनें उसने आठ हजार में खरीदी थीं। प्रेस में ९ सौ रुपये की कटिंग मशीन और ग्यारह सौ का कागज भी था। रुल्दू को उसने प्रेस की रखवाली के लिये उसी मकान में रहने के लिये कह दिया था। उसकी गैरहाजरी में रुल्दू को उसकी ओर से पैंतालीस रुपये माहवार देते रहें।

सूद जी को ईसाक का पत्र पाकर बहुत दुख हुआ था। इस विषय में वे कुछ कर न सकते थे। जैसी हवा फैली हुई थी उस हालत में, ईसाक को उसकी बिरादरी से अलग करके, अकेले रोक लेने में आशंका ही थी। सूद जी ने रुल्दू को होशियारी से प्रेस की रखवाली करने की ताकीद कर दी थी।

२७ अगस्त—जिस दिन संध्या समय पुरी चंदन मेहरे के यहाँ से भोजन लेकर सूद जी के यहा आया था, दिन ढलने-ढलते पश्चिमी पंजाबी रिखीराम, रुल्दू से पता लेकर सूद जी के यहाँ आ पहुंचे। ता

रिखीराम ने सूद जी से कहा था—"मैं जेहलम में अपना प्रेस—एक मूल्य और छोटी लिथो मशीन छोड़कर आया हूं। मेरा बड़ा परिवार है-पचास लोगों ने बाजार में खाली हुई दुकानों और मुहल्ले के मकानों के ताले लगता। कब्जे कर लिये हैं। जायें भी कहाँ? ईसाक मुहम्मद का प्रेस मुझे यस्तता में चाहिये, यह इंसाफ की बात है। वह दो टके का पहाड़िया आपभूल जाती। प्रेस पर कब्जा कर बैठा है। यह क्या इंसाफ है?" चनों को हटा

सूद जी ने त्योरियां चढ़ाकर रिखीराम को डांट दिया—

क्यानाम पहाड़िये ने कब्जा कर लिया है। रुल्दू हमारा नौकरदफ्तर से भी काम है। क्यानाम ईसाक प्रेस ठेके पर चलाता था। वह चलसी पूरी रात चलती चाहेगा प्रेस पर कब्जा कर ले। हमारे प्रेस पर हाथ डालना और छोटा सा हक है? खबरदार, इस तरह की हरकत की तो! हम छः वर्तन ही ले जा सका किसी को मतलब?"

लती हुई तिपाई, बिगड़ा

हुआ बिजली का पंखा, टीन के खाली बक्से वगैरह बहुत कुछ रह गया था। मकान में बिजली और पानी का नल भी था। पुरी अपना बिस्तर सूद जी के यहां से ले आया था। एक कमरे में पलंग पर बिस्तर लगा लिया था। शेष सामान उसने दूसरे कमरे में बंद कर दिया था। बाजार में ढाबे पर रोटी खा लेता था।

पैरोकार में काम करते समय, फर्मे में कोई मैटर बदलवाने के लिये या किसी दूसरे काम से पुरी को प्रेस में जाना पड़ता था तो वहां प्रेस की मशीनों का शोर, किसी भी चीज के स्पर्श से कालिख लग जाना, स्याही, मिट्टी के तेल और सरेश की गंध उसे बहुत अरुचिकर लगती थी। अब मशीनों की चाल की आवाज 'खडढ-खडिच्च-धड़म' 'खडढ़-खढिच्च-धड़म' उसे स्फूर्ति और उत्साह-वर्धक जान पड़ती। कपड़ों या हाथ-मुंह पर स्याही लग जाने से भी कुछ बुरा न लगता। किसी कारण मशीन का शोर रुक जाने पर हानि की असुविधाजनक अनुभूति होने लगती।

कमाल प्रेस में काम आरम्भ करते समय रिखीराम ने अपना वेतन निश्चित करने की चिन्ता नहीं की थी। उसने साहस से कह दिया था—"मेरा काम देखकर जो मुनासिब समझियेगा!"

प्रेस को चलते बीस दिन हो चुके थे। रिखीराम ने पुरी से खर्च की कठिनाई की चर्चा की। उसने वेतन निश्चित कर, खर्च के लिये कुछ दिला देने का अनुरोध किया।

"भाई जी (सूद जी) से पूछ लू" पुरी ने कहा, "खैर, हो जायगा पर तनखाह कितनी लोगे यह तो निश्चित हो जाना चाहिये?"

"भाई आप ही देख लीजिये, आपके सामने ही सब कर रहा हूं" रिखीराम ने अनुनय से कहा, "तीस-चालीस, पचास का, साठ-पैसंठ का भी काम निकाल रहा हूं। और काम लाओ, जितना, जैसा भी हो, निकाल सकता हूं। बाल-बच्चेदार आदमी हूं। आठ-सात रुपये रोज का खर्च है तिस पर परमेश्वर न करे बीमारी-शीमारी भी आती-जाती रहती है। बच्चों को प्यास लगती थी, दूध-लस्सी ही पिलाते थे। भला मैं ज्यादा कहूंगा ही क्यों? महीने के अढ़ाई सौ से से कम क्या दोगे?"

पुरी जानता था, बात रिखीराम की ठीक ही थी परन्तु अढ़ाई सौ रुपये उसे बहुत अधिक जान पड़े—"मैं भाई जी से कह दूंगा। उनसे पूछे बिना कुछ नहीं कह सकता। प्रेस उनका है, वे जो हुक्म देंगे।"

पुरी ने सूद जी से बात की। उन्होंने प्रेस में होते काम का अन्दाजा लिया।

दो प्रेस के मालिकों से फोन कर राय ली। बहुत देर तक पांव की उँगलियों को तोड़ते और सिर के महीन कतरे केशों को सहलाते खिड़की से बाहर देख, सोचकर बोले—"सरकार का फैसला है कि क्यानाम मशीनरी पाकिस्तान नहीं जाने दी जायगी। पाकिस्तान गवर्नमेन्ट ने भी मशीनरी के एक्सपोर्ट पर बैन लगा दिया है पर प्रेस तो ईसाक का है। उसे क्यानाम दाम तो दोगे। रुपया प्रेस में मत रखा करो। मैं परिचय का पत्र दे दूंगा, कल जाकर बैंक में जमा करवा देना। क्यानाम चैकबुक ले लो। चैक से पेमेन्ट में झगड़ा नहीं रहता, समझे! हां, अढ़ाई सौ तो बकवास है। कौन प्रेस दे देगा अढ़ाई सौ? मालिक क्या करेगा? क्यानाम मशीनों का दाम, मकान का किराया, इंटरेस्ट सब देखना होता है। देख-रेख ही तो करता है, अब तुम भी समझ गये होगे? सौ रुपये मुनासिब है। तुम उसका काम; यूटिलिटी समझकर पांच-दस और दे दो। सवा सौ से ज्यादा हरगिज नहीं। न माने तो अपना रास्ता नापने दो। कोई लूट थोड़े ही है।"

पुरी ने सकुचाते हुए कहा—"मेरा भी कुछ फैसला कर दीजिये। अभी तक मैं, आप पर ही बोझ बना हूं। वैसे हिसाब में से जो लिया है, लिखता रहा हूं। कुछ कपड़े भी सिलवाने हैं, नित्य की जरूरतें तो होती ही हैं।"

"तुम्हीं बताओ अपनी जरूरत?" सूद जी ने पूछा।

"जो आप कह देंगे मेरे लिये ठीक होगा।"

"परिवार के बारे में अभी तक कुछ खबर नहीं मिली?"

"मैंने दिल्ली रेडियो में अपना पता आपकी ही मार्फत दिया है। खबर आयी तो यहाँ ही आयेगी।"

सरकार ने आबादी के परिवर्तन की भाग-दौड़ में बिछुड़ गये लोगों की सहायता के लिये, रेडियो पर सूचनायें देने का प्रबन्ध कर दिया था। पुरी बहादुरगढ़ मुहल्ले की गली के सिरे पर, माईहीरांगेट बाजार में ढाबे पर खाना खाता था। वहाँ समीप ही चौक में रेडियो का लाउडस्पीकर, पता चाहने वालों के नाम, उनका पिछला पता और आधुनिक पतों की सूचना देता रहता था। पुरी जितनी देर ढाबे पर रहता, ध्यान से सुनता रहता परन्तु काम छोड़कर सुनने के लिये बैठे रहना तो संभव नहीं था। उसने अपने पिता का लाहौर का पता और अपने जालंधर में होने की सूचना और पता, रेडियो से बता दिये जाने के लिए रेडियो-स्टेशन को पत्र लिख दिया था। अभी तक कोई उत्तर नहीं आया था।

सूद जी ने सोचकर उत्तर दिया—"अभी तो अकेले ही हो, तुम सवा सौ

या डेढ़ सौ ले लो। जब तुम्हारे परिवार के लोग आ जायेंगे, फिर सोच लेंगे।"

पुरी का मन आशा से अधिक संतुष्ट था, इससे अधिक की वह आशा ही नहीं कर सकता था।

रिखीराम ने सौ रुपया मासिक सुना तो उसका चेहरा फक रह गया। उसने कहा--"भाई, क्या जुल्म कर रहे हो ?"

पुरी मन में रिखीराम के प्रति सहानुभूति अनुभव कर रहा था परन्तु मैनेजर की स्थिति से उसने कहा--"मैं क्या कर सकता हूं, यही हुक्म है। मैं और बढ़ाने के लिये कह दूंगा पर भाई जी पर ही है।"

रिखीराम को सवासौ रुपये पर भी संतुष्ट होते न देखकर पुरी ने जरा कड़ाई से सूद जी की कही हुई बातें दोहरा कर कह दिया--"तुम जानो, तुम अपने प्रेस में किसी को रखते तो क्या दे देते ? बताओ क्या तनखाहें देते थे ?"

रिखीराम होंठ काटकर चुप रह गया। वह दूसरे प्रेसों में पूछताछ कर चुका था। कोई दूसरा इतना भी देने को तैयार न था।

उस दिन प्रेस दस बजे तक चला था। प्रेस बंद होने पर पुरी ढाबे पर खाना खाकर ऊपर के कमरे में पलंग पर लेट गया था। सितम्बर समाप्ति पर था। पिछड़ी हुई बरसात के कारण झड़ी लगी हुई थी। कमरे की सब खिड़कियां खुली थीं। ठंडी-ठंडी हवा के झोंके आ रहे थे। पुरी सो जाना नहीं चाहता था। सो जाने से पहले एक पत्र लिख लेना चाहता था। उसे नैनीताल में कनक का, नैयर की कोठी 'विमल-विला' का पता मालूम था पर शंका थी, शायद वह दिल्ली या किसी दूसरी जगह चली गयी हो ?

पुरी कई दिन से कनक को पत्र लिखने के लिये सोच रहा था। दो वर्ष पूर्व लगभग इन्हीं दिनों सितम्बर के अन्त में उसका कनक से पहला परिचय हुआ था। डेढ़ मास पूर्व कनक के साथ नैनीताल की झील पर वितायी संध्याओं, रायल होटल के कमरे में कनक की संगति की स्मृति, अब केवल प्रेम की भावना या पुकार ही नहीं बल्कि पत्नी के रूप में कनक की आवश्यकता की तड़प बन रही थी।

पुरी ने एक फाउन्टेनपेन खरीद लिया था। दोपहर में कुछ समय निकाल कर ट्रेडल मशीन पर अपने नाम के चिट्ठी लिखने के कागज, अच्छी स्याही से बैंक पेपर पर छपवा लिये थे। एक कोने में जे० डी० पुरी मैनेजर, दूसरे कोने पर कमाल प्रेस, माईहीरांगेट, जालंधर। अपना वेतन दो सौ मासिक लिख देने में भी अत्युक्ति न थी।""कनक को अच्छा लगेगा। सूद जी ने तो कहा ही था कि परिवार आ जाने पर देख लेंगे।

कल्पना ने उससे भी आगे सोचा—सूदजी के शब्द याद आ गये। सरकार ने मशीनें पाकिस्तान भेजी जाने पर रोक लगा दी है। ईसाक प्रेस की मशीन तो ले जा नहीं सकेगा.........पर उसके प्रेस का दाम तो देगे। वह सोच सकता था—दाम चुका देने पर प्रेस उसका हो... । कनक को यह लिख दे ? मान नवा मास में क्या नहीं सहा पर इस समय उसके पास प्रेस भी है, उसके आगे सब कुछ हो सकता है।...पर यह लिख देना बहुत बड़ा दुस्साहस था, आकाश कुसुम की कल्पना। प्रेस की बात सूद जी मानें पर दो सौ मासिक में तो सन्देह नहीं है।......काम ढर्रे पर आ रहा है। प्रतिदिन संध्या-प्रात: लिखने के लिये कुछ समय निकाल लेना भी कठिन नहीं होगा। वह कनक को लिख सकता है, जैसे जीवन के लिये उसने विश्वास दिलाया था, उसका आरम्भ कर सका है। लखनऊ न सही जालंधर ही सही। सरकारी नौकरी की अफसरी न सही, यहाँ मालिक जैसी स्वतन्त्रता है। कनक क्या सोचेगी, क्या उत्तर देगी ?

पुरी की कल्पना में रिखीराम का अढ़ाई सौ न मिल सकने के कारण उतरा हुआ चेहरा दिखायी दे गया। उसने रिखीराम को निरुत्तर कर दिया था। उसके मन में प्रति क्षण सावधानी और तत्परता बनी रहती थी कि प्रेस के खर्चे और मजदूरी देने में जहाँ भी संभव हो बचत कर सके और जब भी संभव हो, कुछ अधिक करवा ले। वह मन ही मन गहराई से हिसाब लगाने लगता—दो मशीनमैन, एक छोकरा, कम्पोजीटर, कातिब, रिखीराम और स्वयं उसकी तनखा है। स्याही, बिजली और रूलों के सरेस का खर्चा, रोजाना बीस रुपये से अधिक क्या होगा परन्तु साठ-सत्तर का भी काम निकल सकता है। खर्चा वह बीस के बजाय तीस ही गिन ले, फिर भी प्रेस के मालिक को कितनी बचत है ? मशीनें अधिक हो तो ? प्रेस चलाने वाले मिलकर मजदूरी में अठारह-बीस ही; प्रतिदिन, औसतन प्रति व्यक्ति तीन रुपये से कम ही पाते हैं। प्रेस को औसतन प्रति व्यक्ति के श्रम से कितना लाभ बच जाता है ? कम्यूनिस्टों के स्टडीसर्कल मे 'सरप्लस वैल्यू आफ लेबर' (श्रम का अतिरिक्त मूल्य) पर कई बहसें सुनी थीं। पुरी कल्पना करने लगा—जिन मिलों में आठ दस-बीस हजार व्यक्ति काम करते हैं, वे प्रति व्यक्ति के श्रम से प्रतिदिन रुपया आठ आना भी बचायें......। उसकी कल्पना इतने बड़े लाभ के हिसाब से चकराने लगी।

पुरी सिर झटक कर खड़ा हुआ और बिजली जलाकर कनक को पत्र लिखने लगा। लिखते-लिखते कई बार आँखें मूँदे, कुछ दिन पूर्व के अनुभव की

कल्पना में खो जाता। कहीं दूर एक बज जाने की टंकोर सुन कर उसने पत्र को जल्दी-जल्दी समाप्त किया। लिफाफा बन्द कर प्रातः ही रजिस्ट्री से नैनीताल भेज देने के लिये रख लिया। कनक की आवश्यकता की तड़प ने उसके शरीर और मस्तिष्क को बहुत उत्तेजित कर दिया था। दो बजे की टंकोर सुन लेने के बाद ही उसे नींद आ सकी।

प्रेस मे सिलन्डर पर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का एक बड़ा सा इश्तहार छप रहा था। संध्या तक दस हजार पूरा हो जाना जरूरी था। ट्रेडल पर बस कम्पनी के टिकट छप रहे थे। मशीनों पर दोनों छोकरों को फुरसत न थी। पुरी प्रेस के काम मे विघ्न नही डालना चाहता था। उसने ट्रेडल पर जाने वाले अगले फर्मे का प्रूफ देख दिया और समीप ही ढाबे पर दो फुलके खा आने के लिए बाजार की ओर जा रहा था। रात की वर्षा के बाद कडाके की धूप थी। सूर्य मध्याकाश में शिखिर पर था। पूरे बाजार मे धूप पड़ रही थी।

पुरी बाजार मे कदम रखते ही ठिठक कर रह गया। दाईं ओर जगदीश, एक छोटा सूटकेस हाथ में लटकाये और बड़ा कंधे पर संभाले था। दोनों के पीछे बावामल नारंग, बे-जी और दोनों के बीच में उर्मिला भी चली आ रही थी। उन दोनों के हाथों में भी कुछ न कुछ बोझ था। नारंगजी के हाथों में भी छोटा सूटकेस, बे-जी के हाथों में उस से कुछ बड़ा। उर्मिला दरी में लिपटा, धोती या ओढ़नी बटकर बाधा हुआ बिस्तर उठाये थी। सभी लोग पसीने से लथपथ थे। नारंगजी हांफ गये से लगते थे। बे-जी के चेहरे पर गहरी चिन्ता की छाप थी और उर्मिला का वही, चार सप्ताह पूर्व इस्लामिया कालेज मे देखा, बहुत पीला, मैला, रोगी जैसा चेहरा और वैसे ही चील के घोंसले जैसे उलझे, रूखे, धूल भरे केश थे।

पुरी ने जब २६ अगस्त की संध्या उर्मिला को, इस्लामिया कालेज मे सिर झुकाये इस रूप मे देखा था तो स्वयं दारुण कठिनाई और चिंतित होने पर भी उर्मिला का गत इतिहास उसके मस्तिष्क में कौंधे बिना नही रह सका था—उसका आसाधारण उज्जवल वर्ण, उसकी उफनती शोखी, उसकी प्रेम की अनर्गल भूख, उसके आकर्षण से बचे रहने के लिये सतर्कता के बावजूद पुरी का एक काण्ड में उलझ जाना। बे-जी का धैर्य और सज्जनता से बात पर पर्दा डाल लेना। उर्मिला के विवाह के निमन्त्रण पर संकोच और विरक्ति के कारण नारंगजी के यहाँ बधाई देने न जा सकना और फिर मार्च में, उत्पातो के आरम्भ मे ही उर्मिला के विधवा हो जाने की सूचना से उसके मन पर लगा प्रबल आघात।

पुरी ने विस्मय से स्तब्ध मुद्रा में जगदीश और सब लोगों को एक साथ ही सम्बोधन किया—"कहाँ जा रहे हैं आप लोग; क्या बात है ?"

जगदीश ने अपना बोझ नीचे बाजार की सड़क पर रख दिया। सभी लोगों ने अपने हाथ के बोझ नीचे रख दिये। उर्मिला ने बिस्तर को एक बांह के नीचे से दूसरी बांह के नीचे ले लिया। बे-जी ने चादर को खूंट से आंखें पोंछ लीं। नारंगजी समीप की दुकान के आगे बढ़े हुए तख्ते पर बैठ कर थकावट से गहरे सांस लेने लगे।

जगदीश ने बताया—उसके पिता की तबियत खराब होगयी थी इसलिये लोग दिल्ली नहीं जा सके। कल दोपहर बाद, इस्लामिया कालेज कैम्प में पुलिस ट्रक लेकर आई थी। उन लोगों ने कहा, सरकारी हुक्म है, इमारत से सबको एकदम बाहर निकल जाना होगा। दूसरे कैम्प में स्थान मिलेगा।"

पुरी ने टोककर बताया—"हां, वहां तो सेक्रेटेरियट बन रहा है।"

"हमें क्या मालूम।" जगदीश परेशानी में बोला, "पुलिस हम लोगों को ट्रकों में ले गयी और सत्रह मील दूर ले जाकर एक पुरानी मस्जिद में पटक दिया। वहां कुछ मिलता ही नहीं। रात भर भूखे बैठे रहे। सुबह लोहियाँ से आता एक ट्रक मिला। चार-चार रुपये सवारी देकर आये हैं। ट्रक ने चौराहे पर ही उतार दिया। वहां कोई सवारी नहीं मिली। असबाब रखने, सिर छिपाने के लिये भी कोई जगह नहीं है। बाबूजी की तबियत ठीक नहीं। सोचा, स्टेशन के मुसाफिरखाने में ही जाकर बैठें।"

"आप लोग मेरे साथ आइये, परेशान होने की जरूरत नहीं।" पुरी ने कहा और आगे बढ़कर एक हाथ में नारंगजी के हाथ का सूटकेस और दूसरे हाथ में उर्मिला के हाथ का बिस्तर ले लिया, "आइये आप लोग!"

पुरी नारंग परिवार को प्रेस में ले गया। छोकरों को बुलवाकर सब सामान ऊपर पहुँचवा दिया। सबको ऊपर कमरे में ले जाकर उसने खाटें डलवा दीं और बोला—"जगह की क्या कमी है। दूसरा कमरा यों ही बन्द पड़ा है। पानी है, गुसलखाना है, आप नहाइये-धोइये। मैं खाना मंगवाता हूं।"

पुरी ने कुछ देर बाद सबके लिए बाजार से खाना मंगवा लिया। स्वयं भी उन्हीं के साथ बैठकर खाया।

पुरी ने दूसरा कमरा भी खोल दिया। सफाई करने के लिए नीचे से छोकरे को बुला दिया। वह कुछ-कुछ देर बाद आकर पूछ जाता—किसी चीज की जरूरत तो नहीं ? पुरी नारंग परिवार से पायी पुरानी कृपा और सहानुभूति का ऋण चुका देना चाहता था। उसका मन संतोष से गद्गद् था।

संध्या समय जगदीश वे-जी को साथ लेकर, समीप बाजार से सौदा ले आता था। पुरी ने इस पर आपत्ति की—"वाह, यह तकलीफ क्यों की। आप लोग मेरे मेहमान है। ऐसा नहीं करना चाहिए था।"

"काकाजी, यह भी तुम्हारा ही है। परमेश्वर तुम्हें बहुत दे।" वे-जी ने उसे आशीर्वाद दिया।

उस संध्या घर में खाना बना। पुरी ने भी उनके साथ ही खाया। वह परिवार के बीच अधिकार से, परिवार के आदमी की तरह बैठ कर बातें करता रहा।

रात को उसने बड़ा पलंग बे-जी, उर्मिला और प्रवीण को दे दिया। शेष तीनों खाटों पर वधावामल, जगदीश और वह स्वयं सोये। दूसरे दिन वह प्रातः सभी को लस्सी पिला सकने के लिये सेर भर दही ले आया।

उर्मिला का शोक में आत्म-विस्मृत रूप, पुरी के हृदय में कांटे की तरह गड़ा जा रहा था। उर्मिला के सामने उसे सुनाकर पुरी ने वे-जी को मां की तरह सम्बोधन किया—"उर्मी का यह क्या ढंग है? जो हो गया उस पर किस का बस था। यह तरीका ठीक नही है। आदमियों की तरह रहना-सहना, बोलना चाहिये।"

उर्मिला फर्श की ओर निगाहें गड़ाये निश्चित बैठी रही। वे-जी ने ओढ़नी से आंसू पोंछ लिये—"काकाजी, मैं तो समझा-समझा कर हार गयी। जाने क्या हो गया है इसे? सुनती ही नहीं, बोलती ही नहीं। कल से कह रही हूं, कपड़े बदल ले। सुनती ही नहीं।"

"नहीं, यह ठीक नहीं। इसका सिर तो धोइये। देखिये, क्या हाल हो रहा है?" जो भी हुआ, इंसान को इंसान की तरह रहना चाहिये।"

पुरी ने मेहमानों के आने पर ईसाक का बिगड़ा हुआ पंखा ठीक होने के लिये दे दिया था। पुरी दोपहर में खाना खाने ऊपर आया, तो पंखा लेता आया था। उर्मिला दीवार की ओर मुँह किये चटाई पर लेटी हुई थी। पुरी ने वे-जी से कहा—"यह लीजिये, उर्मी गरमी से परेशान होती है। पंखा ठीक करा दिया है।" उसने पंखा उर्मिला की ओर कर दिया।

नारंगजी, वे-जी और जगदीश परिस्थिति पर विचार करते रहते थे। तीन दिन विश्राम पाकर नारंगजी ने पुरी से बात की—"काकाजी, मैं और जगदीश कल दिल्ली जा रहे है। तुम्हें तकलीफ़ न हो तो प्रवीण, उसकी मां और उर्मी अभी यहां ही रह जायें। हम लोग वहाँ कुछ प्रवन्ध कर लें। फिर आकर इन्हें भी लेजायेंगे।"

नारंगजी और जगदीश के दिल्ली चले जाने के बाद बे-जी पुरी से दिन में कई बार और काफी समय तक बातें करती रहती थीं। बातचीत का विषय, अधिकांश में, उर्मिला का भाग्य और भविष्य का ही होता था। मुसीबत तो सभी पर पूरे देश पर आयी थी परन्तु उर्मिला बेचारी तो सबसे गहरे अंधकार में डूब गयी थी। मां कह न पाती थी परन्तु तात्पर्य स्पष्ट था कि लड़की के स्वयं मर जाने की अपेक्षा विधवा हो जाना उसका अधिक दुर्भाग्य था। उसका क्या उपाय संभव हो सकेगा……।

उर्मिला कुछ दूर या समीप बैठी मां और पुरी की बातचीत सुनती रहती। निरंतर अपनी ही बात सुनने से ऊबकर कभी दूसरे कमरे में जा लेटती या कुछ काम करने लगती।

बे-जी ने पुरी को बताया—"मैंने तो निश्चय कर लिया था, लोग जो चाहे कहते रहें, छः महीने गुजर जाते तो 'महिला-कालेज' में या कहीं भी दाखिल करवा देती। इसी उम्र में कुछ कर ले तो पांव पर खड़ी हो सकेगी। लड़के तो मर्द हैं; कुछ कर ही लेंगे। मुझे तो इसी का फिक्र है। यह पढ़ ले, चाहे तो डाक्टरी सीख ले। मेरे पास जो थोड़ा-बहुत है, इसे पढ़ा देने में ही लगा देना है। अब इसे पढ़ना ही है। यह उखड़-पुखड़ न हुई होती, तो मैंने इसे दाखिल करवा दिया होता। अब दिल्ली जाकर देखें कैसा मौका बनता है।

लाहौर में सुख-समृद्धि से रहते समय पूजा-कीर्तन की ओर, बे-जी की विशेष प्रवृत्ति नहीं थी। कहती थीं, कुमार्ग में न जाना, दूसरों को दुख न देना ही पर्याप्त भक्ति है। प्रेम के समीप ही एक स्थान पर दुख से अधीर शरणार्थी स्त्रियों ने प्रातः-सायं, भगवान की कृपा के लिए कीर्तन आरंभ कर दिया था। बे-जी भी सान्त्वना पाने के लिये कुछ देर कीर्तन में बैठ लेतीं। कहतीं—अपने दुख को याद करते रहने से परमेश्वर को याद कर लेना ही अच्छा है।

बे-जी सौदे के लिये बाजार या कीर्तन के लिये जातीं तो पुरी उनके प्रति आदर में कुछ दूर उनके साथ चला जाता था। ऐसे समय पुरी को नितान्त अपना समझकर बे-जी, जो बातें उर्मिला के सामने नहीं कह सकती थीं, कह लेतीं……काकाजी, क्या कहा जाये? लोग कहते हैं, भारी चोट पड़ जाये तो स्वभाव भी बदल जाता है पर लड़की का जैसा स्वभाव था, जाने पढ़-लिख सकेगी भी? ……लावाँ-फेरे जरूर हुए थे, वैसे तो कुआँरी ही है। मैं तो समझती हूँ, साल-डेढ़ साल निकल जाये। जरा लड़की का मन हलका हो जाये। कोई ढंग का लड़का मिल जाये तो सबसे भला…　।"

पुरी ने बे-जी के विचार का बलपूर्वक समर्थन किया—"आप पढ़ने का

भी मौका दीजिये। दोनों ही बातें हो जायें तो सबसे अच्छा या जो हो जाये। कुछ तो होना ही चाहिये, ऐसे तो उम्र नहीं कट सकती।"

अथाह शोक में उर्मिला की आत्म-उपेक्षा और जड़ता, पुरी को भाग्य का असीम अन्याय जान पड़ रहा था। उर्मिला का दुख पुरी के हृदय को चीर देता था—केवल दो मास का सुहाग, केवल दो दिन के लिये सुसराल जाकर विधवा हो जाना—उर्मिला इस दुर्भाग्य के लिये किस प्रकार दोषी थी? उर्मिला का दुर्भाग्य समाज की मूर्खता का, साम्प्रदायिक उत्पात का परिणाम था। इस उत्पात के लिये अबोध उर्मिला नहीं, दूसरे लोग उत्तरदायी थे। कुछ समझदार लोगों की तरह पुरी ने भी उस उत्पात को और उसके भीषण परिणाम को रोकने का यत्न किया था परन्तु वे लोग असफल रहे थे। पुरी उर्मिला के दुर्भाग्य को रोकने में असमर्थ रहा था इसलिये वह भी उर्मिला के सामने अपराधी था।

पुरी के मन में उर्मिला के प्रति एक और अपराध की, अत्यन्त सूक्ष्म और गुप्त अनुभूति भी सिर उठा लेती थी। उर्मिला की प्रेम की दुर्दम्य भूख को, उसकी विद्युत के समान जीवन की तड़प को कुचलने मे, भाग्य के कुचक्र में स्वयं पुरी का भी कुछ भाग था। उस ने भी तो 'मरी' में उसकी अवहेलना की थी, उसे ठुकराया था। उस प्रसंग का सब अपमान, असफलता, लज्जा और कुंठा पुरी ने उर्मिला पर ही डाल दी थी। यदि उसने साहस से दूसरे ढंग का व्यवहार किया होता तो जाने परिणाम क्या होता? बे-जी जैसी उदार-समझदार मां, प्रसंग को शायद किसी दूसरी तरह सँभाल लेतीं। उस अवस्था में उर्मिला का भाग्य इस तरह क्यों फूटता?

दिल्ली से नारंगजी और जगदीश के पत्र चौथे-पाँचवें आते रहते थे। पत्रों में पुरी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता से अनुरोध रहता कि प्रवीण, उर्मिला और उनकी माँ को सांत्वना देता रहे। दिल्ली में स्थान की बहुत कठिनाई थी। कुछ स्थायी प्रबन्ध हो जाने पर वह इन लोगों को ले जाना चाहते थे। कभी जगदीश माँ के नाम भी हिन्दी में छोटा-सा पत्र पुरी के पत्र में रख देता था। पुरी उर्दू में लिखे हुए पत्र बे-जी और उर्मिला को सुनाकर कहता, "दिल्ली में जब प्रबन्ध हो जायगा देखा जायगा पर यह भी आप का ही घर है। आपके लिये जैसे जगदीश-प्रवीण, वैसा मैं। जब तक मेरे परिवार का कुछ पता नहीं चलता मेरे लिये आप ही सब कुछ हैं। मैं आप लोगों के स्नेह और आशीर्वाद का सहारा कैसे छोड़ सकता हूँ।"

लड़कों-मर्दों को क्या होती है । तुम तकलीफ न किया करो । वे प्रवीण को साथ लेकर या अकेली ही सुबह कीर्तन मे जाती तो साग-सब्जी, दही और जरूरी सौदा भी ले आती । जरूरत होती तो संध्या को भी चली जाती । ऐसे काम मे उन्हों ने लाहौर मे भी संकोच नही किया था । अब यहाँ उँगली उठाने वाला ही कौन था ।

पुरी बे-जी को बाहर जाते देखता तो कह देता—"उर्मी को भी ले जाइये न । दस कदम चल लेना अच्छा ही होता है । जरा ध्यान बटेगा ?"

उर्मिला सिर हिलाकर उठने से इन्कार कर देती । पुरी ने उसके लिये बहुत रोचक कुछ कहानी-उपन्यास भी ला दिये थे । पूछता भी रहता—कुछ पढ़ा ? क्या पढ़ा ?

कनक के पत्र का कोई उत्तर नही आया था । पुरी चिंता कर रहा था, क्या हुआ, शायद वे लोग दूसरी जगह चले गये । पत्र रिडाइरेक्ट किया गया होगा । इतने दिन मे तो कही से भी उत्तर आ सकता था । पत्र रजिस्टर्ड था । शायद नैयर ने कुछ करतूत की हो ! आदमी भला नही है, उसके मन मे अभिजात होने का कितना अहंकार और ईर्षा की गाठ है ।

बारहवें दिन चौथे पहर पत्र लौट आया । लिफाफे पर लाल स्याही से लिखा था—लेफ्ट स्टेशन (नगर से चली गयी है) ।

पुरी का मन डूब गया । अब कनक का पता लग सकने का, क्या सूत्र रह गया था ? कनक भी बिछुड़ गयी, परिवार भी । पुरी का सिर चकरा गया । शून्य दृष्टि छत की कड़ियों की ओर लगाये कल्पना मे देखने लगा—लाहौर मे भयँकर बाढ़ आगयी है । धड़ाम-धड़ाम मकान गिर रहे है । वह किसी काम से बाहर जाकर लौटा है । बाजारो मे तेज, गहरी नहरे बह रही है । सब लोग बहे जा रहे है । एक अपार जल-प्रवाह बनता जा रहा है । जगह-जगह लोग बहते दिखाई दे रहे है । उसने एक भारी शहतीर का सहारा ले लिया है । वह डूब नही सकता ।""उसने अपने परिवार को ढूंढने का यत्न किया पर वे तेज धार मे बह गये थे । एक ओर कनक बहती दिखायी दी । वह भी एक शहतीर का सहारा लिये डूबने से बची हुई थी । कनक ने उसकी पुकार नही सुनी । कनक के समीप ही एक भंवर मे उर्मिला डूब रही थी । पुरी घबरा गया, उर्मिला के सिर के केश उसके हाथ में आगये""""।

पुरी ने काम मे ध्यान लगा सकने के लिये अपना सिर झटका और दृष्टि सामने पड़े कागजो पर जमानी चाही । विचार आया—कनक को कही भी

जाना था, तो डाकखाने में अपने पत्र रिडाइरेक्ट कर दिये जाने की सूचना नहीं दे सकती थी ? वह तो उर्मिला की तरह असहाय और जग-व्यवहार से अपरिचित नहीं है; दूसरों को उपाय वता सकती है, वड़े अफसरों से बात कर सकती है। उसे क्या मेरे पत्र की प्रतीक्षा नहीं थी ?··· अव मैं क्या कर सकता हूँ····?

पुरी म्युनिसिपल कमेटी के एक वड़े काम का विल वना रहा था। मस्तिष्क में भरी परेशानी के कारण आँखों के सामने रुई के फाहे से उड़ रहे थे। वह बहुत देर तक अवसाद से निश्चेष्ट, मूढ़ सा वैठा रहा। सहसा उर्मिला का ध्यान आया— ऊपर जा एक गिलास जल तो पी आये।

पुरी के हाथों ने मेज़ पर खुला पड़ा पेन उठा कर वन्द किया और कमीज़ की जेव में लगा लिया। वह हृदय की वेदना में दांतों से होंठ दवाये ऊपर कमरे में चला गया। पुरी ने खाट पर वैठते हुए गहरी सांस लेकर धीमे से जल के लिये पुकारा—"प्रवीण"

उर्मिला के प्रति संवेदना के कारण उसे पुकार कर क्षुब्ध करने की इच्छा न हुई।

पुरी को उत्तर न मिला; न प्रवीण से, न वे-जी से। उर्मिला सिर और कन्धों को ओढ़नी में लपेटे, आँखें फर्श पर गड़ाये जल का गिलास लिये आयी। उस ने गिलास पुरी की ओर वढ़ा दिया।

"प्रवीण, वे-जी नहीं हैं ?"

उर्मिला ने इन्कार में सिर हिला दिया।

पुरी ने उर्मिला के हाथ से गिलास लेकर चारपायी के नीचे रख दिया। गहरे साँस से वोला—"उर्मी !"

पुरी ने उर्मिला का भीगा हुआ हाथ अपने हाथ में ले लेना चाहा। उर्मिला ने हाथ पीछे हटा लिया।

"उर्मी, अव क्या मुझे पहचानती भी नहीं ?" पुरी ने कहा और वाँह वढ़ा कर उर्मिला को कमर से अपनी ओर खींच लिया, जैसे मचलते वालक को पुचकारने के लिये पकड़ रहा हो।

उर्मिला वोली नहीं। उस ने घूम कर और झुक कर पुरी की वाँह से छूटने का यत्न किया।

पुरी ने उस की कमीज का दामन पकड़ कर अनुरोध किया—"देखो, एक वार सुनो तो···"

उर्मिला तव भी न वोली। दामन छुड़ा लेने के लिये कमीज जोर से झटक ली। कपड़ा फट गया। मौन रहने पर भी खीझ और झुंझलाहट उर्मिला के

व्यवहार में स्पष्ट थी ।

कपड़ा फटने की झर्राहट से पुरी को कमीज़ का आँचल छोड़ देना पड़ा। संकोच से अप्रतिभ होकर बोला--"उर्मी, दुख को मैं भी समझता हूं, पर जीवन में जो कुछ सामने आये उसे साहस से सहना पड़ता है ।"

उर्मिला चारपायी से दूर खड़ी हो गई थी ।

नीचे आंगन से प्रवीण की पुकार सुनायी दी--"भाप्पा जी ! देखो हम क्या लाये ?"

प्रवीण पुरी को नीचे दफ्तर में समझ कर उसी ओर पुकार रहा था। वे-जी पीछे-पीछे आ रही थीं । दोनों के हाथों में सौदे की पोटलियाँ थीं ।

पुरी ने चारपायी के नीचे से पानी का गिलास उठा लिया । वह भावोन्मेष में उर्मिला के व्यवहार से बहुत अप्रतिभ हो गया था । उस अवस्था में वे-जी सहसा आ पहुंची थीं । पुरी डर गया--उर्मिला पुराने बदले में जाने क्या कह दे ! आशंका से उस का गला बिलकुल खुश्क हो गया । वह घूंट-घूंट जल पीने लगा ।

प्रवीण ने जीना चढ़ते ही ताजे भुने, महकते भुट्टे पुरी को दिखाकर ललकारा--"देखो भाप्पा जी !"

पुरी, प्रवीण के उल्लास का उचित उत्तर न दे सका ।

वे-जी का ध्यान पुरी के बहुत गम्भीर चेहरे की ओर गया । वह कठिनाई से घूंट-घूंट जल पी रहा था । उर्मिला वे-जी की आवाज सुन कर पुरी से दूर—दीवार का सहारा लेकर खड़ी हो गयी थी ।

ऊपर आते ही वे-जी की नजर पुरी के गम्भीर चेहरे पर से होती हुई एकान्त में उस के सामने खड़ी उर्मिला की ओर चली गयी । उस की कमीज अभी ही फटी जान पड़ती थी ।

प्रौढ़ समझ से वे-जी का चेहरा गम्भीर हो गया । उर्मिला से पूछे बिना न रह सकी—"कमीज कैसे फट गयी ?"

"घुटनों पर किये लेटी थी । उठने में······" उर्मिला ने आधी ही बात कही, जैसे वह और बातों का उत्तर देती थी ।

"हाय, अभी तो कपड़ा नया ही था । कुछ भी नहीं चला" चतुर वे-जी ने अपनी चिन्ता को केवल कमीज तक ही सीमित कर दिया ।

पुरी प्रवीण का दिया हुआ भुट्टा स्वीकार न कर सका । पुरी ने वे-जी से आँख बचा कर उन्हें सुनाने के लिये कहा—"रिखीराम ऐसी गलती कर देता है कि सुधारने में सिर चकरा जाता है ।" और उठ कर चला गया ।

संध्या भोजन के समय तक भी पुरी के चेहरे का भारीपन दूर न हो सका था। वे-जी के सहानुभूति से पूछने पर उस ने बहुत दुख भरे श्वास से उत्तर दिया—"दिल्ली रेडियो से पत्र आया है कि दो बार मेरी खबर रेडियो पर दे चुके हैं परन्तु उन्हें मेरे परिवार का कोई पत्र नहीं मिला। रेडियो की खबर तो सभी जगह सुनायी देती है; क्या मालूम क्यों; कोई जवाब नहीं आया ?"

वे-जी ने सहानुभूति से कहा—"परमात्मा रेडियो वालों का भला करे। वह फिर भी तो खबर दे सकते हैं। काका जी, कौन जानता है इस प्रलय में उड़ कर कौन कहाँ जा पड़ा है ? ऐसी जगहें भी तो हैं जहाँ रेडियो नहीं होते।"

पुरी के मन से आशंका मिट गयी। उर्मिला ने माँ से कोई शिकायत नहीं की थी।

पुरी कनक से सूत्र टूट जाने की चिंता से दुखी था। अपने इस दुख में उर्मिला के प्रति संवेदना से उसे सान्त्वना देने के प्रयत्न में अपमान पाकर एक और चोट लगी। मरी में उर्मिला के आत्म-समर्पण के आग्रह की स्मृति और अब उस का छुए जाने से आपत्ति करना ! पुरी के दुख और पीड़ा में निरादर का शूल गहरा धँस गया।

पुरी ने सोचा—यदि उर्मिला कमीज फट जाने का कारण कह देती ? एक क्षीण-सा अवलम्ब मिला। सोचा, मैं क्या क्रोध करूं ? बेचारी ने एक समय मुझ पर उन्मुक्त स्नेह और आकर्षण न्योछावर किया था, क्या उस का मुझ पर कुछ भी एहसान नहीं ? उस के दुख को भुलाना ही होगा। मेरी बात और है, मै मर्द हूं। मुझे तो सोचना और प्रतीक्षा करनी होगी। कन्नी को अदृश्य कर देने वाले पर्दे को दूर करना होगा। उर्मिला तो शून्य में है, बेचारी लड़की को तो सहारा देना ही होगा......।

पुरी वे-जी के सामने उर्मिला से साधारण निस्संकोच ढंग से बात करता था परन्तु मन में उर्मिला से अकेले में बात करने के अवसर के लिये व्याकुलता थी।

तीसरे दिन वे-जी प्रातः कीर्तन में गये थे। पुरी ने उर्मिला के समीप आ द्रवित स्वर में पुकारा—"उर्मी !"

उर्मिला ने गर्दन झुकाये सिर के संकेत से पूछा—"क्या ?"

"क्या मुझ से इतनी नाराज हो गई हो कि बोलना भी नहीं चाहती ?"

उर्मिला का सिर इन्कार में हिल गया।

"सुनो !" पुरी ने उस का हाथ पकड़ना चाहा ।

उर्मिला ने हाथ खींच लिया परन्तु बैठी रही ।

पुरी ने हाथ पकड़ने का यत्न न कर गहरा साँस ले, स्नेह से द्रवित स्वर में कहा—"सुनो उर्मी, दुख तो है ही । इस से बड़ा क्या दुख होगा, पर जो दुख दूर हो सकता है; ...जो कहीं है, उसके लिये तो सोच और खोज करना ठीक है। जो रहा नहीं" पुरी ने और गहरा साँस लिया, "उस के लिये निरन्तर दुख और सोच से लाभ ? शरीर को रोग-शोक से मिट्टी कर देने में क्या लाभ ? उर्मी, तुम्हारे सामने लम्बी उम्र है !"

उर्मिला गर्दन झुकाये मौन रही ।

पुरी ने उठते हुये उस के कन्धे पर हाथ रख कर फिर कहा—"उर्मी, धैर्य करो। जीवन को बरबाद मत करो। नया कदम उठाने का साहस करो।"

उर्मिला ने पुरी के स्पर्श के प्रति आपत्ति नहीं प्रकट की। पुरी को सन्तोष अनुभव हुआ। उस समय अधिक बात न कर वह नहाने के लिये गुसलखाने में चला गया ।

पुरी नहा कर निकला तो बे-जी आ चुकी थीं। उर्मिला रो रही थी। बे-जी उस के सिर पर हाथ रख कर स्नेह से पूछ रही थीं। पुरी ने देखा और चुप रहा। नीचे जाते समय बे-जी को अकेले देख कर उस ने धीमे से पूछा—"क्या बात है, उर्मी क्यों रो रही है ? तबीयत तो ठीक है ?"

बे-जी की आँखें भीग गयीं—"कुछ नहीं बताती। काका जी, रोने के सिवा बेचारी के पास है ही क्या ?" बे-जी स्वयं भी रो पड़ीं, "कुछ दिन से तो ऐसे नहीं रोती थी। बहुत पूछा है बोलती ही नहीं।"

पुरी दोपहर में भोजन के लिये ऊपर आया तो अखबार साथ लेता आया था। पढ़ कर उस ने गांधी जी के भाषण की बात बतायी कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में प्रेम और भाई-चारे का सम्बन्ध होना चाहिये। दोनों सरकारों को, अपने यहाँ से गये लोगों को वापिस आ जाने का आश्वासन देना चाहिये।

"यही हो जाये तो क्या कहना, वह देवता है। भगवान उस का भला करे, हमारा तो दो लाख रुपये से अधिक मशीनरी का माल गोदाम में है, अपने मकान हैं। इंसान की तरह रह सकें।" बे-जी ने हाथ जोड़ भगवान को स्मरण किया।

पुरी उर्मिला के बोलने की आशा से उसे सम्बोधन कर बात कर रहा था पर वह चुप ही रही। वह चौथे पहर जल के गिलास के लिये ऊपर आया तो उर्मिला फिर चुपचाप रो रही थी।

पुरी ने वे-जी की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा। कोई उत्तर न पाकर उस ने वजुर्ग की तरह वहुत स्नेह से उर्मिला को 'वल्ली' सम्वोधन कर रोने का कारण पूछा। उत्तर न मिला तो चुपचाप नीचे उतर गया।

अगले दिन प्रातः पुरी वे-जी के कीर्तन में जाने की प्रतीक्षा में था। वे-जी के प्रेस की ड्योढ़ी से वाहर निकलते ही वह उर्मिला के समीप चला गया और उसका हाथ अपने हाथों में लेकर स्नेह से पूछा—"उर्मी, कल रोई क्यों थी?"

उर्मिला ने अपना हाथ खींच लेना चाहा पर पुरी ने न छोड़ा, वोला—"मेरी कसम है, वताओ रोई क्यों थी; वताना पड़ेगा?" मानो उर्मिला के रोने का कारण जानने का उस का अधिकार वे-जी की अपेक्षा भी अधिक था।

उर्मिला फिर रो पड़ी।

पुरी उर्मिला का हाथ पकड़े उस के कन्धे पर हाथ रख कर उसे समझाता रहा—"इतनी अच्छी, समझदार और वहादुर लड़की को ऐसा नहीं करना चाहिये। साहस और धैर्य रखो। मेरी वात सुनो, कहना मत किसी से। वे-जी भी कहती हैं, नाम को लावाँ-फेरे हुये हैं। तुम वहां रही कहाँ? न उसे पहले से जानती थी। तुम तो कुआँरी ही हो। वे-जी तो मान गयी हैं कि ज़रा समय गुजर जाय....।"

पुरी जव भी अवसर पाता, उर्मिला के कन्धे पर वाँह रख कर, उस का सिर अपने सीने पर दवा कर उस के सिर पर ठोड़ी टिका देता या उस की उलझी हुई माँग चूम लेता। उर्मिला के आँसू उमड़ पड़ते।

सप्ताह भर ऐसा रहा कि उर्मिला दिन-रात में एक-दो वार जरूर रोती दिखाई दे जाती थी। वे-जी को वहुत चिन्ता हुई। पुरी ने उन्हें परामर्श दिया—"जरूर कुछ कष्ट है। इसे डाक्टर के यहाँ ले जाइये या मैं यहाँ डाक्टर वुलवा दूं?"

पुरी ने वे-जी को उर्मिला के लिये डाक्टर वुलाने का परामर्श तो दिया था परन्तु वह जानता था कि उर्मिला के रोने का कारण वह स्वयं था और उसे विश्वास था कि उस की रुलाई का उपचार भी वही कर सकता था। उस ने उर्मिला के दुख की जमी हुई चट्टान को अपनी सहानुभूति और स्नेह की ऊष्मा से पिघला दिया था। उर्मिला का जम कर कठोर हो गया दुख आँसुओं में वहने लगा था। उर्मिला का वह उपचार स्वयं उस की अपनी आवश्यकता भी थी। उर्मिला को वाहों में लेकर स्नेह से समझाते समय, उस का सिर चूम लेते समय पुरी का मस्तिष्क तो उदारता की गरिमा अनुभव करता ही था परन्तु शरीर भी उत्तेजना का नशा अनुभव करता, जैसे कनक

के स्पर्श का सुख था। अपने ही बराबर ऊंची पुष्ट कनक को आलिंगन में लेने की अपेक्षा, दुवली-छोटी सी उर्मिला को आलिंगन में ले लेना सहज था और अधिक सन्तोष होता था।

उर्मिला न डाक्टर के यहाँ जाने के लिये तैयार थी न डाक्टर को बुलवाने के लिये। वे-जी परेशान थे। वह वे-जी से झुंझला उठती—"मुझे कौन मौत आ रही है! मै कव रोई! मैं तो नही रोई।"

उर्मिला का रोना स्वयं रुक गया। वल्कि उस के व्यवहार में उतनी आत्म-उपेक्षा और जड़ता भी न रही। माँ के कहे विना वह स्वयं ही कमरों की झाड़-बुहार या रसोई के काम में लग जाने लगी। स्वयं ही केश और कपड़े भी धो लेने लगी।

नारंग जी या जगदीश परिवार को लेने नहीं आ सके परन्तु उन के पत्र आते रहते थे। दिल्ली में उन के सम्बन्ध पहले से थे इसलिये थोड़ा-वहुत व्यवसाय जमने लगा पर मकान का कुछ प्रवन्ध नहीं हो पा रहा था। वे अपने व्यवसायिक परिचितों के यहाँ निर्वाह कर रहे थे। लड़की-लड़के और उन की माँ जालन्धर में आराम से थे। वे-जी उन का पत्र पाने पर उन्हें लिख देती थीं कि वे अपनी सेहत और पैर जमाने का खयाल करें।

नारंग जी ने मकान का कुछ भी उपाय होता न देख कर, करोलवाग में एक गिरा हुआ मकान खरीद लिया था और उसे रहने लायक वनवाने लगे थे। इस काम में कुछ समय तो लगना ही था। वे-जी उसी प्रतीक्षा में थे।

पुरी को अपने परिवार का समाचार मिल गया। पिता ने पुत्र का पता पाते ही पत्र लिखा था। अमरचन्द से समाचार पाने से पूर्व उन्हें कुछ अनुमान न था कि जयदेव कहाँ होगा, नैनीताल में या लखनऊ में? चिंतित थे, पुत्र को अपना समाचार कैसे दे सकेंगे। डाक्टर प्राण के छोटे भाई अमरचन्द ने जयदेव पुरी का पता रेडियो से सुन कर उन्हें वताया था।

मास्टर रामलुभाया ने पत्र में सव वृत्तांत व्योरे से लिखा था : भोलापांधे की गली पर भयंकर आक्रमण हो जाने और आग लग जाने पर वे टीकाराम और वीरूमल के साथ 'कृष्ण नगर' में, देवसमाज मन्दिर के कैम्प में चले गये थे। तव डाक्टर प्राण फलैटी होटल में ही था। डाक्टर ने उन्हें यू० पी० के वस्ती जिले में, सोनवाँ स्टेशन पर अपनी मिल में चले जाने के लिये कह दिया था। तव से मास्टर जी सोनवाँ की चीनी मिल में ही थे।

गोपालशाह के परिवार से मास्टर जी का पुराना सम्वन्ध होने के कारण

डाक्टर प्राण के पिता अर्जुनलाल शाह ने उन्हें शरण दे दी थी। उन्हें मिल गोदाम के मुंशी का काम दे दिया था और मास्टर जी उन के बच्चों को भी पढ़ाते थे। ईश्वर की दया से, सब मिला कर मास्टर जी को सत्तर रुपये मिल जाते थे। मिल में मकान, ईन्धन मुफ्त मिल रहा था। अनाज, घी, दूध वगैरह उतना महंगा नहीं था। उन्हें विश्वास था कि उन का पुत्र लखनऊ या नैनीताल में सुरक्षित था। उस के जालन्धर में होने का समाचार पाकर चिन्ता और आशंका हो गयी थी। उन्हों ने पुरी को तुरन्त अपने पास आ जाने को लिखा। माँ उसे देखने के लिये व्याकुल थी।

बे-जी ने पुरी को परिवार का पता लग जाने के लिये बधाई दी। उसे सोनवाँ जाकर माता-पिता से मिल आने के लिये भी उत्साहित किया—"·····काका जी, अभी तुम क्या जानो, बच्चों के लिये माँ-बाप की आँतें किस तरह व्याकुल होती है। जरूर जाकर मिल आओ।" सूद जी ने भी अनुमति दे दी थी, "हाँ, चले जाओ और उन्हें भी यहाँ ले आओ।"

पुरी ने माता-पिता के मोह में कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं की। पौने दो मास में उसे मशीनों की गति से इतना मोह हो गया था कि उस में जरा भी व्यवधान आने से उसे हानि की पीड़ा अनुभव होने लगती थी। रिखीराम अब उत्साह से अधिक काम निकलवाने का यत्न नहीं कर रहा था जैसे अपनी तनखाह निश्चित हो जाने से पूर्व करता था। सन्तोषजनक तनखाह न मिलने से उस का उत्साह शिथिल पड़ गया था। इस बीच सूद जी पुरी को अपना विश्वासपात्र बना कर उस से राजनैतिक दाँव-पेंच में भी सहायता लेने लगे थे।

पुरी स्वयं सुविधा की स्थिति में हो जाने पर शरणार्थियों के कष्ट से बे-परवाह नहीं हो गया था। शरणार्थियों की सहायता के काम का काफी उत्तर-दायित्व उस ने सम्भाल लिया था। नित्य सुबह-शाम घण्टे-दो घण्टे के लिये संघ के दफ्तर जाता था। सरकार की ओर से शरणार्थियों के लिये सिले-सिलाये कपड़े बाँटने का काम उसी के जिम्मे था। देवीदास यह काम उस के हाथ से ले लेने का यत्न कर रहा था परन्तु इस संघर्ष में पुरी को सतर्क रहना पड़ता था।

लाहौर के दैनिक 'छत्रपति' ने जालन्धर से अपना संक्षिप्त संस्करण आरम्भ कर दिया था। सूद जी से परामर्श करके पुरी इस पत्र में कांग्रेस के वाम-पक्ष की ओर से शरणार्थियों की समस्याओं और नयी स्थापित कांग्रेसी सरकार के विषय में कुछ न कुछ लिखता रहता था। मन्त्री-मण्डल ने सूद जी

का सहयोग पाने के लिये उन्हें सभा-सचिव (पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी) नियुक्त कर दिया था परन्तु सूद जी और उन के समर्थक इस से सन्तुष्ट नहीं थे। उन का दल सूद जी का मन्त्री-मण्डल में होना आवश्यक समझता था। पुरी भी इस प्रयोजन से दौड़-धूप करता रहता था।

प्रेस और राजनीति के महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व के अतिरिक्त पुरी की शरण आये बे-जी, प्रवीण और उर्मिला को कठिनाई में छोड़ जाना भी तो उचित नहीं था। सदा सतर्क वे-जी के घर में रहते हुये भी उर्मिला से कुछ क्षण एकान्त में बात कर सकने की व्यग्रता उस के मन में बनी रहती थी। उर्मिला अपने पुराने स्वभाव में लौट रही थी परन्तु इस बार मानिनी की तरह तड़पा-तड़पा कर। उस ने पुरी को चुपके से कह दिया--"नहीं जाना।"

पुरी ने एक सौ रुपये का मनीआर्डर पिता के नाम भेज दिया। विस्तृत पत्र में रुपये-पैसे के कारण परेशान न होने का अनुरोध कर अपनी महत्वपूर्ण उलझनों का आभास देकर, आश्वासन दे दिया कि वह यथाशीघ्र सोनवाँ पहुंच कर मिलेगा। वे किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें।

प्रेस की मशीनों की खड़खड़ाहट और गड़गड़ाहट से पुरी को काम में ध्यान लगाने में परेशानी नहीं होती थी। मशीनों का गर्जन उसे मधुर और उत्साहवर्धक संगीत जान पड़ता था। उस से अपनी शक्ति और सामर्थ्य की अनुभूति होती थी। मशीनों का शोर उसे एकाग्रता में सहायता देता था। काम में एकाग्रता और उत्साह के साथ ऊपर बैठी उर्मिला का ध्यान मन में मधुर तनाव बनाये रहता था। मस्तिष्क में भरी इस मधुर झंकार को कभी-कभी कनक की स्मृति के आतंक की अंगुली का स्पर्श बेसुरा कर देता था। पुरी के मस्तिष्क में ऐसा कोलाहल भर जाने पर आँखों के सामने मूढ़ता का पर्दा सा आ जाता। कनक का खूब बड़ा, गम्भीर, क्रुद्ध चेहरा उस पर्दे पर दिखाई देने लगता और उस चेहरे के एक ओर चपल मुस्कान लिये उर्मिला का छोटा सा चेहरा।

पुरी कनक के अधिकार का दावा अनुभव करता था परन्तु उर्मिला के प्रति उस का अपना अधिकार और उत्तरदायित्व भी तो था। कनक उस के प्रति उत्तरदायी थी। वह स्वयं उर्मिला के प्रति उत्तरदायी था। सुडौल, सशक्त कनक उसे सहारा देती चलना चाहती थी परन्तु उर्मिला को बाहों में लेकर सम्भालना आवश्यक था...।

उर्मिला की जड़ता दूर होने और उसे स्वाभाविक स्थिति में आते देख कर बे-जी के मन से जो बोझ उतरने लगा था पर वह शीघ्र ही दूसरी बड़ी

दुश्चिन्ता बन गया। पुरी और उर्मिला आपस में कुछ ऐसे डूबते जा रहे थे कि अपने आस-पास कुछ देख ही नहीं पाते थे।

एक दिन बे-जी उर्मिला को डाँटे बिना न रह सकीं। उर्मिला ने उलझ कर उल्टा उत्तर दे दिया—"तुम्हें अपने मन से जाने क्या-क्या दिखाई देता रहता है! तुम्हें मेरा बोलना-चालना नहीं सुहाता तो तोला भर अफीम दे दो!"

अब बे-जी उर्मिला को चुटिया से खींच कर दो चाँटे-थप्पड़ लगा देने का साहस नहीं कर सकती थीं। वह उन की बेटी थी पर अब उन्हीं की तरह स्त्री भी थी। बे-जी बिलकुल चुप हो गयीं। वे कुछ बोलने का अवसर ही न होने देतीं। लज्जा और अपमान से झुकी हुई अपनी आँखें वे किसी से न मिलातीं।

नवम्बर के पहले सप्ताह में पुरी संध्या समय राज्य-कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर में गया था। रात भर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम-घूम कर लोगों से मिलने में व्यस्त रहने के कारण लौट न सका। दूसरे प्रातः भी साढ़े नौ बजे घर लौटा। रल्दू ने पहली सूचना यही दी कि बे-जी ने सुबह छः बजे टाँगा मंगवाया था। तीन बक्स और प्रवीण को लेकर स्टेशन चली गयी हैं। कह गयी हैं, दिल्ली जा रही है।

पुरी जानता था, साढ़े सात बजे दिल्ली के लिये गाड़ी छूटती थी। वह क्या कर सकता था। ऊपर गया तो देखा, उर्मिला दुपट्टे में सिर लपेटे चटाई पर पड़ी थी। पुरी की पुकार सुन कर वह फफक-फफक कर रो उठी। पूछने और समझने को कुछ शेष नहीं था। पुरी ने उर्मिला के समीप बैठ कर उसे गोद में खींच लिया। उस के आँसू अपने हाथों से पोंछ कर, उस की रुलाई को अपने होठों से दबा दिया—"क्यों रोती हो? क्या मैं नहीं हूं। मेरे सिर की कसम। हम दोनों है तो किसी का क्या डर है?"

उर्मिला पुरी से बहुत जोर से लिपट गयी और उस के सीने पर अपना सिर दबा कर बहुत जोर से रो दी।

२

नैनीताल में पुरी ने पत्रों में पढ़ा था कि पाकिस्तान की सरकार हिन्दुओं को लाहौर से निकाल रही थी। वह अपने परिवार की चिन्ता में तुरन्त

लाहौर के लिये चल पड़ा था। उस अवस्था में कनक ने उसे रोकना उचित न समझा था। कलेजे पर पत्थर रखकर चुप रह गयी थी।

कनक ने पुरी को जाने से तो न रोका परन्तु उसके जाने के दूसरे दिन से ही वह पुरी के संकटमय परिस्थिति में चले जाने के कारण घोर चिंता में डूब गयी। पुरी का समाचार जान सकने के लिये कनक का रोम-रोम छटपटाने लगा। लायब्रेरी में जितने भी अखबार मिलते, उत्सुक आंखों से सभी को ध्यान से देख जाती। पंजाब के समाचारों के लिये खास स्थान 'न्यू क्लब' था। वहां पंजाब से नित्य नये पंजाबी लोग आते रहते थे।

अगस्त की संध्या के डिनर के बाद पुरी २० तारीख तक नैनीताल में था। तब कनक संध्या समय क्लब नहीं जाना चाहती थी। कोई क्लब चलने के लिये कह न दे इसलिये छः बजे से भी कुछ पहले ही बंगले से निकल जाती थी। २३ अगस्त को संध्या कनक पंजाब के कुछ समाचार जान सकने की व्याकुलता में स्वयं ही नैयर के साथ क्लब चली गई। पहली नज़र में, सप्ताह भर पहले की हालत से अंतर दिखाई न दिया परन्तु शीघ्र ही जाना पंजाबियों की संख्या अधिक हो गयी थी।

कुछ पंजाबी स्थानीय लोगों के साथ ब्रिज, रमी, फ्लैश खेल रहे थे। कुछ दूसरों के साथ बात करते हुये चाय, काफी, ह्विस्की-बियर पी रहे थे परन्तु अधिकाँश पंजाबियों के व्यवहार में उत्तेजना और क्रोध पूर्वापेक्षा अधिक था। वे लाउंज में जमा हो गये थे। नये आये लोग मौत के पंजे से निकल आने के अपने साहस का बखान कर रहे थे। एक जवान अपनी ससुराल की सहायता के लिये रावलपिंडी जाकर लौटने की आप-बीती सुना रहा था। रेल या सड़क से जाना सम्भव नहीं था। वह अमृतसर से हवाई जहाज़ में गया था। रावलपिंडी में सुरक्षा के लिये पुलिस साथ लिये बिना घूमना-फिरना सम्भव नहीं था।

पूर्वी पंजाब में खूब बदला लिया जाने की भी चर्चा हो रही थी। २१ अगस्त को लुधियाने के समीप पंजाब-मेल के कत्लेआम, फिरोज़पुर और अमृतसर में पाकिस्तान को जाती पूरी गाड़ियों को समाप्त कर देने और उससे भी भयंकर कांडों की चर्चा गर्व से की जा रही थी।

कनक पुरी की यात्रा की परिस्थितियों का आभास पाकर सिहर-सिहर उठती थी। पंजाबी बेघरबार होजाने की उत्तेजना और क्षोभ में थे। वे स्थानीय लोगों की तुलना में अपने आपको साहसी, शहीद और ऊंचे स्तर का दिखाने के लिये, दूसरों की उपस्थिति में बेपरवाही से बहुत ऊंचा बोलते थे। अपनी समृद्धि और बेपरवाही के अहंकार में दूसरों से बढ़कर शर्त लगा

देते थे और दूसरों की अपेक्षा अधिक शराब पी रहे थे। सभी आदमी पाँच, दस, बीस लाख की हानि की बात कर रहे थे। कनक ने इतने लाखों की बातें लाहौर में कम ही सुनी थीं।

नैयर के समीप खड़ा एक जवान साधारण पुराना सा सूट पहने था। जवान की आंखें लाल और चेहरे पर क्षोभ के भारीपन की छाया थी। वह ऊंचे, क्रुद्ध स्वर में अपने पूरे परिवार के मारे जाने और कई लाख की सम्पत्ति के बरबाद हो जाने की बात कह रहा था। कनक सामने सोफा पर दूसरी दो स्त्रियों के साथ बैठी ध्यान से उसकी बात सुन रही थी। उसके दुख और संकट के प्रति कनक का मन समवेदना से द्रवित हो रहा था।

जवान ने आत्मीयता से नैयर के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"एक ह्विस्की लो न ?" मानों अवसाद और थकान भुला देना चाहता हो।

नैयर ने स्वीकार कर लिया।

जवान ने बैरे को पुकार कर ह्विस्की मंगवायी। वह ह्विस्की का गिलास लेकर फिर अपनी रोमांचक कथा सुनाने लगा। नैयर और दूसरे लोग सहानुभूति से सुन रहे थे।

जवान सभी की ओर देखकर सभी को सम्बोधन करके बात कर रहा था। कनक भी दूसरे लोगों की तरह उसकी ओर टकटकी लगाये थी। दो-तीन बार आंखें मिल जाने पर जवान का आँखें गड़ा देना उसे अच्छा न लगा। कनक आँखें बचाये रही। नैयर ने तीन ही घूंट लिये थे। जवान का गिलास समाप्त हो गया। उसने नैयर से और लेने का आग्रह किया।

"मेरे पास अभी है, यू गो अहेड" नैयर ने कह दिया।

जवान ने एक पेग और मंगा लिया। नैयर का गिलास समाप्त होने से पहले ही जवान का गिलास समाप्त हो गया। जवान ने फिर नैयर से आग्रह किया—"मेरा साथ दो, एक और जरूर लेना होगा।"

नैयर ने उस के आग्रह से गिलास समाप्त करके आधा पेग लेना स्वीकार कर लिया। नौजवान चौथा पेग पीता हुआ अपनी कथा छोड़ कर भारत सरकार और यू० पी० सरकार के प्रति क्रोध प्रकट करने लगा—"....यहाँ मुसलमानों पर आक्रमण करने वालों पर गोलियाँ चलाई जा रही हैं।" वह गांधी जी और पण्डित नेहरू के प्रति क्रोध प्रकट करने लगा। अपना गिलास समाप्त कर उस ने नैयर को बहुत आत्मीयता से बाँह में दबा कर एक और पेग लेने का आग्रह किया। नैयर ने क्षमा माँग ली परन्तु जवान ने अपने लिये एक और पेग मँगा लिया।

कनक को ऐसे आदमी मे नैयर की आत्मीयता बुरी लग रही थी। लाहौर में उस ने ऐसी उच्छृङ्खलता और शराब का निस्संकोच व्यवहार नहीं देखा था। जवान के आँखें मिलाने के आग्रह से·खिन्न होकर, वह सोफा पर करवट लेकर दूसरे लोगों की बातें सुनने लगी थी। सभी पंजाबियों का तकाजा था—"भारतके सभी प्रदेशों बम्बई, मद्रास, बंगाल, यू० पी० सभी स्थानों से मुसलमानों को निकाल दिया जाना चाहिये। सब मुसलमानों की जमीन, जायदाद, कारोबार पर पंजाब से आये लोगों का अधिकार होना चाहिये या फिर उन्हें मौका दिया जाये, हमारा जो नुकसान हुआ है, हम भी तो उसे पूरा कर सकें!

एक पंजाबी ने ही आपत्ति की—"यह कैसे हो सकता है। ला और आर्डर भी तो कोई चीज है! यहाँ मुसलमान है ही कितने ?"

"अरे कितने भी हों, हम लुटे है तो हमें भी तो मौका मिलना चाहिये ? हमारा माल क्या हराम का था ?" कोई क्रोध में बोल उठा।

साढे दस बज चुके थे। कनक चलने के लिये नैयर को कई बार सकेत कर चुकी थी। नैयर ने समीप खड़े जवान की ओर विदाई के लिये हाथ बढ़ा कर कहा—"अच्छा, अब इजाजत दीजिये, चलूँगा।"

"जा रहे है ? मुझे भी तो देर हो गई है। फिर मिलेंगे। यह बिल आप दे दीजिये, खयाल न करें।"

नैयर ने विस्मय से जवान की ओर देखा—"लेकिन..." नौजवान ने ऊचे स्वर में ग्लानि प्रकट की, "बादशाहो, क्या बात करते हो। यहाँ लाखों की चोट खाकर उफ नही की। आठ-दस रुपये की बात क्या होती है..." वह दूसरे कमरे की ओर चल दिया।

नैयर विस्मित रह गया पर जवान से सहानुभूति रखने वाले इतने लोगो के सामने वह क्या कहता ? उस ने मुस्कराकर बिल पर हस्ताक्षर कर दिये।

क्लब से बाहर निकलते ही कनक झुंझलाई—"यह कैसे दोस्त बना लिये है आप ने ?"

"दोस्त ? आज पहली बार देखा है उसे ? जाने किस का अतिथि बन कर आया था पर मैं क्या करता ? मुझे तो खल गया। लोग पागल क्या, गुण्डे बनते जा रहे है।"

पूरा सप्ताह बीत जाने पर भी कनक को पुरी का पत्र न मिला। उसे प्रतीक्षा था, पुरी जहाँ भी, जैसी भी स्थिति में होगा, समाचार तो देगा ही।

…क्या नहीं जानते मैं कितनी चिन्तित रहूंगी ? कनक भयंकर आशंकाओं और क्षोभ में स्वयं अपने ऊपर झुंझला उठती—उन्हें जाने ही क्यों दिया ? जाने देना था तो हवाई जहाज से जाने का प्रबन्ध करके जाने देती।…मैं साथ ही क्यों नहीं चली गयी ? दोनों संकट का सामना साथ-साथ करते। वैसी स्थिति आ जाने पर साथ-साथ ही…।

कनक बचपन से जिस प्रकार सोचती आई थी, पिता ने उसे जिस प्रकार सोचने के लिये प्रोत्साहित किया था; वह अपने और पुरुषों के सामर्थ्य में, शारीरिक बल के अतिरिक्त दूसरा कोई अन्तर स्वीकार करने के लिये तैयार न थी परन्तु सब ओर से जैसी परिस्थितियाँ सुनायी पड़ रही थीं, उस में लड़की और स्त्री होना ही सब से बड़ी आपत्ति थी…।

कनक, पुरी के सम्बन्ध में अपनी भावना से नैयर का विरोध जानती थी परन्तु पुरी का पता लगा सकने की सम्भावना के विषय में उस से बात करने के लिये विवश हो गयी। नैयर स्वयं भयंकर चिंता में फँस कर विक्षिप्त हो रहा था। वह लाहौर से केवल दो हजार रुपये कैश लेकर आया था। उसे चेक के व्यवहार का अभ्यास था। जुलाई के पहले सप्ताह में नैनीताल आकर 'विमल-विला' का किराया उस ने चेक से ही दिया था। जिन दुकानों से सौदा उधार आता था उन्हें जुलाई के अन्त में चेक दे दिये थे। ८-९ अगस्त को उस ने लाहौर में बैंक को एक हजार रुपये का ड्राफ्ट इलाहाबाद बैंक या इम्पीरियल बैंक की नैनीताल शाखा के नाम भेज देने के लिये लिखा था। उस पत्र का कोई उत्तर ही नहीं आयाा था। तार देने पर भी कोई उत्तर नहीं आया।

नैयर का अनुमान था कि १५ अगस्त के बाद तूफान शान्त होने पर बैंक रुपया भेज ही देगा। देर-सबेर का ही प्रश्न है परन्तु अगस्त के अन्तिम सप्ताह में सुना कि बैंकों के भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत रुपया भेजने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है तो नैयर घबरा गया। दो सालियों, अपने और बहनोई के परिवारों का खर्चा भी सिर पर था। वह मन ही मन पछता रहा था, पंडित जी के सुझाव पर उस ने अपना हिसाब लाहौर से बदलवा क्यों नहीं लिया था ? लाहौर जाकर बैंक के लॉकर से अपने कागज और जेवर क्यों नहीं ले आया था। लाहौर न लौट सकने पर जीविका का क्या उपाय होगा ? वह कनक की बात क्या सुनता और क्या उपाय बताता ?

कान्ता चिंता में बिलकुल ही सुन्न हो रही थी। उसे सब दोष अपना ही जान पड़ रहा था। खर्च तो उसे ही चलाना था। क्या सहसा सब इज्जत

मिट्टी मे मिल कर घर भर को भूखा मरते देखेगी ? ऐसी अवस्था मे पिता जी को भी क्या लिख सकती थी ? उन्हो ने स्वय किसी तरह भाग कर दिल्ली मे शरण ली थी। वहाँ तीन सप्ताह मे मकान का भी प्रबन्ध नही कर पाये थे। नैयर ने उन्हें नैनीताल आ जाने के लिये लिख दिया था परन्तु वे बोझ बनने के सकोच से नही आये।

कान्ता सब कुछ जान कर भी नैयर की तरह प्रकट मे निश्चिन्त नही बनी रह सकी। अपने आर्थिक सकट को वह ननद और बहनोई के सामने प्रकट नही करना चाहती थी परन्तु सकट का उपाय कैसे न करती ? रसोई मे घी की मात्रा घट गयी। दो तरकारी, मास और दाल के स्थान पर एक तरकारी और दाल हीं बनने लगी। अपनी लडकी के अतिरिक्त ननद के भी तीन बच्चे थे। ननद के बच्चो की आयु छ, आठ और ग्यारह थी। कान्ता चार सेर दूध के बजाय डेढ सेर ही लेने लगी। सकट मे आत्म-रक्षा के उपायो का प्रभाव उल्टा ही हुआ। आर्थिक दबाव से एक दिन विस्फोट हो ही गया।

कान्ता की ननद की सास ने घर का खर्च घटाने के प्रयत्न मे अपना अपमान समझ लिया। उन्हें बचपन से रात सोते समय एक गिलास दूध और सुबह एक गिलास निर्जल दही का मट्ठा पीने का अभ्यास था। इस के बिना उन्हे खुश्की और कब्ज की शिकायत हो जाती थी, सिर घूमने लगता था। उन्होने क्रोध मे कह दिया—"अगर ऐसी ही कगाली बरस गई है तो हम अपने लिये डेढ सेर दूध अलग मँगा लिया करेगे। हम घर पर दो भैसे बँधी छोड कर आये है…।"

नैयर को विस्मय से आघात लगा कि उस की बहिन सुभद्रा भी उस की कठिनाई न समझ कर अपनी सास की अनुचित शिकायत का साथ दे रही थी। सुभद्रा ने विचित्र बात उखाडी—"हम आये तो रोज दूसरे दिन आम, खुमानी आते थे। हमारे बच्चो का इतना बोझ हो गया कि फल लेने बन्द कर दिये। अब रोटी भी भारी हो रही है कि दोनो जून दाल से निगलें। खुद तो तीनो बहने घूमने-फिरने वाली हैं। बाजार मे, होटलो मे चर आती है। सब किफा-यत हमारे लिये ही है। कोई दूसरी जगह मिल गई होती तो हम क्यो बोझ बनते। हम इतने भारी हो रहे है तो बराम्दे मे अगीठी रख कर अपने बच्चो के लिये चार रोटियाँ सेक लिया करेगे।" वह अपमान से रोने लगी।

सुभद्रा की ननद स्वर्णा भी अपनी भौजाई के प्रति होते अन्याय के विरुद्ध, भौजाई के पक्ष मे बोले बिना न रह सकी—"हमारा दुर्भाग्य है कि हमारा बोझ खामुखा इन लोगो पर पड गया। हम तो अपने भाई के यहाँ आये

थे। हमारे भाई का घर होता और हमारे साथ ऐसी होती तो एक घूंट पानी भी उस घर में नहीं पीती। हमारे भाग्य फूट गये, लाखों की सम्पत्ति छोड़ कर दूसरों की रोटी के मोहताज हो रहे हैं। इन के फैशन तो देखो! सब कुछ फैशनों में उड़ जाता है। मुंह पर पाउडर-क्रीम जरूर चाहिये, चाहे पेट में चूहे कूदते रहें।"

सुभद्रा की सास समधी के घर आकर अपमान पाने की शिकायत में रोने लगी।

नैयर की माँ बोले बिना न रह सकी। कनक और कंचन समझाने-बुझाने का यत्न करने लगीं तो सुभद्रा और स्वर्णा दोनों उन पर बरस पड़ीं—"तुम अवारा सांडनियां यहाँ किस लिये आकर मरी हुई हो। तुम्हारे लिये न अपने बाप के घर जगह, न कभी तुम्हें ससुराल मिलेंगे...."

'विमला-विला' का सन्तुष्ट अभिजात वातावरण सहसा भयंकर महाभारत में बदल गया। ऊपर, नीचे और समीप के बंगलों के लोग बराम्दों और खिड़कियों में खड़े होकर शोर का कारण जानने के लिये झाँकने लगे। नैयर का बहनोई रामप्रकाश यह स्थिति देख कर चुपचाप बाहर चला गया।

कनक और कंचन गालियाँ सुन कर क्रोध में अपना सामान समेटने लगीं। नैयर ने उन्हें बुला कर कड़े स्वर में डाँटा—"यही तुम दोनों की अक्ल है? तुम भी मूर्खों की तरह व्यवहार करोगी? मेरे संकट में यही तुम्हारी सहायता और सहानुभूति है?" दोनों बहनें एक ओर जा मुंह छिपा कर रोने लगीं।

नैयर ने कान्ता को भी डाँटा—"क्या पागलपन करती हो, स्वयं तुम ने ही तो उन्हें बुलाया था...."

कान्ता रो पड़ी—"ट्रंक खोल कर देख लो, कुल सवा छः सौ रुपया रह गया है। मैं कहती हूं, पिता जी के आने तक किसी तरह निभ जाये। तुम कहो तो मैं सप्ताह भर में फूंक दूं। इस के बाद हम लोग खुश्क रोटी या आधे पेट खायेंगे तो यह लोग क्या कहेंगे? यह लोग दूध के कुल्ले करना चाहें या परौठे के बिना ग्रास इन के गले से नहीं उतरते तो इन्हें अलग ही बना लेने दो। हमारी कंगाली से ये लोग क्यों दुखी हों? हमे आधी रोटी भी न मिलेगी तो भी मैं इन से न मागूंगी....।"

पन्द्रह दिन पहले सुभद्रा को भौजाई से इतना प्यार था कि उस के साथ बाजार जाने पर कान्ता कुछ भी खरीदने से झिझकती थी। कान्ता कुछ भी पसन्द कर लेती तो सुभद्रा तुरन्त दाम चुका देने के लिये, अपने हाथ में लिये रेशमी रूमाल की गाँठ खोलने लगती थी। कान्ता उसे कठिनाई से

रोक पाती थी। कान्ता के साथ एक थाली में खाये बिना उस का मन न भरता था।

नैयर क्षोभ में गहरे साँस लेकर सोच रहा था—हाथ में पैसा कम हो जाना मेरा कितना बड़ा दोष हो गया।

'विमल-विला' में कलह का भयंकर कोलाहल मच जाने के बाद सन्नाटा छा गया। केवल नानो या सुभद्रा का छोटा लड़का धम्मी ही, समझ न होने के कारण चिल्ला कर पुकार लेते या हँस देते थे।

सिर पर आ गये संकट के विचार से और नैयर से इतनी आत्मीयता के अधिकार की डाँट सुन कर कनक के मन से जीजा के प्रति सब विरोध सहसा धुल गया था। नैयर को गुम-सुम अकेले बैठे देख कर वह उस के समीप चली गयी और पुराने ढंग से 'जियाई' सम्बोधन कर पूछा—"क्या सोच रहे हैं ?" कनक ने दो मास पूर्व पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी अवस्थी जी द्वारा दिये आश्वासन की याद दिला कर अनुमति चाही कि नौकरी के लिये पत्र लिखे। उस से कुछ तो सहायता मिलेगी।

नैयर भरा बैठा था। उसने सीधे ही प्रश्न कर दिया—"पुरी लखनऊ में है ?"

कनक ने जीजा की आंखों में सीधे देखकर उत्तर दिया—"जियाई, आपसे तो कभी झूठ नहीं बोला। उनके साथ जाऊंगी भी तो आप लोगों से कह कर ही जाऊंगी। 'वे' तो लाहौर जाने के विचार से गये थे। चौबीस दिन होगये एक भी पत्र नहीं आया।" कनक ने मुँह फेर लिया। उसकी आंखें छलक आयी थीं।

नैयर सहानुभूति में चुप हो गया। फिर अंग्रेजी में बोला—"माफ करना, मुझे क्या आपत्ति हो सकती है परन्तु पिताजी से भी तो बात कर लेनी चाहिये। तुम चाहो तो अवस्थी को लिख दो, पिताजी भी दो-चार दिन में आ ही जायेंगे। सप्ताह भर से उनका भी पत्र नहीं आया, शायद आज आये।"

उस दिन दिल्ली से पंडितजी का पत्र तो नहीं आया परन्तु जालंधर से नैयर के मुँशी काकाराम का पत्र आया। काकाराम ने पूछा था, अब नैयर अपनी प्रेक्टिस कहाँ आरम्भ करना चाहता है। परामर्श भी दिया था कि नैयर के लिये जालंधर में प्रेक्टिस प्रारम्भ करना अच्छा होगा। पूर्वी पंजाब की अस्थायी राजधानी शिमला से जालंधर में बदल दी जाने की आशा थी। हाईकोर्ट भी वहीं बनने की अफवाह थी। काकाराम जालंधर जिले की मुकेरियां तहसील का रहने वाला था। उसके सम्बंधियों में दो पटवारी और एक कानूनगो भी

था। काम मिलने में सहायता की आशा हो सकती थी। लाहौर, गुजरांवाला, लायलपुर से बहुत से लोगों ने उसी जिले में आसपास जमीनें घेर ली थीं।

नैयर ने कांता से सलाह ली। कांता की इच्छा थी कि जहाँ पिताजी रहें वहीं उनका भी रहना ठीक होगा परन्तु जो अवसर सामने आ रहा था, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। नैयर ने उसी संध्या काकाराम को उत्तर दे दिया कि उसका परामर्श उचित ही था। वर्तमान अवस्था में वह उसके लिये एक साधारण सा मकान, किसी साफ से मुहल्ले में ले ले। तीन-चार दिन में वह उसे निश्चित बात लिख सकेगा।

सितम्बर की १६ तारीख को भी न पिताजी आये न उनका पत्र ही आया परन्तु संध्या समय उनका तार मिला—'परिवार सहित तुरन्त आजाओ।' पंडित जी ने पहुंचने की सूचना न मांगकर तार में मकान तक पहुंचने का मार्ग ब्यौरे से लिख दिया था—स्टेशन से फैज़ बाज़ार, सैयद अहमद रोड, सिलवाली गली के अंत में दुर्रानी गली, नया हिन्द प्रेस।

१४ सितम्बर का दिया हुआ तार नैनीताल में १६ को पहुंचा था। तार इतने विलम्ब से मिलने और तार के ढंग से सभी के मस्तिष्क में अनेक कल्पनायें और आशंकायें उठने लगी थीं। पिताजी स्टेशन पर आने में असमर्थ हैं, क्या कारण हो सकता है?......प्रेस दिल्ली पहुंच गया?

× × ×

पंडित गिरधारीलाल जी अपनी पत्नी के साथ प्राण-रक्षा के लिये लाहौर से भागकर १३ अगस्त को दिल्ली पहुंचे। जान पड़ा कि देश भर की खलकत दिल्ली में ही उमड़ आयी थी। दिल्ली में उनका विशेष परिचय न था। कैम्प में जाकर शरण लेने के लिये मन न माना। होटलों में स्थान नहीं रहा था। बहुत घूम लेने पर फैज़ बाजार में नये बने होटल में, एक मुलतानी परिवार ने उन्हें अपने कमरे के कोने में, पांच रुपये रोज़ पर रख लेना स्वीकार कर लिया।

पंडित जी असबाब की रखवाली के लिये पत्नी को कमरे में बैठाकर स्वयं दिन भर जगह की खोज में घूमते रहते। पुरानी और नई-दिल्ली में, जितनी बस्ती के लिये स्थान था उससे बहुत अधिक लोग दूसरे महायुद्ध के समय ही, कारोबार के प्रलोभन से दिल्ली में बस चुके थे। १९३९ की अपेक्षा १९४५ में मकानों के किराये ड्योढ़े-दुगुने हो चुके थे। मार्च १९४७ से, पश्चिम पंजाब के बड़े नगरों से भाग कर आये धनी लोगों को भी दिल्ली ही सब से समीप

और सुरक्षित स्थान जान पड़ा। वे लोग किसी भी दाम पर कोई भी जगह पा लेने के लिये उतावले थे। १४ अगस्त के बाद तो पंजाब से भगाये गये लोग, अपार जन-प्रवाह की तरह बहे आ रहे थे। यू० पी० सरकार ने अपने राज्य में स्थिति बिगड़ने न देने के लिये शरणार्थियों के यू० पी० प्रवेश पर रोक लगा दी थी परन्तु दिल्ली उदारता से बाहें पसारे सब को स्वीकार कर रही थी। दिल्ली में अब नित्य उमड़ती चली आती जनता के लिये वृक्षों के नीचे भी आश्रय का स्थान शेष न था। लोग सिर पर ओट की भी परवाह न कर, जहाँ बैठ जाने भर को स्थान मिल सकता, बैठते जा रहे थे।

पंडित जी मकान ढूँढ़ सकने के लिये अपने व्यवसायिक परिचितों से मिले। प्रोफेसर एल सी० माथुर से भी मिलने गये। मिठाई, चाय, लेमोनेड और पान से सब जगह खातिर हुई। लोग मकान दिला सकने के अतिरिक्त सभी तरह को खातिर के लिये तैयार थे। एकाध ने संकेत भी कर दिया—"आप पंजाबी लोग भला कहीं मकान मांगते फिरते है? मकान जिन्हें चाहिये ले ही रहे हैं। पहाड़गंज, सब्जी-मण्डी, पटौदी हौज़, मटियामहल, बैरमखाँ रोड पर देखिये!"

पंडित जी ने किसी से सहायता न पाकर भी आठ दिन की खोज और अथक श्रम से फैज़ बाज़ार में गोलचे के पीछे, सैयद अहमद रोड पर मकान की तीसरी मंजिल पर एक कमरा ढूँढ़ ही लिया। कमरा दो ईंट की दीवार और टीन की छत की बरसाती थी परन्तु उसमें ताला लगा सकने के लिये किवाड़ भी थे। पानी और संडास के लिये उन्हें और उनकी प्रौढ़ा पत्नी को नीचे आंगन के नल तक उतरना पड़ता था। कमरा क्या, असबाब रखकर, भोजन बना लेने और बरसात में सिर छिपा सकने के लिये स्थान हो गया था। वे अब धैर्य से मकान ढूँढ सकते थे।

पंडित जी गोलचे की पीछे के मुहल्लों, पटौदी हौज, दिल्लीगेट बाज़ार, बैरमखाँ, मटियामहल की स्थिति भांप रहे थे। उनके मकान का मालिक राजाराम अगरवाल तो अपने पुराने मकान में ही था परन्तु दूसरी सब बस्ती नयी थी। १४ अगस्त के पहले की कूचा चेलां और दिल्लीगेट बाजार की मुस्लिम बस्ती की जगह पंजाबी हिन्दू आते जा रहे थे। पटौदी हौज़, चितली कबर बाजार, तिरहा बैरमखां में अभी मुसलमान ही थे। बहुत बड़ी लड़ाई की तैयारी की सनसनी थी। अफवाहें थीं कि पहाड़गंज और दूसरे मुहल्लों के मुसलमानों ने बहुत सी बन्दूकें जमा करके किले बना लिये हैं परन्तु पंडित जी प्रतिदिन कई सहमे हुये मुस्लिम परिवारों को, अपना असबाब लिये मुहल्लों से चले जाते देखतें थे और अनेक पंजाबी हिन्दू परिवारों को अपना असबाब

सिरों और कंधों पर उठाये, वसने के लिये भीतर जाते भी देखते थ । कुछ हिन्दुओं के मारे जाने की अफवाह भी थी । पंडित जी ने दो वार पश्चिम से आये लोगों को तलवारें, भाले और फर्से लिये भीतर की गलियों में जाते देखा था । शाँति-रक्षा के लिये सिपाही राइफलों पर संगीनें लगाये बाजारों और गलियों के मोड़ों पर खड़े या बैठे रहते थे पर गलियों में कत्ल भी हो जाते थे और वम फेंके जाने की घटनायें भी हो जाती थीं । आवादी का परिवर्तन खुलेआम हो रहा था । पश्चिम से आये लोगों और दिल्ली छोड़कर जाना चाहने वालों में जायदाद के सौदे भी हो रहे थे ।

फैज़ वाज़ार के पीछे के मुहल्लों में मुसलमान रक्षा के लिये दुहाई दे रहे थे । उनकी रक्षा के लिये ही सशस्त्र सिपाही तैनात थे इसलिये उन पर ही रोक-थाम थी । दोपहर में पंडित जी के लिये टीन की छत के नीचे बैठे रहना संभव न होता । उन्हें पिछले पच्चीस-तीस वर्ष से जैसा जीवन विताने का अभ्यास था उसकी तुलना में यह दिन, पैंतीस वर्ष पूर्व काटी जेल की सज़ा की तरह थे । परन्तु तव पंडित जी के शरीर में जवानी की शक्ति और मन में देश के लिये उत्सर्ग का जोश था । अठावन वर्ष की अवस्था में भी वे उस कठिनाई को चुपचाप धैर्य से सह रहे थे ।

दिल्लीगेट वाज़ार से दक्षिण की ओर गलियों में उस समय भी मुसलमान ही थे । पंडित जी को मुसलमानों के वीच रहने में भी आपत्ति न थी । ऐसे मकान की खोज थी जिस में स्वस्थ रह सकने लायक स्थान, वायु और जल मिल सके । लाहौर लौटना संभव न होने पर, लाहौर से अपना प्रेस भी मंगा कर लगा सकें । उसके लिये वे मुनासिव खर्च करने के लिये भी तैयार थे ।

गलियों में शेप रह गये मुसलमान प्रायः अपने मकानों की दहलीजों में सिमटे-सहमे वैठे दिखाई देते । पंडित जी उन्हें उत्तेजित या भयभीत न करने के लिये 'भाईजान' सम्वोधन कर पूछ लेते—""इस गली में कोई मकान खाली तो नहीं होगया है ?"

उत्तर में प्रायः उदास चेहरे और सुर्ख आंखें मौन रह जातीं । एक वहुत उदास और क्रुद्ध मुसलमान ने गहरा सांस लेकर कह दिया—"भाईजान, हमें मार कर निकाल दो, सव खाली हो जायगा । हम मरेंगे तो दो-चार को साथ भी ले जायेंगे । हम जा कहाँ सकते हैं ? यहां ही दफनाये जायेंगे । इसी मिट्टी से पैदा हुए हैं, इसी में समायेंगे ।"

उस आदमी की वात सुन कर खद्दर की शेरवानी, ऊंची गांधी टोपी पहने एक मौलाना सूरत मुसलमान गली से जाते-जाते ठिठक गये थे । उन की आंख

के इशारे से बोलने वाला चुप हो गया था। सब लोगों को उन्हें सलाम करते देख कर पंडित जी ने भी उन्हें आदाब अर्ज़ कर दिया और सहानुभूति से बोले —"भाईजान, आप क्यों जायें। आप का घर है, आप रहिये। अपने पड़ोस में जगह खाली हो तो हमें भी रखिये। हम तो आपको भाई, हम-कौम एक नेशन खयाल करते हैं। हमारी बदकिस्मती है कि लाइफ भर की मेहनत और कमाई से बनाया मकान और प्रेस छोड़कर भाग आना पड़ा है लेकिन हमें आप से क्या मिला है ? हम तो चाहते है कि फिर अपने वतन को लौट जायें लेकिन 'उसको' (पंडितजी ने आकाश की ओर संकेत किया) जो मंजूर है।"

पंडित जी अभ्यास के अनुसार खद्दर की पगड़ी, बंद गले का कोट और पाजामा—कांग्रेसी पोशाक में थे। खद्दरधारी मौलाना दूसरे मुसलमानों की ओर से बोले—"भाईजान, यह फिरकावाराना इश्तआल (साम्प्रदायिक-उत्तेजना) मुल्क और कौम को तबाह किये दे रहा है। इस (दरिंदगी पाशविकता) को रोकना हम-आप सब नेशनलिस्टों का फर्ज़ है। बापू ने तो अपनी जिन्दगी ही इसी के लिये कुरबान कर दी है। काश, इस वक्त मौलाना मुहम्मदअली-शौकतअली जिन्दा होते; डाक्टर अंसारी होते; ओफ ! कलकत्ते में क्या हैवत-अंगेज (अति भयंकर) वाके पेश आये हैं। फिनेटिक (धर्मांध) लोगों ने बापू के मुस्लिम मेज़बान के मकान पर हमला करके खिश्तबारी (ईंट-पत्थर की बौछार) की। तमाम खिड़कियों के कांच टूट गये। बापू बाल-बाल बच गये लेकिन बापू की अकीदत (विश्वास) देखिये, अपने मिशन पर कायम हैं। इस वक्त मुल्क को अल्लाताला के करम से वही बचा सकते हैं.......।"

पंडित जी ने मौलाना के विचारों से पूरी सहमति प्रकट की। उनके पड़ोस में अपने लिये किसी खाली जगह का खयाल रखने के लिये निवेदन करके लौट रहे थे।

"किब्ला, एक गुजारिश है !" पंडित जी ने अपने कंधे के पीछे से सुना।

"इर्शाद फरमाइये !" पंडित जी ने घूम कर देखा। मौलाना उनके पीछे चले आ रहे थे।

"मकान की तलाश है जनाब को ?" मौलाना बोले, "किब्ला को तो अच्छी बड़ी जगह की जरूरत होगी। आप जगह खरीदना चाहेंगे ? यकीन मानिये, यह तकसीम तो दायमी (स्थायी) होगयी। आप आ गये या जो लोग जा रहे है उनके लौटने की क्या इमकान ? मुसलमान तो रोज़मर्रा चला ही जा रहा है। तकसीम कैंसिल हो भी जाये तो किब्ला की जायदाद एक के बजाय दो शहरों में हो सकती है। आप खरीद ही लीजिये।"

पंडित जी ने हाथ की छड़ी को गली के फर्श पर टकोरते हुये सोचा और बोले—"मौलाना, जायदाद की खरीद-फरोख्त तो गौर-खोज़ का मामला है। फिलहाल तो क़िराये का ही खयाल है। खैर भाईजान, आपको तकलीफ न हो तो देख लेने में भी क्या हर्ज है ?"

पंडित जी मौलाना के साथ कुछ कदम लौटे। दो गलियों के जोड़ पर ज़रा चौड़ी जगह में और छोटी गली के शुरू में छोटा सा फाटक था। फाटक पर बड़े-बड़े अंकों में जन-गणना के लिये लगाये गये नम्बर के नीचे लिखा था 'सुल्तान-पसंद जर्दा फैक्टरी, मालिक सैयद अब्दुल समद, दुर्रानी गली, दिल्ली-गेट बाजार, दिल्ली।' मौलाना ने फाटक पर दस्तक दी और जोर से पुकारा—"बिजंग, बिजंग ? ओ भाई बिजंग !"

"कौन है ?" भीतर से गुर्राहट में उत्तर मिला।

मौलाना ने आश्वासन दिया—"हम हैं बिजंग भाई, खोलो ! ज़रा पर्दा कर लेने को कह दो। एक मेहमान हैं।"

फाटक का एक पल्ला खुल गया। खुले हुए स्थान में एक गोरखा, बगल में खुखरी दबाये सावधानी से फाटक के दो पल्लों के बीच अड़ कर खड़ा हो गया था।

पंडित जी ने भीतर जाते हुये ठिठक कर कहा—"भाईजान, आपके एतबार पर चल रहा हूं !"

"यकीन रखिये, कलामपाक की कसम है। किब्ला, धोखा देकर हम जा कहां सकते हैं, कर ही क्या सकते हैं ?" सैयद ने बेबसी प्रकट की।

फाटक की गलीनुमा ड्योढ़ी के दायें हाथ खुला आंगन था। ड्योढ़ी के समीप कच्ची जमीन में बेला और मेहन्दी के तीन चार पोधे थे फिर ईंटों का फर्श था। सामने पुराने ढंग का दो दर का दोमंजिला मकान था। मेहराबों को पाटकर दरवाज़े लगा दिये गये जान पड़ते थे। दाहिनी ओर दो कोठरियां थीं। दीवारों पर से चूने का पलस्तर अधिकांश में गिर चुका था। झड़ती हुई लाल लखौरी ईंटें दिखाई दे रही थीं। बायें हाथ आंगन की दीवार बड़ी ईंटों की थी, आंगन में नल था। पक्के फर्श में तीन-चार नांद गड़े हुये थे। मिट्टी और आलमोनियम के बर्तन, सरकंडे के आरामकुर्सी-नुमा पुराने मोढ़े और दो खाटें भी पड़ी हुई थीं। आंगन में कुछ सुगन्ध मिली तम्बाकू की तीखी गंध भरी हुई थी।

सैयद ने पंडितजी को आदर से मोड़े पर बठाकर चाय, शरबत पेश करने की इजाज़त चाही।

पंडितजी ने विनय से क्षमा मांगी और मुल्क की बिगड़ गई हालत के लिये अफसोस ज़ाहिर किया।

सैयद ने उनका समर्थन किया—"क्या वक्त आगया है किब्ला, पान के पत्तों के लिये तरस जाते है। पचास कदम बाज़ार तक जाना मुहाल होगया है" और बोले, "मकान क्या हवेली की जगह है। किब्ला खुद देख रहे हैं, गिर्दोनवां में समद का अहाता मशहूर है। हमारा खान्दान शहनशाह शाह-आलम के वक्त से दिल्ली में मुकीम है। इस दीवार के साथ के सब मकानों के नीचे की जमीन भी हमारे ही खान्दान की थी। वक्त की बात है। दो ही बरस पहले, जंग के जमाने में इस जगह के पचास हज़ार रुपये लग रहे थे। तब क्या खयाल था हमारे लिये इतनी जल्दी कयामत आजायगी।" सैयद ने गहरा सांस लिया, "पुश्तैनी जायदाद क्या बेचते, वक्त की बात है। आप ज़रीब लेकर नाप लीजिये, दो हज़ार दो-सौ बयालीस मुरब्बा फुट ज़मीन है। आस-पास पुराने मकानों की जमीन सात-आठ रुपया फुट बिकी है। सामने देख रहे हैं, पुख्ता इमारत है। भाईजान, आजकल की नई दिल्ली की इमारत नहीं है कि फूंक मारने से झड़ने लगे। इस ईंट के झड़ते-झड़ते तीन सदियां गुजर जायंगी। हमारी पैदाइश के वक्त से ऐसी ही है, तिल भर फरक नहीं आया। वक्त की बात है, हम बीस हजार पर इतमीनान कर लेंगे। किब्ला गर्दन पर छुरी है, क्या कर सकते हैं?"

लगभग चौदह-पन्द्रह बरस का एक लड़का अदब से सलाम करके समीप खड़ा हो गया था। सैयद ने उसे सम्बोधन किया—"साहबजादे, मकान के कागजात का बस्ता तो ज़रा उठा लाओ। किब्ला को एतबार हो जाये कि बिला हक जायदाद फरोख्त नहीं कर रहे हैं, धोखा नहीं है।"

"नहीं, नहीं भाईजान, ए जैंटलमेंस वर्ड इज़ इनफ—आपकी ज़बान काफी है।" पंडितजी ने छड़ी फर्श पर टकोरते हुए कहा और चिंता में आंखें आधी मूंदकर बोले, "भाईजान, आप बजा फरमा रहे है लेकिन यहाँ तो सब कुछ छोड़कर खानाबदोश होकर आये है।" उन्हों ने गहरी सांस ली, "जनाब की परेशानी को खूब समझ सकता हूं। गुस्ताखी मुआफ कीजियेगा, इससे ड्योढ़ी लागत का, नये ढंग का पुख्ता मकान खुद रिहाइश के लिये बनवाया था, मय बिजली-पंखे-पानी, फ्लशसिस्टम के ताला डालकर चला आया हूं। लाहौर की ग्वालमंडी तो आपने सुना ही होगा, जैसे आपके यहाँ क्वीन्सरोड है या काश्मीरी गेट समझ लीजिये। कागज मौजूद है, दिखा सकता हूं।" जायदाद बिला हक फरोख्त नहीं कर रहे हैं।

लड़के ने बहुत पुराने रिवाज की काले रंग की छींट का, डोरी से लिपटा एक छोटा सा बस्ता लाकर सैयद के हाथ में दे दिया था। सैयद ने बस्ता खोल कर बहुत से बिजली के बिल, पानी-टैक्स की रसीदें और दो कोठरियों के किरायानामे और रसीदों के बहुत से कागज़ पंडित जी के हाथ में देते हुये कहा—"खादिम का नाम सैयद अब्दुल समद है।"

पंडित जी ने सरसरी नज़र से, जैसे अनावश्यक समझ रहे हों, कागजों को देखा और सैयद को लौटाते हुये बोले—"भाई जान, बन्दे की हालत भी मुख्तलिफ नहीं है। हम दोनों एक ही किश्ती के नहीं तो एक ही जैसी किश्तियों के मुसाफिर हैं। आप मेरे साथ चलने की तकलीफ गवारा करें या मैं खुद लाकर आप को कागज दिखा दूं। आप जैसे कल्चर्ड जेंटलमैन का लाहौर जाना ही मुनासिब है। आप को अगर मन्तकिले जायदाद (जायदाद की बदली) में फायदा नजर आये तो दोनों भाई एक-दूसरे की मदद कर सकते हैं।"

मौलाना मकान की अदला-बदली नहीं, अपने मकान की नकद कीमत चाहते थे। बीस के बजाय पन्द्रह बल्कि दस हज़ार पर भी सन्तुष्ट होने को तैयार थे। पंडित जी ने फिर भी उन से एक बार अपने कागज़ देख लेने का अनुरोध किया। दूसरे दिन सुबह खुद कागज़ दिखा जाने का आश्वासन दे कर वे लौट आये।

दूसरे दिन, ४ सितम्बर जन्माष्टमी का पर्व था। पंडित जी की पत्नी स्वास्थ्य खराब होने की दशा में भी व्रत के लिये उपवास रखना चाहती थीं। बहुत समझाने-बुझाने पर वे कुछ फल और दूध ले लेने के लिये मान गयीं। फैज बाज़ार और दिल्ली गेट बाजार में फलों की जो पुरानी दुकानें थीं, उजड़ चुकी थीं। अब कुछ शरणार्थी छोटी-मोटी दुकानों में और ठेलों पर खीरा-ककड़ी, भुट्टे, अमरूद, केले बेचने लगे थे। पत्नी के क्षीण स्वास्थ्य के कारण पंडित जी ऐसी चीजें कैसे खा लेने देते। वे अच्छे फल की खोज में फतेपुरी तक चले गये थे।

पंडित जी फतेपुरी पहुंचे तो दुकानें बन्द होती जा रही थीं। सनसनी थी कि मुसलमान पुलिस हथियार लेकर बागी हो गयी है। पंडित जी अपने मकान पर लौट आये। घबराये हुये लोग कह रहे थे कि सर सैयद रोड से आगे दिल्लीगेट बाजार और पटौदी हौज के मुस्लिम मुहल्लों में दंगा हो गया है। अफवाह थी कि मुसलमान अपनी छतों पर से बन्दूकें-मशीनगनें चला रहे हैं। गोलियां दगने के धमाके भी सुनाई देने लगे। कर्फ्यू का साइरीन बज गया। उन के देखते-देखते बहुत से सशस्त्र सिपाही उस ओर चले गये। शाम तक कई बार गोलियां चलने के धमाके सुनाई दिये। ऐसी अवस्था में

पंडित जी अब्दुल समद के यहाँ कैसे जाते ! कर्फ्यू था परन्तु बाजार में हिन्दुओं की दुकानें खुली थीं । लोग प्राय: दुकानों के आगे लगे तख्तों पर बैठे बातें कर रहे थे । पंडित जी भी संध्या तक वहीं बैठे रहे । आते-जाते लोग समाचार सुना जाते थे । खबर थी कि पहाड़गंज में बहुत भारी लड़ाई है । मुसलमान मोर्चे बनाकर धड़ाधड़ गोलियाँ चला रहे है । हिन्दुओं ने उन्हें घेर कर आग लगा दी है । बहुत जबरदस्त मुकाबिला है ।

पंडित जी बाजार मे खूबचन्द की दुकान पर बैठे खबरें सुनते रहे । कोई कहता था—हौज काजी में गढवालियों ने मुसलमानों को खत्म कर दिया, अजमेरी दरवाजे तक सब जल गया है । करोलबाग मे मुसलमानों ने हमला किया था, सब भून डाले गये । पहाड़गंज मे दो हजार मुसलमान मारा गया है । यह भी अफवाह थी कि कई जगह सिपाहियो और सिविल गार्ड के लोगों ने हिन्दुओं पर भी गोलियाँ चलाईं । कोई सोलह हिन्दुओं के मारे जाने की, कोई चौबीस के मारे जाने की बात कहता था । हिन्दुओं पर गोली चलायी जाने के कारण बहुत उत्तेजना और क्रोध था । लोग कांग्रेस सरकार और पडित नेहरू को गालियाँ दे रहे थे—"ये लोग दिल्ली मे भी हिन्दुओं को मरवा देगे तो हम लोग कहाँ जायेंगे ···।"

सितम्बर ६ को कर्फ्यू मे कड़ाई हो गयी थी । हिन्दुओं पर भी रोक-टोक लग गयी थी । मिलिटरी भीतर की गलियो मे से लाशे निकलवा रही थी । पडित जी खूबचन्द की दुकान पर बैठे स्थिति पर खेद प्रकट करते रहे । ७ सितम्बर, कर्फ्यू मे भी लोग आटा-दाल, सौदा-सुलुफ के लिये आने-जाने लगे थे । पंडित जी ने उस दिन भी दुर्रानी गली तक जाना उचित न समझा ।

८ सितम्वर, पडित जी की कोठरी की टीन की छत दस बजते-बजते धूप मे खूब तप गयी थी । कनक की माँ बरसाती की दीवार की छाया मे अंगीठी रख कर फुलके और एक तरकारी बना लेने मे व्यस्त थी । पडित जी के लिये न तो ऊपर टीन की तपी हुयी छत के नीचे बैठे रहना सह्य था न नीचे बाजार में खूबचन्द की दुकान पर निष्क्रिय बैठे रह सकते थे । वे सैयद अब्दुल समद के मकान की ओर चल दिये । गलियों के मोड़ों पर राइफलों पर संगीनें लगाये सिपाही मौजूद थे । सिलवाली गली में जहाँ पडित जी की मौलाना से पहली भेट हुयी थी, कई कोठरियों के सामने खाटे पडी थी । खाटों पर बैठी पंजाबी स्त्रियाँ अपनी गठरियाँ या बक्सो के कपड़े उलट-पुलट रही थी । पडित जी विस्मित थे, कर्फ्यू के समय भी यह लोग कहाँ से कैसे आ गये ? केवल गली के अन्त में एक ओर एक दरवाजे पर और दूसरी ओर दो दरवाजों पर अब भी

टाट के पर्दे लटक रहे थे। सैयद के फाटक के बाहर चार सशस्त्र सिपाही, फाटक की दीवार के साथ बने छोटे चबूतरे पर बैठे हुये थे।

पंडित जी ने फाटक पर दस्तक दी और पुकारा—"सैयद साहब !.... भाई बिजंग !"

समीप खड़े सिपाहियों ने पंडित जी की ओर नजर की। उन्हें अकेले और निरस्त्र देखकर आपत्ति नहीं की। पंडित जी ने फिर बिजंग को पुकारा और सैयद साहब को भी पुकारा।

"कौन है ?....आप कौन साहब हैं ?" भीतर से सहमे हुये स्वर ने पूछा।

पंडित जी ने परिचय देकर समाधान किया। फाटक का कुछ भाग खुल गया। पंडित जी ने भीतर जाकर सैयद का कुशल-मंगल पूछा। आंगन में धूप थी। पंडित जी को ड्योढ़ी में ही खड़ा करके सैयद आंगन से मोढ़ा उठा लाये थे। उन्हों ने दूसरा मोढ़ा ले आने के लिये करीम को पुकार लिया था।

सैयद को स्वयं मोढ़ा उठाते देख कर पण्डित जी ने संकोच से घोर आपत्ति की—"हैं हैं ! च्च-च्च, क्या कर रहे हैं सैयद साहब ! रहने दीजिये। मैं खुद....। क्या बिजंग नहीं है ? वल्लाह, आप क्यों तकलीफ कर रहे हैं ?"

सैयद बहुत उदास थे, बोले—"क्या अर्ज करूँ, घर में आटा नहीं। बच्चे के लिये दूध भी नहीं आ सका। कल बिजंग को भेजते भी तो कैसे ? ओफ, क्या हैबत थी ! बिजंग जरा बाजार से सौदा लेने गया है।"

पंडित जी ने नगर में, देश भर में फैली उत्तेजना और फिसाद के लिये बहुत दुख प्रकट किया—"सैयद साहब, इन्सान दरिन्द बन गये हैं। हू-बहू यही सूरत लाहौर में थी। ११ अगस्त को नंगी तलवारें, फरसे, भाले लेकर जो जनून निकला, ओफ ! भाई साहब, यहाँ तो फिर गनीमत है। सरकार फिसाद करने वालों को सजा दे रही है, अमन के लिये कोशिश कर रही है। वहाँ तो हिन्दुओं के हथियार सरकार ने ही ले लिये थे और मुसलमान खुले आम हथियार लिये फिर रहे थे। वही बीमारी यहाँ आ गयी है। च्च-च्च, क्या बनेगा मुल्क का !"

सैयद बहुत उदासी से बोले—"उन के गुनाहों का कफ़ारा हम से लिया जाये, यह तो इन्साफ नहीं है !"

"हरगिज नहीं, बिरादरम हरगिज नहीं। यह तो जुनून है, दरिन्दगी है।" पंडित जी ने विश्वास दिलाया।

"इन में मजहब का क्या सवाल है ? यह तो गुण्डागर्दी है। हम तो हमेशा से नेशनलिस्ट रहे हैं। पंडित जी, हमारे लिये तो राम-रहीम एक हैं पर यहां

तो लोग सिर्फ कत्ल पर आमादा हैं। सूरतें कत्ल की जा रही हैं, दिल तो कोई देख नहीं सकता। किब्ला, आप ने मकान के मुतल्लिक क्या फ़ैसला किया ?"

पंडित जी ने कोट का बटन खोल कर भीतर की जेबों से कागज़ निकाल कर सैयद को दिखाये। सैयद ने कागजों पर नजर डाली। वे जायदाद की अदला-बदली के लिये तैयार हो गये थे परन्तु लाहौर में मकान के हक के साथ पाँच हज़ार रुपया नकद भी चाहते थे। बोले—"किब्ला, हम तो मकान आप के हाथों में दे रहे हैं। सामने गोदाम में हजार रुपये का तो तम्बाकू मौजूद है। जर्दे और किमाम के कई किस्म के मसाले है। आप का मकान नया और बेहतर सही लेकिन आप तो मकान के कागज और चाभी ही दे रहे है। लाहौर जाकर जाने क्या सामने आता है ? मकान पर कब्जा मिले न मिले ! जाने, किस से वास्ता पड़े ? क्या उलझन खड़ी हो जाये ?"

पंडित जी और सैयद में काफी देर बातचीत चली। पंडित जी मकान की अदला-बदली के साथ दो हज़ार रुपया देने के लिये तैयार हो गये परन्तु लिखा-पढ़ी कर लेना चाहते थे कि अगर वे खुद फिर लाहौर लौट कर वहाँ रहना चाहें तो कोई हर्जाना दिये और वसूल किये बिना वे लाहौर में अपने मकान पर काबिज हो सकेंगे।

मौलाना ने पंडित जी के घुटने पकड़ कर एक और विनय की कि पंडित जी खुद उनके साथ चल कर रेलवे-स्टेशन तक उन्हें पहुँचा दें।

रजिस्ट्री और अदालत का प्रश्न और अवसर ही नहीं था। इकरारनामा दो कागजों पर लिख कर दोनों ने दस्तखत कर देना तय कर लिया। यह लिखा-पढ़ी हो रही थी तो बिजंग बाजार से लौट आया था। वह ध्यान से देख और सुन रहा था।

बिजंग अपने सामान की छोटी सी पोटली बाँध कर अपनी खुखरी कन्धे से लटकाये आकर बीच में बोल उठा—"पैले मेरा तलब दिच्छे।" वह अपनी वफादारी और नमकहलाली की तनखाह धोखे-धड़ी में खो देने के लिये तैयार नहीं था।

सैयद ने बिजंग को आश्वासन दिया—"पंडित जी बहुत बड़े शरीफ और मेहरबान मालिक हैं। तुम्हें बदस्तूर दरबानी पर कायम रखेंगे।" उन्हों ने पंडित जी को भी उस परिस्थिति में दरबान की आवश्यकता समझादी। पंडित जी ने स्वीकार कर लिया। सैयद ने बिजंग को विश्वास दिलाया, "हम पंडित जी के यहाँ आ जाने पर ही जायेंगे। तुम्हारी तलब और इनाम देकर जायेंगे।"

बजरंग ने अपनी पोटली ड्योढ़ी में रख दी परन्तु बहुत सतर्क बना रहा।

पंडित जी ने सैयद के मकान खाली करने से पहले ही अपना सामान और अपनी पत्नी को मकान में पहुँचा दिया था। उन्हों ने कुछ ही घण्टों में, हिन्दू धर्म के नाते बजरंग से आत्मीयता स्थापित कर ली। अब तक बजरंग अपने मालिक की सेवा-रक्षा कर रहा था परन्तु उस मालिक के हाथ का छुआ खाना-पीना अधर्म समझ कर ड्योढ़ी में ही सिमटा रहता था। ब्राह्मण स्वामी पाकर वह प्रसन्न हो गया। घर की सफाई करने में 'माँ शैब' (माँ साहिबा) की सहायता करने लगा। उस ने नल से पानी लेकर आंगन और कोठरियों को धोने में सहायता दी। बाज़ार से अगरबत्तियाँ लाकर सब तरफ जला दीं।

पंडित जी एक मास बाद आराम से, आंगन में खाट डाल कर खुली हवा में बैठ सके थे। वे बजरंग से बात करने लगे--"थापा, तुम अपने धर्म के पक्के हो तो तुम ने गाय खाने वाले तुर्क की नौकरी कैसे कर ली थी ?"

बजरंग को 'जीविका के धर्म' और 'परलोक के धर्म' में कोई सम्पर्क या परस्पर विषमता नही जान पड़ती थी। वह नौकरी को जीविका का धर्म समझता था और खान-पान, छुआ-छूत को परलोक का धर्म। उसने बताया—लाखों गोरखा लोग गाय खाने वाले अंग्रेज़ की नौकरी करते थे और रणक्षेत्र में अंग्रेज स्वामी के लिये प्राण देकर स्वर्ग भी जाते थे। वह जब तक सैयद का नौकर था, सैयद की रक्षा के लिये प्राण न्योछावर कर सकता था। यह उस की जीविका का धर्म था परन्तु दूसरे मुसलमानों को काट डालने के अवसर से उसे प्रसन्नता ही होती।

सिलवाली गली और दुर्रानी गली में मौलवी कासिम मुहम्मद और सैयद अब्दुल समद का बहुत प्रभाव था। मौलवी कासिम मुहम्मद लीग और पाकिस्तान के जबरदस्त पैरोकार थे। उन्हें विश्वास था कि पाकिस्तान कायम हो जाने पर 'दीन' की ताकत जल्दी ही दिल्ली को भी फतह करके पाकिस्तान मे शामिल कर लेगी। वे आस-पास की गलियों और मुहल्लों के मुसलमानो को 'दीन' के नाम पर जंग के लिये तैयार रहने के लिये ललकारते रहते थे। पन्द्रह अगस्त के बाद, शहर में हुये फिसादों ने स्थिति बदल दी थी। कासिम मुहम्मद, काफिर की हुकूमत मे रहना कुफ़ बता कर, कई मुस्लिम परिवारों के साथ पाकिस्तान के लिये कूच कर गये थे।

सैयद अब्दुल समद, मौलवी कासिम का विरोध नहीं कर सकते थे। वे धैर्य मे समय को देख कर काम करने की नसीहत देते रहते थे। मौलवी कासिम के चले जाने के बाद, गलियों में गरीब मुसलमान सैयद की ही ओर आँखें लगाये

थे। सैयद मुसलमानों के दिल्ली छोड जाने के खिलाफ थे। सब को धैर्य से टिके रह कर, सामूहिक रूप मे अपनी रक्षा करने के लिये समझाते रहते थे। पच्चीस-छब्बीस वरस पहले जब कांग्रेस और खिलाफत के आन्दोलनों मे सहयोग था, उस समय सैयद काग्रेमी रहे थे। अब उन्हों ने वक्त के मुताबिक फिर खद्दर के कपड़े भी पहन लिये थे।

दुर्रानी गली मे शेष रह गये मुसलमानों ने सैयद को चुपचाप मकान छोड़ कर चले जाते देखा तो उन का साहस टूट गया। सब भागने लगे। पंडित जी ने सोचा—अच्छा ही है, जाने दो। फिलहाल ऐसे पड़ोस से क्या लाभ जिस से फिसाद की आशंका हो।

गली मे मुसलमानों के निकलते ही पश्चिम से आये लोग स्त्री-बच्चों के साथ अपना असबाब उठाये गली में घुस आये थे। जितने मकान थे, उस से बहुत अधिक लोग आ गये थे। मकानों के लिये झगडे, मार-पीट और कोलाहल से गलियाँ गूंज उठी। पंडित जी कई दिन की थकावट से खाट पर लेटे भविष्य की चिंता मे डूबे हुये थे।

अपने मकान के फाटक की ओर से शोर और बजरंग की धमकी और ललकार सुन कर पंडित जी देखने के लिये उधर गये। बजरंग फाटक के दो पाटों के बीच फंसा खड़ा था। फाटक के बाहर बीस-पच्चीस स्त्री-पुरुषों की भीड असबाब उठाये भीतर आ सकने के लिये जिद्द कर रही थी। बजरंग उन्हें रोक कर दूर हट जाने के लिये धमका रहा था।

पडित जी ने फाटक के भीतर से पुकारा—"क्या है? क्या है?" और भीड को समझाया, "भाई लोगो, यह मकान आक्युपाइड है, बसा हुआ है। आप लोग दूसरी जगह देखिये!"

भीड तकाजा कर रही थी—"अन्दर हाता है। बहुत जगह है, वे लोग भी देख ले।"

पडित जी ने कहा—"जो कुछ भी है, मकान हमारा है। हम रह रहे है। आप दूसरी जगह जाइये।"

भीड़ में से कोई बोला—"मकान तुम्हारे बाप का है! फाटक पर साफ मुसलमान का नाम लिखा है। एक हिस्से मे तुम रहो। हम लोगों को भी तो जगह चाहिये!"

पंडित जी ने बताया, मकान उन्हों ने खरीद लिया था। वे खरीद के कागज दिखाने के लिये तैयार थे।

भीतर जाना चाहने वालों ने क्रोध में उत्तर दिया—"खरीद लिया है, तू

बड़ा कारूं के खजाने वाला है। हम भी खरीदे और अपने बनाये मकान छोड़ कर आये हैं। तू सारी दिल्ली खरीद ले। बाकी लोग मर जायें ?"

भीड़ में से खूब तगड़े दो आदमियों ने तर्क और दलील व्यर्थ समझ कर फाटक के एक पल्ले से कन्धे लगा कर पूरी शक्ति से धक्का दिया। बजरंग पंडित जी पर गिरते-गिरते बचा।

"हटो ! हटो !" ललकारती भीड़ भीतर घुस आयी।

पंडित जी रोकने के लिये, दोनों बाहें फैलाकर जुल्म के विरोध में चिल्लाते जा रहे थे और धक्कों से पीछे हटते जा रहे थे। उन की पत्नी भी शोर सुन कर आ गयीं और उन के पीछे खड़ी हो गयी थीं। उन्हों ने पंडित जी पर चोट पड़ने की आशंका में पंडित जी के सिर पर अपने हाथ रख दिये थे।

बजरंग ने पीछे हट कर दीवार से लटकी अपनी खुखरी निकाल ली और 'हर ! हर !' चिल्ला कर भीड़ पर झपटा।

भीड़ आतंक से चीख-चीख कर पीछे दौड़ती हुई एक-दूसरे पर गिरने लगी।

"खबरदार ! खबरदार !" बहुत जोर से ललकार सुनायी दी। गली में खड़े एक सिपाही ने आगे बढ़ कर बजरंग की ओर राइफल उठा कर धमकाया, "खबरदार !"

सब लोग ठिठक गये। सिपाही इस झगड़े को हिन्दुओं का आपसी मामला समझ कर अब तक न बोले थे।

भीड़ के लोग सिपाहियों से बजरंग को गिरफ्तार कर लेने का तकाज़ा करने लगे।

पंडित जी ने आगे बढ़कर सिपाहियों के सामने भीड़ के अन्याय के लिये दुहाई दी और बजरंग को निर्दोष बताया।

दूसरे लोगों ने भी दुहाई दी—"भीतर जगह है। उन्हें क्यों रोका जा रहा है ? वे धूप और ओस में कैसे पड़े रहें !" सिपाहियों ने न्याय करने के लिये जानना चाहा, पंडित जी के परिवार में कितने आदमी हैं।

शरणार्थियों ने आपत्ति की—"एक बूढ़ा-बुढ़िया इतनी जगह घेर कर बैठ जायें और दूसरे बीसियों बाहर मरें।"

सिपाहियों ने भीड़ का पक्ष लिया।

पंडित जी ने बताया—उनका बहुत बड़ा परिवार है। दो-एक दिन में सब लोग आने वाले है। उन्होंने मकान का खरीदनामा दिखाने और नेहरू जी को फोन करने की धमकी दी।

सिपाहियों ने न्याय करने का उत्तरदायित्व लेने की अपेक्षा शांति-रक्षा का

आड़ में खंडहरों में दिन गुजार रहे है। लोग कब्रों की ईंटें ले दीवार बना कर फूस की टट्टियों के नीचे पनाह ले रहे है। च्च, च्च, च्च-च्च! शुक्र है उस परमेश्वर का, हमारे लिये इतने आराम की जगह है।"

दूसरे दिन नैयर ने जालंधर जाकर प्रेक्टिस का अवसर देखने के विषय में बात की तो भविष्य की चिंता आरम्भ हो गयी। पडित जी ने नैयर के विचार का समर्थन करके राय दी—"बेटा, सप्ताह दस-दिन ठहरो। मुंशी काकाराम को यहां का पता लिख दो। बहन जी, काता, नानो अभी यहाँ ही रहें। स्वयं स्थिति देख कर मकान-बैठक का प्रबन्ध कर आना...."

नैयर ने नैनीताल से लाहौर में बैंक को अपना एकाउंट दिल्ली बदल देने के लिये लिख दिया था। वह बैंक के हेड आफिस चादनी चौक में पता लेने गया। अभी तक उस का हिसाब दिल्ली नही आया था।

पंडित जी अपने कारोबार के सम्बन्ध में भी बात करने लगे। उनका प्रेस लाहौर मे रह गया था। दोनों ओर की सरकारों ने मशीनों के आने-जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिये थे। उनकी प्रकाशित पुस्तकों का, एक लाख रुपये के मूल्य का स्टाक लाहौर में रह गया था। पश्चिम पंजाब के पुस्तक विक्रेताओं के यहां से उन्हें काफी लेना था। जो लोग जड़-मूल से उजड़ गये थे, उन से उधार पाने की क्या आशा थी? पंडित जी ने समय रहते जो कुछ नकदी दिल्ली बैंक मे बदलवा दी थी, उस से दुबारा पूरा व्यवसाय जमा लेना सम्भव नहीं था। सब कुछ कह कर पंडित जी ने उच्छवास से सन्तोप प्रकट किया—"हम हजारों-लाखों से अच्छे है। हजार शुक्र है उस परमेश्वर का।"

संकट का समय था, असुविधा थी, सामने और संकट और चिंता भी थी परन्तु नैयर, राजेन्द्र कांता, कनक और कंचन नये और बड़े नगर में प्रथम बार आये थे। पडित जी की नयी अपनाई 'आराम की जगह' भी ऐसी नहीं थी कि वे लोग पुराने अभ्यासों के अनुसार यहाँ चुपचाप लेटे या बैठे रहकर समय काट देते। वे लोग दोपहर से पहले काफी समय के लिये घूमने निकल जाते। संध्या समय नयी दिल्ली की ओर चले जाते थे पुरानी दिल्ली में बस्ती के बाहर या बस्ती के भीतर, जहाँ भी कहीं खुला स्थान था, सब जगह शरणार्थियों के लिये कैम्प बना दिये गये थे। परन्तु नयी दिल्ली की भव्य सडकों और 'कनाट प्लेस' और शासन के केन्द्रों के आस-पास इस संकट का कोई प्रभाव नही दिखाई देता था। इस संकट ने नयी दिल्ली की शोभा और रौनक को और भी बढ़ा दिया था। सब ओर बढ़िया से बढ़िया पोशाकों में पंजाबी युवक और युवतियां ही दिखाई देते थे। मानो वे मेले में अपनी समृद्धि

और शोक का प्रदर्शन करते आये हों या हंस खेलकर अपने दुर्भाग्य को भुला देना चाहते हों ।

दिल्ली आकर कनक का मन एक बार और अवसाद से भर गया। निवास के स्थान, गरमी, उमस, और भीड़ की असुविधाओं की वह परवाह नहीं करना चाहती थी परन्तु पुरी का समाचार न मिलने के कारण आशंका मन को अधीर कर देती थी—इस प्रलयंकारी आंधी में वे जाने कहाँ असहाय-विवश पड़े होंगे ? संभवतः किसी कैम्प में शरण लेने के लिये मजबूर हुये हों । उस उथल-पुथल और अथाह भीड़ में कोई किसी को कैसे खोज सकता है ? कोई भी समाचार नहीं दिया ? अपने परिवार को ढूंढ़ पाये होंगे या नहीं ? इतने दिन तक कोई भी सूचना न देने का क्या कारण हो सकता है ? उन्हें नैनीताल का ही पता मालूम था । अब सम्पर्क का क्या सूत्र रह गया ? यदि वे असफल होकर फिर नैनीताल पहुंचें या वहाँ पत्र ही लिखें तो उनका पत्र दिल्ली आ सकना रामप्रकाश पर ही निर्भर करेगा । नैनीताल से चलते समय नैयर ने रामप्रकाश को कह दिया था, कोई भी पत्र आये तो वह दिल्ली के पते पर भेज दे । रामप्रकाश, सुभद्रा वहाँ जाने कितने दिन रह पाये होंगे । नैयर के चलने से पहले ही वे लोग लुधियाना, अम्बाला चले जाने की बात कर रहे थे । नैनीताल की सड़कों पर और झील के किनारे एकान्त में बैठकर वह चुपचाप उन स्थानों में पुरी की संगति की याद तो कर सकती थी.... । कनक का मन किसी से बोलने को न चाहता था ।

कांता पति को अकेले जालंधर भेजने से डर रही थी । स्वयं भी साथ जाना चाहती थी । उसकी सास, मां और पिताजी ने उसे समझाया, ऐसी हालत में तुम्हारे साथ जाने से नैयर की असुविधा बढ़ेगी । पंडित जी ने नैयर को कुछ दिन और ठहर जाने के लिये कह दिया था । कांता पति के अकेले चले जाने की संभावना से उदास थी । उसकी उदासी स्वाभाविक थी । उसे अपनी उदासी छिपाने की भी आवश्यकता नहीं थी परन्तु कनक अपनी उदासी का कारण सब के सामने कैसे कह सकती थी ? घर में रहते समय उदासी को छिपाये रहने का एक ही उपाय था, अखबार पढ़ते रहना । वह अखबार उठाकर विज्ञापन, अदालती नोटिस, वांटेड के कालम ही पढ़ने लगती । जहां भी स्त्रियों के लिये नौकरी के अवसर की सूचना होती, ध्यान से पढ़कर सोचती, मैं क्यों न यत्न करूं । पंडित जी आराम में पली लड़कियों को अनुभव होती असुविधा को समझ रहे थे । कनक का मौन और चिंता भी उनकी दृष्टि में थी ।

समाप्त हो रही बरसात का एक जोरदार छींटा चौथे पहर आगया था। अब और उमस से बच सकने के लिये नयी दिल्ली की ओर चले जाना भी संभव न था। पंडित जी अपने चारों ओर फैली उदासी को अनुभव कर रहे थे। बेटियों की असुविधा अनुभव करके वे हाथ की पंखी से हवा लेते हुये, उन के दिल बहलाव के लिये एक दो प्रसंग सुना देने के बाद बोले—"हमारी बेटियां किसी मुसीबत में नहीं घबरा सकतीं। यह तो शेर बेटे हैं। यह क्या नहीं कर सकतीं? बाप-दादों की कमाई और जायदाद पर फूलना तो कीचड़ में पड़े घोंघे की तरह मोटा होते जाना है। दैट इज़ ए पैरासाइटस लाइफ़!" पंडित जी अपनी उपमा पर कहकहा लगा कर हंस दिये और चश्मा उतार कर अपने कमीज के आंचल से साफ करने लगे।

पंडित जी ने दिल्ली आकर नयी चतुराई सीख ली थी। किसी से आँख न मिलाना चाहते तो चश्मा उतार कर साफ करने लगते और आंखों को आधा मींच लेते थे। स्वयं दूसरों का चेहरा स्पष्ट न देख पाने से विश्वास कर लेते, कि दूसरे भी उन के चेहरे की असुविधा को नहीं देख पा रहे होंगे।

पंडित जी सुनाने लगे—"बेटा महेन्द्र, तुम्हें तो बताया था न! हमने तो देसराज के प्रेस में बीस रुपये महीने पर प्रूफ रीडर की नौकरी से काम शुरु किया था।" उन्होंने फिर कहकहा लगाया मानो बेटियों को बताना चाहते हों कि प्रत्येक कठिनाई पर हंसना चाहिये, "उस जमाने में जेल से लौटे हुये पोलिटिकल आदमी को नौकरी कौन देता? देसराज भला आदमी था। मैं उस हालत में भी फुरसत निकाल कर कुछ लिख लेता था। रात तो अपनी ही थी, जवानी थी, स्पिरिट थी। मेरी वे इशारिया-मज़ामीन की किताबें—'मौजे-ख्वाब' (स्वप्न की लहरों में) 'मखज़ने-अदब' ने शाया की थीं। तीन बरस में मैंने 'मखजने-अदब' को चार किताबें दीं—'मौजे-ख्वाब' एक छोटा नावल टीपू सुल्तान की जिन्दगी के मुतल्लिक और दो अंग्रेज़ी नावलों के तर्जुमे। मेरे भाई, रायल्टी उस जमाने में कौन देता था! लोग शौक के लिये लिखते थे इसीलिये बेहतर लिखते थे। हां, मैंने 'मखजने-अदब' से हर किताब की डेढ़ सौ कापियां बतौर रायल्टी के ले लीं। दूसरे बुकसेलरों से तबादले में दूसरी किताबें लेकर छोटी सी दुकान 'सुखनमंडी' में खोल दी थी। फिर हफ्तावार 'देशसंदेश' रिसाला निकाला। उसे छापने के लिये पहले सेकिन्ड हैंड प्रेस खरीदा था। रफ्ता-रफ्ता स्कूली किताबों की कुंजियां वगैरा बीस किताबें अपनी और दोस्तों की शाया कीं। प्रेस खड़ा कर दिया, मकान बनाया, कितना आरामदेह मकान था? ख़याल था, अब हमारी बेटियां-बेटे संभालेंगे तो, ओफ क्या तूफान आ

गया है ? देखो, उसकी कुदरत ।" पंडित जी ने ज़ोर से कहकहा लगा दिया, "सब शोराज़ा विखर गया।"

पंडित जी ने गदगद हंसी हंसते हुये चश्मा उतार लिया और कमीज़ के दामन से उसे और धुंधला करते हुये आंखें मींचे कहते गये—"क्या खूब कहा है, कन्नी वेटा क्या नाम है उस शायर का ? हाँ; मोमिन ! मोमिन ने कहा है, सुनो वेटा महेन्द्र, तुम भी सुनो कांता !"

पंडित जी तर्जनी उठाकर वोले—"खाना वरवादी के सदमे उस से पूछे वागवाँ·······"

पंडित जी ने भावोन्मेष से आसन वदल लिया और आधे ही शेर को और ऊंचे स्वर में दोहराया—'खाना वरवादी के सदमें उस से पूछे वागवाँ, तिनका-तिनका·······

"सुनो महेन्द्र जी !

"तिनका-तिनका चुनके जिसका घर वने ओर टूट जाये।

"वाह, वाह । क्या खूब कहा है ? क्या गिला है ? वुलवुल खुदा से क्या गिला करती है ?"

कनक को लग रहा था, पंडित जी उसे विशेष रूप से सुना रहे हैं। यह भी समझ रही थी कि पंडित जी अपने दुख को दवाकर उनका हौंसला वढ़ाने के लिये ही कह रहे हैं। यों वोलने से उनके मन का गुवार निकलता था।

कनक ने पंडित जी को और वुलाने के लिये कह दिया—"वुलवुल खूव गिला करती है, खूव नालाँ होती है (शिकायत करती है, क्रन्दन करती है)। तमाम शायरी और है क्या ? कोई शायर हम लोगों के नालों को लेकर भी शायरी करेंगे और फिसाने लिखेगे।"

पंडित जी गम्भीर हो गये—"वेटा, शायरी और फिसाने अपनी जगह दुरुस्त हैं लेकिन हम पस्त-हिम्मत (निरुत्साह) क्यों हों ?"

नैयर ने अनुभव किया, कनक का परिहास ठीक नहीं वैठा। वहुत हल्की-हल्की फुहार अव भी पड़ रही थी। नैयर की मां आंगन में आ कर घने वादलों की ओर मुँह उठाये थीं। उसने अपनी मां को सम्वोधन कर लिया—"मां जी क्या है, अपने परमेश्वर को देख रही हैं ?

"हाँ वेटा जी, अव इस उम्र में और किसे देखना है। वही सुनने वाला है।" मां ने उत्तर दिया।"

कंचन ने जीजा के कान के पास मुँह कर लिया। पिताजी न सुन सकें इसलिये धीमे से कहा—"पूछिये, पहले किसे देखा करती थीं ?"

"अच्छा ! बहुत पर लग रहे हैं ?" नैयर ने आँखें तरेरीं ?

"क्या है ?" पंडित जी ने पूछ लिया।

"मां जी, कंची कह रही है···" नैयर पंडित जी को सुनाकर मां से बोला।

कंची ने जीजा को बोलने न देने के लिये उसकी पिंडली पर ज़ोर से चिकोटी काट ली। नैयर पिंडली को मलते हुये भी कंची को खिझाने के लिये बोला—"मां जी, कंची कह रही है। कह दूं··· ?"

मां जी ने पूछ लिया—"क्या कह रही है ?"

उसने कंची को धमकाया—"बता दूं ?"

"बताइये !" कंची ने और चूंटी काटने का डर दिखाया।

नैयर ने कंची को घूर मां को उत्तर दिया—"कह रही है, पहले आप··· कह दूं ?···भगवान से कहिये, बारिश से हम तंग आ गये है। अब वर्षा बन्द करें। हमें क्यों परेशान कर रहे हैं।"

नैयर की माँ ने बादलों की ओर हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर दी—"पिता परमात्मा जी, अब बस करो !"

"देख लीजिये बहिन जी, आजकल के लड़के-लड़कियों की समझ" पंडित जी ने नैयर की मां को पंजाबी में संबोधन किया, "इन लोगों को क्या मालूम है कि यह वर्षा कणक (गेहूं) की फसल के लिये कितनी जरूरी है। 'उस' के हर रंग में मनुष्यों की भलाई है।"

"ठीक कह रहे हो भाई जी" मांजी ने अनुमोदन किया, "ये मुंडे-कुड़ियाँ (लड़के-लड़कियां) शहरों में जन्मे, शहरों मे पले। इन्हें क्या मालूम, फसलें क्या होती हैं, कहाँ होती हैं ?"

"वर्षा फसल के लिये अच्छी है तो भगवान से कहिये कि खेतों में बरसाये" कनक बोल उठी, "यहाँ शहर मे बेघरबार-बेमाया लोगों को भिगोकर बीमार करने के लिये, कीचड़ करने के लिये अपना पानी क्यों बरबाद कर रहा है ? उसे नही दीखता कि कणक का खेत हमारे सिर पर नही है। 'माडल टाउन' में माली बगीचे में पानी देता था तो क्या हमें भी भिगो देता था ? भगवान से तो माली ही समझदार था।"

"ठीक कह रही हो मां जी !" नैयर सालियों को चिढ़ाने के लिये मां के समर्थन में बोला, "इन लोगों को क्या मालूम कणक क्या होती है। यह तो समझती है देहातों में पेड़ों पर चपातियाँ लगती है, किसी पेड़ पर डबल रोटियाँ लगती हैं। सुनिये !" नैयर बात बनाने के लिये सीधा होकर बैठ गया, "एक बार कन्ची से मैंने पूछा—तूने कभी कणक का खेत देखा है। इसने जवाब

दिया—हाँ, मैं एक बार मामा के यहाँ देहात में गयी थी। वहाँ खेत में गयी तो शेर आ गया। बहुत ज़ोर से गरजने लगा—हुम्बू-बूँ! हुम्बू-बूँ! तो मैं दौड़कर कनक के पेड़ पर चढ़ गयी। ओफ़!"

नैयर कुछ तिलमिलाकर अपनी कमर मलने लगा।

कनक ने पीछे से उसकी कमर पर खूब गहरी चिकोटी काट ली थी।

"क्या है? क्या है?" पंडित जी ने नैयर की परेशानी का कारण पूछा।

"पिताजी, मालूम होता है खटमल बहुत हैं।" नैयर ने कमर मलते हुये उत्तर दिया।

"अच्छा, अभी हैं?" पंडित जी ने अनुमान प्रकट किया, "दरारों में छिपे होंगे। एक बार फिर डी० डी० टी० छिड़क देंगे। अभी डिब्बे में काफ़ी है।"

"हाँ जी, बहुत बेईमान खटमल हैं छिपकर काट लेते हैं।" नैयर ने कनक और कंचन की ओर देखा।

रात बहुत देर तक कोई न कोई हँसी-मज़ाक चलता ही रहा कि माँ जी, कांता या पंडित जी चिन्ता की कोई बात आरम्भ न कर दें। इस विचार से नैयर और लड़कियाँ कुछ न कुछ बोलती ही रहीं।

सब लोग नींद के लिये लेट गये थे। बिजली बुझा दी गयी थी। खाटें-पलंग कम और आदमी अधिक होने के कारण कनक को कभी कंचन, कभी माँ और कभी कांता के साथ लेटना पड़ता था। नींद का समय और अन्धेरा होने के कारण मन ही मन चिन्ता करते रहने में किसी को खटकने का भय न था। जाने कौन सो गया था और कौन नहीं सोया था। कनक अपनी चिन्ता में थी।

कनक को नैनीताल से दिल्ली आये आठ दिन हो गये थे। पुरी का एक भी पत्र नहीं आया था। पुरी को नैनीताल से गये एक मास से अधिक हो चुका था। कनक सोच रही थी, इतने दिन में क्या पत्र लिखने के लिये एक बार भी अवसर नहीं मिल सका? कुशल-समाचार का छोटा सा पत्र तो कहीं से भी लिखा जा सकता था। क्या उन का परिवार बहुत अधिक कठिनाई में है? वे इतने समझदार हैं, कुछ न कुछ उपाय कर ही सकते हैं?...नाराज़गी का कारण हो तो क्या सकता है? क्या इस बात से नाराज़ हैं कि परिवार की कठिनाई के समय मेरे साथ थे?...लखनऊ से अवस्थी जी को लिखे पत्र का भी कोई उत्तर नहीं आया।

कनक सोचती गयी—पिता जी कठिनाइयों से परास्त न होने की बात कहते हैं। गरीबी से रहना कौन बड़ी कठिनाई है? अधिकांश लोग ऐसे ही रह रहे हैं। साथ की गली में लोग इस से भी बुरी हालत में हैं, कितनी स्त्रियाँ

गली में ही चूल्हा जला कर खाना पकाती है, गली मे बैठ कर कपड़े धोती है, गली मे सोती है। अब हमारे लिये भी गरीबी ही है। यदि हम सदा से ऐसी ही स्थिति मे होते तो पिता जी को 'वे' अयोग्य क्यो जँचते ?··· वेचारे जाने कैसे दिन काट रहे होगे ?क्या एक पत्र लिख देने के लिये टिकट तक के दाम भी न होगे ?··· कनक का शरीर कॉप गया। सोचा—कल रामप्रकाश को एक पत्र लिख कर अपने यहॉ पहुंच जाने का समाचार देगी और पूछेगी कही से कोई पत्र तो नही आया ? पोस्ती आदमी है। पत्र आया होगा तो रिडाइरेक्ट करना भी भूल सकता है।··· मै तो सदा से कुछ न कुछ काम करना ही चाहती थी।

कनक ने बचपन से ही साहित्य और पत्रकारिता को गम्भीरता से अपनाने की कल्पनाये की थी। इस लक्ष्य के लिये उसे पिता जी ने भी प्रोत्साहित किया था। पुरी ने भी उसे इसी कार्य की दीक्षा दी थी। इसी कार्य मे वह पुरी की सह-धर्मिणी और सह-कर्मिणी बन सकती थी। वह इस काम को अब नही तो कब करेगी ? भाग्य को कौन जानता है ? यदि जीवन अकेले ही बिताना पडा तो भी 'उन का' सिखाया काम करती हुई, उन की स्मृति मे ही जिन्दा रहूगी। कनक अपने एकाकी, कठिन से कठिन जीवन की कल्पना करती हुई सो गयी।

दिल्ली आकर पडित जी के घर का ढंग बदल गया था। अब लडकियॉ दिन चढे देर तक नही सोती रहती थी। ऐसा करने से मॉ किसी को कुछ कहे बिना अकेले सब काम करने लगती थी। तीनों ने पडित जी से और नैयर की मॉ जी से उन्हे जल्दी छः बजे उठा देने के लिये अनुरोध कर दिया था। कंचन उठते ही रात के जूठे रह गये बर्तन मॉजने लग गयी। कांता नानो के और दूसरे लोगो के मैले कपड़े उठा कर नल के नीचे बाल्टी रख कर धोने लगी-। कनक ने दुपट्टे से सिर, नाक-मुंह लपेट कर कोठरियो और आगन मे झाड़ू लगाना आरम्भ कर दिया।

फाटक की ओर से बजरंग के बोलने का स्वर सुनायी दिया, जैसे किसी को भीतर आने से रोक रहा हो।

काता ने पुकारा—"कन्नी, देखना तो कौन है ?"

कनक दुपट्टा सम्भाल कर फाटक की ओर गयी। वह, अखबारों का वोझ बॉह पर सम्भाले एक नौजवान दुबली-पतली, उदास सी लड़की को साथ लिये लौटी।

लड़की ने काता को बडी देख कर सम्बोधन किया—"भैनजी, आप लोग अखवार तो लेती होगी। मै रोज इसी समय दे जाया करू ?"

कांता ने विस्मय से अपना काम छोड़ कर उत्तर दिया—"हाँ, हाँ। बहन आओ, बैठो तो।"

लड़की ने एक अखबार कनक को थमा दिया—"अब किसी दूसरे से लेने की जरूरत नहीं है। रोज दे जाया करूंगी। उधार नहीं दे सकूंगी।"

कांता की सास सामने आ गयी थी। उस ने लड़की को पुकारा—"आ बेटी, जरा बैठ तो। तेरे घर-बार कहाँ है ? किन की लड़की है ? जरा बैठ तो।"

"माँ जी इन बातों से क्या लाभ है, मैं अखबार दे जाया करूंगी।"

पंडित जी ने तुरन्त आगे बढ़ कर लड़की को शाबाशी और आशीर्वाद दिया और अखबार का दाम उस के हाथ पर रख दिया।

लड़की बिना रुके चली गयी। लड़की की बात और चाल से स्पष्ट था कि वह पढ़ी-लिखी, मध्यवर्ग परिवार की थी।

"हम जैसी, हमारी बहनें दौड़-दौड़ कर अखबार भी बेचने लगीं" कांता ने धोती के आंचल से आँखें पोंछ लीं।

"इस में दोष क्या है ?" कनक बोल उठी, "जरूरत हो तो मैं भी तैयार हूँ।"

"शाब्बाश। शेर बेटी है।" पंडित जी तर्जनी उठा कर गर्ज उठे, "ये पंजाब की शेर बेटियाँ हैं। इस कौम को कोई नहीं मार सकेगा। पंजाबीज विल सरवाइव ! हमने देखा—बंगाल के अकाल में, बिहार के जलजले में, पूर्वी बंगाल के दंगों में, यू० पी० की बाढ़ों में जो लोग डिसप्लेस (भागने के लिये विवश) हुये उन्हें हाथ पसार कर माँगते ही देखा। यह है पंजाब की स्पिरिट (जीवट) !" पंडित जी चश्मा उतार कर कमीज से पोंछने लगे।

सब चुप रहे, कांता सिर झुकाये कपड़े धोती रही। कंचन बर्तन माँजती रही। कनक ने सिर दुपट्टे में लपेट लिया था। वह चुपचाप झाड़ू लगाने लगी।

कनक ने रसोई में व्यस्त माँ से, एक प्लेट में नमकीन परोंठा और एक गिलास लस्सी पिता जी के लिये लाकर उन से अकेले में बात की—"पिता जी, मेरी इच्छा है मैं यहाँ किसी अखबार के दफ्तर में काम के लिये यत्न करूं ?"

पंडित जी ने स्वीकार कर लिया—"हाँ हाँ बेटा, क्यों नहीं...."

गांधी जी कलकत्ता से पश्चिम पाकिस्तान में शान्ति-स्थापन का प्रयत्न करने के लिये आये थे परन्तु दिल्ली की अवस्था देख-सुन कर उन का सिर दुःख और लज्जा से झुक गया। भारत में शान्ति स्थापित किये बिना वे पाकिस्तान को क्या कह सकते थे ? गांधी जी ने प्रण कर लिया, दिल्ली में पूर्ण शान्ति स्थापित किये बिना वे दिल्ली नहीं छोड़ेंगे, इस के लिये चाहे प्राण ही दे

देने पड़े। कांग्रेस सरकार ने पूरे नगर में बहुत कड़ा सैनिक नियन्त्रण लागू कर दिया था। उपद्रव की शंका होते ही उपद्रवकारियों को गोली चला कर मार डालने का हुक्म दे दिया गया था। गढवाली और सिख पल्टनों को वदल कर दूर दक्षिण की पल्टनें दिल्ली में तैनात कर दी गयी थीं। यह सिपाही उत्तर के हिन्दू और मुसलमानों में कोई भेद न कर सकते थे।

अधिकांश मुसलमान कैम्पों में चले गये थे। दिल्ली न छोडना चाहने वाले मुसलमानों को उर्दू बाजार, अजमेरी गेट, हौज काजी के मुहल्लों में एकत्र करके, सुरक्षा के लिये उन्हें कड़े सैनिक पहरे में घेर दिया गया था।

स्त्रियाँ और लड़कियाँ आवश्यकता के कारण गली-बाजारों में आने-जाने के लिये विवश थी। परस्पर परिचय न होने के कारण किसी को किसी का लिहाज न था। स्त्रियों से छेडखानी की जाने पर स्वयं पजावियों मे ही झगडे हो जाते थे। कांता, कनक, कंचन वाहर जाती तो नैयर अथवा राजेन्द्र के साथ ही जाती थी।

नौ वजे के लगभग घर के लिये कुछ आवश्यक वस्तुयें ले आने और जरा घूम आने के लिये कनक, कंचन और नैयर वाहर जा रहे थे। घर से निकलते ही कनक नैयर से बोली—"जियाई, आप जालन्धर जा रहे है। आज मेरा काम करा जाइये। यहाँ के बाजारो और रास्तों को जानती नही। दो-चार अखबारों में पूछ कर तो देखें।"

नैयर और कनक सोच रहे थे, किन अखवारो के दफ्तरों में जाकर बात करना उचित होगा। दिल्ली के पुराने जमे हुये सम्मानित अंग्रेजी, उर्दू और हिन्दी के पत्रों के अतिरिक्त लाहौर के 'पैरोकार' और 'सरदार' ने भी एक मास पूर्व दिल्ली से प्रकाशन आरम्भ कर दिया था।

नैयर ने राय दी—"यदि पत्रकारिता को गम्भीरता से अपनाना चाहती हो तो मेरी राय में किसी अंग्रेजी के पत्र मे काम शुरू करो, चाहे कुछ मास अप्रेंटिस (अवैतनिक) भी रहना पड़े।"

कनक ने पूछा—"क्यों ?"

नैयर ने विचार प्रकट किया—"खयाल है, अंग्रेजी पत्रों के दफ्तरों का वातावरण और क्षेत्र कही वेहतर होगा। उर्दू के पत्रों का स्तर वहुत थिथला लगता है। लेडीज के लिये उन लोगों की संगति क्या ठीक होगी ?"

नैयर अंग्रेजी मे वोला था। कनक ने भी अंग्रेजी में विरोध किया—"नानसेंस।" उसे सन्देह हुआ, नैयर पुरी को लक्ष्य करके कह रहा था, "मैं तो ऐसा नही समझती। न मुझे अंग्रेजी पर अधिकार है, न उस में मेरी अभिव्यक्ति

स्वाभाविक हो सकेगी।" वह तर्क करने लगी, "क्या अंग्रेजी द्वारा हमारे सर्व-साधारण तक पहुंच हो सकती है ?"

"आई डोंट नो, लेकिन बिक्री तो अंग्रेजी पत्रों की ही अधिक होती है" नैयर ने अपने विचार का कारण बताया।

"क्षमा कीजिये।" कनक ने उत्तर दिया, "यह तो विदेशी दासता से उत्पन्न विकृत स्थिति है।" और कहा, "बिक्री भी, यदि सब अंग्रेजी पत्रों को और दूसरी भाषाओं के पत्रों को अलग-अलग देखिये तो अंग्रेजी पढ़ने वाले अधिक नहीं होंगे। मुझे तो अपनी भाषा में ही गति है।"

"तुम जानो।" नैयर ने बात समाप्त कर दी।

नैयर कनक को सब से पहले 'पैरोकार' के दफ्तर में ले गया। पैरोकार के सम्पादक कर्मचन्द जी कशिश से कनक का परिचय लाहौर के पुराने देश-भक्त, राजनैतिक नेता पंडित गिरधारीलाल की पुत्री के रूप में कराया। याद दिलाया, आठ-नौ मास पूर्व 'पैरोकार' के एक साप्ताहिक अंक में कनक की एक कहानी और एक अंक में उस का लेख प्रकाशित हुआ था। कनक की अन्य पत्रों में प्रकाशित रचनाओं का भी उल्लेख किया। उस की पत्र में काम करने की इच्छा बतायी। अवसर और सुझाव के लिये अनुरोध किया।

कशिश जी ने पंडित जी से पुराना परिचय प्रकट कर कनक से मिल सकने के लिये प्रसन्नता प्रकट की। उस की रचनाओं की प्रशंसा कर विश्वास दिलाया कि 'पैरोकार' उस की रचनाओं का स्वागत करेगा, उस के लिये क्षेत्र बनाने में सहायता देगा। पंडित जी जैसे आदरणीय व्यक्ति की पुत्री के लिये वे सब कुछ करने के लिये तैयार थे।

"लेकिन" कशिश जी दोनों हाथों के पंजे परस्पर बांधे, कोहनियों को मेज पर टिका कर रहस्य के स्वर में, अंग्रेजी में बोले—"तुम मेरी भी बेटी ही हो। सच कहता हूं, पत्रों के दफ्तर शरीफज़ादियों के लिये मुनासिब जगह नहीं हैं। अपने आदरणीय भाई की बेटी को मैं उस के लिये कभी उत्साहित नहीं करूंगा। सब जवान मर्दों में एक लड़की का बैठना क्या उचित होगा ? इन दफ्तरों में बहुत 'लूज़ टाक, इन्डीसेंट जोक्स (अनर्गल प्रलाप और अभद्र परि-हास) चलते हैं। नॉट फिट फार ए रिस्पेक्टेबल गर्ल ! मेरी तो सलाह है, तुम किसी गर्ल स्कूल में या स्त्रियों में कोई दूसरा सामाजिक काम करो।"

कशिश जी ने सहसा हाथ मेज पर पटक दिया—"मैं तुम्हें एक गुर बताऊं। आई हैव एन आइडिया" उन्हों ने चुटकी बजायी, "तुम कैम्पों में जा कर रिफ्यूजी स्त्रियों से मिलो। उन की आपबीती सुनो और फिर—बिद

ए लिटल इमेजिनेशन (कल्पना का पुट देकर) उन्हें लिख डालो। मैं खुद उन्हें जरा इम्प्रूव (सुधार) कर दूंगा। यह है असली काम, टेलेंट (प्रतिभा) का। पेपर के स्टाफ का काम क्या है; इट इज आल रुटीन वर्क (मक्खी पर मक्खी मारने का काम है)! हम तुम्हारी चीजें लगातार प्रकाशित करेंगे। विश्वास रखो।"

कशिश जी के दफ्तर से बाहर आकर नैयर एक ही शब्द बोला—"रोग (ठग)।"

"मेरे तो मन में आया था, कह दूं" कनक ने जीजा का समर्थन किया, "जहाँ तुम्हारे जैसे लोग हैं, वहाँ भलमनसाहत कैसे हो सकती है?"

दिल्ली के पुराने पत्रों के दफ्तरों में उत्साहवर्धक अनुभव नहीं हुआ। कहीं तीन-चार नौजवान पहले से अवैतनिक (अप्रेंटिस) थे। कहीं काम सीखे-सिखाये लोगों के लिये भी जगह न होने पर नये आदमियों को सिखाने का बोझ उठाने की अनिच्छा थी।

'सरदार' के दफ्तर में सभी कुछ अस्थायी तौर पर जमा लिये गये जुगाड़ जैसा लग रहा था। कच्चे आंगन में टीन और तिरपाल डाल कर छापे की मशीनें चालू कर ली गयी थीं। दूसरी मंजिल के एक चौड़े बराम्दे में और पीछे के कमरे में दो छोटी एक बडी, मामूली तख्ते जोड़ कर बना ली गयी मेजें रख कर दफ्तर बना लिया गया था। एक कोने में पैकिंग के बक्से पर रखा बिजली का पँखा पूरे जोर से चल रहा था। छोटे-मोटे पत्थर-रोड़े और लोहे के जंग लगे टुकड़े मेजों पर पेपरवेट के तौर पर पडे थे। कमरे में दीवार के साथ टेलीप्रिंटर किट-किट, किट-किट चल रहा था।

'सरदार' के स्वामी और संचालक सत्यप्रकाश 'असीर' दफ्तर में नहीं थे। नैयर ने मेज पर मुखिया की तरह बैठे मुख्य सम्पादक का काम निबाहने वाले सेवाराम 'चर्ख' को कनक का परिचय देकर संक्षेप में उस की इच्छा बतायी।

काम-काजी प्रौढ 'चर्ख' जी काम मे विघ्न पड़ने से, सामने जवान लडकी को देख कर भी प्रसन्न नहीं हुये। उन्होंने नैयर और कनक को बैठ जाने के लिये नहीं कहा। खाली कुर्सियाँ या कुर्सियों के लिये स्थान भी न था। चर्ख जी ने होल्डर हाथ में लिये नैयर की बात सुनी। होल्डर को दवात में खड़ा कर अपने लटकते होठों से रेंगने के स्वर में बोले—"हाँ, हाँ, ठीक है पर हमारे तो अपने पुराने आदमियों के लिये भी जगह नहीं है। अखबार का काम तो अक्सर रात में होता है। लड़कियाँ....।"

"साहब आ रहे हैं।" एक चपरासी ने सूचना दी।

खद्दर का बुर्राक सफेद ढीला कुरता, चूड़ीदार पाजामा और नोकदार गांधी टोपी पहने, धूप का चश्मा लगाये, एक सुडौल पुष्ट जवान को देख कर पचपन वर्ष के चर्खे जी और काम करते दूसरे सब लोग उठ खड़े हुये।

'साहब' ऊपर आ तंग, जगह में किसी चीज से छू जाने से बचते हुये, कमरे के बाहर बराम्दे की ओर जा रहे थे। उन्हों ने नैयर और कनक की ओर ध्यान दिया। काले चश्मे के कारण आँखों का भाव प्रकट नहीं था। नैयर ने उन्हें नमस्कार कर मुस्कराहट से अंग्रेजी में पूछ लिया—"मैं आप से एक मिनट बात कर सकता हूं ?"

साहब कनक की ओर देख कर ठिठके। अंग्रेजी में उत्तर दिया—"निश्चय निश्चय, ऊपर मेरे कमरे में आइये।"

ऊपर की मंजिल में छोटे से आंगन के दोनों ओर दो कमरे थे। एक कमरे में दो व्यक्ति एक मेज पर काम कर रहे थे। दूसरे कमरे के दरवाजे पर पर्दा लगी चिक टंगी हुई थी। चिक के साथ छोटी पटिया पर लिखा था—एस० पी० असीर, एडीटर डाइरेक्टर।

चपरासी ने आगे बढ़ कर चिक उठा दी। असीर ने कनक और नैयर को मार्ग दिया—"आइये...।"

छोटे कमरे के फर्श पर दरी थी। एक कोने में नये ढंग की पालिश से चमकती दराजदार मेज, तीन बढ़िया कुर्सियाँ। शेष भाग में चार छोटी आराम कुर्सियाँ और बीच में नीची गोल मेज।

असीर ने अपने हाथ में लिये कागज मैनेजर साहब को दे आने का आदेश चपरासी को दे दिया और नैयर और कनक का अभिप्राय जानना चाहा।

नैयर ने विस्तार से पंडित जी का और कनक का परिचय दिया, संक्षेप में अपना भी और मुस्कान से कनक की पत्र में काम करने की इच्छा की बात कह दी।

असीर ने कनक की योग्यता और उस के लाहौर के जीवन के सम्बन्ध में पूछा। याद दिलाया—"आप शायद ४२-४३ के आन्दोलन में भी भाग ले रही थीं। दरअसल हम ही लोग तो सब कुछ कर रहे थे।" वे कुछ देर मौन रहे। चश्मा उतारने पर उन के भरे हुये चेहरे पर छोटी जान पड़ने वाली आँखों की तीव्रता प्रकट हुयी। कनक को उस की विचारपूर्ण मुद्रा से भरोसा हुआ।

असीर खूब सोच कर अंग्रेजी में बोला—"पत्र के काम में तो बहुत-सी बातें आ जाती है—न्यूज एडीटिंग, प्रूफ रीडिंग, कालम्स, एडीटोरियल। सच बात तो यह है कि यदि प्रूफ रीडिंग, न्यूज सेलेक्शन, और एडीटिंग, ट्रांसलेशन तक

रहना चाहती हैं तो जगह मुश्किल है। यह काम सीखे हुये बीसियों बेकार फिर रहे हैं। उस का लाभ भी क्या है ? अगर उत्साह है और टेलेन्ट है; खैर आप तो फिक्शन राइटर हैं, पर इन कामों में आप की टेलेन्ट समाप्त हो जायगी। इन कामों में फंसेंगी तो इन्हीं के लायक रह जायेंगी। मुझ से तो पिता जी ने यह सब काम अनुभव के लिये करवाये थे। याद रखिये, जर्नलिस्ट की टेलेन्ट का फील्ड अखबार का दफ्तर नहीं है, असली फील्ड तो बाहर है। असली चीज तो है स्थिति को गहराई से देख सकना, बात को ग्रास्प करना (पकड़ना) और फिर बात कहने का ढंग; खबर बनाना, ओपीनियन पैदा करना ! अगर वह करना चाहती हैं तो करिये। संसार प्रसिद्ध पत्रकारों में से, मेरा मतलब है—गुंथर, फिशर, एहरनबुर्ग, पौला हिक्स, इकबाल इन में से कौन पत्रों की नौकरी करता है ? यह लोग दफ्तरों में बैठ जायें तो समाप्त हो जायें ······।"

असीर ने सिगरेट का टिन खोल कर पहले कनक की ओर बढ़ाया—"शौक करती हैं ?"

"धन्यवाद, मैं स्मोक नहीं करती।"

असीर ने एक सिगरेट नैयर को देकर एक स्वयं लगा लिया।

"मैं ऐसा ही काम करना चाहती हूं। आप अवसर दीजिये, सुझाव भी दीजिये।" कनक ने अनुरोध किया।

असीर ने दो कश लेकर स्वीकृति का संकेत किया—"ज़रूर, मैं जरूर सहायता करूंगा। यह तो बहुत अच्छा अवसर है, नित्य ही घटनायें हो रही हैं, समस्यायें है। गांधी जी यहाँ हैं इसलिये खबरों का केंद्र यहां ही है। आप की तरह सम्मानित स्थिति की सुघड़ नवयुवती की पहुंच सुविधा से सब जगह हो सकती है। मैं आप को 'सरदार' के प्रतिनिधि का कार्ड दे दूंगा। आप जो देखें और भांप सकें उसे लिखिये। शरणार्थियों की समस्या भी है। हो सकता है, पहले आप के लिखे में परिवर्तन और काट-छांट की आवश्यकता हो। उसके लिये मैं हाजिर हूं, मिस्टर चर्ख हैं।"

कनक नैयर के साथ 'सरदार' के दफ्तर से लौटी तो मन में उत्साह था। नैयर ने भी उत्साह बढ़ाया—"यह आदमी यदि अवसर और सहायता देता रहे तो तुम्हें लाभ हो सकता है।"

कनक ने कश्मीरी गेट पर किताबों की बड़ी दुकान से एक पुस्तक खरीद ली—'राइटिंग फार प्रेस' पंडित जी ने सुना तो स्वयं भी क्रियात्मक सुझाव दिये—तुम पेपर में 'अराउंड दि मैट्रोपोलिस—'नगर का चक्कर—पढ़ा करो, 'टापिक्स एंड ट्रेंड्स' को देखा करो।

कनक संध्या समय पंडित जी के साथ गांधी जी की प्रार्थना में गयी थी। गांधी जी सहृदयता, सहिष्णुता और उदारता के प्रचार के लिये अपनी संध्या प्रार्थनायें दिल्ली के भिन्न-भिन्न भागों में कर रहे थे। प्रार्थना रेडियो और लाउडस्पीकरों द्वारा पूरे नगर में सभी जगह सुनी जा सकती थीं परन्तु कनक गांधी जी के दर्शन और प्रार्थना के वातावरण को प्रत्यक्ष जानने के लिये उस संध्या पंडित जी के साथ करोलबाग गयी थी।

प्रार्थना के स्थान पर एक ओर कुछ बुर्कापोश मसलमान स्त्रियां और कुछ मुसलमान मर्द भी, सुरक्षा के लिये स्वयं-सेवकों से घिरे खड़े थे। अधिकांश लोग श्रोताओं के लिये बिछाई गयी दरियों पर न बैठ कर आस-पास घूम कर क्रोध प्रकट कर रहे थे—प्रार्थना क्या ढोंग है। गांधी मुसलमानों का हौसला बढ़ाने के लिये आ रहा है।

गांधी जी, उनकी पोतियां और उनके साथ के लोग चार मोटरों में आये। गांधी जी के गाड़ी से उतरते ही स्वयं-सेवकों ने उनके चारों ओर एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर, गांधी जी के चरण स्पर्श के लिये आतुर लोगों के आक्रमण से उन्हें बचा लिया।

गांधी जी के शरीर पर केवल कमर में घुटनों से ऊपर ही छोटी सी धोती थी। गर्दन झुकी हुई और चेहरा बहुत उदास था। उपस्थित लोगों में केवल वे ही बिना कपड़ों के थे; सबसे भिन्न! उन्हें पहचानने के लिये किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं थी। दुबला, गठीला, गहरा सांवला शरीर सुडौल, सुरूप और सुवर्ण न होकर भी भव्य जान पड़ रहा था। कनक ने श्रद्धा का रोमांच अनुभव किया।

गांधी जी को घेरे हुये स्वयं-सेवकों ने शेष श्रद्धालुओं को रोक कर मुस्लिम स्त्रियों के लिये रास्ता दे दिया। बुर्कापोश स्त्रियां गांधी जी के घुटनों से लिपट, बिलख-बिलख कर रो पड़ीं। गांधी जी के नेत्रों से आंसू टपकने लगे। उन्हों ने स्त्रियों के बुर्कों से ढंके सिरों पर करुणा का हाथ रखकर अल्लाह-ईश्वर का भरोसा करने के लिये कहा और प्राणपन से उनकी रक्षा करने का आश्वासन दिया।

एक मुस्लिम स्त्री ने एक दूध पीता बच्चा गांधी जी के सामने करके, रो-रोकर बताया—"यह यतीम हो गया। इसके जवान माता-पिता दोनों क़त्ल हो गये हैं।"

गांधी जी ने बालक को हृदय से लगाकर उसके कल्याण के लिये ईश्वर से प्रार्थना की।

गाधी जी और उनके साथियों ने गीता के श्लोकों से प्रार्थना आरम्भ की। गीता के श्लोको के पश्चात् 'गुरू ग्रन्थ साहब' से वाणी पढ़ी गयी। उस के पश्चात् 'कुरानशरीफ' से आयतो की तलावत शुरू हुई।

"बंद करो! गाधी मुरदाबाद! हो! हो! हो! बंद करो! बंद करो! कुरान को बंद करो! गाधी मुरदाबाद! कुरान नही पढा जायेगा। हम नही पढने देगे।"

भयकर कोलाहल मच गया। जान पडता था भीड सब कुछ रौद डालेगी, तोड़-फोड डालेगी।

प्रार्थना के लिये बैठे हुये बहुत से लोगो ने पुकारा—'चुप रहिये! शात रहिये! शेम! शेम!"

गाधीजी मौन निश्चल हो गये थे। उनका चेहरा अवसाद की प्रतिमा जान पड रहा था। उनके साथी भी मौन होगये।

कनक को भीड की अभद्रता असह्य हो रही थी। पडित जी ने खेद और ग्लानि प्रकट की—"च्च-च्च-च्च? शेम! शेम! ओफ!"

गाधी जी ने दोनो हाथ जोड़कर भीड़ से शात होकर सुनने के लिये अनुरोध किया।

विरोध मे उत्तेजना से उबलती भीड़ गाधी जी के संकेत की अवहेलना न कर सकी। शनैः-शनै. शाति हो गयी।

"भाइयो और बहनो!" गाधी जी का सन्ताप, करुणा और आत्म-विश्वास से भरा स्वर सुनायी दिया, "इस दु ख और मुसीबत मे हमे भगवान पर विश्वास ही सहारा दे सकता है। ईश्वर या अल्लाह तो एक है। उसे किसी भी धर्म की पुस्तक से याद करने मे क्या एतराज और क्रोध हो सकता है ......"

"हम कुरान की आयते हरगिज नही सुनेगे!" भीड़ मे से कुछ लोगो ने क्रोध से आपत्ति की, "इन आयतो को पढ कर हमारे हजारों भाइयों का कत्ल किया गया है। इन आयतों को पढने वालो ने हमारी माँ-बहनो पर बलात्कार किया है। आप अहिंसा और किसी का दिल न दुखाने का उपदेश देते है। आप यह आयतें सुना कर हमारे भाइयों और बच्चों के कत्ल और हमारी माँ-बहनो की बेइज्जती की याद दिला रहे है, हमारे दिलों को दुखा रहे हैं। हम इसे हरगिज बरदाश्त नही करेंगे।" बोलने वालों के चीत्कार मे पीड़ितों का क्रोध, प्रतिशोध के लिये हुंकार रहा था। यह हुंकार क्रोध और पीड़ा का चीत्कार था। भीड़ स्तब्ध हो गयी। विघ्न डालने वालों के प्रति शेम! शेम! पुकार कर ग्लानि प्रकट करने वाले भी स्तब्ध रह गये।

कनक मूढ़ता अनुभव कर रही थी। उस के मस्तिष्क में अन्याय के विरोध, प्रतिहिंसा और सहिष्णुता का द्वंद्व-भँवर उठ खड़ा हुआ—इसका क्या उत्तर है? क्या समाधान है? वह आशा से गांधी जी की ओर टकटकी लगाये थी।

गांधी जी निर्भय स्वर में बोले—"कुछ भाइयों को कुरान शरीफ की आयतें पढ़ी जाने में आपत्ति है। मैं उन के दिल नहीं दुखाना चाहता लेकिन अगर प्रार्थना में मैं कुरान शरीफ की तलावत नहीं कर सकता तो प्रार्थना में दूसरी धर्म-पुस्तकों का भी पाठ नहीं करूंगा।"

"कोई जरूरत नहीं! बेशक मत करो!" भीड़ ने उपेक्षापूर्ण विरोध में ललकारा।

"मैं अपने हिन्दू और सिख भाई-बहनों से इंसानियत के नाम पर प्रार्थना करता हूं" गांधी जी भीड़ के शान्त हो जाने पर बोले, "दिल्ली में मौजूद सब मुसलमान भाई और बहनें हमारी और हिन्द-सरकार की जमानत हैं। अगर उन का रोम भी दुखता है या उन के लिये किसी किस्म का खतरा रहता है तो यह हमारा सब से बड़ा अपराध होगा, हमारे लिये निहायत शर्म की बात होगी…।"

"पाकिस्तान में अब भी रोज हजारों हिन्दू काटे जा रहे हैं। उन्हें लूट कर नंगा कर के निकाला जा रहा है। आप को उन का कोई दरद नहीं है? आप वहाँ क्यों नहीं जाते?" विरोधियों ने ललकारा।

गांधी जी ने हाथ जोड़ कर सुनने का अनुरोध किया—"मेरे दिल में पाकिस्तान में मारे जाने वाले और पाकिस्तान से निकाले जाने वाले अपने भाई-बहनों के लिये भी उतना ही दरद है। मैं पाकिस्तान जाना चाहता हूं और जाऊंगा। मैं कायदे आज़म के सामने हाथ जोड़ कर दया और शान्ति के लिये प्रार्थना करूंगा। मैं उन से कहूंगा कि इस कत्ल और खून को बन्द करायें, अमन कायम करायें। हिन्दू भाई-बहनें फिर अपने घरों में लौट कर शान्ति से निर्भय रह सकें लेकिन उस से पहले यहाँ से गये मुसलमानों का लौट आना जरूरी है। जब तक दिल्ली और हिन्दुस्तान में मुसलमानों के लिये खतरा मौजूद है, मैं किस मुंह से पाकिस्तान गवर्नमेण्ट पर कत्लो-खून और बदअमनी के लिये दोष लगा सकता हूं; किस मुंह से उन्हें शान्ति कायम करने के लिये कह सकता हूं? मैं हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों जगह शान्ति और अमन कायम करने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा रहा हूं।"

लौटते समय कनक का मन क्षुब्ध था। पंडित जी मौन, सिर झुकाये चल रहे थे। कनक गर्दन झुकाये पिता के साथ चलते हुये सहसा बोल उठी—"बदले

मे तो शत्रुता का अन्त नही हो सकता, पुरी जी ने यही बात मार्च में लिखी थी और उन्हें नौकरी से हटा दिया गया था।"

"बिलकुल ठीक है बेटी !" पिता स्वीकार कर मौन रह गये।

,

असीर चौथे पहर अपने दफ्तर मे मौजूद थे। उन्होने कनक का लेख ले, उसे आराम कुर्सी पर बैठ कर प्रतीक्षा करने के लिये कह दिया। वे प्राय दस मिनट व्यस्त रहे फिर घण्टी का बटन दबाया। चपरासी के भीतर आने पर उन्हो ने हुक्म दिया—"यह कागज मैनेजर को, यह एडीटर को"!" असीर कनक की ओर घूम गये। उस के लिखे कागजो को गिन कर बोले, "चार मिनट" और पढने लगे।

असीर ने कनक का लिखा पढ कर फिर घण्टी बजा दी। चपरासी के आने पर बोले–"चाय" और अपनी कुर्सी से उठ कर कनक के सामने आराम कुर्सी पर आ बैठे।

"शैली आप की बहुत जोरदार है" असीर अग्रेजी मे बोले, "परन्तु दृष्टिकोण ठीक नही। यह गलत राजनीति है। हिन्दुओ के लिये यह आत्म-घात का दृष्टिकोण है। गाधी के कारण हम लोग बहुत हानियाँ उठा चुके है।"

कनक ने हाथ के छोटे रूमाल को हथेलियो मे दबाते हुये, असीर को अप्रसन्न न करने के लिये कुछ सोच कर अंग्रेजी मे ही कहा–"मैने तो मानवता का दृष्टिकोण लिया है। मैने स्वय उन स्त्रियो को बिलख-बिलख कर रोते देखा है। गाधी जी की आँखो से आँसू गिर रहे थे…'

"कितने हजार हिन्दू स्त्रियाँ, उन बुर्कापोश स्त्रियो से बुरी हालत मे, कैम्पो मे मौजूद हे। उन्हें रहने के लिये कोई जगह चाहिये या नही ? कल यही औरते और इन के भाई पाकिस्तान माँग रहे थे; गाधी को नही मालूम ? जहाँ वह सहिष्णुता का उपदेश दे रहा था, उसी करोलबाग मे मुसलमानो ने मशीनगनो और स्टेनगनो मे हिन्दुओ पर हमला किया था। डाक्टर नीलाम्बर जोशी उसी करोलबाग मे कत्ल हुआ हे। गाधी को डाक्टर जोशी याद नही आया ? नीलाम्बर जोशी हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का सब से बड़ा सर्जन ! दुनिया के गिने-चुने पाँच-दस सर्जनो मे मशहूर सर्जन ! उस का कत्ल मानवता का कत्ल नही है ? और किस ने मारा नीलाम्बर को ? किसी अनजान-बेसमझ आदमी ने नही ? खुद एक मुसलमान डाक्टर ने, जो उस के ही हस्पताल मे काम कर रहा था। यह है इस्लाम की तहजीब और इस्लाम की मानवता। वह मजहब जो हर गैर-मुस्लिम को कत्ल करना मजहबी फर्ज समझता है। जिस

ने मजहबी फर्ज के नाम पर श्रद्धानन्द, लेखराम, राजपाल का कत्ल किया। गांधी उस के लिये सहिष्णुता का उपदेश देता है। यह नयी बात नहीं है, संस्कृति और मानवता के तो यह लोग हमेशा दुश्मन रहे हैं, कोई भी पुराना मन्दिर जाकर देख लो।"

"वे तो बीती हुई बातें हैं। मेरा अभिप्राय है कि उन स्थितियों से हम आगे बढ़ चुके हैं। हिन्दू-मुस्लिम छोड़ कर मानव को भी तो···।"

"असीर के माथे पर बल पड़ गये, पूछ लिया—"तुम कम्युनिस्ट हो ?"

"नहीं, मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं। कैसे खयाल आया आप को ?"

"पी० सी० जोशी, कम्युनिस्टों का लीडर गया था न परसों गांधी के पास। कह रहा था हम 'होम गार्ड' बना कर मुसलमानों की रक्षा करेंगे। पहले इन लोगों ने '४२ में गद्दारी की, फिर जिन्ना का समर्थन किया, अब गांधी के 'होम गार्ड' बनेंगे।" 22187

चपरासी ने एक किश्ती में चाय और दो प्याले लाकर तिपाई पर रख दिये।

असीर ने जेब से चाबी निकाल कर चपरासी की ओर फेंक दी। चपरासी ने आलमारी से बिस्कुटों का पैकट निकाल कर ट्रे में रख दिया।

"मैं चाय बनाऊं आप के लिये ?" कनक ने पूछा।

"यह तो आप का प्रिविलिज (अधिकार) है, अपने लिये भी।"

असीर चाय घूंट भरने लायक होने की प्रतीक्षा में फिर अंग्रेजी में बोले—"आप की शैली में रिपोर्टिंग के बजाय फिक्शन का (विवरण के बजाय कथा का) रंग ज्यादा है या भावुक नवयुवती का भावोन्मेष।" असीर मुस्करा दिये।

"जी, मेरी तीन कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। जय पुरी जी ने भी बहुत पसन्द की थीं। मैंने उन से ही लिखना सीखा था।"

"जय पुरी; वह पैरोकार वाला ? सचमुच बहुत अच्छा लिखता था। जानता हूं।"

"क्या यहाँ दिल्ली में ही हैं ?" कनक ने आतुरता से पूछा।

"मालूम नहीं। किसी अखबार में ही होगा; इफ अलाइव !"

कनक को बहुत बुरा लगा। मौन रह गयी।

असीर चाय पीते हुये फिर समझाने लगे—"कहानी की बात दूसरी है। उस में यह सब चल सकता है परन्तु पत्र का काम तो जनमत तैयार करना है। आप की लिखी घटना को हम छापेंगे लेकिन दूसरी तरह। कल 'सरदार' में देखियेगा—हरवंस !"

चपरासी के आने पर असीर ने आदेश दिया—"यह कागज चर्ख जी को

दे आओ। मेज पर से एक स्लिप और कलम दो।"

असीर ने स्लिप पर दो लाइनें लिखकर कनक के लेख के साथ चपरासी को थमा दिया और पांच का नोट चपरासी की ओर वढ़ाकर कहा—"एक टिन गोल्डफ्लेक ले आना।"

असीर चाय पीते हुये बोले--"आप तो सिविक प्राब्लम्स (नागरिक समस्याओं) को लीजिये। आप जैसी एजूकेटिड और स्मार्ट यंग लेडी के लिये तो बहुत स्कोप है। आप आफिशल सर्कल में गवर्नेंट न्यूज पर ध्यान दीजिये। मैं आप को इंट्रोड्यूस (जान-पहचान) करवा सकता हूं। क्या राय है?"

"आपकी बड़ी कृपा होगी। आप के लिये एक प्याला और बना दूं?"

"जरूर, अपने लिये भी?"

असीर के लिये चाय बनाकर कनक ने क्षमा चाही—"मेरे लिये काफी होगयी।"

असीर के प्याला समाप्त कर लेने पर कनक ने कहा--"अब आज्ञा दीजिये, बहुत दूर जाना है। देर होजायगी।"

"मकान कहाँ लिया है?"

"फ़ैज़ बाजार के पीछे की गली में है।"

"आपका टाइम मैं पूरा कर दूंगा। मुझे नई दिल्ली जाना है। आई विल गिव यू ए लिफ्ट।"

"आप को व्यर्थ परेशानी होगी।"

"नाट-एटाल। आपके पिताजी का तो प्रेस था न?"

"जी हां, सब रह गया ग्वालमंडी में ही।"

"हम तो सब ले आये लेकिन आसान नहीं था। एक हज़ार रुपया देना पड़ा पुलिस को वर्ना तीस-चालीस हजार की मशीनें चली जातीं। इस जगह के लिये भी पांच हजार पगड़ी दी है और एक सौ रुपया माहवार किराया। देख लीजिये जगह? यह है हिन्दू भाइयों की मेहरबानी! डैम राटन स्का....."

चपरासी सिगरेट का नया डिब्बा ले आया था। असीर ने डिब्बे का ढक्कन घुमाकर काटा। एक सिगरेट ऊपर उठा कर कनक की ओर वढ़ा दिया--"पहला सिगरेट आप लीजिये। इट इज़ आलवेज़ टू वेस्ट।"

कनक को अच्छा नहीं लगा। तीन दिन पहले वह सिगरेट न पीने की बात कह चुकी थी। परिस्थिति के अनुसार शिष्टाचार की मुस्कान से क्षमा मांगी—"थैंक्यू, मैं नहीं पीती हूं।"

"रियली; कभी भी नहीं? कम्पनी में या चाय के बाद भी नहीं?"

असीर ने सिगरेट सुलगा लिया।

"जी नहीं। कभी ट्राई नहीं किया।"

"ट्राई करने में हर्ज भी क्या है। यहां तो अपर सोसायटी में लेडीज़ को अक्सर पीते देखा है। नाओ इट इज़ क्वाइट कामन (अब तो साधारण बात है) दो महीने में कितना चेंज आगया है ? पुराने बंधन और आधार रहे ही नहीं। नयी दुनिया में नये व्यवहार आरहे हैं। सब से बड़ी जरूरत और जिम्मेवारी है, अपने कदम जमा सकना।'

"सचमुच बड़ा कठिन स्ट्रगल है।"

"हरबंस" असीर ने चपरासी को फिर पुकार कर कहा, "मैनेजर साहब से कहो डाक दे दें, हम जायंगे।"

असीर ने पांच मिनट में टाइप किये हुये पत्रों पर नजर डाली। दस्तखत किये और कनक के साथ नीचे उतर गये।

सड़क पर टांगों-मोटरों की बहुत अधिक भीड़ थी। पैदल चलने वाले इतने थे कि फुटपाथ पर समा ही नहीं सकते थे। कनक बार-बार सिहर उठती थी, यह आदमी गाड़ी के नीचे आया या गाड़ी इस ट्रक के नीचे गई। असीर गाड़ी को बिना झिझक तेजी से घुमाते, बचाते चले जा रहे थे।

कनक को प्रशंसा में कहना पड़ा—"आप तो बहुत कान्फिडेंस (विश्वास) से ड्राइव करते हैं। मार्वेलस (चमत्कार)। इतनी स्मूथली (सरलता से) गियर बदलते है, पता ही नहीं लगता।"

"यू ड्राइव ? (तुम भी चला लेती हो ?)"

"नो नो ! हमारे यहाँ गाड़ी नही थी। बहनजी की गाड़ी में जरा सीखा था। सड़क बिल्कुल सूनी हो तब भी डर लगता है।"

"आप तो हमारे लिये 'सोसायटी-न्यूज' और 'सोसायटी-गासिप' ढंग की चीजें लिखिये। आपको मैं इन्ट्रोड्यूस करवा दूंगा" असीर बात ी करते जा रहे थे। उन्होंने कनक को फैज़ बाजार में उतारा तो और कुछ लिख कर लाने के लिये याद दिला दिया।

असीर से पहली मुलाकात में कनक ने जो उत्साह और आशा पायी थी वह पांच-छः सप्ताह के अनुभव से क्षीण होती जा रही थी। 'सरदार' में उसके पांच लेख छप चुके थे। करोलबाग़ में गांधी जी की प्रार्थना पर लिखे लेख में उसकी घटनाओं और वर्णन की शैली को लेकर निष्कर्षों को बिल्कुल बदल दिया गया था। शरणार्थियों की अवस्था पर लिखे लेख ठीक से छप

गये थे परन्तु कनक के नाम के स्थान पर 'अज़ खासनामा निगार' (विशेष संवाददाता) द्वारा छापा गया था। इस काम के पारिश्रमिक के लिये वह असीर की सज्जनता पर ही भरोसा किये थी।

कनक को असीर का अधिकाधिक निस्संकोच होते जाना भी अच्छा नहीं लग रहा था। बार-बार इंकार कर देने पर भी सिगरेट आफर करने का आग्रह, जीना उतरते या चढ़ते समय सहारा देने के लिये कमर पर हाथ रखने लगना। कनक को संकोच और गिलगिली सी अनुभव होती थी, जैसे छिपकली या मकड़ी शरीर को छू रही हो।

कनक अपने विचार में निधड़क थी। उसे रूढ़ियों की परवाह नहीं थी। असीर के साथ 'चेम्सफोर्ड-क्लब' में जाने पर उसे लगा, अभी तक बहुत वह संकीर्ण जगत में ही थी। उसे ऊंचे स्तर के लोगों के विचारों और व्यवहारों का परिचय ही न था।...सिगरेट और ड्रिंक्स (शराब) तो सत्कार की साधारण वस्तुयें है। इन्हें स्वीकार कर लेने में स्त्रियों और पुरुषों के लिये भिन्न-भिन्न मान्यतायें क्यों हों ? बातचीत करते समय पुरुषों के स्पर्श से सकुचाना या आंखों और होठों से भाव-भंगिमा प्रकट न कर सकना फूहड़पन नहीं तो क्या है ? वह ड्योढ़ी और गली के संसार में सीमित रहने वाली स्त्रियों की अपेक्षा अपने आप को स्वतंत्र और समर्थ समझती थी। इस स्तर के सम्मुख उसे अपनी न्यूनता जान पड़ी। कनक उस संध्या क्लब में सुनी बातचीत के कारण साम्प्रदायिक सहिष्णुता अथवा भारत में मुसलमानों के अधिकार अथवा उनके लिये सम-स्थान की समस्या पर गहरी उलझन में पड़ गई थी।

क्लब के वातावरण में बहुत उत्तेजना थी। काश्मीर, बारामूला, पाकिस्तान 'ऊड़ी' पट्टन आदि शब्द गूंज रहे थे। मिस्टर सिन्हा ने गांधी जी के प्रति क्रोध से उबल कर इतने जोर से मेज पर हाथ मारा था कि गिलास गिरते-गिरते बचे थे। उन्हें क्रोध था कि ऐसे संकट की अवस्था में गांधी जी मुसलमानों को दिल्ली और भारत में से न निकालने देकर देश के गले पर छुरी चला रहे हैं वे बोले—"अगर हमारी सेना ने बारामूला पर पाकिस्तान की मेकेनाइज़्ड (यंत्र सज्जित) सेना को रोक न लिया होता तो श्रीनगर पर निश्चय पाकिस्तान का कब्जा हो जाता। मेजर सोनी कह रहा है कि ब्रिटिश अफसर पाकिस्तानी आर्मी और रेडर्स को खुले आम कमांड कर रहे हैं। ऐसी हालत में अगर यहां मुसलमान साबोटाज करने लगें तो ? मुसलमान तो यहां केवल अवसर की प्रतीक्षा में हैं......"

"साबोटाज ?" असीर बोला, "साबोटाज क्या, यह लोग तो कूप (सहसा विप्लव) से दिल्ली पर कब्जा करने के प्लान बनाये हुये थे। उनके घरों से फौजी बमों, राइफलों, मशीनगनों के जखीरे पकड़े गये हैं। सर्दार पटेल ने गांधी को सबूत दिये हैं पर वह मानता ही नहीं। पटेल बिल्कुल ठीक कहता है, हम ओवर नाइट नेशनलिस्ट (रात भर में राष्ट्रवादी) बन जाने वाले मुसलमानों का भरोसा कैसे कर लें।"

मिसेज बलूजा ने एक कश खींच, धुआँ छोड़ देने के लिये गहरे रंगे होंठ खोलकर अपने मोती जैसे दांतों की झलक दिखा दी और पेंसिल से बनी भवें उठाकर बोली—"यस, हाओ डेंजरस; इजंट इट ?" उसने अपना सिगरेट सिन्हा के धुएं की तार छोड़ते सिगरेट के समीप एशट्रे पर रख दिया और छोटे गिलास में 'शेरी' का अंतिम घूंट ले लिया।

असीर ने समीप से जाते बैरे को कह दिया—"एक शैरी ओर।" फिर बैरे को रोककर मिसेज बलूजा से पूछ लिया, "या छोटा ह्विस्की ? ह्वाई नाट ?"

"अच्छा चलने दीजिये आपका साथ दूंगी।" मिसेज बलूजा हंस दी और बोली, "गांधी तो हम लोगों को मरवा डालने पर तुला हैं। जानते है, कनाट प्लेस वाले मामने में ? ......अजी वह तो इस बात पर तुला बैठा था कि सरकार रिफ्यूजियों को निकाल कर मसजिद को फिर से बनवा दे। यह तो पटेल की हिम्मत है, उसने मामला रफा-दफा कर दिया। वी कांट डिपेंड आन गांधी।"

सिन्हा ने एशट्रे से सिगरेट उठाया तो उसके हाथ मे मिसेज बलूजा का सिगरेट आगया। सिगरेट का लिपस्टिक से रंगा सिरा लाल दिखाई दे रहा था। कनक भूल सुझा देने को ही थी कि देखा, उन की आँखें मिल गयी थीं। मिसेज बलूजा के होठों पर मुस्कान आगयी थी। कनक चुप रह गई।

असीर ने क्रोध प्रकट किया—"इस समय हजारों रिफ्यूजी मसजिदों, मकबरों में; मसजिदों में क्या पुराने किले के खडहरों में भी जहाँ गीदड़ और चमगादड़ भरे रहते थे, सिर छिपाये है। गरीबों ने कब्रें उखाड़-उखाड़ कर किसी तरह सिर पर साया बनाया है। गांधी कहता है, मसजिदों-मकबरो से सब को निकाल दो। लोगों की जान बचाना जरूरी है कि उजाड़-खाली मसजिदों को सिजदा करना जरूरी है ? गांधी को मुसलमानों के फिनेटिक सेंटीमेंट का ख्याल है, हिन्दुओ की जान का कोई खयाल नही ?"

मिसेज बलूजा ने नये गिलास से घूंट भरा तो असीर और सिन्हा ने भी

उसका साथ दिया। मिसेज बलूजा ने घूंट भरकर कहा--"हिन्दुओं को तो पटेल ही बचाये है। गांधी और नेहरू तो हमें मरवा डालते ?"

असीर ने व्यंग मुस्कान से समर्थन किया--"अरे भाई, नेहरू को मुसलमानों के लिये सहानुभूति होनी ही चाहिये। उसी कल्चर मे पला है।"

सिन्हा फिर उत्तेजित होगया--"खबर रोक दी गयी है, इसने पूर्व बिहार में, मुसलमानों को खत्म करने वालों गावों पर हवाई-जहाज से बम गिरवाये है। सैकड़ों हिन्दू मारे गये है। मै कहता हू।" सिन्हा ने फिर मेज पर हाथ पटका, "गाधी पूर्वी बिहार में जाकर देखे। जिन्दा लौट आये तो कहना...। उन की यह हरकते है और पाकिस्तान बढ़ा चला आरहा है ? और यहाँ ये उस के एजेटो को पनाह दे रहे है। मुसलमान का मजहब ही ऐसा है, वह कभी नेशनलिस्ट और पैट्रियाटिक (राष्ट्र और देश का भक्त) हो नही सकता। मैंने खुद हसरत मोहानी को कानपुर मे आम जलसे में एलान करते सुना है..."

"इनके इकबाल ने क्या कहा है ?" असीर ने टोक दिया, "मुस्लिम है हम, वतन सारा जहॉं हमारा !--हिन्दुस्तान को छोड़ेंगे ?"

कनक का मन यह बातें सुनकर बहुत भारी हो गया। राष्ट्र-विरोध को कैसे सहा जा सकता था ? राष्ट्र के लिये सँकट था। राष्ट्र के प्रति जोखिम नही सही जा सकती थी। जोखिम के प्रति सतर्क होने का विरोध कैसे कियां जा सकता था ......?

क्लब से लौटने से पहले असीर ने, सिन्हा से कनक का परिचय देते समय अधूरी छोड़ दी बात को फिर उठाया--"कनक जी की कलम में बहुत जोर है। पंजाब के बहुत पुराने क्रान्तिकारी, आदरणीय राजनैतिक कार्यकर्ता की पुत्री है।...इनका बहुत नुकसान हुआ है, मकान और बहुत बड़ा प्रेस लाहौर में रह गये है। 'सरदार' में इनके छः-सात, कनक जी; कितने छः मजमून शाया हुये है। लोगों ने बेहद पसंद किये है।"

"सर्टनली, इनकी हेल्प करना तो हमारा फर्ज है।" सिन्हा ने स्वीकार किया।

पंडित गिरधारीलाल जी राजनैतिक कारणों से भी सिद्धान्त से च्युत हो जाना उचित नही समझते थे। वे राजनीति को क्षणिक और सिद्धान्त को स्थायी समझते थे। वे गांधी जी और पंडित नेहरू की नीति के समर्थक थे। उन का कहना था—"जब इण्डिया को सिक्यूलर स्टेट (धर्म निरपेक्ष राज्य) माना है तो प्रजा मे हिन्दू-मुस्लिम के आधार पर भेद करने की, मुसलमानो

को वर्दाश्त न करने की पालिसी असूलन गलत है। हम ट्रेटरों (देशद्रोहियों) को वर्दाश्त नहीं करेंगे लेकिन मजहब से ट्रेटर का इम्तयाज़ (निर्णय) गलत बात है। हिस्ट्री में क्या हिन्दू ट्रेटर नहीं हुये ? यह मजहबी इस्तआल का जहर मुल्क को खतम कर देगा। मेरे भाई, अभी से सिक्खिस्तान की बातें सुनायी देने लगीं हैं। खुदा जाने आइन्दा क्या होगा ? अगर मजहब को पालिटिक्स की बुनियाद बना लिया गया तो, सिक्ख, आर्यसमाजी, सनातनी, जैनी सब अलग हक माँगेंगे। मेरे भाई, मैंने तो पंजाब में सनातनियों और आर्यसमाजियों को भी एक दूसरे के सिर तोड़ते देखा है...।"

कनक को पिता का दृष्टिकोण ठीक जँचता था। मन में आता, इस समय पुरी जी यहाँ होते तो किसी पत्र में इस समस्या पर बहुत अच्छा प्रकाश डाल सकते थे। कनक के मन में पुरी की स्मृति व त उग्र रूप में जाग उठी थी। लखनऊ में अवस्थी जी के नाम लिखे पत्र का उत्तर उसे मिल गया था। उत्तर मिसेज पन्त ने दिया था। कुछ ही पंक्तियाँ थीं परन्तु सान्त्वनापूर्ण थीं :—

"....आप के पहले पत्र का उत्तर हम ने नैनीताल के पते पर दिया था। शायद आप को मिला नहीं। आप यहाँ आयेंगी तो जो भी सम्भव होगा, किया जायेगा। आप आयें तो हमारे यहाँ ही ठहरें ..।"

कनक को चिन्ता हो गयी—लखनऊ से आया उत्तर रामप्रकाश ने रिडाइरेक्ट नहीं किया। शायद पुरी जी का भी पत्र आया होगा और उस ने रिडाइरेक्ट नहीं किया। उस पत्र में उन्हों ने अपना पता जरूर लिखा होगा। उत्तर न पाकर अब वे क्या लिखेंगे ? कनक ने उतावली में एक पत्र नैनीताल के पोस्टमास्टर को लिख दिया कि विमल विला के पते पर कोई पत्र आया हो तो नया हिन्द प्रेस, दिल्ली के पते पर भेज दें।

कनक ने विचार-भेद के कारण दिल्ली में पत्रकारिता के क्षेत्र में अपने लिये स्थान न देख कर और लखनऊ में अवसर की आशा पाकर पिता जी से लखनऊ चले जाने की बात की। पंडित जी ने सिद्धान्त रूप से कनक के विचार का विरोध न कर उसे धैर्य से दिल्ली में ही यत्न करने की सलाह दी—"बेटी, डेढ़ महीना होता ही क्या है। लोग तो साल डेढ़ साल अप्रेंटिस रह जाते हैं तब कहीं जाकर जगह मिलती है। लाइफ इज ए स्ट्रगल।"

बुधवार ५ नवम्बर (१९४७) के पत्रों में उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री का एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ था—"हिन्दू-मुसलमान दो पृथक जातियों अथवा राष्ट्रों के सिद्धान्त में विश्वास करने वाले लोगों के लिये हमारे राज्य में स्थान

नहीं है। किसी व्यक्ति के मुसलमान होने के कारण राज्य से निकाल देने का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता और न अपने आप को भारतीय न समझने वाले व्यक्तियों को देश में रहने दिया जा सकता है।"

मुख्य मन्त्री ने पाकिस्तान सरकार के एक तार का भी उल्लेख किया था। पाकिस्तान सरकार ने उत्तर प्रदेश सरकार से एक तार द्वारा राज्य मे मुसलमानों की स्थिति के विषय में पूछा था। उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री का उत्तर था—"उत्तर प्रदेश की स्थिति के विषय में प्रश्न करने का अधिकार उत्तर प्रदेश की जनता को है अथवा भारत सरकार को है। अन्य किसी देश को नही। पाकिस्तान द्वारा काश्मीर पर आक्रमण कर दिया जाने की अवस्था मे हम उन के किसी भी प्रश्न पर ध्यान देने के लिये तैयार नहीं है।"

मुस्लिम लीग के डिपुटी लीडर मिस्टर लारी का भी वक्तव्य था—"जिस मुस्लिम लीग के प्रधान मिस्टर मुहम्मदअली जिन्ना थे, उस मुस्लिम लीग का अब भारत में कोई अस्तित्व या अधिकार शेष नहीं है।"

पंडित जी को यह बयान बहुत पसन्द आये थे। वे उत्तर प्रदेश के लोगों के गम्भीर स्वभाव की प्रशंसा करने लगे। कनक ने तुरन्त लखनऊ जा सकने की अनुमति माँगी। पंडित जी ने कह दिया—"बेटी, एतराज कुछ भी नही है पर यह जरा सोचने-समझने की बात है। इस एतवार महेन्द्र जालन्धर से आयेगा। उस की भी राय ले लें; जल्दी क्या है?"

बिहार, उत्तर प्रदेश और दिल्ली के नेशनलिस्ट मुसलमानों के एक प्रतिनिधि मण्डल ने बिड़ला भवन में गांधी जी के समीप आकर दुहाई दी थी कि मुस्लिमों का पाकिस्तान भेजा जाना रोक दिया जाये। सरकार उन के भारत मे ही निर्भय होकर रहने का प्रबन्ध करे।

गांधी जी ने इस सम्बन्ध मे अपनी संध्या-प्रार्थना में, रेडियो पर बिड़ला भवन से बहुत द्रावक और जोरदार अपील की थी—"...जो मुसलमान भाई साम्प्रदायिकता से दूर और राष्ट्रीय भावना के पक्ष में रहे हैं, जो अपने आप को भारत के राष्ट्र का अंग समझते है, इस देश को अपनी मातृभूमि मानते रहे है, उन्हें अपनी मातृभक्ति की गोद से धकेल कर निकाल देना भयंकर अन्याय है?"

अपने विचारों को स्वतन्त्रता से लिख पाने का अवसर न देख कर और लिखने का कोई आर्थिक लाभ भी न देख कर, कनक ने सप्ताह भर से कुछ नहीं लिखा था परन्तु गांधी जी की इस अपील के समर्थन और अन्याय के विरोध के लिये वह बेचैन हो उठी। दो दिन मे भी मन शान्त न हुआ तो

उस ने एक छोटा सा लेख लिख डाला। उस का तर्क था, यदि मातृभूमि से निकाल दिया जाना हम पर अन्याय था तो भारत न छोड़ना चाहने वाले मुसलमानों को भारत से निकाल देना भी अन्याय है।...... ...अन्याय का अनुकरण करना, अन्याय का समर्थन करना ही है। उसे विश्वास था कि मानवता और न्याय के नाते इस लेख को असीर अवश्य ही छाप देंगे।

असीर दोपहर बाद तीन से छः तक दफ्तर में अवश्य रहते थे। कनक उसी समय गयी। असीर ने उस के इतने दिन न आने के लिये उपालम्भ दिया। चाय मंगवायी। दो-चार मज़ाक किये और फिर कनक का लेख पढ़ा।

असीर का चेहरा गम्भीर हो गया—"लोगों का अपनी मातृभूमियों से बिछुड़ना क्या पाकिस्तान के सिद्धान्त का और दो जातियों के सिद्धान्त का परिणाम नहीं है ?" असीर ने पूछा।

"लेकिन दिल्ली में शेष या भारत के शेष रह गये मुसलमानों ने तो हमें लाहौर से नहीं निकाला ? दो जातियों के सिद्धान्त में विश्वास करने वाले लोग तो स्वयं चले गये हैं। यह लोग दूसरों के अपराधों का दण्ड क्यों भोगें ?" कनक ने भी प्रश्न किया।

"हमारे प्रति इस शत्रुता और अन्याय का कारण इस्लाम का विश्वास है। इस्लाम को मानने वाले हमारे शत्रु बन गये हैं। क्या इन का इस्लाम कोई दूसरा इस्लाम है ?" असीर ने कनक को निरुत्तर कर देने के लिये पूछा।

"नहीं शत्रुता के कारण आर्थिक थे।" कनक ने कहा।

"छोड़ो न इस बात को" असीर ने बात समाप्त कर दी, "आज क्लब चलो। तुम उस दिन के बाद गयी ही नहीं।"

"इच्छा नहीं है, बहुत देर हो जाती है।"

"मिस्टर सिन्हा तुम्हारे बारे में दो बार पूछ चुके हैं। सूचना विभाग के पेम्फलेट लिखने का काम देना उसी के हाथ में है। दो-ढाई सौ मिल जाता है। अगर उस से कोई सहायता लेनी है तो मिलना ही चाहिये।"

"आज नहीं जा सकूँगी।" कनक अपना क्रोध वश नहीं कर पा रही थी।

कनक घर लौट रही थी। सिलवाली गली के मोड़ से ही देखा कि उस के मकान के सामने बहुत भारी भीड़ थी। लोग उत्तेजित होकर बहुत ऊंचा बोल रहे थे। पंडित जी की आतंकित चिल्लाहट भी सुनायी दी।

कनक डर गयी। क्या बेघरबार लोगों की भीड़ स्थान के लिये फिर उनके मकान पर टूट पड़ी ? इतनी भीड़ को कैसे लांघ सकेगी ? क्या करे ?

समीप आने पर पंडितजी का भर्राया हुआ ऊंचा स्वर सुनायी दिया—"मेरे पास इनके हाथ का लिखा कागज मौजूद है।"

भीड़ मे से किसी ने पंजाबी में कहा—"तुम परवाह न करो। देखेंगे, तुम्हें यहाँ से कौन निकालता है।"

दूसरे ने उत्तेजना में गाली दी—"·······को काटकर टुकड़े कर देंगे। यह गांधी हमारा बेड़ा गरक करायेगा। हमारा सब कुछ छिनवा दिया। अब दिल्ली पर भी उनका कब्जा करवायेगा। तुम परवाह मत करो।"

एक पड़ोसी बोला—"इस मामले में पुलिस कर ही क्या सकती है। गांधी के कहने से पुलिस मुसलमानों की बेजा तरफदारी कर रही है। यह फौजदारी का मामला तो है नहीं। यह तो दीवानी का मामला है। वह अदालत मे दरखास्त दे। देख लेंगे, गांधी क्या कर लेगा?"

कनक ने सांत्वना पायी कि भीड़ पंडित जी से लड़ नहीं रही थी, उनका समर्थन कर रही थी। कनक को देखकर भीड़ ने मार्ग दे दिया।

पंडित जी बहुत क्षुब्ध थे। उन्होंने बताया कि सैयद पाकिस्तान से लौट आया है। आया तो अपने घर की औरतों को और थाने से पुलिस साथ लेकर आया था कि उसका मकान उसे दिलवा दिया जाये। मैंने उसके साथ धोखा किया है। ग्वालमंडी में हमारा कोई मकान है ही नहीं। मैंने उस से कहा, मैंने जो कागज तुम्हें दिये थे; वे दिखाओ! तो झूठ बोल गया कि मैंने उसे कागज दिये ही नही लेकिन मेरे पास तो उसके दिये और लिखे कागज मौजूद है। बजरंग गवाह है। बेईमान झूठ बोल गया—यह कागज तो हम यहाँ छोड़ गये थे। आपने बक्से तोड़कर निकाल लिये हैं। मैंने उसके दस्तखत दिये तो कहने लगा—सब जाली है। पंडित जी बहुत देर तक क्षोभ में बोलते रहे।

कनक को सैयद की ऐसी हरकत पर बहुत क्रोध आगया।

गांधी जी के प्रार्थना के समय के भाषण और वक्तव्य पत्रों में नियमित रूप से छपते थे। पंडित जी गांधी जी की बात को देश की कानशेंस, न्यायबुद्धि की पुकार मानते थे और गांधी जी के वक्तव्यों को ध्यान से पढ़ते थे। तीसरे दिन पंडित जी प्रातः ही अखबार देखकर विस्मित रह गये।

पंडितजी ने कनक और कंचन को अखबार दिखाया—"बेटा देखो, यह जरा पढ़कर सुनाना! इस सैयद ने झूठ और फरेब की इंतहा कर दी है।"

कंचन ने पढ़कर सुनाया। कनक कमरे साफ करना छोड़ कर सुनने के लिये आ गयी थी। गांधी जी का वक्तव्य था:—इस देश को भय से छोड़ जाने

वाले मुसलमानों को भारत-सरकार ने आश्वासन दिया है कि वे लोग चाहें तो लौटकर अपने मकानों में बस सकते हैं। सरकार उनकी और उनके जान-माल की रक्षा के लिये जिम्मेवार होगी। कल दिल्ली के एक बहुत सज्जन, नेशनलिस्ट मुसलमान अपने परिवार की पर्दापोश स्त्रियों के साथ बहुत ही परेशान हालत में मेरे पास आये थे। यह मुसलमान सज्जन पुराने राष्ट्रवादी हैं। आतंक के कारण मातृभूमि को छोड़ कर चले गये थे। वे भारत सरकार के आश्वासन पर, भारत सरकार की प्रजा बन कर अपनी जन्मभूमि में रहने के लिये लौट कर आये हैं। कल दुर्रानी गली में अपने मकान पर वापस पहुंचे तो उन्होंने अपने मकान पर लाहौर से आये हिन्दुओं का कब्जा पाया। इस सज्जन की अनुपस्थिति में उनके मकान का ताला तोड़कर उस पर कब्जा कर लिया गया है। इस सज्जन ने फैज बाजार के थाने में न्याय और सहायता के लिये फरियाद की। मुसलमान सज्जन पुलिस साथ लेकर मकान पर गये थे परन्तु हिन्दुओं की भीड़ ने पुलिस को उचित कार्रवाई नहीं करने दी। किसी भी सरकार के लिये यह बहुत शरम की बात है कि नागरिकों को उन का न्यायोचित अधिकार न मिले, नागरिकों के जान-माल की रक्षा न की जा सके। मैं सरकार से जोरदार अपील करता हूं कि न्याय की रक्षा में जो भी विरोध और अड़चनें आयें, उनका सामना किया जाये। ग़ैर-जिम्मेवार भीड़ के प्रदर्शन से डर जाना सरकार के लिये शरम की बात है। सरकार का फ़र्ज़ है कि दुर्रानी गली का मकान उसके मालिक को जरूर मिले। कानून, व्यवस्था और न्याय की रक्षा के लिये यदि सरकार को कड़ा से कड़ा कदम उठाना पड़ता है तो भी झिझकना उचित नहीं है।"

पंडित जी को सैयद के फरेब पर बहुत क्रोध आया। इस बात पर भी क्रोध आया कि गांधी जी ने दोनो पक्षों की बात सुने बिना ऐसा वक्तव्य दे दिया। वे बिड़ला भवन जाकर गांधी जी को मकान की बिक्री के कागज दिखाने को तैयार हो गये। कनक और कंचन दोनों पंडित जी के साथ जाने के लिये तैयार थीं। पंडित जी गांधी जी से मिल सकने के लिये उनके सैक्रेटरी से फोन पर समय निश्चित करने के लिये फैज़ बाजार की ओर गये तो, दुर्रानी गली और सिलवाली गली में सैयद की चालबाज़ी की बात लोगों को बताते गये।

पंडित जी ने पच्चीस मिनिट में तीन बार बिड़ला भवन में फोन किया। उत्तर मिला, गांधी जी के सैक्रेटरी गांधी जी के समीप पत्र-व्यवहार के काम में व्यस्त हैं। घंटे भर पश्चात बात हो सकेगी। पंडित जी कुछ समय बाद फोन करने के विचार से लौट रहे थे तो उन्हें पता लगा कि हिन्दी-उर्दू पत्रों

में भी गांधी जी का वक्तव्य छपा था और गांधी जी के ऐसे वक्तव्य और शरणार्थियों के प्रति उनकी क्रूरता के लिये खेद भी प्रकट किया गया था।

सांढ़े आठ, नौ बजे शरणार्थी, कौतुहल से दुर्रानी गली में जमा होने लगे। दस बजे तक दो-ढ़ाई सौ की भीड़ हो गयी। लोगों को वास्तविक स्थिति बताते-बताते पंडित जी का गला सूखने लगा। कनक, कञ्चन सब काम छोड़ क़र कौतुहल में भीतर चली आयी स्त्रियों को उत्तर दे रही थीं। माँ सहानुभूति में इकट्ठी हो जाने वाली भीड़ से भी घबराने लगी। लड़कियों ने माँ को साहस रखने के लिये कह कर दृढ निश्चय प्रकट किया—"हम गांधी जी को सब कुछ बतायेंगी। उस से पहले पुलिस आयेगी तो हम यहाँ सत्याग्रह करेंगी। पुलिस हमें खरीदे हुये मकान से कैसे निकाल सकती है ?'

उत्तेजित भीड़ क्रोध में ललकार रही थी—"हम देखेंगे, गांधी और कांग्रेसी सरकार बसे हुये हिन्दुओं को कैसे निकालती है ? एक को निकाला तो फिर सब को निकालेंगे ! हमारे मकान हमें कौन दिलायेगा।"

भीड़ और भीड़ की उत्तेजना बढ़ती ही जा रही थी। ग्यारह बजे पंडित जी दूसरी बार बिड़ला भवन में फोन करने के लिये जाना चाहते थे परन्तु भीड़ के कारण गली से निकलना कठिन हो गया था। कुछ ही कदम जा पाये थे कि सुना लाठी-पुलिस आ रही है, बन्दूकों वाले सिपाही भी है। पंडित जी का हृदय धड़कने लगा। वे अपने मकान के दरवाजे पर लौट आये।

बहुत जोर से नारे लगने लगे—"मकानों से नहीं हटेंगे ! कांग्रेस सरकार मुर्दाबाद ! गांधी मुर्दाबाद !" भीड़ ने गली मुहाने पर पुलिस का रास्ता रोक लिया था।

पंडित जी, कनक, कंचन बहुत आतंक में थे; जाने क्या होने वाला है। वे अपने अधिकार के लिये जूझ जाने के लिये तैयार थे। उनके कलेजे धड़क रहे थे। नारों की गूंज और उत्तेजना से जान पड़ रहा था कि भीड़ बढ़ रही है। इस सब से उन्हें संकोच और घबराहट हो रही थी परन्तु अपना मकान छोड़कर भी नहीं जा सकते थे। सहसा बन्दूकों के दगने की गूंज सुनाई दी।

पंडित जी सिर पकड़ कर ड्योढ़ी में पड़ी खाट पर बैठ गये। उनकी आंखों मे आंसू आगये—"हमारे लिये इस तरह खून बहेगा ? बेटा जाने दो।" उन्होंने समीप खड़ी कंचन और कनक को सम्बोधन किया, "उसे जो मंजूर हो। हमारी ही कुर्बानी की जरूरत है तो हो जाने दो। रहने दो, मकान छोड़ दो !"

कंचन ने विरोध किया, "क्यों पिता जी, हम कहाँ जायेंगे……?

"हमारे जाने का सवाल नहीं है" कनक ने क्रोध में उसे टोक दिया, "हम

सच्चाई के लिये लड़ रहे हैं। मरना है तो दूसरे क्यों मरें। मैं आगे जाती हूं।" कनक भीड़ की तरफ लपक कर रास्ता मांगने लगी, "हटिये, जरा हटिये! मुझे रास्ता दीजिये!"

"बेटा, बेटा! नहीं बेटा!" पंडित जी ने कनक के पीछे जाकर पुकारा, "तुम ठहरो, तुम ठहरो! मैं बात......."

भीड़ ने उन्हें रास्ता देकर धमका दिया—"तुम अपने घर में बैठो। चाहे हजार आदमी मर जायें कोई मकान खाली नहीं होगा।"

"कांग्रेस सरकार मुर्दाबाद! गांधी मुर्दाबाद! नेहरू मुर्दाबाद!" नारे और भी जोर और ललकार से लगने लगे। पंडित जी का हृदय धड़क रहा था जाने क्या होगा?

"हम लोग गांधी जी के सामने बैठकर अनशन से प्राण दे देंगे।" कनक क्रोध में फुंकार कर कह रही थी।

पंडित जी पुकार-पुकार कर पूछ रहे थे—"गोली किसी को लगी तो नहीं? किसी को चोट तो नहीं आयी?"

"कोई परवाह नहीं! हम मर जायंगे! हमारा खून गांधी-नेहरू के सिर होगा।" भीड़ ने उन्हें चुप करा दिया।

आधे घंटे बाद नारे बन्द हो गये। भीड़ छंटने लगी। लोगों ने बताया, पुलिस लौट गयी थी। लोगों ने पुलिस से लाठियां छीनने का प्रयत्न किया था। पुलिस ने भीड़ को आतंकित करने के लिये हवा में गोली चलायी थी।

पंडित जी ने अनुमान कर लिया कि पुलिस इस समय परिस्थिति बिगड़ जाने के विचार से हट गयी है परन्तु गांधी जी के दबाव के कारण सैयद की सहायता के लिये उनके विरुद्ध कानूनी कारर्वाई जरूर की जायगी। उन्हों ने नैयर को कानूनी परामर्श के लिये तार देकर बुला लिया।

गांधी जी से भेंट में अनेक अड़चनें थीं। पंडितजी को प्रार्थना के लिये गांधी जी के दरवाजे पर भी खड़े रहना मंजूर न था। पंडित जी ने गांधी जी को पूरा वृत्तान्त प्रमाण सहित लिखकर भेज दिया।

सैयद के पक्ष में गांधी जी के वक्तव्य और उसके कारण अपने द्वार पर हो गये भयंकर कांड से कनक क्षुब्ध और मूढ़ सी होगयी थी। मन ही मन संकोच अनुभव कर रही थी कि असीर के सामने क्या कहेगी। एक ही उपाय था, वह राजनीति और सिद्धान्त के विषय में मौन रह कर जीविका के लिये ही कुछ करे। लखनऊ में अवसर था परन्तु पिता जी मान नहीं रहे थे। आशंका थी, जीजा भी पिताजी का ही अनुमोदन करेंगे। दिल्ली में सिन्हा द्वारा सूचना

विभाग से कुछ काम मिल सकने की ही आशा थी ।

असीर ने कनक को इतने दिन अदृश्य रहने के लिये उपालंभ दिया तो कनक को बताना ही पड़ा कि दुर्रानी गली वाला कांड उसी के मकान पर हुआ था ।

"देख ली तुम ने नेशनलिस्ट मुसलमानों की हकीकत ?" असीर ने पूछा ।

कनक इस ताने के लिये पहले से तैयार थी, उत्तर दिया—"ऐसे लोग किस सम्प्रदाय, बिरादरी या श्रेणी में नहीं होते ? हमने मकान खरीदा है लेकिन हमारी गली के सब मकानों पर तो जबरदस्ती ही कब्जा किया गया है ?"

"गांधी पंजाब से हिन्दुओं का निकाला जाना नहीं रोक सका तो उसे यहाँ हिन्दुओं के गले पर छुरी फेरने का क्या हक है ? क्या एक नेशनलिस्ट मुसलमान का महत्व, बहावलपुर में भूख से तड़पते पचास हजार हिन्दुओं से भी अधिक है ? यह देख लो" असीर ने उस दिन का ट्रिब्यून कनक के सामने रख दिया ।

समाचार था—बहावलपुर में पचास हजार हिन्दुओं को जबरदस्ती उन के मकानों से निकाल कर कैम्पों में भर दिया गया है । उन्हें प्रति दूसरे दिन केवल दो रोटियां दी जा रही हैं, जल भी पर्याप्त नहीं दिया जा रहा । एक सौ से अधिक व्यक्ति भूख से मर चुके हैं ।

कनक चुप रह गयी । कुछ पल मौन रह कर उसने याद दिलाया—"आपने सिन्हा साहब के यहाँ चलने के लिये कहा था ।"

"जी हां, तुमने तो उल्टा हमारा मज़ाक बनवा दिया । सिन्हा कह रहा था मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त । वह कई बार जनाब के लिये पूछ चुका है । तुम आयी ही नहीं । आज ही चलो मुझे आज उसके मकान पर जाना है । छः बज रहे है । सात-सवा सात चलेंगे तुम तब तक यह अखबार देखो ।"

संध्या का झुटपुटा सा हो गया था । सड़कों पर बिजलियाँ जल गयी थीं परन्तु अभी अनावश्यक जान पड़ रही थीं । असीर की मोटर सदर बाजार की भीड़ में से पैंतरे काटती हुई नई दिल्ली की भव्य सड़कों पर पहुंच गयी । गोल डाकखाने का चक्कर लगाकर दोनों ओर हरी बाड़ों से बंधी पतली सड़क पर सिन्हा के एक छोटे बंगले में चली गयी ।

असीर ने बराम्दे में लगा घंटी का बटन दबाया । एक नौकर ने झाँक कर देखा और आगन्तुक का नाम पूछ कर चला गया ।

असीर और कनक बराम्दे में पड़ी बेंत की हल्की कुर्सियों पर बैठ गये ।

तीन-चार मिनट में सिन्हा साहब अचकन के बटन बंद करते हुये बाहर आये। उन्हों ने कनक को देखकर उल्लासपूर्ण विस्मय से स्वागत किया।

"सिन्हा साहब अचकन आप पर गजब की जंच रही है।" असीर सिन्हा की पोशाक की भव्यता पर मुग्ध हो गया।

"तो क्या करना होगा? सेक्रेटेरियट में सभी लोग सिला रहे हैं न। यथा राजा तथा परजा। प्राईम मिनिस्टर को अचकन पसंद है तो एक दो बनवा लेना पड़ेगा न!"

"लेकिन आपके बदन पर गजब की जंच रही है। आप का क्या खयाल है?" असीर ने कनक की ओर देखा।

"जी हां, बहुत फिट आयी है।" कनक को समर्थन करना पड़ा।

"ऐ झींगुर, देखो ना। चाह तो ले आओ।" सिन्हा ने दरवाजे की ओर गर्दन घुमा कर पुकार लिया।

"न न न, पूछिये कनक जी से, हम लोग बस पीकर ही आये हैं। आप ने शायद नहीं पी?" असीर बोले।

असीर और सिन्हा साहब में कुछ बात हुयी—"·····आप ने फरमाया था अभी तक···नहीं मिला।" असीर स्वर को दबा कर बोल रहे थे। कनक ने उधर से ध्यान हटा लिया।

"·······हो जायेगा।"

"कल मैनेजर को भेज दूं?"

"क्या जरूरत? हम नोट लिख चुके हैं। हां कनक जी, आप कहिये न; हाओ द वर्ल्ड गोज विद यू; स्नतैंडिड!"

कनक को सिन्हा का उच्चारण कुछ विचित्र सा लगा। पहले दिन क्लब में भी ध्यान गया था। अंग्रेजी बोलता था दूसरे लोगों की ही तरह परन्तु हिन्दी बोलते समय उच्चारण में कुछ लटक आ जाती थी। अन्तिम स्वर जरा खिंच जाता था।

असीर ने दुर्रानी गली के काण्ड में कनक के ही बली बनते-बनते बच जाने का रहस्य बता दिया।

कनक संकोच में चुप रही।

सिन्हा ने गांधी जी पर क्रोध प्रकट कर कनक की पूरी सहायता करना अपना कर्तव्य बताया।

असीर ने प्रस्ताव किया—"कहिये तो जरा क्लब में रौनक देखी जाय या किसी और स्थान पर कुछ देर बैठा जाय?"

सिन्हा का मन क्लब की भीड़ में जाने को नहीं था।

असीर ने गाड़ी कनॉट पलेस में लाकर खड़ी कर दी। कनक, असीर और सिन्हा के साथ गोल चक्कर में वनी दुकानों के वराम्दे में से चौड़ा जीना चढ़ कर ऊपर गयी। उस रेस्तराँ में वह एक वार अनिल कपूर, जीजा और कंचन के साथ आ चुकी थी। जरा झिझकी। घर से चलते समय ऐसी जगह या क्लब जाने का खयाल होता तो दूसरे कपड़े पहन कर आती।

रेस्तराँ के हाल में काफी लोग थे। वैंड पर पश्चिमी संगीत चल रहा था। सिन्हा की इच्छा जरा अलग से बैठने की थी। वैरे ने एक खाली केविन का दरवाजा खोल दिया। कनक को पहले प्रवेश करना पड़ा। वह बीच मे लगी मेज के दायें-वायें लकड़ी की दीवारों के साथ बने कोचों से आगे वढ़ कर दीवार के साथ लगी कुर्सी पर बैठ गयी। असीर उस के दायें कोच पर और सिन्हा वायें कोच पर बैठ गये।

"क्या मंगाया जाय ?" असीर ने सिन्हा से प्रश्न किया।

"जो कनक जी कहें। आप वताइये न।" सिन्हा ने कनक से पूछा।

"मुझे तो किसी चीज की इच्छा नहीं है। चाय पीकर आयी हूं – पाइन एप्पल जूस ले लूंगी।"

"वाह यह क्या ? आप गिमलेट लीजिये न। जिन विद लाइम जूस !"

कनक ने अनिच्छा प्रकट की। सिन्हा ने आग्रह किया—"यह क्या वहम। एक दिन हमारा भी तो कहना मानिये न। टेस्ट करके देखियेगा तव तो मालूम होगा। अच्छा नहीं लगे तो छोड़ दीजियेगा।"

'वहम' शब्द कनक को पसन्द न था। वह सावधान रह कर आजमा लेने के लिये तैयार हो गयी। असीर और सिन्हा ने ह्विस्की मंगा ली। कनक ने झिझकते-झिझकते गिमलेट चखा। स्वाद तीखा, खट्टा-मीठा विचित्र सा था पर बुरा न कह सकी; अच्छा ही कहना पड़ा। कौतुहल में उस ने दो घूंट ले लिये।

असीर और सिन्हा आपस में वात कर रहे थे। सिन्हा ने वीच में कनक से अंग्रेजी में पूछ लिया—"कहिये क्या कुछ असुविधाजनक लगा ?"

"नहीं तो, स्वाद तो बुरा नहीं है।"

"तो फिर समाप्त कीजिये। दूसरा राउंड हो।"

"आप लीजिये, मेरे लिये पर्याप्त है।"

सिन्हा और असीर के वार-वार कहने पर कनक ने प्याली समाप्त कर दी।

कनक के न, न करते रहने पर भी वैरा ट्रे में दो ह्विस्की और गिमलेट

ले आया। कनक को शरीर में सूक्ष्म सी गमगमाहट, कुछ विचित्र सा जान पड़ा। दूसरी प्याली से पहला घूंट लेने के दो-तीन मिनट बाद पलकों में तनाव और सिर हलका सा हो गया। उस ने और घूंट न लेने का निश्चय कर लिया। जान पड़ा, अच्छा नहीं किया।

सिन्हा के आग्रह करने पर भी उस ने और न लिया।

"क्या कुछ अनुभव हो रहा है?" सिन्हा ने मुस्कराकर पूछा।

"लगता तो है?" कनक ने हंसी से उत्तर दिया और सोचा हंसने की क्या बात थी!

"असुविधा हो रही है?"

"नहीं तो।" कनक गम्भीर हो गयी।

"तो लीजिये। हमारे कहने से लीजिये न, अच्छा लगेगा।" सिन्हा ने कनक का घुटना छूकर आत्मीयता से आग्रह किया।

कनक ने घुटना पीछे खींच लिया और इन्कार के लिये क्षमा माँग ली।

"इतना सा ले भी लीजिये न! हम कहते हैं, आखिर कितनी खुशामद कराइयेगा।" सिन्हा ने कनक के घुटने पर पूरा हाथ दबा दिया।

मेज़ धक्के से हिल गयी। असीर का गिलास गिर पड़ा। कनक झटके से खड़ी हो गयी थी, माथे पर तेवर आ गये—"व्हाट इज़ दिस! मुझे जाने दीजिये!"

"नानसेंस! यह क्या मज़ाक है।" असीर ने क्रोध से कनक को धमकाया।

कनक ने क्रोध में होंठ काट लिये—"मैं जाऊंगी। मुझे जाने दीजिये।" उस के नथूने काँप रहे थे।

सिन्हा और असीर की आँखें मिलीं। असीर ने कनक को बैठ कर शांति से सुनने के लिये कहा।

कनक ने बैठने से इन्कार कर दिया।

असीर ने अपने स्थान से उठ कर उसे मार्ग दे दिया और सिन्हा से बोला—"अच्छा हो मैं इसे दरवाज़े तक छोड़ आऊं।"

कनक रेस्तराँ के जीने से बराम्दे में उतरी तो नीचे प्रकाश के कारण आँखें चौंधिया रही थीं। भीड़ की ठेलमठेल। कनॉट पलेस में वह कभी अकेली नहीं आयी थी। अपनी मूर्खता के प्रति क्रोध था। सिर विवशता और जिन के प्रभाव से चकरा रहा था। उसे फैज़ बाज़ार से गुजरने वाली बसों के नम्बर याद थे परन्तु कनॉट पलेस में बस किस स्थान पर मिलेगी, सो

नही जानती थी। किसी से पूछ सकने योग्य अवस्था नही थी।

"टैक्सी चाहिये?" कनक के सामने एक सवारी से पैसे लेते हुये ड्राइवर ने पूछ लिया।

कनक को सहारा मिल गया। वह टैक्सी में बैठ गयी। रक्षा का साँस लिया। ड्राइवर ने टैक्सी को सड़क पर करते हुये पूछा—"कहाँ चलना होगा?"

"फैज बाजार" कनक ने उत्तर दिया तो दूसरी घबड़ाहट अनुभव हुयी। याद आया—बटुये में केवल दस ही आने थे। अब क्या करेगी? गहरा साँस लिया, क्या हालत हो गयी। दस-बीस रुपये तो वह कुछ समझती ही न थी।
..."क्या करेगी?"

कनक के कहने से ड्राइवर ने फैज बाजार में डाकखाने के समीप गाड़ी को मोड़ कर सर सैयद रोड पर खड़ा कर दिया।

ड्राइवर ने मीटर देख कर बताया—"एक रुपया दो आने।"

"भई मुझे याद नहीं रहा था, बटुये में रुपये खत्म हो गये है। तुम दो मिनट यहाँ ठहरो। अभी लाकर देती हूं।" कनक ने लाचारी में कहा।

"वाह, वाह।" ड्राइवर बहुत जोर से बोल पडा, "इतना बड़ा बटुआ, बीच में पोल। मैं यहाँ खड़ा रहूं? हमारे तो मिनट-मिनट की कीमत है। पहले क्यों नही देखा था?"

"जितनी देर मुझे लौटने मे लगेगी उस के भी दाम दे दूंगी। मेरी गलती है, मान रही हूं।"

"हमें क्या चराती हो। हम भी दिल्ली में ही रहते है, लौट कर न आओ तो मै सुबह तक खड़ा रहूं?" ड्राइवर और भी ज़ोर से बोला।

"विश्वास न हो तो मेरे साथ मकान के दरवाज़े तक चले चलो।" कनक अपमान अनुभव कर रही थी पर विवश थी।

ड्राइवर और उत्तेजित हो गया। उस ने समीप दुकान वाले को सुना कर शिकायत की—"यह देख लो जेंटलमैन-लेडियो के तमाशे। डाकिये के थैले जैसे बटुये उठाये फिरती है। बीच मे अठारह आने नहीं है। टैक्सी का शौक है।"

गली के मुहाने की दुकान वाला नसीबराय "क्या है, क्या है" कहता हुआ आगे बढ़ आया था। कनक अपमान और लाज से गड़ी जा रही थी। उस ने सफाई दी, "मै दाम देने से इन्कार नही कर रही हूं। मुझे खयाल नही रहा था कि बटुये में पैसे खत्म हो गये है। मै अभी लाकर देती हूं। इसे रुकने के दाम भी दे दूंगी। इसे विश्वास न हो तो मेरे साथ चला चले।"

नसीबराय ने ड्राइवर को डाँट दिया—"भले आदमी, आदमी देख कर बात किया करो।" वह कनक को और पंडित जी को भी पहचानता था, "आदमी भी नहीं पहचानते। बेचारी शरीफ लड़की से कैसे बोल रहे हो। अपने दाम लो और दफा हो! कितना दाम है, बोलो!"

"जा बीबी (बेटी), अपने घर जा। पैसे आ जायेंगे।" नसीबराय ने कनक को चले जाने के लिये कह दिया।

कनक ने सिलवाली गली में से जाते हुये अपने आप को सम्भाला कि उस की घबराहट और दुर्दशा से पिता जी परेशान न हो जायें। जाते ही पुकार बैठी—"पिता जी, मुझे पैसे दीजिये आज मैं बहुत परेशान हो गयी।

"क्यों, क्या हुआ बेटी?" पंडित जी ने पूछा।

"तीस हजारी में जल्दी से गलत बस पर बैठ गयी थी। सदर पहुंच गयी। वहाँ से बस कन्डक्टर ने बताया, कनॉट पलेस की बस पकड़ लो, वहाँ से फैज बाजार की बस मिलेगी। कनॉट पलेस पहुंची तो बटुये में पैसे ही नहीं रहे। मैं टैक्सी लेकर आयी हूं। गली के मोड़ पर दुकानदार से पैसे लेकर दे दिये हैं। अठारह आने दीजिये उसे दे आऊं।"

पंडित जी ने आश्वासन दिया—"नसीबराय होगा। तुम बैठो मैं कल उसे दे दूंगा।"

कनक नहीं चाहती थी कि नसीबराय ड्राइवर की गुस्ताखी की बात पिता जी से कहे। उस ने उसी समय पैसे लिये और कंचो को साथ लेकर नसीबराय को दे आयी।

नैयर दो दिन बाद आ गया। पिता जी ने उसे सैयद से मकान के परिवर्तन और क्रय-विक्रय के कागज दिखाये। नैयर ने नैनीताल से आने पर भी उन कागजों को देखा था। उस ने कहा सब ठीक है पर इस में गवाहों के दस्तखत नहीं हैं। पंडित जी ने गली से विश्वास योग्य आदमी जवाहरसिंह और गुरदित्तामल को बुला कर स्थिति समझायी। उन लोगों ने आग्रहपूर्वक अपने दस्तखत करके ८ सितम्बर १९४७ की तारीख डाल दी।

कनक ने जीजा को 'सरदार' के मालिक असीर के सैद्धान्तिक मतभेद का जिक्र करके कहा—"उसे दिल्ली के पत्र जगत से कोई आशा नहीं है। वह लखनऊ में मिलते अवसर से लाभ उठा सकने के लिये वहाँ जाना चाहती है।

नैयर कनक से सहमत नहीं हुआ। उसने कहा—"तुम्हारे विचार जो हों। व्यवसाय अपनाना है तो व्यवसाय के प्रति कर्तव्य निबाहो। वह भी तो एक कर्तव्य है। हम केवल वही मुकद्दमा तो नहीं लेते जिन से हमें सहानुभूति

होती है। मुकद्दमा ले लेते हैं, जैसा भी हो उसे ईमानदारी से निबाहते हैं।"

कनक ने अस्वीकार किया—"जी हां, आप तो स्वयं ही कहते हैं, आप ईमानदारी से बेईमानी करते हैं! मैं जीविका के लिये अन्याय का समर्थन नहीं कर सकती। इसका तो मतलब है आवश्यकता पड़ने पर चोरी भी कर लूं? ऐसे भी तो लोग है जो न्याय के लिये जीविका को ठोकर मार सकते है।" उस का इशारा पुरी की ओर था

"ऐसा करना चाहती हो तो तुम पहले गांधी बन जाओ कि लोग तुम्हारे विचारों को तुम्हारे व्यक्तित्व के कारण मान लें। जानती हो, जीविका को ठोकर मारने वालों को जीविका की ठोकर लगनेके भी उदाहरण मिल सकते है।" नैयर ने कनक की कड़ी बात का कड़ा उत्तर देकर तुरंत बात बदली, "खैर, जो हुआ मैं तो समझता हूं। असीर तुम्हें सहायता दे रहा है तो तुम्हें लाभ उठाना चाहिये।"

"अब वहाँ कुछ नहीं हो सकेगा। बहुत घृणित आदमी है, मैं उसके यहाँ नहीं जाऊंगी।" कनक ने सिर झुकाये कहा और नैयर को गत संध्या की घटना सुना दी।

नैयर ने घटना के लिये कनक को ही दोष दिया—"तुमने 'ड्रिंक' लिया क्यों? मुझे तुम से ऐसी आशा नहीं थी। तुम ने खुद छिछोरापन किया।"

"क्या छिछोरापन किया? आप 'ड्रिंक' नहीं ले लेते? आप ने मुझे स्वयं कई बार कहा, थोड़ा ले ले, कोई हर्ज नहीं है।" बहिन जी को नहीं कई बार दिया?"

"हर बात के लिये अवसर और स्थिति होती है। आदमी और संगति देखी जाती है?"

"अच्छा, मेरी उतनी गलती सही लेकिन मैंने अनुचित व्यवहार तो नहीं किया। अब मैं असीर के पास कभी नहीं जा सकती।"

"अगर लखनऊ में भी कोई घटना होगयी तो?"

"क्यों हो जायगी? हो भी जायगी तो जैसे यहाँ मैंने संभाल लिया, वहाँ नहीं संभाल सकती? आप पिता जी से कह दीजिये, मुझे बक्स में बंद करके रख दें।" कनक रो पड़ी।

नैयर को उसी की बात मान लेनी पड़ी।

९ ×

३

अपने वतन पश्चिम पंजाब से निकाल दिये गये त्रस्त शरणार्थियों की बसों का काफ़िला, भारतीय सशस्त्र सैनिकों की रक्षा में—अपने देश में पहुंच कर शरणार्थी कैम्प के द्वार पर खड़ा हुआ। रात पड़ चुकी थी सब लोग, जो कुछ सामान साथ ला सके थे उसे बसों से उतारने में व्यस्त हो गये। काफ़िले में सब से आगे, सशस्त्र सैनिकों की गाड़ी के ठीक पीछे एक स्टेशन-वैगन में शेखूपुरा से उद्धार की गयी स्त्रियाँ थीं। इन स्त्रियों को कुछ भी सामान संभालने की चिंता न थी। उनके पास शरीर के कपड़ों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। कौशल्यादेवी इन स्त्रियों को लेकर कैम्प को घेरे चारदीवारी के फाटक में सब से पहले चली गयीं।

फाटक के भीतर उज्ज्वल प्रकाश था। वातावरण में मानव कंठ की गूंज भरी हुई थी। चारदिवारी के भीतर इमारत के सामने, दायें-बायें कई छोलदारियाँ लगी हुयी थीं। बोल-चाल और पुकारें सुनाई दे रही थीं। लोग व्यस्तता और फुर्ती से आ-जा रहे थे। शेखूपुरा से आयी स्त्रियाँ कौशल्यादेवी के साथ सामने बरान्दे की ओर बढ़ रही थीं। उन्हें किसी स्त्री के करुण विलाप का चीत्कार सुनायी दिया।

बरान्दे में बिजली की बत्ती के नीचे एक जवान लड़की कंधे, सिर और चेहरा फटे-मैले दुपट्टे में लपेटे दीवार से लगी विलाप कर रही थी। उस के समीप दो और जवान स्त्रियां जड़वत मौन बैठी थीं। तीनों के कपड़े बहुत ही मैले, फटे हुये और दुपट्टे मुसलमानी ढंग के नीले और काले थे परन्तु दुपट्टों के ओढ़ने का ढंग हिन्दुआनी था। चुप बैठी स्त्रियां अपने माथे और ठोड़ी को भी दुपट्टे में लपेटे थीं। उनके चेहरों और मुर्झाई हुई आँखों में रोग और अवसाद की छाया थी।

कौशल्यादेवी ने चुप बैठी स्त्रियों को पहचान कर रोने वाली की ओर संकेत कर पूछा—"क्या चिनी है?"

एक स्त्री ने समर्थन का संकेत किया। कौशल्यादेवी ने विस्मय से ठोड़ी पर अंगुली रखकर पूछा—"हाय क्यों! इसके तो पेक्के टब्बर (पितृ-परिवार) का पता लोहगढ़ कैम्प में मिल गया था?'

उत्तर देने वाली स्त्री ने गहरा श्वास लिया—"पेक्के (पिता-माता) इसे नहीं ले गये। कह दिया, हमने तो ब्याह दी थी। अब ससुराल वाले जानें. ठीक

ही कहते है, "स्त्री ने और भी गहरा सांस लिया, "उन्होंने एक बार निवेड़ (निबटा) दिया।"

शेखूपुरा से आयी स्त्रियों ने स्त्री की बात सुनी। उन के सिर चकराये, पाँव तले फर्श काँप गया। उन की गर्दनें झुक गयी। अपने परिवारों से मिल पाने के लिये अपने देश में पहुंचने पर यह उन का प्रथम अनुभव था।

कौशल्यादेवी ने बिलखती हुयी लड़की की ओर से मुंह फेर लिया। व्यस्तता के भाव से अपनी ओढ़नी सिर पर सम्भाल कर साथ आयी स्त्रियो को सम्बोधन किया--"तुम जरा यहाँ बैठो" वह बराम्दे के सामने घास पर लगी छोलदारी मे चली गयी।

कौशल्यादेवी ने छोलदारी से तुरन्त लौट कर बराम्दे में बैठी स्त्रियों से प्रश्न किया—"कहाँ चले गये ये लोग ?"

स्त्रियाँ कुछ उत्तर न दे सकीं। कौशल्यादेवी अपनी ओढ़नी का कोना चुटकी में दबाये खोज की व्यस्तता में बराम्दे से दाहिनी ओर चली गयी।

काफिले की बसों मे आये लोग अपने बच्चों और भिन्न-भिन्न प्रकार के असबाब को कन्धों पर सम्भाले, बगल में लिये या हाथों में लटकाये फाटक से आने लगे थे। सभी मर्द या स्त्रियाँ अपने शरीरों पर बच्चों को या कुछ न कुछ सामान लिये थे। यात्रियों के शरीरो पर कपड़े कीमती परन्तु बहुत मैले और मसले हुये थे। थकी हुयी स्थूल शरीर प्रौढाये, कोमल शरीर दुबली लड़कियाँ और नवयुवतियाँ सोते या रोते हुये बच्चों के साथ, भारी पिटारियाँ या गठरियाँ भी लिये थीं। थकान के कारण वे बच्चो या सामान को धरती पर टिका देतीं तो भी हाथ से पकड़े रहती। कष्ट-प्रद होने पर भी बच्चे और सामान प्यारे थे।

"भाइयो और बहनो !" एक दुबला-पतला प्रौढ आदमी सफेद पगड़ी, सफेद दाढ़ी, वैसा ही कुर्ता और जाँघिया घुटने तक पहने, हाथ जोड़ कर फाटक से आते लोगों को सम्बोधन कर बोला—"सब भाई, मातायें, बहनें पहले छोलदारी मे अपना-अपना नाम दर्ज करवा दें। अपने आप कोई जगह न लें। सब को जरूरत के मुताबिक जगह दी जायगी।"

"यहाँ आइये, इधर आइये !" पुकारता हुआ एक भारी शरीर जवान छोलदारी मे चला गया।

"एक-एक, दो-दो करके भीतर आइये।" जवान भीतर से पुकार रहा था। तुरन्त ही छोलदारी के सामने सामान और बच्चो को उठाये लोगो की भीड़ लग गयी।

शेखूपुरा से लायी गयी स्त्रियाँ बरामदे में खड़ी थीं। बिशनी से खड़े न रहा गया तो बैठ गयी। दूसरी स्त्रियाँ भी बैठ गयीं। तारा घुटने पर ठोड़ी रखे आँखें झुकाये थी। रोती हुयी लड़की की ओर आँख उठाते न बनता था। कान में स्त्री के शब्द गूँज रहे थे—ससुराल वाले जानें! माँ-बाप ने एक बार निबटा दिया! क्या इसी के लिये उन्हें यहाँ लाया गया है....?

फाटक से आते लोग छोलदारी के सामने जमा होते जा रहे थे। एक व्यक्ति पुकार रहा था—"एक-एक परिवार का एक-एक आदमी नाम-धाम लिखा दे। सब लोगों को भीड़ लगाने की क्या जरूरत है?"

दूसरे ने कहा—"सब लोग बहुत परेशान हैं। हमें टिक जाने दो। हम स्वयं आकर सब कुछ लिख कर दे देंगे।"

कौशल्यादेवी लौट कर आयीं तो झुंझलाहट से बड़बड़ा रही थी।

"आओ री, तुम आओ मेरे साथ।" कौशल्यादेवी ने अपने साथ आयी स्त्रियों को छोलदारी की ओर बढ़ने के लिये कहा।

प्रौढ़ सज्जन, फाटक से छोलदारी के सामने आकर हाथ जोड़ भीड़ से अनुरोध कर रहा था—"सब भाई, मातायें, बहनें लाईन बना लेने की कृपा करें, तभी काम जल्दी हो सकेगा। सतगुरु की कृपा से किसी को कष्ट नहीं होगा।"

कौशल्यादेवी भीड़ में राह न पा सकने के कारण प्रौढ़ पर झुंझला उठी—"भाई जी, यह क्या जुल्म है। मैं सब से पहले आयी, तब यहाँ कोई नहीं था। रजिस्टर लिखने वाले कहाँ चले गये थे। अब मैं कब तक बैठी रहूं? कल सुबह घर से निकली थी। मेरा भी तो घरबार है। घर में अकेली लड़की को छोड़ कर आयी हूं। हम सेवा करते हैं तो हमें परेशान तो नहीं किया जाना चाहिये....।"

"अच्छा-अच्छा भैन जी, घबराइये नहीं। घबराने की क्या जरूरत है?" नत्थासिंह ने हाथ जोड़ कर कौशल्यादेवी का समाधान किया—"आप जाओ, अपने बाल-बच्चों, घर-बार को देखो। मैं इन बहन-बेटियों के नाम-धाम दर्ज करवा दूंगा, फिक्र मत करो। इन बीबियों (बहन-बेटियों) को कुछ पानी-वानी, रोटी-प्रसादा मिला कि नहीं?"

कौशल्यादेवी से नकारात्मक उत्तर पाकर नत्थासिंह बहुत करुणा से बोले—"वाहगुरु-वाहगुरु! सतनाम-सतनाम! पहले तो यही करना चाहिये न।"

कौशल्यादेवी ने नत्थासिंह को दिखाकर शेखूपुरा से आयी छः स्त्रियों को गिन दिया और चली गयी।

नत्थासिंह ने दीवार से सिर लगाये बिलख-बिलख कर रोती हुयी चिन्ती को सम्बोधन किया—"बेटी, तू उस वाहगुरु, कर्तार का भरोसा कर। ऐसे पापी मनुखों का क्या भरोसा है ? अपने कर्मों का ऐसा फल पा रहे हैं, फिर भी पाप और अन्याय करने से नहीं डरते, सतनाम-सतनाम। आओ, बिबियो-भैणों, चलो प्रसादा छक लो (भोजन ग्रहण कर लो)।" नत्थासिंह ने स्त्रियों से अनुरोध किया।

चिंती के रोने का कारण जान कर स्त्रियों का मन खाने-पीने के लिये नहीं हो रहा था परन्तु नत्थासिंह के सस्नेह अनुरोध ने प्रातः से केवल दो मुट्ठी चने के आहार से बनी हुई उनकी भूख-प्यास को चेता दिया। स्त्रियाँ उठ कर उसके पीछे-पीछे चल दीं।

इमारत के पिछवाड़े दूर तक छोलदारियाँ ही छोलदारियाँ और एक बड़ा शामियाना लगा हुआ था। शामियाने के नीचे कनातों से घिरी जगह में कुछ स्त्रियाँ बहुत बड़े-बड़े तवों से ढके चूल्हों पर रोटियाँ सेक रही थीं। दो स्त्रियां एक बड़ी परात पर झुकी हुई उसे धो रही थीं। चूल्हों के पीछे दाल के बड़े-बड़े देग थे। रोटी बनाती स्त्रियों के चेहरों पर दुख और निराशा नहीं, सहानुभूति, तत्परता और उत्साह था। शामियाने के एक कोने में लगे नल के चारों ओर पानी फैल कर कीचड़ हो रहा था। दूसरे कोने में जूठी पत्तलों और सकोरों के ढेर थे। तारा और उसके साथ की स्त्रियों ने नल से मुँह-हाथ धोकर ओढ़नियों से पोंछ लिये

पंक्तियों को जिमाने के लिये बिछायी गयी टाट की पट्टियों पर स्त्रियों के बैठते ही एक स्त्री ने उनके सामने पत्तलें और सकोरे रख दिये। रोटियां और दाल परोस दी गयी। एक मास से अधिक समय तक मोटी, रूखी-सूखी रोटी खाते रहने के बाद यह भोजन तारा के लिये पकवान के समान था। खाते समय उसे बार-बार चिंती के रोने की याद आ रही थी। स्मृति में उसका रोना सुनाई दे जाता था।

नत्थासिंह ने हाथ जोड़कर रोटी पकाती हुई स्त्रियों को संबोधन किया—"बिबियो भैणों, धियो, (प्यारी बहनो-बेटियो) तुम्हारा सेवाभाव धन्य है। तुम्हें कष्ट तो होगा पर महाराज सतगुरु की इच्छा से अभी दो-ढाई सौ भाई बहिन और आगये हैं। चालीस-पचास जरूरतमंद भी हो सकते हैं। आप बहनें-बेटियां मिलकर आठ-दस सेर आटा और पका डालें तो रात भर की चिंता मिट जाये।"

"ओह !" एक युवती ने विस्मय से खुल गये होठों से आतंक प्रकट किया

और फिर हंस पड़ी । दूसरी नवयुवती चूल्हों के समीप पड़ी आटे की बोरी की ओर झुककर बोली—"कोई बात नहीं जी, सब हो जाता है। अभी आटा गूंध देती हैं। सेवा का ऐसा अवसर तो बहुत पुण्य से मिलता है।"

तारा की दृष्टि उस की ओर उठी और फिर पत्तल पर झुक गयी।

चूल्हे से रोटियाँ उतारती प्रौढ़ा ने बोरी से आटा निकालने के लिये बढ़ी स्त्री को रोक दिया और अंगोछे से ढकी पराल की ओर संकेत कर कहा—"अभी कोई जरूरत नहीं है। 'खूह-सुनियारिआँ' से बहनों ने दस सेर आटे की रोटियां भेज दी हैं। वे भी तो काम में आनी चाहिये।"

शेखूपुरा से आई स्त्रियों को भोजन कराकर नत्थासिंह छोलदारी के सामने वापस आये तो वहाँ आठ-दस आदमी ही शेष रह गये थे। उनके नाम-धाम जा चुकने पर नत्थासिंह ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—"बीबियो भैणों, धियो, अपना-अपना नाम, पीहर-ससुराल के पूरे पते लिखवा दो। तुम लोगों के परिवारों के लोग किसी कैम्प से आये होंगे तो रजिस्टर देखकर तुम्हें उनका पता दे दिया जायेगा कि वे कहाँ गये है। उन्हें भी खबर देने का यत्न करेंगे। रेडियो से भी खबर करवा देंगे कि तुम्हें आकर संभाल सकें या खबर दें कि तुम्हें कहाँ पहुंचाया जाना चाहिये।"

सब स्त्रियाँ तारा की ओर देखने लगीं। उन्हें अपना नाम-धाम मर्दों को बताते संकोच हो रहा था। सब जानती थीं, तारा ही यह काम कर सकती है। वह शहर की लड़की अंग्रेजी, फारसी, शास्त्री तीनों इल्म जानती है।

हिन्दू स्त्रियों से उन के पति जेठ और ससुर के नाम जान लेना सरल नहीं होता। डी. ए. वी कालेज कैम्प में जो कठिनाई कौशल्यादेवी के सामने आयी थी, वह कठिनाई तारा के सामने फिर आई। अमरकौर और सतवंतकौर के परिवार परिचित थे। सतवंत ने अमरो के पति-ससुर के और अमरो ने सतवंत के पति-ससुर के नाम बता दिये। वंती ने जैसे-तैसे पति और जेठ का नाम मुख से बोल दिया। विशनी ने बहुत संकोच से बताया—एक हरा-हरा पंछी गंगाराम बोलता है न, चूरी खाता है! तारा ने समझ लिया तोताराम।

तारा से भी नाम-धाम पूछा गया। उसने सिर झुकाये उत्तर दिया—"मुझे किसी को खबर देने की जरूरत नहीं है। आप मुझे यहाँ ही या किसी दूसरी जगह कोई भी काम दे दीजिये। अपना निर्वाह कर लूंगी।"

लिखा-पढ़ी करने वालों ने परस्पर अंग्रेजी में बात की—"शायद इसने सुन लिया है कि ऐसी अभागी स्त्रियों को न मायके के लोग न ससुराल वाले स्वीकार करना चाहते।"

तारा की दृष्टि उन की ओर उठ गयी। बात करने वालों ने अनुमान किया, शायद लड़की अंग्रेजी भी जानती है। एक जवान तारा को सुनाकर अंग्रेजी मे बोला—"जैसा उचित समझो। हाँ, कुछ ऐसे जाहिल जरूर है पर सब लोग इतने क्रूर नही है। तुम लोगों का तो कुछ कसूर नही है, हमे तो तुम्हारे प्रति पूर्ण सहानुभूति और आदर है। अपना नाम लिखवा दो ताकि संख्या का हिसाब रह सके।"

दूसरे जवान ने सब स्त्रियों को एक बडे कमरे में पहुंचा दिया। कमरे मे चिती और दूसरी दो युवतियां एक ओर दीवार से पीठ लगाये बैठी थीं। कमरे के फर्श पर दरी बिछी हुयी थी। कमरे की दीवार पर लगी बिजली की बत्ती पर बहुत से पतगे जूझ रहे थे। जवान ने लौटते हुये तारा से कहा—"आप लोग चाहें तो बिजली बुझाकर दरवाजे बन्द कर ले। गरमी मालूम हो तो पखा चला लें।"

कमरे मे अभी काफी गरमी और उमस थी। तारा ने दीवार पर पखे का रेगुलेटर घुमाकर पंखा चला दिया।

बिशनी और केमरो अब तक गर्दन उठाये बिजली की बत्ती की ओर एक-टक देख रही थी। पखे की आहट सुनकर और हवा अनुभव कर बिशनी अपनी गर्दन पीछे डाल पंखे की ओर देखने लगी। वह अपने विस्मय को वश नहीं कर पा रही थी।

दरवाजे के सामने बराम्दे मे अब भी कई लोग आ-जा रहे थे।"

"दरवाजा बन्द कर ले तो बेफिक्री से सो जायें" बती ने तारा को सुझाया। समर्थन पाकर वह उठी और चिटखनियाँ लगा दी।

मर्दो से पर्दा हो जाने पर स्त्रियों ने अपनी ओढ़नियों को गेंडुलियों की तरह लपेट लिया और सिर के नीचे तकिये की तरह रख कर दरी पर पसर गयीं। बिशनी अब भी बहुत ध्यान से पखे की चाल की ओर देख रही थी।

बिजली की बत्ती पर मंडराते पतंगे पखे की हवा से स्त्रियो के शरीरो पर गिर रहे थे। तारा को बिजली का चौधियाता प्रकाश अनावश्यक और असुविधाजनक लग रहा था। उसने बंती और सतवंत से पूछा—"रोशनी की क्या जरूरत है, बुझा दूं!"

हाँ बहना, तू जानती है तो बुझा दे। हमें तो मालूम नहीं।"

बिशनी किसी की बात न सुनकर गर्दन पीछे डाले पखे की ओर ही देख रही थी। तारा ने उस के उत्तर की परवाह न कर बटन दबाकर प्रकाश बुझा दिया।

"हाय!" बिशनी भय से अपनी झंगी देहाती बोली में चीख उठी।

तारा का हाथ अभी स्विच पर ही था। उसने फिर प्रकाश कर दिया। बिशनी विस्मय और आतंक से भौंचक रह गयी थी।

सतवंत बोल उठी—"ठेठ गांव की है। उसने अभी बिजली कहाँ देखी है। हम तो कई बार शहर में आयी-गयी हैं, सब देखा है।" उसने बिशनी से पूछ लिया, "बहना, कभी रेलगाड़ी पर चढ़ी है ?"

"चढ़ी तो नहीं।" बिशनी ने उत्तर दिया, "पर देखी हैं। हमारे गाँव से 'भाखा' जाते थे तो रेल की लोहे की लकीरें लाँघ कर जाते थे।"

सतवंत ने फिर विज्ञता से प्रश्न किया—"उस महाराज जी की महिमा है। शहरों में उनकी बहुत कुदरत है। उँगली हिला दो, पानी बह चलता है। जहाँ रोटी खायी, लोहे से घर-घर पानी बह रहा था।"

तारा के होठों पर मुस्कान आ गयी। उसने बिशनी को स्विच दिखाकर बताया—"घबराओ नहीं, ऐसे करने से रोशनी बुझ जायेगी और फिर ऐसे दबा देने से रोशनी हो जायेगी।" तारा रोशनी बुझाकर लेट गयी।

अंधेरे में आंखें मूंद कर लेट जाने पर भी तारा को नींद नहीं आ रही थी। अब सोचने का अवसर आ गया था।

दूसरे दिन पहला पहर चढ़ जाने पर वंती ने तारा से अनुरोध किया—"बीबिये भैणे (प्यारी बहन) चल, हम लोग खुद ही घूमकर कुछ पता लें। महाराज की कृपा से जग्गी के भाइया, (पिता) मेरे जेठ, सास का कहीं कुछ पता लग जाये।"

वंती का पति और जेठ अपनी दुकान के लिये बजाजी खरीदने प्रतिवर्ष या वर्ष में दो बार अमृतसर भी आते थे। अमृतसर में उनके आढ़तिये थे। विवाह के बाद वंती भी एक बार पति और सास के साथ अमृतसर में दुर्गियाणा और दरबार साहब के दर्शन के लिये आयी थी।

तारा के मन में कल्पना थी कि लाहौर की भाँति अमृतसर में भी लड़कियों के बहुत से स्कूल होंगे। उसे कहीं न कहीं, मामूली तनख्वाह पर ही सही, काम मिल जायेगा। उसने छोलदारी में जाकर लड़कियों के स्कूलों के पते जानने चाहे।

छोलदारी में उपस्थित एक नौजवान ने तारा का प्रयोजन समझा। उसकी अवस्था और चेहरे को ध्यान से देख कर सहानुभूति से कहा—"बहिन जी, स्कूल तो आजकल सब बंद हैं। सभी जगह शरणार्थी ठहरे हुये हैं। आप को कहीं जाना हो तो साथ चल कर रास्ता बता सकता हूं।" नौजवान ने बताया,

"मुझे लोग 'देव' पुकारते है। मै धर्मसमाज कालेज का विद्यार्थी हूं।"

देव ने अपनी साइकल ले ली। तारा और बंती की सहायता के लिये साथ चल पड़ा। फाटक से बाहर निकलते ही उसने तारा और बंती के लिये टाँगा रोक लिया। बंती घबरा गयी। उसने तारा के कान में कहा—"हाय, हम लोगों के पास दाम कहाँ है?"

"कोई बात नहीं, बैठ जाओ।" तारा ने बंती को परामर्श दिया।

तारा लाहौर के आधुनिक शिक्षित लोगों की संगति में रहने के कारण जानती थी कि पुरुषों से इस प्रकार का सौजन्य स्वीकार कर लेना स्त्रियों का अधिकार है। बंती सदा गाँव में रहने के कारण ऐसे अधिकार से परिचित नहीं थी। देव ताँगे के साथ अपनी बाइसिकल चला रहा था।

देव और तारा ने बंती के साथ कई कैम्पों में जाकर दूसरे लोगों की मदद से भी बंती के परिवार का पता ढूंढ़ने के लिये, आने-जाने वाले शरणार्थियों के नामों की लिस्टों और रजिस्टरों की पड़ताल की। देव को बिना किसी अपराध के दुख भोगती स्त्रियों के प्रति बहुत सहानुभूति थी। वह उन की सहायता के लिये सब कुछ करने को तैयार था। वह उन्हें टाँगे पर लिये संध्या तक एक कैम्प से दूसरे कैम्प में घूमता रहा।

देव ने दिन भर, तारा और बंती के साथ कैम्पों के रास्ते में चलते अपने विषय में कोई वात न की थी। वह अमृतसर में देखे नृशंस काण्डों की ही चर्चा करता रहा था। बहुत से लोग शान्ति-रक्षा के लिये भरसक प्रयत्न करते रहे थे फिर भी जो कुछ हो गया था, वह स्त्रियों के सामने कह देना सम्भव न था। देव के नवयुवक मस्तिष्क में आँखों देखी वीभत्सता के प्रति इतनी ग्लानि थी कि मन का बोझ हल्का कर पाने के लिये बातें होठों पर आ ही जाती थीं। वह केवल संकेतों से ही बता देना चाहता था कि पश्चिमी पंजाब की वीभत्स और घृणित घटनाओं को सुन कर हिन्दुओं का रक्त खौल उठा था। खून खौल उठने पर उस से कहीं वीभत्स काण्ड हिन्दुओं ने स्वयं कर दिखलाये। स्त्रियाँ वेचारी दोनों ही भागों में क्रोध और बदले की शिकार वनीं। देव पुरुष होने के कारण स्त्रियों के सामने लज्जित और अपराधी अनुभव कर रहा था। पुरुष होने के अपराध का प्रायश्चित करने के लिये वह यथाशक्ति सभी संत्रस्त स्त्रियों की सहायता करने के लिये व्याकुल था। देव वंती को 'माता जी' और तारा को 'वहिन जी' सम्वोधन करने लगा। संध्या समय वह उन्हें भोजन के लिये अपने घर ले गया।

देव के पिता संतराम वैंक में एकाउन्टेंट थे। देव की माँ शिक्षिता थी।

देव की माँ ने वंती और तारा के दयनीय वस्त्रों की ओर ध्यान न दे, उन के दुर्भाग्य का कोई संकेत न कर, उन का आदर सम्मानित आत्मीयों की भाँति किया।

देव की माँ ने अपने लड़के के सम्बन्ध में बताया—"काके ने एफ० ए० की परीक्षा पास की है। फर्स्ट डिवीजन में पास हुआ है। अब कालेज बन्द हैं तो दिन भर शरणार्थी कैम्पों में काम करता है।" उस ने अपने मुहल्ले के, देव के साथी विद्यार्थियों की भी प्रशंसा की, "बेचारे लड़के बहुत काम कर रहे हैं।"

तारा अपने सम्बन्ध में कुछ न बताना चाहती थी परन्तु मुख से निकल ही गया—इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा देनी थी। सदा फर्स्ट डिवीज़न में पास होती रही है।

देव दूसरे दिन प्रातः ही वंती और तारा को शरणार्थियों के दूसरे कैम्प दिखा लाने के लिये आ गया था। वंती रात भर अपने पुत्र और पति को खोजने के उपाय सोचती रही थी। उसे याद था, सात बरस पहले वह पति और सास के साथ अमृतसर आयी थी तो एक धर्मशाला में ठहरी थी। एक दिन दोपहर में उन के आढ़ती ने उन्हें भोजन के लिये 'गुरुबाज़ार' में बुलाया था। बहुत भीड़ से भरा, तंग सा बाज़ार था। नीचे दुकान थी और जीना चढ़ कर ऊपर घर था। वंती को आढ़ती का नाम या दुकान का नाम भला कैसे याद रह सकता था परन्तु जानती थी कि आढ़ती के यहाँ से बराबर माल आता रहता था। कभी पत्र लिख कर भी माल मंगा लिया जाता था।

वंती को विश्वास था—उस का पति, जेठ और सास अमृतसर जरूर आये होंगे। गाँव में झगड़ा होने की आशंका हुयी थी तब भी—जेठ अमृतसर जाने की ही बात कर रहा था। वे लोग अमृतसर आये होंगे तो आढ़ती के यहाँ जरूर गये होंगे।

देव वंती और तारा को तीन बार गुरुबाजार में एक सिरे से दूसरे सिरे तक ले गया। वंती कुछ न पहचान सकी। वह उस बाजार में केवल एक बार, सात बरस पहले पति के पीछे-पीछे, चेहरे पर हाथ भर लम्बा घूँघट खींचे, नज़रें झुकाये सास का हाथ थामे आयी थी। अब क्या पहचान सकती थी?

देव के पिता संतराम ने वंती की अपने आढ़ती को पहचानने और ढूंढ़ने की इच्छा की बात सुनी तो करुणा से बोले—"यह कैसे सम्भव है। हज़ारों आढ़तिये हैं। उन के यहाँ लाखों व्यापारी आते-जाते हैं। यह तो चावल के गोदाम में से बिना चिह्न का चावल ढूंढ़ने जैसी बात है।"

देव के साथियों ने सुना कि तारा बी० ए० की विद्यार्थी है। इस नाते

उस की सहायता के लिये दो और विद्यार्थी भी आ जुटे। तारा की सहायता का अर्थ था बंती की सहायता। देव और उस के साथियों ने गुरुबाजार के छोटे-बड़े सब आढ़तियों के यहाँ पता लेना आरम्भ किया। तीन दिन के परिश्रम से उन्होंने ढूँढ़ निकाला कि शेखूपुरा ज़िला के 'चिम्मोकी' गाँव के गोपालदास-मनोहरदास के यहाँ गुरुबाजार के चेतराम-पन्नालाल की आढ़त से बजाजी का माल जाता था। दोनों भाई अगस्त में आये थे। कारोबार की खोज में अम्बाला जाने की बात कह रहे थे। इस से अधिक कुछ पता न लग सकता था।

बंती अम्बाला जाकर पति-पुत्र को खोजने के लिये व्याकुल हो उठी।

कैम्प के प्रबन्धकों को पीड़ित स्त्रियों के प्रति पूरी सहानुभूति थी। वे उन की सहायता के लिये सब कुछ करने के लिये तैयार थे। उन्होंने सतवंत और अमरो के परिवार का पता ढूँढ़ निकाला था। उन के परिवार लोहगढ़ कैम्प में ठहर कर जगरावाँ गये थे। उन्हें सतवंत और अमरो के मिल जाने की सूचना भेज दी गयी थी। उन के आने तक सतवंत और अमरो को भोजन और आश्रय देने के लिये तैयार थे परन्तु अपने मायके और ससुराल का पता बता देने से इन्कार करने वाली 'अवारा' जवान लड़की को शरण देने की जोखिम उठाने के लिये वे तैयार नहीं थे।

देव के माता-पिता तारा की मानसिक स्थिति और भावना को समझ सकते थे। वे जानते थे कि जिस समाज में स्त्री या लड़की दूसरों के अपराध का दण्ड पाती है, कोई समझदार स्त्री स्वयं निर्दोष होकर भी, दण्ड पाने मात्र के लिये ही अपना परिचय क्यों दे? उन्हें तारा की चुप में समाज द्वारा कुचल दिये जाने का विरोध, आत्म-सम्मान बनाये रखने या आत्म-निर्भर बने रहने की इच्छा ही दिखायी दी। उन्हें तारा से सहानुभूति थी।

तारा को देव के परिवार के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से बहुत सान्त्वना मिली थी। यदि वे लोग कह देते तो तारा कोई दूसरा सहारा मिल सकने तक उन लोगों के यहाँ रसोई बना देने, बर्तन माँज देने और कपड़े धो देने के लिये ही रह जाती परन्तु वे इतनी पढ़ी-लिखी लड़की से ऐसा काम करवाते? पंजाबी मध्य-वर्ग के परिवारों में नौकर-महाराजिन या महरी अनिवार्य भी नहीं होते। भद्र महिलायें कलाइयों पर छः या आठ तोले सोना पहने रहने पर भी घर का सब तरह का काम अपने हाथों करके और बढ़िया पोशाक पहन कर सम्मानित रूप में घूम-फिर सकती है। महंगी के जमाने में देव के परिवार के लिये ऐसा बोझ समेट लेना दूरदर्शिता न होती।

बंती ने तारा को बाहों में लेकर बार-बार आग्रह किया—"मेरी बहिन, तू मेरे साथ चल। मुझे तेरा ही सहारा है। मैं अनपढ़ गंवार तो किसी से दो बात करने लायक भी नहीं। तू मेरी छोटी बहन है। महाराज ने हमें दुख में बहनें बनाया है तो शेष आयु भी साथ ही रहेंगी। मेरा परिवार मिल जाये तो दोनों को सहारा हो जायगा। एक टुकड़ा भी पायेंगी तो आधा-आधा खायेंगी, खाती ही थीं। तू जानती है, हमने कैसी अवस्था में एक दूसरे का सहारा पाया है···।"

बंती और तारा अमृतसर से अम्बाला जाने के लिये तैयार हो गयीं। उन के सिरों पर शेखूपुरा में, केशोराम की हवेली की कैद से निकाले जाते समय दिये गये मोटे दुपट्टों के अतिरिक्त कोई भी कपड़ा बिना फटा नहीं था। कपड़ों की अवस्था से गरीबी नहीं, भिखारीपन प्रकट होता था। देव की माँ ने उन्हें नये कपड़े न दे सकने के लिये संकोच प्रकट करते हुये अपने दो जोड़े सलवार-कमीज़ और दो दुपट्टे उन के लिये निकाल दिये। संकोच से ही विदाई के समय दोनों की मुट्ठियों में पाँच-पाँच रुपये के नोट खोंस कर बोलीं—"इस महंगाई में पाँच रुपये से बनता ही क्या है। बहना, रख लो। किसी समय दो-चार पैसे से भी कुछ बन जाता है।"

बंती और तारा को पूर्व की ओर जाने वाली गाड़ी पर बैठाने के लिये देव के साथ बाबू सन्तराम भी स्टेशन पर आये थे। अमृतसर के स्टेशन पर जहाँ तक भी दृष्टि जाती, असंख्य मनुष्य भरे थे। स्टेशन मधुछत्र की भाँति भनभना रहा था। मनुष्य मनुष्यों को पाँव तले रौंद रहे थे। वातावरण पुकारों, चीख-चिल्लाहट, क्रन्दन और दुर्गन्ध से बोझल था। प्लेटफार्म मुसाफिरों और उन के सामान से अटे हुये थे। गाड़ियाँ बहुत कम दिखायी देती थीं। पूर्व से पश्चिम ओर जाने वाली गाड़ियाँ मुसलमानों से भरी स्पेशल ट्रेनें होती थीं। इन गाड़ियों को उत्तेजित भीड़ के आक्रमण से बचाने के लिये, प्लेटफार्मों से दूर लाइनों पर बहुत तेज चाल से लाहौर की ओर निकाल दिया जाता था।

पश्चिम से भारतीय सेना की रक्षा में हिन्दुओं से भरी हुयी स्पेशल ट्रेनें आती थीं। इन गाड़ियों के इंजन के आगे और अन्त में भी शहतीर ढोने वाली सपाट गाड़ियों पर रेत के बोरे रख कर मोर्चे बने रहते थे। इन स्पेशल ट्रेनों को भी अमृतसर में रोके बिना पूर्व की ओर रास्ता दे दिया जाता था। अमृतसर, सड़क से आने वाले शरणार्थियों से ही इतना भर गया था कि रेल से आने वालों को उतरने देना उचित नहीं था।

पंजाब के व्यापार का केन्द्र अमृतसर अब भारत का सीमान्त बन गया था। अमृतसर से भारत मे पूर्व और दक्षिण की ओर जाना चाहने वाले यात्रियों की संख्या सैकड़ों गुणा अधिक हो गयी थी। विस्थापित पंजाबी पाँव रख सकने के स्थान के लिये कही भी चले जाने के लिये आतुर थे। उन के सामने करने या मरने का प्रश्न था।

अमृतसर से पूर्व की ओर जाने वाली गाड़ियों की संख्या पूर्वापेक्षा दशमांश भी नही रही थी। विभाजन से पूर्व उत्तर भारत मे रेल के इंजन के ड्राइवर और फायरमैन का कठिन काम अधिकतर मुसलमान करते थे। वे सभी पाकिस्तान चले गये थे और पजाब में आते आतंक अनुभव करते थे।

बाबू सन्तराम और देव वती और तारा को लेकर बहुत सुबह स्टेशन पहुच गये थे। एक बहुत लम्बी सवारी के और माल के डिब्बो को जोड़ कर तैयार की गयी ट्रेन पूर्व जाने के लिये एक प्लेटफार्म पर लाकर खड़ी कर दी गयी। गाड़ी के सब डिब्बे पहले से ही इतने भरे हुये थे कि किसी और व्यक्ति के भीतर घुस सकने के लिये स्थान नही था। भीड़ जाने कब से गाड़ी मे बैठी हुयी थी। गाड़ियों की छतो पर भी लोग अपना असबाब जमा कर बैठने का स्थान बनाये हुये थे। गाड़ी मे धँस जाने और छत पर स्थान पा लेने के लिये झगड़ा और मार-पीट तक हो रही थी। हज़ारों स्त्री-पुरुष, बच्चे प्लेटफार्म पर खड़े थे। लोग जैसे भी हो, अमृतसर से पूर्व की ओर चले जाना चाहते थे। बाबू सन्तराम और देव विवश थे। मर्दों को छतों पर चढ़ा दिया जा सकता था परन्तु स्त्रियों को छतों पर कैसे बैठा देते।

सहसा बहुत ऊंची पुकार सुनायी दी। कोई तगड़ा जवान मुख के आगे अखबार से बनाया भोंपू रख कर ऊंची आवाज मे बोल रहा था—"सब बुजुर्गों और भाइयों के सामने हाथ जोड़ कर विनती (विनती) है। हम सब लोग मुसीबत मे हैं। मुसीबत मे सब को सब का खयाल रखना चाहिये। सब की माता-बहनों को अपनी माता-बहनें समझना चाहिये। सब के बाल-गोपाल को अपना बाल-गोपाल समझना चाहिये। सब बुजुर्ग भाइयों से हाथ जोड़ कर बेनती है कि सब जवान मर्द छतों पर मोर्चा जमायें। सब तीमियों (अबलाओं), बाल-बच्चों और बीमारो को भीतर बैठने दे। जो तगड़ा जवान मर्द भीतर बैठे हराम की औलाद होगा....।"

"ठीक है! ठीक है!" समर्थन का कोलाहल उठ खड़ा हुआ।

ललकारें सुनायी देने लगी—"जो जवान मर्द भीतर बैठे! जो जवान मर्द गाड़ी में बैठे उस की....!" बीभत्स गालियां परन्तु नेक इरादे से दी जाने लगी।

वंती और तारा को एक सवारी गाड़ी में, दब कर घुस जाने का अवसर मिल गया। बाबू सन्तराम और देव ने उन लोगों की उचित सहायता न कर सकने के लिये खेद प्रकट किया, शुभ-कामनायें कीं, पत्र अवश्य लिखने का अनुरोध किया, फिर मिलने की आशा भी प्रकट की और नमस्ते करके चल दिये।

सितम्बर की चटखती धूप में गाड़ी खूब तप गयी। गाड़ी में बोरियों की तरह भरी हुयी स्त्रियाँ पसीना-पसीना हो रही थीं। वे एक दूसरे के दबाव से चिढ़ कर लड़ने लगतीं और दूसरे साँस में सहानुभूति से बातें करने लगतीं। कभी कोई पुरुष उन्हें 'माताओ, बहनो, बेटियो' सम्बोधन कर बाल्टी-लोटे से जल पिला जाता। जल पीने पर तुरन्त ही रोनों से फूट निकलता। प्लेटफार्म पर खोमचे वाले, मक्खियों से भिनभिनाते खाना को ताजा और गर्म बताते हुये, खिड़कियों के समीप से निकल जाते। तीन-चार छोकरे खजूर के पत्तों की बनी सस्ती पंखियाँ बेच रहे थे। पंखियों की माँग बहुत थी। दो पैसे की पंखी के दो आने माँगे जाने पर लोग दो आने देते समय दस-बीस गालियाँ भी दे रहे थे।

तारा को लगा, गाड़ी में शायद वही चुप थी। स्त्रियाँ हाथ की पंखी से हवा लेती हुईं, कोलाहल में अपनी बात बना सकने के लिये ऊंचे स्वर में बोल रही थीं। पश्चिम पंजाब की अनेक बोलियों डेरावाली, मुल्तानी, झाँगी के शब्दों और उच्चारणों का गोलमाल था। तारा बहुत कम समझ रही थी। सांझी बोली आत्मीयता बना रही थी। कोलाहल में बच्चों के रोने का स्वर सब से ऊंचा था। प्रायः अचिन्तनीय भय और कष्टों की बातें हो रही थीं। वंती समीप बैठी स्त्रियों को देव और उसके परिवार की सज्जनता की बात सुना उन्हें 'देवता' कहकर प्रशंसा कर रही थी। दूसरी स्त्रियाँ उस से भी अधिक उदारता के उदाहरण बताने लगीं और स्वयं किये उपकारों का भी बखान करने लगीं।

गाड़ी में भरी स्त्रियाँ पसीने से लथपथ और निढाल हो गयी थीं। बहुत देर बाद गाड़ी में इंजन जोड़ा गया। इंजन ने चीख-चिंघाड़, गर्जन-तर्जन द्वारा बोझ बहुत अधिक होने की शिकायतें कीं, क्रोध और बेबसी में बहुत सी फुंकारों से धुएं के बादल छोड़े। फिर लाचार गाड़ी को धीमे-धीमे खींचना शुरू किया। कुछ दूर चलकर गाड़ी की गति टमटम टांगे, रिक्शा के बराबर हो गयी। मनचले नौजवानों के लिये कौतुक हो गया। वे गाड़ी से कूद जाते और दौड़कर गाड़ी पर चढ़ जाने का करतब दिखाने लगे। जीवन की प्रत्येक अवस्था में विनोद और

कौतुक खोज लेने की मनुष्य की प्रवृत्ति दबी न रह सकी। कहकहे भी सुनाई देने लगे। छतों पर बैठे लोग दोनों कानों पर हाथ रख कर ऊंचे स्वर में टप्पे गाने लगे—

"सावन में पड़े झूले, तुम हमें भूल गये, हम तुम्हें नहीं भूले।"

किसी दूसरे ने होड़ ली—"क्यों छुप-छुप बैहन्दे हो ! (छिप-छिप कर क्यों बैठते हो।) अक्खियाँ तों की छिपणा, जद दिल विच रैहन्दे हो ! (जब दिल में बसना है तो आंखों से क्या छिपना)

तारा का मन टीस उठा। याद आगया, अपने व्याह की खुशी में शीलो और सीता को टप्पे गाते सुना था। दो मास में क्या-क्या सहा।""जीवन क्या है; फिर भी प्रेम की बातें""सब व्यर्थ हैं। क्या मालूम, किसने क्या सहा है?

गाड़ी अमृतसर से चल कर कुछ स्टेशनों को बिना रुके लांघ गयी। फिर छोटे-छोटे स्टेशन छोड़ कर रुकने लगी। प्रायः सभी स्टेशनों पर लोग बाल्टियाँ लिये जल या लस्सी पिलाने के लिये गाड़ी को घेर लेते थे। गाड़ी में भरी सवारियों और सामान के कारण संडास में घुस सकना संभव न था। माल के डिब्बों में संडास थे ही नहीं। गाड़ी के रुकने पर छतों से मर्द और गाड़ी के भीतर से स्त्रियाँ खुले में ही अपने कपड़े समेट कर निबटने के लिये बैठ जाते। लज्जा और संकोच अनुभव होने पर अपनी आंखें मूंद लेने के सिवा कोई उपाय न था। कुछ स्टेशनों पर स्थानीय लोग नमकीन रोटियां अथवा दाल-रोटी बांट कर सत्कार कर रहे थे। एक स्टेशन पर पूरी-तरकारी भी बांटी गयी। एक स्टेशन पर आतिथ्य करने वाले हलवा भी बांट रहे थे।

स्टेशनों पर आतिथ्य करने वाले लोग पीड़ित शरणार्थियों के सत्कार का पूरा संतोष पाये बिना गाड़ी को चलने से रोके रहते थे। शरणार्थी यात्रियों को भी उतावली नहीं थी। बहुत कम लोगों को अनुमान था कि वे कहाँ जा रहे थे। उन्हें निश्चित समय पर कहीं पहुंचने की चिंता नहीं थी। वे भाग्य को अंगूठा दिखाकर हंस रहे थे, भाग्य उन्हें कुचल नही सका। वे चिंता करके थक गये थे। अब उन्हें किसी बात की चिंता न थी।

परन्तु भीड़ में दबी वंती को जल्दी थी। उसे अम्बाला पहुंचने की चिंता और उतावली थी पर क्या कर सकती थी, क्या कह सकती थी। वह गाड़ी की मंथर और शिथिल गति से क्षुब्ध हो रही थी। जो रेलगाड़ी, तेजी की कल्पना की उपमा थी अब बोझ से रेंग रही थी। गाड़ी अमृतसर से चल कर आठ पहर में 'फिल्लौर' स्टेशन तक ही पहुंची थी। वंती को कुछ अनुमान नही था कि अम्बाला कहाँ, कितनी दूर होगा? इस विषय मे चतुर तारा भी

लगीं। दोनों निश्चय कर चुकी थीं कि नयी अपरिचित जगह में, जब तक दूसरा आश्रय नहीं मिलता, शरणार्थी कैम्प में ही शरण लेनी होगी।

अम्बाला शहर स्टेशन पर बहुत मामूली सी भीड़ गाड़ी से उतरी। पूरी गाड़ी कुरुक्षेत्र जा रही थी। बंती और तारा अपनी छोटी-छोटी पोटलियाँ बगल में दबाये, एक दूसरी का हाथ पकड़े, दूसरे लोगों के साथ-साथ स्टेशन से बाहर निकलीं।

बंती ने तारा का हाथ मज़बूती से पकड़ कर उसे एक ओर खींचते हुये पुकार लिया—"साधू! वे साधू! ओ साधूराम्मा।"

"लेल्लो, सस्ते ताजे-भुज्जे, छिल्ले-बदाम दी पुड़ी! लेल्लो जी टके-टके!" (लेलो खस्ता ताजे-भुने, छिले बादाम की पुड़िया। लेलो जी दो-दो पैसे में, दो-दो पैसे में) एक छोटा लड़का ऊंचे स्वर में लय से पुकार रहा था। बंती पुकार लगाते लड़के की ओर लपक गयी।

आठ-नौ बरस का बालक कमीज़-जाँघिया पहने, गले से लटकी झोली से मूँगफली की पुड़िया बेच रहा था।

बालक ने पुकार सुन कर बंती की ओर देखा। वह दौड़ कर बंती की कमर से लिपट गया—"चाच्ची, चाच्ची! तू कहाँ थी? कब आयी, बहन सत्तो कहाँ है?"

बंती साधू को बाहों में जकड़ कर रो पड़ी।

साधू पूछे जा रहा था—"चाची तू कहाँ थी? क्या अभी आयी? बहन सत्तो कहाँ है?"

बंती ने साधू का मुख ठोड़ी से उठा कर उस का माथा चूम कर पूछा—"मेरा जग्गी यहाँ ही है न? जग्गी का भाइया (पिता) और उस का ताया कहाँ है? मुझे उन के पास ले चल।"

"गोपाल चाचा और मनोहर चाचा तो दिल्ली चले गये। परसों मनोहर चाचा आया था। लाल्ला (पिता) को मालूम होगा।" साधू ने उत्तर देकर फिर पूछा, "बहन सत्तो कहाँ है?"

साधू के प्रश्न की उपेक्षा कर बंती ने अनुरोध किया—"चल मुझे अपने लालने और बेबे (माँ) के पास ले चल।"

लड़के का चेहरा लटक गया, आँखें डबडबा आयीं—"बेबे यहाँ आकर मर गयी। गाड़ी में बहुत बीमार हो गयी थी। सत्तो को याद करके रोती रहती थी। पेट में बहुत मरोड़ उठते थे। बेहोश हो जाती थी।" साधू ने आस्तीन

से आँखें पोंछ लीं, "लाल्ला वहाँ चौक में दुकान पर है। आ चल, ले चलूं।"

बंती एक हाथ से तारा का हाथ पकड़े दूसरा हाथ बालक के कन्धे पर रखे उस की माँ के बारे में पूछती उस के साथ चल दी।

साधू ने अपनी झोली से दो पुड़ियाँ निकालीं। बंती की ओर बढ़ा कर बोला—"ले चाची, मूंगफली खा। मैं स्टेशन के सामने सड़क पर रुपये-सवा रुपये की बेच लेता हूं।" उस के स्वर में गर्व था। वह माँ की बात भूल गया।

चौराहा सामने दिखायी देने पर साधू दौड़ पड़ा। कुछ कदम आगे जा कर उत्साह से पड़ोसी चाची के आ जाने की खबर पिता को दी। साधू का पिता बूढ़ामल दुकान से उतर आया।

बंती ने साधू की बहिन सत्तो की मृत्यु का समाचार देना था। उसे साधू की माँ की मृत्यु का समाचार मिल चुका था। वह बूढ़ामल को देख घूंघट से मुँह ढक कर ज़ोर से चीख उठी।

बूढ़ामल अरोड़ा था। बंती खत्री थी। दोनों अलग-अलग बिरादरियाँ थीं। प्रथा के अनुसार इन में विवाह सम्बन्ध नहीं होता परन्तु बूढ़ामल गाँव के आँगन का पड़ोसी होने के नाते बंती का जेठ था। गाँव में वह उस के सामने, आदर के लिये चेहरे पर आंचल रखती थी। बंती के कन्धे पर हाथ रख कर अपनी पत्नी के दुख में रो पड़ा—"हाय शिवदेई हमें छोड़ कर चली गयी.....।"

सोग के अनुष्ठान के अनुसार बंती ने छाती पीट कर सूचना दी—"हाय-हाय बेटी सत्तो तू ने अभी क्या देखा था! हाय मेरी चिड़िया तू क्यों उड़ गयी।"

बूढ़ामल की प्रौढ़ विधवा, भौजाई भी गोद में देवर की लड़की को लिये दुकान के पिछले भाग से निकल आयीं। वह भी लम्बा घूंघट खींच बंती को गले से लगा कर दहाड़ मार कर रोने लगी। बंती के साथ आयी तारा को भी सम्बन्धी समझ कर, वह उस के गले से मिल कर भी रोयी। तारा ने कुआँरे जीवन में सोग की ऐसी रीति कभी नहीं निबाही थी। सद्य: विवाहिता भी इस रीति से मुक्त रहती हैं परन्तु उस समय क्या आपत्ति करती? रोना उसे भी आ गया था। वह चीख कर न रो सकी, सिसकती रही।

पास-पड़ोस की दुकानों में रहने वाली शरणार्थी स्त्रियों ने उन्हें घेर लिया। वे भी शोक में सहयोग देने लगीं। विभाजन के पहले यहाँ मुसलमान नानबाई, टीनगर, लोहार, दूध-दही वाले और मोचियों की दुकानें थीं। अब इन दुकानों में हिन्दुओं ने हलवाई, परचून और बिसाती की दुकानें लगा ली थीं।

चीख-पुकार से विलाप का पहला वेग पूरा करके बूढ़ामल की भौजाई

श्वास लेने के लिये रुकी तो बंती-ने अपने बेटे के विषय में पूछ लिया।

गौरां भाभी ने बता दिया, गोपालदास-मनोहरदास यहाँ आठ-दस दिन ही ठहरे थे। वे फिर बच्चे और मां को लेकर दिल्ली चले गये थे। मनोहरदास तीन दिन पहले भी आया था।

सत्तो की मृत्यु के विषय में उस के पिता और तायी को बताना आवश्यक था। बंती ने बताया—"जब मुसलमानों ने कुएं के पास ताया पालीशाह का खून कर तुम सब लोगों को नेज़ों, भालों, फरसों से धक्के देकर भगा दिया तो जवान लड़कियों पर हाथ डालने लगे। कलमुहें, बेईमान बाकर ने—उस की सात पीढ़ियों को कीड़े पड़ें—सत्तो का हाथ पकड़ कर खींचा, यह मेरी है। सत्तो अपना हाथ झटके से छुड़ाकर कुएं में कूद पड़ी…।"

बूढ़ामल की भौजाई दोनों हाथों से सिर और छाती पीट-पीट कर चीख उठी—"हाय-हाय मेरी सुक्खी लद्धी (मानौती मान कर पायी बिटिया)…।" उसने कुछ और न सुना। वह सिर और छाती धुन-धुन कर रोती रही परन्तु ऐसे विकट अनुष्ठान को अकेली बहुत देर तक न निबाह सकी।

बंती ने दूसरी स्त्रियों को बताया—"दूसरी लड़कियां और मैं भी कुएं में कूदने के लिए दौड़ी तो जालिमों ने लाठियां मार-मार कर, गिराकर पकड़ लिया…।" रोने में गौरां भाभी का साथ केवल बंती ही दे रही थी।

स्त्रियां मुसलमानों के अत्याचारों की कहानियां सुनाने लगीं और फिर हिन्दुओं द्वारा मुसलमानियों से लिये बदले की बातें करने लगीं। एक स्त्री ने दुख से कहा—"हिन्दनी हो चाहे मुसलमानी, जो अपनी इज्जत लिये मर गयी वही सब से अच्छी रही। बहनो, औरत के शरीर की तो बरबादी ही है। औरत तो ढोर-बकरी है ? जो चाहे छीन ले जाये, दुश्मन की चीज समझ कर काट डाले। जाने किन कर्मों के फल से औरत का तन पाया है…।"

बंती आहें भरकर समर्थन कर रही थी। तारा पत्थर बनी सुन रही थी।

गौरां अब भी लड़की के दुख से ऊंची आवाज मे रोती जा रही थी। शरणार्थी पड़ोसिनें संवेदना मे, घंटे भर तक उस के चारों ओर बैठ कर अपने-अपने कामों से चली गयी। कोई पुराना और बिरादरी का पड़ोसी तो था नहीं जो अपने सौ काम छोड़कर भी शोकातुर के साथ दिन भर या घंटों बैठे रहना आवश्यक होता।

बंती गौरां का साथ देने के लिये धीमे-धीमे रोती जा रही थी। दम लेने के लिये रुकती तो बूढ़ामल से अपने बच्चे और पति के विषय में पूछने लगती।

बूढ़ामल ने बताया—"तीन दिन पहले मनोहरदास आया था, भला-चंगा

था। यहाँ 'दरी वाले बाजार' के हकीम से तेरे काका के लिये दवाई लेने आया था।......"

"हाय मेरा मुन्नी लड्डा काका सुखी तो है?" बंती घबरा गयी, "क्या होगया वैरियों को?"

"भाभी फिक्र न कर" बुड्ढामल ने आश्वासन दिया—"तू जानती है, लम्बा सफर था, पानी बदला है। बच्चों की तबीयत तो जरा-जरा में खराब हो ही जाती है। मेरी मुन्नो भी मांदी हो गयी थी। तेरा काका यहाँ आया तो पेट कुछ खराब हो गया था। पहले हम लोगों ने डाक्टरी इलाज कराया। कुछ फायदा नहीं हुआ। फिर यहाँ 'दरी वाले बाजार' के हकीम की दवाई ली। उसकी दवाई बहुत चमत्कार है। दवाई ने फायदा हुआ इसीलिये और लेने आया था। बदहज़मी हो गई थी। बता रहा था, अब फिक्र की कोई बात नहीं है। उसे मकान मिल गया है, दिल्ली में दोनों भाई बजाजी की फेरी कर रहे हैं।........"

बंती ने कातरता से हाथ जोड़ दिये—"नहीं भाई, सच बता! मेरे सिर की कसम, काके को क्या तकलीफ थी? दांत निकाल रहा था, मरे दांत बच्चों को बहुत तकलीफ देते हैं।"

बुड्ढामल ने फिर विश्वास दिलाया कि मनोहर ने कोई खास परेशानी नहीं बतायी। बच्चा पहले जरूर बहुत तकलीफ में था। कह रहा था, कोई कहीं 'गंज' मुहल्ला है। पहले वहाँ मुसलमान रहते थे। अब तो दिल्ली में सब हिन्दू ही हिन्दू आ गया है। यहाँ भी अब मुसलमान कहाँ हैं?"

रोना-धोना और आरम्भिक बातचीत के बाद बुड्ढामल ने बंती और उसकी सहेली को जल पिलाने के लिये साधू के हाथ, पड़ोस के हलवाई से दोने में कुछ मिठाई मंगवा कर सामने रख दी बोला—"ऐसे पानी कैसे पियोगी, परदेस का पानी है। खाली पेट में अवगुण करेगा। कोई अपने वतन का पानी थोड़े ही है। अपने गांव का तो पानी यहाँ के दूध से अच्छा था।"

गांव के पड़ोसी को पाकर और अपने बच्चे और पति का कुशलक्षेम सुन कर बंती को सांत्वना मिली। उस सांत्वना ने बच्चे और पति के पास शीघ्र से शीघ्र पहुंच जाने की लालसा को और भी उत्तेजित कर दिया। वह अपने जग्गी की याद में, पड़ोसी की मुन्नी को गोद में लेकर गौरां भाभी से गांव की पुरानी बातें करती रही।

बुड्ढामल चाहता था कि अकस्मात जीवित-जागरित आ पहुंची पड़ोस की भाभी दो दिन तो उसके यहाँ ठहरती परन्तु बच्चे और पति के लिये बंती की

व्याकुलता भी समझ रहा था। उसने समझाया—रेलगाड़ी का तो बुरा हाल है। मनोहरलाल भी दिल्ली से बस में ही आया था और वैसे ही लौटा भी था। वंती और तारा भीपचास घंटे रेलगाड़ी की भीड़ में दबी रह कर डर गयी थीं। बूढ़ामल उन्हें प्रातः ही दिल्ली जाने वाली बस में बैठाने के लिये ले गया।

बंती ने अपनी एकमात्र निधि पाँच रुपये का नोट, टिकट खरीदने के लिये बूढ़ामल के हाथ में देना चाहा।

बूढ़ामल ने नोट की ओर न देख कर दुख भरे स्वर में कहा—"भाभी, बहुत बुरे दिन आ गये हैं तो क्या। तू गाँव की बहन-भाभी ऐसे कष्ट में है। मैं क्या इतने से भी गया ··।" बूढ़ामल ने बंती और तारा का टिकट खरीद कर उन्हें बस में बैठा दिया।

बंती और तारा एक पहर दिन चढ़े, बस में अम्बाला से चल कर सूर्यास्त से कुछ पूर्व ही दिल्ली में पहुंचीं। अड्डे तक पहुंचने के लिये बस को नगर की जितनी बस्ती और भीड़ से गुजरना पड़ा, सब ओर शरणार्थियों को उमड़ा हुआ देख कर, तारा नगर की भीड़ की कल्पना से सहम गयी। कोई मकान न पाकर शरणार्थी लोग फुटपाथ और चौड़ी छतों पर भी तिरपाल तान कर बसे हुये थे।

बस के अड्डे के सामने ही चौड़ी सड़क के पार, लोहे के नीचे जंगले से घिरे एक बाग के कोने में दो छोलदारियाँ खड़ी थीं। छोलदारियों पर, सफेद कपड़ों पर मोटे-मोटे अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू और गुरुमुखी के लाल अक्षरों में लिखा था—"शरणार्थियों के लिये पूछताछ का दफ्तर।"

कुछ लोग अपना सामान लेकर छोलदारियों की ओर जा रहे थे। तारा और बंती भी उन के पीछे हो ली। शरणार्थियों को स्थान के अनुसार भिन्न-भिन्न कैम्पों में भेजा जा रहा था। एक स्वयं-सेवक शरण चाहने वाले कुछ लोगों को 'काश्मीरी-दरवाज़े' के बाहर बनाये गये शरणार्थी कैम्प में ले गया।

बंती और तारा के कैम्प में पहुंचते-पहुंचते संध्या की बिजलियाँ जल गयीं थीं। कैम्प में रेडियो, लाउडस्पीकर से बिछुड़े हुये और पता चाहने वाले लोगों के नाम-धाम की घोषणा कर रहा था। तारा ने बंती के परिवार का पता लिखवा दिया। अपना नाम उस की बहिन के रूप में ही दर्जकरवा दिया। उन्हें उसी समय राशन ले सकने के लिये एक कार्ड दे दिया गया। नये आये शरणार्थियों को बनी-बनायी रोटी या चबेना मिल सकने का भी प्रबन्ध था।

बंती और तारा के साथ कोई पुरुष संरक्षक नहीं था। उन्हें 'केवल स्त्रियों के लिये' नियत झोपड़ी में पहुंचा दिया गया। झोपड़ियाँ सिरकी के छाजन

से छाये हुये लम्बे बरामदों की तरह थीं। बड़े-बड़े दरवाज़ों में किवाड़ या पर्दे नहीं थे। एक ओर खुले स्थान में कई चूल्हे जल रहे थे। कुछ मर्द-स्त्रियाँ रोटियाँ पका रहे थे।

'केवल स्त्रियों के लिये' झोपड़ी के द्वार के साथ एक जवान स्त्री जवान लड़की के साथ बैठी दूसरी झोपड़ियों की ओर देख रही थी। स्त्री ने बंती और तारा से शहर और जिले का नाम पूछ लिया। झोपड़ी के भीतर से किसी बच्चे के रोने का शब्द सुनायी दिया।

बंती से उत्तर पाकर स्त्री उन के साथ ही भीतर आकर बताने लगी—"इस कोने में हम लोग हैं, उस कोने में संगरूर वाली सास-बहू हैं। यह गुजराँवाला की बुढ़िया की चटाई है। बीच वाली चटाई पर कमालिये वाली और उस का लड़का है। तुम इधर दरवाज़े के दोनों तरफ चटाइयाँ डाल लो।"

बंती और तारा की तीव्र प्रकाश से चौंधियाई हुई आँखों को, झोपड़ी के भीतर आते ही कुछ दिखायी न दिया था। कुछ पल में फूस की झीनी दीवारों से आते प्रकाश में दिखायी देने लगा। झोंपड़ी लम्बी अधिक और चौड़ी कम थी। दोनों कोनों में टीन के बक्से और गठड़ी-मुठड़ी धरे हुये थे। कोने में खड़ी एक जवान स्त्री नींद के लिये रोते बच्चे को गोद में झुला-झुला कर सुला रही थी। बीच की चटाई पर बुढ़िया घुटने समेटे पड़ी हुयी थी।

बंती ने अपने और तारा के लिये दो चटाइयाँ साथ-साथ बिछा लीं। स्त्री ने उन्हें बता दिया—"बाहर नल है। मुंह-हाथ धोना हो तो हमारा लोटा ले लें। हाय, तुम लोगों के थ कुछ भी सामान-असबाब, बर्तन-भाँडा नहीं है? तुम कौन बिरादरी हो? हम तो सुनार हैं।"

"खत्री" बंती ने उत्तर दिया।

झोपड़ी में आती दूसरी स्त्री प्रसंग भाँप कर बोल पड़ी—"हम सारस्वत ब्राह्मण हैं। चाहो तो हमारा बर्तन ले लो।"

बंती ने पहले बात करने वाली स्त्री से और दूसरी स्त्री से भी लोटे ले लिये।

बंती और तारा नल पर हाथ-मुंह धो आयीं। बंती ने अपने दुपट्टे का आंचल चटाई पर बिछा कर कैम्प से मिली रोटी रख दी। बूढ़ामल के यहाँ से केवल लस्सी पीकर चली थीं। दिन में कुछ खा न सकी थीं। समीप जल भरे लोटे रख कर दोनों एक-एक रोटी लेकर खाने लगीं।

पहले बोलने वाली स्त्री समीप बैठकर बताने लगी—"हम तो दिन भर मरा रेडियो ही सुनते रहते हैं कि लड़की की ससुराल की कोई खबर मिल

जाये। हमारा नाम तो कल भी बोला गया था, आज भी बोला है पर इस के ससुराल की कोई खबर नहीं मिली। इस की सुसराल वाले आमनाबाद में जरगरी (सुनार) की दुकान करते थे। हम हाफजाबाद के है। हम तो किसी तरह बच कर आगये। बहुत लोग मारे गये।......।"

स्त्री ने बंती के कान पर झुककर घुटने समेटे बुढ़िया की ओर संकेत किया, "यह गुजरांवाला की है। इसके घर के सब लोग मारे गये, घर जला दिये। इसे फिजूल जान कर छोड़ दिया होगा। ऐसे ही पडी रहती है, बोलती ही नही न अपना राशन लेती है। मैं-तू कोई राशन ले आये, पकाकर रोटी दे दे तो खा लेती है।"

स्त्री की जवान लड़की झोंपड़ी के बाहर दरवाजे के साथ जा बैठी।

स्त्री ने बच्चे को सुलाने के लिये गोद मे झुलाती जवान स्त्री की ओर सकेत किया—"इसका गबरू (जवान-पति) मारा गया है। इसकी ननद को उठा ले गये है। इसके सिर में भी जख्म है, एक तीन बरस की लड़की है, सास है। यह जो बाहमनी आयी थी, विधवा है; चार बरस का लड़का है। इसके जेठ-देवर बेचारी को स्टेशन पर छोड़कर बम्बई चले गये। बहना, इस जमाने में कौन किस का बोझ संभाल सकता है......।"

नींद आने लगी तो मच्छर पांव-हाथों और चेहरे पर पर डंक मार जाते थे। तारा ने अपना दुपट्टा ओढ़ लिया। आधी रात के बाद सर्दी से घुटने सिमट गये। प्रातः नीद टूट रही थी तो पड़ोस से ऊंचे स्वर में भजन सुनाई दिया।

"सिमर ओम नाम, छोड़ दे सकल भोग काम।
सब जीते जी के नाते है।"........

तारा आंखें मूंदे, घुटने समेटे पड़ी सोच रही थी—भोलापांधे की गली में खुशालसिह प्रातः ही भक्ति-भाव से 'आस्सा दी वार' गाकर भगवान को याद करता था। उसका जवान बेटा मारा गया, पिताजी भी 'प्रभू तू ही तू है' में विश्वास रखते थे। हमारे घर का पता ठिकाना ही नही है। ईश्वर के सम्बन्ध में लोग न अपने और न दूसरों के ही अनुभव से कुछ सोचते है। शायद भरोसे की आवश्यकता के कारण, कुछ न सोच कर, भरोसे का विश्वास कर लेते है।

बंती के पाठ करने का स्वर सुनकर तारा ने आंखें खोलकर देखा—बंती उठकर चटाई पर बैठ गयी थी। ब्राह्मणी लोटा हाथ में लिये बाहर जा रही थी। उसने बंती को सम्बोधन किया—"बहना, जरा खयाल रखना। यहां लोग बेखबर देखते ही जो हाथ लगता है, उठा ले जाते हैं।"

तारा को अंगड़ाई लेते देख वंती बोली—"महाराज जी ने कृपाकर यहां तक पहुंचा दिया है। आज मेरे जग्गी और टब्बर (परिवार) से भी मिला दे। उस भैंड़े (बिगड़ैल) की नींद बहुत कम है। उसकी दादी तड़के उठती थी तो वह भी उठ कर बैठ जाता था। मैं तो उसके उठने से पहिले दही मथ कर पाव-डेढ़-पाव मक्खन निकाल लेती थी। उँगली से उसके मुँह में मक्खन भर देती तो वह फिर सो जाता, तब मैं भैंसों को सानी डालकर दुहने लगती थी।"

तारा ने वंती के स्वर में उत्साह और आशा की झंकार अनुभव की। अपना घर वंती को सदा ही याद आता रहता था। पहले वंती घर की चर्चा दुख से करती थी; आज उस की ध्वनि में घर लौटने का उत्साह था। तारा के मन में घर लौट सकने के लिये उत्साह का कोई कारण नहीं था। बोली—"बहना, तुम्हें तो जल्दी उठने की आदत है। मुझे तो रात चाहे देर तक जगा लो, सुबह जल्दी उठना अच्छा नहीं लगता।"

"तुम शहरी लोग हो, तुम्हें कौन गाय-भैंस संभालने की फिक्र-चिंता।"

ब्राह्मणी जल्दी ही लौट आयी। उसने वंती और तारा को सलाह दी—"अभी जाकर फुरसत से निबट लो फिर तो भीड़ लग जायगी। मैं तो नहा आयी हूं। निहालदेई उठ, जा तू भी नहा-धो ले।" ब्राह्मणी ने सुनारिन को भी पुकार लिया।

स्त्रियों के नहाने के लिये नल के चारों ओर चटाइयों का घेरा बांध दिया गया था। पुरुष भजन या पाठ बोलते हुये कमर पर अंगोछे-मात्र लपेटे खुले में ही नहा रहे थे। कैम्प में बिजलियां बुझते-बुझते वंती और तारा भी नहा चुकीं। वंती फिर बैठकर पाठ करने लगी, तारा लेट गयी।

निहालदेई की जवान लड़की सुखदेत लोटा लिये लौटकर बोली—"हाय, देखो न को(हदेलफंगे)लड़के हैं। मुझे सुनाकर कहता है, क्या जुल्म है। लड़कियां खुद तो चटाइयों में छिपकर नहाती हैं और हमें नहाते हुये देखती रहती हैं।"

"सिर सड़ें (कपाल में आग लगे) इन हरामियों के। इन की आंखें फूट जायें। लड़कियों को छेड़ते हैं।" निहालदेई ने अपनी लड़की को बोली मारने वाले के प्रति क्रोध प्रकट किया।

"बकने दो तुम्हें क्या है। तुम अपनी आंखें नीची रखो।" ब्राह्मणी ने परामर्श दे दिया।

"हाय हाय, बड़े-बड़े लफंगे इकट्ठे हो गये हैं कैम्प में।" निहालदेई फिर बोल उठी, "आते-जाते आंखें इधर ही लगाये रहते हैं।"

तारा की दृष्टि निहालदेई की ओर उठ गयी। वह अपने टीन के बक्स

पर आइना रखकर कंघी लिये बड़े जतन से मांग ठीक करते-करते बात कर रही थी।

'बिस्कुट चाय गरम !' की पुकार लगाता हुआ एक आदमी पीतल का समावार हाथ में लटकाये झोपडी के दरवाजे के सामने से गुजर गया। कुछ ही मिनट बाद, 'हलवा-पूरी गरम !' पुकार लगाता दूसरा आदमी आ गया।

निहालदेई ने पूरी वाले को रोक कर चार पूरियां ले ली। सुखदेत आइने में देख कर माँग ठीक करने लगी थी। संगरुर वाली बुढिया की तीन बरस की लड़की हलवे की पुकार सुन कर माँ का आंचल पकड़ कर ठुनकने लगी थी।

बुढिया ने ऐसी परेशानी खड़ी कर देने वाले खोमचे वाले को, वंशनाश का शाप देकर क्रोध मे लड़की को मर जाने की गाली दी।

ब्राह्मणी ने बच्ची की ओर से अपील की—"बच्ची है, बच्चों को तो सुबह ही भूख लगती है। बच्चे बेचारे क्या समझते है। प्रेम भी उठेगा तो खाने को माँगेगा। मै काके के लिये रात की आधी रोटी बचा कर रख लेती हूं। एक आने में चाय की प्याली ले देती हूं, भिगो कर खा लेता है। अब दूध कहाँ है? हे परमेश्वर जी !" ब्राह्मणी ने आँखें मूंद, भगवान को स्मरण कर हाथ जोड़ लिये।

"जब सब कुछ ही छीन लेना था तो भगवान ने बच्चे दिये ही क्यों थे, इन्हें भूख लगती है तो कहाँ से खोद लाऊ?" बुढिया झुंझलाकर अपने आंचल की गाँठ से पैसे खोलने लगी। तारा की आँखे सहानुभूति से उस की ओर उठ गयी।

निहालदेई मुंह मे पूरी का ग्रास भरे बोल पडी—"सब अपने-अपने कर्मों का फल है। सियाने लोग कह गये है, जिस ने जैसा बोया है वैसा काटता है।"

बुढिया निहालदेई की बात अनसुनी कर रात में छोटे बच्चे द्वारा खराब कर दिये गये कपड़े समेटने लगी।

लाउडस्पीकर का स्वर सुनायी दिया—यह आलइंडिया रेडियो है। हम दिल्ली से बोल रहे हैं। आज.......।

बुढ़िया बोल पड़ी—"तीन बार हमारा नाम-पता बोला गया है। अभी तक तो धम्मो के पेक्के (मायके) के लोगों की कोई खबर नही मिली। परमेश्वर महाराज को जाने क्या मंजूर है?"

लाहौर मे तारा के मकान के सामने डाक्टर प्रभुदयाल के घर में रेडियो था। रेडियो पर प्रातः भजन या कव्वालियाँ हुआ करती थी। अब रेडियो पर केवल समाचार और परिवारों से बिछुड़ गये विस्थापित लोगों के अते-पते ही सुनाये जाते थे।

तारा ने ब्राह्मणी से पूछ लिया—"यह रेडियो के लिये कहाँ खबर दी जाती है; वहीं छोलदारी में ? जहाँ कल शाम नाम-धाम लिखा गया था ?"

ब्राह्मणी से समर्थन पाकर तारा ने बंती को परामर्श दिया—"चलो बहन, तुम्हारे यहाँ पहुंच जाने की खबर रेडियो पर दे दें। तुम्हारे घर वाले दिल्ली में होंगे। रेडियो से खबर मिलेगी, तुम अमृतसर में हो तो बेचारे भागे हुये वहाँ जायेंगे।"

निहालदेई ने सुझाया—"अपने काट (कार्ड) का आटा-दाल भी ले लेना।" और शिकायत करने लगी, "मरे महीना भर आटा-दाल तो देते हैं पर न नमक न ईंधन। कोई अपने हाथ-पाँव चूल्हे में दे दे ? एक बार में चार-छः पैसे का ईंधन जल जाता है। हम तो बाजार से नमक-मिर्च, हल्दी थोड़ा घी ले आये हैं। शुरू में मरों ने कम्बल दिये थे। जिन के पास कपड़ा नहीं था, उन्हें कपड़ा-लत्ता भी दिया था। हमें तो कुछ भी नहीं मिला।"

धम्मो की सास बोले बिना न रह सकी—"इतना कर रहे हैं। भगवान इनका भला करे। उसी की दया है। वही सब देखने वाला है। लोग ऐसे कब तक देते-करते रहेंगे ? हम तो कहते हैं कि धम्मो के मायके परिवार की खबर-ठिकाना मिल जाये तो हम किसी के सिर बोझ क्यों बनें।"

निहालदेई बुढ़िया की बात से नाराज हो गयी—"वाह, हम इतना छोड़ कर आये हैं। हम तो अपना ही खर्च कर रहे हैं। हम ने तो न कम्बल लिया न कोई कपड़ा-लत्ता। अपने पैसे से नमक-मिर्च, हल्दी, घी लाकर रखा है। हम कोई ऐसे-वैसे हैं। मेरे अपने दो मकान थे····।"

छोलदारी में रेडियो पर सूचना देने का अनुरोध करने के लिये चार-पाँच आदमी खड़े थे। लिखने वाला एक ही व्यक्ति था। प्रतीक्षा करने वाले लोगों में से एक ने सुझाया—"कागज दे दो ? हम लिख कर दे दें।"

लिखने वाले ने कागज़ के तीन-चार टुकड़े आगे बढ़ा दिये।

तारा कागज लेकर बोली—"एक पेंसिल दे दें तो···"

पेंसिल उस की ओर बढ़ गयी।

तारा ने अंग्रेज़ी में बहुत स्पष्ट अक्षरों में, बहुत ढंग से लिख दिया—"कृपया रेडियो से घोषणा करवा दें···"

कुर्सी पर बैठे व्यक्ति ने तारा के हाथ से लिये कागज़ पर नजर दौड़ा कर पूछ लिया—"आप क्या किसी स्कूल में पढ़ाती रही हैं ?"

"जी हाँ, एक अनुरोध है ?" तारा अंग्रेज़ी में बोली।

"कहिये ?"

"अम्वाले में हमें खवर मिली थी कि हमारे घर के लोग दिल्ली में हैं। मुहल्ले का नाम ठीक नहीं मालूम, कुछ 'गंज' है ?"

"पहाड़गंज ?"

'जो वताया था, पहले उस मुहल्ले में मुसलमान लोग थे, अव हिन्दू आवाद है।"

"ठीक है, पहाड़गंज ही है।"

"जरा समझा दीजिये किस रास्ते से…।"

"आप रेल का पुल पार करके नया वाजार से सदर वाजार; आप यों कीजिये, उस पार स्टेशन पर चली जाइये। वहां टांगे वाले पहाड़गंज की सवारियों को पुकार रहे होंगे। दो-दो आने में सवारी जाती है।"

पुत्र और पति को खोजने जाने से पूर्व आटा-दाल का राशन लेकर उसे पका-वना और खा लेने का धैर्य वंती में न था। एक पूरी वाला अपने खोमचे पर खजूर के पत्ते की चंवर डुलाता हुआ ठंडी पूरियों के ताजा और गरम होने की पुकार लगा रहा था। वंती ने तारा का हाथ पकड़ कहा—"अमृतसर की तरह खोजने—पता लेने और घूमते-फिरते न जाने कितना समय लगे। अपरिचित जगह का क्या भरोसा ? सांझ ही हो जाये ! पैसे हैं, तुम दो पूरियां खाकर पानी पी लो। महाराज जी की दया से मेरा जग्गी और उसका पिता मिल जाये तो फिर कोई चिन्ता नहीं।"

वंती स्वयं कुछ नही खाना चाहती थी। उसका विचार था, उपासे रह, कष्ट उठाकर ढूंढेंगी तो उसका भोग शीघ्र पूरा होकर भगवान पसीजेंगे। चाहती थी, भगवान की कृपा से अव अपने जग्गी को गोद में लेकर ही मुंह जूठा करे।

तारा नहीं मानी। उसने आठ पूरियां लेकर चार जवरदस्ती वंती के हाथ में दे दीं। दोनों ने खाकर ब्राह्मणी के लोटे से पानी पिया और अपनी पोटलियां वांह के नीचे दवाकर चलने के लिये तैयार खड़ी हो गईं।

निहालदेई ने पूछ लिया—"कहां जा रही हो, कव लौटोगी ?"

वंती को चलते समय टोके जाने का असगुन बुरा लगा। निहालदेई की टोक अनसुनी करने के लिए कह दिया—"महाराज दया करें तो लौटेंगी क्यों ?"

वंती और तारा पहाड़गंज के अड्डे पर टांगे से उतरकर मुहल्ले की ओर वढ़ीं। तारा ने एक प्रौढ़ सिक्ख को देखकर पहाड़गंज का रास्ता पूछ लिया ?

"वेटी, यह सव पहाड़गंज ही है। वहुत वड़ा मुहल्ला है। छोटा-मोटा

शहर ही समझो।" सरदार जी ने उत्तर दिया, "बेटी, कोई क्या बता सकेगा ? सभी लोग नये हैं। अन्दर गलियां हैं। हिम्मत करो। देखती जाओ, पूछती जाओ। वाहगुरु मदद करने वाला है।"

बंती और तारा उजड़े हुए से बाजार के दाहिने एक गली में चली गयीं। कई मकान एक साथ जले हुए थे। जले हुए मकानों का मलवा गिरकर गलियों में नालियां मुंद गयी थीं। गंदा पानी और गंदगी गलियों में फैली हुई थी। बंती और तारा बच-बचकर, नाक पर कपड़ा रखे चल रही थीं। शरण के लिये लोग जले हुए मकानों में भी टिके दिखाई दे रहे थे।

गली में या किसी भी द्वार पर किसी स्त्री को देखकर बंती पूछ लेती--"शेखूपुरा जिले के चिम्मोकी गांव के दो भाई और उनकी मां तो यहाँ नहीं रहते ? बजाजी की फेरी करते हैं। साथ में बुढ़िया है और गोद का लड़का है।" तारा मर्दों से भी पूछ लेती। वह भाइयों के नाम बता देती, "गोपालदास मनोहरदास, चिम्मोकी के खत्री हैं ?"

अधिकांश लोग अपनी चिन्ता या व्यस्तता में केवल ँकार में सिर हिला देते।

कोई रुककर पूछ लेते—क्या करते हैं ?

"बजाजी की फेरी कर रहे हैं।"

"नहीं बहना, मालूम नहीं। हम तो नये आये हैं। पड़ोसियों को भी नहीं जानते। यहां कौन पुश्तों और बरसों से बसा है जो दूसरों को जानेगा ?"

एक गली से असफल होकर वे दूसरी गली में जाकर प्रश्न करने लगतीं।

बंती ने विस्मय प्रकट किया--"शहरों के लोग भी क्या हैं ? गांव में हम आस-पास के चार गांवों के लोगों को भी जानते थे। यहाँ लोग अपने पड़ोस में रहने वालों को ही नहीं जानते।"

तारा ने बताया—"लाहौर में हमारी भोलापांधे की गली में, किसी बच्चे से भी किसी का पता पूछ सकते थे। यहाँ सब लोग नये आकर बसे हैं।"

बंती और तारा को गली-गली घूमते दोपहर हो गयी। बहुत थक गयीं। प्यास से गले सूख रहे थे। उन्होंने दो गलियों के मोड़ पर लगे नल से अंजलियाँ भर-भरकर पानी पी लिया। विश्राम के लिए कुछ देर बैठना भी आवश्यक था। समीप का बहुत बड़ा मकान बहुत जला और गिरा हुआ था। बंती और तारा मकान के चौड़े चबूतरे पर बैठ गयीं।

सामने मकान की ड्योढ़ी में दो स्त्रियां बैठी थीं। जवान स्त्री गठड़ी में से कपड़े लेकर उन पर पेवंद लगा रही थी। बंती और तारा उन लोगों से

अपनी पूछताछ कर चुकी थीं। सामने की ड्योढ़ी में बैठी स्त्रियां जान गयी थीं कि वे दोनों अपने परिवार से बिछुड़ी हुई है। प्रौढ़ा ने बंती से प्रश्न कर लिया—"हाय तुम्हारा···क्या तुम अकेली तीमर्तें (अबलायें) इस जले हुए बड़े मकान में रह लोगी ? बड़ा हौंसला है ?"

प्रौढा डेरा वाली पंजाबी बोल रही थी। तारा के लिये वह भापा दिल्ली की खड़ी बोली हिन्दी से अधिक दुर्बोध थी।

बंती ने उसके अभिप्राय का अनुमान कर उत्तर दिया—"नहीं, हम अकेली कहाँ ठहर सकती है, हम तो कैम्प में हैं।"

प्रौढ़ा ने बंती की बोली अपनी बोली से बहुत भिन्न देख कर पूछ लिया—"तुम लोग पंजाब के किस गाँव-जिले की हो ?"

"हम शेखूपुरा जिले की है। यह मेरी छोटी बहिन लाहौर में पढ़ती थी।"

प्रौढ़ा के समीप बैठी जवान बहू ने, स्कूल में पढ़ी हिन्दी की सहायता से तारा को समझाया—"यह मकान रहने लायक नहीं है। कई लोग देख कर छोड़ गये हैं। जली हुयी छतें अटकी हुयी हैं, जाने कब गिर पड़ें। कुछ मुलतानी हिम्मत करके एक रात इस मकान में रहे फिर भाग गये। कहते थे, रात में आवाजें आती है।"

"होगा, हमें क्या" बंती ने कहा।

"यह क्या है, लाहौर में तो शहालमी का पूरा बाज़ार ऐसे ही जल गया था।" तारा ने बताया।

बहू बताने लगी—"कहते हैं, इस मकान में ग्यारह मुसलमानियाँ जल कर मर गयीं। हिन्दुओं ने उन्हें निकलने ही नहीं दिया। यहाँ मुसलमानों ने बहुत मुकाबला किया था। एक उन्नीस-बीस बरस की जवान लड़की थी। वह छत पर से अकेली गोली चलाती रही। नीचे मुसलमान मर्दों ने हथियार डाल दिये तब भी वह लड़ती रही। उस के पास गोलियां खत्म हो गयीं तो पकड़ी गयी। कहते हैं, उस के सब कपड़े फाड़ कर, चोटी पकड़ कर बाज़ार में घसीटा गया। उस से कहा गया, तू 'जय हिन्द' कह दे, छोड़ देंगे। उस ने जय हिन्द नहीं कहा। बड़ी पक्की थी। उस का अंग-अंग काट दिया पर जब मुंह से बोली, 'या अली ! पाकिस्तान ज़िन्दाबाद !' ही निकला। दूसरी औरतों को इसी मकान में जला दिया।"

बुढ़िया बोल उठी—"मुसलमान होते तो उठा कर ले जाते और खराब करते।"

तारा के रोम खड़े हो गये थे। उसे जान पड़ रहा था कि वह जला हुआ

मकान देश भर में नहीं, संसार भर में नारी पर अत्याचार का प्रतीक है इसी-लिये भाग्य उसे यहाँ ले आया है। उस ने ही नहीं असंख्य नारियों ने पुरुषों की पाश्विकता को सहा है। पुरुष को मनुष्य वना सकने के लिये स्त्री को कितना सहना पड़ेगा ? उस ने वंती का स्वर सुना—

"वहना, हम ने रास्ते में हिन्दुओं की भी करतूत देखी है, मुंह से कह देना मुश्किल है। जिस ने भी किया, बुरा ही तो किया। सब जुल्म के लिये हम स्त्रियाँ ही रह गयी हैं। मर्द, मर्दों को काट कर टुकड़े भले ही कर दें उन की वेइज्जती तो नहीं करते ?"

"हाँ जी, किया तो बुरा ही" वहू ने स्वीकार किया, "चाहे जिस ने भी किया।"

प्रौढ़ा क्रोध में वोल उठी—"मुसलमानों ने हिन्दनियों के साथ जो किया तुम क्या जानो ? हिन्दू क्यों न करें ?"

वहू चुप रह गयी परन्तु वंती ने पीड़ा से कहा—"हिन्दू और मुसलमान हमें गले में फन्दा लगाने के लिये रस्सी दे दें, फिर दोनों चाहे जो कर लें। भगवान ही इन से समझेगा…।"

"तुम लोगों को मुसलमानों ने छीन लिया होगा। उन लोगों के घरों में रह कर आयी हो। उन का नमक खाया है, तभी तुम्हें उनका दरद लग रहा है। तुम आई क्यों; वहीं रह जाती ?"

वहू का सिर झुक गया। वंती और तारा के लिये वहाँ वैठना संभव न रहा। वे उठकर चल दीं।

दिन के तीसरे पहर वंती और तारा ने बाजार के बायें भाग में खोज आरम्भ की। इस भाग में गलियाँ अधिक तंग और मकान प्रायः छोटे और कच्चे थे। गंदगी और दुर्गन्ध भी अधिक थी। वंती और तारा गली में किसी को भी देख पातीं या कोई दरवाजा खुला मिलता तो पूछताछ कर लेतीं।

संध्या आ रही थी इसलिये स्त्रियाँ हवा के लिये ड्योढ़ी में न वैठी रह कर चौके-चूल्हे के लिये घरों के भीतर चली गयी थीं। कहीं-कहीं घर लौटते परेशान-हाल मर्द दिखाई दे जाते थे।

वंती और तारा गलियों से गलियों में चली जा रही थीं। दिन का प्रकाश कम होता जा रहा था। दोनों के शरीर थकावट से गिरे जा रहे थे, थकान से उनके घुटने कांपने लगे। आशा और धैर्य घटते जा रहे थे, वैठने का कोई भी स्थान न होने पर दोनों अपने कपड़े समेट कर कुछ मिनट के लिये पाओं पर

बोझ देकर गली में ही बैठ गईं। दिन भर चलने से उन के पांव सूज गये थे।

तारा ने कहा—"अब लौट चलें, कल फिर आजायंगे।" गला सूख जाने के कारण वह बोल नहीं पा रही थी। बंती का स्वर भी धीमा हो गया था परन्तु वह नयी गली देख कर आगे चल पड़ती।

गलियों के मकानों से धुंआ उठ कर अंधेरा घना हो रहा था। तारा का अन्तःकरण कांप-कांप उठता था, अंधेरा घना हो जाने पर इस भूलभुलैया से कैसे निकल पायेंगे; जाने कौन संकट सिर पर आ जाये। वे अंधेरे में हिन्दू-मुसलमान हिंस्रक पशुओं के हाथ पड़ने की मूर्खता क्यों कर रही हैं ?

तारा बराबर बंती से लौटने के लिये गिड़गिड़ा रही थी परन्तु बंती नयी गली देखकर वहां भी पूछ लेना चाहती थी। गली के अंत में या गली से लौटते समय दायें-बायें और भी गली दिखाई दे जाती थी।

"मेरा काका !" बंती चीखकर एक छोटे से मकान की ओर लपक गयी। उसने दहलीज़ में बैठी प्रौढ़ा की गोद से दुबले-पतले बच्चे को झपट लिया और उसे सीने से चिपका कर ऊँचे स्वर में रो पड़ी।

बच्चा सहसा झपट और दबोच लिया जाने से बहुत तीखे स्वर में चीख उठा था।

गली के ऊपर बिजली के तारों से लटका लट्टु चमक उठा।

गली में सहसा प्रकाश फैल गया।

जैसे दुख का अंधकार मिट गया हो। बच्चे ने मां को पहचाना। वह रोना भूल कर मां से चिपट गया।

तारा अकस्मात इतना आनंद फूट पड़ने से कांप कर पसीना-पसीना हो गयी थी। वह खड़ी न रह सकने के कारण गली में बैठ गयी। कुछ क्षण में संभल पायी तो सांत्वना का सांस लिया। जान पड़ा उस की सब थकावट पसीने में वह गयी है।

बंती बच्चे का मुख अपनी आंखों के सामने कर, उसके सिर और पीठ पर हाथ फेर रही थी—"हाय कितना कमजोर हो गया है। हड्डियां ही हड्डियां······तुझे क्या हूआ मेरे लाल······?" वह फिर रो पड़ी।

वंती और बच्चे के ऊंचे स्वर में रो उठने से पास-पड़ोस की तीन-चार स्त्रियां आकर पूछने लगीं—"क्या है ? क्या हुआ ? कौन है ?

पड़ोसिनों ने अनुमान कर लिया, पीछे छूट गयी बच्चे की मां आगयी है। वे विस्मय से ठोड़ी पर उँगली रखे, कौतुहल से आंखें और होंठ फैलाकर पूछने लगीं—"हाय, कहां रह गयी थी, कैसे रह गयी थी ?"

"इतने छोटे बच्चे को कैसे छोड़ आई थी ?"

"हाय रे बड़ा कलेजा है इस मां का ?"

एक स्त्री ने ऊंचे स्वर में याद दिलाया—"यह लोग तो कहते थे कि बच्चे की मां रास्ते में बीमारी से मर गयी थी।"

बंती बच्चे को चूम-चूम कर उसके शरीर को सब ओर से सहलाने और देखने में मगन थी। तारा को ही बोलना पड़ा। उसने बताया—मुसलमानों ने कई दूसरी लड़कियों और स्त्रियों को शेखूपुरा मंडी में एक हवेली में बंद कर लिया था। अपनी सरकार ने छुड़ाया तो कैम्पों में ढूंढती-ढूंढती यहाँ पहुंचीं।

"अरे हां हां, वैसे ही आयी है जैसे पड़ोसियों की मंसो आयी थी।"

"तो उसे किस ने रख लिया ? कैसे रख लेते ?"

बंती की सास चुपचाप आगे बढ़ आई। उसने बच्चे को बंती की गोद से ले लिया और अपनी दहलीज के भीतर हो गयी।

बंती सास के साथ भीतर जाने लगी। सास ने उसे फटकार दिया—"हट जा, दूर रह ! बाहर निकल !"

"क्यों ? मेरा घर है, मैं कहां जाऊं ?" बंती गिड़गिड़ा कर सास के पांव पर सिर रख देने के लिये झुकी।

"दूर रह, तुझे कह दिया। तू अब हम लोगों के किस काम की !" सास ने बंती का सिर पांव से परे ढकेल दिया।

ंती अवाक रह गयी। वह दहलीज़ को पकड़ कर गली के फ़र्श पर बैठ गयी। उसने अपना सिर दोनों हाथों में थाम लिया।

तारा के व लड़खड़ा गये। गिर पड़ने से बचने के लिये वह भी बंती के समीप सिमट कर पाओं के बल बैठ गयी।

पड़ोस से कुछ और स्त्रियां और पुरुष बंती और तारा के चारों ओर घिर आये। लोग बहू को घर में न घुसने देने के पक्ष-विपक्ष में बोलने लगे।

सब से पहले बोलने वाली ने ऊंचे स्वर में विरोध किया—"कैसे घर मे रख लेगी। 'चुकरी वालों' की बहू भी तो ऐसे ही आयी थी ? मुसलमानों ने इन्हें छोड़ा होगा ? उन्हों ने घरों के दरवाज़े तोड़ कर औरतों को खराब किया, इन्हें छोड़ दिया होगा ! सुनो तो भला....।"

क्रोध और निराशा से तारा का दम घुट रहा था। किसी तरह बोली—"माँ जी, इस का क्या कसूर है। खुद तो रह नहीं गयी थी। तुम्हीं लोग डर के मारे इसे छोड़ आये थे ? यह तो जान पर खेल कर छूटते ही भागी-भागी आयी है। नौ दिन से तुम्हें खोज रही है ?"

एक नौजवान ने तारा का समर्थन किया—"ठीक है, कसूर है तो तुम्हारा है। शर्म नहीं आती, बुजदिल गीदड़ की तरह घर की औरत को छोड़ आये। तुम्हारे जैसा पापी कौन है बेशर्मो ? घर बुढ़िया का क्या, घर तो बहू का…।"

दूसरे ने विरोध किया—"सौ-सौ मुसलमानों…! धर्म क्या रह गया…?"

बंती का बच्चा माँ की ओर बाहें फैलाये चीख रहा था।

"बच्चा माँ के पास जाना चाहता है। बच्चा तो उसी का है। उस का बच्चा क्यों छीनती है।" दुहाई सुनायी दी।

"बच्चा उस का कैसे हुआ ? बच्चा बाप का…"

"मै कुछ नहीं जानती। मुझे कुछ मालूम नहीं !" बुढ़िया रोते हुये बच्चे को कमर पर दबाये बोली, "लड़के आयेंगे तो जो चाहे करें।" उस ने किवाड़ बंद कर लिये।

मकान के किवाड़ बंद हो जाने पर भी भीड़ जमा रही। क्या उचित है और क्या उचित नहीं है, इस विषय पर बहस होने लगी। सभी बोल रहे थे, सुन कोई नहीं रहा था। पंजाबी के भिन्न-भिन्न उच्चारण और प्रकार बोले जा रहे थे। तारा का सिर चकरा रहा था। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। वह और बंती निस्सहाय, दंडितों की तरह भीड़ के बीच में गली के फर्श पर, घुटनों पर कोहनियाँ टिकाये और हाथों में सिर थामे बैठी थी।

"आ गये ! आ गये !"

"दोनों आ गये !"

भीड़ के विवाद का कोलाहल रुक गया। गली के फर्श पर नाल लगे जूतों और लोहे के गज की ठोकरें सुनायी दी। बंती और तारा की आँखें उस ओर घूम गयीं। दो मर्द कन्धों पर चादरों में बंधी बजाजी की गठरियाँ उठाये हाथ में लोहे के गज लिये आ गये थे।

बंती चेहरे पर आंचल रख कर जोर से रो पडी।

भीड़ के कई लोगों ने एक साथ बोल कर गोपालदास और मनोहरदास को सब मामला मंसो के उदाहरण और टीका-टिप्पणी सहित सुना दिया। दोनों भाइयों ने चुपचाप सुना। गोपालशाह ने हाथ के गज से किवाड़ों पर ठोकर दी। किवाड़ खुल गये। गोपालशाह भीड़ के आतंक से तुरन्त किवाड़ों के भीतर हो गया। भीड़ से बच कर उस ने बाहर की ओर मुंह करके कह दिया—"दो महीने मुसलमानों के घर रह आयी है। हम कैसे रख लें।"

बुढ़िया मनोहरदास के लिये केवल आधा दरवाजा खोले और रास्ता रोके खड़ी थी।

'तुम भीतर बैठो।" मनोहरदास ने माँ को कहा और दरवाजे में माँ की जगह खड़े होकर, हाथ में थमे गज से आकाश की ओर संकेत कर दुख भरे स्वर में बंती और सब लोगों को उत्तर दिया, "उसे' जो मंजूर था। हमें उजाड़ना था, बरबाद करना था सो हो गया। हजारों का यही हुआ। 'उस' की इच्छा।"

तारा पूरी शक्ति से बोली—"उस से' डरो! इस का क्या कसूर है?"

"हमारा ही क्या कसूर था? घर-बार छिन गया, घर वाली गयी! जो उस की इच्छा थी हुआ। तू इसे यहाँ लायी क्यों?"

मनोहरदास किवाड़ बन्द कर लेना चाहता था। एक नौजवान क्रोध में किवाड़ों पर धक्का देकर हकला उठा—"ब-ब बेशर्मो, कसूर तुम्हारा नहीं तो किस का है?...ब-ब बहनें का ख़याल था तो लड़ कर पहले खु-खु-खुद मर जाते। त-त तुम ने क्या किया ब-ब-बेचारी के साथ...."

"कोई पकड़ कर तेरे मुँह में गूँ भर दे तो तू अपना मुँह काट देगा?" एक युवती ने उस की ओर हाथ बढ़ा कर बहुत क्रोध से फटकारा।

"तुम कहाँ के पंच हो? तुम्हें क्या मतलब? अपने घर जाओ!" मनोहरदास ने बहुत ज़ोर से आवाज कर किवाड़ बंद कर लिये।

तारा को कुछ नहीं सूझ रहा था, सिर चकरा रहा था या सिर दरद से फटा जा रहा था। सामने क्या देख रही थी? वह क्या करे?

"मैं यहीं मर जाऊँगी!" बंती ज़ोर से चिल्ला उठी।

'फट्' आवाज हुयी। बंती ने अपना माथा दहलीज पर पटक दिया था।

तारा स्तब्ध रह गयी। समीप खड़े लोग भी स्तब्ध थे। बंती 'फट्' 'फट्' अपना माथा दहलीज पर पटकती जा रही थी और चिल्लाती जा रही थी—"मैं यहाँ ही मरूँगी।"

पाँच, दस, बीस बार बंती दहलीज पर माथा पटकती गयी। उस का गला रुंध गया परन्तु वह दहलीज पर अपना सिर मारती ही जा रही थी।

समीप खड़ी स्त्री भय से चीख उठी।

दूसरी स्त्री चीख कर भाग गयी।

कोई मर्द अन्याय करने वालों को गाली दे रहा था।

तारा को गली के ऊपर लटकते बल्ब के प्रकाश में बंती का खून से लाल-काला हो गया, दहलीज पर गिरता-उठता चेहरा दिखायी दिया। उस की चेतना जागी। बंती मर जाने के लिये अपना सिर फोड़ रही थी।

तारा ने पूरी शक्ति से बंती का सिर अपने घुटनों में दबा लिया।

क्रोध के उन्माद में पागल बंती ने तारा को जोर से धकेल दिया। तारा पीछे गिर पड़ी।

तारा के गिर पड़ने पर एक मर्द ने आगे बढ़ कर बती को कन्धों से पकडने का यत्न किया परन्तु उस ने फिर दो बार अपना माथा दहलीज पर पटका।

तारा ने उठ कर फिर बंती का सिर पकड लेना चाहा। बती स्वयं ही लुढक गयी। उस के होठ खुले रह गये। पूरा चेहरा खून से भर गया था।

तारा ने बंती का सिर अपनी गोद मे रख कर अपने दुपट्टे से ढक लिया। आँखें मूँद ली। उस का शरीर काँप रहा था। हाथ-पाँव शिथिल हो रहे थे। गली के लोग क्रोध से अत्याचार और अन्याय के प्रति विरोध प्रकट कर रहे थे।

गली के स्त्री-पुरुषों ने बती और तारा को घेर लिया। तारा को मूर्छा सी आ रही थी। उस ने दाँतों से होठ काटे। चेतना बनाये रखने के लिये सिर को हिलाया और अपने दुपट्टे से बंती का चेहरा पोछने लगी। उस निर बंती के सिर पर झुक गया।

तारा ने कन्धों पर दबाव और सिर मे दरद अनुभव किया। आँखें खोली तो तीन स्त्रियाँ, चार पुरुष समीप खड़े थे।

सुनायी दिया—यह तो बच गयी। उस के घुटनो के समीप बंती का शरीर पडा था। चेहरा खून से लथपथ, मक्खियाँ बैठ रही थी। समीप अनतहाया कोरा लाल कपड़ा गली के फर्श पर पड़ा था।

तारा का सिर दरद से फट रहा था। कई बार पलकें झपक कर उस ने समझा, बंती मर गयी थी।

"देखो तो बेशर्मो को! लाल कफन दे रहे है। अब वह सुहागिन बन गयी।" एक स्त्री क्रोध और घृणा से कह रही थी।

"सती हो गयी" किसी ने कहा।

"खसम के जीते जी सती हो गयी" दूसरी ने कहा।

तारा स्तब्ध निश्चल बैठी रही। उस मे रोने की भी शक्ति नही थी।

"चल उठ, मुह-हाथ धो ले।" एक स्त्री ने तारा के कन्धे पर हाथ रख कर कहा।

तारा ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया।

आधी गली मे धूप आ गयी थी। तारा निश्चल बैठी देख रही थी। बती के लिये अर्थी बनायी जा रही थी। गोपालदास और मनोहरदास दूसरे दो आदमियो के साथ चुपचाप अर्थी बाँध रहे थे। स्त्रियाँ बंती के शरीर को

नहलाने के लिये भीतर ले गयीं।

गोपालदास और मनोहरदास ने मुहल्ले के दो आदमियों के साथ लाल कपड़े में लिपटी हुयी बंती को अर्थी पर बाँध कर आदर से पालकी की तरह अपने कन्धों पर रख लिया।

गली 'राम-नाम सत्त है', 'गोपाल-नाम सत्त है', 'हर का नाम सत्त है' की पुकार से गूँज उठी।

तारा रो पड़ी। उस का एकमात्र सहारा और साथी छिन गया था।

तारा के समीप खड़ी युवती ने उस के कन्धे पर हाथ रख कर सहानुभूति से कहा—"बहना, चल उठ! हमारे यहाँ चल, हाथ-मुंह धो, पानी पी ले।"

"मैं कैम्प जाऊंगी।" तारा ने कहा। वह उस स्थान से भाग जाना चाहती थी।

एक युवती और एक जवान तारा को सहारा देते हुये टाँगों के अड्डे की ओर ले चले। स्त्री और पुरुष दया और धर्म का दम्भ भरने वाली अपनी हिन्दू बिरादरी को उन की अमानुषिक क्रूरता के लिये श्राप देते जा रहे थे।

× × ×

तारा अर्ध-मूर्छित अवस्था में, अधमुंदी आँखें झुकाये पहाड़गंज से स्टेशन तक सवारी ले जाने वाले टाँगे पर बैठ गयी। स्टेशन पर टाँगे वाले पुकार रहे थे—'कश्मीरी गेट के दो-दो आने। कश्मीरी गेट की सवारी दो-दो आने!' चल सकने की सामर्थ्य उस के घुटनों में न थी। तारा कश्मीरी गेट के लिये सवारी पुकारते टाँगे पर बैठ गयी।

तारा जिस समय कैम्प में पहुंची नहाने-धोने और जल लेना चाहने वाले लोगों की भीड़ नलों के समीप लगी हुयी थी। कुछ लोग भीड़ छंटने की प्रतीक्षा में कन्धे पर अंगौछा-तौलिया रखे, दातुन चबाते हुये झोपड़ियों के बीच टहल-टहल कर बातचीत कर रहे थे। तारा आँखें झुकाये, 'केवल स्त्रियों के लिये' झोपड़ी की ओर चली गयी। उसे मालूम न था कि लोग विस्मय और कौतुहल से उस की ओर देख रहे थे। झोपड़ी में पहुंच कर भी सिर में भयंकर दरद के कारण उसे धुंधला-धुंधला दिखायी दे रहा था।

सुखदेत अपने कोने में टीन के बक्से पर रखे आइने में ध्यान लगाये थी। दूसरे कोने में धम्मो दरवाज़े की ओर पीठ किये बैठी शायद अपने छोटे बच्चे को दूध पिला रही थी। झोपड़ी में बिछे फूस पर उस के कदमों की आहट से दोनों की आँखें उस की ओर घूम गयीं। तारा ने किसी से आँखें न मिलायीं।

उस की चटाई पर कोई और स्त्री घुटनों में सिर दिये बैठी थी। वह वंती की चटाई पर लेट गयी और बाँह सिर के नीचे रख कर आँखें मूँद ली।

उग्र सिर पीड़ा की तन्द्रा मे तारा को अपने सिराहने कुछ कोलाहल-सा जान पड़ा। फिर स्पष्ट सुनायी दिया—"कहाँ गयी थी तू ?"

तारा ने लेटे-लेटे पलके उघाड़ कर देखा, निहालदेई आटा मांडने से सने हाथो को अपने कपड़ो से बचाये उस पर झुकी हुयी विस्मय से पूछ रही थी। धम्मो की सास समीप उकड़ूँ बैठी, चेहरा दोनो हाथों में थामे उसी की ओर चिन्ता और कौतुहल से देख रही थी। बच्चे को गोद में लिये धम्मो उस की ओर नजर लगाये थी। सुखदेत भी समीप खड़ी थी। सभी उत्सुक और विस्मित थी।

"कहाँ गयी थी तू ? रात कहाँ रही ?" निहालदेई ने धमकी से प्रश्न किया।

तारा की अवस्था स्त्रियो का समाधान करने लायक नही थी। उस ने सिर पीड़ा के कारण गहरी सास ली। अपने दुपट्टे मे सिर-मुंह लपेट लिया। करवट ले कर मुह फेर लिया और आँखे मूँद लीं।

यह आयी तो सलवार पर खून ही खून ! अब भी देख लो ! मै हैरान, यह क्या हो गया इसे ! ये कपड़े छिपाकर झटपट लेट गयी।" सुखदेत सब को सुना कर बोली।

निहालदेई अपने प्रश्न की अवहेलना से नाराज हो गयी। वह लड़की से भी अधिक ऊचे स्वर मे बोली—"हा री देखो तो इनकी करतूत। एक जनी तो लौटी ही नही। क्या इसीलिये दोनो रात बाहर रही थी ? क्या हाल करा कर आयी है ?"

"हमे क्या, जैसा करेगी, वैसा भरेगी।" ब्राह्मणी बोली।

"महाराज बेडा गरक करे इन बेशर्मो का" धम्मो की सास ने घृणा प्रकट की, "हमारा बस चले तो एक पल यहा न रहे। हम तो कहते है, बहू के मायके की खबर मिल जाये तो यहाँ से पिंड छूटे। हम से तो यह सब देखा नही जाता। परमेस्वर महाराज हमे ही उठा ले।"

"गयी थी कि मौज करेगी। डाडो से वाह (जबरदस्तो से वास्ता) पड़ गया होगा।" सुखदेत किलक के स्वर मे बोली।

निहालदेई और सुखदेत के अनुकरण मे धम्मो की सास का स्वर भी ऊचा हो गया—"तभी तो हलवे-पूरिया निगलती है। हम गरीबो को तो सूखी रोटी पेट भर नसीब नही। यह कम्प है ? यह तो कंजरियो का चकला है। बेड़ा गरक हो इन का। हम यहा कैसे रहे। हमारी जवान बहू है·······।"

चलो री चलो ! कम्प वालों से कहें, यह क्या तमाशा है ? हमारी जवान लड़की है। इसे हम यहां नहीं रखेंगे। ऐसा कैसे हो सकता है ! यह कोई छल्ला-कोठी, चकला थोड़े ही है। चलो न कहें चलकर....।" चटाई पर सदा घुटने समेटे निश्चल पड़ी रहने वाली गुजरांवाला की बुढ़िया के अतिरिक्त सभी बोल रही थीं।

तारा ने व्यंजना और संकेत समझा। दुर्भाग्य के अतल कूप में पड़ी हुई को एक और ठोकर लगी। वह गहरे से गहरी डूबती जा रही थी परन्तु अपने आप को बचाने के लिये प्रतिवाद कर सकने का सामर्थ्य न था। असहाय पड़ी अनुभव कर रही थी कि उसे घेर कर खड़ी, लांछन लगाती स्त्रियां उस से ऐसे घृणा कर रही हैं जैसे वह उनके बीच में दुर्गन्धित लाश की तरह पड़ी हो। तारा को अपनी मुक्ति की संभावना इसी में जान पड़ रही थी कि उस की लाश को उठाकर आग में, बहती गहरी नदी में फेंक दिया जाये।

तारा क्रोध और घृणा से बक-झक करती स्त्रियों के बीच पड़ी हुई, दुपट्टे में सिर-मुंह लपेटे अनुमान कर रही थी कि उसे अभी उठाकर फेंक दिया जायेगा, ...चुटिया से घसीटते हुये फेंकने के लिये ले जायंगे। उसे घसीटते समय उस के सब कपडे भी फाड़ देंगे। उसके प्रति क्रोध और घृणा है क्योंकि उस पर अत्याचार कर दिया गया है। उस पर इसलिये क्रोध है कि उसने अपमान किया जाने का, सोमराज और नव्वू द्वारा अत्याचार किये जाने का विरोध किया है।

तारा दम रोके वीभत्स कल्पना करने लगी--उसके साथ ही एक और लड़की को भी सब कपडे फाड़ कर बाजार में घसीटा जा रहा है क्योंकि उसने अपमान करने के लिये आक्रमण करने वालों पर बंदूक से गोलियां चलायी हैं। लड़की के अंग-अंग काटे जा रहे हैं क्योंकि वह 'जयहिन्द' नहीं कह रही है। वह 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' पुकार रही है। फिर भी वह लड़की ललकार रही है—मैं नहीं हारी ! मेरी मिट्टी का तुम जो चाहो कर लो ! मैंने सिर नहीं झुकाया। यह शरीर तो मिट्टी हो चुका—यह मेरा पराजय नहीं, तुम्हारी पशुता है। तारा छटपटा रही है कि उसे बन्दूक मिल जाये, तलवार मिल जाये; वह मरते-मरते लड़ ले, फिर उसका अंग-अंग काटा जाये तो उसे पीड़ा नहीं होगी........।

तारा को घेरे स्त्रियां क्रोध और घृणा से एक साथ बोल रही थीं। वह उन के शब्द नहीं समझ पा रही थी पर जानती थी कि उसे दंड दिया जाने के लिये भगवान को पुकारा जा रहा था। तारा का सिर चकरा रहा था—भगवान न इन की सुनता है, न मेरी सुनता है।

तारा अर्ध-मूर्छित कल्पना में डूब गयी। भगवान उसे दंड देने के लिये बुला रहा है। उसे भगवान के सामने घसीटा जा रहा है। भगवान का चेहरा बार-बार बदल जाता है, जैसे सिनेमा के पूरे पर्दे पर खूब बड़े चेहरे आते-जाते हैं।""खूब बड़ी झाबर, घुंघराली काली दाढ़ी, कतरी हुई मूंछें, लाल तुरकी टोपी, बहुत तेजोमय और क्रोध से तमतमाता लाल-लाल चेहरा! भगवान हाथ में टोंटीदार लोटा लिये नमाज पढ़ने के लिये बिछे आसन के समीप खड़े है। कभी भगवान का चेहरा बिना दाढ़ी-मूंछ के बालक जैसा लगता—कटाक्ष भरे नेत्र, मुस्कान से थिरकते होंठों पर बांसुरी।""""परन्तु भगवान का कोई भी रूप उसकी ओर नहीं देखता था। सब उपेक्षा से मुंह फेर लेते थे।

"सुणों! देखो, ऐ बीबी!" तारा को भगवान के एक दूत ने पुकार कर सीधी खड़ी हो जाने के लिये कहा, "उठो, सुणती नहीं हो!"

"इसका नाम तारा है।" सुखदेत का तीखा स्वर सुनाई दिया।

"ओ तारा बीबी!"

तारा ने समझा, स्वप्न नहीं सचमुच उसे कोई पुकार रहा है। सिर और कंधों से दुपट्टा हटा कर पलकें उघाड़नी पड़ीं।

लम्बी-लम्बी सफेद मुंछों वाला, कानों में सोने की छोटी-छोटी मुकियाँ पहने, सामने खड़ा कैम्प का चपरासी उसे पुकार रहा था।

भजनलाल कैम्प का चपरासी था। पहले दिन वही आकर तारा और बंती को केवल स्त्रियों की झोंपड़ी मे छोड़ गया था। पहिले भी तारा ने उसे छोलदारी में देखा था।

"चलो उट्ठो, तुम्हें दफ्तर में बुलावें हैं।" भजन ने तारा से कहा।

निहालदेई समीप ऐसी मुद्रा में खड़ी थी मानो भजन उसी की आज्ञा का पालन कर रहा हो। शेष स्त्रियाँ भी तमाशा देखने के लिये चारों ओर घिरी हुयी थी।

"अभी मेरी तबीयत ठीक नही है। कुछ देर में आ जाऊंगी।" तारा ने सिर दर्द के कारण और स्त्रियों के सामने अपने सम्मान की रक्षा के लिये कह दिया।

"बुलावे है तो जावेगी कैसे नही। ये तो ऐसे बोल्ले, जैसे बेगम होये! उट्ठ! इठे तेरे बप्पा का घर है क्या?" भजनलाल ने रोहतकी लहज़े मे क्रोध प्रकट किया।

"जाती क्यों नही?" निहालदेई ने हाथ मटका कर भजन का समर्थन किया, "रात भर शहर में सैर करती रही, तब तबीयत खराब नही थी?"

तारा ने पलकें मूंद कर होंठ चबा लिये। चटाई पर हाथों से सहारा ले

कर उठी और भजन के पीछे-पीछे चल दी। दरवाज़े से कदम बाहर रखते हुये पीठ पीछे से सुना—"कैम्प में ऐसी बेहयाओं का क्या काम ! जायें चकले की खाक फांकें।"

तारा को लगा, वह उठा कर फेंक दी जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे फेंक देने के लिये ले जा रहे थे। दरद से फटते सिर की मूढ़ता में सोचती जा रही थी, उसे कहाँ फेंका जायेगा ? वह छोलदारी में जाकर और दुर्गति क्यों कराये ? समीप ही तो रेल की लाइनों पर पुल है। वहाँ जाकर कूद जाये···।

"चलो इधर !"

तारा ने आँखें उठायीं। भजन राह रोके छोलदारी के द्वार का पल्ला उस के लिये उठाये था।

छोलदारी में विमल जी और उन के साथ काम करने वाले नौजवान बैठे थे परन्तु विमल जी की कुर्सी पर उस समय एक युवती बैठी थी। चिकना गेहुंआ-खुलता हुआ रंग, आधुनिक ढंग से ढीला जूड़ा बाँधे, इकहरा भरा-भरा, कोमल शरीर। बिना आस्तीन का चुस्त ब्लाउज, वायल की सफेद साड़ी, बे-मालूम प्रसाधन।

"यही वह स्त्री है ?" युवती ने विमल जी से अंग्रेजी में पूछा।

विमल जी ने हामी भरी और तारा की ओर देख कर बोले—"डाक्टर श्यामा रिफ्यूजी-रिलीफ-कमेटी की वाइस प्रेज़ीडेंट हैं।"

तारा को डाक्टर श्यामा का परिचय अंग्रेजी में दे कर विमल जी ने संकेत कर दिया कि तारा अंग्रेजी समझती है और बता भी दिया—"तारा जी पंजाब में टीचर थीं।"

डाक्टर श्यामा तुरन्त कुर्सी से उठ खड़ी हुयी। छोलदारी को दो भागों में बाँटते पर्दे की ओर बढ़ कर तारा से अंग्रेजी में बोली—"यहाँ भीतर आ जाइये, हम लोग यहीं बात करेंगी।" डाक्टर ने पर्दे का एक पल्ला स्वयं उठा दिया।

श्यामा ने तारा को कोहनी से पकड़ कर तख्त पर अपने साथ बैठा लिया और सहानुभूति से धीमे स्वर में अंग्रेज़ी में ही बात की—"तुम्हें किसी ने परेशान किया ?····शरीर में कोई कष्ट है ?····कहीं चोट आयी है ?"

"नहीं, कुछ नहीं। केवल सिर में दरद है।"

श्यामा ने तारा की नब्ज देखी, माथा छू कर देखा, और पूछा—"शरीर में कोई कष्ट नहीं है ? खैर, तुम्हारे साथ तुम्हारी बड़ी बहिन भी गयी थी। वह कहाँ है ? कहाँ रह गयी ?"

श्यामा के व्यवहार और स्वर से तारा की आँखें छलक आयीं। उत्तर न दे सकी, सिसकने लगी। वह रुलाई रोक कर बात करना चाहती थी परन्तु सूखे गले और जिह्वा से बोल नहीं निकल पा रहा था।

श्यामा ने भाँपा। उस ने उठ कर छोलदारी के पर्दे से झाँक कर तुरन्त जल लाने के लिये कहा। तारा ने एक गिलास जल एक ही सांस में पी कर सांस लिया। फिर आँसू पोंछते-पोंछते धीमे-धीमे गत रात की घटना संक्षेप में सुना दी।

डाक्टर श्यामा तारा की बात सुन कर पल भर स्तब्ध और मौन रह गयी।

डाक्टर श्यामा ने तारा और बंती पर बीती का हाल जान कर सलाह दी—"यह कपड़े बदल डालो। तुम्हारे पास दूसरे कपड़े हैं ?"

तारा ने अनुरोध किया—"आप मुझे कोई भी काम बता दीजिये। मैं सब़ कुछ करने के लिये तैयार हूं। इन स्त्रियों ने जैसा व्यवहार किया है, वहाँ नहीं रहना चाहती।"

"तुम उन जाहिलों की परवाह मत करो !" श्यामा ने आश्वासन दिया, "मेरा स्कूल वगैरह में विशेष परिचय नहीं है पर मैं पता ले कर बताऊंगी। तब तक तुम यहाँ के प्रबन्ध और लिखा-पढी में मदद करो। तुम बैठो मैं तुम्हारे लिये सिर दरद की दवा मंगवा दूं। श्यामा पर्दे के दूसरी ओर चली गई।

पर्दे के दूसरी ओर श्यामा, विमल जी और दूसरे लोगों मे धीमे स्वर में बात कर रही थी। स्पष्ट समझ न आने पर भी तारा समझ पा रही थी कि बात उसी के विषय में और उसकी सहायता के विषय में हो रही थी।

कुछ मिनट के बाद भजन की पुकार सुनाई दी—"बिब्बी जो मैं आजाऊं ?"

भजन भीतर आया तो एक सकोरे में गरम दूध और तीन पुड़ियाँ लिये था। दोनों हाथों का सामान समीप पड़ी लोहे की कुर्सी पर रख कर उसने सेवा की तत्परता से कहा—"अभी पानी भी लाता हूं।"

भजन ने पानी लाकर तारा से मुंह धो लेने का अनुरोध किया।

श्यामा ने लौट कर कहा—"अभी एक पुड़िया दूध से ले लो और लेट ज़ाओ। दरद रहे तो दो पुड़ियां तीन-तीन घंटे बाद ले लेना।"

तारा छोलदारी से बाहर निकली तो भी श्यामा कुर्सी पर बैठी हुई थी। उसने तारा को सलाह दी—"तुम उन लोगों की परवाह मत करो। अपनी ज़गह जाकर आराम करो। मैं जरूर कुछ करूंगी फिर मिलूंगी। मन को शांत रखो।"

इच्छा न होने पर भी तारा को झोंपड़ी में लौटना ही पड़ा। उसे झोंपड़ी

के दरवाजे पर ही बहुत शोर सुनाई दिया। निहालदेई, सुखदेत और धम्मो की सास की आवाजें परस्पर-प्रतिद्वन्दिता कर रही थीं। तारा ने झिझकते हुये झोंपड़ी में कदम रखा। वाग्युद्ध के कोहराम के आतंक से वह आंखें झुकाये अपनी चटाई पर बैठ गयी।

झोपड़ी में एक ओर निहालदेई और सुखदेत अपने कोने से पांच-छः कदम आगे बढ़ कर खड़ी थीं। दूसरी ओर से धम्मो और उसकी सास अपने स्थान से आगे बढ़कर मोर्चे पर खड़ी थीं जैसे पकड़-कबड्डी खेलनें वाली दो पालें हों। दोनों ओर से झूठ बोलने और झूठा लांछन लगाकर कैम्प के प्रबन्धकों से फटकार दिलाने के लिये कोसा जा रहा था और तारा पर मिथ्या आरोप लगाने का उत्तरदायित्व एक दूसरे पर डाल रही थीं।

ब्राह्मणी तारा के समीप आकर बोली—"बहना, तुम कब आयी ? मैं तो यहां थी ही नहीं। लोगों के कपड़े नल पर धो रही थी। मुझे बुला कर इन्हीं लोगों ने बताया। तुम्हें जिसने बुरा कहा, उन्हीं का खुद बुरा हुआ। अच्छा हुआ, उन्हें फटकार पड़ी। अपना सा मुंह लेकर रह गयीं।"

झगड़ा सुनकर पास-पड़ोस से स्त्रियां आ गयी थीं। तारा लज्जा से मरी जा रही थी। बातें झूठी थीं परन्तु उन का प्रचार उस का अपमान था। पड़ोसियों ने कौतूहल में सब कुछ सुन लिया तो लड़ने वालियों को आपस में शांति से रहने का उपदेश देकर चली गयीं।

लड़ाई का वाग्युद्ध खत्म हुआ तो निहालदेई, उसकी बेटी तथा धम्मो और उसकी सास के दलों में असहयोग होगया। तीसरे पहर कोई किसी से बोल नहीं रही थी। सब स्त्रियां अपनी-अपनी चटाइयों पर पड़ी ऊंघ रही थीं।

"बिब्बी तारादेवी जी।" झोपड़ी के द्वार से फिर भजन की पुकार सुनाई दी, "डाक्टर मेम साबणे थारे खातर कपड़े भेज्जे हैं। अग्गे बढ़ के लेल्लो।"

तारा को उठने में शिथिलता करते देखकर ब्राह्मणी आगे बढ़ गयी—"ला भाई दे दे। मैं उसे पकड़ा देती हूं।"

"ना ना, माई।" भजन ने इंकार किया, "मैं तो अपणे हात्थों देऊंगा। जिसको देण्णे खात्तर कहा है, उसी को देऊंगा।"

भजन भीतर आ गया। उसकी बगल में छोटा सा बिस्तर था और हाथ में अंग्रेजी में लिखा छोटा सा पर्चा।

सब स्त्रियों की तन्द्रा टूट गयी। वे विस्मय से तारा के लिये आये सामान को देखने लगीं। ब्राह्मणी ने सलाह दी—"बहना, खोलकर देख ले कि पर्चे में लिखा सब है कि नहीं।"

"मैं क्या जा णूसूं इसमें क्या है, क्या नईं है। मैंने खोल कर देक्खा भी ह्वो तो गंगाजी की कसम। हाँ तुम खोलकर देख लो अपणे हात्थां ते।" भजन ने अपने निर्दोष होने का एलान किया।

सामान कम्बल मे लिपटा हुआ था। ब्राह्मणी ने उसे तारा के सामने चटाई पर खोल दिया। कम्बल नया नहीं परन्तु बहुत पुराना और सस्ता भी नहीं था। एक धुली चादर थी। सफेद तौलिये में कुछ और कपड़े लिपटे थे। ब्राह्मणी ने तौलिया खोल दिया। दो सूती साड़ियां—एक हल्के आसमानी रंग की दूसरी खाकी चारखाने की, दो जम्पर आधी बांह के, दो पेटीकोट। सब कपड़े धोबी के धुले इस्त्री किये थे। सम्पन्न, सुघड़ घर के बक्सों की सुगन्ध से रचे हुये। एक टिकिया सनलाइट साबुन भी था।

सब स्त्रियों की आंखें विस्मय से फटी रह गयीं। निहालदेई उठकर समीप आगयी और साड़ियों का कपड़ा हाथ में लेकर परखने लगीं।

भजन चला गया तो निहालदेई बोल पड़ी—"धोतियां हंडाई (बरती) हुई है पर घिसी हुई नही हैं। कपड़ा महीन, बढ़िया है।"

सुखदेत भी उठ आयी और जम्पर के कपड़े और पेटीकोट की परख करने लगी। धम्मो और उसकी सास अपने स्थान से नहीं उठीं। अपने कोने में बैठी-बैठी ही देखती रहीं।

प्रसन्नो ब्राह्मणी ने तारा से अनुरोध किया—"बहना, उठ तू जाकर नहा ले और कपड़े बदल ले। इन कपड़ों को ऐसे ही रहने देना। मैं कल दिन में दूसरे कपड़े धोते समय इन्हें भी धो डालूँगी। तीन कपड़ों में पता ही क्या चलता है। साबुन तो है ही।" निहालदेई ने भी उस का समर्थन किया।

"पहले ज़रा उधर जाऊंगी।" तारा उठते हुये बोली।

"हाय, गन्दी जगह है। बहना, नंगे पाँव जायेगी? मेरे सलीपर पहन जा, लोटा भी ले ले। तू ने कल भी तो लिया था। हम तो कहते हैं, जिसे जरूरत हो बरत ले।" निहालदेई ने आत्मीयता प्रकट की।

तारा ने स्त्रियों के लिये चटाइयों से बना दिये गये घेरे में स्नान किया। वह नहा-धो कर और नये धोती-जम्पर में आयी तो दूसरी ही लग रही थी। सुखदेत ने तुरन्त अपना आइना-कंघी निकाल कर उस के सामने रख दिया। तारा ने लगभग दो मास बाद आइने में अपना चेहरा देखा था। उसे अपना चेहरा अपरिचित सा, बहुत उदास, रोगियों जैस सफेद-पीला लगा। चटाई पर कम्बल बिछाकर लेटी तो बंती की याद में आँसू बह आये।

× × ×

तारा, प्रातः नहा-धो चुकने के बाद झोपड़ी में चटाई पर बेकार पड़ी रहने के बजाये, कैम्प के काम में सहायता दे सकने के विचार से छोलदारी की ओर चली गयी। छोलदारी में खूब शोर था। एक भद्र युवती के भीतर आ जाने से सब चुप हो गये।

विमल जी ने स्वागत किया—"आइये-आइये, तारा बहिन जी।"

कम आयु के दो नौजवान कुर्सियाँ छोड़ कर खड़े हो गये।

सब लोगों के चुप हो जाने से तारा को संकोच सा अनुभव हुआ। बोली—"कल डाक्टर साहबा ने कहा था कि मैं""हिन्दी बोलते-बोलते पंजाबी के शब्द जिह्वा पर आ जाने से उस ने अंग्रेजी में बात पूरी की, "यदि किसी काम में सहायता कर सकूँ तो बताइये।"

विमल जी माचिस की एक सींख से कान खुजाते हुये विनता से बोले—"बहिन जी, काम तो असल में शहर से आवश्यक सामान और रुपया जमा करना और गवर्नमेन्ट से एड (सहायता) लेना है। वह तो खन्ना साहब, महाशय जी, प्रसाद जी, डाक्टर श्यामा, मिसेज अग्रवाला, दयावंती जी कर रही हैं। जिन लोगों का प्रभाव है, वही यह कर सकते हैं। हमारा काम तो जो सहायता आये, उसे बाँट देना है। यहीं दस-बीस दरख्वास्तें आ गयीं या किसी ने रेडियो के लिये सूचना लिखवा दी। अलबत्ता यह एक लम्बा काम जरूर है। डिप्टी कमिश्नर ने सब कैम्पों से लिस्टों की कॉपियाँ मांगी हैं। किसके कैम्प में सब कैम्पों की लिस्टें चाहियें। पूरे एक सौ तेरह पृष्ठ हैं। आप भी कुछ मदद कर दीजिये।"

तारा ने अनुमति में हामी भर ली।

"कलम चाहिये आपको?"

तारा ने हामी भरी। विमल जी ने अपनी जाकेट की जेब से कलम निकाल कर तारा की ओर बढ़ा दिया। छोलदारी में तारा के अतिरिक्त सब पुरुष और जवान ही थे।

"मैं भीतर बैठ कर लिख लूँ?" तारा ने विमल जी से अनुमति चाही।

"जी हाँ, जरूर।"

तारा पर्दे के दूसरी ओर चली गयी। तारा के पर्दे की ओट होते ही सब लोग हँस पड़े, जैसे उन की हँसी तारा की उपस्थिति से रुकी हुयी थी। तारा को लगा, सब लोग उसी पर हंस दिये हों। सुना, कोई स्वर को दबा कर कह रहा था—

"भई विमलजी बड़े तेज हैं, झट कलम पकड़ा दिया।"

"और क्या, तुम तो सोचते ही रह गये ।" दूसरा बोला ।

"और बोले कितनी अदा से, जी कलम चाहिये आप को ।"

"भई माडन है माडन । जोर की इंगलिस बोलती है । मजे ही मजे हैं विमल भाई के । परियों से घिरे रहते हैं ।"

तारा को बहुत बुरा लगा । यह लोग मदद देने आये हैं या दूसरों के दुर्भाग्य पर हंसने के लिये ?.........होगा, ऐसी बातों की फिक्र करने की क्या ज़रूरत है । आपस में बकने दो । कालिज में क्या लड़कियाँ आपस में मज़ाक नहीं करती थीं । अमृता, सुरेन्द्र, कृष्णा, शीलो आपस में क्या नहीं बक लेती थीं...मेरी बला से । मैं उधर ध्यान ही क्यों दूं ?

दूसरे दिन पर्दे के दूसरी ओर से दूसरे आदमियों के बोलने के स्वर और बातचीत सुनायी दे रही थी । उर्दू का पंजाबी लहजा था । मुसलमानों की रक्षा के लिये आक्रमणकारी हिन्दुओं पर गोली चलाने के लिये रोष प्रकट किया जा रहा था—"...ये लीडर हमारे साथ दग़ा कर रहे हैं । मुसलमानों के लिये हिन्दुओं को कुर्बान कर रहे हैं । पाकिस्तान की सरकार को अपनी रिआया का खयाल है ।...यह सब गांधी की करतूत है । वह मुसलमानों का पीर बनना चाहता है । रोज़ रेडियो पर उन लोगों का हौंसला बढ़ाता है....।"

तारा ने यह सब सुनना व्यर्थ समझ कर अपना ध्यान कागज़ों में गड़ा देना चाहा । दो-एक नामों के पढ़ने में उलझन हुयी परन्तु तारा का मन दूसरी ओर भम्भड़ में जाने को न हुआ ।"

कुछ देर बाद दूसरी तरह की बातचीत सुनाई दी । किसी पंजाबी और दिल्ली वाले में मज़ाक चल रहा था ।

"क्यों नहीं, पंजाबियों का दिल बहुत बड़ा होता है । इन्हें हर हालत में ऐश चाहिये, चाहे मांग कर ही हो । जिस पंजावन को देखिये, रेशम-साटिन पहने है । बदन पर सोने का जेवर । कहेंगे—हमारा सब कुछ लुट गया, बस बदन के कपड़े भर हैं । मुफ्त राशन का कार्ड दे दीजिये, कम्बल दिलवा दीजिये, मकान दिलवा दीजिये, नौकरी दिलवा दीजिये ।"

"अमां, ऐसी हालत है तो रेशम-साटिन, जेवर कहां से आजाता है ?"

पंजाबी ऊंचे स्वर में बोला—"लाला, तुम्हारे सिर पड़ती तो मुंह पर मक्खियां भिनक जातीं मक्खियां । यह पंजाबियों का ही जिगरा है, समझते क्या हो ! तुम्हारा कभी कुछ बिगड़ा नहीं । दरिया में बाढ़ आ जाती है तो तुम्हारे यहां के लोग पंजाब भर में मांगते फिरते है । किसी पंजाबी को मांगते देखा है ? हम सैकड़ों बरस से सीने पर चोटें झेलते आये है ।"

"वाह, बड़े सूरमा हो, आखिर तो भागकर ही आये हो मियां ! अमां यह मांगना नहीं तो क्या है ? मुफ्त राशनकार्ड क्या है ?"

"यह मांगना है साले ? तेरी...हम तुम्हारे सुराज की खातिर कुरबान हो गये...."पंजाबी दहाड़ उठा।

तारा को कुर्सियों के घिसटने-खटकने की आहट मिली। मारपीट का आतंक अनुभव हुआ परन्तु साथ ही सुनाई दिया—

"अरे, अरे ! ये क्या ! ये क्या ? बात का जवाब बात से दीजिये ! हाथ-पांव क्यों चलाने लगे ...?"

"तुम्हारी जबान चलती है, हमारा हाथ चलता है।"

"जी क्या कहना, बहुत शरीफ हैं।"

"अभी सब शराफत......घुसेड़ दूंगा।"

कुछ धर-पकड़ की आहट, कुर्सियों को फिर से जमाने का खटका। झगड़े का आतंक दूर हुआ। तारा को मुफ्त राशन कार्ड के ताने से ग्लानि अनुभव हुई।

"अरे भाई रेशम-साटिन का राज़ तुम नहीं समझते।" दूसरा पंजाबी झगड़ा शांत कराने के स्वर में बोला, "भाई जान, दो चार अच्छे कपड़े तो अवसर के लिये सभी के यहाँ होते हैं। भागना पड़ा तो क्या अच्छा कपड़ा छोड़ कर सस्ता-पुराना पहनकर आते ? जो कुछ ला सके, वही पहन रहे हैं। दूसरा कपड़ा इन के पास है ही कहाँ। दो चार गहने हैं तो उन्हें छिपाकर रखने के लिये तिजोरियां कहां हैं ? मुफ्त राशन कितने दिन मिलेगा ? कल इन्हीं दो-चार जेवरों को बेचकर ठौर-ठिकाना बनाना है। यह कहो कि अपने जिस्म की चर्बी पर जिन्दा हैं........"

"अच्छा-अच्छा भाई रहने दीजिये" विमल जी ने दोनों को शांत करने के लिये कहा, "हम तो आपको पोलिटिकल सफरर (राजनैतिक पीड़ित) मानते हैं। जो कुछ बन पड़ता है, कर रहे हैं; और कर सकेंगे तो करेंगे।"

तारा बड़े-बड़े आठ पृष्ठ लिख चुकी थी। प्रायः तीन सौ परिवारों के नाम-धाम चढ़ा दिये थे। छोलदारी में बाहर शांति थी। सब लोग चले गये थ। तारा ने लौट जाने का उपयुक्त अवसर समझा।

बाहर आयी तो केवल विमल जी और भजन ही थे।

तारा लिस्टें और नकल किये फुलस्केप कागज़ विमल जी के सामने रख कर बोली—"भाई साहब, दोपहर बाद आकर फिर लिख दूंगी।" ज़रा झिझकी और कहा, "यह तो मैं कर दिया करूंगी। आप कहीं स्कूल वगैरह का नाम बता सकने में मेरी सहायता कर सकें तो....। आप इतने लोगों का बोझ उठा रहे हैं।"

"हां हां।" विमल जी ने स्वीकार किया, "हमने तो सब स्कूलों में और दूसरी संस्थाओं से भी अनुरोध किया है कि जहाँ भी आवश्यकता या अवसर हो, हमें सूचना दें। बहुत सी अच्छी पढ़ी-लिखी बहनें काम करना चाहती हैं। आप लोगों में बहुत हिम्मत है लेकिन बात यह है कि जो पहले वहाँ पहुँच जायेंगी उन्हीं के लिये पहले अवसर होगा। आमने-सामने की बात का प्रभाव दूसरा ही होता है।"

विमल जी ने तारा को इन्द्रप्रस्थ, सदर, दरीबा, चावड़ी बाजार के लड़कियों के छोटे-बड़े स्कूलों के नाम-पते कागज़ पर लिखकर दे दिये।

प्रसन्नो ब्राह्मणी ने तारा से अनुरोध किया था कि तारा उसे अपना राशन कार्ड और ईंधन के लिये चार पैसे दे दे तो तारा के लिये रोटी सेक दिया करेगी। तारा उस की अवस्था जान गयी थी। प्रसन्नो का जेठ उसे और उस के लड़के को स्टेशन पर छोड़ कर बम्बई जाते समय रुपया-पैसा कुछ नहीं दे गया था। बेचारी ने साहस से निर्वाह का साधन बना लिया था। वह अच्छी अवस्था के बाल-बच्चेदार शरणार्थियों के कपड़े धो देती थी। एक आने में दस कपड़े! साबुन कपड़ा धुलाने वाला देता था। तीन-चार आने रोज़ कमा लेती थी। एक मास तक मुफ्त राशन मिलने का नियम था। उसे कैम्प में आये बाइस दिन हो चुके थे।

निहालदेई, प्रसन्नो ब्राह्मणी की बात टोककर बोल पड़ी---"ईंधन का क्या है? चार पैसे किस बात के? जहाँ दो के लिये रोटी सिकती है, तीन के लिये भी सिक जाती है। हम खुद बहिन का राशन लाकर रोटी बना देंगे। तुम चिंता क्यों करती हो।" निहालदेई ने तारा को सुना कर ब्राह्मणी की ओर देखा, "इसके पास बर्तन भी कहाँ हैं? कभी हम से, कभी धम्मो से बर्तन मांगकर अपना बनाती है।"

तारा का मन तो ब्राह्मणी से ही सहयोग के लिये था परन्तु बड़बोली निहालदेई से झगड़ा नहीं लेना चाहती थी इसलिये अपना राशन कार्ड उसे ही दे गयी थी। दोपहर में लौटी तो झोपड़ी में केवल धम्मो उस की सास और तीन दिन पूर्व आयी जवान स्त्री रिखी ही थीं। गुजरांवाला की अपाहिज बुढ़िया तो घुटने समेटे अपनी चटाई पर पड़ी ही रहती थी। निहालदेई तारा के हिस्से की रोटी-दाल ढाँक कर धम्मो को बता गयी थी।

दो ही दिन में झोपड़ी की स्त्रियों की धारणा हो गयी थी कि तारा कैम्प के दफ्तर की छोलदारी में जाकर मर्दों के बराबर कुर्सी पर बैठती है। वह पढ़ी-लिखी है। अच्छे बड़े घर की है। उस की बात मानी जाती है। प्रातः

प्रसन्नो ने अपने चार बरस के बच्चे को, सर्दी के भय से बचाने के लिये, एक कम्बल दिला देने के लिये तारा से प्रार्थना की थी। प्रसन्नो की पोटली में एक जोड़ा कपड़ों के अतिरिक्त कुछ न था। आधी रात के बाद सर्दी होने लगी थी। तारा ने कह दिया—मेरा कम्बल बच्चे को ओढ़ा देना। मेरे लिये अभी चादर ही बहुत है।

एकान्त देख कर बम्मो की सास उस के समीप आकर धीमे से बोली—"बेटी, कैम्प वाले कह रहे हैं कि हमें यहाँ एक महीना हो गया है। हमें कहीं बहुत दूर, 'कंग कम्प' में जाने के लिये कह रहे हैं। दूर जंगल में कम्प बताते हैं। वहाँ राशन नहीं देते। मैं दो बच्चों और जवान बहू को लेकर कहाँ जाऊंगी? सुना है, बेवाओं को मकान मिल रहे हैं। हमें कोई जगह दिला दे। हम लोगों का चौका-बर्तन करके गुजारा कर लेंगी। बच्चों को लेकर कहाँ जावेंगी...।"

निहालदेई के आ जाने से बुढ़िया तुरन्त चुप हो गयी।

तारा दाल-रोटी खा कर अपनी चटाई पर कम्बल बिछा कर लेट गयी। वह सोच रही थी, क्या करे? छोलदारी में जाकर लिस्टें नकल करने के बजाय किसी स्कूल में कुछ पता क्यों न करे? इस समय यदि बंती होती? बंती की मृत्यु को छः दिन ही हुये थे। एकान्त पा कर तारा को वही बीभत्स घटना दिखायी देने लगती थी। तारा जितना ही उसे याद नहीं करना चाहती थी वह घटना उतनी ही अधिक याद आती थी। बंती के साथ महीना भर भी नहीं रही थी परन्तु उस से जन्म का सम्बन्ध जान पड़ता था।

दो मास पाँच दिन पूर्व लाहौर में, तारा ने बहू बन कर ससुराल में कदम रखा था। उसी दिन आधी रात में 'बन्नी हाते' पर पड़ोस से मुसलमानों का भयंकर आक्रमण हो गया था। तारा को ससुराल के मकान की तीसरी मंजिल पर, अपनी सोहागरात के कमरे से छत की मुँडेर लांघ कर, साथ लगे मकान की छत पर कूद जाना पड़ा था। उस क्षण से वह पाँव में चप्पल, सैंडल, सलीपर के बिना ही थी। उस घटना से पहले, बचपन के खेल-कूद और धमा-चौकड़ी छोड़ देने के बाद से उस ने चप्पल-सलीपर या जूती के बिना कभी घर से बाहर कदम नहीं रखा था।

अमृतसर में और पहाड़गंज की गलियों में नंगे पाँव घूमने से तारा को तलुओं में कष्ट अवश्य अनुभव हुआ था परन्तु पाँव नंगे होने के कारण संकोच या लज्जा अनुभव नहीं हुयी थी। अब डाक्टर श्यामा ने भद्र महिलाओं जैसे कपड़े भेज दिये थे। नंगे पाँव चलना खटकता था। कैम्प की भूमि में काँटे

या कंकर नहीं थे फिर भी संकोच की असुविधा अनुभव हो रही थी। इतना ही नहीं, रात में पहनी मसली हुयी धोती पहन कर झोंपड़ी से बाहर जाते भी अच्छा नहीं लगता था परन्तु दूसरी धोती पहन कर, उसे भी खराब नहीं कर देना चाहती थी।

तारा सोच रही थी कि स्कूलों में नौकरी की बात करने के लिये जायेगी तो उस समय तो दूसरी साड़ी पहन लेगी परन्तु पाँव में कुछ भी न होने से कितना हास्यास्पद लगेगा; लोग क्या समझेंगे ! बंती ने पति की खोज में पहाड़गंज की ओर जाते समय, देव की माँ से मिले रुपये तारा के दुपट्टे की खूंट में बंधवा दिये थे। बंती की मृत्यु के पश्चात वह नौ रुपये ही तारा की सम्पूर्ण पूंजी थी। वह इस धन को विशेष आवश्यकता या आड़े समय के लिये अपनी चोली में खोंस कर सावधानी से रखे थी पर चप्पल के लिये खर्च किये बिना कोई चारा न था।

कैम्प के आस-पास की जगह और दिल्ली नगर की सब से अधिक जानकारी निहालदेई को थी। तारा ने निहालदेई से पूछा—"बहिन, यहाँ समीप बाजार में सस्ती सी चप्पल या सलीपर मिल जायेंगे ?"

"ले वाह ! जितनी—जैसी चाहो। हजारों दुकानें हैं। यह कोई पिंड-ग्राम थोड़े ही है।" निहालदेई ने झोंपड़ी के द्वार की ओर संकेत करके कहा। वह तारा को बाज़ार ले चलने के लिये उत्सुकता से तैयार हो गयी।

-

तारा और निहालदेई कैम्प से कश्मीरी गेट की ओर कुछ ही कदम बढ़ी थीं। निहालदेई झुंझला उठी—"देख न, इन औत्रों (निर्लज्ज-निरबंसियों) को। कैम्प से लड़कियाँ निकलती हैं तो उन के पीछे हो जाते हैं, छेड़खानी करने लगते हैं।"

तारा सहम गयी। आँखें तो न उठायीं पर कनखियों से देख लिया। एक छोकरा निहालदेई से बात करता साथ-साथ चल रहा था।

"कोठरी-कमरा चाहिये ? जगह बता दें !" तारा ने लड़के का स्वर सुना।

"चल हट्ट औत्रा। तैनूं क्या ? हम को नहीं चाहिदा।" निहालदेई ने हिन्दी में बोल कर लड़के को फटकार दिया।

"कोई गहना-कपड़ा, सौदा बेचना-खरीदना हो तो हम ठीक दुकान बता द।" लड़का फिर बोला।

"चल मोया, रण्डी छड्डणा (मरा रांड छोड़ने वाला) दूर हट्ट। साड्डे पिच्छे पड़ा है। हम को सब मलूम है।" निहालदेई ने लड़के की ओर घूम

तारा घूम-घूम कर थक गयी थी। असफलता ने उसे और भी परास्त कर दिया था। समझ गयी, विना किसी सूत्र के नौकरी नहीं मिलेगी। लाहौर में भाई को भी नौकरी के लिये सिफारिशों का सहारा लेना पड़ा था। चांदनी चौक की भीड़ से उसे घबराहट हो रही थी। कंधों पर दो-बार ठुसके भी लग चुके थे। सामने से आता-जाता कोई छोकरा आंख लड़ा लेने का भी यत्न कर जाता। कभी बोली-ठोली भी सुनायी दे जाती मानो बाजार में किसी रक्षक मर्द के साथ न होने से वह मजाक बनने के लिये ही आयी थी। निहालदेई बोले बिना न रहती। उसका बोलना तारा को अच्छा न लगता। याद आया, बंती के साथ अमृतसर में, पहाड़गंज में कितना घूमना पड़ा था। उस समय तो ऐसा नहीं होता था। होता तो बंती अवहेलना ही कर देती। तारा कैम्प में लौट जाना चाहती थी।

निहालदेई ने प्रस्ताव कर दिया--"आ न, यहां की चाट बहुत बढ़िया होती है।" तारा नहीं चाहती थी पर निहालदेई न मानी।

तारा अकेली लौट नहीं सकती थी, क्या करती। वह बिना कुछ खाये निहालदेई के समीप गर्दन झुकाये खड़ी रही। उसे चाट वाले का, पत्तों को अपनी जांघ पर कसी धोती पर पोंछ कर, मटक और मुस्कराकर निहालदेई से बात करना अच्छा नही लग रहा था। तारा को यह देख खीझ आ रही थी परन्तु क्या करती। निहालदेई मिर्चों से सू-सू सी-सी करती जा रही थी परन्तु एक-एक करके चार पत्ते चाट गयी।

निहालदेई को कैम्प लौटने की कोई जल्दी नहीं थी। चाट वाले के यहाँ से चलते-चलते ही सांझ हो गयी थीं। निहालदेई निश्चित, झूमती चाल से इधर-उधर का रंग देखती, कोई न कोई बात तारा को सुनाती चल रही थी। तीन सप्ताह में वह कैम्प में बहुत कुछ देख और सुन चुकी थी। कई झगड़े हो चुके थे। चार नम्बर लाइन में एक लड़की को छेड़ने के कारण मारपीट हो चुकी थी। छः नम्बर लाइन में एक लड़की किसी लड़के से मिल गयी थी। लड़की के मां-बाप ने पहिले एतराज़ किया फिर दोनों को गुरुद्वारे ले गये और दोनों का 'आनन्द-कार्य' करवा दिया।

निहालदेई ने बताया—एक अकेली जवान लड़की तारा की ही उम्र की आयी थी। अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी थी। कैम्प वालों के साथ खूब घुली-मिली रहती थी। कैम्प वाले उसे खूब चाय-बिस्कुट खिलाते थे। जब देखो, उसे कोई बुला ले जाता था। निहालदेई ने कहा--"मैं तो देखते ही उसका ढंग पहचान गयी थी। हफ्ते भर में जाने कहां उड़ गयी। किसी ने फंसा लिया होगा, उड़ा

ले गये ।""बहना, मैं तो सुखदेत के लिये बहुत डरती रहती हूं। क्या मालूम था, जवाई ऐसा करेगा। बिदाई पर ही ससुराल गयी थी। फिर जवाई लेने आया ही नहीं। व्याह हुए दो बरस हो गये हैं पर लड़की है अभी बिल्कुल अल्हड़।......"

निहालदेई और तारा झोपड़ी में लौटीं तो प्रसन्नो अपनी चटाई पर बैठी खा रही थी और बेटे को भी खिलाती जा रही थी। नयी आयी जवान स्त्री रिखो बम्मो के समीप बैठी बात कर रही थी। सुखदेत झोपड़ी में नहीं थी। बक्स पर रोटी बनाकर रखी हुयी दिखाई दी।

"सुखदेत कहां है?" निहालदेई ने चिन्ता से प्रसन्नो को सम्बोधन किया।

"हमें क्या मालूम?" प्रसन्नो ग्रास चबाती रही।

"पांच नम्बर लाइन में थी। उस लड़के ''।" प्रसन्नो का लड़का बोल उठा।

"तुझे क्या, तू चुप रह। रोटी खा" प्रसन्नो ने बेटे को धमका दिया।

"मैं क्या जानू। मैं तो लैंहन्दे वेले (सूर्यास्त के समय) तीन नम्बर वाली के सूखे कपड़े, थाली-लोटा लौटा कर आयी हूं तो यहाँ नहीं थी। मैंने बम्मो से चाबी मांग कर आटा मांड़ा और रोटी सेंकने बम्मो के चूल्हे पर चली गयी थी। अभी आकर बैठी हूं। चाहे किसी से पूछ लो।"

"हम क्या जाने?" बम्मो की सास बोल उठी, "वह क्या हमसे पूछ कर आती-जाती है। हम बोलें तो अपनी इज्जत उतरवायें।"

"तो क्या हो गया, साथ की झोपड़ी में किसी पड़ोसिन से बातचीत कर रही होगी। तुमसे ज़रा बात करो तो चोखें (पेंच) निकालने लगती हो।" निहालदेई बुढ़िया पर बिगड़ कर बोली, "तुम तो ऐसे बोलियां मार रही हो...." तभी सुखदेत झोपड़ी में आ गयी। वह दुपट्टे के पल्ले में कुछ छिपाये थी।

"कहाँ थी तू?" निहालदेई ने कड़े स्वर में पूछा।

"हाय हाय, मैं तो कहीं नहीं गयी। यहाँ ही थी, अभी दो मिनट हुए तो दो नम्बर वाली भोली के यहाँ गयी थी।"

"मैं तुझे कह गयी थी कि रोटी बना रखना। तू नगर-नायन की तरह घूमती फिर रही है। यह नहीं सोचती, ग्वांड (पड़ोस) कैसा है? घुटने तोड़ दूंगी याद रखना!"

"मैं तो आटा मांड़ने लगी थी कि भोली आकर बुला ले गयी।"

"हाय-हाय, आकाश गिर पड़ेगा री" बुढ़िया हाथ उठाकर बोल उठी, "इतना झूठ बोलेगी? जैसी मां वैसी बिटिया। बांस भर सूरज था तब से ही तू गायब है। तेरी मां हम से पूछती है। हम बोलें तो बुरे, न बोलें तो बुरे।"

"झूठी तू, तेरा वाप झूठा। तेरा खसम झूठा जिसे खा गई। तुझे क्या? मैं तेरी गोली हूं।" सुखदेत वुढ़िया पर चिल्ला उठी।

"माँ, तुम इन के बीच में क्यों वोलती हो, हमें क्या मतलब?" धम्मो ने अपनी सास को टोका, "उस की लड़की है, वह चाहे कहे या न कहे। सव का अपने-अपने घर का कायदा है। हमें क्या?"

धम्मो की सास, सुखदेत और निहालदेई चिल्लाने लगीं। ब्राह्मणी और रिखो दोनों को चुप कराने लगी। तारा को भी वीच-वचाव करना पड़ा। कुछ देर वाद शान्ति हुयी तो निहालदेई थाली में आटा लेकर, सुखदेत को साथ लिये बाहर चूल्हे पर रोटी सेकने चली गयी।

तारा का आटा निहालदेई के आटे में ही था। सोचा, वह भी जा कर कुछ मदद करे। रानी वनी कैसे बैठी रहे? तारा ने स्कूलों में जाने के लिये पहनी नयी धोती बदल कर दूसरे कपड़े पहन लिये। धोती तहा कर रख दी और चूल्हे की ओर चली। झोपड़ी का कोना घूमते ही उस ने देखा, वहाँ एकान्त में निहालदेई ने ईंधन की लकड़ी उठा कर सुखदेत के सिर पर ज़ोर से मार दी और उसे गालियाँ दे रही थी।

तारा आगे न वढ़ कर लौट आयी। थकान से चटाई पर लेट गयी। सोचने लगी, यहाँ निर्वाह कैसे होगा। वंती होती तो दोनों किसी तरह निवाह लेतीं। फिर वंती की मृत्यु का दृश्य कल्पना में नाच गया। उस का क्या दोष था? स्त्रियों का भाग्य पुरुषों की प्रसन्नता और उन के निर्णय पर ही निर्भर है।··· नौकरी कैसे मिले?

तारा कैम्प से मुफ्त राशन पाने की ग्लानि से बचने के लिये यथा-सम्भव, कैम्प का काम करती रहती ी। दूसरे दिन वह आठ वजे ही लिस्टें नकल करने के लिये छोलदारी में पहुंच गयी। उस समय वहाँ भजन के सिवा और कोई न था। उसे लौट आना पड़ा। साढ़े आठ वजे फिर गयी और काम में लग गयी। विमल जी उस से वहुत प्रसन्न थे। तारा को उन की प्रसन्नता और सहानुभूति की आवश्यकता थी। समझ लिया था, नौकरी स्थानीय लोगों की सहायता से ही मिल सकेगी। डाक्टर श्यामा से वहुत आशा हुयी थी परन्तु वह फिर दिखायी नहीं दी। जिन स्कूलों की कमेटियों के मन्त्रियों के नाम और पते मिल गये थे, उन के लिये विमल जी से कागज लेकर नौकरी के लिये दो प्रार्थना-पत्र लिख कर दे दिये थे और वहुत विनय से भिजवा देने का अनुरोध किया था। संध्या तक वहुत यत्न करके उस ने इक्कीस फुलस्केप

पृष्ठ नकल भी कर दिये थे।

तारा अगले दिन भी साढ़े आठ बजे छोलदारी की ओर जा रही थी तो विमल जी एक खद्दरधारी सज्जन के साथ झोपड़ियों की पंक्तियों में मिल गये। वे खद्दरधारी सज्जन का परिचय करा रहे थे। यह व्यक्ति कद में विमल जी से डेढ़ बालिस्त छोटे और दुबले होने पर भी मुद्रा से महत्वपूर्ण व्यक्ति जान पड़ रहे थे।

विमल जी ने प्रसाद जी के सामने तारा के शान्त, परिश्रमी स्वभाव की सराहना कर तारा को उन का परिचय दिया—"प्रसाद जी भी रिलीफ कमेटी के वाइस प्रेज़ीडेंट और कांग्रेस के....।"

तारा ठीक से सुन नहीं सकी पर प्रसाद जी के छोटे शरीर में प्रभाव और सामर्थ्य का महत्व जान गयी।

प्रसाद जी ने अपने दोनों हाथ ढीले कुर्ते की जेबों में—पतलून की जेबों में हाथ डालने के ढंग से—धंसाते हुये, पीठ अकड़ा कर शरीर को यथा-सम्भव ऊंचाई तक खींचा और तारा को आपाद मस्तक देखा—"आप यहाँ कितने दिन से है?" और अपनी ओर आते एक व्यक्ति से पूछ लिया, "कहिये, अब आराम से हैं? कोई कष्ट तो नहीं है?"

प्रसाद जी दूसरी झोपड़ी के द्वार की ओर बढ़ते हुये फिर तारा से बोले—"आप लिस्टें नकल करने में हमारी सहायता कर रही है?"

तारा का उत्तर सुने विना ही वे अत्यन्त व्यस्तता से, दूसरे लोगों से कुशल-क्षेम पूछने लगे। वे शरणार्थियों को विश्वास दिला रहे थे, आप लोग हमारे अतिथि है। आप का कष्ट हमारा कष्ट है। आप की चिंता के कारण हम स्वयं कष्ट में है। इतने बड़े देश के शासन का उत्तरदायित्व उठाते ही लाखों विस्थापित भाई-बहनों का बोझ सिर पर आ गया है परन्तु इस का उपाय करना आवश्यक है। इत्यादि इत्यादि।"

अगली झोंपड़ी की ओर बढ़ते हुये प्रसाद जी ने तारा से पूछा—"आप लाहौर में स्कूल में पढ़ाती थीं या कालेज मे?"

"जी मैं...."

प्रसाद जी किसी दूसरे से बोल पड़े—"कहिये कहिये, डिप्टी कमिश्नर ने क्या किया आप के मामले में? हम ने उन से कह दिया था।"

तेरह-चौदह वर्ष की एक परिचित लड़की ने समीप आकर नमस्ते की। नमस्ते के उत्तर में प्रसाद जी ने उस के गालों को थपथपा कर प्यार किया। लड़की संकोच से पीछे हट गयी। प्रसाद जी ने स्नेह से उस के कन्धे पर थापी दे दी।

"हाँ तो···" प्रसाद जी ने फिर तारा से बात आरम्भ की परन्तु दो भद्र-वेशी महिलाओं को देख कर उन से बोल पड़े, "आप मजे में तो हैं" प्रसाद जी को गरीब-अमीर का खयाल नही था। वे अच्छा पहने-ओढ़े लोगों की उपेक्षा नही कर रहे थे।

तारा प्रसाद जी को बहुत व्यस्त देख कर छोलदारी की ओर चली गयी। विमल जी के आने पर कागज कलम ले सकने की प्रतीक्षा कर रही थी।

विमल जी ने लौट कर प्रसाद जी के लिये छोलदारी का पर्दा उठा दिया।

"अरे, आप यहाँ आगयी ? हम तो आप को वहां खोजते रहे।" प्रसाद जी तारा को छोलदारी में बैठे देखकर बोले।

विमल जी ने फिर तारा के परिश्रमी, शांत स्वभाव की प्रशंसा कर नौकरी के लिये उसकी इच्छा की चर्चा की।

"यह तो ग्रेजुएट हैं। इन के लिये क्या मुश्किल होगी। जरूर नौकरी मिल जायगी। चलिये, हम आप को दो-तीन जगह इंट्रोडयूस करा दें।"

तारा कृतज्ञता के भाव से उद्यत हो गयी।

छोलदारी के सामने कुछ ही कदम पर कार खडी थी। प्रसाद जी ने तारा के लिये कार का पिछला दरवाजा खोल दिया। तारा को अच्छी-बड़ी मोटरों मे बैठने का अवसर जीवन मे बहुत बार नही मिला था। खासकर अपनी मैली-मसली हुई साडी पहिने, शानदार गाडी मे बैठते झिझक अनुभव हुई। वह पिछली सीट के कोने में सिमट कर बैठ गयी। प्रसाद जी बात कर सकने के लिये ज़रा तारा की ओर सरक कर बैठे। उन्हों ने ड्राइवर को आदेश दिया—"सब्ज़ी-मण्डी मे जगन जी के यहाँ चलो।"

गाड़ी चल पड़ने पर प्रसाद जी तारा की ओर ज़रा और सरक आये। पूछा—"हाँ तो फिर कहिये, कोई कष्ट, किसी चीज़ की जरूरत तो नही ? हम ने किसी प्रकार का तकल्लुफ न कीजियेगा। हम तो सीधे-साफ आदमी है। बीसियों काम है। कांग्रेस का वर्क है, शरणार्थियों का काम है··।"

"धन्यवाद, कोई कष्ट नहीं।"

"आप लाहौर मे रहती थी। लाहौर तो बहुत एडवांस्ड सिटी था। हम तो प्रायः जाते रहते थे।"

"जी।"

"आप स्कूल में नौकरी चाहती हैं, हो जायेगा। वैसे कई पढी-लिखी लड़कियो ने स्टैनो का भी काम कर लिया है। उस काम में अच्छे पैसे मिल जाते है। टाइप तो बहुत जल्दी आ जाता है। एक को हम ने प्राइवेट सैक्रेटरी का

काम दिला दिया है।"

"जी जो कुछ, वैसा भी काम मिल जाये।"

"अरे इस में कोई दिक्कत नहीं होगी। आप विश्वास रखिये। आप फ़िक्र न कीजिये। आप के लिये फ़िक्र करना तो हमारा काम है।" प्रसाद जी ज़रा मुस्कराये, "आप लोग तो बहुत एडवेंचरस होती हैं। कितनी ही पंजाबी लड़कियां फ़िल्म लाइन में भी बहुत कामयाब हुई हैं।"

तारा को प्रसाद जी की मुस्कान और बातें उनकी स्थिति के अनुकूल गंभीर नहीं लगीं। हामी न भर सकी परन्तु विनय प्रकट करना आवश्यक था। उसने मुस्कान में होंठ हिला दिये।

प्रसाद जी बोले—"हम इन्द्रप्रस्थ कालेज में आप के लिये कह देंगे। प्रिंसिपल हमारी मिलने वाली हैं। दूसरी बीसियों जगह हैं। काम कर सकने वालों के लिये क्या कमी है जी, आप डिप्रेस न होइये।"

"जी, मुझे विश्वास है......।"

प्रसाद जी कुछ न कुछ बात करते जा रहे थे। गाड़ी वृक्षों और कोठियों के बीच से होती हुई चौड़े बाजार में पहुंच कर एक मकान के सामने रुक गयी। प्रसाद जी तारा से दो मिनट प्रतीक्षा करने के लिये कह कर सामने मकान में चले गये।

प्रसाद जी दो मिनट के बजाये बीस मिनट में लौटे। ड्राइवर उन्हें देखते ही बोला—"बड़े भइया ने साढ़े ग्यारह गाड़ी लौटा लाने को कहा था। उन्हें कचहरी जाना है।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। हम उन से कह देंगे।" प्रसाद जी ने कहा और पिछली सीट पर बैठ कर ड्राइवर के सामने लगे आइने में अपनी टोपी की नोक ठीक कर ली।

"साहब, बात कैसे नहीं, भैया तो हम पर बिगड़ेंगे।" ड्राइवर के लहजे में गुस्ताखी थी।

"ख़ैर, तुम हमें कनाटप्लेस में छोड़ दो। हम टैक्सी कर लेंगे।" प्रसाद जी ने कुछ नाराज़गी से कह दिया। तारा की ओर ज़रा और समीप होकर बोले, "हां तो फिर और कहिये, दिन भर कैम्प में तो कठिन हो जाता होगा।"

"जी ?" तारा ने समझ सकने के लिये पूछा।

"नारी कला मन्दिर भी यहाँ बहुत अच्छी और बड़ी संस्था है। स्कूल भी है और आर्ट का काम भी सिखाया जाता है।" वे अन्य संस्थाओं के विषय में भी बताते रहे।

गाडी एक गोलाकार बाग के किनारे-किनारे स्वच्छ चिकनी सडक पर जा रही थी। सड़क के साथ-साथ गोलाई में, लाहौर की मालरोड के भव्य मकानों जैसी पंक्तियां थी। सुन्दर सड़क गोलबाग की परिक्रमा कर रही थी। लाहौर में माल रोड साधारण मध्य-वित्त लोगों के लिये, सराहना से देख लेने और घूम आने की जगह थी। केवल अमीर और शौकीन लोग ही वहां खरीददारी करते थे। तारा की साड़ी मैली थी। ऐसे स्थान पर बने स्कूल में जाते संकोच हो रहा था।

"कहां उतरियेगा ?" ड्राइवर ने पूछा।

"बस यहां ही उतार दो।"

ड्राइवर ने वृत्ताकार घूमते जाते बराम्दे के एक भाग के समीप गाड़ी खडी कर प्रसाद जी और तारा को उतार दिया। ड्राइवर प्रसाद जी की बात सुनने की प्रतीक्षा न कर तुरंत चल दिया।

तारा ने गाड़ी में मे वृत्ताकार भव्य बराम्दों को देख कर किसी बहुत बडे कालेज-स्कूल की इमारत समझा था। बराम्दे में आने पर देखा, भीतर बहुत वडे-बड़े शीशे जड़े दरवाजों और खिड़कियों से सजी हुई दुकानें थीं। स्कूल के बजाय दुकानें देख कर तारा को लगा, उसे यहां क्यों लाये ?

प्रसाद जी बोलते जा रहे थे—"यह जगह कैसी पसंद आई आप को ? यह कनाटप्लेस है, नयी दिल्ली का सेंटर; जैसे आप के लाहौर मे माल रोड थी। असली रौनक तो संध्या समय ही होती है। कंधे मे कंधा छिलता है। किसी दिन संध्या समय दिखायेगे। आइये, एक कप काफी पीजिये। आप तो काफी जरूर पसन्द करती होंगी।"

"जी, इस समय तो इच्छा नहीं है। प्रसाद जी ने तारा की अनिच्छा अनसुनी कर उसे एक दुकान के चर्खीदार किवाडों में बढ़ाकर किवाडों को ठेल दिया। स्वयं भी साथ हो लिये। किवाड़ों के चक्कर के साथ दोनों रेस्तोरा के भीतर हो गये।

रेस्तोरां के दरवाजों-खिड़कियों पर भारी पर्दों से सूर्य का प्रकाश रोक कर, भीतर बिजली का कृत्रिम रहस्यमय प्रकाश था। प्रसाद जी एक कोने मे सोफा पर तारा को बैठाकर स्वयं भी बैठ गये। गांधी टोपी उतार कर सोफा की बांह पर रख ली। रेस्तोरां प्रायः खाली था। दूसरी ओर कोने में एक युवक-युवती सिमटे-सिकुडे बैठे थे और बीच में एक अकेला व्यक्ति था।

"काफी के साथ क्या लीजियेगा ?" बैरे को अपनी ओर आता देख कर प्रसाद जी ने तारा से पूछा।

"जी, इस समय तो कुछ भी इच्छा नहीं है।" तारा को ऐसी स्थिति में, सजीले रेस्तोरां में वहलाव के लिये लाया जाना अत्याचार लग रहा था।

"कुछ तो लीजिये. हम ने तो सुबह से नाश्ता भी नहीं किया।" प्रसाद जी बोले, "पहले 'इन्द्रप्रस्थ' और किंगसवे कैम्प जाना पड़ा। कभी-कभी तो काम के मारे खाने का टाइम ही नहीं मिलता। यह जगह आप को कैसी लगी? लाहौर में तो वहुत बढ़िया-बढ़िया रेस्तोरां थे?"

"जी यह तो वहुत अच्छा है।" तारा ने उत्तर दिया। उसे चार-पांच बार से अधिक बड़े रेस्तोरां में जाने का अवसर नहीं हुआ था। 'ब्लूनाइल' रेस्तोरां उसे लाहौर के 'स्टैन्डर्ड' से कुछ अधिक रहस्यमय और सजा हुआ लग रहा था।

प्रसाद जी ने एक प्लेट वेजीटेवल सैंडविच मंगा लिये। तारा ने भी सुवह से कुछ नहीं खाया था परन्तु कह चुकी थी, इच्छा नहीं है। नौकरी के लिये स्कूल में ले जाने की आशा दिलाकर रेस्तोरां में बैठा दी जाने से खिन्नता अनुभव हो रही थी। भूख होने पर भी खाने की इच्छा नहीं थी। प्रसाद जी के बहुत आग्रह करने पर उसने दो पेस्ट्री और एक सैंडविच ले लिया। इतना खाने से भूख चेत गयी परन्तु उसने और न खाया।

प्रसाद जी वहुत स्नेह से तारा को फिक्र न करने के लिये समझाते जा रहे थे—"आप उदास क्यों हैं। आप को प्रफुल्ल रहना चाहिये। आपको फिक्र क्या है, आप की फिक्र करना हमारा काम है।" उनका आंखों में आंखें डाल कर दांत निकाल देना तारा को अच्छा नहीं लग रहा था परन्तु उसे खयाल था, अच्छा लगने न लगने से क्या, नाराज नहीं करना है। कैम्प के वाइस प्रेजीडेंट हैं, कांग्रेस के भी……।

तारा आंखें झुकाये "जी, जी" कह कर आदर में कृत्रिम मुस्कान दिखा देने का यत्न किये जा रही थी।

रेस्तोरां से निकलने पर तारा के मस्तिष्क में खटका—जिस मोटर में वह आयी थी, जा चुकी थी। इतनी दूर अपरिचित नगर में वह कैम्प तक कैसे लौटेगी। ड्राइवर के व्यवहार से समझ गयी थी कि मोटर प्रसाद जी किसी से मांगकर लाये होंगे। तारा कैम्प लौटने के लिये कहना चाहती थी परन्तु प्रसाद जी कनाटप्लेस के विषय में बताते हुये वराम्दे-वराम्दे आगे बढ़ते जा रहे थे। वराम्दों में विशाल खंभों के साथ फर्श पर कुछ लड़कों ने छोटी-छोटी दुकानें फैला रखी थीं। कोई वस्सुए-बटन बेच रहा था, कोई बिंदी-फीते, कोई गोली-टाफी। तारा पहचान रही थी, वंती के गांव के लड़के साबूराम की तरह

यह भी शरणार्थी लड़के ी थे। लड़के कुछ भी कर सकते है परन्तु वह तो लड़की थी।

प्रसाद जी सहसा एक खूब बड़ी कपड़े की दुकान में चले गये। तारा बाहर अकेली कैसे खड़ी रहती, उन के पीछे-पीछे दुकान में जाना पड़ा। प्रसाद जी विक्री करने वाले नौकरों की ओर न देखकर दुकान के पिछले भाग में मेज-कुर्सी पर बैठकर काम करते आदमी की ओर चले गये। मालिक या मैनेजर उन के पुकारने से उठकर आगे बढ़ आया। प्रसाद जी ने उस के कंधे पर बांह रख कर बहुत गुपचुप बात की। उस व्यक्ति ने सरसरी नज़र से तारा की ओर देखा। वह प्रसाद जी के साथ विक्री की आलमारियों की ओर बढ़ गया। दोनों ने एक छपी हुई साड़ी पसन्द की। साड़ी को लिफाफे में डालकर प्रसाद जी ने ले लिया। तारा ने प्रसाद जी को दाम देते नहीं देखा। वे तारा के साथ दुकान के बाहर हो गये।

बराम्दे में चलते हुए प्रसाद जी ने लिफाफा तारा की ओर बढ़ा दिया-- "देखिये कैसी है साड़ी ?"

तारा ने लिफाफा हाथ में लेकर साड़ी के दिखाई देते भाग को छुआ-- "अच्छी है, बहुत अच्छी है। मुझे कपड़ों की विशेष पहचान नही है ?"

"कितने दाम की होगी ?"

"कुछ अनुमान नहीं कर सकती।" तारा ने लिफाफा प्रसाद जी की ओर बढ़ा दिया।

"यह तो तुम्हारे ही लिये है।"

"नहीं, नही, मुझे बिल्कुल नहीं चाहिये। मेरे पास बहुत काफी कपड़े है।" तारा ने दृढ़ निश्चय प्रकट किया।

"वाह यह कैसे हो सकता है ? हमने तो ली ही तुम्हारे लिये है।" प्रसाद जी ने लिफाफा वापस नहीं लिया।

तारा ने कई बार दबे स्वर में साड़ी की अनावश्यकता और उसके बिना ही प्रसाद जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर, लिफाफा लौटा देना चाहा परन्तु प्रसाद जी ने लिफाफा वापस न लिया। तारा विवश हो गयी। बाजार में क्या तमाशा करती। 'थैंक्स' कह दिया और लिफाफा लिये रही।

प्रसाद जी कनाटप्लेस के बराम्दे को काटती एक गली में होते हुये बोले-- "आइये, दो मिनट हमारा दफ्तर भी देख लीजिये।"

जीने के साथ टीन की छोटी तख्ती पर किसी एजेंसी का नाम लिखा था। तारा जल्दी में पढ़ नही सकी। ऊपर कमरे मे एक व्यक्ति मेज पर काम कर

रहा था। सामने तीन-चार और कुर्सियां थीं। क्लर्क प्रसाद जी को देख कर आदर से खड़ा हो गया।

प्रसाद जी ने अपनी जेब टटोलते हुये मन्द्र गम्भीर स्वर में कुछ प्रश्न किये और फिर तारा की ओर देखकर बोले—"आओ तुम भीतर आओ" वे फिर क्लर्क की ओर घूमकर कहते गये, "डाक मेज पर रखो।"

पार्टीशन के दूसरी ओर गद्दे और पलंगपोश से ढंका एक नीचा तख्त था। तख्त के समीप दो छोटी आराम कुर्सियां थीं। शेल्फ पर पानी की सुराही, बिजली का स्टोव और एकाकी व्यक्ति की गृहस्थी की छुट-पुट चीजें थीं।

तारा को यह एकान्त अच्छा न लगा—"मैं उधर ही बैठती हूं। आप अपना काम कीजिये। मुझे आज्ञा दीजिये।"

प्रसाद जी जेब से चाबी निकाल, एक आलमारी खोल कर उस में व्यस्त होकर बोले—"नहीं-नहीं, तुम तख्त पर आराम से लेट कर रेस्ट करो। हम तो उधर ही काम करेंगे। तुम बेफिक्री से लेट जाओ।" प्रसाद जी छत पर लगा पंखा चलाकर पार्टीशन के दूसरी ओर चले गये।

तारा कुर्सी पर बैठ गयी। वह अपने पर झुंझला रही थी, नौकरी की तृष्णा में इस लफंगे के साथ अनजानी जगह चली आयी। गत अनुभव की याद से सिहर उठी।·······पर यहां पशु से नहीं, मनुष्य से मुकाबिला था। फिर भी ऐसी जगह आना गलती थी। क्या करूं···नौकरी की आशा में···

पार्टीशन के दूसरी ओर से प्रसाद जी की क्लर्क पर नाराजगी-भरी आवाज सुनाई दे रही थी। टेलीफोन किये जाने की आहट हुई। प्रसाद जी फोन पर बात करने लगे —"जयराम जी की भैया साहब!"

"कहिये क्या हो रहा है?"

"हाँ बस ऐसे ही।"

हां बात यह थी कि आपकी गाडी अगर खाली हो तो घंटे भर के लिये चाहिये····खैर कोई बात नहीं।"

तारा आराम-कुर्सी पर करवट से बैठी थी। कई मिनट तक प्रसाद जी की आवाज दूसरी ओर से सुनायी नहीं दी। धीमे-धीमे चलते पंखे की हवा सुहावनी लग रही थी। तारा आंखें मूंदे सोच रही थी। सवा दो मास पहले की घटनायें याद आ रही थीं। समुद्र के तल तक डूब कर भी वह फिर उभर आयी, मरी नहीं। अब उस के पांव धरती पर तो थे! देखा जायगा! पिता, माता, भाई, बहनें जानें कहां होंगे। शायद किसी कैम्प में हों। भाई उस के विवाह के बाद नैनीताल जाने वाले थे। सब लोग यू० पी० में चले गये होंगे।

तो सुरक्षित होंगे । भाई से कनक के सम्बन्ध का क्या हुआ होगा ? जो हो, यहा तक उभर आयी हूं तो किसी न किसी प्रकार पांव टिका सकूंगी । श्यामा फिर नही आयी । विमल जी और डाक्टर श्यामा, यही दो भले लोग है । यह प्रसाद तो लुच्चा है । इतनी देर क्यो लगा रहा है ? कैम्प मे दूसरी औरतें जाने क्या सोचती होंगी ?

तारा ने घडी की टिक-टिक सुनकर इधर-उधर देखा । शेल्फ पर छोटी टाइमपीस दिखाई दी । एक बज कर सात मिनट हो गये थे ।

तारा फिर विश्राम के लिये आंखे मूंदे सोचने लगी, सवा बजे तक प्रतीक्षा करेगी, अधिक नही । किसी न किसी तरह कैम्प पहुंच ही जायेगी । टांगे वाला आठ आने, बारह आने रुपया ले लेगा और क्या ? फिर बती की बात···। अमृतसर मे देव के परिवार की बात········

तारा ने अपने केशों मे कुछ अनुभव किया । आंखे खोल दी और झटक कर कुर्सी पर सीधी हो गयी ।

प्रसाद जी उस की सोफा कुर्सी की चौड़ी बांह पर बैठ कर उस के केश सहलाते हुए मुस्करा रहे थे—"कुर्सी पर ही सो गयी । तख्त पर नही लेटी ?" उन्हों ने तारा के गाल पर थपथपा दिया ।

तारा प्रसाद जी का हाथ हटा कर खड़ी हो गयी—"मै अब जाना चाहती हूं । कैम्प मे मुझे लिस्टें पूरी करनी हे ।"

"अरे जल्दी क्या है, हम छोड़ आयेगे । पन्द्रह-बीस मिनट मे गाड़ी आ जायगी, बैठो तो ।"

"जी नहीं, मै चली जाऊंगी । आप क्यों कष्ट करेंगे । रास्ता बता दीजिये, मैं चली जाऊगी ।"

तारा फिर बैठी नही । प्रसाद जी उसे सवारी तक छोड़ आने के लिये जीना उतरकर समझाते गये—"यहाँ 'ओडियन' के पास से सब जगह के लिये सवारी मिल जाती है । यहां से फव्वारे तक दो आने लगते है । फव्वारे से कश्मीरी-दरवाजे और कचहरी के लिये छः पैसे या दो आने । हम फिर आयेंगे कैम्प में । कोई फिक्र न करना ।"

प्रसाद जी ने तारा को फव्वारे के लिये सवारी पुकारते टांगे पर बैठा दिया । टागे पर तीन सवारियाँ मौजूद थी । उस के बैठ जाने पर प्रसाद जी ने साड़ी का लिफाफा भी उसकी गोद मे रख दिया ।

टागा 'ओडियन' से चल पड़ा तो तारा ने अपरिचित सवारियो की संगति मे, अज्ञात सड़क पर एक लफगे के हाथो से मुक्ति पा जाने की सांत्वना का

सांस लिया। टांगा अक्तूबर की खूब उजली चटक धूप में, तारकोल की समतल स्वच्छ सड़क पर पट-पट तेजी से चला जा रहा था।

तारा अपनी झोंपड़ी में लौट रही थी तो हाथ में लिये लिफाफे के लिये संकोच अनुभव हो रहा था। रास्ते में ऐसा अवसर न मिला था कि लिफाफे को फेंक देती। फेंक देने से लाभ भी क्या था? झोंपड़ी में आयी तो लिफाफे को साड़ी के आंचल में छिपाये थी कि लोगों की नजर न पड़े।

प्रसन्नो ब्राह्मणी धोये हुए कपड़े बाहर बांसों में बंधी बिजली की तारों पर सूखने डालकर पहरा दे रही थी कि कोई उठा न ले जाये। तारा को देख कर पुकार लिया—"बहना, बहुत देर कर दी। निहालदेई और उस की लड़की तो खा-पीकर निकल गयी हैं। तुम्हारे लिये रोटी ढांक कर रख गयी हैं।"

तारा ने लिफाफा अपने कम्बल में लिपटे बिस्तर के नीचे दबा दिया। प्रसन्नो का लोटा लेकर हाथ-मुंह धोया। निहालदेई के कोने से रोटी-दाल लेकर खायी और छोलदारी में चली गयी।

तारा उस लिफाफे में बंद साड़ी को संध्या और रात में भी दूसरी स्त्रियों से बचाये रही। दूसरे दिन सुबह तारा नहा-धोकर प्रसन्नो से कम्बल लेकर अपने कपड़े कम्बल में समेट रही थी। निहालदेई की नजर लिफाफे पर पड़ गयी।

"क्या खरीदा है?" निहालदेई ने कौतूहल से पूछ लिया।

"कुछ भी नहीं।"

निहालदेई रह न सकी। उस ने लपक कर लिफाफा उठा लिया और साड़ी खींच ली—"यह तो बिल्कुल नयी है। कितने में खरीदी है?"

"रहने भी दो। ऐसे ही है।"

"हाय तो दाम बता देने में क्या हर्ज है। हम क्या छीन लेंगी?"

तारा कैसे कह देती कि वह दस-बारह की साड़ी खरीद लायी है। पहले कह चुकी थी कि उसके पास रुपया-पैसा नहीं है।

तारा के दाम न बताने पर निहालदेई चिढ़ गयी। उसने लिफाफा तारा को चटाई पर पटक दिया—"खरीदी नहीं है तो कौन दे गया है?"

"कौन देगा" तारा ने बात संभाली, "जो सब कुछ दे रहे हैं, कैम्प वालों ने ही दी है दूसरा कौन देगा!"

निहालदेई कैम्प वालों के अन्याय और पक्षपात से जलकर चिल्ला उठी—"कैम्प वाले तेरे ही मामा लगते हैं। तेरे लिये रोज साड़ियां, कम्बल, चादरें साबुन आते हैं। हमें पाव भर आटा देने में भी सौ बातें बनाते हैं...।"

बन्तो की सास भी बोल पड़ी—"हां भाई, हम झूठ क्यों कहें, महीना भर

हमें कैम्प में हो गया। हम ने तो कैम्प वालों को ऐसे कीमती कपड़े बांटते नहीं देखा? बिना बात के कोई किसी को न देता है न कोई ले सकता है।"

तारा ने चिढ़कर धमकाया—"मुझ से झगड़े का क्या मतलब। तुम्हें जो मिल सकता है, तुम ले लो। मैं क्या मांगने जाती हूं? मैं दिन भर लिस्टों का काम नहीं करती?"

प्रसन्नो एक आने की चाय लेकर अपने बेटे को रात की बासी रोटी खिला रही थी। उसने तारा का समर्थन किया—"हां ठीक तो कहती है। किसी की भलाई देखकर जलने से अपना बुरा होता है। यह उन के दफ्तर का काम करती है। जो मेहनत करता है, जिस में गुण-लयाकत होती है, पाता है। हम डंगर (पशु) जिस लायक है, उतना पाते है। किसी के भाग्य से क्यों जलें।"

निहालदेई आग-बबूला हो गई—"अरे ऐसी मेम-शाहजादी होगी तो अपने घर। बड़ी हूर-परी है, क्या कहना है? हम क्या कम्प वालों को नहीं पहचानते? तम्बू में जाकर उन के साथ पड़ी रहती है। हम इस की नौकर हैं, इसे रोटियां सेंक-सेंक कर खिलायें······"

प्रसन्नो ने विरोध किया—"यह और जुल्म देखो। एक तो मां-बेटी उसके नाम पर दो-दो का राशन खा जाती है और उसी पर तोहमतें लगाती है। तूने मेरे सामने कमलो को चार आने का आटा नहीं बेचा है····।"

निहालदेई ने प्रसन्नो को भी गालियां दीं और क्रोध में तारा का राशन कार्ड फेंक दिया। प्रसन्नो को भी अपनी 'हूर-परी सहेली' के साथ तम्बू में जाकर जो-जो कुछ करने-कराने के लिये कहा, उस से तारा को कान में उँगली दे लेनी पड़ी।

प्रसन्नो दब जाने वाली नहीं थीं। उसने चिल्ला कर निहालदेई की जाति को गाली दी—"···तू समझती क्या है। अभी तेरा झोंटा उखाड़ दूंगी।" उसने सुखदेत पर लांछन लगाया और निहालदेई की चुटिया पकड़ने के लिये लपकी।

विस्मय की बात सुखदेत अब तक इस झगड़े में न बोली थी। उसने उंगली दिखाकर चेतावनी दी—"मैंने किसी को कुछ नहीं कहा है। मेरा नाम कोई न ले, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।" सुखदेत ने उल्टे मां को डांटा, "तुझे क्या, कोई कुछ करे, तू क्यों बोलती है!"

निहालदेई लड़की पर झुंझला पड़ी—"तू इनकी जूतियां खा। मैं क्या किसी से डरती हूं····।"

तारा उठकर छोलदारी की ओर चली तो अपना राशनकार्ड उठा लिया। प्रसन्नो ने हाथ उस की ओर बढ़ा कर कहा—"ला बहना, तू अपना 'काट' मुझे दे। यह काम तेरे करने का है?"

निहालदेई और भी जल उठी। झोंपड़ी से निकलती तारा को धमकाने लगी--"जा जा, अपने खसमों से हमारी चुगली कर दे! तेरा बस चले तो हमें कम्प से निकलवा दे! देख लूंगी क्या कर लेती है? मैं भी सारा कम्प इकट्ठा करके पंचायत कराऊंगी। कम्प में छिनालों का क्या काम? तू लौटकर आ, तेरा सिर मूंड कर छोडूंगी।"

दोपहर बीत चुकी थी। तारा ने छोलदारी में पर्दे के दूसरी ओर से किसी को कहते सुना—"भाई दो बज गये। हम तो खाने के लिये जा रहे हैं।"

तारा को भी काफी समय से भूख मालूम हो रही थी परन्तु निहालदेई के डर से झोंपड़ी में लौटने का साहस नहीं हो रहा था। सोचा, ऐसे डरते रहने से कैसे काम चलेगा? कैम्प के प्रबन्धकों से शिकायत करे तो सारे कैम्प में फजीहत कराये। आखिर तो उसे झोंपड़ी में जाना ही पड़ेगा। रात पड़ने पर क्या करेगी?

तारा झोंपड़ी में आई तो दूसरा ही रंग था। निहालदेई अपने स्थान पर नहीं थी। प्रसन्नो, धम्मो, धम्मो की सास और नयी आयी जवान औरत रिक्खो बहुत उत्तेजित थीं। सब एक साथ बैठी थीं। केवल गुजरांवाला की बुढ़िया ही घुटने समेटे अपनी चटाई पर पड़ी थी।

प्रसन्नो ने तुरन्त तारा को बता दिया कि सुबह से सुखदेत का कुछ पता नहीं लग रहा। निहालदेई उसे कैम्प में ढूंढ़ रही है। सब जानती थीं कि सुखदेत पांच नम्बर लाइन में जड़ांवाला से आये परिवार के लड़के से चोरी-चोरी मिलती थी। एक दिन लड़के की भाभी, सुखदेत को धमकाती हुई यहां आ कर कह गयी थी कि सुखदेत उस की झोंपड़ी के सामने आयेगी तो टांग तोड़ देगी।

संध्या समय तारा छोलदारी से लौटी तो भी सुखदेत का पता नहीं चला था। निहालदेई तारा के पास आ बैठी। उसकी आँखें रो-रो कर सूज गई थीं—"तुमने तो देखा है। लड़की सीधी, अल्हड़ है। जड़ांवाला के अरोड़ों का लड़का उसके पीछे पड़ा था। उस अनबूझ को बहका ले गया होगा। कम्प वालों से कहा जाय। बेचारी लड़की बरबाद होगी। बहना, मैं तेरे सिवा और किस से कहूं·······।"

धम्मो की सास ने किसी की ओर न देखकर सब को राय दी—"अपनी बदनामी करवाना चाहती हो तो जो चाहे करो। लड़की क्या, जवान औरत है। उसका खसम उसे छोड़ गया। उसे जहां रास्ता मिला, चली गयी। उमर की गरमी है। घास-मिट्टी खाने वाले कीड़े-मकोड़े, गाय-भैंस नहीं रह पाते, वह तो फिर अनाज-घी खाती है। उसे खसम चाहिये। मां के पास बैठी क्या करे? अरोड़े तो कहते हैं कि उनके लड़के को बहका कर ले गयी। बीस बरस

का लड़का तो फिर लड़का ही ठहरा । ऐसी बातें कहीं औरत की मर्जी बिना होती हैं······" बुढ़िया निहालदेई से सब लड़ाइयों का बदला लिये ले रही थी ।

संध्या आठ बजे बहुत हंगामा मच गया। लड़के के परिवार वाले निहालदेई पर तोहमत लगाने आये कि उन के भोले लड़के को बहका कर अपनी लड़की के साथ भगा दिया है । लड़का भाई के बक्से से साढ़े-तीन सौ रुपये लेकर भाग गया है ।

कैम्प के प्रबन्धक रात के समय कैम्प में नहीं थे।

पड़ोसियों ने पंचायत कर दोनों परिवारों को धमका दिया—"हम नहीं जानते जो, लड़का-लड़की दूध पीते बच्चे नहीं । लड़की को पहले काबू में क्यों नहीं रखा । कैम्प में लावारिस बछिया की तरह घूमती फिरती थी । हम सब लोग लड़के-लड़कियों वाले हैं । ये सब झगड़े हमें पसन्द नहीं । जिसे शिकायत करनी हो जाकर थाने में रपट लिखा दे । कैम्प में शोर मचेगा तो हम दंगा करने वाले का सामान उठा कर कैम्प से बाहर फेंक देंगे·····"

दो दिन झोंपड़ी में उदासी छायी रही । सुखदेत का कुछ पता न मिला । पता लगाने जाता भी कौन ? स्त्रियां निहालदेई से छिपाकर गुनगुनाती रहतीं । तारा अपनी चिन्ताओं में डूबी लिस्टों की नकल करती रहती । उसने एक सौ तेरह पृष्ठ पूरे कर दिये थे परन्तु नित्य नयी लिस्ट बन जाती थी । बीस पृष्ठ और हो गये थे ।

तारा दोपहर में भोजन के लिये झोंपड़ी में आई थी । सुखदेत के भाग जाने का ही प्रसंग चल रहा था। बम्मो की सास कहे जा रही थी—"लड़की के लच्छन ही ऐसे थे । छड़ी-छड़ाक, जवान लड़कियों का क्या है, कहीं बैठ ही जायंगी । जवान औरतों को खिलाने-बसाने वालों की क्या कमी ? मुसीबत तो बच्चेवालियों की है या हम बुढ़ियों की ।" तारा को अच्छा नहीं लग रहा था । उसने रिखो की ओर देखा ।

रिखो भी विरोध करना चाहती थी पर बाहर से शोर सुन कर चुप रह गयी । "ऐ !····ओ····यहां आओ ! देखो-देखो····उधर जाओ !" पुकारें सुनाई दीं । स्त्रियां दरवाजे में आकर झांकने लगीं ।

छोलदारी के समीप हैट-सूट पहने एक आदमी दो पुलिस अफसरों के साथ दिखाई दिया । झोंपड़ियों की लाइनों में कई सिपाही घूमते-झांकते दिखाई दिये । स्त्रियां घबरा गयीं । समझा, सुखदेत के मामले में पुलिस आयी है। अब जाने क्या होगा·······।

की तरफ मे अच्छी तरह से कह देंगी या आप लोग तारा से कह दीजिये, यह हमें वता देगी।" श्यामा मिमेज अगरवाला के साथ दूसरी झोंपड़ियों की ओर चली गयी।

झोंपड़ी में केवल तारा ही समझ सकी कि कैम्प मे व्यस्तता का कारण क्या है। उसने दूसरी स्त्रियों को बताया—"पडित जवाहरलाल नेहरू, प्रधान मंत्री, मुल्क के सब से वड़े वजीर कैम्प में आ रहे है।" स्वयं उस के पूरे शरीर में सिहरन होने लगी। पंडित नेहरू को देखने का अवसर उसे कभी नही मिला था। अब प्रत्यक्ष बिल्कुल समीप से देख पायेगी। देश के सब से वड़े आदमी महात्मा गांधी और पंडित नेहरू! दूसरी स्त्रियां भी बाहर सब को बहुत व्यस्त देख विस्मित थी। वे कौतुहल से झोंपड़ी के दरवाजे में एक साथ खड़ी होकर बाहर होती दौड़-धूप को देख रही थीं।

प्रसाद जी, विमल जी और हैट-सूट पहने आदमी ने झोंपडी के सामने आकर ऊचे स्वर में पूछा—"आप लोगों को कोई तकलीफ तो नही है ?"

"एक ही नल है इतने लोग है।"···कोई बोल पड़ा।

"नल ? अच्छा एक नल और लग जायगा।"

"डिप्टी कमिश्नर साहब कह रहे है, कल एक और नल लगवा देंगे" विमल जी ने आश्वासन दिया। प्रसाद जी ने समझाया, "हम लोग तो आप के अपने है। जहाँ तक वन पड़ेगा, आप की सेवा करेंगे। आप को जो कुछ भी शिकायत हो, जरूरत हो, विमल जी से या हम से कह सकते है। हम तो नित्य ही आप से मिलते-जुलते है। नेहरू जी ने केवल दस मिनट का समय दिया है। उन की तरफ से हम लोग तो है ही। पडित जी सब लाइनो मे से गुजरेंगे। आप लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियो के सामने खड़े होकर दर्शन करें। कोई भीड़ लगा कर रास्ता न रोके। उसके बाद पांच मिनिट के लिये पंडित जी का व्याख्यान होगा, तब आप छोलदारी के सामने आजाइयेगा। पडित जी डिसिप्लिन के बहुत कायल है। भीड़-भब्भड़ पसंद नही करते। आप सब को डिसीप्लिन रखना चाहिये। पडित जी का दर्शन कर सकने के लिये बच्चों को सब से आगे खड़ा कर दीजिये। बच्चों को पडित जी बहुत प्यार करते है।"

प्रसाद जी ने स्त्रियों की झोंपड़ी मे भी आकर वही बातें दोहराईं। पूछा, यहाँ कितने बच्चे है। प्रसन्नो के चार बरस के बच्चे और धम्मो की तीन बरस की लड़की को उनके सामने किया गया।

प्रसाद जी ने प्रसन्नता प्रकट की—'वाह-वाह! कितने प्यारे बच्चे है। आप लोग बच्चों को इतना गंदा क्यों रखती है ? इनके मुँह-हाथ धोईये।

साफ़ कपड़े पहनाइये। जल्दी कीजिये, जल्दी !"

बम्मो की सास ने घबराकर लड़की के कपड़े बदल देने के लिये उसे पीछे खींच लिया। प्रसन्नो के पास लड़के के लिये कोई दूसरा कपड़ा नहीं था। केवल एक कुर्ता था। जाँघिया भी नहीं था। उसने तारा के कान में कहा। तारा ने विमल जी को सूचना दी। भाग-दौड़ हुई। कुछ मिनट बाद प्रसन्नो के बच्चे के लिये एक सफेद कुर्ता और जांघिया आगया। कपड़े कुछ ढीले थे। प्रसन्नो ने प्रसन्नता से बच्चे का मुंह धोकर नये कपड़े पहना दिये।

सब को झोंपड़ियों के सामने, लाइनों में चुपचाप खड़े हो जाने के लिये समझाया गया"'इस से आगे कोई न बढ़े ! छोटे-छोटे बच्चों को अच्छे वस्त्र पहनाकर आगे किया जा रहा था। प्रसाद जी बच्चों को समझा रहे थे—"बेटा, हम आयें तो तुम कहना, 'नेहरू जी जिन्दाबाद ! चाचा नेहरू जिन्दाबाद !"

"शी ! शी ! चुप ! चुप ! आ रहे हैं ! चुप !"

झोंपड़ियों के सामने पंक्तियों में खड़े लोग चौकन्ने हो गये। जरा आगे बढ़ कर देख लेने की उत्सुकता में पंक्तियां टेढ़ी हो गयीं। लोगों ने अपने बच्चों को सामने कर लिया। स्तब्धता छागयी। तारा सम्मान के बोझ से धड़कते दिल से, झोंपड़ी के दरवाज़े के साथ चिपकी छोलदारी कीओर देख रही थी। प्रसन्नो के लड़के दयाल और बम्मो की मुन्नी को हाथ जुड़वा कर झोंपड़ी के सामने खड़ा कर दिया गया।

छोलदारी की ओर से एक छोटी सी भीड़ बढ़ी। भीड़ के आगे प्रसाद जी के साथ खद्दर की गांधी टोपी, अचकन, चूड़ीदार पायजामा पहने, चुस्त, छरहरा, जवाननुमा अधेड़ व्यक्ति चला आ रहा था। अचकन के दूसरे बटन में अधखिला लाल गुलाब लगा हुआ था। प्रसाद जी मुंह उठाये, पंजों पर उचकते हुये, उनसे बात करते आ रहे थे। उन के पीछे डिप्टी कमिश्नर, पुलिस अफ़सर, डाक्टर श्यामा, मिसेज अगरवाला चली आ रही थीं।

स्त्रियों की झोंपड़ी के सामने आकर प्रसाद जी ने बताया—"इस झोंपड़ी में अपने परिवार से बिछड़ी अभागी स्त्रियां हैं।"

प्रधान मंत्री ज़रा ठिठके। झुक कर दयाल और बम्मो की मुन्नी के सिर पर हाथ फेरा और पीछे चलते लोगों से पूछ लिया—"बच्चों को दूध मिलता है ?"

पीछे चलते लोगों की आंखें आपस में मिलीं। प्रसाद जी और डिप्टी कमिश्नर ने तुरन्त एक साथ उत्तर दिया—"यस सर ! जी हां !"

प्रधान मंत्री लाइन की अंतिम झोंपड़ी से झोंपड़ियों की दूसरी गली में आ

गये थे। एक बुड्ढे ने हाथ जोड कर पुकार लिया—"महाराज जी, तुम्हारा राज बरकरार रहे। हमे जबरदस्ती हमारे पक्के मकानों मे उठा लाये हो। यहाँ कोई कच्ची कोठरी ही दे दो। नही दे सकते तो इस झोपड़ी से क्यो निकाल रहे हो ?"

प्रधान मत्री ठिठक कर अपनी अचकन का बटन खीचने लगे।

प्रसाद जी ने और डिप्टी कमिश्नर ने धीमे शब्दो मे प्रधान मत्री को कुछ समझाया।

प्रधान मंत्री ने झुंझलाहट दबा कर उत्तर दिया—"यह कैम्प का कानून है, नियम है। सब जगह कोई न कोई कानून होता है। हम जिन्दगी भर के लिये ठेका नही ले सकते।" वे आगे बढ गये।

बूढा फिर पुकार कर कुछ कहना चाहता था। पीछे चलते लोगो ने उसे सकेतों और धीमे स्वरो मे आश्वासन देकर चुप करा दिया।

छोलदारी के समीप सौ-सवा-सौ शरणार्थी एकत्र हो गये थे। लाउडस्पीकर पर प्रसाद जी का स्वर सुनायी दिया--"परम आदरणीय प्रधान मंत्री जी, भाइयो और बहनो, यह हमारा सौभाग्य है कि आज हमारे दिलो के बादशाह, हमारे देश के रत्न, हमारे नेता और हमारे प्रधान मंत्री पडित जवाहरलाल जी नेहरू ने अपने अमूल्य समय मे से कुछ समय निकाल कर यहाँ आना स्वीकार किया है। नेहरू जी भारत के ही नही ससार के रत्नो मे से है। हमारे देश को उन का और गाधी जी का ही भरोसा है ··।"

"यह क्या फिजूल···" प्रधान मत्री की आवाज ने टोक दिया।

प्रधान मत्री ने प्रसाद जी को लाउडस्पीकर के सामने से एक तरफ धकेल दिया। प्रसाद जी ने प्रसन्नता से दाँत दिखा दिये और बोले—"आदरणीय प्रधान मंत्री कुछ शब्द कहेगे।"

प्रधान मत्री अपनी अचकन का बटन खीचते हुये बोले—"इस कैम्प मे रहने वाले भाइयो और बहनो!"

तारा ने शरीर मे सिहरन की झनझनाहट अनुभव की। देश के कर्णधार का स्वर!

"सब लोग जानते है, मैं भी जानता हू कि आप लोग बहुत तकलीफ मे है इसीलिये मै आप लोगो से मिलने और आप की हालत देखने के लिये यहाँ हाजिर हुआ हूं।···कुछ अं···ये····ऐसी राजनीतिक तबदीलियाँ हमारे मुल्क मे वाकया हुयी है जिन के···ऐं जिन के अच्छे नतीजो के साथ-साथ बुरे नतीजे भी सामने आये है। यह तो आप सब लोग जानते है कि हम अगर अच्छे

नतीजों को कबूल करते हैं तो बुरे नतीजों से भी नहीं बच सकते। वे नतीजे आप के सामने हैं। आप उन्हें देख रहे हैं लेकिन उन की जिम्मेवारी कांग्रेस पर या हमारी सरकार पर नहीं है। हालांकि एक हद तक है और···और हम कबूल करते हैं। हम···हम जिम्मेवारी से डरते नहीं हैं। ····हम···· हम आप की मुसीबत में पूरी मदद करना अपना फर्ज समझते हैं। और···और उस के लिये हम हर मुमकिन कोशिश कर रहे हैं। आप अपनी शिकायतें और तकलीफें हमारे सामने रखें। दूसरे किस आदमी से आप अपनी तकलीफें कहेंगे ? सरकार और सरकारी अफसर आप की शिकायतों को सुनेंगे और उन्हें दूर करने की हर मुमकिन कोशिश करेंगे लेकिन आप को याद रखना चाहिये कि जैसा आप का यह छोटा सा कैम्प है, इस से बहुत बड़े-बड़े कई कैम्प हम ने दिल्ली में बनाये हैं। मुल्क में ऐसे सैकड़ों कैम्प हैं। हमारे कन्धों पर बहुत बड़ा बोझ है और जिम्मेवारी भी है। आप को भी सिर्फ अपनी जाती तकलीफों और मसलों को ही नहीं सोचना चाहिये। आज का जमाना बहुत अहम जमाना है। इस समय हमारा मुल्क और दुनिया एक बहुत अहम दौर से गुजर रहे हैं। हम पर, मुल्क के हर आदमी पर बहुत बड़े-बड़े फर्ज़ आयद होते हैं। हमें उन की तरफ भी नजर रखनी चाहिये। तंग निगाह से सिर्फ अपने जाती मसलों को ही नहीं देखना चाहिये। ताहम··· जय हिन्द।"

"जय हिन्द !" प्रमाद जी ने नारा लगाया।

"जय हिन्द !" सम्मिलित स्वर ने अनुमोदन किया।

"पंडित नेहरू ज़िन्दाबाद !"

सम्मिलित स्वर ने फिर अनुमोदन किया।

तारा ने समझ लिया, प्रधान मंत्री का भाषण समाप्त हो गया। अभी उस का मन न भरा था। आशा थी कि देश के कर्णधार, देश के दिलों के बादशाह से कोई ऐसी बात सुनेगी जो उस के मन, मस्तिष्क को व्याप्त कर लेगी।

कुछ ही पल के भीतर भीड़ छंट गयी।

झोपड़ी की स्त्रियाँ तारा को घेर कर पूछने लगीं—"बड़े वजीर ने क्या कहा ?"

तारा समझ नहीं पायी क्या बताये। वह प्रधान मंत्री के शब्दों को दोहराने लगी।

"तारा, सुनो !"

तारा ने घूम कर देखा, डाक्टर श्यामा और मिसेज अगरवाला झोंपड़ी के

दरवाज़े पर खड़ी थीं। तारा आंचल सम्भाल कर उन की ओर चली गयी।

"मिसेज अगरवाला पूछती है, तुम छोटे बच्चों को पढ़ा लोगी, उन्हें सम्भाल लोगी ?" श्यामा ने पूछा।

"जी ज़रूर; बहुत अच्छी तरह से कर सकूँगी। ऐसा काम मैंने किया है। लाहौर मे रायबहादुर गोपालशाह की हवेली में बच्चों को पढ़ाती थी।"

"अच्छा, तुम्हारा जो कुछ सामान है ले लो। मिसेज अगरवाला के साथ चली जाओ। इन के यहाँ ही रहना।"

तारा तुरन्त अपना बिस्तर उठा लेने के लिये झोंपड़ी में चली गयी।

४

कोठी की भव्य दोमंजिली इमारत, ड्योढ़ी में खड़ी बहुत बड़ी कार, घनी फूल-फुलवाड़ी और खूब सिंचे हुये सब्जे के बीच लाल कालीन जैसी सुर्खी बिछी सुथरी सड़क। सफेद कुर्ता-पायजामा पहने नौकर और कोठी के पिछले भाग मे अपने लिये निर्दिष्ट कमरा देख कर तारा पर जो प्रभाव पड़ा था, उसे मिसेज अगरवाला की बात ने और जमा दिया :

"देखो, यहाँ सब तरह के बड़े लोग, सरकारी अफसर, लीडर वगैरा आते-जाते हैं। पहनने-ओढ़ने में ज़रा सफाई वगैरह का खयाल रखना। तुम्हारे पास कुछ कपड़े है ?"

तारा ने बताया—उनके पास तीन धोतियाँ है, उन्हें धोकर सफाई से रहेगी।

तारा निर्देश पाने की प्रतीक्षा में कमरे में बैठी थी। एक नौकरानी धुले, इस्त्री किये कपड़े लेकर आयी। नौकरानी, पान-तम्बाकू से काले दाँत दिखा कर मुस्कराई, सलाम कर पूछ लिया—"मिस्साब आप लाल्ली और पुत्तू की गवन्नस बनेंगी ?"

तारा ने नौकरानी के आत्मीयता स्थापित करने के प्रयत्न का स्वागत किया। स्थिति का आभास मिला। मुस्करा दी—"हूं ?"

नौकरानी ने उत्साहित होकर बताया—"यहाँ अटवड मिस्साब थी। इस्कट पहनती थी। उन्ने इस्कूल में नौकरी कर ली है। चौसिया साब के यहाँ तो बिलाती मिस गवन्नस हैं। आप तो अपनी देसी मिस्साब हैं। आप के लिये मालकिन ने अपने कपड़ों में से दिये है।"

तारा सतर्कता से नये वातावरण को भाँप रही थी। नयी सफेद धोती पहन ली। कमरे में आइना लगी छोटी ड्रेसिंग टेबल भी थी। तारा ने कंघी से केश ठीक कर लिये। साड़ी मसली न जाये इस खयाल से कमरे में पड़ी कुर्सी पर बैठी सोच रही थी—वहुत ध्यान और यत्न से काम करेगी…। आर्ध घण्टे बाद नौकरानी ने सूचना दी—"बड़े साव और मालकिन आप को हाल कमरे में बुला रहे हैं।"

अगरवाला साहब ड्राइंग रूम के एक कोने में सोफा-कुर्सी पर बैठे थे। सफेद कमीज-पतलून और मुख में सिगरेट। दाहिने सोफा पर मिसेज अगर-वाला बैठी थीं। तारा ने नमस्कार के लिये हाथ जोड़ते हुये कमरे में प्रवेश किया। साहब कुर्सी से उठने को हुये। उठना अनावश्यक समझ कर, सामने की सोफा-कुर्सी की ओर संकेत कर अंग्रेजी में बोले—"कृपया बैठिये।"

साहब ने पूछा—"लाहौर में आप किन के यहाँ काम करती थीं?"

जी, मैं राय वहादुर गोपालशाह की हवेली में बच्चों को पढ़ाती थी। प्रोफेसर डाक्टर प्राणनाथ मेरे काम से बहुत संतुष्ट थे।"

"रायबहादुर को हम जानते हैं। प्रोफेसर डाक्टर प्राणनाथ कौन हैं?" साहब के माथे पर जिज्ञासा की रेखा बन गई।

"जी, प्रोफेसर डाक्टर प्राणनाथ पंजाब के गवर्नर के एकानोमिक एड-वाइजर, यूनीवर्सिटी प्रोफेसर रायबहादुर के पोते थे।"

साहब का माथा सीधा हो गया। सिगरेट से कश ले लेने के लिये पल भर ठहरे—"कितने बच्चे थे।"

"तीन बच्चे। तीन बरस की लड़की, साढ़े चार और पांच बरस के दो लड़के थे। प्रोफेसर साहब के भतीजे-भतीजी थे। मैं उन्हें किंडर गार्डन के तरीके मे कोच करती थी।"

"हूँ, उनकी कोठी पर ही रहती थी?"

"जी नहीं, अपने ही घर में रहती थी। मुझे यूनिवर्सिटी की परीक्षा भी देनी थी।"

"खैर, यहाँ आप को रहने के लिये जगह भी मिलेगी। बच्चों के साथ ही खायेंगी भी और फिलहाल हम पचहत्तर रुपये दे देंगे। ठीक है!"

"जैसा आप उचित समझें, ठीक है।" तारा ने स्वीकार कर विश्वास दिलाया, "मैं मिसेज अगरवाला को बड़ी बहिन और माता की तरह समझूंगी।"

"क्यों, तुम्हारी उमर भी बाईस-तेइस की होगी" मालकिन बोल पड़ीं।

"जी हां, लगभग!" तारा ने स्वीकार कर लिया और समझ गयी मालकिन

को माता कहलाना पसन्द नहीं ।

बाहर से बच्चे की किलकारी सुनायी दी । मिसेज अगरवाला ने शिवनी को पुकार कर बच्चों को बुलवा लिया । फ्राक पहने कूदती हुई चार बरस की लड़की और कमीज-निकर पहने, संकोच से बल खाता हुआ लगभग छः बरस का लड़का, भीतर आये । उन मे बड़ा लड़का दरवाजे से झांक कर भाग गया ।

"भूपी भैया आओ, ममी बुला रही है ।" शिवनी की पुकार व्यर्थ ही गई ।

"यह तुम्हारी मिस तारा है ।" मालकिन ने बच्चों को परिचय दिया ।

तारा ने बच्चों को मुस्कराकर पुचकारा । लड़का ऐंठ कर परे हो गया और बीच में नीची मेज पर रखी राखदानी में पड़ी सीखे तोड़ने लगा । लड़की ने मचल कर मां के घुटनों में मुख छिपा लिया ।

मालकिन ने फिर समझाया—"पुत्तन, लाल्ली सुनो, यह तुम्हारी मिस तारा है, जैसे एडवर्ड थीं । यह तुम्हें बहुत प्यार करेंगी, खेल खिलायेंगी । इन्हें बहुत खेल आते है ।"

"हां बेबी, हमें बहुत खेल आते है । आओ हमारे पास आओ ।" तारा ने फिर बच्चों को बहुत स्नेह से बुलाया ।

लड़का शरमा कर, ऐंठ कर मुंह झुकाये रहा । लाल्ली मचलकर बोली, "मिस नई है । ये तो आंटी है ।"

"ओह डियर, हाओ स्वीट !" तारा ने उल्लास प्रकट किया । कालेज में तारा मजाक के लिये कन्वेंट में पढ़ी अपनी सहपाठिनों के अंग्रेजी मुहावरे और उच्चारण की नकल किया करती थी । इस परिस्थिति मे वह स्वय ही उसी तरह बोली ।

"हाय, मिस क्यों नही है ?" मालकिन ने पूछा ।

"मिस नई है, आंटी है ।" लाल्ली ने सिर हिला कर आग्रह किया ।

"मिस तो स्कर्ट पहनती है ।" पुत्तन बोल उठा ।

"वंडरफुल ! हाओ इंटैलिजेंट !" तारा ने बच्चों की तीक्ष्ण बुद्धि की सराहना में विस्मय प्रकट किया । साहब और मालकिन पर तारा की योग्यता का प्रभाव पड़ा ।

मालकिन ने लाल्ली को पकड़ कर लाड़ से अनुनय किया—"अच्छा डार्लिंग मिस तारा को वह पोयम सुना दो ।"

लाल्ली ने मां की गोद में मुंह गड़ा दिया । लड़की को उत्साहित करने के लिये मां ने 'लालीपॉप' और 'आइसक्रीम' की रिश्वत का वायदा किया । पुत्तन पोयम याद दिलाने लगा ।

लाल्ली गुड़िया की तरह खड़ी हो गयी।

"चब्बी चीक" बच्ची ने दोनों ऊंगलियों से अपने सांवले गाल छुये।

"रोज़ी लिप्स" होंठ पर उंगली रखी।

"डिम्पल चिन" अपनी नामालूम ठोड़ी को छुआ और पोयम भूल कर फिर माँ की गोद में मुंह छिपा लिया।

"कर्ली हेयर" पुत्तन से सहायता मिलने पर उस ने गर्दन तक कटे केशों को छुआ।

"वेरी फेयर" अपने चेहरे की ओर संकेत किया।

"आइज़ ब्लू" अपनी काली आँखों की ओर उंगली की। शेष कविता पुत्तन ने पूरी कर दी।

"मदर्स पेट, इज दैट यू?"

"ओह फाइन! हाओ लवली! वेरी स्वीट!" तारा ने बच्चों की पीठ स्नेह से थपथपा कर उन्हें अपना बना लिया।

मिसेज अगरवाला ने तारा को समझा दिया और कुछ वह स्वयं समझ गयी। वह 'ए-ए' कोठी के अनुकूल बन जाने के लिये सतर्क थी। मालकिन की बड़ी साध थी कि कन्वेंट में पढ़ने वाले उन के बच्चे—चार बरस की लाल्ली, छः और नौ बरस के पुत्तन और भूपी सदा अंग्रेज़ी बोलें और अंग्रेज़ी आचार-व्यवहार सीखें। क्लब में अथवा पार्टियों में स्वयं स्वच्छन्द अंग्रेज़ी न बोल सकना उन्हें खल जाता था। देखती थीं, स्वराज तो हुआ परन्तु हिन्दी वही बोलते थे जो अंग्रेज़ी जानते नहीं थे। वे चाहती थीं, लाल्ली अतिथियों के आने पर अंग्रेज़ी कविता, भाव-भंगी से सुना सकें। नौ बरस का भूपी दूसरे स्टैन्डर्ड में पढ़ता था और बड़ी लड़की डौली छटे स्टैन्डर्ड में थी। डौली के लिये अलग एक और ट्यूटर था। भूपी और डौली अपने आप को बच्चे नहीं समझते थे परन्तु उन के खाने-पहनने का ध्यान रखने का भी उत्तरदायित्व तारा पर था।

तारा ने मिसेज अगरवाला के निर्देशानुसार पहली संध्या बच्चों को साढ़े सात बजे डाइनिंग रूम में बुलाया। भूपी जरा विलम्ब से आया। तारा ने स्नेह से उन के सिर पर हाथ फेरा तो उस ने गर्दन कछुये की तरह दबा ली। दूसरे बच्चों से जरा हट कर बैठा।

डौली ने खिड़की से कहला दिया—"हम इतनी जल्दी नहीं खाते हैं।" वह डाइनिंग रूम में नहीं आयी। नयी गवर्नेस के सम्बन्ध में कौतूहल वश न कर सकी तो वह तारा और बच्चों के डाइनिंग रूम से बाहर निकलने पर टहलती

हुयी उधर आ गयी। डौली सलवार-कमीज पहने थी। पारदर्शी महीन कपड़े का दुपट्टा, रस्सी की तरह लिपटा हुआ कन्धों पर पड़ा था।

डौली ने कमर पर हाथ रख, कन्धों को जरा पीछे कर तारा को दिखा देना चाहा, वह बच्ची नहीं है। फिर अधिकार के स्वर में अंग्रेजी में बात की—"आप बच्चों की गवर्नेस का काम करेंगी? बहुत शैतान हैं ये लोग!" और पूछ लिया, "आप बी० ए० पास हैं, इंगलिश खूब बोल लेती हैं?"

"गुजारा कर लेती हूं" तारा ने मुस्कान से स्वीकार किया, "अगर चाहोगी, मैं सदा अंग्रेज़ी में ही बात करूंगी। तुम तो अंग्रेज़ी में ही बोलना पसन्द करती हो, ठीक है न!"

दूसरे दिन दोपहर बाद डौली ने तारा से बात की—"आप इंगलिश पिक्चर में जाती हैं?"

"बहुत दिन से नहीं गयी। इस शहर में नयी ही आयी हूं।"

"रीगल में 'नॉलीज़ फर्स्ट एक्सपीरियंस' लगी है। बिलो एट्टीन (अठारह से कम आयु) को टिकट नहीं देते। हमें ले चलेंगी!" डौली के स्वर में खुशामद थी।

"अच्छा डियर, सोच लेंगे" कुछ सोच कर तारा ने आश्वासन दे दिया। वह प्रत्येक शब्द सोच कर बोल रही थी।

तारा को जिन लोगों का परिचय देकर उत्तरदायित्व दिया गया था इन के अतिरिक्त कोठी में बच्चों की दादी थी। दादी तारा की ही तरह कोठी के पिछवाड़े के कमरे में रहती थी। दादी नेम-धरम से रहती थीं। कोठी के अगले भाग में होने वाले अनाचार से उन्हें विरक्ति थी। उन का राज केवल रसोई के भीतर था। वे प्रायः रसोई के सामने पीढ़ा डाले बैठी रहतीं। रसोइये, दूसरे नौकरों और शिवनी को कुछ भी छूने से पहले हाथ धो लेने के लिये टोकती रहतीं। वे सब की जाति पूछ लेती थीं। तारा ने दूसरे प्रातः ही उन्हें 'माँ जी प्रणाम' कह कर उन की प्रसन्नता पा ली।

परिवार में एक और भी व्यक्ति था जिस ने पहली संध्या तारा को देख कर अनदेखा कर दिया था। बी०ए० या एम०ए० के विद्यार्थी जैसा। लाल्ली और पुत्तन उसे देख कर पुकार उठे थे—भैया जी आ गये! नौकर उस का आदर करते थे।

दूसरे दिन तारा कन्वेंट से लौटे बच्चों को लंच खिलाने के लिये डाइनिंग रूम में ले जा रही थी। नौजवान को बराम्दे में देख कर उस ने नमस्ते का उत्तर पाने से पूर्व आँखें झुका ली थीं।

संध्या समय तारा लाल्ली और पुत्तन को लॉन में बैडमिंटन के रैकेट और शटलकाक से खिला रही थी। पीठ पीछे मोटर साइकिल की भड़भड़ाहट सुन कर तारा की दृष्टि उधर चली गयी। मोटर साइकिल पर जाते नौजवान ने हाथ उठा कर उड़ती-उड़ती नमस्ते कर दी। तारा ने स्वीकृति का उत्तर दे दिया। तारा जान गयी थी कि छोटे साहब—नोत्तन भैया (नरोत्तम) घर के बड़े लड़के थे। विलायत में पढ़े थे। दादी से तारा ने सुन लिया था कि नरोत्तम और डौली साहब की पहली पत्नी से थे। सात दिन तक तारा और नरोत्तम में नमस्ते के अतिरिक्त कोई बात नहीं हुयी।

'ए-ए' कोठी में तारा की नियुक्ति बच्चों को शिक्षा और व्यवहार की दीक्षा देने के लिए हुई थी परन्तु सप्ताह बीतते-बीतते कई और छोटे-मोटे काम उसे कह दिये जाने लगे। बच्चे सात बजे कन्वेंट जाकर डेढ़ बजे लौटते थे। मिसेज अगरवाला सोचतीं, जवान लड़की साढ़े छः घंटे पड़ी-पड़ी आखिर क्या करेगी ? तनखाह तो वह उसे पूरे दिन के काम की देती थीं। समझदार थी, घर की व्यवस्था पर ध्यान रख सकती थी।

मिसेज अगरवाला ने तारा को अपने दो सफेद ब्लाउज भी दे दिये थे। सिलाई की मशीन इस्तेमाल कर सकने की आज्ञा लेकर तारा ने दोनों ब्लाउज अपने नाप से ठीक कर लिये। मालकिन भांप गयीं—लड़की का हाथ सिलाई में बहुत सुथरा था।

मिसेज अगरवाला को समाज-सेवा के लिये पर्याप्त समय मिलने लगा। स्वयं बाहर जातीं तो तारा से कह जातीं, तुम जरा फोन का खयाल रखना। यह नौकर-चाकर ठीक से बात समझ नहीं पाते हैं। कोई बोले तो सुन लेना। कभी अपने किसी कपड़े में दो टांके लगा कर ऐब निकाल देने का अनुरोध कर जातीं। तारा को बीते समय की तुलना में विश्राम ही विश्राम था। इतना समय मिल जाता था कि दो अंग्रेजी और एक हिन्दी दैनिक पत्रों के सब पन्ने अच्छी तरह से देख डालती थी। उसे अपनी अवस्था से असंतोष नहीं था पर इतनी जल्दी ही वह सोच में पड़ जाना नहीं चाहती थी परन्तु खयाल आ ही जाता, अब क्या करेगी ? बी० ए० की परीक्षा देकर कोई स्वतंत्र नौकरी पा जाना तो संभव होगा।

साहब का दफ्तर कनाट प्लेस में दूसरी मंजिल पर था परन्तु एक छोटा दफ्तर कोठी पर भी था। मालकिन ने तारा को ठीक ही बताया था, कोठी में सब तरह के और बहुत से लोग आते रहते थे। तरह-तरह के लोगों का आतिथ्य भिन्न-भिन्न ढंग से होता था। कुछ लोगों से बरामदे में पड़ी कुर्सियों पर

बैठा कर ही बातचीत हो जाती थी। कुछ को ड्राइंग रूम मे बैठाया जाता था। कुछ लोग संध्या समय आते थे तो अगरवाला साहब उन्हें दूसरी मंजिल के ड्राइंग रूम मे ले जाते थे। उस समय जुगुल और शिवनी को बहुत दौड़-धूप करनी पड़ती थी। मालकिन अतिथियो से कोई संकोच नही करती थी। अलबत्ता अभ्यागतों के आने पर साड़ी बदल लेने और ड्रेसिंग टेबुल के सामने हो आने के जये जल्दी से अपने कमरे मे चली जाती थी। तारा ने शीघ्र ही भाप लिया कि मालकिन उस का अभ्यागतों के सामने जाना अधिक पसंद नही करती थी।

तारा चौथे पहर कोठी के दाहिने बरामदे मे लाल्ली और पुत्तन के मन-बहलाव के लिये उन्हें कुछ सिखा रही थी। छोटी गाड़ी आकर ड्योढी में रुकी। गाडी मे से उतरे प्रसाद जी। प्रसाद जी उसी ओर बढ आये। तारा ने पहचान कर नमस्ते की।

"अरे आप यहाँ?" प्रसाद जी ने विस्मय प्रकट किया और फिर संतोप से बोले, "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा हुआ। हम ने तो आपके लिये 'नारी कला मंदिर' मे बात कर ली थी पर यह बहुत अच्छा हुआ। मजे मे है न? यह तो आप के लिये बहुत ही अच्छा हुआ। मुलाकात भी होती रहेगी। मिसेज अगरवाला कहाँ है, तैयार नही हुई?"

प्रसाद जी ने कलाई पर घड़ी देखी। महात्मा जी की प्रार्थना मे बिड़ला भवन जाना था। प्रसाद जी ने पुत्तन के गाल पर प्यार किया—"मम्मी कहा है? जल्दी बुलाओ मम्मी को।"

पुत्तन छलाग मार कर भीतर दौड़ गया।

प्रसाद जी तारा के चेहरे पर आखे गड़ाये कहते गये—"यह बहुत अच्छा हुआ। यहा आते ही आप की सेहत मे फरक आ गया है। सेहत तो आप ही लोगों की होती है। खुराक का बहुत असर होता है।"

मालकिन खद्दर की साड़ी का चौड़ा किनारा सीधा करती हुई आ गयीं—"हम तो कब से आपकी राह देख रही है। हम ने तो चार ही बजे गाडी भेज दी थी।"

प्रसाद जी ने जल्दी मे तारा से बिदाई ले ली—"फिर मिलेगे!" और मिसेज अगरवाला के साथ गाड़ी की ओर बढ गये।

लाल्ली जोर से चीख कर मम्मी के साथ जाने के लिये गाड़ी की ओर दौड़ पड़ी।

तारा ने लपक कर लाल्ली को गोद मे उठा लिया। लड़की छूटने के लिए चीखती हुई तारा पर टागे चलाने लगी। लाल्ली बाहर जाने योग्य पोशाक

में नहीं थी । मालकिन उसे गांधी जी की प्रार्थना में भला ले भी क्या जातीं।

"मिस तुम्हें लालीपॉप देगी । मिस तारा लाली को बड़े वाला लालीपॉप देना।" मालकिन ने कह दिया और गाड़ी में कोठी से निकल गयीं । लालीपॉप कोठी में उस समय नहीं था । तारा के लिये अच्छी-खासी मुसीबत हो गयी । तारा अपने घर में छोटे भाई-बहनों को संभालने में हाथ बंटाती रहती थी। बच्चों के बहुत जिद्द करने पर, उचित न समझती हुई भी कभी चांटे या थप्पड़ का भी प्रयोग कर लेती थी परन्तु ए-ए में यह उचित न था ।

ए-ए कोठी में दोनों ड्राइंग रूम और बड़े डाइनिंग हाल में फर्नीचर और सामान बहुत आधुनिक था। मिसेज़ अगरवाला को पूर्णता आधुनिक समझे जाने की बहुत लगन थी परन्तु वैसी शिक्षा-दीक्षा और नये व्यवहार को अपनाने के लिये संयम नहीं था । बच्चे बहुत जिद्दी थे । उन का अनुभव था, चीख-चीख कर रोने और पांव पटकने से सब कुछ हो सकता था । मालकिन पहले हर बात में न करती थीं; फिर मिठाई के लोभ से मनाने का यत्न करतीं, उस के बाद चूहेवाली कोठरी में बंद कर देने का या भालू वाले को पकड़ा देने का डर दिखाती थी । अंत में झल्लाकर बच्चों को गाली देकर उनकी जिद्द पूरी कर देतीं । यही ढंग शिवनी का था । वह मालिक को खुश करने के लिये बच्चों की जिद्द पर प्रसन्नता दिखा कर उन्हें और भी बिगाड़ती थी ।

तारा के लिये बच्चों को संभालने का काम और भी अधिक कठिन था। वह मालिक और बच्चों के प्रति ईमानदारी के विचार से बच्चों को लोभ या झूठा भय दिखाना उचित नहीं समझती थी । उस के विचार में यह फूहड़पन था। बच्चों को झूठ बोलने की आदत से बचाने के लिये झूठी बात से बहलाना उचित नहीं समझती थी । पहली गवर्नेस बच्चों की शिक्षा-दीक्षा सम्बन्धी कुछ पुस्तकें छोड़ गयी थी। तारा ने उन्हें पढ़ डाला था। पुस्तकों में पढ़ा वैज्ञानिक ढंग और औचित्य निबाहने के प्रयत्न में मालिकों के सामने असफल प्रमाणित होने का अवसर आ जाता । वह मन ही मन खीझती, बरसों से बिगड़े बच्चों को एक दिन में कैसे ठीक कर दे । मालकिन के सामने असफल प्रमाणित न होने के लिये उसे हार मान कर 'अवैज्ञानिक' और 'अनुचित' उपाय भी करने पड़ जाते ।

सुबह साढ़े सात बजे पुत्तन, लाल्ली कन्वेंट की बस में, भूपी और डौली अपने-अपने स्कूलों की बसों में चले गये थे। साहब और मालकिन अभी ऊपर से नहीं उतरे थे । नाश्ते के लिये वे प्रायः आठ बजे के बाद आते थे। तारा

बराम्दे में पड़ी हल्की कुर्सी पर बैठी सुबह के अखबारों पर नजर डाल रही थी। कदमों की आहट सुन कर तारा ने नजर उठायी। छोटे साहब रात के धारीदार कपड़ों पर ड्रेसिंग गाउन पहने उस की ओर चले आ रहे थे।

तारा ने उठ कर नमस्ते की और दोनों अखबार नरोत्तम की ओर बढ़ा दिये।

"नो, नो ! प्लीज डोंट बी डिस्टर्बड ! मुझे कोई जल्दी नहीं है। आप आराम से देखिये।" नरोत्तम ने बहुत सौजन्य से कहा।

"थैंक्यू सर ! मैं फिर देख लूंगी। आप ले लीजिये।" तारा ने मालिक के विनय के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

"नहीं, नहीं आप देखिये।" नरोत्तम ने घास के आंगन पर, चमकती हुई ओस की ओर संकेत किया, "देखिये, कितनी ओस ! मौसम बदल गया। दोपहर में तो धूप अब भी तेज रहती है। आप अखबार देखिये मैं कुछ देर बाद देखूंगा।" नरोत्तम शील से जरा मुस्कराकर गर्दन के संकेत से नमस्ते कर लौट गया।

नरोत्तम ने तारा से उस दिन पहली बार इतनी बात की थी परन्तु तारा उसके विषय में तीन दिन पहले मालकिन से बहुत कुछ सुन चुकी थी।

मिसेज अगरवाला ने कमर से ऊंची काट के अपने दो नये ब्लाउज़ तारा को दे दिये थे। उन्हें वे ब्लाउज पसंद नहीं थे। उन की काट और सिलाई में ऐब रह गया था। तारा के लिये वे बहुत ढीले थे। उसने मशीन लेकर उन्हें अपने लिये फिट कर लिया था। तारा ने ऊंची काट का ब्लाउज पहले नहीं पहना था। कुछ संकोच हुआ पर दिल्ली में डाक्टर श्यामा और दूसरी सैकड़ों स्त्रियों को वैसे ब्लाउज पहने देख रही थी। मालकिन ने ब्लाउज़ तारा के शरीर पर देखा तो उसकी चतुरता की सराहना किये विना न रह सकीं---मरे दर्जी पांच-पांच रुपये सिलाई ले ले और कपड़ा खराब करके रख दे। हमें तो दर्जी को नाप देते अच्छा नहीं लगता। बहना, हमारे तो कई ब्लाउज ऐसे खराब हुये पड़े है। वे ब्लाउज निकाल लाईं। ब्लाउज़ पहन कर तारा को उस की ढील और खिचाव दिखाने लगी।

मिसेज अगरवाला का पेट बढ़ आने से ब्लाउज उतना सुडौल नहीं दिख सकता था। तारा ने मालकिन के संतोष के लिये कपड़े की काट में गलती बताकर नया कपड़ा सी देने के लिये कहा।

मिसेज़ अगरवाला ने शिवनी को पुकार कर तुरन्त बक्स से एक टुकड़ा निकलवा दिया और तारा के पास बैठी ब्लाउज़ की कई तरह की काट की

रख दिया। हमें क्या हमारी तो कट गयी। इन लोगों की ये जानें ।"

नरोत्तम अखबार लेने स्वयं चला आया था। तारा ने अखबार पढ़ना छोड़-कर नरोत्तम से अखबार ले लेने का अनुरोध किया। उस ने अखबार तारा के हाथों में रहने दिया और लौट कर शेव करने लगा। शेव करते-करते सोचने लगा—उसने तारा को पहले रिफ्यूजी मास्टरनी के रूप में देखा तो ख्याल कर लिया था—मम्मी ने कम तनख्वाह ले लेने वाली स्त्री ढूंढ़ ली है, देखें क्या कर पाती है। अब उसे लगा वह तो बहुत सुसंस्कृत, सभ्य युवती है।

उस दिन संध्या वह बाहर से लौट कर कोरीडोर में से जीने की ओर जा रहा था। पुत्तन, लाल्ली पुकार उठे—"बड़े भैया आ गये।"

नरोत्तम भूषी, पुत्तन और लाल्ली के साथ डाइनिंग रूम में तारा को देख कर ठिठक गया—"मैं आ सकता हूं ?"

"जी हां, अवश्य आइये।" तारा ने आदर से उत्तर दिया।

नरोत्तम ने हाथ में थमी दो पत्रिकायें डाइनिंग टेबुल पर रख दीं। कुर्सी पर बैठ कर बोला—"आप बहुत पंकचुअल हैं। रोज इसी समय डिनर ले लेती हैं। आज तो मुझे भी भूख मालूम हो रही है। संध्या, चाय पी ही नहीं। यदि आप डिस्टर्ब न हों तो मैं भी मंगवा लूं ?"

"अवश्य, अवश्य। हम लोगों का साथ दीजिये। मैं जाकर ले आऊं ?"

शिवनी बच्चों के लिये कुछ खाना लेकर कमरे में आयी थी। नरोत्तम ने उसे खाना लाने के लिये कह कर पूछ लिया—"क्या बना है ?"

"हुजूर, जुगुल ने अभी तैयार नहीं किया। अभी तो बच्चों का खाना बना है—सूप, तरकारी, दाल, !" शिवनी ने सहम कर बताया।

"जो है, ले आओ !" कहकर नरोत्तम ने पत्रिकाएं उठा लीं और तारा की ओर अभिमुख हुआ, "लिटरेरी डाइजेस्ट पसंद है आपको ? यह इस मास का अंक है।"

"कई मास से नहीं देखा। मेरे भाई प्रायः लाया करते थे। पसंद तो है पर मेरा अध्ययन बहुत कम है, शायद इसलिये मुझे लगा कि इसके लेखों में कुछ बायस (पासंग) रहता है।" तारा कह तो गयी पर सहमी, शायद ज्यादा बोल गई।

"बिलकुल सही है, मैं आप से बिलकुल सहमत हूं पर रोचक जरूर होता है इसलिये ले आता हूं।"

"जी हां, इस में आधे-आधे पृष्ठ के ह्यूमर (हास्य) बहुत चोखे होते हैं।"

"क्या कहना, लाजवाब होते हैं लेकिन बायस उस में भी जबरदस्त रहता

है। खैर, लीजिये, यह अंक आज आप रख लीजिये। मैं तब तक 'लाइफ' पढ़ लूंगा। इस में 'मैक्सीकन इन्डियन्स' पर एक बहुत अच्छा लेख है।"

तारा भूपी, पुत्तन और लाल्ली के साथ प्लेटों में काँटे-चम्मच से खाना खा रही थी। नरोत्तम की बात सुनते-सुनते उसे नरोत्तम से क्षमा माँग कर लाल्ली के गले से गिर गया नैपकिन ठीक करने के लिये दूसरी ओर घूम जाना पड़ा।

जुगुल नरोत्तम के लिये थाल में खाना लाया।

"क्षमा कीजिये, मैं तो हाथ से खाऊंगा।" नरोत्तम ने शील से मुस्कराकर तारा से अनुमति माँगी।

"वाह, जरूर।" तारा ने अपने काँटे-चम्मच से खाने पर कटाक्ष समझ कर उत्तर दिया, "आप बच्चे थोड़े ही हैं। यह अनुशासन तो बच्चों के लिये है।"

"ठीक है, मैं समझता हूं।" नरोत्तम ने अपनी बात की कटुता दूर करने के लिये कहा, "मम्मी की यह बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा है कि बच्चे यूरोपियन ढंग सीख जायें। मैं पाँच वर्ष इंगलैंड में रहा हूं। काँटा-चम्मच पसन्द भी करता हूं लेकिन जैसा भोजन हो, खाने का वैसा ही ढंग सुविधाजनक लगता है। फुलका, परौंठा, दाल-चावल, तरकारी काँटे-चम्मच से खाना सज़ा मालूम होती है। यूरोपियन ढंग का खाना हो तो हाथ से असुविधा होती है। क्या खयाल है?"

"आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं।"

उस दिन से नरोत्तम और तारा में, सामना होने पर कुछ न कुछ बात होने लगी। तारा को नरोत्तम, मालकिन की राय के अनुसार रूखा या द्वेषी स्वभाव नहीं लगा बल्कि बहुत भले विद्यार्थियों जैसा ही लगा।

नवम्बर का दूसरा सप्ताह था। कोठी में सहसा बहुत व्यस्तता छा गयी। दिल्ली में 'आल इन्डिया कांग्रेस कमेटी' का अधिवेशन होने वाला था। प्रसाद जी अगरवाला साहब का नाम अधिवेशन की स्वागत समिति के पाँच उपप्रधानों में रखने का 'आग्रह' करके उन से एक हजार का चेक ले गये थे। अगरवाला साहब और दिल्ली के दूसरे बड़े-बड़े व्यापारी भी शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में आ जाने के बाद, कांग्रेस के आयोजनों में बहुत रुचि लेने लगे थे। गांधी जी मूल्यों पर कन्ट्रोल के विरुद्ध थे। कांग्रेस-कमेटी के अधिवेशन में सब प्रान्तों के मंत्री आ रहे थे। कन्ट्रोल की नीति के विषय में महत्वपूर्ण निर्णय किये जाने की सम्भावना थी।

तारा ने नरोत्तम से परिहास की कलह जारी रखने के लिये कहा—"मैंने पहेली बूझी नहीं, मुझे काफी नहीं लेनी चाहिये।"

"ओ हो, नहीं बूझ सकीं इसीलिये तो लेनी पड़ेगी।"

"पहेली बुझा दें तो लूंगी।"

"वाह, बहुत सीधी बात है, आप असहयोग में विश्वास रखती हैं ?"

"कैसा असहयोग; किससे ?" तारा बात नहीं समझी।

"यही, आज कुछ मेरी जेब में है तो आपके काम आ गया। कल मेरे पास नहीं होगा तो मांगे बिना थोड़े ही रहूंगा !"

"तो लोन (ऋण) रहा।" तारा ने निर्णय कर दिया।

"आप चाहें तो सूद भी।"

तारा ने मुस्कराकर अस्वीकार किया—"नो, मैंने ऋण मांगा नहीं है। सुरक्षित रखने के लिए कमीशन ले सकती हूँ।"

"खैर, फिर आपका शुद्ध खद्दर का प्रेम, गांधीवाद ही तो है पर मम्मी को शुद्ध खद्दर पसन्द न आया तो ?"

" बहिन जी ने ही तो कहा है।"

"सच्च ?" नरोत्तम की भवें विस्मय से उठ गईं, "दैटिज़ फाइन। यह लीडरों के आतिथ्य के लिये ही होंगे। मालूम है, वार टाइम (युद्धकाल) में मम्मी क्या करती थीं ? मैं तो उस समय यू० के० (ब्रिटेन) में था। दो मास के लिए आया था। तब मम्मी 'निटिंग-क्लब' में जाय करती थीं।"

"किस क्लब में ?"

"निटिंग क्लब में, निटिंग के लिए क्लब था। युद्ध के मोर्चे पर गये हुए सिपाहियों के प्रति स्नेह और आदर, बल्कि कहिये अंग्रेज सरकार के प्रति लायल्टी (अनुराग भक्ति) प्रकट करने के लिये हाथ से बुनकर स्वेटर, मौजे, वगैरह सिपाहियों के लिये भेजे जाया करते थे। इट वाज़ ए नाइस होक्स (अच्छा पाखंड था)। सप्ताह में एक दिन, कभी चीफ सेक्रेटरी के बंगले पर, कभी डिफेन्स सेक्रेटरी के बंगले पर, कभी गवर्नमेंट हाउस में। वायसरीन के निमंत्रण पर हाई सोसाइटी की लेडीज़ घंटे भर बैठ कर सिपाहियों के लिये बुनाई किया करती थीं। क्लब की एक मीटिंग चौसिया के यहां हुई तो मम्मी ने अपने यहां भी 'निटिंग-क्लब' को पार्टी दी। तीस-पैंतीस लेडीज आयी थीं। पार्टी पर डेढ़-दो सौ खर्च आया होगा। घंटे भर में कितना बुन लिया होगा, यह आप अनुमान कर लीजिये ?

"तब हमारे यहां मुसलमान बैरा लतीफ था। पकिस्तान चला गया है।

वह ऊन खरीदकर गरीब औरतों से रुपये-डेढ़ रुपये में स्वेटर बुनवा लाता था। मम्मी क्लब में जमा करवा देती थीं। अब शुद्ध खद्दर की बारी आयी है। हां, मम्मी गांधी जी की प्रार्थना में जाती हैं तो शुद्ध खद्दर की साड़ी पहन कर जाती हैं।"

तारा और नरोत्तम गांधी भंडार से कपड़ा लेकर निकले तो नरोत्तम ने ड्राइवर से कहा—"मेवा वाले के यहां चलो।"

"हुजूर, मेम साहब ने मेवा खारी बावली से लेने के लिये कहा था। यहां तो हुजूर बहुत दाम मांगेंगे।" ड्राइवर बोला।

"हूं, काबुल-कंधार से ले आने के लिये नहीं कहा? वहां और सस्ता मिल जायेगा।" नरोत्तम ने तारा की ओर देख कर पूछा।

"जैसे बहिनजी ने कहा है, वैसा ही कीजिये।" तारा ने अनुरोध किया।

"मुझे क्या आपत्ति है। जैसा आप चाहें।" नरोत्तम ने अपने कंधे सिकोड़ कर उत्तरदायित्व झाड़ दिया।

ड्राइवर मोटर को अजमेरी गेट से खारी बावली की ओर ले जा रहा था। सड़क के बायीं ओर रेल की लाइनें घेरे जंगलों के साथ-साथ लगातार सिरकियों और चटाइयों के नीचे शरणार्थी पड़े हुए थे।

'यहां देखो' नरोत्तम ने तारा को दिखाया, "कांग्रेस सरकार गांधी जी के नाम का डंका तो खूब बजाती है पर बात उन की कोई नहीं मानी जाती। गांधी जी ने कहा था, शरणार्थियों के लिये स्थान नहीं है तो उन्हें वायसराय के महल और मिनिस्टरों के बंगलों में स्थान दिया जाना चाहिये। लार्ड माउंटबेटन तो सहृदयता से या नीति से तैयार हो गया परन्तु कांग्रेस के लीडरों ने यह प्रस्ताव उचित नहीं समझा।"

खारी बावली में ठेलों, ट्रकों, ट्राम और पैदल भीड़ के कारण मोटर को रेंगना पड़ रहा था। हवा मसालों की तीखी गंध बोझिल से थी। तारा छींक नहीं रोक सकी। उसे कहना पड़ा—"आई एम सारी।" नरोत्तम को उससे भी जोर से छींक आ गयी, "आई एम आल सो सारी" नरोत्तम को भी कहना पड़ा।

"यह क्या, क्यू कैसे लगे हुए हैं?" नरोत्तम ने ड्राइवर से पूछा।

"जी हुजूर, चीनी के लिये। सरकारी राशन की चीनी के लिये। हुजूर, सुबह तो आधा-आधा मील के क्यू बनते हैं।"

नरोत्तम ने तारा से कहा—"चीनी की इतनी किल्लत है तो सिर्फ शौक के लिये चीनी की खपत को क्यों नहीं रोका जाता। एक हलवाई जितनी

चीनी खपा देता है, उतने मे पूरी गली-मुहल्ले का निर्वाह हो सकेगा। मिठाई तो वही लोग खाते है जो पहले मे ढेरो कार्बोहाइड्रेट पेट मे भरे रहते है। होटलों मे चीनी की जगह सेक्रीन दी जा सकती है। अपने आप चीनी का बाजार गिर जाये लेकिन यहाँ तो स्वतंत्र व्यवसाय और मुनाफे पर आंच नहीं आनी चाहिये इसीलिये कंट्रोल के विरुद्ध आवाज है……"

"गांधी जी तो कंट्रोल के विरुद्ध है।" तारा ने कहा

"विरुद्ध क्यों है? युद्ध के समय इगलैंड में कंट्रोल न होता तो लोग भूख से मर गये होते। कंट्रोल का अर्थ है,-नियमित बंटवारा! उस पर क्या आपत्ति है। सरकारी रेट से सस्ता बेचने पर तो कोई बंधन नही है। ए० आई० सी० सी० की मीटिंग में यह प्रश्न आ रहा है इसीलिये डैडी को बहुत चिता है। बाजार में चीनी की किल्लत है और डैडी की सात लाख की चीनी घुटी पडी है। इस काम मे क्या सहयोग दूं? मै तो नौकरी ही करूगा, चाहे पांच ही सौ की मिले। जानती है, पैट्रोल पर भी राशन है। काग्रेस ने सेशन के लिये डैडी से मय पैट्रोल दो गाड़ियां मांगी है। उन्हें नहीं खयाल पैट्रोल कहा मे आयगा? इंगलैंड मे पैट्रोल का राशन था तो प्राइम मिनिस्टर पार्लियामेट पैदल जाता था।

× × ×

१३ जनवरी, सन् १९४७ रेडियो और पत्रों ने सूचना दी—गांधी जी ने आमरण अनशन की प्रतिज्ञा कर ली है। पूरा देश सिहर कर स्तब्ध हो गया। दिल्ली उस चिता और सनसनी का केन्द्र थी।

गांधी जी के निरन्तर उपदेशों से भी हिन्दू-मुस्लिम विरोध के कारण रक्तपात समाप्त नहीं हो सका था। उत्तर प्रदेश और दिल्ली के मुसलमानों के प्रतिनिधि आकर दारुण अत्याचार की कहानिया गाधी जी को सुना रहे थे। पश्चिमी पंजाब मे समुद्री, जेहलम, लायलपुर, बहावलपुर से समाचार आ रहे थे कि लाखों हिन्दू विकट यातना में पड़े है, हजारों भूख मे मर गये है—काश्मीर की भूमि पर भारतीय और पाकिस्तानी सेनाओ मे युद्ध छिड़ गया है।

देश के बंटवारे के समय भारतीय सरकार को ब्रिटेन मे सयुक्त देश के लिये जो पावना (अस्सेट) मिला था, उसमे पचपन करोड़ रुपया पाकिस्तान का भाग था। पाकिस्तान ने भारत के भाग कश्मीर पर अधिकार करने के लिये आक्रमण कर दिया था। युद्ध की घोपणा नही की थी परन्तु दोनों ओर की सेनाओं मे युद्ध चल रहा था। भारत सरकार ने निश्चय कर लिया था कि जब तक

पाकिस्तान काश्मीर से अपनी सेनाएँ नहीं हटा लेगा, संयुक्त पावने में से पाकिस्तान के भाग की रकम उसे नहीं दी जायगी।

गांधी जी का सुझाव था कि भारत सरकार अपना सद्भाव प्रकट करने के लिये पाकिस्तान को बिना किसी शर्त के उसका भाग पचपन करोड़ रुपया दे दे। भारत सरकार स्वयं अपने ऊपर किये गये आक्रमण में, पाकिस्तान को अपने विरुद्ध सहायता देने के लिये तैयार नहीं थी। मंत्री-मंडल को गांधी जी का परामर्श व्यवहारिक नहीं लगा, उन्होंने उस परामर्श को स्वीकार नहीं किया।

गांधी जी ने सद्भावना और सहिष्णुता के लिये अपने उपदेशों और प्रयत्नों को विफल होते देख कर अपने उद्देश्य के लिये प्राणों की आहुति देने का निश्चय कर लिया।

१२ जनवरी सोमवार था। सोमवार को गांधी जी नियमानुसार मौन व्रत रखते थे। गांधी जी के मौन व्रत के दिन, प्रार्थना के समय उन के संदेशों को, उन के निजि सहायक प्यारेलाल अथवा प्यारेलाल की बहिन पढ़ कर सुना देती थीं। उस संध्या गांधी जी की ओर से घोषणा कर दी गयी—गांधी जी १३ जनवरी के मध्यान्ह से अनशन व्रत आरम्भ कर रहे हैं। गांधी जी के अनशन का अंत भारत में, विशेष कर दिल्ली में साम्प्रदायिक उन्माद का अंत होने पर ही होगा अथवा उन का शरीरान्त होगा।

गांधी जी ने अपने अनशन का कारण अथवा अनशन समाप्त कर सकने के लिए कोई शर्त ब्योरे से अथवा स्पष्ट नहीं बतायी थी। उन्हों ने संक्षिप्त शब्दों में कह दिया था—जब तक साम्प्रदायिक द्वेष का उन्माद समाप्त हो कर हिन्दू-मुसलमानों में सौहार्द्र स्थापित नहीं होगा, वे अनशन से रहेंगे।

उस समय पत्रों में और राजनैतिक चर्चा में पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया दिया जाने अथवा न दिया जाने का ही प्रश्न प्रमुख था। गांधी जी सद्भावना की अपीलें कर रहे थे। वे निरंतर मांग कर रहे थे कि सरकार दिल्ली में मुसलमानों की रक्षा का पूरा प्रबंध करे। दिल्ली से जो मुसलमान भय के कारण भाग गये हैं, वे लौट कर निर्भय दिल्ली में रह सकें। हिन्दू शरणार्थियों ने मुसलमानों के जिन मकानों और मसजिदों पर कब्जा कर लिया है, वे मुसलमानों को लौटा दिये जायें। गांधी जी के अनशन के इन उद्देश्यों के कारण अधिकांश हिन्दुओं ने, विशेष कर पश्चिम और पूर्वी पाकिस्तान से निकाल दिये गये हिन्दुओं ने, इस अनशन को मुसलमानों के प्रति अनुचित पक्षपात समझा। उन का कहना था कि पाकिस्तान और मुसलमान उन पर आक्रमण कर रहे थे और इस आक्रमण में गांधी जी पाकिस्तान और मुसलमानों के पक्ष में थे।

अधिकांश हिन्दू गांधी जी के व्यवहार से क्रोध में उबल पड़े

१३ जनवरी प्रातः ही अगरवाला साहब के यहाँ टेलीफोन आने लगे थे। दिन के पहले पहर ही बहुत से लोग आये। ड्राइंगरूम में उत्तेजना से बहसें होती रहीं। अभ्यागतों के लिये बार-बार चाय बनी। आल इन्डिया कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के समय ए-ए में अतिथियों के लिये बहुत सा प्रबन्ध करना पड़ा था। मिसेज अगरवाला का अनुभव था कि ऐसे अवसर पर तारा को निर्देश देने से वे निश्चिन्त हो जा सकती थीं।

नवम्बर में कांग्रेसी अतिथियों की अभ्यर्थना और चाय पार्टी के प्रबन्ध के प्रसंग में अगरवाला साहब से तारा का कई बार सामना हो जाता था, बातचीत भी हो जाती थी। तब से वे उसे देखते तो हाल-चाल पूछने लगते थे। आश्वासन दे देते थे, परेशानी में मत रहना। कोई जरूरत हो तो मिसेज अगरवाला या हम से कह देना। कभी बच्चों के विषय में बात करने लगते। तारा ने भाँप लिया था, ऐसे समय मालकिन तुरन्त बीच में आ जाती थीं। बोल पड़तीं—"हम इस का इतना खयाल रखती हैं कोई नौकरों का ऐसे खयाल रख सकता है ? उसे जरूरत होगी, खुद हम से कह देगी। इस का कोट ही देख लो, हमारे कोट से क्या कम है ?

तारा के कोट की भी कहानी थी। तारा ने नवम्बर में अपने लिये ऊन लेकर कोट्टी बुन ली थी। कोट्टी की बुनाई और डिजाइन देख कर मालकिन ने सराहना में कहा—"हाय तुम तो बहुत अच्छा बिनना जानती हो। हमारे लिये भी बुन दो। अपनी पसन्द की ऊन ले आना।"

तारा अखबार पढ़ते समय या बच्चों को पढ़ाते समय भी कुछ न कुछ बुनती रहती थी। नरोत्तम कह देता—"सब के लिये बुनती हैं, हम ने ही क्या कसूर किया है ?"

"आप भी ऊन ला दीजिये, ऐसा स्वेटर बुन दूं कि याद करें। बुनाई क्या मिलेगी ?"

"हाँ, पहले तय हो जाना ठीक है तभी ऊन लायें ?"

"जो तबीयत में आये। रहने दीजिये, मैं यों ही बुन दूंगी। ऊन भी ले आऊंगी।"

तारा ने नरोत्तम के लिये मोटे सलेटी रंग के ऊन में लाल ऊन से बेल डाल कर स्वेटर बुना तो मालकिन देखती ही रह गयीं। उन की इच्छा थी कि भूपी के लिये भी वैसा ही एक स्वेटर हो जाये। तारा को बुनने की अपनी

रफ्तार कम कर देनी पड़ी ।

दिसम्बर में कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी । मिसेज अगरवाला ने पन्द्रह दिसम्बर के दिन तारा को पचहत्तर रुपये दिये थे—तुम्हें कोई शाल-वाल खरीदना हो या कुछ और कपड़ा चाहिये तो ले लो ।"

तारा ने एक कत्थई शाल बीस रुपये में खरीद लिया था । दिल्ली की कड़ाके की सर्दी के समय स्वयं बुनी कोट्टी और शाल ही उस का सहारा था । वर्षा के बाद तीखी हवा चलते समय बच्चों को लेकर बाहर जाना होता या गरम कोट पहने डौली उसे साथ खींच ले जाती तो तारा अपने शाल में सिकुड़ती-ऐंठती चली जाती ।

एक संध्या अगरवाला साहब और नरोत्तम बराम्दे में खड़े थे । दोनों के ही शरीर पर ओवरकोट थे । मिसेज अगरवाला तारा को ले कर बाहर जाने के लिये निकलीं । मिसेज अगरवाला भी कोट पहने थीं । तारा के शरीर पर केवल शाल था ।

"मिस तारा आप ने कोट क्यों नहीं पहना । आज बहुत सर्दी है ?" नरोत्तम ने टोक दिया और फिर बोल उठा, "मम्मी क्या इन के पास कोट नहीं है ! बहुत ज्यादा सर्दी है ।"

तारा को अच्छा नहीं लगा । उस ने मुंह फेर कर गर्दन झुका ली ।

"हाँ जरूर !" अगरवाला साहब ने समर्थन कर दिया, "इसे कोट क्यों नहीं ले देतीं ।"

"तो फिर खरीद दो ।" मिसेज अगरवाला ने झल्लाहट दबा कर कह दिया । उन का उत्तर नरोत्तम की ओर था ।

नरोत्तम सौतेली माँ की चुनौती से मन ही मन छटपटा उठा । दूसरे दिन तारा ने बच्चों को स्कूल के लिये रवाना कर बराम्दे में लौट कर हाथ में अखबार लिया ही था कि नरोत्तम आ पहुंचा—"कोट लाने के लिये कितने बजे चलेंगी ?'

"मुझे कोट नहीं चाहिये । मुझे इतनी अधिक सर्दी नहीं लगती । मैं नहीं लूंगी ।"

"डैडी ने कहा है । आप उन की बात नहीं मानेंगी ?"

"पर मुझे जरूरत नहीं है । मुझे आदत भी नहीं है । इतना ही एहसान क्या कम है ?"

"एहसान किस बात का ?" नरोत्तम ने विरोध किया, "मिस एडवर्ड सौ रुपया ले रही थीं । सर्दी में सब को कोट की जरूरत होती है । कोट हो

आज लेना होगा।" और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना लौट पड़ा।

"मुझे नही चाहिये।" तारा ने उसे सुना दिया।

साढ़े दस बजे मालकिन तारा को समीप बैठा कर अंग्रेजी मे एक पत्र लिखा रही थी।

नरोत्तम बाहर जाने के लिये तैयार आ कर बोला —"कल डैडी ने इन्हें कोट ले देने के लिये कहा था। मैं उधर ही जा रहा हूं, अभी ले देता हूं।"

"बहिन जी, मुझे सर्दी नही मालूम होती। मुझे कोट पहनने की आदत नही है।" तारा ने कातरता से मालकिन को उत्तर दिया।

"डैडी ने कल सर्दी मे सिकुड़ते हुये देखा था। देख कर ही उन्होंने कहा है।" नरोत्तम ने भी माँ को उत्तर दिया।

"मै क्या मना कर रही हूं" मिसेज अगरवाला ने कहा, "कह रहे है तो चली क्यों नहीं जाती।"

"बहिन जी मै ···।"

"यह सब फिजूल के नखरे हमे अच्छे नही लगते।" मालकिन झुंझला उठी, "खामुखाह हमें बीच मे डालने का क्या मतलब ··?"

तारा गर्दन लटकाये नरोत्तम के साथ चली गयी।

नरोत्तम गाड़ी स्वयं चला रहा था। तारा की आँखें सुर्ख थी। वह क्रोध में दाँतों से होंठ दबाये थी।

"क्यो चुप क्यों है?" नरोत्तम ने पूछ लिया।

तारा फूट पड़ी—"मै अभागी हूं। आप लोगों की नौकर हूं इसलिये आप लोग जैसे चाहें मेरा अपमान कर सकते है?"

नरोत्तम चुप रह गया। उसे आशा नही थी कि तारा उस बात पर इतनी नाराज हो जायेगी। कुछ देर ठहर कर अंग्रेजी में बोला—"मुझे खेद है, मेरी नासमझी से आप को इतना दुःख हुआ। विश्वास रखिये, मुझे डौली के सम्मान के लिये जितना खयाल होना चाहिये उस से जरा भी कम आप के प्रति नही है। मेरी मूर्खता पर आप बेशक नाराज हो सकती है—मेरे इरादे पर नही।"

तारा के लिये कोट आ गया। तारा ने मालकिन के प्रति आदर प्रकट करने के लिये कोट पहले उन्हें ही दिखा दिया था। नरोत्तम ने कीमत का कार्ड कोट पर से नोच दिया था फिर भी मालकिन धोखे में नही आ सकी। मन का क्षोभ वश कर उन्होंने कहा—"बहुत अच्छा है, कपड़ा कीमती है, बहुत बढ़िया डिजैन है। रतनारा ऐसा ही पहन कर क्लब में आयी थी।" तारा चली

गयी तो शिवनी के सामने कहे बिना न रह सकी, "बाप-बेटा दोनों निछावर हो रहे है···।" बात तारा तक पहुंच ही गयी ।

तारा सर्दी के समय कोट पहनना भूल जाती तो मालकिन इस तरह टोकतीं मानो उन के उपहार का निरादर किया जा रहा हो ।

तारा मालकिन के मन का सन्देह भाँपने लगी थी । यह भी सुन लिया था कि ऐसा सन्देह उन्हें पहली गवर्नेस पर भी हुआ था । मिस एडवर्ड अपनी बात मालकिन से न कर मालिक से ही कहती थी । उन से काफी हस-बोल भी लेती थी । मालकिन तारा पर बहुत सतर्क दृष्टि रखती थी परन्तु तारा का कोई दाँव भांप नही पायी थी । फिर भी उन्हो ने कह ही दिया—" जो मिलती है, ऐसी ही आती है । लावारिस औरतों का क्या है । ·· उन्हें तो ऐसा मौका भगवान दे ।"

नरोत्तम तारा से बात करने का अवसर निकाले बिना मानता नही था । तारा को नरोत्तम की कोई बात या व्यवहार खटका नही परन्तु फिर भी अपनी स्थिति के विचार से कह ही देना पड़ा—"आप मुझे डौली की बडी बहिन ही समझते है लेकिन जानते हे क्या कहा जा रहा ?" तारा ने व्यंजना और ध्वनि से कही गयी बातें नरोत्तम को साफ-साफ बता दी । उसे विश्वास हो गया था, नरोत्तम सचमुच सज्जन है वह अन्यथा नही समझेगा ।

"ऐसी बात तो वे हर हालत मे कहेंगी । उन्होने कब और किस के लिये नही कहा ? वे और कुछ सोच ही नही सकती ? उन्होंने अपनी छोटी बहिन तक पर विश्वास नही किया । सुमित्रा मौसी पहले यहाँ ही रहती थी । इसी संदेह और चिढ़ मे उसे 'हार्डिग' के बोर्डिंग मे भेज दिया है । हो सकता है, उस में कुछ तथ्य भी रहा हो । आप परवाह न कीजिये । अपने ऊपर विश्वास है तो क्या डर !" नरोत्तम ने अपना व्यवहार न बदला ।

तारा मन ही मन घुटने लगी । तीन ही मास बीते है । यहाँ भी आपत्ति आती दिखाई देती है ।··· मेरे लिये कहीं शरण नही, औरत जो हूं ? बंती ठीक कहती थी औरत होना ही अपराध है । किसी स्कूल मे इस से आधी तनखाह भी मिल जाये······ ।"

ड्राइंग रूम मे गाधी जी के उपवास की स्थिति पर विचार हो रहा था । अतिथि जनवरी की कोहरा-भरी वायु से सिकुड़ते हुए आते परन्तु उन के चेहरो और स्वरों मे उत्तेजना की गरमी थी । अगरवाला साहब से हिन्दुओं की रक्षा के लिये, आवाज उठाने को कहा जा रहा था । साहब दफ्तर नही गये थे ।

बारबार चाय की मांग हो रही थी। मालकिन इतनी उत्तेजनापूर्ण और महत्व-पूर्ण बातचीत से उठ कर कैसे आ सकती थीं। वे ड्राइंग रूम से झांक कर कह देती––"तारा जरा दो चाय भिजवा देना.......। तारा ज़रा ...।"

तारा ने ड्राइंग रूम के साथ के कमरे में बिजली की केटली लगा ली थी। वहीं से चाय और दूसरी चीजें कभी जुगुल के हाथ, कभी ड्राइवर नन्दलाल के हाथ भिजवाती जा रही थी। बीच-बीच में उत्तेजनापूर्ण शब्द सुनाई दे जाते थे।

"हिन्दुओं को मरवा डालने के लिये...."

"मुल्ले जा-जा कर कान भरते हैं.......।"

"सरदार पटेल कैसे मान सकते हैं ? कभी नहीं मान सकते।"

तारा ने मालकिन की आवाज पहचानी—"नन्दलाल, तारा से कहो चाय और भिजवाये।

"हां जी, ये तो बड़ा जुल्म है ?"

"गांधी मर जाये हमें क्या है ? इंसाफ के खिलाफ करेगा तो .."

"कैबिनेट फैसला कर चकी है। इन के लिये कैबिनेट फैसला बदला देगी ? गवर्मेंट की प्रेस्टीज...।"

"कल ही की तो खबर है कि पाकिस्तानियों ने गुजरात स्टेशन पर दो हजार आदमियों की पूरी गाड़ी काट डाली है। यह उन्हें पचपन करोड़ दिलावेगा।"

"मुकर्जी कभी नही मानेंगे। आप मुकर्जी बाबू के पास चलिये।"

"गांधी हमारे गिराये हुये मंदिर बनवा देगा? ..."

"रिफ्यूजियों का डिमान्स्ट्रेशन जरूर होना चाहिये। हम पूरी दिल्ली को हिला देंगे। चार कांग्रेसिये क्या कर लेंगे ?"

"राय साहब, आप जरूर चलिये।"

दिन भर यही होता रहा। बहुत उत्तेजना थी। तारा को भी लग रहा था, गांधी जी ने मुसलमानों की सहायता के लिये अपने उपवास से हिन्दुओं पर आक्रमण कर दिया है। हिन्दू पराजय स्वीकार करके आत्महत्या कर ले.... लोगों को नेहरू और आजाद पर भरोसा नहीं है परन्तु सर्दार पटेल, श्यामा-प्रसाद मुकर्जी और सर्दार बलदेवसिंह यह नहीं होने देंगे। गांधी जी यह क्या कर रहे है ? क्या होगा...?

नरोत्तम भी ड्राइंग रूम में मौजूद था। दोपहर बाद सामना होने पर तारा ने जिज्ञासा से उसकी ओर देखा।

"बड़ी कठिन स्थिति है। गांधी जी का अनशन कैबिनेट के निर्णय के विरुद्ध है। जनता तो कैबिनेट के साथ है। गांधी जी का अनशन निश्चय ही

भारत के विरुद्ध, पाकिस्तान के पक्ष में है।" नरोत्तम के स्वर में चिन्ता थी।

तारा ने भी कहा—"गांधी जी को अनशन करना था तो पार्टीशन रोकने के लिये करना चाहिये था। असली घटना तो हो चुकी। यह तो केवल उस घटना की छाया है।"

१४ जनवरी को लगभग साढ़े ग्यारह बजे जुगुल ने तारा को संदेश दिया—"आप को हाल कमरे में बुला रहे है। प्रसाद जी आये है।"

"बहिन जी कहां हैं ?" तारा ने पूछा

"वहीं कमरे में हैं।"

तारा साड़ी का आंचल संभालती, सहमती ड्राइंग रूम में गयी। साहब थे, मिसेज अगरवाल थीं, नरोत्तम भी था।

साहब ने भी प्रसाद जी का समर्थन किया—"आओ आओ, बैठो।"

प्रसाद जी का चेहरा बहुत गंभीर था। वे तारा की ओर देख कर अपनी बात कहते रहे—"सब मिनिस्टर बिड़ला भवन में गये हुये हैं। वहां लान में गांधी जी के पलंग के पास कैबिनेट की मीटिंग हो रही है। आप लोगों को, नगर के प्रतिनिधियों को गांधी जी के पास जाकर विश्वास दिलाना चाहिये कि आप नगर में पूर्ण शांति स्थापित करने का उत्तरदायित्व ले रहे हैं.......।"

"कल तो जुलूस निकला था कि गांधी जी को मर जाने दो। पाकिस्तान को रुपया नहीं देगे। और जाने क्या, क्या ?" मिसेज अगरवाला ने चिंता से कहा।

उन सब दंगैयों का इंतजाम सर्दार ने कर दिया है। दफा १४४ लग गयी है। सरकार यह सब बर्दाश्त नहीं कर सकती। सब जगह मिलिटरी का पहरा हो गया है। पंडित जी और सर्दार ने कहा है कि नागरिकों के प्रतिनिधियों को चाहिये कि गांधी जी को पूर्ण सद्भाव और शांति का आश्वासन दें। राय साहब, इस समय आप को आगे बढ़ना चाहिये। यह सब आप को ही करना है। हिन्दुओं की ओर से आप का नाम जरूर होना चाहिये।"

मिस्टर अगरवाला उँगलियां तोड़ते हुए चुपचाप सोच रहे थे।

प्रसाद जी मिसेज अगरवाला की ओर घूम गये—"पंडित जी और पटेल साहब ने भी कहा है ?"....

"लेकिन कैबीनेट का तो फैसला था.......?" अगरवाला साहब ने चिंता से पूछा।

"हम जो कह रहे है, पंडित जी और सर्दार ने कहा है।" प्रसाद जी ने टोक दिया, "कैबीनेट का फैसला होता रहेगा।"

"दफा १४४ और मिलिटरी का पहरा; क्या गांधी जी उचित समझेंगे ?

यह तो गांधी जी के उपवास की भावना के विरुद्ध बातें है। दैटज़ फोर्स ! शस्त्रों की शक्ति से शांति स्थापित करनी है तो अनशन का क्या मतलब ?" नरोत्तम ने टोक दिया।

"यू डोंट अंडरस्टैण्ड। इट-इज इंन्टरनेशनल क्राइसिस। गांधी जी इज इंडियाज़ सोल !" (तुम नही समझते, यह अंतर्राष्ट्रीय संकट है। गांधी जी भारत की आत्मा है।) प्रसाद जी कुछ उग्रता से बोले, "एडमिनिस्ट्रेशन (शासन) एक बात है, गांधी जी की बात दूसरी है। सब गांधी जी थोड़े ही बन जा सकते है। परपज (उद्देश्य) तो एक ही है।"

प्रसाद जी मिसेज अगरवाला की ओर घूम गये--"हां बहिन जी, दयावंती जी, बेगम काज़मी, मिसेज चौसिया और आप को पांच बजे बिड़ला भवन में स्त्रियों का प्रतिनिधि मंडल लेकर जाना होगा। तारा बहिन, आप भी जरूर जायेंगी।"

"यह क्या करेगी ? यहां घर पर भी तो किसी को......।"

"क्या कह रही है बहिन जी ?" प्रसाद जी ने मिसेज अगरवाला को टोक दिया, "गांधी जी के प्राणों का प्रश्न है। इंडिया की प्रेस्टीज (सम्मान) का प्रश्न है। इन का जाना बहुत इम्प्रेस्सिव (प्रभावोत्पादक) होगा। इन का तो विशेष महत्व है। रिफ्यूजी ही तो गांधी जी का विरोध कर रहे है। रिफ्यूजी स्त्रियां जितनी अधिक हों, अच्छा होगा।"

"ठीक है, ठीक है। ले जाओ। तुम चली जाना !" अगरवाला साहब ने उँगलियां तोड़ते हुए तारा की ओर देखा।

"इस के पास खद्दर की साड़ी.......।"

"दैट डजंट मैटर ! सिर्फ कांग्रेसी ही नहीं, सभी तरह के लोग गांधी जी के पास जायेगे।"

मिसेज अगरवाला बड़ी गाड़ी में तारा और मिसेज जीवनसिंह को लेकर बिड़ला भवन के समीप पहुंच रही थीं कि उसी ओर जाता हुआ एक छोटा सा जुलूस मिल गया। लोग बांसों पर बड़े-बड़े इश्तहार उठाये थे। इश्तहारों पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था---'खून का बदला खून से लेगे !' 'गांधी को मर जाने दो।' 'गांधी गद्दार है !' 'हिन्दुस्तान हमारा है !' 'कश्मीर हमारा है !'

"हाय यह क्या ?" मिसेज अगरवाला घबरा गयीं।

"पंडित जी, पंडित जी ! नेहरू जी !" दयावंती बोल पड़ीं।

सामने से समानान्तर आती हुई दो मोटर साइकिलों पर पुलिस के अफसर

थे। वे सहसा रुक गये। उन के पीछे आती झंडा लगी मोटर भी सहसा रुक गयी। मोटर के पीछे से, दो मोटर साइकिलों पर दो पुलिस अफसर मोटर के दोनों ओर हो गये।

पुलिस के इशारे पर मिसेज अगरवाला की मोटर सड़क के बायीं ओर रुक गयी।

जुलूस के लोग बहुत जोर से चिल्ला उठे—"गांधी मुर्दाबाद !' 'गांधी को मर जाने दो !' 'गांधी गद्दार है !"

मोटर से पंडित नेहरू उतर पड़े। पंडित जी नारे लगाती भीड़ की ओर निधड़क बढ़ गये। कई पुलिस अफसर रक्षा के लिये उन के पीछे, दायें-बांयें हो गये।

पंडित जी ने भीड़ को धमकाकर पूछा—"कौन कहता है गांधी को मर जाने दो ?"

भीड़ ने फिर नारा लगाया—"गांधी गद्दार है ! गांधी को मर जाने दो।"

पंडित जी पुलिस से घिरे हुये भीड़ की ओर दो कदम बढ़ गये—"जो गांधी जी को मारना चाहता है, पहले मुझे मारे ! जिस में हिम्मत है आगे आओ !"

भीड़ चुप हो गयी।

पंडित जी ने फिर ललकारा—"जिसमें हिम्मत हो आगे आये !"

भीड़ स्तब्ध रह गयी।

पंडित जी ने भीड़ को फटकारा—"आप लोगों को शर्म आनी चाहिये। जो शख्श आप के लिए कुर्बान हो रहा है, आप के लिये जान दे रहा है, उस के लिए आप लोग इस तरह बकते है। गांधी इस देश की आत्मा है, इस मुल्क की रूह है। गांधी के मरने के साथ हम-आप, पूरा मुल्क मर जायगा। दुनिया हमें क्या कहेगी ?"

भीड़ शांत रही।

पंडित जी ने अफसरों की ओर देख कर कहा—"भीड़ क्यों है ? रास्ता क्यों रुका है ?"

पंडित जी गाड़ी में बैठ गये।

"प्लीज डिसपर्स ! आप लोग रास्ता नहीं रोकिये !" हुक्म सुनाई दिया।

मोटर साइकिलें गर्ज उठीं। मोटर साइकलों से घिरी हुई पंडित जी की गाड़ी चल पड़ी।

तारा, मिसेज अगरवाला, मिसेज जीवनसिंह रोमांचित, सांस रोके स्तब्ध देखती रह गयीं। एक मिनिट में सब कुछ हो गया।

तारा ने आश्वासन का साँस लिया।

गाड़ी को रास्ता मिल गया।

"कैसे बेशर्म हैं लोग ?" मिसेज अगरवाला ने दुःख से कहा।

× × ×

बिड़ला भवन के बाहर बहुत सी गाड़ियां खड़ी थीं। पुलिस के सिपाही गाड़ियों को सड़क के किनारे कायदे से खड़ा करा रहे थे। भीड़ से सड़क रुक न जाने देने के लिये सतर्क थे। आस-पास पुलिस ही पुलिस थी। भीड़ को देख-समझ कर भीतर जाने दिया जा रहा था।

बिड़ला भवन के बराम्दे में कुछ महिलायें एक ओर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थीं। प्रसाद जी भी थे। चारों ओर आतंकपूर्ण स्तब्धता छायी हुई थी। लोग बिना आहट किये चल रहे थे। स्वर दबा कर बात कर रहे थे।

"आप ने बहुत देर कर दी। जल्दी आइये।" प्रसाद जी ने कहा।

सड़क पर पुलिस का और बंगले के भीतर स्वयं-सेवकों का पहरा था। प्रसाद जी ने स्वयं-सेवकों को संकेत किया। स्त्रियों के लिये मार्ग कर दिया गया।

गांधी जी पलंग पर बड़े तकिये के सहारे, पश्मीना ओढ़े अध-लेटे बैठे थे। लम्बी दाढ़ी वाले दो मौलवी गांधी जी के समीप बैठे रूमाल से अपनी आंखें पोंछ रहे थे।

गांधी जी के नेत्र मुंदे थे। चेहरा बहुत गम्भीर था। महिलायें प्रणाम करके बैठ गयीं। हृदय द्रावक स्तब्धता में तारा को अपने हृदय की धड़कन सुनायी दे रही थी।

गांधी जी ने नेत्र खोले। महिलाओं को देख कर, दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और मौलानाओं को सम्बोधन कर बोले :—

"आज आप लोग खुद मंजूर कर रहे हैं कि आपने मुझे हालात को मुबालगे से (अतिरंजित) बताया था। मेरे मन में यह खयाल उस वक्त भी था, जब आप लोग मुबालगे से बातें कर रहे थे, उस समय मैंने कुछ कहना ठीक नहीं समझा क्योंकि आप लोग बहुत मुसीबत में थे। मुझे आशा है, आप अब सबक लेंगे कि मुबालगे से कैसे-कैसे नतीजे हो सकते हैं। मुझे तो सिर्फ खुदा का ही भरोसा है। वही मुझे सही राह दिखायेगा।"

गांधी जी ने महिलाओं की ओर दृष्टि की। गांधी जी के समीप बैठी दयावंती जी ने सब स्त्रियों की ओर से उन्हें विश्वास दिलाया कि दिल्ली की महिलायें साम्प्रदायिक द्वेष दूर करने और शांति स्थापन करने के लिये तन-मन

अर्पण करने के लिये तैयार हैं। गांधी जी उन की प्रार्थना स्वीकार करके अपना अनशन समाप्त कर दें। वे देश को इस संकटमय स्थिति में अनाथ न करें।

गांधी जी ने महिलाओं पर विश्वास प्रकट करके उत्तर दिया—"मेरा अनशन देश के लोगों की सहृदयता और कर्तव्य की चेतना को पुकारने के लिये ही है। मुझे इस बात के लिये खेद और लज्जा है कि दोनों ही भागों में सब से अधिक अत्याचार बहिनों पर ही हुआ है। मेरा यह अनशन स्त्रियों पर हुए अत्याचार के विरोध में, उस अत्याचार के प्रायश्चित के लिये है। जिस समय मुझे विश्वास हो जायगा कि लोगों के मन से द्वेष का उन्माद दूर हो गया है, मैं आप लोगों की बात नहीं टालूंगा। आप भगवान पर विश्वास रखिये। आप भगवान से प्रार्थना कीजिये, वह देश के भाइयों को सद्बुद्धि दे।"

सड़क की ओर से कोलाहल और नारे सुनायी दिये।

"खून का बदला खून से लेंगे।"

"गांधी को मर जाने दो।"

"गांधी मुल्क का दुश्मन है।"

"मुसलमानों को बाहर निकालो।"

"कश्मीर हमारा है।"

"पाकिस्तान को रुपया नहीं देंगे।"

"गांधी गद्दार है।"

स्त्रियों ने समझा, उत्पात करने पर उतारू लोगों की भीड़ बाहर आ पहुंची है। वे भय से सिहर उठीं।

"यह कौन लोग हैं?" गांधी जी ने धीमे स्वर में पूछा।

"बापू, ऐसे ही बाहर सड़क पर लोग शोर कर रहे हैं।" गांधी जी के समीप खड़ी लड़की ने उत्तर दिया, "बापू आप परवाह न कीजिये।"

"यह लोग क्या कर रहे है" गांधी जी ने पूछा।

"बापू कह रहे हैं, गांधी को मर जाने दो।" लड़की ने बता दिया।

गांधी जी ने पल भर नेत्र मूंद कर प्रश्न किया—"कितने लोग हैं?"

"बापू, ज्यादा नहीं हैं। यही थोड़े से लोग हैं। शोर मचा रहे हैं। अपने आप चले जायंगे।"

"राम! राम! राम!" गांधी जी ने नेत्र मूंद लिये।

समीप बैठी दो स्त्रियां मंद स्वर में रामधुन आलापने लगीं।

महिलाओं की आंखों से आंसू टपक पड़े। तारा सब से पीछे बैठी थी। कुछ ही पल में उस के मस्तिष्क में लाहौर की घटनायें, स्वयं उस पर बीती

यातनायें, अपनी आँखों देखा अत्याचार कोंद गया।''' यह अकेला पुण्यात्मा देश की उस सम्पूर्ण पशुता के विरोध में प्राण दे रहा है, उसके लिये प्रायश्चित कर रहा है। वास्तव में ही यह देश की आत्मा है। स्वयं तारा ने उस के भाई ने और लाहौर के कितने ही लोगों ने इस ध्वस को रोकने का यत्न किया था। तब ध्वंस के इस उग्र रूप की कल्पना भी नही थी। वह स्वयं उस मे आहुति बनी परन्तु अब इस पुण्यात्मा की सफलता के लिये, उस के प्राणों की रक्षा के लिये वह, सब आपबीती को भुला देने के लिये तैयार थी।

तारा और नरोत्तम सुबह अखबार आते ही सब समाचारों को देख जाते थे। पत्रों में गांधी जी की अवस्था और शांति के लिये प्रयत्नों के समाचारों को प्रमुख स्थान दिया जा रहा था। पाकिस्तान की विधान सभा में सर नून, दौलताना, नवाब ममदौत, इफ्तखारअली खाँ ने गांधी जी के उद्देश्य के प्रति बहुत आदर प्रकट करके, उन्हें धर्म प्रवर्त्तकों के पश्चात संसार का सब से महान पुरुष स्वीकार किया था।

१६ जनवरी प्रात: पत्रों मे समाचार था—भारत सरकार ने अपना पहला निश्चय बदल कर पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये का पावना तुरन्त दे देने की घोषणा कर दी थी। सरकारी वक्तव्य विस्तृत था। मंत्रिमंडल के पहले निश्चय का औचित्य प्रमाणित करके निर्णय परिवर्तन का कारण गांधी जी के अहिंसात्मक प्रयत्न में सहयोग देने की सद्भावना बताया गया था।

गांधी जी का वक्तव्य भी पत्रो मे था। गांधी जी ने चेतावनी दी थी कि मंत्रिमंडल के निर्णय परिवर्तन को अस्थिरता अथवा भीरुता न समझा जाये बल्कि इस उदार-आशयता और सद्भावपूर्ण दूरदर्शिता की गहराई को समझा जाये। गांधी जी ने आशा प्रकट की थी कि भारतीय मंत्रिमंडल का यह निर्णय कश्मीर की समस्या को सद्भाव से सुलझा सकने मे सहायक होगा और आश्वासन दिया था कि यदि नगर के हिन्दू-सिख और मुस्लिम प्रतिनिधि मिलकर, साम्प्रदायिक द्वेष दूर करने की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दे तो वे अनशन समाप्त कर देंगे।

महाराज पटियाला दिल्ली पहुंच गये थे। उन्होने सिखों से गांधी जी की प्राण-रक्षा के लिये तुरन्त पूर्ण शांति स्थापित कर देने की अपील की। मालेर-कोटला के नवाब ने दिल्ली आकर प्रमुख मौलानाओं और मुफ्तियों से और पाकिस्तान के हाई कमिश्नर ने भी भारत के मुसलमानों से, भय छोड़ कर शांति-रक्षा के लिये प्रयत्न करने की अपील की। हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय-स्वयं

सेवक संघ के नेताओ ने भी शांति-रक्षा द्वारा गांधी जी की प्राण-रक्षा के लिये अपीलें कीं। पंडित नेहरू के अनेक सार्वजनिक व्याख्यान हुये।

दिल्ली में शांति के प्रयत्नों का तूफान आ गया। नगर के प्रत्येक भाग से शरणार्थियों और दूसरे लोगों के जुलूस शांति-रक्षा के लिये नारे और ललकारें लगाते हुये निकलने लगे।

अफवाह थी कि गांधी जी के साथ लार्ड माउंटबेटन, पंडित नेहरू और एक बहुत प्रसिद्ध पत्रकार आर्थर मूर ने भी अनशन व्रत कर लिया था।

नगर में हजारों लोगों ने गांधी जी के तप में सहयोग देने के लिये, उनकी सफलता की कामना में अनशन आरम्भ कर दिया था। बंटवारे से पूर्व सब्जी मंडी में मुसलमानों की संख्या अधिक थी। अब वहां से सब मुसलमान भाग गये थे। सब ओर हिन्दू शरणार्थी आ बसे थे। सब्जी मंडी के हिन्दू शरणार्थियों ने, नगर के दूसरे भागों से डेढ़ सौ मुसलमानों को सब्जी मंडी में ले जा कर, उन्हें प्रेम से भोजन कराया।

एक सौ बुरकापोश मुसलमान स्त्रियों का प्रतिनिधि मंडल बिड़ला भवन में पहुँचा। उन्हों ने गांधी जी को अपने निर्भय हो जाने का आश्वासन देकर अन्न ग्रहण कर लेने के लिए प्रार्थना की। महिलाओं ने गांधी जी को बताया कि वे सब तीन दिन से उन के साथ अनशन कर रही थीं।

गांधी जी ने बुर्कापोश स्त्रियों को संबोधन किया—"इस्लाम के नियम के अनुसार पिता, पुत्र, भाई और संम्बधियों से तो पर्दा नहीं किया जाता। यदि आप मुझे अपना पिता और भाई समझती हैं तो मुझ से यह पर्दा क्यों है?"

एक सौ स्त्रियों के बुर्के सहसा उठ गये।

गांधी जी ने महिलाओं को आश्वासन दिया कि ज्यों ही उन्हें विश्वास हो जायेगा कि नगर में मां-बहनों के लिये कोई आशंका नहीं है, साम्प्रदायिक देश का पाप समाप्त हो गया है, वे अनशन समाप्त कर देंगे। वे अल्लाह के रहम पर एतबार करके उस से उन की कामयाबी के लिए दुआ मांगें।"

साम्प्रदायिक शांति की स्थापना के लिये सभी संभव उपाय कर दिये गये थे। जनता की ओर से और सरकार की ओर से, शासन और शस्त्र-शक्ति द्वारा शांति के लिये, सभी संभव प्रयत्न किये जाने का विश्वास गांधी जी को दिला देने के लिये, कोई उपाय शेष नही रहने दिया गया था।

अगरवाला साहब स्थिति की गम्भीरता समझ कर, दोपहर भर अपनी गाडी में घूम-घूम कर सम्भ्रांत नागरिकों से शांति-रक्षा की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कराते रहे थे। संध्या समय खाद्य-मंत्री और कांस्टीच्युएंट असेम्बली के

प्रधान डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ओर दिल्ली के चीफ कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर द्वारा एक सभा संयोजित की गई थी। नगर के सभी सम्प्रदायों के एक सौ तीस प्रमुख प्रतिनिधियों की इस सभा में अगरवाला साहब भी उपस्थित थे। सभी एक मत थे कि गांधी जी जो भी शर्तें लिखा देंगे, उन पर सब लोग हस्ताक्षर कर देंगे। दोपहर बाद कई डाक्टरों ने गांधी जी के शरीर की परीक्षा करके एक सम्मिलित विज्ञप्ति प्रकाशित की थी। इस विज्ञप्ति में गांधी जी की अवस्था बहुत चिंताजनक बतायी गयी थी। सब लोगों के हृदय धड़क रहे थे। संध्या तक दिल्ली के दो लाख से अधिक नागरिकों ने शांति-रक्षा की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये थे।

१८ जनवरी अगरवाला साहब प्रातः ८ बजे ही नगर के प्रतिनिधियों की मीटिंग के लिये गवर्नमेंट हाउस में चले गये थे। सब लोग आशंकामय प्रतीक्षा में थे, क्या होने वाला है। गांधी जी ने भारत सरकार पर दबाव डाल कर पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया दिलवा दिया था। इस नरोत्तम ने बहुत उद्विग्नता अनुभव की थी परन्तु अब गांधी जी के प्राणों पर आतंक अनुभव कर वह मौन और शिथिल हो गया था। उस का मन किसी काम में नहीं लग रहा था। वह मन हल्का करने के लिये इस विषय में तारा से बात करना चाहता था परन्तु तारा को मालकिन अपनी घबराहट में समीप बैठाये किसी काम में उलझाये हुये थीं।

अगरवाला साहब सुबह ही बिड़ला भवन चले गये थे। सवा बजे लौट कर आये। नरोत्तम ने ऊपर की खिड़की से देखा तो एक ही सांस में जीना उतर कर नीचे आ गया। मालकिन भी दौड़ी आयीं।

"अनशन टूट गया, महात्मा जी ने औरंज जूस (नारंगी का रस) पी लिया।" साहब नरोत्तम से कह रहे थे। उन्हों ने मालकिन की ओर देखा, "जल्दी खाना लगवा दो। तीन दिन से कुछ नहीं देख सके। रावत से जरूरी काम है। नोत्तन भैया, तुम जरा फोन करके मालूम कर लो कि रावत साहब लंच के लिये घर पर आये हैं?"

साढ़े तीन बजे दयावंती जी का फोन आया। उन्हों ने मिसेज अगरवाला को तुरन्त अपने यहां पहुँचने के लिये कहा। स्त्रियों की शांति-रक्षा कमेटी में उन का नाम रखा गया था।

तारा, लाल्ली और पुत्तन को संध्या समय इंडिया गेट तक घुमाकर लौटी तो बरामदे में आते ही टेलीफोन की घंटी सुनाई दी। वह लाल्ली की उँगली

पकड़े ड्राइंग रूम में चली गयी। टेलीफोन के समीप कोने में शेल्फ पर रखी अद्भुत वस्तुओं में लाल्ली की नजर कांच की गोल टोपी से ढंकी, अंजर-पंजर दिखायी देती घड़ी पर पड़ गयी। लाल्ली उस घड़ी को देखते ही अपने हाथों में ले लेने की जिद् कर बैठती थी।

तारा जानती थी, यदि लाल्ली मालकिन के साथ ड्राइंग रूम में आ कर ऐसी जिद् कर बैठती तो मालकिन पहले नाराज हो कर उसे चूहेवाली कोठरी में बंद करने की धमकी देतीं और फिर शिवनी को पुकार कर बच्ची को कहीं दूर उठा ले जाने लिये कह देतीं। संभव है, लड़की को—प्राण खा लिये, मर जा·······की गाली दे कर, घड़ी भी उसके हाथ में पकड़ा देतीं। घड़ी टूट जाती तो उसे साहब की नजरों से छिपा देतीं।

लाल्ली का अनुभव था कि उसके चीख-चीख कर रोने और जमीन पर लोट जाने से वह जो चाहे कर सकती थी।

तारा बच्चों की आदतें सुधारने के लिये बहुत प्रयत्न करती थी। तारा सुधारने का यत्न करती और दूसरे लोग मालकिन की खुशामद में बच्चों को लाड़ दिखा कर बिगाड़ने का यत्न करते। तारा जान छुड़ा लेने के लिये बच्ची को घड़ी कैसे थमा देती ? घड़ी का टूट जाना उस का अपराध होता। तारा के पुकारने से शिवनी ने बच्चों का खाना डाईनिंग रूम में लाकर रख दिया था परन्तु लाल्ली पाँव पटक-पटक कर, चिल्ला-चिल्ला कर पूरी कोठी को सिर पर उठाये थी। उसे खाना नहीं, घड़ी चाहिये थी।

मिसेज अगरवाला ने लौटने पर फाटक से ही लड़की को रोते सुना तो बिगड़ उठीं—"सवा सौ-डेढ़ सौ रुपया महीना खर्च कर रहे हैं। घर में कदम रखो तो परलै (प्रलय) का कोहराम सुनने को मिलता है। बच्चों को भी नहीं सम्भाला जा सकता तो हमें क्या सुख है ? क्या हुआ इसे ? कोई चोट तो नहीं लग गयी ?"

शिवनी सामने ही थी, उस ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं हुजूर, वही हाल करने वाली घड़ी माँग रही है खेलने को।"

'तो जरा दिखा क्यों नहीं देती।"

"साहब का फोन आया है। उन्हों ने···" तारा ने बताना चाहा।

"अरे हो जायगा साहब का फोन। थकी हुयी आयी हैं, यहाँ घर में चिल्ल-पों मची है। हमें तो कहीं चैन नहीं। फोन की फिक्र है, या पहला काम बच्चों को सम्भालना है ?"

"अभी मान जायेगी, बहन जी ! वह घड़ी तो···"

"क्या फोन किया था साहब ने ?"

"साहब आठ बजे मिस्टर रावत, मिस्टर सूर्या, मिसेज सूर्या और कुछ लोगों के साथ आ रहे है। आप को बता देने के लिये कहा था कि ऊपर के कमरे में बैठेंगे।"

मालकिन की मुद्रा बदल गयी--"यह और मुसीबत। ऐसी बात थी तो तुम हमें दयावंती के यहाँ फोन कर देती। आठ तो बज रहे हैं। अरी शिवनी देख, ड्राइवर चला तो नहीं गया ? बुला उसे।"

ड्राइवर के आने तक मालकिन क्षोभ में बोलती गयी--"इन मरों को यह सब करना होवे तो अपने घरों में क्यों नहीं करें हैं। यहाँ आकर नरक करे हैं। हमारे सिर सौ-डेढ़-सौ की पड़ जाये है। मरे तीन-तीन, चार-चार हज्जार तनखाहें पावे है। सराब पीते हैं दूसरों के सिर।" मालकिन क्रोध में बोलती थीं तो उन की भाषा और उच्चारण बदल जाता था।

ड्राइवर को देख कर मालकिन ने सम्बोधन किया--"अरे भाई नन्दलाल, तुम तो जानते हो, जहाँ से लतीफ ले आता था। अरे वही नरक--मच्छी, कबाब, मुर्गी।" मालकिन ने दस-दस के दो नोट ड्राइवर की ओर बढ़ा दिये, "जुगुल से बर्तन ले ले। देख, मां जी की रसोई से बर्तन न लीजो।"

"हुजूर, हम तो इन चीजों को हाथ नहीं लगाते। लतीफ लाता थाँ। किसी को साथ कर दीजिये। हम दुकान पर पहुंचा देंगे।"

मालकिन ने जुगुल को बुलवा कर नन्दलाल के साथ गाड़ी में भेज दिया। फिर तारा की ओर मुड़ीं--"इन लोगों में से तो किसी को तमीज़ है नहीं। एक गिलास भी तोड़ दिया, कोई बोतल पटक दी तो मेरी तो जान पर आ जायगी। पाँच-पाँच रुपये का तो एक-एक गिलास है। लतीफ था तो सब कर लेता था।.........."

मिसेज अगरवाला गुच्छे में से एक चाबी दिखा कर घिघियाती हुयी सी बोलीं--"तारा ऊपर वाले कमरे में जल्दी से लगवा दे। शिवनी तू साथ जा। इस ने सब देखा है। सफेद वाले छः गिलास रखवा दो। मेजपोश भी वहीं नीचे वाले दराज में हैं। देख लेना किसी में दाग-धब्बा न हो। गिलास अपने हाथ से पोंछ लेना। बस आते ही होंगे। पहले से कहला देते तब भी था। तैयार नहीं होगा तो पारा चढ़ जायेगा। मैं तब तक जरा मुंह धोकर ये मरी खद्दर की साड़ी बदल लूं। कमर पर मूंज की तरह गड़ रही है। देख ना कितनी धूल पड़ी है।"

"बहिन जी बच्चों को खाना दे कर अभी सब कर देती हूं।" तारा ने

तारा अतिथियों के आने से पूर्व ही कमरे से निकल जाना चाहती थी। जीने से ही लोग आ रहे थे। वह यदि बरामदे में हो जाती या पिछली ओर के छज्जे में चली जाती तो भी उसी कमरे में से, अतिथियों के सामने होकर लौटना पड़ता। पीछे नरोत्तम का कमरा था। वह अपनी ओर से दरवाजा बन्द रखता था।

"प्लीज़।"

तारा ने घूम कर देखा। अगरवाला साहब कमरे का पर्दा उठाये एक महिला को प्रवेश के लिये मार्ग दे रहे थे। तारा आँखें झुकाये एक ओर हो गयी।

"ओह, यू तारा!"

डाक्टर श्यामा ने तारा को बाँह से पकड़ कर अपने साथ सोफा पर बैठा लिया और उसे माथे से पांव तक देखने लगी।

कमरे में एक और महिला और तीन सज्जन आ गये थे।

"तुम्हें देख कर, सचमुच बहुत प्रसन्नता हुयी। हाय तुम कितनी अच्छी लग रही हो।" श्यामा ने ठोड़ी पर उंगली रख कर कहा, "खुश हो न यहाँ?"

"जी बहुत खुश हूं। सब आप की ही बदौलत है।' तारा सब के सामने, साहब के सामने डाक्टर श्यामा के इस प्रकार बात करने से झेंप रही थी।

"मिस तारा, गवर्नेस आफ आवर चिल्डरन।" अगरवाला साहब ने तारा का परिचय दूसरों को दिया और उस से पूछा, "मिसेज अभी नहीं आयीं?"

"जी आ गयी हैं। एक मिनट में आ रही हैं। मैं उन्हें खबर दे दूं।" तारा सोफा से उठने को हुयी।

"आ जायेंगी, उन्हें परेशान करने की क्या जरूरत है।" श्यामा ने तारा को बाँह से पकड़ लिया और दूसरे अतिथियों को बताया, "बहुत साहसी, शीलवती, ग्रेजुएट यंग लेडी। लाहौर से आयी हैं। इस के मुंह पर क्या बताऊं, इस का व्यक्तित्व स्वयं प्रत्यक्ष है।"

तारा का चेहरा संकोच से लाल हो गया। श्यामा उसे दूसरे लोगों का परिचय देने लगीं—

"मीट, मिसेज सूर्या।"

"वेरी प्लीज्ड टु मीट यू" तारा ने मिसेज सूर्या के बढ़े हुये हाथ से हाथ मिलाया।

"आप मिस्टर रावत, सेक्रेटरी होम मिनिस्ट्री।"

"प्लीज्ड टु सी यू सर!" तारा ने रावत की तीखी आँखों से मिलते ही आँखें झुका लीं।

"मिस्टर डे, डिपुटी सेक्रेटरी पब्लिक वर्क्स ।"

"ग्लैड टु मीट यू सर ।"

"मिस्टर सूर्या, सेक्रेटरी हेल्थ ।"

"वैरी ग्लैड टु हैव यू मेट सर ।" तारा सब को हाथ जोड़-जोड़ कर नमस्कार करती गयी ।

"हल्लो !" मिसेज़ अगरवाला ने कमरे में प्रवेश किया । वे शिफों की नयी साड़ी पहने, नया मेअकप किये लग रही थीं मानो स्टेज पर आयी हों । "एक्सक्यूज मी" उन्हों ने अंग्रेज़ी में कहा और फिर हिन्दी में बोलीं, "मुझे तो मालूम ही नहीं हुआ । मैं जरा पीछे मदर से बात कर रही थी ।"

"कोई न्यूनता नहीं रही" रावत बोले, "आप की प्रतिनिधि तो थीं ।"

तारा चली जाने के लिये उठ कर खड़ी हो गयी—"मुझे आज्ञा दीजिये, फिर दर्शन करूंगी ।"

"वाह, आप क्यों जा रही हैं; बैठिये न !" रावत बोले ।

"यस, प्लीज गिव अस प्लेजर आफ़ योर कंपनी (बैठिये, हमें अपनी संगति से आनंद दीजिये) ।" सूर्या और डे ने रावत का साथ दिया ।

"क्षमा कीजियेगा, मैं जाकर बच्चों को देखूंगी ।" तारा ने विनय से कहा ।

"यह तो हमारी गवर्नेस है" मिसेज़ अगरवाला ने कह दिया ।

तो कोई बात नहीं रावत ने कंधे सिकोड़ और हाथ फैलाकर भय की अपेक्षा का नाट्य किया, "बीसियों बार गवर्नरों से पाला पड़ चुका है । कभी डरने का कारण नहीं हुआ । हमारा व्यवहार ठीक रहेगा तो गवर्नेस क्यों नाराज होंगी । मैं गलत कह रहा हूँ, मिस तारा !"

"वैल सेड सर !"

"वैरी फाइन सर !"

"वैरी नाइस !" डे, सूर्या और श्यामा ने भी समर्थन किया ।

अगरवाला साहब हो, हो कर हँस दिये ।

तारा अनुमोदन में केवल मुस्करा दी । समझ गयी रावत बहुत बड़ा अधिकारी या महत्वपूर्ण आदमी है ।

"इसने कपड़े भी नहीं बदले हैं । काम में लगी हुई थी" मिसेज अगरवाला ने फिर भी तारा को सहायता करनी चाही ।

साहब ने तीखी नजर से पत्नी को मौन रहने का संकेत कर दिया और स्वयं आग्रह किया—"बैठिये न मिस तारा ! नीचे काम के लिये बहुत लोग हैं ।"

रावत ने उस ओर देख कह दिया—"अगर मिस तारा अपने परिधान से

संतुष्ट नहीं तो दूसरी बात है। परिधान अनौपचारिक जरूर है पर अच्छी खूब लग रही है। पहनने की कला इसी मे है कि परिधान में यत्न प्रकट न हो।"

डे और सूर्या ने रावत का प्रबल समर्थन किया—"श्योर! यू आर परफैक्टली राइट सर (निश्चय ही आप सही कह रहे हैं)।"

तारा लज्जा से सिमिट कर श्यामा के समीप सोफा पर बैठ गयी।

"सुनिये सुनिये—कुछ आगे झुक कर रावत बोले, "आप लोग तो उर्दू-फारसी पढ़े मुंशी लोग हैं। मिसेज सूर्या, आप तो संस्कृत जानती हैं, आप ने तो संस्कृत में एम० ए० किया है……।"

"यह हमारी तारा भी तो एम० ए० है, मालकिन ने गर्व से बताया।

"क्या संस्कृत मे ?" रावत ने तारा की ओर देखा।

"जी नहीं, मेरा विषय इक्नामिक्स था।"

"हां मिसेज सूर्या, याद है" रावत ने पूछा, "दुष्यंत ने शकुन्तला को देख कर क्या कहा था—इयम अधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी…"

"हाओ, नाइस। यू हैव वंडरफुल मेमोरी (आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति)" मिसेज सूर्या ने विस्मय प्रकट किया।

"मिस तारा यदि अनुमति दें तो अनुवाद कर दूं ?"

"जी अवश्य, विद प्लेजर!"

"दुष्यंत ने कहा था—यह तन्वांगी, तन्वांगी शब्द पर गौर कीजिये, स्लिम एंड ग्रेसफुल यानि छरहरी और सुन्दर! ओह, हिन्दी हैज नो प्रापर वर्ड्स, बीकाज वी नेवर स्पीक इट। मलूक—दिहाती वर्ड बहुत मौजू है। समझते है आप ?"

"आफ कोर्स, क्यों नहीं।" श्यामा और अगरवाला ने हामी भरी।

वेल्, स्लिम एंड ग्रेसफुल युवती पेड़ की छाल ओढे भी 'मनोज्ञा' है यानि मन में बैठ जाती है। आहा, याद आया—दिल्ली के देहात में बड़ा अच्छा लफ्ज है—गंडासा—यानि मन को काट देने वाली। कपड़ों से क्या होता है ?"

"वाह, वाह, बहुत खूब!"

रावत की सराहना में कमरा कहकहों से गूंज उठा।

डे ने विस्मय प्रकट किया—"शासन कार्य का इतना बोझ कंधों पर उठाये भी आप साहित्य का इतना अध्ययन कर सकते हैं ?"

तारा का चेहरा लाल होकर गर्दन झुक गयी थी। श्यामा ने उस के कान के समीप मुख कर धीमे से अंग्रेजी में कहा—"सकुचाती क्यों हो। यह तो निर्दोष परिहास है।"

"वैल, लेडीज फर्स्ट !" अगरवाला साहब बोले, "आप क्या लेंगी ?" उन्हों ने मिसेज सूर्या से पूछा ।

"कुछ खास इच्छा तो नहीं है, शैरी ले लूंगी ।"

"साहब ने स्वयं एक बोतल केबिनेट से ले छोटी गिलासी भर कर, मिसेज सूर्या के समीप छोटी तिपाई पर रख दी । मालकिन की ओर देख कर उन्हों ने पूछा—"सोडा नहीं आया ?"

तारा को पर्दे के पीछे ट्रे लिये शिवनी दिखाई दे गयी—"जी आ गया है ।" उस ने उठ कर ट्रे शिवनी के हाथ से ले ली और केबिनेट के समीप छोटी तिपाई पर रख दी ।

"आप ?" साहब ने डाक्टर श्यामा से पूछा ।

"दे दीजिये, शैरी ही दे दीजिये या पोर्ट है ?"

"आफकोर्स ।" साहब ने गहरी लाल बोतल उठाकर श्यामा के लिये गिलासी भर कर उसके सामने छोटी तिपाई पर रख दी और बोल पड़े, क्यों डे साहब, लतीफ कितना ट्रेंड था ? उस के होने पर जरा परेशानी नहीं होती थी । क्या उस का सलीका था । सर जान गुस्टर का बैरा रह चुका था ।"

"ठीक है मुस्लिम की ट्रेंड सर्विलिटी (परिष्कृत दैन्य) आप को हिन्दू में कहाँ मिलेगी ?" डे बोला "आपका चपरासी ठाकुर नहीं अहीर, गड़रिया भी हो । आप का जल पिया गिलास उठाना पड़ जाये तो माथे पर त्योरियां आ जायंगी, मुसलमान नौकर शेख, पठान क्या सैयद भी हो तो आपके जूते पर धूल देख कर खुद झुक जायगा । अपने दामन से आप का जूता पोंछ कर शुक्रिया में आप को सलाम कर देगा इसीलिये तो अंग्रेजों को यह लोग ज्यादा पसंद थे ।"

अगरवाला साहब ने समर्थन किया—"बिलकुल ठीक है डे साहब ! यह लोग दिल के बहुत काले होते हे । अभी देख लीजिये, पंजाबी रिफ्यूजियों पर जुल्म हुआ तो वे लोग गांधी जी के सामने गुस्सा दिखाते थे और इन मौलानाओं पर पड़ी तो जाकर गांधी जी को बाप बना लिया । परसों तक यही दिल्ली में पाकिस्तान में बना रहे थे । आप क्या लेंगी मिस तारा ?" साहब ने उसी सांस में पूछ लिया ।

"जी कुछ नहीं ।" तारा ने उठते हुये कहा, "आप बैठिये । मुझे बताइये, मैं सहायता करूं ।"

"नो-नो इट इज परफेक्टली आल राइट ।" साहब ने उसे बैठ जाने का संकेत किया, "कुछ तो लीजिये । इट इज वैरी लाइट ।"

"जी नहीं मुझे क्षमा कीजिये । आई हैव नेवर टेकन इट ।" तारा के

स्वर में कातरता और निश्चय भी था।

"इसे रहने दीजिये। ऐसे ही बैठेगी।" श्यामा ने कह दिया।

"नहीं, मैं हेल्प कर सकती हूं।"

"बहुत अच्छा, तो आप सर्व कीजिये। क्यों रावत साहब?"

"जरूर, यदि इन्हें कष्ट न हो तो हमारा दूना सौभाग्य होगा।"

तारा ने मालकिन से पूछा—"आप के लिये?"

"मुझे जरा सी शेरी दे दो।"

तारा ने बोतल पर नाम पढ़ कर साहब की तरह छोटी गिलासी उठा कर भर दिया।

"आप कौन सी ह्विस्की पसंद करेंगे" अगरवाला ने रावत साहब से प्रश्न किया।

"हेग, नैवर वेग।"

साहब ने हेग की बोतल उठाकर तारा के हाथ में दे दी। और गिलास की ओर संकेत कर दिया। सोडा स्वयं खोलने लगे।

तारा गिलास उठाकर बोतल से उंड़ेलने लगी।

मालकिन ने टोक दिया—"गिलास सामने रख दो और पूछो, 'से व्हैन।'

अगरवाला साहब ने पत्नी की ओर घूर कर चुप रहने का संकेत कर दिया।

तारा अपने अज्ञान से झेंप कर एक हाथ में बोतल, दूसरे में गिलास लिये रावत साहब की ओर बढ़ गयी।

"मैं सहायता करूं" रावत ने तुरन्त खड़े होकर कहा और तारा के हाथ से बोतल और गिलास ले लिया। बोतल से गिलास में तरल पदार्थ उड़ेलकर बोले, "यह एक पेग है। डे और सूर्या को भी इस से ज्यादा न दीजिये। यह लोग आप की सरलता का अनुचित लाभ न उठा लें। बहुत लफंगे लोग हैं।"

"थैंक यू सर! आई विल बी केयरफुल।" तारा ने अपनी झेंप को परिहास में बदल दिया। विस्मित थी, इतने बड़े और समझदार लोग यह क्या कर रहे हैं? क्यों कर रहे हैं? उस ने सुना था, शराब पीकर लोग गिर पड़ते हैं, बेहोश हो जाते हैं। अभी जाने यहां क्या हो जायगा। इन लोगों को आशंका भी नहीं है।

तारा को मीठी-कसैली-विचित्र-सी गंधें अनुभव हो रही थीं। कोई भूल न होने देने की सतर्कता में कुछ सोचने का अवसर न था। उस ने डे, सूर्या और अगरवाला साहब से पूछ कर उन के लिये हेग और ब्लैक-एंड-ह्वाइट गिलासों में दे दी। साहब स्वयं सब को सोडा देते जा रहे थे।

रावत का गिलास समाप्त हो गया देखकर साहब केबिनेट की ओर जा रहे थे। तारा उठ खड़ी हुई—"आप बैठिये।"

"याद है न, रावत साहब को हेग।" अगरवाला ने याद दिलाया।

"जी हां।"

साहब एक नक्काशीदार डिब्बा उठाकर सब को सिगार और सिगरेट पेश करने लगे।

मिसेज अगरवाला ने तारा से कहा—"साहब को काजू भी दिखाओ"

तारा ने काजू की प्लेट सब के सामने बारी-बारी से कर दी।

रावत ने जेब से पाइप और तम्बाकू का बटुआ निकाल कर पाइप भरते हुये श्यामा को उत्तर दिया—"बेशक, कुछ समय के लिये बहुत से लोगों के हृदय बदल गये है परन्तु मस्तिष्क नहीं बदल गये है। याद है; साम्प्रदायिक एकता के लिये गांधी जी का यह तीसरा अनशन है। भावुकता कुछ समय के लिये तर्क को दबा लेती है लेकिन कारण नहीं मिट गये। गृह विभाग के सेक्रेटरी की स्थिति से मै जानता हूं कि लोगों के मन और मस्तिष्क नहीं बदल गये है। कुछ लोग दबाव अनुभव कर अधिक कटु हो जायंगे। ऐसे लोग भी थे जो जुलूस निकाल कर चिल्लाते थे—"गांधी को मर जाने दो। गांधी गद्दार है।"

"हां हां, हमने तो खुद देखा" मिसेज अगरवाला बोलीं, "बिड़ला-हाउस के सामने चिल्ला रहे थे। आवाज भीतर भी आ रही थी। गांधी जी ने सुना तो बहुत दुखी हुये। हमे तो बहुत बुरा लगा।"

"गांधी जी ने भी सुना?" डे ने बहुत उत्सुकता से पूछ लिया—"गांधी जी ने क्या कहा?"

उन्हों ने पूछा—"क्या कह रहे है? कितने आदमी है?"

"आदमी तो थोड़े ही थे।" मिसेज अगरवाला ने बताया।

"बहुत अधिक लोग होते तो गांधी जी क्या करते?" डे ने फिर पूछा।

"चाहे जितने होते" श्यामा बोल उठी, "गांधी जी क्या डर जाते? वे तो केवल अपनी आत्मा की पुकार सुनते है।"

"मानता हूं, गांधी जी अपना प्रण नही छोड़ सकते थे।" रावत ने बात अपने हाथ में ली, "पर जो लोग विरोध मे जुलूस निकाल रहे थे क्या उन के दिल बदल गये है? कतई नही, सरकार ने उन्हें दबा दिया है।"

"जी हां, पंडित जी ने जुलूस वालों को बहुत फटकारा। हम ने अपनी आंखों देखा।" मिसेज अगरवाला ने रावत के समर्थन में कहा।

"मैं कहता हूं, खुद पटेल नहीं बदल गये हैं! उन्हें मात स्वीकार कर

लेनी पड़ी है इसीलिये १५ तारीख को, पचपन करोड़ के बारे में सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित होते ही वे १६ की सुबह ही काठियावाड़ चले गये। आशंका है, वे त्यागपत्र न दे दें।"

"अफवाह तो थी कि सर्दार काश्मीर से पाकिस्तानी सेना हटाये जाने तक पावना रोके रहने के पक्ष में थे।" सूर्या ने पूछा।

"अफवाह सच ही थी।" डे सिगार का सिरा दांत से खोंटते हुए बोला।

"बिलकुल-बिलकुल!" रावत ने पाइप सुलगाना स्थगित कर कुछ उत्तेजना से कहा, "पटेल क्या, पूरी कैबिनेट इसके विरुद्ध थी। कैबिनेट इस विषय में निर्णय करके घोषणा कर चुकी थी परन्तु नेहरू और राजेन्द्र बाबू गांधी जी के अनशन से दहल गये। दूसरे लोगों के पांव भी उखड़ गये। पटेल अकेले रह गये।"

रावत ने नये पेग से घूंट भर कर कहा—"मैं शासन के काम में चौबीस वर्ष के अनुभव के आधार पर बात कर रहा हूं। गांधी जी के अनशन के कारण मंत्रिमंडल का निश्चय बदल देने से सरकार ने अपनी साख पाकिस्तान के सम्बन्ध में और शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में भी गिरा दी है।"

"यस सर, यह गंभीर भूल हुई है।" डे ने समर्थन किया, "गवर्नमेंट की विज्ञप्ति में स्पष्ट है कि पाकिस्तान के हिन्दुस्तान की भूमि पर आक्रमण करने की अवस्था में पावना रोक लेना कानूनी और नैतिक था। गांधी जी ने इसे भारत का कानूनी और नैतिक अधिकार स्वीकार किया है और इस निर्णय का विरोध भी किया है; यह अजीब बात है। मुझे विस्मय है, गांधी जी ने काश्मीर की रक्षा के लिये भारतीय सेनायें भेजने का विरोध नहीं किया। उसी उद्देश्य से, पाकिस्तान के अतिक्रमण को सहायता न देने के लिये पावना रोका गया तो उन्हों ने विरोध क्यों किया? फर्ज कीजिये, गांधी जी काश्मीर से भारतीय सेनाओं को लौटा लेने के लिये ही अनशन कर बैठें तो?"

"इस का रहस्य मैं बता सकता हूँ" रावत बोले, "गांधी जी ने इस विषय में लार्ड माउंटबेटन से राय ली थी। माउंटबेटन का जवाब था—अगर भारत पाकिस्तान का पावना रोकता है तो भारत का यह पहला काम होगा, जिसकी सराहना नहीं की जा सकेगी। (दिस विल बी द फर्स्ट डिसआनरेबल एक्ट आन दी पार्ट आफ इंडिया) गांधी जी ने निर्णय कर लिया कि पावना नहीं रोकना चाहिये।"

"हिन्दुओं को और इंडिया को तो इस से नुकसान ही हुआ।" साहब ने चिंता प्रकट की।

"हिन्दुओं का तो इस में बेहद नुकसान है।" मिसेज अगरवाला ने पति का

साथ दिया, "बेचारे हिन्दू मसजिदों में सिर छिपाये हैं। वे इस जाड़े में निकाल दिये जायेंगे। तारा, गांधी जी ने अपनी शर्त में कितनी मसजिदें लिखी हैं ?"

"जी एक सौ सत्रह।"

"परन्तु सब मिला कर तो इस का प्रभाव और परिणाम अच्छा ही हुआ है" श्यामा बोलीं, "इस समय तो द्वेष और हिंसा से मुक्ति मिली।"

"गांधी जी ने कानूनी अधिकार और कानूनी नैतिकता की अपेक्षा विशाल हृदयता को अधिक महत्व दिया है।" सूर्या ने समर्थन किया, "यदि सम्बन्धों में सद्‌भावना हो तो कानून के हवालों की जरूरत ही क्यों हो ? क्या मानवीय दृष्टिकोण सब से ऊँचा नहीं है ?"

रावत उत्तर देने के लिये जरा आगे झुक गये—"सद्‌भावना उत्पन्न हो जाती तो हमें कोई आपत्ति न रहती। तब हम इसे भारत की विजय समझ लेते।"

"निश्चय, यह निश्चय भारत की विजय है" श्यामा ने दो उँगलियों में सिगरेट थामे हाथ आगे बढ़ा कर कहा, "पूरा पाकिस्तान प्रभावित हुआ है।"

"प्रभाव का क्या प्रमाण ?" रावत ने पूछा।

"वाह, पाकिस्तान की असेम्बली में कितने स्टेटमेंट दिये गये ! मुझे नाम याद नहीं आ रहे........।"

"जी हां, सर फीरोजखां नून, मुमताजखां दौलताना, राजा गज़नफरअलीखां के वक्तव्य थे" तारा ने नाम याद दिलाये और कहा, "चीफ मिनिस्टर खान आफ ममदोत ने कहा था, हम गांधी जी के जीवन की रक्षा के लिए कोई प्रयत्न उठा नहीं रखेंगे।"

"पाकिस्तान का हाई कमिश्नर जाहिद हुसेन भी बिड़ला-हाउस में आया हुआ था" अगरवाला साहब बोले, "अखबारों की खबरों के बारे में आप को जो पूछना हो, मिस तारा से पूछ लीजिये। ये नित्य दो अखबार पूरे-पूरे पढ़ती हैं !"

"पढ़ेंगी क्यों नहीं, समय है, आराम है। हम तो कहते हैं, खूब पढ़े-लिखे !" मालकिन ने कह दिया।

"आप की दृष्टि में यह वक्तव्य अनशन के प्रभाव का पर्याप्त प्रमाण हैं ?" रावत ने जवाब मांगा।

"हां, क्यों नहीं ? हम अकारण संदेह क्यों करें ?" श्यामा ने उत्तर में प्रश्न किया।

"खैर, मैंने भी सब वक्तव्य ध्यान से पढ़े हैं। मुझे पाकिस्तानी नेताओं के उन वक्तव्यों में गांधी जी से अपना समर्थन पाने के संतोष की ही ध्वनि मिली है। आप स्वीकार करेंगे कि पचपन करोड़ रुपया केवल वक्तव्य मात्र

नहीं है, एक काफी बड़ी ठोस वस्तु है। मैं पूछता हूँ, सद्‌भावना उत्पन्न करने के लिए पाकिस्तान सरकार ने क्या ठोस कदम उठाये हैं ? काश्मीर से अपनी सेना को वापस बुला लेने की घोषणा की है या यह स्वीकार कर लिया है कि वे काश्मीर में दखल नहीं देंगे ? एक और बात बता ही दूं, गांधी जी ने १२ बज कर ४५ मिनिट पर अनशन समाप्त किया था। उस समय जाहिद-हुसेन वहां था न ?" रावत ने अगरवाला साहब से प्रश्न किया।

"जरूर था। उस ने भी गांधी जी के सामने हाथ जोड़ कर अनशन समाप्त करने के लिये अनुरोध किया था। उस ने शांति-रक्षा के लिये पूरा प्रयत्न करने का आश्वासन दिया था।" साहब ने बिड़ला हाउस में उपस्थित रहने के गर्व से कहा।

"ठीक है। एक धक्का तो गांधी जी को लग चुका है" रावत ने पाइप से दो कश खींच कर कहा, "तीन बजे गांधी जी ने प्यारेलाल को जाहिद-हुसेन के यहां बात-चीत करने के लिये भेजा था कि अब तो पाकिस्तान सरकार गांधी जी के पाकिस्तान जाने पर आपत्ति नहीं करेगी, उन का स्वागत कर सकेगी ! जानते हैं, क्या उत्तर मिला ?"

"क्या ? क्या ? बताइये, बताइये ?" सब ने आग्रह किया।

"पाकिस्तान के हाई कमिश्नर ने उत्तर दिया—नहीं, इतनी जल्दी नहीं। जरा लाहौर से बातचीत कर लूं। विश्वास रखिये, निमंत्रण क्या इजाजत भी नहीं मिलेगी।" रावत ने गिलास उठा कर अंतिम घूंट ले लिया और पाइप से कश खींचने लगा। मानो उस ने कुछ कहने के लिये नहीं छोड़ा।

तारा साहब का संकेत पाकर फिर सब को ह्विस्की दे रही थी। वह श्यामा का छोटा गिलास लाल बोतल से भरने के लिये झुकी तो श्यामा ने टोक दिया—"भई यह मीठा-मीठा नहीं अच्छा लगता।" उस ने रावत और साहब की ओर देखा, "अगर मर्द लोग चुनौती न समझें तो तुम हमें छोटी ह्विस्की दे दो।"

"ब्रावो ! ब्रावो ! जरूर ! जरूर !" रावत और सूर्या ने समर्थन किया।

श्यामा रावत की ओर देख कर बोली—"लेकिन गांधी जी ने मानवता के सामने कितना बड़ा आदर्श रखा है। आप इस का अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव देखिये!"

"दस इज ए ग्रेट हिस्टोरिकल इवेंट" (यह महान ऐतिहासिक घटना है) डे ने श्यामा का समर्थन किया।

"दिस इज ए हिस्टोरिकल ब्लंडर" (यह ऐतिहासिक भूल है) रावत सोफे पर सीधे हो कर बोले, "सरकार की ऐतिहासिक कमजोरी। आप इस घटना

को व्यवहारिक दृष्टिकोण से देखिये। गांधी जी महापुरुष है, यह मैं मानता हूँ। महापुरुष का अनुकरण करना सभी उचित मानते है। सरकार के किसी भी निर्णय से लोगों को असंतोष होगा तो लोग अनशन करके बैठ जाया करेंगे। बहुत से लोग अनशन में प्राण भी दे देंगे।"

"वाह, अनशन कोई मजाक है। इतने तप के लिए मनुष्य में आध्यात्मिक बल होना चाहिए।" श्यामा ने विरोध किया।

रावत ने इंकार का संकेत किया—"मैं अनशन को आध्यात्मिक शक्ति या बल नहीं मानता। यह केवल दृढ़ निश्चय और सहनशक्ति की बात है। कई लोगों ने गांधी जी से अधिक लम्बे-लम्बे अनशन किये हैं। क्या नाम था उस आयरिश का; हां मैक्सविनी······।"

"सर! ···ओ, आई एम सारी, एक्सक्यूज मी" डे ने अपने सीनियर की बात टोक देने के लिए क्षमा मांगी।

"नहीं नही, कहो। तुम कहो!" रावत ने कहा.

"सर, आप को याद है, मैं यू० पी० के जेल डिपार्टमेंट में अंडर-सेक्रेटरी था। मुझे नाम याद नहीं आ रहा है, उस समय काकोरी कान्सपिरेसी केस के टेररिस्ट कहिये या रेवोल्यूशनरी जवान जेल मे थे। गवर्नमेंट उन्हें पालिटिकल कैदियों के अधिकार और 'बी' क्लास नही देना चाहती थी। उन लोगों ने पचास दिन, साठ दिन और एक ने तो सौ से अधिक दिन तक अनशन किया।"

"क्या कह रहे है आप?" श्यामा ने विस्मय प्रकट किया, "पचास, साठ, सौ दिन अनशन? आदमी जिंदा रह सकता है?"

"निश्चय! और यह रिपोर्ट उन के प्रशंसकों की नही, उन के विरोधियों की है। भई गजब के लोग थे। उन का मामला मेरे ही हाथ में था। मेरे पास जेल से गुप्त सूचनाये आती रहती थी। तीन-चार सप्ताह तो वे लोग बिलकुल भोजन के बिना, केवल जल पर रह जाते थे। पानी में नमक, सोडा, नींबू कुछ नहीं। उन लोगों के चारों ओर प्रशंसक, साहस बढ़ाने वाले और सहानुभूति रखने वाले लोग सेवा-सहायता के लिये नही रहते थे। उन का अनशन तुड़वाने के लिये उन्हें मानसिक और शारीरिक यातनायें दी जाती थीं। बाकायदा उन का वजन लिया जाता था। उन का तीस, चालीस, पचास पौंड तक वजन घट जाता था। कुछ तो अपना वजन घटाकर सरकार को परेशान करने के लिये जल पीना भी छोड़ देते थे। गवर्नमेंट उन्हें मरने भी नहीं दे सकती थी। उस हालत में उन्हें फोर्सीब्ली फीड (जबरदस्ती भोजन देना) किया जाता था। वह काम बहुत यंत्रणाजनक और खतरनाक भी होता था।

यह काम जेल के अधिकारी सरकार से मंजूरी लेकर ही करते थे। उनके हाथ-पांव बांध कर नाक के रास्ते भोजन दिया जाता था......"

मिसेज अगरवाला सिहर उठीं।

डे कहता गया—"खयाल कीजिये, बीस-तीस दिन अनशन कर चुकने के बाद आदमी की क्या हालत होगी! रबड़ की नाली उनके मुंह से भीतर डाली जाती थी तो नाली को वे दांत से काट देते थे, जान चली जाने की कोई फिक्र नहीं थी उन्हें इसीलिये नाली उन के नाक के रास्ते डाली जाती थी। उस नाली से दूध, विटामिन वगैरह पेट में पहुंचा दिये जाते थे। एकाध के तो फेफड़ों में दूध चला गया और मर गया। एक बार दूध दे दिया, फिर सप्ताह भर भूख की ज्वाला में छोड़ दिया कि भूख की यातना से स्वयं दूध पीने लगें पर साहब, नहीं मानते थे वे लोग! दो-तीन ने तो जल पीना ही छोड़ दिया था। उन्हें जल भी रबड़ की नाली से नाक के रास्ते ही दिया जाता था। गजब के लोग थे। अपनी शर्तें पूरी करवा के माने।"

डे के उस दारुण वर्णन से कमरे में स्तब्धता छा गयी थी। उस प्रभाव से श्यामा ने राखदानी पर रख दिया, धुआं छोड़ता अपना सिगरेट फिर नहीं उठाया। उसने डे को उत्तर दिया—"उन रेवोल्यूशनरियों में भी आध्यात्मिक शक्ति थी। भगतसिंह को तो हम सब लोग बहुत मानते है। हम कब कहते हैं, उन में यह शक्ति नहीं थी पर सर्व-साधारण तो ऐसा नहीं कर सकते?"

"सुनिये!" रावत ने हाथ उठा दिया, "गांधी जी तो क्रान्तिकारियों को हिंसक कहते थे। गांधी जी के अनुसार हिंसकों में आध्यात्मिक बल कैसा? और यदि उन में भी आध्यात्मिक बल था तो गांधी जी के अनशन में कोई विशेषता नहीं रह जाती। इस समय तो सरकार गांधी जी की बात रखना चाहती थी परन्तु यदि शरणार्थियों को चुप न करा कर उन्हें भड़का दिया जाता और एक हजार शरणार्थी, भारत की रक्षा के लिये गांधी जी के विरुद्ध बिड़ला-हाउस को घेर कर अनशन करके बैठ जाते तो? या सुनिये, गांधी जी अहिंसा की मान्यता के लिये काश्मीर से भारतीय सेनाओं को लौटा लेने के लिये अनशन-कर लें तो......"

"प्लीज, ऐसी बात न कहिये।" श्यामा ने हाथ जोड़ दिये।

तारा तर्क और विवाद की उत्तेजना अनुभव कर रही थी। रावत की ओर देख कर कुछ संकोच से बोल पड़ी—"क्षमा कीजिये, मैं एक बात पूछ सकती हूं?

"अवश्य।"

"आप का विचार है कि सरकारी निर्णय के विरोध में, गांधी जी के अनशन की सफलता का उदाहरण लोगों को उसी ढंग से शासन का विरोध करने के लिये उत्साहित कर सकता है। इस से शासन के सामने कठिनाइयां आयेंगी।"

"जरूर, मेरा ऐसा खयाल है" रावत ने स्वीकार किया, "मज़दूर, किसान विद्यार्थी, क्लर्क, किसी भी मांग के लिये अनशन करके बैठ जा सकते है।"

"जी, ऐसा सम्भव है" तारा ने भी स्वीकार किया, "परन्तु क्या सरकार का विरोध बम, बंदूक, तलवार या दंगे से किया जाने की अपेक्षा शांति पूर्वक अनशन से किया जाना स्वयं सरकार के लिये भी अच्छा नही है ? कम से कम यह हिंसा और उत्पात का मार्ग नहीं होगा। इस में तर्क के लिये, विचार के लिये अवसर रहेगा।"

"हां जरूर, सही बात है।" श्यामा ने बहुत उत्साह से समर्थन किया।

रावत ने पल भर तारा की ओर देख कर कहा—"मिस तारा, तुम्हें बच्चों की देख-रेख मे उलझाये रखना तुम्हारे सामर्थ्य का अपव्यय है। तुम गांधी जी की प्राइवेट सेक्रेटरी बन जाओ या किसी पत्र के संपादकीय विभाग में चली जाओ।"

"सर, मै तो कुछ भी नही जानती। किसी योग्य नही हूँ।" तारा ने लजा कर अपनी धृष्टता के लिये क्षमा मांग ली।

"पर मिस तारा, मै उत्तर अवश्य दूंगा" रावत बोले, "आप यह बताइये, अनशन को आप तर्क कह सकती हे ? खैर, गांधी जी तो वास्तव मे महात्मा है लेकिन महात्माओं के अनुकरण का पाखंड भी बहुत किया जाता है। एक महात्मा के पीछे हजार पाखंडी होते है। भगतसिंह या रेवोल्यूशनरियों का अनुकरण पाखंड से नही किया जा सकता। वहां तो जान की बाजी ही सब कुछ होती है।"

"सर, यू आर परफैक्टली राइट।" डे ने जोर से समर्थन किया।

अगरवाला साहब रावत को और पेग देने के लिये कैबिनेट की ओर बढ़े। रावत ने इंकार में गिलास को हाथ से ढक लिया।

"तो फिर डिनर ?" साहब ने पूछा।

"मै अभी एक मिनट में लगवा देती हूं" मिसेज अगरवाला उठ खड़ी हुयीं, "तारा जरा आओ न !"

मिसेज अगरवाला बड़े डाईनिंग रूम मे जुगुल, शिवनी और तारा की सहायता से खाना लगवाने लगीं। वे स्वयं मांस नही छूती थी। तारा से कह दिया कि प्लेटों में रख दे। तारा को भी उन चीजों की गंध अरुचिकर लग

रही थी। वह भी हाथ न लगाकर कांटे, चम्मच से खाती जा रही थी।

भोजन के समय मिस्टर डे ने और साहब ने नरोत्तम को याद किया।

जुगुल ने बताया छोटे साहब नौ बजे खाकर सिनेमा गये हैं। रावत और श्यामा के आग्रह से तारा को भी खाने में साथ बैठना पड़ा। डे और रावत ने साहब से नरोत्तम के विषय में बात की।

अगरवाला साहब ने बताया—नरोत्तम अपने काम में रुचि लेने की अपेक्षा सर्विस ही करना चाहता है।

डे ने सुनाया—"सर्विस करना चाहता है तो तनखाह उसे टाटा या दूसरी फर्मों में ज्यादा मिल सकती है पर उसे तनखाह की अपेक्षा शायद कुछ कर सकने में ही ज्यादा रुचि है। लड़का आइडियलिस्ट (आदर्शवादी) है।"

अगरवाला साहब ने स्वीकार किया—"हां यही बात है।"

तारा को विस्मय हो रहा था; जिन वस्तुओं की गंध उसे अरुचिकर लग रही थी; श्यामा, मिसेज सूर्या और दूसरे लोग उन्हीं चीजों को सराहना और चाव से खा रहे थे। केवल वह और मिसेज अगरवाला ही मांस नहीं खा रही थीं।

भोजन के बाद साहब और मिसेज अगरवाला अतिथियों को ड्योढ़ी में खड़ी गाड़ियों तक पहुंचाने जा रहे थे। श्यामा तारा को कोहनी से पकड़े बात करती चल रही थी—"अब तो मिला करोगी न! मिसेज अगरवाला कह रही हैं, तुम्हें काफी समय रहता है। सोशल काम में इन्टरेस्ट लो। तुम नहीं करोगी तो कौन करेगा.......।"

"मिस तारा!"

तारा ने घूम कर देखा। रावत साहब की गाड़ी का दरवाजा खुला हुआ था। रावत साहब विदाई के लिये उस की ओर हाथ बढ़ाये थे। तारा ने हाथ मिला कर रावत ने कहा—"गुडनाइट, मिसेज और मिस्टर अगरवाला के साथ आप भी जरूर आइयेगा।"

तारा ने हाथ मिला लेने के बाद भी, अभ्यास के कारण हाथ जोड़ कर नमस्कार कर दिया।

बच्चों को नौ बजे जरूर सुला देने के नियम के कारण तारा को भी साधारणतः उस समय अवकाश हो जाता था। वह अपने कमरे में साढ़े दस-ग्यारह तक कोई पत्रिका या पुस्तक पढ़ती रहती थी। साढ़े ग्यारह बज गये थे परन्तु तारा को अभी नींद नहीं मालूम हो रही थी। लेट कर उसने एक पत्रिका खोल ली। ध्यान पत्रिका में न रम कर बड़े लोगों के आचार व्यवहार की ओर ही जा रहा था, साधारण लोगों में जो कुछ इतना बुरा समझा जाता

है, उसे यह लोग अपराध, लज्जा और भय की भावना के विना निःसंकोच करते हैं। शराव पीकर लज्जित नहीं होते, वेहोशी में बकते या गिरते पड़ते भी नहीं। दूसरे ही ढंग के लोग हैं। शराब पीकर राजनीति और सामाजिक समस्याओं पर तर्क करते है। शायद इन के लिये वे दुष्कर्म इतने भयंकर भी नही रह जाते। अपराध तो गरीबी और साधनहीनता ही है।

मिसेज अगरवाला को मेरा ऊपर रह जाना अच्छा नही लगा। मै क्या करती; फंस ही गयी थी। मेरा बोलना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था। उस समय वात मुंह से निकल ही गयी।

१९ जनवरी। छ. दिन की उत्तेजना और अव्यवस्था के पश्चात सोमवार प्रातः से सब काम यथावत होने लगे थे। तारा बच्चों को स्कूल भेज कर अखवार लेने जा रही थी। तारा का मन कुछ खिन्न था। सुबह-सुबह मालकिन ने कुछ ऊटपटांग वक दिया था। लाल्ली की किताव नहीं मिल रही थी। शिवनी और तारा पुस्तक ढूंढ नहीं पायी। लाल्ली को पुस्तक के बिना ही स्कूल जाना पड़ा। मालकिन को पता लग गया था। बोल पड़ी थीं—"बच्चों की फिक्र के लिये इन्हें फुर्सत कहां है। ज़बान चलाने से सर जाये तो हाथ क्यों हिलाये। लोगों में वैठकर बहस करना जानती है।"

तारा को वहुत बुरा लगा। वह संध्या ही बच्चों के वस्ते ठीक करके रख देती थी। पिछली रात समय ही न मिला था। उसे खिन्नता थी, रात मुझे स्वयं दूसरे झगड़ों में उलझा दिया। वह तो मेरा काम नही था। अब ताने दे रही है। नौकर रखा है, तनखाह देती है तो डांटने का चाव पूरा नही करेंगी? अपना कोई दोष न समझ कर तारा ने अखवार उठा लिया था। खूब सर्दी थी। वह बायीं ओर के वरामदे मे चढ़ती धूप की पहली किरणों में खड़ी-खड़ी अखवार देख रही थी।

"गुडमार्निंग।"

तारा ने नरोत्तम का स्वर पहचान कर अखवार से आंख उठाई। मालकिन की कड़वी वात के प्रभाव के कारण मुस्करा न सकी। गुडमार्निंग का उत्तर दे दिया।

नरोत्तम ने ऊनी ड्रेसिंग गाउन की जेवों में हाथ धंसाते हुये पूछा—"कैसी तबियत है?"

"ठीक है।"

"कल संध्या क्या इन लोगों ने तुम्हें परेशान किया?"

"क्या मतलब?" तारा के माथे पर वल पड़ गये।

"जबर्दस्ती ऊपर रोक लिया और शायद ड्रिंक लेने के लिये विवश किया।" नरोत्तम ने अपने पिता के प्रति क्रोध से पूछा।

"कौन कहता है ?" तारा ने अपने अपमान की अफवाह का विरोध किया, "किसने कहा ? उन लोगों ने बैठने के लिये कहा और साहब ने भी कहा तो मैं रुक गयी। जबर्दस्ती की कोई बात नहीं थी।"

"आपको विवश नहीं किया ?" नरोत्तम के स्वर की ऊष्णता उड़ गई।

"क्या मतलब है विवश करने का ? किस बात के लिये ? उन लोगों ने कहा यहाँ हीं बैठो, खास कर डाक्टर श्यामा ने और साहब ने, मैं बैठ गयी। उन लोगों ने ड्रिंक लिये, मैंने नहीं लिया। बस यही बात थी।"

"हूँ, मैंने गलत समझा इसलिये बुरा लगा। अम्मा जी कह रही थीं, वह तो ऐसी नहीं लगती। उसे जबर्दस्ती पिला दी होगी इसीलिये पूछा था। मुआफ करना, बुरा न मानना।"

तारा को नरोत्तम की अपने प्रति चिंता के कारण उस के क्रोध से सांत्वना अनुभव हुई। बोली—"सब बकवास है। वे लोग जरूर पी रहे थे लेकिन बात-चीत बहुत ढंग से कर रहे थे। आप क्यों नहीं आये ? रावत साहब ने गांधी जी के फास्ट के सम्बन्ध में कई इंटरेस्टिंग बातें बतायीं। डिनर पर आपके लिये भी पूछ रहे थे।"

"हां, मैं नौ बजे आया था। बीच में जाना अच्छा नहीं लगा। एक मित्र से सिनेमा में मिलने के लिये भी कह आया था। मम्मी सुबह किस बात पर बड़बड़ा रही थीं ·······?"

"जाने दीजिये। वे तो ऐसे ही कुछ न कुछ कह देती हैं।"

"इस घर का वातावरण और यह काम आप के लिये ठीक नहीं है।"

"हूँ"

"रावत चाहे तो आप को कोई अच्छा काम, सरकारी नौकरी दिलवा सकता है। होम का सैक्रेटरी है। दमदार आदमी है। गलत न समझना मुझे, आशिक मिजाज भी काफी मशहूर है।"

"पर मैं उन से स्वयं कैसे कह सकती हूँ। मम्मी और साहब क्या कहेंगे ?"

"मौका लगे तो कहिये। फादर भी तो अपने मतलब से ही उस की और सूर्या की खुशामद करते हैं। या डाक्टर श्यामा से कहला दीजिये। मिस्टर डे भी था न ?"

"क्यों क्या बात है ?"

"डाक्टर श्यामा होंगी तो वह जरूर होगा।"

"यू आर नाटी।"

"सब चलता है। फादर कह रहे थे, रावत ने मुझे मिलने के लिये बुलाया है। जाना तो पड़ेगा ही। यदि प्रसंग बना तो मैं भी बात कर सकता हूँ।"

"यू आर सो गुड !"

"नाटी भी और गुड भी ?" नरोत्तम के माथे पर बल पड़ गये।

"मौके-मौके से।"

"जरा व्याख्या कर दो न !"

"फिर बात ही क्या रह जायगी ?"

नरोत्तम को रावत साहब ने २० जनवरी मंगलवार, संध्या साढ़े पांच बजे आने के लिए कहा था। नरोत्तम बिलियर्ड बहुत अच्छा खेलता था। रावत ने कहा था, चेम्सफोर्ड क्लब चल कर एक दो गेम खेलेंगे। नरोत्तम ने ठीक साढ़े पांच बजे रावत के बंगले पर फोन कर पूछा—साहब लौट आये हैं। अर्दली ने उत्तर दिया—"बस अभी गाड़ी से उतरे हैं।"

नरोत्तम रावत साहब के यहाँ जाने के लिये चला तो तारा भी लाल्लो, पुत्तन को इंडियागेट की ओर घुमाने के लिये निकल रही थी। नरोत्तम ने उसे देख कर कहा—"रावत साहब की ओर जा रहा हूँ। प्रसंग लगा तो तुम्हारे बारे में बात करूंगा। आज मौका है, वर्ना तो शायद ही वे कभी सात साढ़े सात से पहले सैक्रेटेरियेट से लौटते होंगे। जब मिनिस्टर रात-रात भर जाग रहे है तो सैक्रेटेरियों को कहाँ आराम ! आज पटेल साहब किसी कारण जल्दी चले गये होंगे तो रावत भी उठ आये। आठ बजे तक लौटूंगा।"

तारा सात बजे बच्चों को लेकर लौटी तो मिसेज अगरवाला फोन पर किसी से बात कर रही थीं। फोन रखते-रखते मिसेज अगरवाला बोल उठीं—"सत्यानास होये इन पंजाबियों का। जालिम जाने क्या करके रहेंगे ? महात्मा जी पर बम फेंक दिया है।"

तारा उन की ओर देखती रह गयी। मालकिन ने बहुत क्षोभ से बता दिया—"महात्मा जी की प्रार्थना में किसी पंजाबी ने बम फेंक दिया है। एक पूरी दीवार गिर गयी है। महात्मा जी का बाल बांका नहीं हुआ। उन्हें भगवान बचाने वाला है। उन का कोई क्या बिगाड़ सकता है।"

नरोत्तम साढ़े आठ बजे आया। उस ने डाइनिंग रूम में पूरी बात साहब को सुनायी। तारा दरवाजे की आड़ में खड़ी सुन रही थी। नरोत्तम रावत साहब के बंगले पर पहुँचा तो पता लगा कि साहब उसी समय फिर चले गये थे। वह क्लब चला गया था। वहाँ पता चला, प्रार्थना के समय विस्फोट हुआ

था। बम गांधी जी के आसन से काफी दूर, लगभग पचहत्तर फुट दूर गिरा था। सिर्फ एक दीवार की जाली उड़ गयी है। ख़याल है, तीन आदमी थे। दो भाग गये, एक पकड़ा गया है। फ्रंटियर का पंजाबी है, मदनलाल पाहवा। गांधी जी बिलकुल शांत रहे। लोगों की घबराहट पर हँस दिये।"

दूसरे दिन पत्रों में चित्रों सहित पूरा विवरण था। मदनलाल के बारे में समाचार था कि वह दिल्ली की किसी मसजिद में शरण लिये था। उसे मसजिद से निकाल दिया गया था। पुलिस को घटना के पीछे षड्यन्त्र-कारियों का काफी बड़ा संगठन होने का सन्देह था। पुलिस फिलहाल तथ्यों को प्रकट कर देना उचित नहीं समझती थी।

उस संध्या कोठी पर बातचीत की ध्वनि बदली हुयी थी—" शरणार्थियों के साथ जुल्म तो हो ही रहा है।

शान्ति के प्रयत्नों का तूफान धीरे-धीरे शान्त हो गया। शान्ति के प्रयत्नों का उद्देश्य, गांधी जी का अनशन समाप्त करा देना, पूरा हो गया था। लोग अपनी व्यस्तताओं में डूब गये थे।

कोठी पर दिन में बहुत से फेरी वाले आते रहते थे। गठरियों में बजाजी लिये, खेस, दरियाँ या कम्बल बेचने वाले, कभी खजूर के पत्तों और तिनकों की टोकरियाँ, छींके बेचने वाली स्त्रियाँ, कभी बटन-सुई फीता-लेस बेचने वाले लड़के। पत्रिकायें-पुस्तकें, फाउन्टेनपेन की स्याही, चेहरे का क्रीम-पाउडर, चप्पल-सैंडल बेचने वाले लोग। फेरी वाले प्रायः पंजाबी शरणार्थी होते थे।

मिसेज अगरवाला कौतूहल में फेरी वालों को बुला कर चीजों पर नज़र डाल लेतीं और फिर कह देतीं—"अरे सब नकली माल है। हम ने दो बार लेकर धोखा खाया है। बड़े जालिये हैं।"

शरणार्थी फेरी वालों को देख कर तारा को अपने परिवार की याद आ जाती। चाहे जो हो, भोजन-वस्त्र से तारा इतनी समृद्ध पहले कभी नहीं रही थी। २२ जनवरी को मालकिन ने उसे महीने के पचहत्तर रुपये और थमा दिये थे। तारा के पास पहले के भी अड़तीस रुपये पड़े थे। उस ने झिझकते हुये कहा—"बहिन जी, मेरे पास हैं, यह मुझे क्या करने हैं। चाहे कोट में काट लीजिये।"

"वाह, वह कोट छिहत्तर का होगा ? ऐसी ही तुम नादान हो। डॉली का तो एक सौ दस का बना है। हम क्या जानें, हमें किस ने बताया है कि कितने का है ?"

तारा ने बहुत दृढ़ निश्चय से नरोत्तम को कोट के दाम दे देने चाहे।

उसे मालूम था कि कोट छियानवे रुपये का था ।

नरोत्तम ने रूठ कर उत्तर दिया—"आप के मन में जाने क्या परायापन है । मैं तो आप से निःसंकोच जरूरत पर माँग लेता हूं । उस दिन कनाट प्लेस में साढ़े तीन रुपये सिगरेट के लिये नहीं लिये थे ?"

"मैं अपने साढ़े तीन काट लूंगी" तारा ने रूखेपन से कहा ।

"मैं तो नहीं दूंगा । न उधार कह कर लिये थे । कोट डैडी के कहने से खरीदा गया था । आप उन से बात कर लें ।" नरोत्तम ने और बात सुनने से इन्कार कर दिया ।

तारा सोचती—शायद माता-पिता, भाई-बहिनें अभी तक किसी कैम्प में पड़े होंगे । मां कितनी विवश परन्तु ममताभरी थी । पिता जी भी हृदय के कितने अच्छे परन्तु गरीबी से कितने दबे हुये थे । इस हालत म उन पर जाने कैसी बीत रही होगी । विवशता में ही उन्हें अपना बोझ उतारने के लिये मुझे हाथ-पाँव बाँध कर सौंप देना पड़ा कि वे समाज की दृष्टि में न गिर जायें । तारा अपने प्रति अन्याय के लिये माता-पिता को क्षमा कर देने के लिये तैयार थी परन्तु भाई को नहीं ।····भाई तो उदार और प्रगतिवादी होने का दम भरते थे । अपना विवाह जात-पाँत तोड़ कर करना चाहते थे ।········मुझे आश्वासन देकर धोखा दिया ।

तारा सोचती—यदि वह रेडियो के माध्यम से या और उपायों से पता लेना चाहे तो क्या परिवार का पता नहीं लगा सकती ? पहले गोपालशाह के परिवार का पता कर ले । साहब उन्हें नाम से जानते है तो जरूर उन का पता कर सकते हैं । परिवार के साथ रहने के लिये वह नही जायेगी । पर पास व्यर्थ में पड़ा सौ रुपया तो उन की सहायता के लिये उन्हें भेज सकेगी ।··ससुराल वाले जाने कहाँ होंगे । घर में आग लग गयी थी पर वे लोग तो बच ही गये होंगे । यदि माता-पिता ने मेरा फिर ससुराल जाना ही धर्म समझ लिया तो ? ऐसी बातें सोचने से तारा के मन पर भारी बोझ पड़ा । उस ने गहरी सांस लेकर निश्चय कर लिया, इन चिंताओं से क्या लाभ ?

३० जनवरी संध्या पाँच बजे, पड़ोसी दुग्गल साहब की छोटी लड़की शुचि के जन्म दिन की पार्टी थी । लाल्ली और पुत्तन को मालकिन के साथ वहाँ जाना था । ३१ जनवरी शनिवार को रावत साहब ने साहब, मिसेज अगरवाला और नरोत्तम को चेम्सफोर्ड क्लब में डिनर के लिये बुलाया था और तारा को लाने के लिये भी विशेष रूप से अनुरोध कर दिया था ।

तारा ने नरोत्तम से बात की--"मैं तो कभी किसी क्लब में नहीं गयी। झिझक मालूम होती है। मेरी चप्पल भी टूट गयी है। बच्चे दुग्गल साहब के यहाँ जायेंगे। एक जोड़ा सेंडल ले लूं। चलो कनाट प्लेस से ले आवें।"

सवा पांच बजे कनाट प्लेस में पहुंच कर नरोत्तम ने कहा--"पहले हमें 'ब्लूनाइल' में काफी पिलवा दो। तुम्हारा सैंडल बाद में देखा जायगा।"

नरोतम और तारा अभी काफी खत्म नहीं कर पाये थे, उन्हों ने रेस्तरां में कुछ सनसनी सी अनुभव की। लोग सहसा उठने लगे थे।"

"बात क्या है ?" नरोत्तम ने विस्मय प्रकट किया।

रेस्तरां का प्रबन्धक उन की ओर बढ़ आया--"क्षमा कीजिये, रेस्तरां बंद करना पड़ रहा है। बिड़ला भवन में महात्मा जी की हत्या हो गयी है।"

तारा और नरोत्तम धक्क से रह गये। हाथ में लिये प्याले नीचे रख दिये। मौन रेस्तरां से बाहर आ गये। दुकानें जल्दी-जल्दी बन्द हो रही थीं। लोग जगह-जगह खड़े बातें कर रहे थे। सशस्त्र पुलिस से भरी लारियां घूम रही थीं। नरोत्तम और तारा रेडियो पर समाचार सुनने के लिये तुरन्त कोठी पर लौट आये।

नरोत्तम में अपना रेडियो लगाने के लिये ऊपर जाने तक का धैर्य न था। उसने ड्राइंग रूम में रेडिया पर दिल्ली शार्ट वेव लगा लिया। रेडियो में गीता का पाठ सुनाई दिया। स्वर में गम्भीर अवसाद था। दो मिनट बाद सुना:--

"आज संध्या सवा पांच से कुछ पूर्व, जिस समय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी बिड़ला भवन में प्रार्थना-स्थल की ओर जा रहे थे, एक हिन्दू युवक ने पिस्तौल से तीन गोलियां चलाकर गांधी जी की हत्या कर दी है। महात्मा जी का देहान्त गोलियां लगते ही हो गया। अंतिम समय उन्होंने 'राम-राम' उच्चारण किया। गांधी जी को गोली लगने के समय, लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज की एक ग्रेजुएट युवती प्रार्थना में उपस्थित थी। युवती ने तुरन्त गांधी जी को संभाला। कुछ ही मिनट में डाक्टर भार्गव और डाक्टर जीवराज मेहता ने पहुंच कर उन की परीक्षा की। गांधी जी का शरीर निर्जीव हो चुका था। इस समय भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन, प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, गृहमंत्री सर्दार वल्लभ भाई पटेल, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, मौलाना अबुलकलाम आजाद बिड़ला-भवन में पहुंच चुके है।

"........ सरकार की ओर से जनता से प्रार्थना है कि वे बिड़ला-भवन की ओर आने का कष्ट न करे। बहुत भीड़ के कारण प्रबन्ध में कठिनाई बढ़ने की सम्भावना है। इस विषय में अन्य समाचार कुछ समय पश्चात फिर सुनाये जायेंगे।"

मिसेज अगरवाला ने दुग्गल साहब के यहाँ ही समाचार सुन लिया था। बच्चो को वही छोड़ कर आ गयी थी। उन्हो ने खद्दर की साडी पहन ली थी। बिडला भवन जाने के लिये तैयार थी परन्तु साहब की ओर से कोई समाचार नही मिला था। कुछ ही मिनट बाद अखबार वाले साइकिलो पर विशेषांक बेचते हुये आने लगे।

तारा ने बच्चो को खाना दे दिया। स्वय उस ने नही खाया।

अगरवाला साहब पौने आठ बजे आये। मिसेज अगरवाला रो पड़ी। साहब उन्हें लेकर तुरन्त बिड़ला-भवन चले गये।

प्रात. आठ बजे रेडियो पर सूचना दी गयी। गाधी जी की मृत्यु की घटना को सुना कर उन की अन्तिम यात्रा और सस्कार का कार्यक्रम बताया गया।

सरकारी आदेश के अनुसार राष्ट्र-पिता की मृत्यु के शोक और उन के सम्मान मे सब सरकारी इमारतो पर झण्डे झुका दिये गये है। सरकारी आदेश से तीन दिन तक सब सरकारी दफ्तर और देश भर के बाजार बन्द रहेगे। ११ बज कर १२ मिनट पर गाधी जी के अन्तिम दर्शनो के लिये उनका शरीर बिड़ला-भवन की बाल्कनी पर दस मिनट तक रखा जायगा। ११ बज कर ३० मिनट पर बिड़ला-भवन से राष्ट्र-पिता के शरीर की अन्तिम यात्रा आरम्भ होगी। सस्कार यमुना के तट पर राजघाट पर किया जायेगा।

राष्ट्रपिता के शरीर के प्रति पूर्ण राजकीय और राष्ट्रीय-सम्मान अर्पित किया जायेगा। इस यात्रा का प्रबन्ध दिल्ली क्षेत्र के प्रमुख सेनापति, सैनिक व्यवस्था द्वारा करेगे। विमान को तोपों की बड़ी गाडी पर बनाये गये ऊचे मच पर रखा जायेगा। विमान के आगे और पीछे घुडसवार सैनिको के रिसाले, चार हजार सैनिक, एक सौ नाविक सैनिक, एक सौ वायु सैनिक रहेगे।

गाधी जी की अर्थी की यात्रा का, राजघाट पहुचने के लिये निश्चित किया गया मार्ग बता कर निवेदन किया गया कि जनता बिडला-भवन की ओर आने का कष्ट न करे। जनता यात्रा के मार्ग पर सैनिको और विमान की गाडी के लिये स्थान छोड कर खडी रहे और सडक के किनारे से राष्ट्र-पिता के अन्तिम दर्शन करे। सरकार सब लोगो को अन्तिम दर्शन का अवसर दे सकने का प्रबन्ध कर रही है।

मिसेज अगरवाला ने ध्यान से सूचना सुनी। तारा को बताया कि वे साहब के साथ ९ बजे ही बिड़ला-भवन चली जायेगी। वहाँ से राजघाट चली जायेगी। बहुत बड़ा जलूस निकलेगा। जलूस इन्डिया गेट से होकर जायगा। बच्चों को वोहरा साहब की कोठी की छत से जुलूस दिखा देना।

हम उन के यहाँ फोन किये देती हैं।" उन्हों ने नन्दलाल को प्रातः ही हार ले आने के लिये भेज दिया था। फिर उन्हों ने शिवनी को बुला कर कहा, "मां जी को कह कर हमारे और साहब के नाश्ते के लिये परौंठे बनवा दो। हम दोपहर में खाने के लिये नहीं आयेंगे।"

रेडियो पर लगातार शोक की धुन बज रही थी। कुछ-कुछ समय बाद गीता, कुरानशरीफ, बाइबिल, ग्रन्थ साहब और 'जिन्दअवस्था' से पाठ हो रहा था। गांधी जी की अन्तिम यात्रा के सम्बन्ध में सूचनायें दी जा रही थीं।

रेडियो की सूचना के अनुसार गांधी जी के विमान के इन्डिया गेट पर पहुंचने का समय १२ बज कर ३० मिनट था परन्तु नरोत्तम दादी, तारा और बच्चों को लेकर सवा बारह से पहले ही इन्डिया गेट के समीप, अकबर रोड के चौराहे पर, बोहरा जी की कोठी पर पहुंच गया था। शिवनी लाल्ली को गोद में लेकर साथ हो ली थी।

बोहरा जी की दोमंजिली कोठी की छत पर पास-पड़ोस से लगभग सौ-सवा सौ स्त्री-पुरुष जमा हो गये थे। इंडिया गेट की ओर और दायें-बायें जहां तक दृष्टि जाती, भूमि पर नर मुंड छाये हुए थे। दोमंजिली छत की ऊँचाई से सड़क, नरमुंडों की धरती पर बहती काली नहर सी लग रही थी। लोग सड़क किनारे के मकानों की छतों पर भरे हुये थे। सड़क किनारे के वृक्षों की टहनियों पर, बिजली और टेलीफोन के खम्भों पर, जहाँ कहीं भी बंदरों अथवा पक्षियों के लिये स्थान हो सकता था, अपना शरीर तोले बैठे थे।

घुड़सवारों की पंक्तियां आने लगीं। उन के नेज़ों पर शोक सूचक सफेद झंडियां थीं। वे शोक में नेज़ों को झुकाये हुये थे। उन के पीछे राइफलों की नालियां झुकाये, कदम मिला कर बहुत धीमी चाल से चलते कई हजार सैनिकों की पंक्तियां थीं। उन के पीछे दो सौ सैनिक, पचास-पचास की चार पंक्तियों में, रस्सियों से एक बहुत बड़ी तोप गाड़ी को खींचते हुए ला रहे थे। गाड़ी के ऊपर विमान के रूप में बहुत ऊंचा मंच बना हुआ था। मंच पर गांधी जी का शव रक्खा हुआ था। शरीर फूलों से ढंका था। केवल चेहरा-मात्र दिखायी दे रहा था।

मिस बोहरा बाइनाक्युलर लेकर बैठी थीं। वे खूब स्पष्ट देख कर बताती जा रही थीं—"गांधी जी के शरीर के साथ उन के पुत्र और चरणों के समीप सरदार पटेल बैठे हैं। नेहरू जी, मौलाना आजाद, बलदेवसिंह, राजेन्द्र बाबू मंच के साथ गाड़ी पर खड़े हैं।"

विमान के पीछे भी राइफलें झुकाये हजारों सैनिकों की पंक्तियां थीं। उस के पश्चात चार-चार मोटरों की अटूट पंक्तियां। मिस वोहरा ने बाइनाक्युलर नरोत्तम को दे दिया। नरोत्तम ने आधे मिनट के लिये तारा को भी देख लेने दिया। दिखायी यों भी दे रहा था पर बाइनाक्युलर से तारा नेताओं की आंखों और चेहरों पर शोक को भी स्पष्ट देख सकती थी।

"राजसी शक्ति और प्रतिष्ठा का यह प्रदर्शन गांधी जी की भावना और आदर्शों के अनुकूल नहीं है।" समीप ही से सुनाई दिया।

तारा और नरोत्तम ने घूम कर पीठ पीछे देखा। खद्दर का कुर्ता-धोती पहने एक युवक बोल रहा था। युवक का चेहरा क्षुब्ध था। युवक अपनी ओर उठ गयी आंखों की परवाह न कर कहता गया—

"दरिद्रनारायण के सेवक, भंगी कालोनी में रहना चाहने वाले, केवल एक वस्त्र पहनने वाले, शस्त्रों और सैनिक शक्ति का विरोध करने वाले गांधी जी इस प्रदर्शन की अनुमति नहीं दे सकते थे। गांधी जी को तो कैदी बना कर भी आगाखां के महल में रखा जाना पसन्द नहीं था। उन्हें तो, उन के ऊपर पहरा रखने के लिये किया जाने वाला खर्च भी देश की जनता पर अत्याचार जान पड़ता था। गांधी जी मंत्रियों को महल छोड़ कर कुटिया में रहने का उपदेश देते थे। उन की वाणी बन्द होते ही इन लोगों ने उन्हें महलों में पहुँचा दिया।"

नरोत्तम ने तारा के मन की बात कही—"यह तो हमारी भावना है। हम अपना आदर प्रकट कर रहे है। सरकार राष्ट्र की ओर से उन का आदर कर रही है।"

युवक ने कहा—"गांधी जी के विचारों के अनुसार यह उन का आदर नहीं है। यह उन के सिद्धान्तों का अपमान है। गांधी जी अपनी अनुयायी सरकार से शान और शक्ति के प्रदर्शन की नहीं, विनय और सेवा की आशा रखते थे। सरकार उस संत के बहाने अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रही है। अमीरों की सरकार ने गरीबों के गांधी जी को गरीबों से छीन लिया है।"

युवक की बात से खिन्न होकर कुछ लोगों ने मुंह फेर लिये। तारा और नरोत्तम चुपचाप सुनते रहे। युवक उन्हें सुनाता गया—

"सदा ही ऐसा हुआ है। संत अपने जीवन में गरीबों के होते है। मृत्यु के बाद अमीर उन्हें छीन लेते है। भगवान् बुद्ध भिक्षा-वृत्ति से जीवन बिताते थे। उन के निर्वाण के बाद राजा उन के प्रचारक और प्रतिनिधि बन गये। ईसा के साथ भी यही हुआ। वही इस संत के साथ हो रहा है। कल यह लोग

ताजमहल की लागत का एक गांधी स्मारक बना देंगे और गांधी जी के सिद्धांतों को उस महल की नींव में दबा देंगे जैसे बुद्ध के दांत को रख कर स्तूप बना दिये गये थे और बुद्ध के अपरिग्रह के नाम लेवा सेनायें लेकर साम्राज्य-विस्तार के लिए चढ़ाइयां करने लगे थे। गांधी, बुद्ध और ईसा की तरह अनुकरण के लिये नहीं केवल पूजा के लिये अवतार बन कर रह जायगा।"

अगरवाला साहब और मिसेज अगरवाला संध्या सवा छ: बजे के बाद कोठी पर लौटे। साहब शोक से मौन थे। मालकिन लगातार आंसू बहा रही थीं। आसपास की कोठियों से कुछ स्त्री-पुरुष राजघाट पर अंतिम संस्कार का वर्णन सुनने के लिये ड्राइंग रुम में प्रतीक्षा कर रहे थे। तारा भी एक कोने में खड़ी थी।

मिसेज अगरवाला कहने लगीं—

"मनो चन्दन था, घी के कंडाल भरे थे, नारियलों के ढेर लगे थे। लाट मांउटबेटन साहब, उन की लेडी और उनकी लड़कियाँ पंडित जी और पटेल साहब के साथ धरती पर बैठे थे। हम भी उन्हीं के साथ बैठे थे·······।"

मिसेज अगरवाला गले में आंसू भर आने के कारण कुछ क्षण रुक कर बोलीं—"महात्मा जी के तो हृदय मे भगवान था। उन्हें तो पहले ही अपने अंतिम दिन का पता लग गया था। बिड़ला भवन में सब कह रहे थे, उन्होंने सात दिन पहले कह दिया था कि हमारा सच्चा तप है तो हम खाट पर नही मरेंगे। हम बम से या बन्दूक की गोली से मरेगे।"

"कल सुबह एक जर्नलिस्ट ने उन से पूछा था—आप एक फरवरी को सेवाग्राम जा रहे हैं?

"बोले, कौन कहता है?

"जर्नलिस्ट ने कहा, अखबारों में तो छप गया है तो बोले—हां, अखबार में छपा है कि गांधी एक फरवरी को सेवाग्राम जा रहा है पर देखो कौन गांधी जाता है। उन्हों ने सेवाग्राम में तार देने को भी मना कर दिया था कि क्यों फिजूल पैसा खर्च करोगे।

"वे तो प्रार्थना के लिये जा रहे थे तब भी सब कुछ जानते थे और हँस रहे थे। उनसे लोगों ने कहा—काठियावाड़ मे दो आदमी मिलने आये हैं। बोले, बस अब हो गया। प्रार्थना मे लौटेंगे तो मिलेंगे। जानते थे कि लौटना नहीं है। लीला समाप्त हो गयी है।"

मिसेज अगरवाला फिर फफक-फफक कर रोने लगीं।

अगरवाला साहब ने रूमाल से आंसू पोंछ लिये। कई दूसरे लोग भी आँसू पोंछने लगे।

'अरे भई वे तो अवतार थे।" किसी का बोल सुनाई दिया।

अनुमोदन में अनेक दीर्घ-गहरे श्वास सुनाई दिये।

५

मनुष्य अभाव के गढ़े में पड़ा रहता है तो वह असमर्थता की दीवारों में बंदी बना रहता है। उसे सफलता पा सकने का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। मनुष्य साधनों की सीढ़ी पा जाता है तो उसकी दृष्टि अभाव के गढ़े से ऊपर उठ जाती है। उसे सफलता के राज मार्ग दिखाई देने लगते हैं, महात्वाकांक्षा के शिखरों पर चढ़ सकने की राहें भी दिखायी देने लगती हैं।

नौ-दस मास पूर्व जयदेव पुरी चार सौ रुपया मासिक वेतन पा सकने अथवा किसी पत्र का मुख्य सम्पादक होने की इच्छा, केवल गुप्त कल्पना में या स्वप्न में ही कर सकता था। ऐसी बात मुंह से कह देने से अपना परिहास कराने का भय था। पुरी अपनी योग्यता के भरोसे मन में ऐसी महात्वाकांक्षा जरूर छिपाये था परन्तु जानता था, उस स्थिति को पाने के लिये धैर्य से कई वर्षों का व्यवधान पार करना जरूरी होगा। उस समय केवल कनक ही ऐसी बात उससे कह सकी थी। कनक पुरी को क्या नहीं समझती थी? कनक ने जैसे विश्वास और उमंग से वह बात कही थी उस की स्मृति पुरी को अब भी किसी बहुत ऊंची कल्पना पर उड़ा देती थी।

पुरी ने देश के विभाजन से पूर्व महात्वाकांक्षा के दुरूह पर्वत पर चढ़ने का प्रयत्न आरम्भ किया था पर उसका पांव फिसल गया था। वह 'पैरोकार' के सहायक सम्पादक की नौकरी से बरखास्त होकर बेकारी के दैन्य के दलदल में गिर पड़ा था। पुरी उस दलदल में डूब न जाने के लिये सामर्थ्य भर हाथ-पांव चला रहा था। उस समय देश के विभाजन का राजनैतिक भूकम्प आ गया। देश की धरती दो भागों में बट जाने के लिये कांप उठी। आलीशान अट्टालिकाएं घरघराकर गिरने लगीं। अट्टालिकाओं के स्थान पर खाइयां,

ताल और दल-दल बनने लगे। पुरी जिस दलदल में फंसा हुआ था उस पर भी एक सर्वग्रासी बाढ़ का रेला आ गया। बाढ़ ने पुरी को दलदल से बहा दिया, मृत्यु के मुंह की ओर। हताश बहते-बहते उसने अनुभव किया कि उस के पांव धरती को छू रहे थे। पुरी बाढ़ में डूबी हुई चट्टान पर पांव लगने से खड़ा हो गया। वह चट्टान बाढ़ के जल से ऊपर उठने लगी। पुरी ने देखा, वह अच्छे खासे पक्के मकान की छत पर सुरक्षित हो गया था। उस मकान पर पुरी के अधिकार को चुनौती देने वाला कोई नहीं था। कोई शंका नहीं कर रहा था कि वह मकान उस का नहीं है।

पुरी चार-मास से, तन-मन से कमल प्रेस को चला रहा था। सूद जी के प्रभाव से मिलते जाने वाले सरकारी और बाजार के काम के परिणाम-स्वरूप लग-भग तीन हजार रुपये की पूंजी का बल उसे अपने रक्त में अनुभव हो रहा था। वह सोचे बिना न रह सका कि सूद जी की अनुमति से वह पूंजी का उपयोग, सूद जी का समर्थक साप्ताहिक पत्र चला लेने में कर सकता था। इस प्रकार का एक अस्पष्ट सा संकेत भी उसे मिल चुका था।

अवसरों के द्वार खुलते देखकर पुरी के मस्तिष्क में एक और भी कल्पना जाग उठी थी। विभाजन से पूर्व पंजाब-पुलिस में मुसलमानों की ही बहुतायत थी। पंजाब से सभी मुसलमान अफसर पाकिस्तान चले गये थे। पश्चिम से आने वाले हिन्दू अफसरों की संख्या आवश्यकतानुसार पर्याप्त नहीं थी और प्रबन्ध का काम बहुत बढ़ गया था। व्यवस्था को उचित रूप से चला सकने के लिये पंजाब सरकार नये अफसर नियुक्त कर रही थी। सुपरिंटेंडेंट-पुलिस और डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट पुलिस के समकक्ष डिस्ट्रिक्ट-कमांडर, डिप्टी-कमांडर आदि के नये ओहदों पर विश्वस्त लोगों को नियत किया जा रहा था। इन ओहदों के साथ पद और शासन-शक्ति के अधिकार के अतिरिक्त चार सौ और दो सौ रुपये मासिक वेतन भी था। सूद जी की सहायता से वह पद और वेतन पा लेना पुरी के लिये बहुत कठिन नहीं था।

पुरी ने संकोच से सूद जी के सामने चर्चा की, यदि उसकी तनखाह प्रेस के लिये अधिक बोझ हो तो वह सूद जी की अनुमति से डिस्ट्रिक्ट-कमांडर के पद के लिये प्रार्थना-पत्र दे दे।

सूद जी को पुरी की बात अच्छी नहीं लगी। बोले—"सुपरिन्टेंडेंट पुलिस का काम सरकार के निर्देश पूरे करना है। महत्व तो निर्देशों का है, उचित नीति का है। नौकरी का राजनैतिक महत्व क्या है? प्रेस तो एक प्रकार की राजनैतिक शक्ति है। उसे खामुखा दूसरे आदमी के हाथ में दे दें; उस में क्या

बुद्धिमता है ? प्रेस पर तुम्हारी तनखाह का क्या बोझ है ? ईसाक जाने कितना कमाता होगा। वह अपना प्रेस लेने आ भी जायगा तो दाम ही तो मांग सकता है। सेकेंडहैंड, घिसी हुई मशीनों का दाम आधे तिहाई से ज्यादा क्या होगा....."

पुरी का स्वप्न था, किसी दिन पत्र का सपादन कर सके। सूद जी की बात से उस स्वप्न को संभावना का अवलम्ब मिल गया।

पत्र को नियमित रूप से छाप सकने का साधन पुरी के हाथ मे था। पत्र के मालिक यदि सूद जी ही हो तो उस का मुख्य-संपादक तो वही होगा। इस आशा से पुरी के रक्त का वेग बढ़ जाता। विदेशी शासन में चाहे जो रहा हो, स्वतंत्र देश मे मुख्य सम्पादक के सामने पुलिस सुपरिन्टेंडेट की क्या हस्ती होगी। पुरी ने चार सौ रुपये की नौकरी की कोई परवाह न करने का गर्व भी अनुभव किया। पत्र का नाम भी उसने सोच डाला 'नाजिर'—जनता की भावनाओ और समस्याओं को सम्मुख लाने वाला, जनता का वास्तविक प्रतिनिधि।

जनवरी के अंतिम सप्ताह की दांत कटकटाती सर्दी थी। पुरी दृढ़ निश्चय से उर्मिला के शरीर की ऊष्मा का सुख छोड़ कर लिहाफ से निकल आया। हड्डियों को बेधती सर्द हवा और कोहरे की भी उसने परवाह नही की। वह छ. बजे, पौ फटने से पहले ही मडी बाजार मे सूद जी के यहाँ पहुच गया।

पार्लियामेटरी सैक्रेटरी नियुक्त हो जाने पर भी सूद जी ने अपने मकान और जीवनचर्या के ढंग मे परिवर्तन नही किया था। उन के यहां आने वालो की संख्या बहुत बढ़ गयी थी। उन से निश्चित रूप से मिल सकने और अकेले मे बात कर सकने का समय प्रातः बहुत तड़के ही हो सकता था। पुरी सूद जी का खास अपना आदमी था। पुरी को उन के कमरे मे चले जाने से सूद जी का प्राईवेट सैक्रेटरी या पुराना नौकर सुदामा भी नही रोक सकते थे।

सूद जी ने नीद टूटने पर शेष रह गयी थकान को अगड़ाई लेकर तोड़ा। आख खुलने पर देखा—समीप ही पुरी चुप, प्रतीक्षा मे कुर्सी पर बैठा था।

"इतने सबेरे ? कहो क्या बात है ?" सूद जी ने पूछ लिया।

पुरी ने भूमिका और विस्तार से अपना प्रस्ताव सूद जी के सम्मुख रख दिया। सौ रुपया मासिक का सहायक सम्पादक लेकर वह साप्ताहिक पत्र निकालने का उत्तरदायित्व लेने के लिये तैयार था। 'छत्रपति' सूद जी का विरोधी नही था परन्तु उसे कांग्रेस के सरकारी, कुर्सीनशीन पक्ष की भी बात रखनी पडती थी। सब सरकारी विज्ञापन भी वही लिये जा रहा था। अठारह सौ रुपये बैंक में थे। तेइस सौ डिस्ट्रिक्ट कोर्ट्स, राशन दफ्तर और म्युनिसिपल

बोर्ड से लेना था। पुरी ने हिसाब बता दिया--यदि तीन मास तक बिलकुल भी विज्ञापन न मिले तो भी पत्र चल सकता था। जम जाने पर पत्र को दैनिक कर सकने की भी संभावना हो सकती थी।

सूद जी ने विज्ञापनों और पत्र की बिक्री से आमदनी का अनुमान समझा। विज्ञापन न मिलने अथवा एजेंटों से समय पर वसूली न होने की अवस्था में कठिनाइयों के विषय में प्रश्न किये। सूद जी अपने महीन कतरे केशों पर हाथ फेरते हुए कुछ और भी सोचते रहे। सूद जी ने पुरी को अखबारी कागज के कोटे के लिये उस की दरखास्त पर सिफारिश कर देने का आश्वासन दे दिया।

पुरी सूद जी के आश्वासन से संतुष्ट होकर चलने को ही था कि सूद जी ने उसे जरा और बैठने के लिये संकेत कर पूछ लिया--"तुम कई दिन से मिले नहीं। तुम ने अपनी वाइफ को कब बुला लिया? तुम ने जिक्र भी नहीं किया कि विवाह कर लिया था।"

"जी नहीं तो।" पुरी के मुख से सहसा इंकार निकल गया। वे ऐसे प्रसंग के लिये सोच-विचार कर नहीं आया था।

"तुम्हारे यहां कौन लड़की रहती है?" सूद जी ने माथे पर बल डाल कर पूछा।

पुरी सूद जी के प्रश्न और ढंग से सहमा, संभल कर उत्तर दिया--"लाहौर की मंसोगली के बधावामल जी नारंग की लड़की है। नारंग जी पूरे परिवार के साथ बहुत परेशान थे। उन्हें कहीं-स्थान नहीं मिल रहा था। मैंने प्रेस के ऊपर टिका लिया था। पिताजी नारंग जी के मित्र थे। उन के लड़के जगदीश के ट्यूटर भी थे। मैंने भी उर्मिला को कुछ दिन पढ़ाया था।"

पुरी अप्रत्याशित प्रश्न के उत्तर में और सूद जी का समाधान कर सकने के लिये कई बातें कह गया। नारंग जी और जगदीश, मां, उर्मिला और उस के छोटे भाई को उस के यहाँ छोड़ कर स्थान की खोज में दिल्ली चले गये थे।

"तो क्या नाम लड़की की मां और भाई भी तुम्हारे साथ रहते हैं?"

"मां यहीं थी। दो-चार दिन हुये छोटे लड़के को लेकर चली गयी हैं। जगदीश का पत्र आया था कि पिताजी की तबीयत ठीक नहीं है।" पुरी ने उत्तर दिया।

"तो मां जवान लड़की को अकेली छोड़ गयी है? यह क्या तमाशा है?" सूद जी का स्वर कड़ा हो गया।

"जी मैंने उन्हें एक कमरा दे दिया था। उर्मिला वहां ही रह रही है।"

"कैसे रह रही है? क्या नाम मां जवान लड़की को ऐसे छोड़ कर जा

सकती है ? यह तो सन्देह की बात है।"

पुरी बातों में घिर गया था। अपनी झिझक छिपा कर बात को गंभीर बनाने के लिये वह अंग्रेजी के आवरण में बोला—"बेचारी लड़की बहुत अभागी है। वह दंगों के आरम्भ में, मार्च में ही विधवा हो गयी थी पिछली जनवरी में ही तो उसका विवाह हुआ था।"

"तो क्या उन्होंने विधवा लड़की को घर से निकाल दिया है ?"

"जी ऐसी बात तो नहीं है।"

"तुम ने क्या नाम, उसे रख लिया है ?" सूद जी का स्वर और कड़ा हो गया, "तुम्हें अपनी पोजीशन का खयाल नहीं है ?"

"भाई साहब, आप कैसी बात कर रहे हैं।"

"मैं-मैं-मै कैसी बात कर रहा हूं ?" सूद जी डपट कर बोले, "लड़की, क्या नाम विधवा भी है तो भी ताज्जुब है कि मां-बाप को छोड़कर तुम्हारे साथ रहे। तुम उस के क्या लगते हो ? तुम्हारा पहले से ताल्लुक रहा होगा। लोग क्या कहेंगे ? अभी तो यही समझ रहे हैं कि क्या नाम तुम्हारी वाइफ है। हम ने तो यही सुना है कि तुम ने वाइफ को बुला लिया है। तुम उस के साथ रहते हो, घूमते-फिरते हो और क्या नाम उसका ढंग तो विधवाओं जैसा नहीं लगता। वह अपने मां-बाप के यहां क्यों नहीं जाती ? मुझ से किसी ने बात की है तभी कह रहा हूं।"

"भाई साहब, लोगों की क्या बात है। असल बात यह है कि उस का मां-बाप से कुछ डिफरेंस आफ ओपिनियन (मतभेद) है।"

"डिफरेंस आफ ओपियन ? लड़की क्या नाम कम्युनिस्ट है ? काफी एजुकेटिड है क्या ?"

"जी नहीं।"

"तो डिफरेंस आफ ओपिनियन और क्या होता है ?"

"जी उर्मिला आगे पढ़ना चाहती है। वह स्वावलम्बी बनना चाहती है।

"मां-बाप क्या पढ़ाने के लिये तैयार नहीं ?"

"कुछ ऐसी ही बात है।"

"तो तुम्हें क्या मतलब, तुम्हारी क्या रिस्पोन्सीबिलिटी है ? तुम्हारा उस से अट्रेक्शन (आकर्षण) है।"

"जी नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है।"

"तुम्हारी शादी या इंगेजमेंट की बात कहीं चल रही है ?"

"जी बात तो उठी थी पर कुछ निश्चित नहीं हुआ था। पार्टीशन की

वजह से सब ऐसे ही रह गया।" पुरी को उर्मिला के प्रति अपनी नेकनीयती के प्रमाण में कह देना पड़ा।

"कहां बात चल रही थी ? लाहौर के ही किसी घर-बार में चली होगी। किस के यहाँ चली थी ? अब वे लोग कहाँ गये है ?"

"निश्चय कुछ नहीं हुआ था" पुरी सूद जी की दृष्टि में ऊंचा उठ सकने के लिये कह गया, "पंडित गिरधारीलाल जी ने ऐसे ही दो-चार बार मुझ से कहा था। तभी मैने 'पैरोकार' का काम छोड़ा था। मै अस्थिर अवस्था में था, उन्हें क्या उत्तर देता ?"

"कौन पंडित गिरधारीलाल ? वही पुराने रेवोल्यूशनरी; नयाहिंद पब्लिकेशन वाले !"

"जी हां, पर निश्चय कुछ नहीं हुआ था। मुझे ऐसी जल्दी भी नहीं है। पहले परिवार तो आ जाये।"

"बड़े गधे हो तुम। क्या नाम पंडित गिरधारीलाल का पता नहीं लगा सकते ? यह कैसे हो सकता है ? त-त-तुमने कोशिश ही नहीं की होगी।"

"वे लोग नैनीताल गये हुये थे। उन के पते पर एक पत्र सितम्बर के अंत में लिखा था। उत्तर कोई नहीं आया।"

"सितम्बर के अन्त में पहाड़ों पर कौन रहता है ? नैनीताल तुम्हें उन्हों ने ही बुलाया होगा। तुम्हें क्या उन की लड़की पसन्द नहीं थी ?"

"भाई जी, यह बात नही थी परन्तु उस समय मै परेशान था।"

"हटाओ इस झगड़े को। तुम इस लड़की के मां-बाप को लिख दो कि इसे ले जायें। नहीं ले जाते तो क्या नाम वनिता-आश्रम में रखा देंगे। पालिटिकल आदमियों के लिये यह सब ठीक नही है। लोग तो खामुखाह ऐब लगाते हैं, तुम उन्हें मौका देते हो।"

पुरी मंडी-बाजार से माई हीरागेट बाजार की ओर लौट रहा था तो उस का मस्तिष्क भयंकर समस्या के भंवर में फंस गया। वह दूसरे प्रसंग पर बात करने के लिये तैयार हो कर गया था। सूद जी उर्मिला की बात चला बैठे थे।

पुरी ने पहले से तैयार न होने के कारण सफाई की गलत राह ले ली थी। वह उर्मिला को कैसे और कहाँ भेज दे सकता था ? ""पर कनक को भी वह क्या उत्तर दे सकेगा ? ""कानूनन या दूसरों को मालूम न होने पर भी कनक से उस के विवाह में न्यूनता क्या थी ?

पुरी गहरी चिंता में डूब गया—उर्मिला के साथ उलझ जाना बहुत बड़ी

भूल हुयी पर परिस्थितियाँ ऐसी थी कि वह बच नही सका। कनक चाहे जो हो, सामने तो नही थी। उर्मिला सामने थी। नितान्त रूप से उस पर निर्भर थी। पुरी ने सोचा—जैसे भी हो, समय का व्यवधान डाल कर स्थिति को सम्भालना होगा। अब उर्मिला को वह कैसे छोड सकता था ?······परन्तु यदि कनक सामने आ जाये तो उसे क्या उत्तर दे सकेगा ? दो पत्नियाँ ?··· वह कैसे भवर मे फस गया ?

पुरी साप्ताहिक पत्र को आरम्भ करने की तैयारी मे बहुत व्यस्त था। सूद जी ने उर्मिला को उस के माता-पिता के यहाँ भेज देने या उसे पुरी के यहाँ से हटा देने की बात कह कर एक और उलझन उत्पन्न कर दी थी। इस परेशानी मे पिता के प्रति सप्ताह आने वाले पत्र चिता को और बढ़ा रहे थे। पिता ने अपने पहले पत्र मे लिखा था कि प्रभु की इच्छा और दया से वे जिस अवस्था मे थे, सन्तुष्ट थे। पुरी की माँ पुत्र को देख पाने के लिये आतुर थी। पुरी ने अपने परिवार का पता लग जाने और परिवार की सहायता की बात सूद जी से कह कर नवम्बर से अपना वेतन दो सौ रुपये मासिक करवा लिया था। वह प्रति मास पचास रुपये पिता को भेज रहा था। अब पिता के पत्रो मे सन्तोष के स्थान पर चिताओ की चर्चा थी। वे हरिदेव को घर पर ही पढ़ा रहे थे। उस के परीक्षा न दे सकने से लड़के का एक वर्ष व्यर्थ जाने के लिये चिंतित थे। सोनवा से सब से समीप स्कूल बस्ती मे था। वहाँ पढाने के लिये हरिदेव को बोर्डिग मे दाखिल कराना आवश्यक था।

ऊषा लाहौर से मैट्रिक की परीक्षा पास करके आयी थी। वह कालेज मे पढ़ना चाहती थी। उस का एक वर्ष खराब हो चुका था परन्तु सोलह बरस की लडकी को पढाने के सिवा और उपाय ही क्या था ? सोनवा मे अपनी बिरादरी या परिचित लोग नही थे कि कुछ और बात सोची जा सकती। पुरी के पिता लड़के-लड़की की शिक्षा के विचार से जालन्धर आ जाना चाहते थे।

पुरी को चिता थी, पिता के आ जाने पर उर्मिला का क्या होगा ? पिता रिखीराम की जगह काम कर सकते थे परन्तु उन से उर्मिला की बात कैसे छिपी रह सकती थी। पुरी बहाने बना कर पिता और परिवार को सोनवा मे रोके हुये था। पुरी ने पिता को पत्र मे लिख दिया था कि स्वय एक मित्र के यहाँ पडा है। मकान मिल नही रहा हे। मिलते ही उन्हे बुला लेगा या लिवा ले जायेगा। अभी हरि को बस्ती के स्कूल के बोर्डिग मे भरती करा दे।

पुरी का विश्वास था कि फरवरी के अन्त तक अखबार के लिये कागज

की समस्या हल हो जायेगी । वह प्रेस की मशीनों के शोर में अपनी कुर्सी पर बैठ मेज पर कोहनी टिकाये और हथेली पर ठोढ़ी रखे अपने पत्र को अधिक से अधिक आकर्षक और प्रभावोत्पादक बना सकने की कल्पना में डूब जाता था—जैसे भावी माता प्रथम प्रसव से पूर्व, मन ही मन गर्भ स्थित बालक की क्रीड़ाओं की कल्पना से मुग्ध हो सकती है ।

पुरी को लेखक के रूप में अपनी योग्यता और सामर्थ्य पर पूरा भरोसा था । वह विचारों को व्यवहार में प्रकट करने के लिये कल्पना से घटना गढ़ सकता था । घटना के लिये उपयुक्त पात्रों की सृष्टि कर सकता था । जो घटना कभी नहीं घटी, पुरी पाठकों के लिये उस का सृजन कर सकता था । कलम हाथ में लेकर वह कागज पर भावों और घटनाओं की सृष्टि कर सकता था । ऐसे काम में उसे अपने सामर्थ्य और अस्तित्व का सन्तोष होता था । वह घटना या प्रसंग विशेष के सम्बन्ध में तर्क-संगत दृष्टिकोण उपस्थित कर सकता था । शब्द और शैली उस के अपने हाथ की वस्तुयें थीं और उस के भण्डार में निस्सीम थीं ।

पुरी 'नाजिर' साप्ताहिक के प्रकाशन की विज्ञप्ति (डिक्लेरेशन) दर्ज करने के लिये जिला-कचहरी में गया था । वह प्रेस क्लर्क के कमरे से निकला तो महेन्द्र नैयर दिखाई दे गया ।

नैयर ने उल्लास से आगे बढ़ कर पुकार लिया—"हल्लो !" और जबर-दस्त पंजे से हाथ मिलाया ।

पुरी कनक के सम्बन्धी को अकस्मात सामने पाकर कुछ झिझक गया । मुस्कराने का यत्न कर बात की—"आप यहाँ हैं: कब से ? यहाँ प्रैक्टिस आरम्भ की है ? कैसा काम चल रहा है ?"

"नयी जगह पर प्रैक्टिस शुरू की है तो भाई जमने में कुछ समय लगेगा ही ।"

"पंडित जी भी यहाँ हैं ?" पुरी ने अपनी चिंता के समाधान के लिये पूछ लिया । न पूछना उचित न होता । 'हाँ' सुनने की आशंका में रक्त की गति बढ़ गयी ।

"नहीं, पंडित जी दिल्ली में ही हैं । प्रेस तो नहीं है पर जो मकान लिया है उस पर 'नया हिन्द प्रेस' नाम लिख लिया है । मकान दुर्रानी गली में, दिल्ली फैजबाजार रोड पर ले लिया है ।" नैयर ने स्वयं ही पता बता दिया ।

पुरी ने अपनी दुविधा छिपा लेने के लिये व्यस्तता और चिंता प्रकट की—"पत्र आरम्भ करने के लिये डिक्लेरेशन फाइल करने आया था । पहले

कागज के कोटे का प्रश्न था। अकेला आदमी हूं। प्रेस भी सम्भालना पड़ता है। किसी असिस्टेंट की तलाश में हूं।"

"बधाई! बहुत अच्छा हुआ। तुम्हें तो स्वभाव और रुचि के अनुकूल काम मिल गया। रहते कहाँ हो, मकान मिल गया? मिला तो करो। जगह बताओ तो मैं ही मिलने आ जाऊंगा।" नैयर ने आत्मीयता प्रकट की।

"जी नहीं, मकान कहाँ मिल गया। कमल प्रेस मे पड़ा रहता हूं या कभी सूद जी के यहां रह गया। आप को मकान मिल गया, काम कैसा चल रहा है?"

"मकान जैसा-तैसा मिल ही गया है। काम अभी चार मास से शुरु किया है। नयी जगह है। सब परिचय और सम्पर्क पर निर्भर करता है।"

'किसी दिन साथ चलकर आप का परिचय सूद जी, पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी से करा दूंगा। यह पत्र उन्ही के सहयोग में निकाल रहा हूं।"

"धन्यवाद, जरूर पर इस समय तो मैं आर० एस० एस० के गिरफ्तार लड़कों की जमानत के लिये पेश हो रहा हूं। शायद सूद जी को यह अच्छा न लगे।"

"विस्मय है, आप को आर० एस० एस० से सहानुभूति है? आप का खद्दर का कोट देख कर कुछ और ही अनुमान किया था।"

"यह कोट, खूब रही। कोर्ट की ड्रेस नैनीताल तो ले नही गया था। लाहौर हम जा ही नही सके। नया सिलाना पड़ा है। अब 'विकोना' का कोट सिलाने लायक पैसे कहाँ है!"

"आर० एस० एस० के प्रति आप की सहानुभूति है? गांधी जी की हत्या के बाद भी?"

नैयर हंस दिया—"पुरी, तुम से यह बात सुन कर विस्मय हुआ। शहा-लमी के मामले मे पकड़े गये थे तो क्या तुम सचमुच आग लगाने गये थे? जानते हो लोग यों भी पकड में आ जाते है। आर० एस० एस० के हरेक आदमी ने तो गांधी जी की हत्या में भाग नही लिया होगा और यह अधिकार तो गोडसे का भी है कि उस के साथ न्याय हो।"

"खैर, आप को नयी जगह बनानी है, इसमे हिन्दू सभाइयों की सहानुभूति आप की ओर हो सकती है।" पुरी ने पुराना बदला लेने के लिये कटाक्ष कर दिया।

नैयर ने पुरी को घूर कर देखा—"सहानुभूतिपूर्ण सुझाव के लिये धन्यवाद पर जो आदमी सरकार का अप्रिय होने से नही डरता, वह हिन्दू सभाइयों की सहानुभूति के लिये भी नही तरसेगा।

पुरी गंभीर हो गया।

"खैर, फिर मिलेंगे।" नैयर हाथ मिलाये बिना ही चल दिया।

कचहरी से टांगे पर नगर की ओर लौटते हुये पुरी की कल्पना कनक के चारों ओर घूम रही थी।""क्या नैयर दिल्ली पत्र लिख कर मुझ से मिलने की सूचना दे देगा? उसे क्या जरूरत? सम्पर्क टूट जाने से इन लोगों ने मुक्ति पायी होगी।"""बूढ़े को लिख भी देगा तो वह कन्नी को कब बताने वाला है। प्रेस में पहुँचने तक पुरी कनक की ही बात सोचता रहा।

पुरी को लेखक, सम्पादक और प्रबंधक का भी काम करना था। सोच था—पत्र का पहला अंक प्रकाशित करते समय, पूरे चार अंकों का बहुत अच्छा मसविदा हाथ में रहना चाहिये। उसे एक सहायक की आवश्यकता थी। ऐसे सहायक की जो वास्तव में, भावना से उस का सहयोगी बन सके। जिस में कला का संवेदन और उत्साह भी हो। जो उस के निर्देशों और सुझावों को अत्मसात करके पत्र को 'ज्वाला' बना सके, मर्मस्पर्शी वाणी बना सके।"" कनक की भी यही महत्वाकांक्षा थी। समय आने पर वह नहीं है। यदि इस समय कनक होती तो दोनों वास्तव में एक प्राण होकर पत्र को क्या न बना देते? कनक का यही स्वप्न था—एक छोटा-सा निराला मकान, दोनों दो मेजों पर रचना की साधना में रत हों। कनक के स्थान पर उर्मिला आ बैठी थी। कैसे यह सब हो गया? पर यह हो गया था, यह स्थूल तथ्य था।

उर्मिला के प्रत्यक्ष उग्र जीवन्त व्यक्तित्व की उपस्थिति में कनक के प्रति भावुकता और उस की योग्यता की स्मृति-मात्र कहाँ तक ठहर सकती थी। उर्मिला की बडी-बड़ी चपल आँखे, उस का सुनहरी-गुलाबी रंग, सुनहरी केश। सदा पान की हल्की लाली लिये उस के गुलाब की पंखुड़ियों से होंठ। उर्मिला को सहज ही बाहों मे उठा सकने में, उसे अपने सीने की परिधि में समेट सकने में, उन होठों को चूमने के लिये तनिक गर्दन झुका सकने में पुरी को पौरुष का संतोष होता था। ऐसे समय कभी-कभी स्मृति में कनक की छाया भी आ जाती। पुरी एक के पश्चात दूसरा समर्पण जीत लेने का गर्व अनुभव करता। वह कनक और उर्मिला की तुलना करने लगता। कनक के कंधे उस के कंधों को छूते थे""। समान भाव से उसे सहारा देती थी""। समस्याओं पर गंभीरता से तर्क करती थी। उर्मिला ने तो उस के सीने में सिर गड़ा कर आत्म-समर्पण कर दिया था। कनक समान साथी थी। और उर्मिला नितान्त समर्पित त्रिया।

सूद जी के सामने उर्मिला का प्रसंग बिगड़ गया था। स्थिति को संभाल कर सम्भ्रान्त रूप दे सकने की समस्या साधारण नहीं थी। उर्मिला से वास्तविक सम्बंध को छिपाये रख कर, उसे सामाजिक स्तर पर पत्नी के रूप में ग्रहण करने का नाटक रचना आवश्यक था। पुरी ने सोचा— सूद जी से अनुरोध करके उर्मिला को कालेज में भरती करवा दिया जाये। सूद जी के संतोष के लिये उर्मिला कुछ दिन किसी दूसरे परिवार में रह जाये। फिर सम्भ्रान्त ढंग से विवाह का प्रस्ताव करके वह उसे सब को बता कर अपने यहाँ ले आयेगा। इस में पिता जी का भी संतोष हो जायगा। कनक के पिता का पता तो नैयर ने दे दिया था परन्तु उस बात को दबे रहने देना ही उचित था।

पुरी 'नाज़िर' के प्रकाशन की घोषणा के लिये, दीवारों पर चिपकाया जा सकने योग्य बड़ा विज्ञापन तैयार कर रहा था। पंजाब से दिल्ली तक के सभी बड़े नगरों में विज्ञापन लगवाने का विचार था। पत्र की सफलता के विषय में सन्देह, पुरी की अपनी योग्यता और अस्तित्व के विषय में सन्देह करना होता। ऐसा सन्देह पुरी को कैसे होता ? इसी उत्साहवर्धक कल्पना में पुरी ने सोचा—शीघ्र ही पत्र का प्रचार खूब बढ़ जायेगा। जगह-जगह उस की चर्चा होने लगेगी। '' सिहर कर पुरी के हाथ से कलम गिर जाना चाहता था। क्या साहित्यिक अभिरुचि रखने वाली, सदा पढ़ने-लिखने वाली कनक की दृष्टि उस पत्र पर नहीं पड़ेगी ? पुरी ने कलम मेज पर रख दिया। गहरी सांस लेकर अपना सिर दोनों हाथों में थाम लिया; क्या करे··· क्या हो कर रहेगा ?

पुरी ने सोचा—कोई भी विकट स्थिति आ जाने से पहले ही उर्मिला से सामाजिक मान्यता से विवाह कर लेने में ही रक्षा है! पुरी आँखें खोले स्वप्न देखने लगा—कनक आयी है। सब जान कर वह अपने अधिकार के लिये उस के सामने खड़ी हो कर रो रही है। कह रही है—उर्मिला के आने से पहले तुम मुझे पत्नी स्वीकार कर चुके थे ''।

चिन्ता और आत्मग्लानि में डुबकियाँ लेते पुरी ने निश्चय किया—भावुकता में बहने से काम नहीं चलेगा। ····कनक ने मुझे ढूंढ़ लेने का कौन प्रयत्न किया है ? मैं तो परिवार से बिछुड़ा, निराश्रय, भूखा, माँग कर पेट भरने के लिये मजबूर हो गया था। उस के पास तो सुविधा और साधनों की कमी नहीं थी ? वह सब कुछ कर सकती थी। मैं उस से कहूंगा—तुम मुझे भूल गयी थी। तुम ने मुझे खोजने के लिये क्या किया ?

पुरी ने अपनी सफाई में और भी सोचा डाला—कनक जैसी उन्मुक्त

स्वभाव, एडवेंचरस (खिलाड़ी) लड़की अभी तक यों ही बैठी होगी ? जब तक मैं सामने था, मुझे पा लेने की बाजी थी। उस दाँव में सफल हो गयी। तब से सेंसेशन और थरिल (उमंग और उत्तेजना) की खोज में दूसरे दाँव लगा चुकी होगी। वह क्या किसी को सर्वस्व मान कर विसूरती रहने वाली है........।

पुरी ने कलम उठा लिया और प्रबन्धक के रूप में 'नाजिर' साप्ताहिक की सम्भावनाओं का प्रचार करने के लिये जय पुरी के समान योग्य कलाकार की रचनाओं की प्रशंसा में, दूसरों द्वारा उपयोग किये गये भावों को अतिरंजना से प्रस्तुत किया। ऐसे सम्पादक के नेतृत्व में प्रकाशित होने वाले 'नाज़िर' साप्ताहिक के प्रति पाठकों को आकर्षित करने के लिये उस ने जोरदार विज्ञापन लिख दिया। विज्ञापन को बाईस इंच लम्बे और अठारह इंच चौड़े कागज पर बड़े और सुन्दर अक्षरों में लिख देने के लिये कातिब को सौंप दिया।

'नाज़िर' के प्रकाशन की घोषणा हुये सप्ताह ही बीता था। साहित्यिक प्रवृत्ति या महत्वाकांक्षा रखने वाले, तीन बेकार युवक अपनी योग्यता और क्रियाशीलता प्रमाणित कर सकने का अवसर मांगने के लिये, नाज़िर के भावी सम्पादक, प्रसिद्ध साहित्यिक जय पुरी से मिलने आ चुके थे। लाहौर से उखड़े हुये पत्रों के कार्यालयों में काम कर चुके व्यक्ति तथा उस से अधिक अनुभव रखने वाले व्यक्ति भी आ चुके थे। पुरी सहायक के चुनाव में उतावली नहीं करना चाहता था। वह उन नौजवानों की रचनायें देख कर, उन की योग्यता का अनुमान करके चुनाव करना चाहता था। पुरी प्रेस के कमरे में बैठा एक ऐसे ही व्यक्ति से बात कर रहा था। सहसा एक अधेड़ व्यक्ति सामने आकर आर्द्र स्वर में पुकार उठा—"काका जी ! जयदेव !"

पुरी सम्भ्रम से उठ खड़ा हुआ—"पैरी पैनां ताया जी" (पाँय लागन)। पुरी ने कुर्सी और मेज के बीच से निकल कर अपने ताऊ बाबू रामज्वाया के चरण छुये। उन्हें एक कुर्सी पर बैठाया। स्वयं खड़े रह कर पूछा, "कब आये ?" और बताया, "पिता जी का पत्र पिछले सप्ताह मिला था। मैंने कई बार आप के पास होशियारपुर जाने के लिये यत्न किया लेकिन क्या बताऊं, मजबूर था। अभी मैं अकेला ही हूं। यहाँ से छुट्टी नहीं मिली।"

पुरी ने सहायक सम्पादक की नौकरी के उम्मीदवार को फिर आने के लिये कह दिया और ताया जी से हाल-चाल पूछने लगा। तायी जी, भाई किशोरचन्द, शीलो बहन सभी का हाल पूछा।

पुरी बाबू रामज्वाया को देख कर विस्मित रह गया था। वही बाबू

रामज्वाया जिन की वात को अयुक्त समझ कर भी उत्तर देने का साहस नहीं हो सकता था। पुरी के पिता मास्टर जी भी उन की वात नहीं उलट सकते थे। अब बाबू रामज्वाया के सिर पर कलफ लगी कीमती महीन मलमल की पगड़ी नहीं साधारण पुरानी सी काली टोपी थी। मूंछें बिलकुल सफेद, चेहरे से स्वास्थ्य और अच्छी खूराक का रंग गायब था। रोग और उदासी की छाया आ गयी थी। वे स्वयं शौक से सिलाये गरम कोट के बजाय रेलवे की वर्दी का नीला कोट-पतलून पहने थे। पतलून पाजामा ही लग रही थी। कपड़े झड़े हुये या सुथरे नहीं थे। हाथ में एक थैला था। यदि पिछले सप्ताह सोनवां से आये पिता के पत्र में ताया जी के विषय में न पढ़ा होता तो शायद पुरी उन्हें देख कर तुरन्त न पहचान सकता।

मास्टर जी को अपने बेटे का पता रेडियो से मिल जाने पर उन का उत्साह बढ़ गया था। वे अपने दूसरे सम्बन्धियों और मित्रों के पते खोजने का यत्न करने लगे थे। रेलवे से सम्बन्ध रखने वाले शरणार्थियों का केन्द्र अम्बाला में था। मास्टर जी ने अम्बाला-केन्द्र की मार्फत अपने बड़े भाई को पत्र लिखा था। तीन मास बाद उन्हें बाबू रामज्वाया का उत्तर होशियारपुर से मिला। डेढ़ मास कैम्प में रहने के बाद उन की नियुक्ति होशियारपुर स्टेशन पर हो गयी थी। मास्टर जी ने पुरी को लिखा था कि होशियारपुर जालन्धर के बहुत समीप था। भाई साहब बहुत कठिनाई में थे। वह जरूर जाकर उन से मिल आये। पुरी झुंझला उठा था। वह सभी काम जल्दी, एक साथ कैसे कर ले सकता था। मास्टर जी को क्या मालूम था, क्या अनुमान था, पुरी कैसी परिस्थितियों और समस्याओं में उलझा हुआ था।

संध्या के चार बज रहे थे फिर भी पुरी ने ताया जी से आग्रह से पूछा—"रोटी (भोजन) मंगवाऊं ?"

"नहीं बेटा, खाकर चला था।"

पुरी ने ट्रेडिल मशीन के समीप से छोकरे खेमी को बुला लिया। उसे एक ओर ले जाकर एक रुपया हाथ में दिया और आधा सेर गरम दूध और कुछ मीठा-नमकीन ले आने के लिये भेज दिया।

बाबू रामज्वाया को भाई के पत्र से पता लग गया था कि जयदेव को डेढ़ सौ रुपये मासिक की नौकरी मिल गयी थी। उन्हों ने जयदेव की सफलता पर प्रसन्नता प्रकट की और उसी सांस में कह गये—"बेटा, हम तो उजड़ गये। अपने दो तिमंजिले मकान छोड़ कर आये हैं, और अब सब लोग एक कोठरी में गुजारा कर रहे हैं। साथ कुछ ला ही नहीं सके। सत्तावन तोले सोना

था। साथ लेकर चलते तो पुलिस वाले ही छीन लेते। उन्हों ने धीमे से कहा, अपने घर में दबा आये हैं। देखो कभी 'उस को' मंजूर होगा तो...। किशोरचन्द बेचारा खाली बैठा है। हम लोगों के घर में तुम ही लायक हो, बरसिरे रोजगार हो। घर को तुम्हारा ही सहारा है। बेटा, इस महंगी में एक सौ बीस रुपये में क्या बनता है। लाहौर में इस से ड्योढ़ा तो मकानों के किराये से आ जाता था। किशोरचन्द टाल से डेढ़-एक सौ निकाल लेता था, फिर लाहौर का स्टेशन था। तुम जानते हो, हम तो घी-चावल सब देहात से मंगा लेते थे।"

पुरी ताया जी से बात कर रहा था। रिखीराम ने आकर पूछा—"भाई जी, पाँच बज रहे हैं। छुट्टी कर दें या सिलेंडर का फार्म खत्म करवा दिया जाये, अभी तीन हजार बाकी है?"

"भई, खुद देख लो। कल के लिये काम देख कर जैसा समझो कर लो।" पुरी ने बड़े अधिकारी के ढंग से भरोसा प्रकट किया।

"काका, तुम अब घर नहीं चलोगे?" रामज्वाया ने अपनी कलाई पर बंधी पुरानी घड़ी पर नजर डालते हुये पूछा, "मकान कहाँ लिया है? तेरे पिता ने प्रेस का ही पता लिखा था। मैं ढूंढता-ढूंढता यहाँ आ पहुंचा।"

मकान का प्रसंग आने पर पुरी मौन रह गया। नजर घुमाकर देख लिया, प्रेस का कोई आदमी सुन तो नहीं रहा। मेज पर पड़ी लाल पेंसिल हाथ में दबा कर बोला—"ताया जी, मकान तो मिल ही नहीं रहा। बहुत कोशिश कर रहा हूं। मकान मिल जाये तो पिता जी और मां को ले आऊं। हरि और उषा की पढ़ाई का भी नुकसान हो रहा है। अभी तो सूद जी के यहाँ पड़ा रहता हूं, कभी कांग्रेस के दफ्तर में, कभी यहाँ बेंच पर ही।"

पुरी बात कह रहा था तो रिखीराम फिर आ गया। पुरी ने रुक कर पूछा—"हाँ भई?"

ट्रेडिल बन्द करवा दी है। सिलेंडर को आठ बजे तक चला लेगा। आप अभी ठहरेंगे? और कोई काम तो इस समय नहीं है, मैं जा सकता हूं?"

पुरी ने उदारता से अनुमति दे दी।

रिखीराम के चले जाने पर बाबू रामज्वाया ने कमर पर हाथ रख कर कहा, "बेटा, मैं जरा इस बेंच पर लेट जाऊं। गाड़ी आठ बजे मिलेगी। मैं घण्टे भर आराम कर लूं। मेरी कमर में बहुत दरद है। बेटा, कपड़े हैं नहीं। कितने लिहाफ-कम्बल छोड़ कर आये हैं, यहाँ सर्दी में मर रहे हैं। सर्दी लग गयी थी। दरद ठीक ही नहीं हो रहा है।"

"मैं खाट मंगवा दूं?"

पुरी ने रूल्दू को पुकारा––"जरा अपनी खाट ले आ।"

कुर्सियाँ एक ओर खींच कर पुरी ने खाट के लिये जगह कर दी। पुरी ने रुल्दू का विस्मय भाँपा। कोट पहन कर बाहर निकलते रिखीराम ने भी उधर देखा था। पुरी ने उन से आँख न मिलायी। सोचा, उन्हें समझा देगा कि परिचय भर के मेहमान को वह गजे नहीं सहेड़ना चाहता था।

बाबू रामज्वाया को उस अवस्था में देख कर पुरी का मन भर आया था। पुरी को उन की खातिर-सेवा करने की बहुत इच्छा थी। ताया जी उसे सदा निकम्मा आदमी समझते रहे थे। उन्हें ऊपर कमरों में ले जाकर अपनी सुधरी हुयी स्थिति दिखाने की उमंग पुरी को दबा लेनी पड़ी। ऊपर बैठी, उस के साथ अकेली रहती उर्मिला के विषय में वह उन्हें क्या जवाब दे सकता था?

बाबू रामज्वाया अपनी कमर पकड़े खाट पर लेटे-लेटे पुरी को अपनी हानि और वर्तमान कठिन स्थिति की बातें सुनाते रहे। इस से पहले ताया जी ने अपने पास इतना धन होना कभी स्वीकार न किया था। पुरी ने भी आपबीती सुनायी। कहा—"पहले तो काम की तलाश मे ही परेशान रहा। अब मकान के लिये मैं बहुत यत्न कर रहा हूं। शहर में कोई गिरा-पड़ा मकान भी तो खाली नही बचा है। जगह मिलते ही एक दिन होशियारपुर जाऊंगा। आप को, तायी जी को और किशोर और भाभी को ले आऊंगा। कुछ दिन आप लोग यहाँ रहियेगा। अब हम लोग जैसी स्थिति में आ पड़े है, किसी तरह मिल-जुल कर निर्वाह करना है।"

पुरी सात बजे बाबू रामज्वाया के साथ स्टेशन पर गया और उन्हें गाड़ी पर चढ़ा आया।

पुरी स्टेशन से लौट रहा था तो अपने घर मे अपने ताया को स्थान न दे सकने के अपराध और लज्जा से उस की गर्दन झुकी हुयी थी। अपने आचरण को लोगों से छिपाने की विवशता से बहुत ग्लानि हो रही थी। अपना आचरण छिपाने की मजबूरी अपने अपराध की स्वीकृति थी। अपने ताया के समीप बैठे हुये भी उस का मन भीतर-भीतर काँप रहा था कि उर्मिला अकस्मात नीचे न आ जाये।

पाँच मास में नगर में पुरी का काफी परिचय हो गया था पर वह कभी किसी को अपने घर नहीं बुला सकता था। वह सम्मानित प्रधान सम्पादक बनने वाला था। उस के जीवन की यह पोल कितनी अपमानजनक थी! ...इस स्थिति को दूसरा रूप देना ही होगा। उर्मिला को सम्मानित पत्नी बनाना ही होगा। इस के लिये पहले उर्मिला को समझाना होगा। वह उसे

घबराने नहीं देगा। उर्मिला के प्रति उस का स्नेह उमड़ पड़ा।

स्टेशन से लौटते समय पुरी को घण्टे भर के लिये कांग्रेस के दफ्तर में भी जाना पड़ा। उर्मिला भोजन तैयार करके पुरी की प्रतीक्षा में उस के लिये दूसरा स्वेटर बुन रही थी। उस ने शिकायत की—"हाय कहाँ चले गये थे? दूध-चाय पीने भी नहीं आये! इतनी देर कर दी!"

"क्या बताऊं, एक आदमी आ गया था। वह बात करता-करता स्टेशन तक ले गया। जरा कांग्रेस दफ्तर में भी काम था।"

दोनों ने एक थाली में खाया। भोजन के बाद उर्मिला की इच्छा थी कि कुछ दूर घूम आयें। कई दिन से घर के बाहर नहीं निकली थी। पहले पुरी उसे दूसरे-तीसरे घुमाने ले जाता था। उर्मिला खूब उजली-चटक पोशाक पहन कर उस के साथ जाती थी। पुरी को गर्व अनुभव होता था। सूद जी के टोक देने के बाद से वह उर्मिला को घुमाने ले जाने से कतराने लगा था। पुरी बहुत थकावट बता कर लेट गया।

उर्मिला ने मुस्कराकर कहा—"सदके (मैं न्यौछावर)! मैं किस लिये हूं।" वह प्यार से पुरी की टांगें दबाने लगी।

पुरी मन ही मन कल्पना करने लगा, क्या कनक भी ऐसा करती? उस की ऐसी प्रवृत्ति होती?

उर्मिला प्यार और चुहल की बातें करने लगी। बार-बार टोकती जा रही थी—"बड़े चुप हो! हाय, क्या इतने थक गये हो? सच बताओ, कोई फिक्र परेशानी है?"

पुरी मन में आयी बात कह नहीं पा रहा था। उर्मिला के मन में दुविधा न होने देने के लिये वह उसे प्यार करने लगा और फिर नींद में डूब गया।

पुरी के पड़ोस में ही एक शरणार्थी ने भैंसें रख कर दूध का कारोबार चला लिया था। वह प्रातः छः बजे ही दूध देने आता था। किवाड़ों की सांकल बजने से पुरी और उर्मिला की नींद खुल जाती थी। उर्मिला पूरे कपड़े न पहने होने और सर्दी के कारण लिहाफ में दुबकी रहती। पुरी उठ कर दूध ले कर रख देता था। उसे सुबह जल्दी उठने की आदत थी। वह बिजली जला कर नाजिर के आरम्भिक अंकों के लिये काम करने लगता। सर्दी के कारण लिहाफ में ही बैठ कर लिखने-पढ़ने लगता। उर्मिला घर में विशेष काम न होने और कड़ी सर्दी के कारण पुरी की पीठ से सटी हुयी सात, साढ़े सात बजे तक लिहाफ में छिपी रहती।

उस दिन भी पुरी ने दूध लेकर रख दिया था। नित्य के अभ्यास से किवाड़

उड़का दिये थे पर बिजली जला कर काम करने नहीं बैठा, फिर लेट गया। उर्मिला को बाँह में ले कर उस के कान से मुंह लगा कर बोला—"सुन तो।"

उर्मिला उस से लिपट कर बोली—"अभी सो जाओ, बड़ा जाड़ा है।"

"एक बात कहूं ?"

"हाँ।"

"हम ब्याह कर लें।"

"अभी और कैसा ब्याह बाकी है ?" उर्मिला ने पुरी के गले में बाहें कस कर पूछा।

"नहीं, मतलब है, सब लोगों को बता कर। आर्य-समाज या कचहरी में सिविल मैरेज कर लें।" पुरी ने उसे सिविल मैरेज की बात समझायी, "ऐसे ब्याह से मर्द स्त्री को छोड़ जाये तो सजा पा जाता है। स्त्री के साथ धोखा नही हो सकता।"

उर्मिला ने पुरी को प्यार में और भी जोर से बाँध कर कहा—"चलो हटो, प्यार और विश्वास से बड़ी चीज क्या है। मैं तुम पर सन्देह करूं तो मर जाऊं।"

"सन्देह की बात नहीं है पर लोगों की राय का भी तो ख्याल रखना चाहिये। हम सब को बता कर निधड़क क्यों न रहें।"

"अब क्या धड़का है ? खुले आम तुम्हारे साथ रहती हूं; बाहर आती-जाती हूं, कौन नही देखता-जानता।"

"पर लोगों को यह थोड़े ही मालूम है कि हमारा ब्याह हो चुका है। ब्याह कब हुआ; किसने देखा ?"

"किसे नहीं मालूम कि मेरे माँ-बाप भी यहाँ थे। लड़की को जवांई के पास छोड़ गये हैं।"

"नहीं भई यहाँ बहुत से लोग है, सूद जी है, लोग मुझे लाहौर से जानते है। मै यहाँ अकेला आकर रहा था, तब भी उन से कहा था कि मेरा ब्याह नहीं हुआ। वे लोग चाहते है कि बाकायदा ब्याह हो जाये। हम ब्याह कर लेंगे। इस में हमारा हर्ज ही क्या है। मेरा जी चाहता है, तुम्हें सब जगह साथ ले कर जाया करूं।" पुरी ने लम्बी सांस ली।

"हाय कैसा मजाक कराओगे" उर्मिला ने विस्मय प्रकट किया और पुरी के सीने पर अपना बोझ डाल कर उस के मुंह के सामने मुंह कर समझाने लगी, "इस घर से बरात चलेगी फिर यहाँ ही मुझे ब्याहने आओगे। फिर यहाँ से बिदा कराके फिर यहाँ ही लाओगे ? हो न बुद्धू ! कभी उस तरह ब्याह कराया होता तो जानते। सीधी सी लड़की देखी तो पकड़ लिया।" उर्मिला ने पुरी के

गाल पर प्यार का चपत लगाकर चूम लिया।

पुरी ने समझाया—ऐसे नहीं, तेरे लिये कुछ दिन किसी के यहाँ रहने का प्रबन्ध कर दूंगा फिर वहाँ से ब्याह कर यहाँ ले आऊंगा।"

"बिलकुल ही बुद्धू हो। बस एक ही काम में चतुर हो।" उर्मिला ने पुरी की नाक से नाक सटाये हंसी से उज्ज्वल आँखें पुरी की आँखों में गड़ा कर कहा, "तुम महीने-डेढ़-महीने बाद ब्याह कराना, फिर छः महीने बाद लोग मुझ पर हंसेंगे तो मैं क्या कहूंगी? मैं ऐसे ऊटपटाँग काम नहीं करूंगी।" वह फिर हंस पड़ी।

"क्यों हंसेंगे, किस बात पर?"

"चल बुद्धू। मैंने कहा न बस एक ही काम आता है और बातें गढ़नी आती हैं।"

"ऐसी बात है?""कब से?" पुरी ने समझ कर चिंता से पूछा।

"अभी पक्की बात नहीं। चार-पाँच दिन में पता चल जायेगा। हम क्यों झगड़ा करें? हमारा ब्याह तो लाहौर में हुआ था, बस। असल में तो ढाई साल हो गये।" उर्मिला ने पुरी की आँखों में देख कर पूछा, "मरी' में नहीं हुआ था; नहीं तो चाँटा कैसे मार दिया था? बड़े वैसे हैं। तब भी मुझे पिटवाया था। हमेशा मेरी मुसीबत कर देते हैं। फिर वैसी बातें कर रहे हैं। मैं नहीं बोलती।" उर्मिला ने पुरी के सीने में मुंह गड़ा दिया।

जीने के किवाड़ों पर खट-खट हुयी। लगा कोई पुकार रहा है।

"यह कौन मरा इस समय आया है?" उर्मिला ने क्षोभ प्रकट किया।

उड़के हुये ढीले किवाड़ों के खुलने की चर्राहट हुयी। एक स्त्री कमरे में आयी। उस ने भीतर के कमरे में झाँका।

उर्मिला झट लिहाफ में छिप गयी। पुरी को कपड़े सम्भाल कर तुरन्त पलंग से उठ जाना पड़ा।

पुरी ने देखा, पहचाना और विस्मय से सांस रोके रह गया।

६

सन् ४७, नवम्बर का दूसरा सप्ताह था। कनक लखनऊ स्टेशन पर गाड़ी से उतरी। नये अपरिचित स्थान में आने से सतर्क और कुछ सहमी हुयी थी।

हुयी थी। पहली ही झलक में दिल्ली से चेहरों और बोली का अन्तर जान पड़ा। स्टेशन से कदम बाहर रखते ही परिचित दृश्य दिखायी दिया। स्टेशन के सामने विस्तृत फुलवाड़ियों के बीच के मैदान स्थानहीन शरणार्थी परिवारों से भरे हुये थे। दिल्ली से तीन सौ मील दूर आकर भी स्थानहीनों का प्रवाह सब ओर दिखायी दे रहा था। उन्हीं लोगों की तरह वह भी शरण और स्थान खोजने आयी थी। उसे कौंसिलर्स रेजीडेंस मे मिसेज पन्त का पता मालूम था। स्टेशन से टांगा लेकर उन के यहाँ पहुंच गयी।

मिसेज पन्त ने आत्मीयता से कनक का स्वागत किया। बोली—"रात भर के सफर से थकी हो तो आराम करो, नही तो साढ़े दस बजे तक नहा-खा कर तैयार हो जाओ। हमारे साथ कौंसिल में चली चलो। वही अवस्थी जी से मुलाकात हो जायेगी। तुम्हें सेशन भी दिखा देंगे।

कनक धारासभा भवन में दर्शकों की गैलरी मे बैठी थी। बहुत भव्य गोलाकार सभा भवन। प्रत्येक मेम्बर के लिये अच्छी विस्तृत सोफा-कुर्सीनुमा जगह और सामने मेज जैसी डेस्क। भवन के केन्द्र मे मंत्री-मंडल और सभा के प्रधान थे। अधिकांश मेम्बर खद्दर के श्वेत झक कपड़े और गांधी टोपियाँ पहने थे। कनक पन्द्रह-बीस मिनट उस अति सम्भ्रान्त, गम्भीर और बहुत प्रभावशाली वातावरण में स्तब्ध सी रही। उस ने सुनने का प्रयत्न किया। एक मेम्बर अपने स्थान पर खड़ा होकर बोल रहा था—"पत्रों मे समाचार है कि कानपुर में ऐसे इमारती मसाले का आविष्कार किया गया है जो सीमेन्ट का स्थानापन्न हो सकता है! सरकार इस आविष्कार को प्रोत्साहन देने के लिये क्या कर रही है?"

सभा भवन के केन्द्र से एक सज्जन ने इस प्रश्न का उत्तर दिया।

कनक को खयाल आया, सम्भव है, मिसेज पन्त भी कुछ बोलेंगी। कौतुहल हुआ, वे सभा मे बोलती हुयी कैसी लगेंगी? यो देखने में नितान्त सीधी साधारण ही लगती है। यहाँ बोल सकती है तो अवश्य बहुत योग्य होंगी""।

कनक की आँखों ने मिसेज पन्त को खोज लिया। दो-दो मेम्बरों के लिये बने कोचों पर मिसेज पन्त लगभग अपनी ही आयु की दूसरी महिला के साथ बैठी हुयी थीं। दोनों महिलायें एक दूसरी की ओर झुकी हुयी बात कर रही थीं। उन का ध्यान सभा मे प्रस्तुत विषय की ओर नही, आपसी बात में जान पड़ता था। मिसेज पन्त के पीछे बैठे मेम्बर की गर्दन ऊंघ से झुक रही थी। कनक के मन पर पडा गम्भीरता का आतंक कम होने लगा।

कनक सभा की कार्यवाही को ध्यान से सुनने का यत्न कर रही थी। सभा

में प्रस्तुत विषय से वह परिचित नहीं थी। मंत्रियों के स्थान के समीप खड़े एक सज्जन छपे हुये फुलस्केप कागज से अंग्रेजी में कुछ पढ़ते जा रहे थे। मेम्बरों के डेस्कों पर भी वैसे कागज मौजूद थे। मेम्बर वक्ता को न सुन कर स्वयं कागज़ों को पढ़ रहे थे, कुछ डेस्क पर झुके या कोहनी डेस्क पर रखे और हथेली पर कनपटी टिकाये, दूसरी ओर नज़र किये बहुत ध्यान से सुन रहे थे या कुछ दूसरी ही बात सोचते जान पड़ रहे थे। एक-एक कर कई मेम्बर अपने स्थानों से उठ कर चले गये। कुछ देर बाद मिसेज पन्त और उन के समीप बैठी महिला भी उठकर चल दीं। सभा की कार्रवाई जारी रही।

मिसेज पन्त ने दर्शकों की गैलरी के द्वार से संकेत कर कनक को बुला लिया। बोलीं—"चलो, तुम्हें अवस्थी जी से तो मिला दें।"

अवस्थी जी के कमरे के बन्द दरवाज़े के साथ बैठे अधेड़ चपरासी ने मिसेज पंत के सम्मान में उठ कर उन के लिये दरवाज़ा खोल दिया।

अच्छे बड़े कमरे में, बहुत बड़ी और भारी मेज के साथ लगी कुर्सी पर अवस्थी जी घुटने समेटे बैठे थे। एक खूब भारी शरीर, अचकन और गांधी टोपी पहने व्यक्ति से बात कर रहे थे। मिसेज पन्त को देख कर अवस्थी जी ने स्वागत किया—"आइये, आइये।"

मिसेज पन्त के पीछे कनक को पहचान कर अवस्थी जी ने स्वागत के उल्लास को और ऊंचे स्वर में दोहराया—"आइये, आइये–कनक जी! कब आयीं?" और उन्हें मेज के साथ लगी कुर्सियों पर बैठने का संकेत कर दिया। कनक से दिल्ली का हाल-चाल पूछ कर बोले, "···दिल्ली में तो बहुत वावेला है। वहां तो बहुत शरणार्थी आये हैं। काफ़ी उपद्रव भी था। गांधी जी के पहुंच जाने से तो काफी शांति हो गयी है न?"

"जी हाँ, अब तो प्रायः शान्ति है। हम लोगों के दिल्ली जाने से पहले तो बहुत हंगामा था।"

अवस्थी जी ने अचकन पहने व्यक्ति को कनक का प्रशंसात्मक परिचय देकर कनक को बताया—"यह तो आप के पजाब के ही हैं। यहाँ कानपुर में भी इन का काफी बड़ा बिज़नेस है।'

कमरे का दरवाजा फिर खुला। दो खद्दरधारी व्यक्तियों ने प्रवेश किया। पुराने परिचय और बेतकल्लुफी से—"आओ भाई। आओ बैठो।" अवस्थी जी ने कहा।

नवागन्तुक सज्जनों के बैठते-बैठते अवस्थी जी ने पूछ लिया—"हाँ शर्मा जी, उस दिन क्या खुद लारी ने कहा था कि हम यहाँ ही पाकिस्तान बनायेंगे?"

शर्मा जी के साथी सज्जन बोल उठे—"अरे भाई, लीग-पार्टी का लीडर तो वही है। क्या फिजूल जिद्द है, असेम्बली की कार्रवाई हिन्दी में होने से उन्हें आग लगती है। अरे भाई, तुम चार लफ्ज फारसी के ज्यादा बोलते हो तो हम संस्कृत के बोल लेते है। हम कहते है, तुम जो जबान बाजार-रास्ते पर बोलते हो, वही बोलो।''''''''बस, उन की जहनियत जाहिर हो गयी। डेमोक्रेसी में बिलीव करते हो तो मैजोरिटी की बात मानो।"

शर्मा जी बोले—"उन्हें तो हिन्दी के नाम से चिढ़ है क्योंकि मुसलमान है। कहते है, मुसलमानों की जबान उर्दू है। ससुर हमारे गाँव मे, कुर्बेजवार के पाँच गावों मे, सौ मे ससुर एक ही मुसलमान उर्दू बोल और पढ़ कर दिखा दे! अरे तुम ने मजहब बदल लिया तो क्या अपने पुरखे और अपनी जबान भी बदल ली? गांव देहात मे सब अवधी, बुंदेली, भोजपुरी बोलते है। झगडा शहरों मे ही है। महज अपने को हिन्दुओं से अलग बताने की जिद्द है। मार पड़ती है तो गांधी जी के सामने जाकर रोते है, हम हिन्दुस्तानी है, हिन्दुस्तान हमारा मादरे वतन है लेकिन हिन्दुस्तान की जबान इन की नहीं है।"

"खैर" अवस्थी जी बोले, "यह मियाँ यहाँ पाकिस्तान बनाने की धमकी दे रहे है, इन का तो ख्याल रखना होगा।"

शर्मा जी ने समर्थन किया—'यह क्या, जितने गये है यही धौंस दे कर गये है कि लौट कर आयेंगे और मुहम्मद गोरी की तरह यू० पी० को फतह करेंगे।"

अवस्थी जी के पान से रंगे होंठ मुस्कान से फैल गये—"अमा शर्मा जी, इस बार आप ने पान बहुत बढ़िया भिजवाये। क्या कहना, लाजवाब है। वही पत्ते लगे हुये है।"

अवस्थी जी ने मेज पर दाहिने-बायें पडी कई फाइलों के बीच से अपना पानदान ढूढ़ लिया। डिब्बा खोल कर उन्हों ने मिसेज पन्त की ओर बढ़ाया—"आप लीजिये, कनक जी को भी दीजिये।"

अवस्थी जी, शर्मा जी और श्रीवास्तव की ओर देख कर बोले—"मिसेज पन्त की गेस्ट कनक जी, पंजाबी है। पंजाब के बहुत पुराने कांग्रेस-लीडर, लाला लाजपतराय जी के साथी, पंडित गिरधारीलाल जी की पुत्री है। एम० ए० पास है, बहुत टेलेंटिड है।"

कनक ने शर्मा जी और श्रीवास्तव जी को मौन नमस्ते कर दी।

मिसेज पन्त ने पानदान कनक की ओर बढ़ा दिया और स्वयं दो पान मुंह में रख कर पानों की सराहना की—"बहुत बढिया, बहुत बराबर के लगे है।" अवस्थी जी का संकेत पा कर उन्हों ने पानदान शर्मा जी की ओर बढ़ा दिया।

शर्मा जी ने डिब्बा लेकर हाथ मस्तक की ओर उठा धन्यवाद प्रकट कर दिया और पानदान मेज पर रखते हुये कहा—"भैया जी, कुछ चाय-वाय पिलवाइये। पान-वान बाद में होगा। हमें अधिक पान का अभ्यास नहीं है। दिन भर में चार-छः से अधिक नहीं खाते हैं।"

अवस्थी जी ने घण्टी का बटन दबाया। चपरासी भीतर आ गया।

"देखो!" अवस्थी जी एक नजर से उपस्थित लोगों को गिन कर बोले, "छः चाय और तिकोने भेजने के लिये कह दो।"

अवस्थी जी ने शर्मा जी से पानदान लेकर पंजाबी व्यापारी की ओर बढ़ा दिया – "आप तो लीजिये चावला साहब!"

चावला एक पान ले रहे थे। अवस्थी जी ने टोक दिया—"साहब बीड़ा दो का होता है। असल में पंजाबियों को पान की कदर है नहीं। क्यों कनक जी?"

अवस्थी जी कनक की ओर घूम गये—"आप दिन भर में कितने पान खा लेती हैं। आप को तो पान पसन्द होगा।"

कनक इतने अपरिचित आदमियों के सामने पान का शौक कैसे स्वीकार कर लेती। याद था, पंजाब में उत्सव, भोज के अतिरिक्त कुमारी लड़कियों का पान खाना उचित नहीं समझा जाता था। उस ने स्वीकार किया, "जी, मुझे अभ्यास नहीं है, कभी-कभी खा लेती हूं।"

"कभी-कभी?" अवस्थी जी कहकहे से हंस दिये, "हमारा तो पचास पान रोज का राशन है।"

कनक ने विस्मय से अवस्थी जी की ओर देख लिया।

अवस्थी जी मुख में पान रखने के लिये मौन हुये थे तो श्रीवास्तव कहने लगे—"भैया जी, ठाकुर गिरवरसिंह की लारी की परमिट ...।"

अवस्थी जी मुख में पान दबाकर चौंक उठे—"अरे वाह, हमें तो याद ही नहीं रहा......" और फाइलों में कुछ ढूंढ़ने लगे।

उन्होंने चांदी की एक छोटी डिबिया खोल कर मिसेज पंत की ओर बढ़ा दी—"लीजिये, तम्बाकू लीजिये।"

"हम तो कहने ही वाली थीं" मिसेज पंत मुंह में पान भरे बोली।

"मुनव्वर ने भेजा है, इस का मजा देखिये। जरा अंदाज से लें, तेज है।"

मिसेज पंत ने कुछ दाने हथेली पर लेकर मुंह में भरे पान पर फांक लिये और डिबिया कनक की ओर बढ़ा दी। कनक ने हाथ जोड़ धन्यवाद देकर क्षमा मांग ली।

श्रीवास्तव ने मिसेज पंत से डिबिया लेकर हथेली पर अन्दाज से तम्बाकू लेकर फाक लिया और डिबिया चावला की ओर बढा दी ।

चावला ने भी तम्बाकू का अभ्यास न होने के लिये क्षमा चाही ।

"पान मे तम्बाकू नही लेते ?" अवस्थी जी ने चावला के अनाड़ीपन पर करुणा-मिश्रित विस्मय प्रकट किया, "तम्बाकू के बिना पान का क्या लुत्फ ? आप पान खाते है या पत्ती चरते है ? बिना तम्बाकू का पान तो ऐसा है जैसे बिना कुचो की नारी से······ ।"

श्रीवास्तव और शर्मा ने हाथ पर हाथ मार कर जोर से कहकहा लगा दिया—"वाह, वाह ! क्या कहा भैया जी ने ! लाख रुपये की बात कह दी ।"

श्रीवास्तव हसी मे अपनी कटी हुई बात पूरी करना भूल गये ।

कनक की गर्दन झुक गयी । अपना बटुआ खोल कर उस में कुछ ढूंढने लगी जैसे उस ने कुछ न सुना हो ।

"बस आप तो ऐसी कह देते है" मिसेज पंत का लाज और हंसी से घुला हुआ स्वर सुनाई दिया । कनक को अपमान और लज्जा अनुभव हुई । क्रोध को वश में करना पडा —क्या इसीलिये लखनऊ आयी है । पिता जी और जीजा ने बहुत चेतावनी दी थी जरा खयाल रखना, वहाँ बहुत तकल्लुफ और तहजीब से बात की जाती है ।

शर्मा जी खलीकुज्जमा के लखनऊ से भाग जाने और डिप्टी कमिश्नर द्वारा उस की सब सम्पत्ति जब्त कर ली जाने की बात उत्साह से सुनाने लगे ।

चपरासी के पीछे एक आदमी बडी ट्रे मे चाय और समोसे लेकर आया । चपरासी ने एक तिपाई समीप कर दी । मिसेज पत तिपाई की ओर घूम कर तश्तरियो मे समोसे बाट कर चाय बनाने लगी ।

श्रीवास्तव अवसर देख कर फिर बोले—"हा भैया जी, गरीब ठाकुर गिरिवरसिह की लारी की परमिट की दरखास्त का कुछ नही बना । वह बिगड़ गया तो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के इलेक्शन मे बखेड़ा खड़ा हो जायगा । दो महीने से फाइल अटकी हुई है । आप गुप्ता जी के यहां से मंजूर करवा दीजिये बाकी तो हम सब करवा लेगे ।······"

कनक को चाय और समोसो के लिये बिलकुल रुचि नही थी परन्तु इन्कार करने के लिये बोलना पड़ा । ऐसे आदमियो के सम्मुख बोलने की इच्छा न थी । उस ने बोलने से बचने के लिये समोसे और चाय निगल ली । अवस्थी जी और उन के साथी ऊंचे स्वर मे बहस कर रहे थे ।

चाय के पश्चात फिर पानदान खुला ।

सहसा कहीं ऊंचे स्वर में घंटी बज उठी ।

"क्या असेम्बली में डिविजन हो रहा है या कोरम पूरा नहीं है ?" अवस्थी जी ने पान हाथ में लिये शर्मा और श्रीवास्तव से पूछा । उन का चेहरा गंभीर हो गया, "यह बुरी बात है । कुछ लोगों को तो हाल में बैठना ही चाहिये । चलिये !"

कनक पर विधान और शासन के केन्द्र की गंभीरता और गुरुता का जो प्रभाव पड़ा था, समाप्त हो गया ।

"अच्छा आप लोग असेम्बली में जाइये । हमें एक जगह काम से जाना है" मिसेज पंत ने कहा ।

कनक भी नमस्ते कर उन के साथ हो ली ।

कौन्सिल हाउस से बाहर निकल कर मिसेज पंत ने चौड़ी सड़क पर बायीं ओर संकेत करके कहा—"इधर से ही तो आये थे । रास्ता तुम्हारा देखा है न यह लो चाबी । तुम जाकर आराम करो ।"

"यहां नजदीक डाकखाना होगा; मैं पिता जी को पहुंचने की खबर दे देना चाहती हूं ।"

"यह है तो बड़ा डाकखाना, दायीं तरफ । हमारे कमरे के ठीक सामने सड़क पर 'वलिंगटन' होटल है न, उस में भी डाक-तार दोनों हैं । छेदीलाल को कह कर वहां से टिकट-विकट मंगवा लेना, चाहे तार भिजवा देना ।"

कनक मिसेज पंत के कमरे में अकेली बैठ सोच रही थी—यहां आकर क्या समझदारी की ? पुरी जी ने इन लोगों के बर्ताव के बारे में ठीक ही बताया था । अब वह क्या करे ? तुरन्त दिल्ली लौट जाये तो पिता जी से जिद्द करके आने के लिये मूर्ख बने । कैसा हीन और निर्लज्ज दृष्टिकोण है । जो लोग स्त्री को भोग की वस्तु समझते हैं, वह स्त्री का क्या आदर करेंगे ? मिसेज पंत को इस पर हंसना चाहिये था या आपत्ति करनी चाहिये थी । क्या औरत है ।.... याद आया, लाहौर में भी सड़कों पर उच्छृङ्खल लोगों को कुत्सित प्रलाप करते या गालियां देते सुना था परन्तु यह तो यहां के सम्मानित, सम्भ्रांत, सर्वोच्च लोग हैं ।

कनक को अपरिचित स्थान में अकेले होने की आशंका अनुभव हुई । पुरी जी इन लोगों के व्यवहार से खिन्न और अपमानित होकर लौटे थे........मैं क्यों इन लोगों पर भरोसा करके आ गयी ?........न आती तो करती क्या ? दिल्ली में अमीर और सिन्हा कौन भले आदमी थे ?

कनक ने गहरी सांस लेकर सोचा—सचमुच नारी, रक्षक पुरुष के बिना अपूर्ण और असहाय है। पुरी जी के बिना मेरे लिये कोई सहारा नहीं पर 'उन्हें' पाऊं कहाँ ? मैंने अभी तक प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और किया भी क्या है ? अब तक पिता जी के कारण, संकोच से कर भी क्या सकती थी ?······ क्या मालूम, कहाँ होंगे ? रेडियो पर तो सूचना दे सकती हूं पर पता क्या दूंगी ? यहाँ का अभी क्या निश्चय ! क्या हमारा मिलन फिर कभी नहीं होगा ?···मैं इतना पढ-लिख कर जीविका कमा सकने योग्य भी नही ?—कनक को दिल्ली में अखबार बेचने वाली, अपने से भी कम उम्र की लड़की याद आ गयी।

पिता जी को अपने सुरक्षित पहुंचने का समाचार तुरन्त देना आवश्यक था। सोचा, पत्र में क्या लिखूं ? कुछ ऐसा न लिख दूं कि वे चिन्ता में पड़ जायें। तार भेज देना ही ठीक है, केवल पहुंच जाने की सूचना। आ गयी हूं तो धैर्य रखना है।

कनक को कमरे में, अकेले आराम कुर्सी पर पड़े-पड़े ऊंघ आ गयी। आंख खुली तो सूर्यास्त हो चुका था। मिसेज पंत नहीं लौटी थी। कनक ने हाथ-मुंह धोया। सोचा, क्या करे ? कमरे में नज़र दौड़ायी कि कुछ पढने के लिये मिल जाये। कमरे मे कोई अखबार या पुस्तक नही दिखायी दी। छोटी तिपाई पर कुछ छपे हुये फुलस्केप आकार के कागज पड़े थे। कनक ने कागजों को उठा कर देखा, धारा सभा की कार्यवाई के कागज थे। दो-तीन पढ़ डाले। मन न लगा तो अपने साथ लायी पुस्तको में से एक पुस्तक निकाल कर पढ़ने लगी।

दिल्ली से चलते समय पिता जी ने कनक को 'पाथ आफ सक्सेस' (सफलता के मार्ग) पुस्तक परामर्श और पथ-दर्शन के रूप में दे दी थी। कनक उसी मे से एक अध्याय—'लोग आप की सहायता क्यों करे ?' पढ़ने लगी। लेखक का परामर्श था·····'समाज में कुछ लोग आप को अपने स्वभाव और रुचि के अनुकूल मिलेंगे, कुछ लोग आप को अरुचिकर भी लगेंगे। आप के लिये उचित है कि आप जिन्हें मन से नही भी चाहते उन के प्रति भी आदर और स्नेह प्रकट करे। दूसरो का तिरस्कार कर उन्हें अपना विरोधी बनाने की अपेक्षा किसी की भी सहानुभूति पा सकना अधिक उपयोगी होगा।··· अपनी व्यग्रता प्रकट करना अपनी निर्बलता प्रकट करना है। लोगो मे साधारणत निर्बल की सहायता करने की अपेक्षा समर्थ लोगों के लिये ही कुछ करके उन्हें सहायक बनाने की प्रवृत्ति होती है।"

कनक ने उस पृष्ठ पर उँगली रख पुस्तक मूंद ली और सोचने लगी—क्या पाखंड और बनावट ही समझदारी है ?

मिसेज पंत संध्या आठ बजे लौटीं। दोनों ने कौंसिलर्स रेजीडेंस के भोजनालय में जाकर भोजन किया। मिसेज पंत फिर कुछ समय के लिये कौंसिलर्स रेजीडेंस में किसी से कुछ बात करने चली गयीं। कनक पढ़ती रही। मिसेज पंत दस बजे लौटीं।

दूसरे दिन कौंसिल हाल जाने से पहले मिसेज पंत ने अपने बटुए में से कुछ कागज निकाले और झुंझला उठीं—"क्या तमाशा करते हैं यह सैक्रेटेरियेट वाले। हमें अंग्रेजी के फार्म दे दिये? आज लास्ट डेट है। फिर खामुखाह अगले महीने में पेमेंट होगी।"

"तुम तो अंग्रेजी लिख लेती हो न?" मिसेज पंत ने कनक से पूछा। स्वीकृति पाकर बोलीं, "हम बताती जायें वैसे तुम भर दो। हम दस्तखत कर देंगी। यह लोग तो खामुखाह परेशान करते हैं। हमारा टिरेवलिंग का सवा सौ रुपया खामुखाह महीने भर को रुक जायगा।"

कनक ने मिसेज पंत का बिल फार्म भर दिया। दशहरे के अवसर पर उन के घर जाने-लौटने की यात्रा के बिल थे। कनक फार्म भरते समय सोचती भी जा रही थी, कल कौंसिल में तो कई लोग अंग्रेजी में बोल रहे थे। यह क्या समझती होंगी?"

मिसेज पंत चलने लगीं तो कनक से बोलीं—"कल तुम ने देख तो लिया। वहाँ बैठी-बैठी खामुखाह ऊबोगी। हमें तो जाकर हाजिरी के दस्तखत करना जरूरी है। अवस्थी जी आज एक बजे तक असेम्बली हाल में रहेंगे। तुम उन से मिलना चाहो तो बाद में चली जाना। सब तुम्हारा देखा-समझा है। जाओ तो चाबी छेदीलाल को दे देना। वैसे हम अवस्थी जी से मिलेंगी तो बात कर ही लेंगी।"

कनक के मन में अपने काम या नौकरी के सम्बन्ध में चिन्ता अवश्य थी परन्तु अवस्थी जी के यहाँ जाने की इच्छा नहीं थी। कल्पना में सोचा—अवस्थी जैसे आदमी से सहायता न ले तो क्या और कुछ नहीं कर सकती? लखनऊ तो आ ही गयी थी। यहाँ भी कुछ समाचार-पत्र होंगे। कुछ भी नहीं तो स्कूलों में नौकरी ढूंढ़ सकती है। लौट कर घर पर बोझ बनने से तो अच्छा है कि यहाँ के किसी हस्पताल में नर्स का ही काम कर ले?

कनक अपने साथ लाया हुआ एक उपन्यास 'डर्मोमेंट सिन' पढ़ने लगी। कनक उपन्यास की नायिका ओरिला से अपनी तुलना करती जा रही थी। एक दिन और बीत गया। कनक को चिंता करने के अतिरिक्त और काम नहीं था। खाली बैठे कनक को बेचैनी अनुभव हो रही थी। उस ने अपने

आप को धैर्य दिया---अभी तो दो ही दिन हुये हैं। सूर्यास्त हो चुका था। कनक ने बिजली जला ली। मिसेज पंत नहीं लौटी थीं। कनक फिर उपन्यास पढ़ने लगी।

दरवाज़े पर दस्तक सुनायी दी--"आ सकता हूं !"

कनक ने दरवाजे की चिक के पास आकर झाँका, अवस्थी जी थे।

"आइये, आइये !" कनक ने द्वार खोल दिया, "बैठिये।"

"मिसेज पंत कहाँ हैं ? अभी नहीं लौटीं ?" अवस्थी जी ने पूछा।

कनक ने अवस्थी जी को आरामकुर्सी पर बैठा दिया। स्वयं छोटी कुर्सी लेकर कुछ अन्तर से बैठ गयी।

"आप आयी नहीं, न कल न आज। हम सैक्रेटेरियेट से लौट रहे थे तो ख्याल आया, आप का हाल-चाल पूछते चलें।"

"मैंने सोचा, आप के इतने महत्वपूर्ण कामों में विघ्न पड़ेगा। आप ने बुलाया है तो आप को स्वयं ही ख्याल रहेगा।"

"ज़रूर ख्याल है, क्यों नहीं। यहाँ किसी प्रकार का कष्ट तो नही है ?"

"जी नहीं, बहुत सुविधा है।"

"नहीं कोई तकल्लुफ नहीं होना चाहिये। आप साफ कहिये। यदि कष्ट हो तो दूसरा प्रबन्ध हो सकता है।" अवस्थी जी ने चेतावनी के स्वर में कहा।

"जी नहीं, बहुत आराम से हूं।"

"हमारा मतलब है, आप को किसी दूसरे प्रकार के खाने का अभ्यास हो तो निस्संकोच मिसेज पंत से कह दीजियेगा। बिलकुल अपना ही घर समझिये।"

"जी कोई भी कष्ट या असुविधा नही है।"

अवस्थी जी ने दिल्ली में कनक के माता-पिता के रहने के स्थान आदि के विषय में प्रश्न किये और परामर्श दिया—"दिल्ली की अपेक्षा लखनऊ अच्छा रहेगा। सब लोगों को यहाँ ही बुला लीजिये।"

कनक ने दुरानी गली में पिता जी के मकान खरीद लेने और मकान के विषय में हुयी घटना सुना दी।

अवस्थी जी ने गहरी सहानुभूति प्रकट की—"गांधी जी तो आदर्श की बात कह देते है। निवाहना तो हमें पड़ता है।" उन्हों ने पूछा, "आप किस प्रकार का काम करना पसन्द करेंगी।"

कनक ने उत्तर दिया कि वह सभी कुछ करने को तैयार है परन्तु लड़कियों के स्कूल अथवा केवल स्त्रियों में काम की अपेक्षा सरकारी नौकरी मिल सके तो अधिक अच्छा समझेगी।

अनुभव होता था परन्तु अवस्थीजी का स्पर्श उसे निस्संकोच न लगा। कुछ समय बाद वह विद्रूप से मन ही मन हंसी—कांग्रेसियों ने गांधी जी से एक ही बात सीख ली है कि चाहे जिस लड़की या स्त्री के कंधे पर हाथ रख लें। सभी अपने को राष्ट्रपिता समझने लगे हैं।

कनक संध्या भोजन के बाद कमरे में खाट पर लेटी सोच रही थी। वह अपने पांव खड़े होने का दृढ़ निश्चय किये थी। उस ने पुरी को खोजने के लिये प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया था परन्तु पांच दिन में उस के लिये कुछ भी न कर सकी। पुरी को अपना समाचार दे सकने और उस का समाचार पाने का उपाय न कर सकी थी। उपाय केवल रेडियो द्वारा सूचना देना ही सूझा था। दिल्ली में पिता जी और दूसरे भी अपने बिछुड़े हुये मित्रों और सम्बन्धियों को अपना पता देने का यही उपाय कर रहे थे। रेडियो पर समाचार देने से पिता जी भी सुन सकेंगे, इस संकोच को कब तक निबाहती रहे पर लखनऊ में रहने का निश्चय हुये बिना पता क्या दे? नैनीताल के रायल होटल में पुरी के साथ दो संध्या बिताये कुछ घंटों की स्मृति ने शरीर को ऊष्ण और कंटकित कर दिया। कनक तड़प उठी, आंसू बह चले। कनक को रोना अच्छा नहीं लगता था परन्तु एकान्त पाकर सिर को चादर में छिपाकर खूब रोई।

सप्ताह भर में नौकरी द्वारा स्वावलम्बी बन सकने का कोई सहारा न पा सकने से कनक को घबराहट अनुभव होने लगी थी परन्तु पिता को पत्र में यही लिखा था कि वह उत्तर प्रदेश विधान सभा की सदस्य श्रीमती पंत के साथ बहुत आराम से थी और पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी श्री अवस्थी जी की सहायता से उसे शीघ्र नौकरी पाने की आशा थी परन्तु बहिन और जीजा को जालंधर लिखे पत्र में उतना विश्वास प्रकट न कर सकी। उन्हें लिखा था—अभी तो कुछ नहीं बन सका परन्तु मैं धैर्य से हूं। कुछ समय लगना तो स्वाभाविक भी है। जीजा को पत्र ऐसे लिखा था मानों अपने आप को समझा रही हो।

अवस्थी जी के यहां से नौकरी मिल जाने के संदेश की प्रतीक्षा में मिसेज पंत के कमरे में बैठे-बैठे दिन बिता देना कनक के लिये कठिन हो रहा था। मिसेज पंत उसे उदास और सुस्त देख कर संध्या समय काफ़ी पिला लाने के लिये हजरतगंज ले गयीं। कौंसिलर्स रेजीडेंस में रहने वाले एक और सदस्य ठाकुर मुर्लीधरसिंह भी साथ हो लिये थे।

ठाकुर मुर्लीधरसिंह शरीर से रोबदार थे। खद्दर के कुर्ते और पश्मीने की वंडी भरी हुई तोंद पर फिट थी। कनक का परिचय पाकर और उस की समस्या

जान कर ठाकुर साहब ने उसे सीतापुर में डेढ़-सौ रुपया मासिक पर अध्यापिका की नौकरी दिला सकने का पक्का आश्वासन दे दिया।

कनक अपरिचित जगह में चली जाने की अनुमति तुरन्त न दे सकी। उसने कृपा के लिये धन्यवाद दिया—"अवस्थी जी यहां यत्न कर रहे हैं। यहां न हो सका तो अवश्य आप से प्रार्थना करूंगी।"

अगली संध्या अवस्थी जी फिर आये। मिसेज पंत कमरे में ही थीं। उन्होंने छेदी को पुकार कर अवस्थी जी के लिये चाय लाने का आदेश दे दिया और चाय पीकर मिसेज पंत शास्त्री जी से बहुत आवश्यक काम बता कर चली गयीं।

अवस्थी जी ने बहुत आत्मीयता से कनक को आश्वासन दिया—"तुम हमारे विश्वास पर आयी हो तो तुम्हें हमारा भरोसा करना चाहिये। हम से संकोच की क्या बात है" उन्हों ने मुस्कराकर कहा और शाल के नीचे बंडी की जेब से दस-दस के पांच नोट निकाल कर कनक का हाथ पकड़ उस के हाथ में थमाते हुये बोले, "तुम्हें खर्च की तंगी है, हम से कहा क्यों नहीं?"

कनक ने हाथ खींच लिया। उस का चेहरा गम्भीर हो गया—"मुझे खर्च की तंगी नहीं है। मेरा प्रयोजन तो स्वावलम्बी बनने का है। आवश्यकता होगी तो मैं पिता जी से मंगवा लूंगी।"

कनक ने मुर्लीधरसिंह द्वारा सीतापुर में अध्यापिका की नौकरी के आश्वासन की बात बताकर कहा—"आप कहें तो मैं ठाकुर साहब से बात करूं।"

अवस्थीजी ने पल भर कनक की ओर देखा। रुपये जेब में रख कर गम्भीर स्वर में बोले—"खैर, कोई बात नहीं। हम यह कहने आये थे कि तुम कल सूचना विभाग के डाइरेक्टर के नाम जर्नलिस्ट की जगह के लिये एक एप्लीकेशन लिख कर हमें दे देना। एप्लीकेशन में अपने साहित्यिक कार्य के विषय में जरूर लिख देना। घबराने की कोई जरूरत नहीं है।" अवस्थी जी अधिक देर नहीं बैठे। अपने पर विश्वास रखने का आश्वासन देकर चले गये।

संध्या समय मिसेज पंत के शीघ्र लौट आने की कोई आशा नहीं थी। कनक भूख अनुभव कर भोजन के कमरे में चली गयी। भोजन के कमरे में उस समय दूसरा कोई नहीं था। कनक भोजन समाप्त नहीं कर पायी थी कि ठाकुर मुर्लीधरसिंह ने द्वार से झांका। कनक को देख कर उन्हों ने प्रसन्नता प्रकट की और आकर समीप की कुर्सी पर बैठ गये। उन्हों ने मेस के नौकर बेचू को पुकार लिया—"जा बे, नुक्कड़ की दुकान से आध पाव रबड़ी तो ले आ।" उन्होंने एक अठन्नी मेज पर फेंक दी।

मुर्लीधरसिंह कनक को समझाने लगे—"लखनऊ की अपेक्षा सीतापुर में

बहुत आराम रहेगा। वहां सब कुछ सस्ता है, जलवायु अच्छा है। लखनऊ में मकान कहां मिलेगा? वहां मकान की भी कोई दिक्कत नहीं होगी। आप अपने परिवार को भी बुला सकेंगी?"

रबड़ी आ जानें पर मुर्लीधरसिंह ने दोना कनक के सामने रख दिया। कनक ने अनिच्छा प्रकट की। इंकार में सिर हिलाया पर वे न माने जैसे उन का यह आत्मीयता का अधिकार हो।

कनक भोजन के दाम उसी समय दे देती थी। उस ने अपने बटुए से दो रुपये का नोट मेज पर रख दिया। ठाकुर मुर्लीधरसिंह ने बेचू को दाम लेने से मना करके अपने हिसाब में लिख लेने के लिये आदेश दे दिया। कनक ने बेचू से अपने नोट की वापिसी मांगी।

मुर्लीधरसिंह ने नोट उठा कर कनक के बटुये में डाल देना चाहा।

दरवाजे में गिरजा भाभी दिखाई दे गयीं। वे बोल उठीं—"क्यों, क्या है, क्या झगड़ा है?"

ठाकुर मुर्लीधर सहम कर पीछे हट गये और फिर हंस कर बोले—"देखिये भाभी जी, यह हम लोगों की महमान है। भोजन के दाम देने की जिद्द इन की ज्यादती है या नहीं?"

"मैं तो रोज देती हूं। मेहमानी एकाध दिन की होती है।" कनक ने कह दिया और नोट बेचू की ओर खिसका दिया।

"बड़ी जिद्दी हैं पर भाभी जी, यह मुनासिब तो नहीं है।" मुर्लीधरसिंह गिरजा भाभी की ओर मुस्कान में दांत दिखा कर चल दिये।

"चेंज फिर ले लूंगी" कह कर कनक भी जा रही थी।

"ए लड़की, ज़रा ठहरो, एक मिनट बैठो।" गिरजा भाभी ने नुक्ते से दुरुस्त उर्दू के लहजे में चर्बी भरे गले से हुक्म-सा दिया।

गिरजा भाभी का कुर्सी में भर कर आने वाला शरीर, उन की मुद्रा, खूब गोरा रंग और ढंग ऐसा था कि सब उन का आदर करते थे। अधिकांश लोग उन्हें 'गिरजा भाभी' और कुछ 'मम्मी' भी पुकारते थे। वे उत्तर प्रदेश कांग्रेस की बहुत पुरानी कार्यकर्ता और प्रसिद्ध प्रतिष्ठित परिवार की थीं।

कनक गिरजा भाभी के समीप की कुर्सी पर बैठ गयीं।

"तुम्हें हम यहाँ कई दिन से देख रही है। तुम उस नैनीताल वाली, क्या कहते है, मिसेज पंत के कमरे में हो न? क्या करती हो तुम? तुम पंजाबी रिफ्यूजी हो?" गिरजा भाभी के खूब गोरे, मांस की मोटी तह जमे माथे पर त्योरियों के चिह्न पड़ गये, जैसे अप्रसन्न हों।

कनक कुछ सकपकाई। संक्षेप में अपना परिचय, अवस्थी जी और मिसेज पंत से परिचय होने और लखनऊ आने का प्रयोजन बताकर चिन्ता भी प्रकट की—"आठ दिन हो गये। कल दरखास्त देने को कहा था। मैंने दे दी है।"

"इन्हें नौकरी दिलानी थी तो तुम्हारी दरखास्त मंगा लेते या क्या कहते हैं कि जवान लड़की को घरबार से छुड़ा कर बेमतलब बुला लेना चाहिये था।" गिरजा भाभी की भवें उठ कर माथे की शिकन और गहरी हो गयी।

कनक को शंका का धक्का सा लगा।

गिरजा भाभी कहती गयीं—"बेटी, तुम किन लोगों के चक्कर में पड़ गयी हो। होशियारी से रहना, समझी! तुम आज़ाद ख्याल खान्दान में पली लगती हो। यह सब लोग निहायत कमीने हैं। अपनी बीबियों, लड़कियों को पर्दे में रखेंगे और दूसरों की बहू-बेटियों को खिलौना बना लेने को ललक पड़ते हैं। खबरदार, अपनी आबरू अपने हाथ होती है। तुम यहाँ कुछ अन्देशा देखो तो एकदम लौट जाओ या हम से कहना। हम किसी शरीफ घर में तुम्हारे लिये इन्तजाम कर देंगी। सुनो, तुम अवस्थी से हमारा नाम लेना और कहना—हमें बतायें कहाँ जगह है, कहाँ दरखास्त दी है, मामला किस के हाथ में है।"

लखनऊ में तीन सप्ताह प्रतीक्षा करने के बाद कनक को सूचना विभाग के डाइरेक्टर के यहाँ से इन्टरव्यू के लिये बुलावा आया था। डाइरेक्टर के चपरासी ने कनक को इन्टरव्यू से पूर्व प्रतीक्षा के लिये जिस कमरे में जगह दिखायी, वहाँ दो युवक पहले से कुर्सियों पर बैठे बातचीत कर रहे थे। कनक को देख कर दोनों ने खड़े होकर युवती के प्रति आदर प्रकट किया। एक युवक दुबला-पतला छोटे कद का, सांवले चेहरे पर कुछ बड़ा चश्मा लगाये, सफेद गांधी टोपी और कत्थई अचकन पहने था। दूसरा अच्छे डील का, खाकी फौजी ढंग की बुशशर्ट और पतलून पहने था। उस के गेहुंआ रंग के मूंछ-दाढ़ी सफाचट चेहरे पर विचित्र-सी गम्भीरता थी। भूरी सी आँखों में पैनापन था।

"बहिन जी, आप भी इन्टरव्यू के लिये आयी हैं?" कनक के कुर्सी पर बैठ जाने पर अचकन पहने युवक ने उस की ओर झुक कर पूछ लिया।

"जी हाँ।" कनक ने उत्तर दिया।

"हिन्दी की पोस्ट के लिये या उर्दू की?"

"उर्दू का अभ्यास अधिक है। हिन्दी भी जानती हूं।"

"आप ने अप्लाई तो उर्दू पोस्ट के लिये ही किया होगा?" युवक ने पान की रंगत लिये दाँत निकाल कर जिज्ञासा की।

दूसरा युवक मौन कनक की ओर देख रहा था।

कनक ने गर्दन झुकाकर स्वीकार किया।

अचकन पहने युवक ने कुर्सी से खड़े होकर, सीने से अचकन के शिकन खींचते हुये अपना परिचय दिया—"सेवक को शिवप्रसाद तिवारी 'आलोक' कहते हैं। फ्रीलांस जर्नलिज्म करता हूं। कविता भी लिखता हूं। प्रायः ही कवि-सम्मेलनों में जाना होता है। श्री गिल पंजाबी हैं।" आलोक ने खाकी कपड़े पहने युवक की ओर संकेत कर दिया।

युवक मौन रहा। उस ने सिर झुका कनक की नमस्ते का उत्तर दे दिया।

आलोक ने कलाई पर घड़ी देख कर माथे पर बड़ा सा टीका लगाये अर्दली को सम्बोधन किया—"क्यों पंडित, क्या ख्याल है? साहब ग्यारह तक ही आयेंगे?"

"यही ग्यारह-साढ़े ग्यारह तक आ जाते हैं।" अर्दली ने जीभ तले दबा तम्बाकू घुमाते हुये उत्तर दिया।

"शुक्ला जी तो आ गये होंगे?"

आलोक ने अर्दली से स्वीकृति का संकेत पाकर कहा—"हम दो मिनट शुक्ला जी के यहाँ हो लें। साहब जल्दी आ जायें तो हमें खबर कर देना।"

अर्दली का समर्थन पाकर आलोक जी बाहर चले गये।

कनक गोद में रखे बटुये को दोनों हाथों से दबाये, शून्य दीवार की ओर देख रही थी।

"आप शायद लाहौर में रहती थीं?"

"जी हाँ" कनक ने खाकी कपड़े पहने युवक की ओर घूम कर उत्तर दिया।

"याद पड़ता है सन् ४२ के आन्दोलन के दिनों में आप को लाहौर में देखा था।"

"जी हाँ, आप भी लाहौर में थे?"

"मैं लाहौर में 'सितारा' में काम करता था। आप का परिवार लखनऊ आ गया है?"

"पिता जी और माँ-बहिन तो दिल्ली में ही हैं। अभी मैं ही आयी हूं।"

"शायद तब आप स्टूडेंट कांग्रेस में थीं। आप के पिता जी सर्विस में थे या बिजनेस था?"

"पिता जी का नयाहिन्द प्रेस और पब्लिकेशन था।"

"आप के पिता पंडित गिरधारीलाल जी हैं?" युवक की आँखें कुछ अधिक खुल गयीं।

"जी हाँ।"

युवक मौन हो गया। उस की दृष्टि फर्श पर चली गयी। कनक ने भी आँखें फेर लीं। वह उदास युवक, समय काटने के लिये लाहौर के नाते कुछ बात करता तो कनक को अच्छा लगता।

"क्षमा कीजिये" कनक ने अंग्रेज़ी में युवक का स्वर सुन कर उस की ओर देखा, "आप क्या दिल्ली से इसी नौकरी की आशा में आयी हैं ?"

कनक ने गर्दन झुकाकर हामी भरी और पूछ लिया—"आप लखनऊ में ही रहते हैं ?"

युवक ने उत्तर देने के लिये कनक की ओर देखा—"हाँ" और कुछ झिझका, "क्या पंडित जी बहुत कठिनाई में हैं ?"

"सभी लोगों की ऐसी ही हालत है। हमारा प्रेस, मकान सभी कुछ लाहौर में रह गया है। रहने के लिये दिल्ली में खंडहर जैसा मकान मिला है।"

युवक कुछ देर मौन रह कर फिर बोला—कनक ने देखा, वह आँखें झुकाये था—"मैं भी उर्दू जर्नलिस्ट की जगह के लिये उम्मीदवारी में आया था पर गुजारे के लिये एक इंगलिश-डेली में प्रूफरीडर का जाब मेरे पास है।"

दोनों ने चुप रह कर आँखें झुका लीं।

"पंडित जी का तो यहाँ के कांग्रेसी लोगों में भी परिचय होगा ?" युवक ने कुछ पल बाद सोचकर पूछा।

"विशेष तो नहीं है।" कनक ने उत्तर दिया।

आलोक तेज कदम रखते हुये आ कर बोले—"डाइरेक्टर साहब कमरे में आ गये हैं।"

"आप के लिये तो कुछ सिफारिशें भी होंगी।" युवक ने कनक से पूछ लिया।

"पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी अवस्थी जी ने विश्वास तो दिलाया है।" कनक ने स्वीकार किया।

"तब क्या है, निश्चय समझिये।" आलोक जी बोल उठे।

"देखिये, पहले किस की पेशी होती है।" आलोक अपने मज़ाक पर हंस दिये, "भई सब लोग इन्टरव्यू समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा करें। बाद में सब लोग चल कर काफी हाउस में एक साथ काफी पियेंगे।" आलोक जी ने आग्रह किया।

चपरासी घंटी सुन कर कमरे के भीतर गया और लौट कर उस ने पुकारा "पी० यस० गिल शाब।"

गिल कुर्सी से उठा नहीं। उस ने कह दिया—"हम इन्टरव्यू नहीं देंगे।"

कनक ने विस्मय से उस की ओर देखा और सांस लेकर रह गयी।

चपरासी कमरे में गया और लौट कर उस ने पुकारा—"मिस कनक दत्ता जी।"

कनक डाइरेक्टर साहब के प्रश्नों का उत्तर दे कर लौट आयी। आलोक जी ने भीतर बुलाये जाने से पूर्व फिर अनुरोध किया—"आप दोनों हमारी प्रतीक्षा कीजियेगा। हम लोगों को कुलीग (सहकर्मी) बनना है। यही पाँच-सात मिनट हमें भी लगेंगे।"

गिल ने कनक से आलोक के बुलाये जाने पर पूछा—"आप की इन्टरव्यू ठीक रही?"

"क्या कह सकती हूं, दो-तीन दिन में खबर मिलेगी। आप को भी इन्टर-व्यू देनी चाहिये थी।"

"मेरे पास तो एक जाव है।"

"आप आये तो इसीलिये थे।"

"हाँ, यहाँ तनख़ाह अच्छी है। मेरा ख्याल था, उर्दू पोस्ट के लिये और कोई आदमी नहीं होगा। लियासों आफिसर ने मुझे यही बताया था।"

"मुझ से उन्हों ने पत्र के दफ्तर में काम करने और अनुवाद वगैरह के अनुभव के विषय में पूछा। मैं क्या कह सकती थी? मैंने तो कह दिया, मुझे विश्वास है कर सकूंगी, अनुभव तो नहीं है। आप को तो अनुभव भी है।"

कनक ने अपनी स्पष्टवादिता से प्रकट कर दिया कि गिल की उदारता के लिये वह कृतज्ञ थी पर शायद उसे कुछ लाभ न हो सकेगा।"

"नहीं, नहीं यह बात नहीं है।" गिल ने आँखें चुराये कनक की कृतज्ञता को अनावश्यक बता कर उस की ओर देखा, "मुझे जगह यों भी नहीं मिलती। कोई सिफारिश तो है नहीं। बस हैरल्ड के एडीटर ने दो लाइनें लिख दी हैं। लियासों अफसर ने तो कहा था—कोई अच्छी सिफारिश लेकर जाना। किस से सिफारिश लाता? सोचा था मैं ही एक उम्मीदवार हूं इसलिये चला आया था।"

गिल और कनक आलोक की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे थे। कुछ सोच कर कनक ने गिल को सम्बोधन किया—"एक्सक्यूज मी प्लीज।"

"यस।" गिल ने उस की ओर देखा।

"आप सितारा में काम करते थे? शायद जयपुरी जी को जानते होंगे।"

"जी हाँ, निश्चय जानता हूं·······" आलोक के आने की आहट से वह रुक गया।

"हमारा तो सब ठीक हो गया।" आलोक जी बहुत प्रसन्न थे, "हम तो पहले ही जानते थे। हमें तो स्वयं बुलाया गया था। आइये अब चलें।"

आलोक, गिल और कनक कमरे से चले तो चपरासी पंडित ने सामने आकर सलाम कर दिया। आलोक ने जेब से एक रुपया निकाल उसे थमा दिया।

सेक्रेटेरियट से बाहर सड़क पर आकर आलोक दोनों से बात कर सकने के लिये कनक और गिल के बीच में हो गया। वह अपने और डाइरेक्टर के बीच हुये प्रश्नोत्तर को ब्योरे से सुना रहा था। काफी हाउस पहुंचने तक उन की बात चलती रही। आलोक को इन्टरव्यू में जितना समय लगा था, उस से अधिक समय इन्टरव्यू की रिपोर्ट देने में लगा। आलोक ने कनक और डाइरेक्टर साहब के बीच हुयी बातचीत के विषय में पूछ कर राय दी कि कैसे उत्तर दिये जाने चाहिये थे। आलोक बहुत उत्साहित था।

कनक हतोत्साह थी। आलोक के अनुसार उस के उत्तर ठीक नहीं थे।

आलोक जी ने गिल से पूछा—"लाहौर में आप उर्दू एडीटर थे?"

"एडीटर तो प्रोप्राइटर ही था पर काम मुझे ही करना पड़ता था। साप्ताहिक पत्र था।"

"तो यहां आप हैरल्ड में अंग्रेजी में एडिट कर लेते हैं?" आलोक ने विस्मय प्रकट किया।

"अवसर हो तो कुछ कर ही सकता हूँ। अभी तो प्रूफरीडर की ही जगह मिल सकी है।"

"प्रूफरीडर? उस के लिये क्या मिल जाता होगा?"

"कुछ भी नहीं।"

"आखिर तो?"

"अस्सी रुपये।"

कनक की दृष्टि गिल के चेहरे की ओर उठ गयी।

"इस जाब में तो आप को उस से तिगुना मिल जाता।" आलोक ने कहा, "आप का तो सर्टन था। आपने इन्टरव्यू मिस कर दिया, गलती की।"

इस बार कनक गिल की ओर आंख न उठा सकी। आलोक ने गिल को गम्भीरता से परामर्श दिया—भविष्य में सूचना विभाग में जर्नलिस्ट के लिये स्थान होने पर उसे अवश्य यत्न करना चाहिये। आश्वासन भी दिया कि वह वहाँ होगा ही और जरूर सहायता करेगा।

काफी पीते समय आलोक ने कनक को हिन्दी का अभ्यास बढ़ाने का परामर्श दिया—"अब तो समझ लीजिये, हिन्दी ही राष्ट्रभाषा है। अंग्रेजी-उर्दू

को कौन पूछेगा।" कनक की रचनायें हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में छपवा सकने का विश्वास दिला कर पूछा, "आप कविता भी करती है ?"

कनक ने इन्कार कर दिया। आलोक ने अपनी दो छोटी-छोटी कवितायें 'परिवर्तन का गर्जन' और 'अपरिचिता' सुना दी। कनक और गिल को बोलने का अवसर लगभग नहीं मिला। दो बार कनक की आंखें गिल से मिलीं। उसे लगा, आलोक उन्हें आपस में बात करने का अवसर नहीं देगा। वह पुरी के विषय में पूछने के लिये छटपटा रही थी।

काफी पी चुकने के बाद आलोक कनक को रिक्शा पर कौंसिलर्स रेजीडेंस तक पहुंचा आने के लिये तैयार था परन्तु कनक ने अनिच्छा प्रकट कर दी। आलोक सूचना विभाग में दर्शन पाने की आशा प्रकट करके चला गया।

कनक को कौंसिलर्स रेजीडेंस लौटना था। गिल को भी उसी रास्ते उदयगंज जाना था। सड़क पर आते ही कनक ने बात आरम्भ की—

"आपने कहा था, पुरी जी को जानते है ?"

"हां, बहुत अच्छी तरह। पुरी क्या दिल्ली में है ? किसी पत्र में काम कर रहा होगा ?"

"मालूम नहीं, कुछ पता नहीं मिल सका। 'सरदार' और 'पैरोकार' मे तो नहीं थे।" कनक का उत्साह कम हो गया। गिल को पुरी का वर्तमान पता मालूम नही था।

, "पैरोकार में क्या होगा" गिल ने टोक दिया। कशिश ने उस के साथ बहुत अन्याय किया था। उस मामले में पत्रकारों की मीटिंग में मैंने भी उसे सप्पोर्ट किया था।"

"पुरी जी १९ अगस्त को नैनीताल में थे। उस के बाद से उन की कोई खबर नहीं मिली।" कनक ने बताया।

"खयाल है, पुरी कहीं यू० पी० में ही होगा, इलाहाबाद या आगरा में। वह हिन्दी खूब जानता है।"

१९ अगस्त को वह नैनीताल से अपने माता-पिता की सहायता के लिये लाहौर गये थे।"

"१९ अगस्त को ? वह तो बहुत बुरा समय था। हम लोग उस समय लालामूसा कैम्प में थे। तब लगता था, कैम्प में ही समाप्त हो जायगे पर बच ही गये। भविष्य का कभी कुछ अनुमान नहीं हो सकता।"

कनक और गिल जाड़े के दोपहर की धूप में बात करते जा रहे थे। दोनों का पहला ही परिचय था। उन के चारों ओर सब अपरिचित ही अपरिचित थे

इसलिये वे दोनों लाहौर के सम्बन्ध से और पुरी के परिचय के सूक्ष्म सूत्र से समीपी हो गये थे। गिल से प्रथम सम्पर्क में ही कनक ने उस की उदारता और उस का सौजन्य देख कर उस के प्रति विश्वास और आदर अनुभव किया था।

गिल पुरी का परिचित था। कनक को पुरी के सम्बन्ध में ज्ञात करने का अवसर मिला। वह अपने परिवार के लोगों से पुरी के सम्बन्ध में निस्संकोच बात नहीं कर सकती थी पर गिल से उस प्रकार के संकोच की भी आवश्यकता नहीं थी।

कनक ने अनुरोध किया—"आप रेडियो द्वारा अपने पते पर पुरी जी का पता मंगा सकते हैं ?"

गिल ने स्वीकार किया—"हां जरूर, परन्तु रेडियो सुनने का अवसर कितने लोगों को मिलता है ? पुरी कहीं कैम्प में होगा तो शायद रेडियो सुन पायेगा। मुझे यहाँ जब से उदयगंज में एक भगोड़े मुसलमान की खाली जगह मिल गयी है, दो मास में एक बार भी रेडियो नहीं सुना। यों दिल्ली रेडियो को एक पत्र और लिख देने में क्या हर्ज है ?"

कनक कहती गयी—"पुरी जी ने मुझे बहुत दिन तक पढ़ाया है। मेरा विचार हिन्दी प्रभाकर की परीक्षा देने का था। वे मेरी सहायता कर रहे थे। पिता जी ने आग्रह किया तो भी उन्हों ने ट्यूशन के रुपये कभी नहीं लिये। उन्हों ने मुझे लिखने के लिये उत्साहित किया था और सिखाया भी था। पिता जी को उन की कहानियां बहुत पसन्द हैं। पिता जी उन का एक संग्रह छापना चाहते थे पर झगड़े में सब रह गया। वे मेरी कहानियां ठीक कर देते थे। उन्हों ने मेरी दो कहानियां पैरोकार के साप्ताहिक अंकों में छपवा दी थीं। कई लेख यों ही रह गये। मुझे तो आधुनिक लेखकों में उन के बराबर कोई नहीं जंचता। नैनीताल में उन्हें हमीं लोगों ने बुलाया था इसलिये मुझे और भी अधिक चिन्ता है।"

गिल ने स्वीकार किया—"पुरी वास्तव में बहुत अच्छा लिखता है। उस की कल्पना बहुत यथार्थ जंचती है। हम लोगों का बहुत पुराना परिचय है। पुरी मुझ से दो साल जूनियर था। वह दयालसिंह कालेज में था और मैं क्रिश्चियन कालेज में। सन् ४०–४१ में साहित्यिक गोष्ठियों में प्रायः मिलते थे, आन्दोलन में भी साथ था। ४२ में युद्ध के सम्बन्ध में नीति पर मतभेद के कारण मिलना-जुलना कम हो गया था लेकिन इस मई में फिर कई बार वह 'सितारा' में आया था।"

कनक और गिल कौंसिलर्स रेजीडेंस के दरवाजे पर पहुंच गये थे। गिल

ने ठिठक कर पैंट की जेबों में हाथ डाल लिये—जैसे आदमी सहसा कुछ सोचने के लिये ठहर जाता है।

"आप को घर लौटने की जल्दी है ? धूप अच्छी नहीं लग रही ?" कनक ने पूछ लिया।

"मुझे जल्दी नहीं है। कुछ दूर और चलेंगी ? सामने स्टेशन रोड है।"

कनक और गिल हुसैनगंज का चौराहा पार कर हल्की चढ़ाई पर चल दिये। कनक ने पूछ लिया—"आप क्या कम्युनिस्ट पार्टी के मेम्बर हैं।

"नहीं, अब नही हूं पर मैं ४३-४४ में 'कौमी जंग' के सम्पादन में काम करता था।"

"आप नरेन्द्र, असद, प्रद्युम्न वगैरह को भी जानते होंगे। मार्च, अप्रैल और मई में शांति स्थापना के लिये पुरी जी भी उन लोगों के साथ काम कर रहे थे। उन दिनों भी आप उन के साथ होंगे ?"

"४५ के अंत में मैं पार्टी से अलग हो गया था।"

"क्यों ?……वे लोग पाकिस्तान की मांग का समर्थन कर रहे थे न ?" कनक ने अनुमान प्रकट किया।

"मुझे तो उन लोगों ने पार्टी से एक्सपेल (बहिष्कृत) कर दिया था।"

"क्यों, किस बात पर ?" कनक ने विस्मय से पूछा।

"लम्बी बात है।" गिल कुछ रुका और जल्दी में कह गया—"इसलिये कि मैंने केश कटा दिये थे। पहले मेरे सिर पर केश थे। मेरे माता-पिता सिख थे। सन् ४५ तक मेरे सिर पर भी केश थे।"

कनक ने ध्यान से गिल की ओर देखा। वह बहुत सुघड़ और भला लग रहा था। विचार आया—केश और दाढ़ी-मूंछ से चेहरा ढंक दिया जाने पर गिल कैसा लगता होगा ? गिल के उघाड़े सिर पर कतरे हुये घने, कड़े और खड़े रूखे केश और सफाचट चेहरे पर साहस और भरोसा झलक रहा था। ऐसे चेहरे-मोहरे पर जबरन केश-पगड़ी और दाढ़ी-मूंछ चिपका देने की कल्पना कनक को अन्याय लगी। उसे गिल के प्रति बहुत सहानुभूति अनुभव हुई।

कनक पूछे बिना न रह सकी—"केश रखना या शेव कर लेना तो व्यक्तिगत रुचि और विश्वास की बात होनी चाहिये। ऐसे मामले में पार्टी से एक्सपेल करने का क्या कारण हो सकता है ? नरेन्द्रसिंह और उस की बहिन सुरेन्द्र तो जरा भी कट्टर नहीं थे।"

"मैं जानता हूं, कम्युनिस्टों में अंध-विश्वास या साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं होती, होनी भी नहीं चाहिये। बहुत से सिक्ख कामरेडों में केशों के प्रति आस्था

नहीं थी परन्तु पंजाब पार्टी ने नियम बना दिया था कि सिक्ख कामरेड केश न कटायें। कामरेडों के ऐसा करने से सर्व-साधारण सिक्खों में पार्टी के प्रति विरोध भावना पैदा हो जाने की आशंका थी।"

कनक ने गिल के प्रति सहानुभूति में कम्युनिस्टों के प्रति क्रोध प्रकट किया, "लोगों को विश्वास के विरुद्ध व्यवहार के लिये विवश करना छल के लिये मजबूर करता हुआ। यह तो बहुत अन्याय था।"

गिल ने कनक की बात स्वीकार करके भी पार्टी के प्रति लांछन का निराकरण करना चाहा—"छल तो नहीं, यह परिस्थिति के विचार से पार्टी का 'पालिटिकल डिसीप्लिन' (राजनैतिक अनुशासन) था।"

"आप ने अच्छा किया कि केशों से मुक्ति लेली। तब जाने आप कैसे लगते होंगे" कनक ने अपनी बात से झेंप अनुभव की और तुरन्त कहा, "खैर, आपने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिये उन के नियम की परवाह नहीं की। यह भी तो सिद्धान्त की बात थी। आपने उचित ही किया।"

"हां, हो गया····" गिल फुटपाथ पर नजर झुकाये चल रहा था। अपनी बात पूरी न कर ध्यान में खो गया। गिल के मौन हो जाने पर कनक ने पूछ लिया, "व्यक्तिगत स्वतंत्रता, व्यक्ति के अपने विचारों का क्या कुछ मूल्य नहीं है?"

"आई डोंट नो।" गिल स्मृति में खोये व्यक्ति के ढंग से अस्पष्ट से स्वर में बोला, "आई लास्ट पार्टी, आई लास्ट माई सेल्फ, आई लास्ट फैमिली एण्ड आई लास्ट आल(पार्टी गयी, खुद डूबा, परिवार गया और भी सब कुछ गया)।"

"ऐसी क्या बात हुई?" कनक ने सहानुभूति पूर्ण आग्रह से पूछा।

गिल कई कदम मौन रह कर गर्दन झुकाये ही बोला—"मैंने केश कटवा दिये तो मेरे चाचा ने मुझे त्याग दिया। पिता तो मेरे बचपन में ही मर गये थे। मैट्रिक में था तो माता का भी देहान्त हो गया था। मैं चाचा के यहां ही पला था। चाचा नहर विभाग में ओवरसियर थे। उन्हों ने ही मुझे पढ़ाया था। मेरे केश कत्ल करा देने से वे बहुत नाराज हो गये। उन्हों ने सुना तो मुझे पत्र लिख दिया—यदि मैंने सचमुच केश कत्ल करवा दिये हैं तो उन्हें कभी मुंह न दिखाऊं—जब रावलपिंडी कालेज में था, वहाँ के एक वकील की लड़की से मेरा प्रेम था। मेरे चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ आने से पहले से ही हम दोनों में आकर्पण था। बहुत दिन पहले ही हम दोनों ने विवाह करने का निश्चय कर लिया था।

सरस्वती को आशंका थी कि मेरी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं होगी तो उसके पिता हमारे विवाह के लिये अनुमति नहीं देंगे। वह यह भी जानती थी

कि मैं पार्टी का काम कर रहा था इसलिये वह पिंडी में बी० ए० पास करके ट्रेनिंग के लिये लाहौर आ गयी थी। उस का विचार था कि विवाह से पहले अपने पांव पर खड़ी हो जाये। लाहौर में हम लोगों के मिलने, बात कर सकने का अवसर भी रहता था। उसे केश, दाढ़ी-मूंछ से बहुत चिढ़ थी। सन ४५ में पिंडी गया था तो उसने कहा—मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकती हूं, मेरे कहने से यह जंजाल नहीं हटा सकते? मुझे स्वयं भी उन चीजों पर कोई श्रद्धा नहीं थी। मैंने लाहौर आकर पार्टी के लोगों से इस बात के लिये अनुमति मांगी। उन्हों ने इजाजत नहीं दी। मैंने तर्क किया—मुझे मन से आस्था नहीं तो मैं व्यर्थ का बंधन क्यों मानूं? पार्टी ने आपत्ति की कि यह गलत उदाहरण बन जायगा। उन्हों ने अनुमति नहीं दी। मुझे यह असह्य लगा। मैंने केश, दाढ़ी-मूंछ से छुट्टी ले ली।"

कनक ने दो-तीन बार गिल की ओर आंख उठा कर देखा और बोली—"यह तो एक प्रकार का धोखा था। लोगों की सहानुभूति पाने के लिये अपने विचारों के विरुद्ध चलना।"

गिल ने उत्तर दिया—"नहीं, वे लोग इसे जनता के साथ रह सकने के लिये एक प्रकार का आत्म-नियंत्रण समझते है।"

गिल गर्दन झुकाये कहीं दूर से बोलता जान पड़ रहा था। कुछ कदम मौन रह कर फिर बोलने लगा—"मई महीने में दंगों के कारण लाहौर में लड़कियों का ट्रेनिंग कालेज बन्द हो गया था। सरस्वती को पिंडी लौट जाना पड़ा। १३ अगस्त को पिंडी में भयंकर दंगा हो जाने का समाचार सुना। मैं तुरन्त सरस्वती के परिवार की सहायता कर सकने के लिये चल पड़ा। सब कुछ विश्रृंखलित हो चुका था। पिंडी पहुंचने में तीन दिन लग गये। तब तक उन का मुहल्ला-मकान सब समाप्त हो चुका था। उन के घर का कोई भी आदमी नहीं बच सका। मुझे स्वयं कैम्प में शरण लेनी पड़ी। कैम्प में परिचित हो गये एक सिक्ख बढ़ई के परिवार के साथ यहां अक्टूबर की ४ तारीख को पहुंचा था। मुझे तो प्रूफरीडर का काम मिल गया है। हजारों रोजी की तलाश में भटक रहे हैं। आप ने देखा ही है क्या हालत है? लाहौर में तो पंडित जी की स्थिति बहुत अच्छी थी। आप को भी नौकरी की तलाश करनी पड़ रही है।"

कनक स्तब्ध सुनती जा रही थी। बात करते हुये वे दोनों स्टेशन से आगे ऐशबाग के समीप सड़क पर रेल के पुल तक पहुंच गये थे। सूर्य पश्चिम की ओर ढल कर उन की आंखों पर पड़ रहा था। कनक चुपचाप सुन रही थी। वे लौटे तो दोनों चुप थे। कनक गिल से पायी सांत्वना और उस के प्रति

सहानुभूति से मौन थी। वह उस दर्द भरी गम्भीरता को तोड़ने के लिये उपाय सोच रही थी पर कुछ सूझ नहीं रहा था। गिल कैंट रोड पर कौंसिलर्स रेजीडेंस के फाटक पर आकर रुक गया।

"मिस दत्ता, क्षमा चाहता हूं" गिल गहरी सांस लेकर अंग्रेजी में बोला, "बातों में मुझे समय का ख्याल नहीं रहा।"

"आप क्या फिर नहीं आयेंगे ? मुझे यहां बहुत अकेला-अकेला लगता है। कोई भी परिचित नहीं है।" कनक ने अनुरोध किया।

"मैं तो इसी रास्ते से प्रेस जाता हूं। कोई काम हो तो जरूर कहियेगा। मैं प्रेस में बिना काम भी बैठा रहता हूं। कोई और जगह है ही नहीं। वहाँ फोन भी है—८९३।"

"आप समय पायें तो आइयेगा। मैं १७ नम्बर कमरे में बैठी रहती हूं। आप किस समय लौटते हैं ?"

"लौटता तो बेवक्त हूं, रात ढाई तीन बजे। कल दोपहर बाद आऊं ?"

"जरूर ! आज घूमने में बहुत अच्छा लगा। बैठे-बैठे तंग आ गयी हूं।"

दूसरे दिन कनक मिसेज पंत के कमरे का दरवाजा खोले चिक के पीछे कुर्सी पर बैठी कभी अखबार और कभी पुस्तक पढ़ती रही। उसे गिल की प्रतीक्षा थी। सोच रही थी—कितना भला आदमी है और उस पर क्या बीती है.....।

दो बजे गिरजा भाभी भोजन करके सींख से दांत कुरेदती हुई बरामदे में आ गयीं। कनक को पुकार कर उसकी इंटरव्यू के विषय में पूछने के लिये अपने कमरे में ले गयीं। स्वयं लेट कर कनक को पलंग पर बैठा लिया और बहुत सी बातें करती रहीं। गिरजा भाभी को लाहौर बहुत पसन्द था। वहाँ उन के कई सम्बन्धी रहते थे। लाहौर में काश्मीरियों के काफी परिवार थे। कनक पौन घंटे से पहले न लौट सकी।

गिल सूर्यास्त तक भी न आया तो कनक रह न सकी। कमरे में बैठने से बहुत घुटन सी लग रही थी। मुख्य बराम्दे में जाकर उस ने ८९३ नम्बर पर फोन कर गिल से बात करनी चाही।

गिल ने उत्तर दिया—"मैं सवा दो ढाई बजे के लगभग १७ नम्बर कमरे के सामने गया था। दरवाजा बन्द था। कल उसी समय आऊंगा।"

कनक को बुरा लगा। गिल की बातें बारबार याद आती रहीं।

अगले दिन कनक बहुत व्यग्रता से प्रतीक्षा करती रही जैसे अपने परिवार के किसी व्यक्ति या चिर-परिचित की प्रतीक्षा कर रही हो। चल-फिर सकने में सुविधा के लिये उस ने साड़ी-धोती के बजाय सलवार-कमीज पहन,

दुपट्टा ओढ़ लिया था ।

गिल ने कहा—"कल आप बोलचाल में तो पंजाबी थीं परन्तु साड़ी में कुछ अपरिचित, बड़ी-बड़ी सी लग रही थीं । आज बहुत स्वाभाविक लग रही हैं ।"

कनक सन्तोष से मुस्करा दी ।

उस दिन कनक और गिल बातचीत करते धारा सभा के सामने से हजरत-गंज होकर, दोनों ओर फैले पार्कों के बीच से गोमती के पुल के पार फ़ैज़ाबाद रोड तक चले गये । जाड़ों की धूप में, वृक्षों से छायी सूनी-सूनी साफ-साफ सड़कें भली लग रही थीं । कनक ने दिल्ली की कई घटनायें सुनायीं । दुर्रानी गली के मकान के सम्बन्ध में सैयद के गांधी जी की शरण पहुंच जाने और पुलिस और भीड़ में हुये झंझट की बातें भी सुनायीं ।

गिल ने संक्षेप में पिंडी से फीरोजपुर तक की पैदल-यात्रा के अनुभव बताये ।

कनक ने सर्दार के संचालक-सम्पादक असीर की बातें भी सुना दीं । रेस्तरां में असीर और सिन्हा के साथ हुआ अनुभव, उन के अनुरोध पर 'जिन' पी लेने की मूर्खता और सिन्हा की अशिष्टता के प्रति अपने विरोध की बात भी निस्संकोच बता गयी । उसे अपना मन का बोझ हलका कर लेने से सुविधा अनुभव हो रही थी ।

कनक ने बात समाप्त होते देख कर पूछ लिया—"आप का सरस्वती से परिचय कैसे हुआ था ?"

गिल बहुत ब्योरे से सब सुनाने लगा ।

कनक और गिल हज़रतगंज के रास्ते वापस लौट रहे थे । गिल की बात अभी समाप्त नहीं हुयी थी । काफी हाउस के समीप से गुजरते हुये कनक ने कह दिया—"काफी ज़रूर पियेंगे ।"

काफी हाउस में एक साथ बैठे तो कनक को याद आ गया—"गनीमत है आज वह बोर आलोक जी नहीं हैं ।"

दूसरे दिन कनक सूर्यास्त तक प्रतीक्षा करती रही । गिल नहीं आया । कनक ने आतुर होकर फोन किया ।

गिल ने उत्तर दिया, दोपहर बाद ड्यूटी करने वाला एक प्रूफरीडर बीमार हो गया था । गिल उस के स्थान पर काम कर रहा था ।

गिल दो दिन न आ सका । कनक को बहुत बुरा लग रहा था । पाँच दिन पहले से भी अधिक सूनापन लग रहा था । उस संध्या मिसेज पंत आयीं तो बोलीं—"मिठाई खिलाओ, यह लो तुम्हारा लेटर आफ अपाइंटमेंट । कल से वहाँ जाओगी न ?"

कनक का मन, तनखाह और महंगाई भत्ता मिलाकर दो सौ पैंतीस रुपये की नौकरी पा जाने से उछल रहा था। गिल को तुरन्त खबर दे कर कहना चाहती थी, आप ने अपना अवसर मुझे दिला दिया पर मैं वह काम कर भी पाऊंगी, मुझे अभी सीखना होगा।

कनक पहले दिन दफ्तर में दस से पांच बजे तक रह कर लौटी थी। दिन भर सुनने-समझने में ही बीता था। काम विशेष नहीं कर सकी थी परन्तु काफी समय कुर्सी पर बैठे रहना पड़ा था। वह थकान अनुभव करने के अधिकार से शाल ओढ़कर लेट गयी थी। सर्दी के मौसम में, शीघ्र सूर्यास्त से झुटपुटा अंधेरा हो रहा था। कनक ने आलस्य में बिजली नहीं जलायी। थकान में तेज प्रकाश अच्छा भी क्या लगता। सोच रही थी, थकान मिटाने के लिये जरा घूम-फिर कर पहले दिन के अनुभव गिल को सुनाये…।

"मिसेज पंत भीतर हैं ?" दरवाजे से अवस्थी जी का स्वर सुनायी दिया। कनक तुरन्त साड़ी का पल्ला सम्भाल कर उठ खड़ी हुयी। शाल कन्धों पर डाल कर दरवाज़े की ओर बढ़ गयी, "आइये !"

अवस्थी जी हंसते हुये भीतर आ गये—"कहो क्या हो रहा है ? सोचा तुम्हें बधाई तो देते चलें।"

कनक लजा गयी। तुरन्त बोली—"सब आप की ही कृपा से हुआ है। आप को ही श्रेय है। सोचा था, कल लंच टाइम में आप के कमरे में जाकर धन्यवाद दूंगी।"

"बैठो-बैठो, धन्यवाद देने की क्या बात है।" अवस्थी जी दोनों पलंगों के बीच पड़ी आरामकुर्सी पर बैठते हुये बोले, "ठीक कह रही हो। यह तो हमारा अपना ही काम था लेकिन तुम घबरा बहुत गयी थीं। बैठती क्यों नहीं, बैठो न !"

कनक बिजली के स्विच की ओर बढ़ी।

"अरे रहने दो, कौन कसीदा काढ़ना है तुम्हें ! दिन भर फाइलों से आँखें फोड़ कर आ रहे हैं। जरा ठंडक रहने दो, बैठो !"

कनक आरामकुर्सी के समीप, पलंग की पाटी पर सिमट कर बैठ गयी— "आप के लिये चाय मंगवाऊं ?"

"अरे क्या रखा है चाय में।"

"मैं भी पी लूंगी।"

"अरे फिर पी लेना, क्या जल्द ।"

कनक घुटने जोड़े और दोनों हाथों के पंजों में घुटनों को पकड़े सिमटी

बैठी थी। अवस्थी जी ने उस का हाथ अपने हाथ में ले लिया और मुस्कराये—"अब तो सन्तुष्ट हो?"

कनक अपना हाथ पीछे खींच कर कन्धे पर शाल ठीक करती हुयी बोली, "धन्यवाद, आप ने मेरी बहुत सहायता की है।" उस का स्वर गम्भीर हो गया और वह पलंग पर जरा परे खिसक गयी।

"यह क्या ईंट मारने का सा धन्यवाद दे रही हो, अरे बधाई तो दे लेने दो, यहाँ आओ।" अवस्थी जी के पान की रेखाये पड़े होंठ विचित्र-सी मुस्कान में फैल गये। उन्हों ने बाँह फैलाकर कनक की बाँह कोहनी के ऊपर से पकड़ लेनी चाही।

कनक पलंग से उठ कर दो कदम दरवाजे की ओर हो गयी। माथे पर तेवर आ गये—"यह आप क्या कर रहे है? आप को जो बात कहनी हो, कहिये।" कनक ने बिजली जला दी।

"हमें क्या कहना है, यह धन्यवाद और कृतज्ञता का बहुत अच्छा ढंग है।"

"अगर आप का ऐसा ख्याल है तो मुझे नौकरी नहीं चाहिये। आई कैन गो टु डेल्ही।"

दरवाजे की चिक उठ गयी—"क्या बात है?" मिसेज पंत ने कदम भीतर रखते हुये पूछा और उल्लास से बोल उठीं, "आहा, अवस्थी जी! कब आये?"

मिसेज पंत की दृष्टि अवस्थी जी की ओर से फ़िर कनक की ओर चली गयी—"क्या है, क्या बात है?" उन्हों ने विस्मय और कौतुहल प्रकट किया और बारी-बारी से दोनों की ओर देखती रही।

अवस्थी जी आरामकुर्सी पर निश्चल और गम्भीर हो गये थे। कनक की ओर घूर कर बोले—"मतलब क्या है तुम्हारा? तुम ने समझ क्या लिया है?"

"क्या हुआ?" मिसेज पंत ने आशंका से धीमे स्वर में अवस्थी जी की ओर देखा।

"इन के लिये जितना भी करो यह सन्तुष्ट नहीं हो सकती!" अवस्थी जी उठने के लिये कुर्सी पर आगे बढ़कर बोले और खिन्न मुद्रा में खड़े हो गये।

"हुआ क्या?" मिसेज पंत ने फिर पूछा।

"इसी से पूछो।" अवस्थी जी दो ही शब्द बोल कर कमरे से बाहर हो गये और बराम्दे से उतर गये।

"बताती क्यों नही? क्या हुआ?"

"मुझे यह सब पसन्द नही है।" कनक ने सिर झुकाये उत्तर दे दिया।

"पसन्द नही है तो उठा अपना बिस्तर, दफा हो। क्या पसन्द नही है तुझे?" मिसेज पंत ने डाँट दिया।

कनक का मस्तिष्क और शरीर जल उठे। उस ने मिसेज पंत पर तीखी नजर डाली और गर्दन झुका कर होंठ काट लिये। निश्चल खड़ी रही। मन में आया, सहसा कमरे से चली जाये परन्तु कहाँ चली जाती? सर्दी और अंधेरे की परवाह न करती परन्तु जवान लड़की, भले घर की, भले वस्त्र पहने लड़की होने की परवाह थी। वह सहसा जाकर सड़क पर कैसे बैठ जाती।

मिसेज पंत ने फिर डांट दिया—"बोलती क्यों नहीं, क्या पसन्द नहीं है तुझे? हम से जो बन पड़ा क्या नहीं किया? तू ऐसे ही महलों में रहने वाली है तो चली जा सामने होटल में!"

"नहीं बहन जी, यह बात नहीं है। आप का मुझ पर बहुत एहसान है।" कनक ने विनय से कहा।

"तो फिर हो क्या गया? क्या चाहिये तुम्हें?"

"मुझे हाथापायी पसन्द नहीं है।" कनक ने अपना असन्तोष मिसेज पंत के प्रति न होने का विश्वास दिलाने के लिये कहा।

"हां-हां तू बड़ी छुई-मुई सतवंती है। हमने तो तुझे ही उनके पीछे पड़ते देखा है। नैनीताल में भी दौड़-दौड़ कर जाती थी, अब दिल्ली से दौड़ी आयी है। दूसरों पर तोहमत लगाते शरम नहीं आती? उन्हें, उन की पोजीशन कौन नहीं जानता?" मिसेज पंत ने स्वर दबाकर कनक के अनाचार के प्रति क्रोध प्रकट किया।

कनक सिर झुकाये खड़ी रही। बहुत धीमे से उसने कहा—'बहिन जी, आप वहां नहीं थीं। मैं क्या कह सकती हूं। खैर, आपने जो देखा है वही सही। इस समय मैं कहां जा सकती हूं? मैं कल चली जाऊंगी।"

"किस पर एहसान है? तेरे मन में जो आये कर" मिसेज पंत कनक को ठेंगा दिखाकर बड़बड़ाती हुई साड़ी बदलने लगीं, 'क्या नादीदा जनाना आ गया है। एहसान करो, तोहमत मिलती है; होम करते हाथ जलते हैं।"

मिसेज पंत कमरे से बाहर निकलते ही दूसरे स्वर में पुकार उठीं—"अरे भाई वेनू, हमें भी दो रोटी खिलादे!" और भोजनालय की ओर चली गयीं।

कनक कई मिनट तक वैसे ही खड़ी सोचती रही। सहसा कमरे से बाहर हुई। दरवाजा उढ़का दिया और गिरजा भाभी के कमरे की ओर चली गयी। कमरे में मुंदे हुए किवाड़ों पर उँगली से ठकोर दी। भीतर से भारी गले से गुर्राहट सुनायी दी—"क्या है? कौन है इस वक्त?"

कनक कमरे में होते हुए बोली—"मैं हूं नन्ती!"

गिरजा भाभी डबल कमरे में रहती थीं। अंदर के कमरे में पलंग पर लेटी

सिरहने तिपाई पर टेबल लैम्प रखे सुबह का अखबार चश्मे से खूब दूर पकड़े हुए पढ़ रही थीं।

"तू इस वक्त क्या करने आयी है?" गिरजा भाभी ने चश्मा आंखों से हटा कर पूछा। कनक का चेहरा देखकर उन का स्वर बदला, "क्या हुआ री? यहां आ।" पलंग पर सरक कर उन्होंने कनक के लिये स्थान दे दिया।

कनक पलंग पर बैठ कर सहसा बोल न पाई। गिरजा भाभी ने उस की पीठ पर आश्वासन का हाथ रख कर पूछा—"क्यों, क्या उस मुये मुरलीधर सिंह ने कुछ कहा?"

कनक ने आंसू रोकने के लिये होंठ काट कर संक्षेप में अवस्थी जी के व्यवहार और मिसेज पंत की फटकार की बात बता कर कहा—"मम्मी, इस समय मैं कहां जा सकती हूं। मैं दिल्ली लौट जाऊंगी मुझे नहीं चाहिये ऐसी नौकरी।"

"है है, देखो तो इस बेवकूफ को!" गिरजा भाभी ने चर्बी से रुंधे गले से आत्मीयता भरा क्रोध प्रकट किया, "क्या कहती है, नौकरी क्या, क्या कहते हैं, अवस्थी के बाप की है? तू सरकारी काम करेगी, तनखाह पायेगी। क्या कहते है, बड़ी चली थी हौसला करके अपने पांव पर खड़ी होने। रोयेगी तो एक चाँटा दूंगी, खबरदार!...क्या बिगाड़ सकता है वह हरामी तेरा? उस ने कोई हरकत की तो उसे ले जाकर सी० एम० के सामने खड़ा कर दूंगी। लुच्चे कहीं के, कांग्रेस को बदनाम करते है। भूखे मरते थे, जेलें काटते थे तभी तक भले थे। क्या कहते है, कुर्सी पर बैठते ही दिमाग बिगड़ गये। कुत्ते को घी थोड़े ही पचता है और वह नैनीताल वाली कुछ बोले तो कह देना कि मेरी मम्मी से बात करो। बत्तमीज, जाहिल कही की। ये मेम्बर बनने लायक हैं? मै तेरा सब इन्तज़ाम करवा दूंगी, तू फिक्र मत कर। मै तो तुझे उस के यहाँ देख कर पहले ही सनक गयी थी।...."

उस संध्या कनक को भोजन का ख्याल ही नहीं आया। अपमान की उत्ते-जना से उसे कम्बल में भी गरमी मालूम होती रही। सिर उड़ सा रहा था। ऊंघती-जागती वह रात भर सोचती रही—अपमान की आशंका से स्त्री कितनी असहाय हो जाती है। पुरुप दूसरे पुरुपों से सेवा चाहते है, उन के श्रम से लाभ उठाना चाहते है, उन का धन छीनना चाहते है, रिश्वत चाहते है परन्तु स्त्री का केवल निरादर करना चाहते है। पुरी को याद कर आँसू बहाती रही।...हाय 'तुम' कहाँ हो? क्या मुझे भूल गये!... वह रेडियो से समाचार क्यों नहीं सुन पाये? मैं कर क्या सकती हूं? पिता जी पर बोझ बन कर तो नहीं रहूंगी?.... यदि उस समय मिसेज पंत के बजाय गिल आ जाता? कनक ने कल्पना में देखा,

गिल के जबरदस्त हाथ पटाक-पटाक अवस्थी की कनपटियों पर जा पड़े। गिल कितना अच्छा है पर क्या मेरे सम्मान की रक्षा के लिये कोई दूसरा ही चाहिये? क्या मैं स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकती?....मम्मी ठीक कहती हैं,... मेरा क्या बिगाड़ लिया उस ने। उसी का अपमान हुआ।....'उन' के सिवा मुझे कौन पा सकता है।...वह कहाँ हैं?... घबराने से लाभ क्या? गिल को ही देखो, वह क्या नहीं सह रहा। कल शायद मुलाकात हो...।

गिरजा भाभी ने कनक के लिये कौंसिलर्स रेजीडेंस के समीप ही कैंट रोड पर एक भद्र कायस्थ परिवार में प्रबन्ध करवा दिया था। मुंशी शंकरशरण हैडमास्टर के पद पर अपनी नौकरी की अवधि पूरी कर चुके थे। कुछ पेंशन मिल जाती थी, अपना आधा मकान भी किराये पर दिये हुये थे। तीनों लड़कियों का विवाह कर चुके थे परन्तु सब से बड़ी लड़की विधवा हो गयी थी और अपनी छः बरस की लड़की को लेकर पिता के ही घर में आ टिकी थी। विधवा हो जाने पर बड़ी लड़की ने एल० टी० कर लिया था। अब वह लड़कियों के स्कूल में पढ़ा रही थी।

मुंशी जी ने मकान के, अपने आधे हिस्से में से ही एक कमरा कनक को दे दिया था। कमरे में खाट के सिराहने-पैताने कोई जगह शेष नहीं थी। दीवार में एक आलमारी थी। खाट और दरवाजे के बीच एक खाट के क्षेत्रफल की-जगह और थी। उस में बाँस की कमचियों से बनी एक तिपाई और कुर्सी रख कर मुंशी जी ने कमरा 'फर्निश्ड' कर दिया था। दरवाजे के सामने खाट के ऊपर और बगल में सड़क की ओर भी एक-एक खिड़की थी इसलिये कमरा हवादार क्रासवेंटीलेटेड कहला सकता था। कनक मुंशी जी के यहाँ गिरजा भाभी के लिहाज के कारण, पचहत्तर रुपये में पेइंग गेस्ट के तौर पर रह गयी थी।

कनक को सहसा स्थान बदल लेना पड़ा था। गिल को सूचना न दे सकी थी इसलिये उस से सम्पर्क टूट गया था। कनक को गिरजा भाभी का सहारा था परन्तु लाहौर से पुराना, निस्संकोच और बराबरी का सम्बन्ध तो गिल से ही था। खुल कर बात करने का सन्तोष उसी से मिल सकता था। कनक ने दफ्तर से छुट्टी होने पर ८९३ पर फोन करके गिल को अपना नया पता बता दिया।

कनक ने दफ्तर से लौट कर साड़ी बदल, कमीज-सलवार पहन ली। सड़क पर बिजली का प्रकाश हो गया था। वह खिड़की से सड़क पर टकटकी लगाये थी। गिल को अपने मकान की ओर आते देख कर वह तुरन्त नीचे उतर गयी।

एक दूसरे को देख दोनों की आँखें चमक उठीं।

"आप तो इस तरह भूल गये ?" कनक ने उपालम्भ और मान से गिल की आँखों मे देखा।

"वाह, मै तो जब भी दिन में इस सड़क से गुजरा, कौंसिलर्स रेजीडेंस में १७ नम्बर के कमरे के सामने देख कर गया। मुझे क्या पता था आप ने जगह बदल ली है ? कल तो मिसेज पंत को देख कर पूछ भी लिया था। उस ने यू० पी० वालों की तरह रूखा सा जवाब दे दिया था—हमें क्या मालूम। यहाँ से तो चली गयी है। फोन न आया होता तो मै चिन्ता में पड़ जाता।

कनक की आँखे फिर गिल की आँखों से मिल गयी। मन सन्तोष से छलक आया; कोई उस की चिन्ता करने वाला था। वह निराश्रय नही थी।

"यह क्या, कुछ भी गरम कपडा नही पहना आपने !" कनक ने चिंता से शिकायत की। स्वयं एक शाल लिये थी। वह नवम्बर के शुरू में लखनऊ आयी थी। गरम कोट दिल्ली मे ही छोड़ कर केवल एक स्वेटर और शाल लेती आयी थी।

"ऐसी सर्दी ही कहाँ है ?" गिल ने टाल दिया।

"इस समय तो सर्दी है। आप के लिये एक स्वेटर बुन दूँगी। जीजा जी के लिये हर साल बुनती थी। आप को पता भी है, यहाँ क्या-क्या झगड़े हो गये ?"

गिल के पूछने पर कनक ने सड़क पर चलते-चलते अवस्थी जी मिसेज पंत और गिरजा भाभी से हुई बातें ब्योरेवार सुना दी। पुरी के नौकरी के लिये लखनऊ आने और उस के अनुभव भी बता दिये। बात-बात मे कुछ ऐसा प्रसंग आ गया कि कनक ने गिल को पुरी से अपने प्रेम और पिता जी के विरोध की बात भी बता दी और कह गयी—"उनका पता मिल जाये तो मुझे ऐसी नौकरी से क्या लेना है। हम दोनों का विचार तो एक साथ साहित्यिक काम करने का था।"

"पुरी का पता तो जरूर मिल जाना चाहिये" गिल ने भारी से स्वर में कहा पर तुम चली जाओगी तो मेरे लिये फिर सूना हो जायगा। हमारा परिचय आठ-दिन का ही सही पर कनक, तुम से मिल कर ऐसा लगा है कि संसार उजड़ नही गया हे। चली तो जाओगी—भुला भी दोगी ?"

गिल ने निस्संकोच कनक का नाम लेकर और तुम कह कर आत्मीयता से बात कह दी थी। कनक को रोमांच हो आया।

"ऐसा क्यो कहते है ?" कनक ने गिल की आंखों में देखा, "ऐसा कभी हो सकता है ? मैने इतनी जल्दी इतना भरोसा कभी किसी का नहीं किया।

आप से कोई भी बात नहीं छिपायी । न जाने क्यों ? सच कहती हूं ।"

कनक ने गिल की आंखों में फिर देखा और आंखें झुकाये ही बोली—"जीजा जी को मैं बहुत मानती हूं, भाई से भी अधिक पर अपनी इतनी बातें तो मैंने उन से भी नहीं कहीं ...। जाने कैसे इतनी जल्दी हम दोनों के स्वभाव मिल गये । हम सब लोग एक ही जगह रह सकते हैं। हमारा सम्पर्क क्यों टूटेगा ? और अभी क्या पता है, जाने भाग्य में क्या है ?" कनक की गर्दन लटक गयी ।

गिल ने कनक को सांत्वना दी—"ऐसी अधीर मत हो । मैं भी कोशिश करूंगा । पुरी का पता अवश्य मिल जावेगा ।"

कनक को सूचना विभाग के दफ्तर में उर्दू अखबारों की छानबीन करके रिपोर्ट देनी पड़ती थी । यह काम उसे बहुत रुचिकर नहीं, परन्तु कठिन भी नहीं लगता था । दफ्तर में वही एक मात्र युवती थी । डायरेक्टर साहब ने उसे एक किनारे की मेज दिलवा दी थी । डायरेक्टर साहब दूसरे कमरे में बैठते थे । जर्नलिस्टों का काफी समय गप्पबाजी और पान-सिगरेट में कट जाता था । अपनी इच्छा से पढ़ सकने के लिये भी काफी समय रहता था । कभी-कभी कोई सरकारी वक्तव्य अंग्रेजी में लिखा मिल जाता तो उस का अनुवाद कर देना होता था । यह सब कनक के लिये मुंशी जी के घर में, उन की प्रौढ़ा पत्नी और प्रौढ़-स्वभाव विधवा बेटी की संगति से बेहतर ही था ।

दफ्तर का समय संध्या पांच तक था । इस सप्ताह गिल की ड्यूटी संध्या चार से रात दो बजे तक थी । दो बार वह सात से आठ तक समय निकाल कर आगया था । दोनों छतरमंजिल के सामने की सड़क पर घूमने चले गये थे । कनक गिल का परिचय पा लेने से लखनऊ में बिलकुल अकेली नहीं रह गई थी । संध्या समय गिल के आ सकने की आशा बनी रहती थी ।

शुक्रवार २५ दिसम्बर को क्रिसमस की छुट्टी थी । कनक ने दिल्ली से जाड़ों का बिस्तर, कोट और कुछ आवश्यक सामान ले आने के लिये शनिवार की छुट्टी ले ली थी । जीवन में पहली बार परिवार से दूर डेढ़ मास तक अकेली रही थी तो इतना समय ही एक युग सा लग रहा था । माता-पिता को आश्वासन दे आना चाहती थी या उन से मिलकर साहस पा लेना चाहती थी । जीजा को भी लिख दिया था कि नानो और बहिन जी के साथ दो दिन के लिये दिल्ली आ जायें तो सब मिल लेंगे ।

लखनऊ में अब काफी सर्दी हो गयी थी । सुबह-शाम हवा में कोहरा भी भर जाता था । कनक दिल्ली जाने से पहले गिल को स्वेटर बनाकर दे जाना

चाहती थी। वह गिल के साथ ऊन लेने अमीनाबाद गयी। ऊन की दूकान के सामने झगड़े के कारण भीड़ लगी हुयी थी। अमीनाबाद की मुख्य दुकानो के सामने शरणार्थियों ने प्रायः सभी जगह फुटपाथ पर दुकानें लगा ली थीं। प्रतिद्वन्द्विता में नित्य झगड़े होते रहते थे। अमीनाबाद के दुकानदारों को शिकायत थी कि पीड़ित हिन्दू भाई समझ कर उन्हों ने जिन लोगों का स्वागत, सहायता की थी वे ही उन का पेट काट रहे है। शरणार्थी उद्विग्न थे कि वे अपना पेट भरने के लिये कहाँ जायें ?

कनक स्वयं नौकरी खोज कर स्वावलम्बी बन गयी थी। पंडित गिरधारीलाल जी ने बेटी को समीप बैठा कर उस की सफलता के लिये बहुत सन्तोष और गौरव प्रकट किया। उसी प्रसंग में कहते गये—"बेटा, तुम बहुत बहादुर और समझदार हो। नौकरी तो जिन्दगी का जरिया है, ऐम (लक्ष्य) थोड़े ही है। तुम्हें अब दूसरी आवश्यक बातों की ओर भी ध्यान देना चाहिये। सब बाते वक्त पर ही होनी चाहियें। लाइफ नार्मल होनी चाहिये। वहाँ तुम बिलकुल अकेली हो। यहाँ रहो तो वाकिफों मे कुछ देखभाल कर बातें तय हो सकती है। तुम खुद समझदार हो। तुम्हारी पसन्द और रज़ामन्दी के बिना तो कुछ नहीं होना चाहिये। नाओ यू शुड थिंक आफ सेटलिंग इन लाइफ।"

कनक ने संकेत समझा और कह दिया—"पिता जी, ऐसी क्या जरूरत है कि ऐसे ख्याल से तलाश करते फिरें ? मुझे तो संतोष है। सोचती हूं जरा और पांव जम जायें, वहाँ कोई ढंग का मकान मिल जाये, आप, मां और कंचो भी वही चले चलिये। लखनऊ में दिल्ली की अपेक्षा बहुत शान्ति है।"

कनक को रविवार की रात लौट जाना था। उस दिन पंडित जी ने सुबह ही पुरी को याद कर कहा—"भई जयदेव पुरी की कोई खबर नही मिली। तुम लोगों को कुछ कोशिश करनी चाहिये थी। बहुत टेलेंटिड और कैपेबल नौजवान है। ही हैज ए पर्सनैल्टी ! अन्दाज है, जरूर किसी अखबार में या साहित्यिक काम में होगा। ऐसा आदमी छिप नही सकता लेकिन कुछ कोशिश तो करनी चाहिये। यह तो अपना फर्ज है। पता लग जाये तो खतो-किताबत का सिलसिला तो रखना ही चाहिये। आई आलवेज लव्ड हिम ! स्टोरी तो वण्डरफुल लिखता है। मुझे ख्याल आया, उस की कहानी की अगर फिल्म बन जाये।"

कनक को बहुत अच्छा लगा। यह पिता की ओर से कनक की इच्छा के लिये स्वीकृति दे देने का संकेत था। इस से पहले पंडित जी ने कभी पुरी की चर्चा नहीं की थी। कनक ने उड़ता-उड़ता अनुमान प्रकट किया—"हो सकता

है, फिल्म लाइन में ही कोशिश कर रहे हों। उन्हें उस का ख्याल तो था।"

"तब तो एकदम चमक उठेगा। धीरे-धीरे सब लोगों का पता मिलता जा रहा है। लोग कहीं न कहीं पांव जमाते जा रहे है। मुझे तो ख्याल आया था कि रेडियो में उस के लिये सन्देश दे दूं पर भई वह ऐसा छिपा रहने वाला शख्स तो नहीं है। ही इज ए ब्रिलियेंट यंग मैन। आज नहीं तो दस दिन में उस का नाम सामने आयेगा ही। कहीं न कहीं उस की लिखी कहानी या मजमून नजर के सामने आ ही जायेगा।"

कनक सोमवार सुबह साढ़े आठ बजे लखनऊ पहुंची तो गिल स्टेशन पर मौजूद था। उसने कनक को रिक्शा पर घर तक पहुंचा दिया। कनक को तुरंत तैयार होकर दफ्तर जाना था, बात करने का अवसर नहीं था। उसने गिल को संध्या जरूर मिलने के लिये कह दिया। उस का मन पिता जी के भाव परिवर्तन की बात गिल को बता देने के लिये उछल रहा था।

संध्या घूमते हुये कनक ने दिल्ली में हुई सब बातें गिल को बता दीं।

कनक की बात सुनकर गिल अंग्रेजी में बोला—"अच्छा हुआ, तुम्हारे मार्ग से क्या, मन से एक कुण्ठा हट गयी। तुम्हारा मन हलका हो गया। मेरे लिये भी इस समय तुम्हारे सिवा और कोई नही है। तुम्हारे संतोष से मुझे भी संतोष है।"

कनक चुप हो गयी। फिर उसने भी अंग्रेजी में उत्तर दिया—"तुम क्या समझते हो, तुम्हारे प्रति मेरी भावना में किसी प्रकार की कमी है? तुम्हीं बताओ यहाँ मेरे लिये दूसरा कौन है?"

कनक और गिल शिथिल कदमों से साथ-साथ चलते भावना, भरोसे और विश्वास लायक किसी व्यक्ति के बिना जीवन की निरर्थकता, सूनेपन और प्रेम की भावनात्मक और व्यवहारिक सीमाओं के विषय में बात करते रहे। बात करते-करते वे स्टेशन के समीप पहुंच गये। वहाँ सड़क के दोनों ओर डेरा डाले शरणार्थियों की भीड़ से शोर की गूंज फैली हुई थी। दोनों अपने स्वप्न और उमंग में इतने खो गये थे कि उन्हें अपने जैसे शरणार्थियों की उपस्थिति असह्य हो रही थी। वे बात करने के लिये रायबरेली रोड पर अंधेरे में खूब दूर तक जाकर लौटे।

गिल और कनक को साथ घूमने में बहुत संतोष होता था। अवसर होने पर साथ घूमने न जाना दोनों के ही लिये असह्य था। जनवरी नववर्ष के दिन कनक दोपहर में घर से आ गयी थी और दोनो सिकन्दरबाग के उपवन में, बड़े-बड़े वृक्षों से छनती धूप के नीचे बैठे बात करते रहे। कनक गिल

से प्रायः ही सरस्वती के विषय में पूछ लेती थी। गिल उस से कुछ भी न छिपा कर सब कुछ कह देता था। उन बातों को सुनती कनक मधुर स्वप्न में डूब जाती। अपने प्रेम के लिये सब कुछ करने के लिये तैयार गिल उसे बहुत अच्छा और आकर्षक लगने लगता। कभी कुछ न बोल कर केवल एक दूसरे की आँखों में देख कर सिर झुकाये रह जाते। संगति और साथ से ही मन सन्तुष्ट था।

अपने परिवार से दूर, लखनऊ में अकेली कनक जीवन की प्रबल उमंग और उत्साह अनुभव कर रही थी। स्वावलम्बी बन जाने का गौरव और संतोष था। पिता ने उस के प्रेम और निश्चय के मार्ग में से अपनी अस्वीकृति की बाधा हटा ली थी। वह पूर्णता स्वतन्त्र थी। अपने विवेक के अतिरिक्त सर्वथा निर्बाध। असीम विश्वास, भरोसे और सब रहस्यों का साथी, उस की संगति में सर्दी, हवा और वर्षा की परवाह न करने वाला गिल जैसा मित्र था।

कनक और गिल में परस्पर अच्छा लगने, भरोसे और विश्वास की गूढ़ता से इतना सामीप्य हो गया था कि परस्पर भले लगने के लिये आदर का संयम बनाये रखने की आवश्यकता भी नहीं रही थी। जीवन में खेल और विनोद की स्वाभाविक आवश्यकता को वे किस दूसरे से पूरा करते ? गिल कनक पर निःसंकोच झुंझला भी सकता था, उसे किकि या 'की' पुकारने लगा था। कनक गद्गद होकर और खिंच जाती थी। कनक ने पुचकारने के ढंग से गिल का नाम गिल्लू रख लिया था। गिल झुंझलाहट देखने के लिये या मजाक मे उसकी बांह पर चिकोटी भी काट लेता। कनक रक्षा के लिये उस का हाथ पकड़ लेती। उसे अपने प्रति गिल के आदर और स्नेह का पूरा विश्वास था इसलिये गिल के व्यवहार से आपत्ति नही थी, न खीझ उठती थी।

प्रेस में गिल की ड्यूटी रात को दस से चार तक थी। शनिवार संध्या कनक उससे मिली तो मन में एक बात दबाये थी। वह स्टेशन रोड पर गिल के साथ चलते हुए उसकी बांह मे लगकर बोली—"मैं एक बात कहूंगी, तुम इंकार नही करना।"

"क्या बात ?"

"पहले वचन दो, इंकार नही करोगे।"

"ऐसी शंका की क्या बात है, वचन क्यों मांग रही हो ?"

"बात यह है, एक बार वैसी बात पर पुरी जी ने इंकार कर दिया था। मुझे बहुत अपमान अनुभव हुआ था। आपस मे जरा भी परायापन मुझे बहुत खलता है। मैं तो तुम्हारी कोई बात नहीं टाल सकती ?"

"यह क्या जरूरी है कि तुम अपनी और मेरी बात में सदा ही पुरी को ले आओ ? गिल के स्वर में खटास आ गयी ।

"तुम्हें बुरा क्यों लगता है, मैं तो उन्हें जितना याद करती हूं, उतना ही संतोष तुम से पाती हूं । मेरा और कौन है ? तुम्हें सरस्वती की याद नहीं आती?"

"सच बात है, मुझे तो अब नहीं आती । सरस्वती से मैंने चार वर्ष उस के जीवन तक प्रेम किया । उस के लिये साथियों और अपने परिवार की भी परवाह नहीं की । उस के लिये मर सकता तो निश्चय ही मर जाता पर मर नहीं गया और अब वह नहीं है । जब अपने को मर चुका समझ रहा था, तब कोई बात नहीं थी । तुम ने क्यों अनुभव कराया कि मैं जिन्दा हूं ? अब मेरे लिये केवल तुम हो परन्तु तुम्हारे लिये पहले पुरी है ।" गिल क्षोभ से कह गया ।

कनक की गर्दन झुकी रही । उस ने गिल को सान्त्वना देने के लिये उस का हाथ पकड़ लिया ओर समझाया—"गिल्लू, क्या प्रेम करके भुला भी दिया जा सकता है ?"

"प्रेम जीवन का यथार्थ व्यवहार है । वह केवल कल्पना और स्मृति में ही सफल नहीं हो सकता" गिल ने कनक की बात को उपालंभ समझ कर दृढ़ता से उत्तर दिया ।

"नहीं गिल्लू, नाराज मत हो । मैं समझने के लिये पूछ रही हूं ।" कनक ने गिल का हाथ बहुत जोर से पकड़ लिया जैसे उसे जाने नहीं देगी, "बताओ, क्या सचमुच प्रेम को भुला देना संभव है ? प्रेम की इच्छा तो मुझे स्वाभाविक लगती है परन्तु प्रेम को छोड़ सकने का विश्वास नहीं होता ।"

"छोड़ सकने से मतलब क्या ?" गिल ने खिन्नता से कहा, "तुम्हीं बताओ, घाव भरने लगे तो उसे भरने नहीं देना चाहिये ? पीड़ा और अभाव को बनाये ही रहना चाहिये ? संतोष की इच्छा पाप है तो पाप की इच्छा करने वाले को ठोकर क्यों नहीं मार देती ?"

कनक ने गिल का क्षोभ प्यार से शांत कर सकने के लिये उस का हाथ अपनी ओर खींच कर समझाया—"सुनो ! सच है, उन्हें नहीं भूल सकती परन्तु तुम्हारे स्नेह में मैंने क्या अंतर रखा है ? मेरे मन और व्यवहार में तो कोई अंतर नहीं है ।" गिल को पूरा विश्वास दिलाने के लिये कनक ने उस का हाथ अपने दोनों हाथों में बहुत जोर से दबाये रक्खा । यदि सड़क पर न होती तो उसे समझा सकने के लिये आलिंगन में ले लेती । कनक का भरा हुआ स्वर याद दिला रहा था—मैं क्या प्यार और अधिकार से तुम्हारे गले में बाहें नहीं डाल देती ?"

कनक गिल पर पूर्ण विश्वास से और पूरी स्वतंत्रता से व्यवहार कर सकती थी। गिल उस का पालतू शेर था। खेल के लिये वह उस के खुले हुये मुंह मे अपना सिर तक डाल दे सकती थी। विश्वास था गिल उस की इच्छा को जानता था। उस के सिर पर अपना दांत नहीं लगा सकता था। कनक अपने विचार में निरापद प्यार के सब खेल खेल कर भी गिल को सकेत मात्र से रोक ले सकती थी।

गिल का क्रोध दूर नही हुआ—"अच्छा छोड़ो इस बात को" उसने अपना हाथ छुड़ा लेना चाहा।

"नही मैं नाराज नहीं होने दूंगी।" कनक ने हाथ नही छोड़ा।

"ठोकर भी मारोगी और परे भी नही हटने दोगी?" गिल और भी खिन्न हो गया।

"गिल्लू मैं ठोकर मारती हूं" कनक की आंखों और गले मे आंसू भर आये।

"ठोकर मार कर स्वीकार भी नही करना चाहती पर मुझे तो ठोकर लगती है। इतनी अनजान क्यों बनती हो? इसलिये तो कहता हूं मुझे दूर ही रहने दो। तुम्हारा मन भरा हुआ है। तुम्हें केवल मेरी तड़प अच्छी लगती है इसीलिये अपनी बाधाओं से तड़पाती हो।"

"गिल्लू, क्या बाधा रखती हूं? क्या तड़पाती हूं?"

"तुम नही जानती तो फिर रहने दो।"

"गिल्लू केवल उचित का खयाल।" तुम इतने समझदार हो। मैं क्या···।"

"यही तो मैं कहता हूं। तुम्हारे विचार में जो उचित और अनुचित है उस सीमा पर मेरा पांव फिसलने लगता है और मैं ठोकर खाता हूं इसीलिये दूर रहना अच्छा है।"

"तुम्हारे पांव पड़ती हूं। इस तरह मत बीधो।"

"तुम क्यों बिधोगी। बिधता तो वह है जो तुम्हारे बंधन से छुट नही सकता और तुम्हारी समझदारी की ठोकरों की चोटें सहता है।"

"अच्छा बस करो। बस, नाराज नही होना। तुम जानो।" कनक रुआसी हो गयी।

"खैर जाने दो। क्षमा कर दो मुझे अपनी बात के लिये दुख है, खेद है।"

"फिर वैसी बात कर रहे हो।"

"कैसी?"

"गालियां मत दो। तुम जानो मैं कुछ नही जानती।"

"तुम तो चिढ़ गयी।"

"कहाँ चिढ़ गयी। खुद ही तो चिढ़ गये थे। बस, मुझ से नहीं चला जाता। थक गयी।"

गिल और कनक बहुत शिथिलता से सरकते हुये भी चारबाग स्टेशन के सामने पहुंच गये थे। गिल ने रिक्शा को पुकार लिया।

कनक शरीर और मन के उद्वेलन से बिलकुल शिथिल हो गयी थी। उस ने सिर गिल के कन्धे से टिका दिया था। गिल अपनी बाँह से उस की पीठ को सहारा दिये था। रिक्शा स्टेशन रोड से लौटी जा रही थी। कनक ने गिल को रुलाने की सजा देने के लिये उस की बाँह पर काट लिया। इस से पहले कनक ने गिल को कभी चूमने नहीं दिया था।

गिल रिक्शा वाले का खयाल कर धीमे-धीमे अंग्रेजी में बोल रहा था--कल जोधसिंह बीवी-बच्चों सहित सुबह ही अपने साले के यहाँ अखण्ड पाठ में चला जायेगा। साँझ को लौटेगा। गली में ऐसे-वैसे ही लोग हैं। उन्हें पंजाबियों से कोई मतलब नहीं है। कच्चा छोटा-सा घर है। मैं मुंडेर पर एक दरी डाल दूंगा। इस समय मैं तुम्हें कुलिया के सिरे तक रास्ता दिखा देता हूं।"

कनक गिल से चिपकी बैठी चुप थी।

"तुम दरवाजे पर आकर करतारो का नाम लेकर पुकार लेना या सांकल खटखटा देना....।"

गिल ने कनक को उदयगंज में अपनी गली दिखा दी और दूसरी रिक्शा लेकर उसे कैन्ट रोड पर उस के घर के समीप तक छोड़ने गया। कनक को बिलकुल चुप देख कर उस ने कहा--"की, सच बता नाराज़ तो नहीं हो गयी ?"

"हटो पागल" कनक ने प्यार से मुस्करा दिया।

रिक्शा से उतरने से पहले दोनों ने परस्पर हाथ पकड़ लिये। कनक ने साढ़े दस-ग्यारह तक पहुंचना स्वीकार कर लिया।

गिल रविवार सुबह दस बजे से सांस रोके दरवाज़े पर पुकार या दरवाज़ा खटकने की प्रतीक्षा कर रहा था। प्रतीक्षा की बेचैनी में उसे सर्दी की भी परवाह न थी। वह उढ़के हुये दरवाज़े के सामने आंगन में ही टहल रहा था। सांकल की झनझनाहट सुनते ही दरवाजे की ओर लपक गया। दरवाज़ा खोल कर कहा—"आ जाओ !"

"नहीं !" कनक ने कहा और सांस लेने के लिये रुक गयी।

गिल हैरान था। कनक की आँखें खूब लाल और चेहरा बिलकुल पीला

था। ठीक से कंघी न किये केशों को शाल मे ढके थी। उसे लाने वाली रिक्शा उस के पीछे खडी थी।

"तुम प्रतीक्षा न करते रहोगे इसीलिये आयी हूं। क्षमा कर देना। संध्या उधर आओगे तो बात करूंगी।" कनक ने दम ले-ले कर कहा और उलटे पांव लौट गयी।

संध्या समय गिल बहुत दुविधा, उलझन, परेशानी मे व्याकुल कैन्टे रोड पर कनक के मकान की ओर गया। कनक उसे अपनी खिड़की से देख कर नीचे उतर आयी। इस समय वह ठीक से कपड़े पहने थी। बिलकुल संयत थी परन्तु चेहरा बहुत उदास और उतरा हुआ।

विधान सभा मार्ग पर आकर गिल ने पूछा—"तुम्हारी तबियत ठीक नही लग रही। चल पाओगी? कही चल कर बैठ जाये या रिक्शा ले ले?"

"चल लूंगी, मै ठीक हूं।" कनक सिर झुकाये बोली, "मेरे व्यवहार के लिये क्षमा कर दो।" वह रुक-रुक कर बोल रही थी, 'मैने तुम्हें धोखे मे रखा था। पुरी जी ने मेरा केवल प्रेम ही नहीं, हम पति-पत्नी बन चुके हैं। ... कल जाने मुझे क्या हो गया था। तुम्हारे प्रेम मे तुम्हे पा लेने के लिये मैं बह गयी थी, धोखा देने के लिये तैयार हो गयी। अपने उन्माद मे तुम्हें भी अपना लेना चाहा। दोनो को धोखा देती। मुझ से बहुत बड़ी नीचता हुयी है पर धोखा देने मे बच गयी। अपना अपराध स्वीकार कर रही हूं। बहुत ही लज्जित हूं। रात भर सो नही सकी, आत्म-ग्लानि मे रोती रही। मुझे क्षमा कर दो।"

विस्मय, आत्म-ग्लानि और लज्जा मे गिल के रोंगटे खडे हो रहे थे। अपराधी के स्वर मे उस ने कहा—"अपराधी तो मैं हूं। समझ लिया था, विभाजन के प्रलय ने सब कुछ बदल दिया है। तुम्हें सरस्वती की जगह पा लिया है। हम पति-पत्नी बन सकेंगे। मैने ही तुम्हें विवश कर दिया था।"

"नही नही, यह नहीं हो सकता। फिर भी दोष मेरा है। मैंने तुम्हारे लिये अपने प्रेम को बढ़ा-बढा कर दोनो के लिये रोग बना लिया। तुम्हारे प्रेम को भी बढाती चली गयी। जानती थी, यह उचित नही पर मैं अचेत रूप से उधर ही जा रही थी।"

कनक और गिल दोनो ही अप्रिय घटना का उत्तरदायित्व दूसरे की अपेक्षा अपने ऊपर लेने के लिये आत्मा-आलोचना करने लगे। वे घटना को बीती हुयी मान कर तटस्थ भाव से उस की समीक्षा कर रहे थे। कनक ने कहा—"....यह

तथ्य है कि इच्छा मुझ में भी थी। मैं उसे स्वीकार न करने के लिये दवा और छिपा रही थी। तुम ने उसे कबुलवा दिया। पुरी जी की याद ने मुझे बचा लिया। तुम्हारी बात दूसरी है, किसी दूसरे के सामने अपराधी तो नहीं हो। मैंने ही अपनी बात तुम से छिपायी।"

कनक ने वेदना से अवरुद्ध स्वर में कहा—"प्रेम तुम्हारा अब भी नहीं छोड़ सकूँगी। जो होना था हो गया। तुम्हें बहुत क्लेश दिया। यदि क्षमा कर सको तो मुझे सहारा दिये रहना वर्ना समझूंगी, तुम्हारे साथ अनुचित व्यवहार करके तुम्हें खो दिया। तुम्हें कभी भूल नहीं सकूँगी। तुम ने मुझे निस्वार्थ प्यार दिया है....। प्यार तुम्हारा नहीं छोड़ सकती पर 'उन्हें' भी नहीं छोड़ सकती! अपने अपराध के लिये जो भोगना पड़ेगा भोगूंगी....।"

कनक बात समाप्त कर बहुत थक गयी। मकान लौटने के लिये उसे रिक्शा लेनी पड़ी।

कनक की गम्भीरता से लगता था, कोई कठिन पीड़ा दवाये है। चिन्ता और पीड़ा चेहरे पर स्पष्ट थी। मुंशी जी, उन की बेटी और पत्नी ने उसे अपने परिचित होमियोपैथ से सलाह ले लेने के लिये कहा। कभी अनुमान करते—क्या लड़की के मन पर गांधी जी के निधन से इतना आघात लगा है? कभी सोचते, शायद इस के घर से कोई चिन्ताजनक खबर मिली है? दफ्तर में लोगों को विस्मय था कि आरम्भ में बिलकुल स्वाभाविक, निस्संकोच, सब से बोलने-चालने वाली लड़की सहसा चुप्प सी क्यों हो गयी? अब वह मुस्कराती भी तो मुस्कान बनावटी और दयनीय लगती।

सप्ताह भर बाद कनक की तबीयत ठीक होती जान पड़ने लगी। वह फिर साधारण भाव में आने लगी। पन्द्रह दिन में गिल से केवल तीन बार मिली। दोनों की बातों में गम्भीरता का वातावरण बना रहा जैसे दोनों एक दूसरे के सम्मुख अपराधी हों, एक दूसरे से लज्जित हों। अप्रिय घटना की चर्चा उन में नहीं हुई।

कनक को प्रति शुक्रवार दिल्ली से पिता जी का पत्र मिल जाता था। पत्र लिखने पर सात-आठ दिन में बहिन से भी उत्तर मिल जाता था। नैयर व्यस्तता के कारण नहीं लिख पाता था। कांता बहुत संक्षेप में कुशल समाचार पूछ और लिख देती थी। वह भी बहुत थकी और व्यस्त रहती थी। बिना नौकर के रसोई और पूरा घर, चाहे छोटा ही सही, संभाल रही थी। उस का अनुरोध था कि वह पत्र न लिख पाये तो भी कनक लिखती रहे। फरवरी के दूसरे सप्ताह शनिवार वह दफ्तर से लौटी तो मुंशी जी की पत्नी ने उसे पुकार

कर डाक से आया एक भारी सा लिफाफा दे दिया। लिफाफे के भारीपन से कनक ने पते पर हस्ताक्षर देखे जीजा नैयर के हाथ के अक्षर थे।

कनक अपने कमरे के किवाड़ खोल कर खाट पर बैठ गयी। उत्सुकता से तुरंत लिफाफा खोल लिया। जीजा के अंग्रेजी में लिखे पत्र के साथ एक बहुत बड़ा छपा हुआ कागज लिपटा हुआ था। कनक ने पहले पत्र ही पढ़ा।

नैयर के पत्र में कुशल-मंगल की सूचना की पंक्ति के बाद था—'शायद तुम्हें दो-चार दिन पहले पुरी का पत्र मिल चुका हो। नहीं तो तुम्हें अप्रत्याशित समाचार दे रहा हूं। सप्ताह भर पहले कचहरी में अचानक उस से सामना हो गया था।'

कनक का रोम-रोम सिहर उठा। पत्र को उंगलियों में जोर से पकड़ कर उस में बिलकुल डूब कर पढ़ने लगी—'बहुत अच्छा लगा। क्या मालूम था वह भी जालंधर में है। मैं उत्साह से आगे बढ़ कर मिला। न जाने क्यों, इतने दिन बाद मिलने पर भी उसने कोई उल्लास या प्रसन्नता प्रकट नहीं की। उसे बता दिया था कि मैं जालंधर में ही बस गया हूं। उस ने फिर मिलने की भी कोई इच्छा प्रकट नहीं की। उस ने पिता जी के लिये पूंछा था, बता दिया था कि वे दिल्ली में हैं और पिता जी का पता भी उसे बता दिया था। संभव है तुम्हारा ही पता पूछना चाहता हो। उस ने तुम्हारा नाम नहीं लिया तो मैंने भी तुम्हारे विषय में कुछ नहीं कहा। हो सकता है, उस का पत्र पिता जी के पते से होकर तुम्हें मिल गया हो वर्ना यह इश्तहार सब कुछ बता देगा। वह शायद इतना व्यस्त था कि ठीक से बात नहीं कर सका। अभी इतना ही। पांव जमा पाने के संघर्ष में व्यस्त हूं। आशा है, तुम्हें अपने काम में रुचि अनुभव हो रही होगी। नानो अब पूरे-पूरे वाक्य बोल लेने लगी है। तुम्हें याद करती है —'कौआ माच्छी नऊ गयी।' अपना हाल ब्योरे से लिखना। तुम्हारी बहिन और नानो का प्यार।.......।'

कनक ने पत्र को एक सांस में समाप्त कर एक बार फिर आद्यान्त पढ़ा। इश्तहार को खोल कर पढ़ा—पुरी के सम्पादकत्व में 'नाजिर' के प्रकाशन की सूचना थी। प्रथम अंक पहली मार्च को निकालने की घोषणा थी। पता था जय पुरी, प्रधान सम्पादक नाजिर, कमल प्रेस, मुहल्ला बहादुरगढ़, माई हीरां गेट, जालंधर।

कनक ने इश्तहार को भी दो बार पढ़ा और फिर पत्र को एक बार और बहुत ध्यान से पढ़ा। कनक को पुरी के प्रति नैयर के शब्द अच्छे नहीं लगे:— जीजा जी को तो इन की हर बात में व्यंग और ऐब दिखाई दे जाता है, प्रेजूडिस

की हद है। इश्तहार को फिर एक बार प्यार से पढ़ा और फिर पत्र के उस अंश को जिस में पुरी की चर्चा थी, बारीकी से पढ़ा और निश्चय कर लिया— जीजा जी जो चाहें समझा करें, उन की इच्छा। वह मन ही मन बारबार कह रही थी—'जय पुरी प्रधान सम्पादक।' यह शब्द सुनने की कल्पना से संतोष हो रहा था।

कनक व्याकुल हो उठी थी, क्या करे ? वह अपने शरीर में और अपने कमरे में समा नहीं पा रही थी। अपने आप को वश करने के लिये खाट पर लेट कर आंखें मूंद लीं। पुरी अनेक मुद्राओं में दिखाई दे रहा था। अखबार का दफ्तर, एक छापाखाना। बहुत व्यस्त पुरी……।

अच्छा हुआ कि मुंशी जी की दोहती ने कनक को पुकार लिया—"आंटी खाना खालो।" मुंशीजी के यहां सांझ का खाना छः बजे के लगभग हो जाता था। भोजन कर लेने से संभलने में कुछ सहायता मिली। खयाल आया, गिल से मुलाकात हो सकती तो उसे सूचना दे देती पर गिल की ड्यूटी आठ से रात दो बजे तक की थी। वह फिर खाट पर लेट कर सोचती ही रही। सोती-जागती रात भर सोचती ही रही।

प्रातः तक कनक ने सब कुछ निश्चय कर लिया था। रविवार था। वह आठ बजे ही रिक्शा लेकर उदयगंज में गिल के मकान पर गयी। उसे गली में बुला लिया। गिल कनक को इतने प्रातः अपने यहाँ आया देख कर हैरान था।

कनक ने गिल को नैयर का भेजा हुआ विज्ञापन दिखा दिया। जीजा का पत्र नही दिखाया। उस में पुरी के लिये व्यंग के शब्द थे पर पत्र की बात बता दी।

गिल ने बधाई दी और संतोष प्रकट किया।

"सब तुम्हारी सदभावनाओं और शुभकामनाओं से ही है।" कनक ने गिल की सहृदयता से पिघल कर कहा।

कनक उसी दिन दोपहर बाद की पंजाब मेल से जालंधर जाना चाहती थी। पिता जी को अब विरोध नहीं था परन्तु विवाह हो जाने से पहले उन से, पुरी जी के यहां चली जाने की अनुमति कैसे मांग सकती थी ? समाचार सुन कर पिता जी स्वयं ही पुरी को पत्र लिखते पर दोनों ओर से पत्र आने-जाने में, तब कहीं पुरी के लखनऊ आ सकने में तो पन्द्रह दिन गुजर सकते थे। नये पत्र के आरम्भ का बोझ पुरी के सिर पर था। धैर्य से क्षण-क्षण गिन-गिन कर इतने दिन प्रतीक्षा करते रहना अब कनक के बस का न था। अचानक

पहुँच कर पुरी को चकित कर देने की कल्पना से मन पुलकित हो उठता था। ··· एक बार जाकर पुरी को मन भर देख ले और उस से बात करके निश्चय कर ले कि भविष्य में क्या और कैसे करना है; फिर सब्र से प्रतीक्षा कर सकेगी। छः मास की तड़प तो शांत हो !

गिल ने कुछ पल सोच कनक का समर्थन करके राय दी—"तुम्हें दोपहर बाद मेल पर चढ़ा दूंगा। सोमवार प्रातः छुट्टी के लिये तुम्हारी दरखास्त दे दूंगा। अभी तो दो ही मास की नौकरी है। अधिक छुट्टी मत लो। स्थिति देखकर वहां से तार दे देना······"

× × ×

पंजाब के बंटवारे के परिणाम में कई मास तक रेलगाड़ियों के यातायात में बहुत अव्यवस्था रही। अब गाड़ियां फिर नियम से चलने लगी थीं। पंजाब मेल एक ही रात के अंधकार और कोहरे में उत्तर प्रदेश और पंजाब के सैकड़ों मील लम्बे मैदानों में से दौड़ती हुई पौ फटते-फटते जालंधर शहर स्टेशन पर पहुंच गयी। हवा में घना कोहरा भरा हुआ था। बहुत ठिठुरन थी। कनक लम्बे कोट के ऊपर शाल भी ओढ़े थी। अपना संक्षिप्त सा सामान लेकर, टांगे पर माई हीरां गेट के लिये चल दी और पूछ-पूछ कर बहादुरगढ़ मुहल्ले की गली में, कमल प्रेस के सामने पहुंच गयी।

कमल प्रेस के बोर्ड के नीचे दरवाजा मुंदा था। बंद किवाड़ों की फांकों से मशीनी तेल, कागज और कपड़े के जलने की चिरांध भरा धुआं निकल रहा था। कनक ने किवाड़ खटखटाये। भीतर से गुर्राहट सुनाई दी—"कौन है ?" किवाड़ खुले तो सर्दी से सिकुड़े आदमी ने झांका। गली में टांगे के समीप कोट पहने खड़ी महिला को देख कर प्रेस का नौकर चुप हो गया।

रुल्दू कोट और शाल में लिपटी महिला को पहचान नहीं सका कि उर्मिला बीबी की मां थी या कोई और। भले कपड़े पहने महिला सवारी पर आयी थी। बाबू को पूछ रही थी। समझ लिया, निश्चय ही घर की स्त्री थी। उस ने चुपचाप भीतर के आंगन के किवाड़ खोल दिये और टांगे से कनक का कम्बल और सूटकेस उठा लिया।

रुल्दू सूटकेस और कम्बल उठा कर कनक के आगे-आगे जीने पर चढ़ गया था परन्तु ऊपर जाकर उसने एक ओर होकर कनक को मार्ग दिया। किवाड़ मुंदे देख कर कनक ने पुकारा—"किवाड़ खोलिये।" उत्तेजना के कारण स्वर बहुत ऊंचा न हो जाये इसलिये स्वर को जरा दबाये थी। मन उमग रहा था कि उस के शब्द पुरी के कानों में पड़ रहे है।

कनक जीना एक सांस में चढ़ गयी थी। हांफ जाने के कारण हाथ सहारे के लिये किवाड़ पर रख दिये।

"कौन है ?" भीतर से पुरी का स्वर सुनाई दिया और कनक के हाथ के दबाव से किवाड़ भीतर की ओर खुल गये।

कनक कमरे में चली गयी। दिखाई दे सकने लायक सवेरा हो गया था। बायें हाथ दूसरे कमरे का दरवाजा खुला हुआ था। पुरी लिहाफ से निकल कर पलंग से उठता दिखाई दिया।

कनक के शरीर में उल्लास और उत्साह की बिजली दौड़ रही थी। वह पुरी की बाहों में कूद जाने के लिये उछल जाना चाहती थी। पुरी के पीछे पलंग पर लिहाफ में से एक चेहरा झांकता दिखाई दे गया—लड़की का झक गोरा, चकित सा चेहरा, अस्त-व्यस्त लटें, माथे पर फैली हुई बिंदी।

चेहरा तुरंत संकोच से लिहाफ में छिप गया।

पुरी उमग नहीं उठा था, स्तब्ध रह गया।

रुल्दू सूटकेस और उस पर तहाया हुआ कम्बल दरवाजे के समीप ही रख कर लौट गया था।

कनक के शरीर में भरी हुई बिजली पांओं से निकल गयी। उसका शरीर निशक्त हो गया। घुटने कांप गये।

"तुम ?" पुरी ने उस की ओर बढ़ कर पूछा। शब्द जैसे उस के होठों से स्वयं निकल गये थे। आंखें फैली और पथराई हुई रह गयीं।

कनक का सिर घूम गया, गर्दन झुक गयी। दोनों हाथों में मुख छिपा लिया।

पुरी संभला। उस ने कनक को बांह से पकड़ कर पलंग के सामने दरवाजे में से एक ओर हटा कर पूछा—"अभी आ रही हो, दिल्ली से आ रही हो ?"

कनक खड़ी न रह सकी। गिरती-गिरती संभल कर पांव पर बैठ गयी। पुरी को पा लेने की अपनी एक-मात्र अभिलाषा की पूर्ति और उस के लिये संघर्ष में सफलता के इस परिणाम से वह बोल नहीं पा रही थी। उस का सिर उड़ा जा रहा था और सांस रुक रही थी।

पुरी ने कमरे का दरवाजा उड़का दिया। कनक को पकड़ कर दूसरे दरवाज़े की ओर ले गया। पुरी ने दीवार के साथ खड़ी चटाई बिछा कर उसे बैठा दिया। उसे बांहों में लेकर उस के कान के समीप मुंह कर पुकारा—"कन्नी।"

कनक रो पड़ी।

पुरी स्वर दबाये कनक के कान में बराबर पुकार रहा था—"कन्नी ! कन्नी, सुनो ! सुनो तो !"

कनक चेहरे को दोनों हाथों में घुटनों पर दबाये फफक-फफक कर रोती जा रही थी। रुलाई के वेग के कारण वह न सुन पा रही थी, न बोल पा रही थी। आंसुओं से भरी और हाथों से दबी आंखों में उसे लिहाफ से झांकती लड़की का चकित गोरा चेहरा, अस्त-व्यस्त लटें, फैली हुई बिन्दी दिखाई दे जाती थी और उस से रुलाई का एक और वेग आ जाता था।

पुरी कनक को बाहों में लिये अनुनय से अपनी कसमें दे देकर, उस का पांव पकड़ कर अपनी बात सुनने का आग्रह कर रहा था। कनक आधे घंटे से पहले उस की बात सुन सकने के लिये संभल नहीं सकी।

कनक ने अपने मुख पर से हाथ हटाये। उस की आंखें रो-रो कर फूल गयी थीं। लाल आंखों में अब भी आंसू भरे थे—"यह क्या है ? क्या तमाशा है ?" उस ने पुरी से पूछा।

"सब बताऊंगा।" तुम से कभी कुछ नहीं छिपाया। तुम धैर्य से सुनो। तुम ने मिलने के पहले क्षण में, मेरी बात सुने बिना ही रोना आरम्भ कर दिया।" पुरी का स्वर भीगा हुआ था, ठोड़ी कांप रही थी। उस ने अपने आंसू छिपाने के लिये होंठ दांत से काट लिये और मुख फेर लिया।

कनक ने पुरी के हाथ अपने हाथों में ले लिये—"बताओ, यह क्या है ?"

पुरी ने अपनी विह्वलता छिपाये रखने की कठिनाई प्रकट करने के लिये होंठों को और ी अधिक काट कर पूछा—"बिना जाने ही तुम्हें इस प्रकार रो देना चाहिये था ?"

"मैं क्या देख रही हूं ?"

"मेरी बात तो सुननी चाहिये ?" पुरी ने रुंधे गले से कहा, "मेरी यातना भी तो जाननी चाहिये।"

"बताइये !" कनक का स्वर स्थिर और कुछ कोमल हो गया।

पुरी कुछ क्षण के लिये सिर झुकाये मौन रह गया और फिर रुंधे हुए गले को साफ कर बहुत धीमे स्वर में बोला—"तुम ने एक पलक में यह देखा है पर तुमने उस के पीछे प्राणों पर संकट, विवशता और यातना की जो दारुण परिस्थितियां रही है, वे नहीं देखी है, उनकी कल्पना भी नहीं कर सकती। तुम नहीं जानतीं, मैं मौत के मुंह से कैसे बच गया, मैं कितना विवश था और हूं.........।"

कनक घुटने पर ठोड़ी टिकाये पुरी के मुख पर टकटकी लगाये थी। पुरी उन बेंधती आंखों से नजर बचाये मस्तिष्क की सम्पूर्ण एकाग्रता से बहुत धीमे-धीमे बताने लगा।

"........तुमने मुझे इस अवस्था में देखा है परन्तु तुम नहीं जानती, यह अवस्था किन परिस्थितियों का परिणाम है। जब आदमी चोट से बेसुध हो गया हो, वह सहारे के लिये क्या करता है, किस जगह किस वस्तु पर हाथ डाल देता है, यह वह स्वयं भी नहीं जानता। सुध आने पर वह हैरान रह जाता है और अधिक बेबस हो जाता है। अब तुम्हीं मुझे बचा सकती हो।"

पुरी सांस लेने के लिये रुका। कनक ने उस के चेहरे पर आंखें गड़ाये पूछ लिया—"यह कौन है? मामला क्या है?"

"कभी तुम से छिपाया ही क्या है? तुम्हें सभी कुछ बताया था।"

"क्या? कब बताया?"

"तुम्हें 'मरी' की घटना बतायी थी; जिस लड़की की ट्यूशन के लिये मैं मरी गया था।"

कनक को याद आया दो वर्ष पूर्व जब पुरी और कनक परस्पर विश्वास प्रकट करने के लिये अपने रहस्यों की बातें एक दूसरे को बताने लगे थे, पुरी ने मरी में उर्मिला के साथ हुआ अनुभव सुना कर बताया था कि वह जिस-तिस लड़की के प्रति आकर्षित नहीं हो सकता, केवल शारीरिक सौंदर्य उसे आकर्षित नहीं कर सकता।

"वह यहाँ कैसे आ गयी?" कनक ने पूछा।

"उस का भाग्य!" पुरी ने गहरे सांस से उत्तर दिया, "मुझे ही यहाँ कौन ले आया? मस्तिष्क पर ऐसी चोट लगी है कि अब भी संदेह हो जाता है, क्या पूरी तरह सुध में हूं। इस प्रलय में क्या नहीं हो गया? नैनीताल से आ रहा था तो लधियाना से पहले गाड़ी पर हमला हो गया। सहारनपुर, अम्बाला से गाड़ी में मुसलमान ही मुसलमान भर गये थे। खून और कत्ल के लिये पागल लोग किसी को भी नहीं छोड़ना चाहते थे। मुझ पर भी कितने बर्छे मारे गये......" पुरी ने कनक के शरीर की सिहरन देखी और कहता गया, "परन्तु डिब्बे के अंत में होने के कारण पीछे हटते लोगों के नीचे दब गया था। बर्छे-भाले मुझ पर गिर पड़े शरीरों को ही बेंध कर रह गये। लाशों के बोझ के नीचे से निकल पाना ही आसान नहीं था। सुध आने पर यही विश्वास नहीं हो पा रहा था कि जीवित हूं। विश्वास था कि पागल नहीं हो गया हूं।"

कनक ने सिहर कर पुरी की बांह अपने हाथों में ले ली। पुरी बताता गया—"अंधेरे मार्ग में उस के गले पर छुरी रख कर उस की जेब खाली कर ली गयी। भूख से व्याकुल होकर वह अपने कपड़े बेचने के लिये भटकता रहा।

दो रोटी पा लेने के लिये उस ने तंदूर पर जूठे बर्तन मांजे……।"

कनक की आंखों में फिर आंसू छलक आये। पुरी आर्द्र स्वर में, स्वप्न में खोया हुआ सा बोलता जा रहा था।

"पुरी भाई जी !" जीने से पुकार सुनाई दी।

पुरी तुरन्त उठ कर उस ओर गया।

रिखीराम कुछ सीढ़ियां नीचे ही खड़ा था। घर में उर्मिला के होने के कारण और रुल्दू से एक नयी स्त्री के आने की खबर पा कर रिखीराम ने कुछ दूर से ही खांस कर आवाज दे दी थी।

पुरी प्रेस के टाइम से कुछ मिनट पहले ही तैयार होकर प्रेस में पहुंच जाता था। लोगों के समय पर आने और तुरन्त काम आरम्भ कर देने पर नजर रखता था। उसे अभी तक रात के ही कपड़े पहने हुये देख कर रिखीराम ने पूछ लिया—"भाई जी तबीयत तो ठीक है ?"

"कुछ नहीं, जरा सिर में दरद है। ट्रेडल पर चरनसिंह की रसीद लगवा दो। सिलेंडर पर कोर्ट का फार्म है हीं। मैं अभी आता हूं।"

पुरी ने कनक के समीप लौट कर, धीमे बात कर सकने के लिये झुक कर कहा—"तुम इतने लम्बे सफर से इतनी सर्दी में आयी हो। चाय……।"

कनक ने पुरी को बांह से पकड़ कर चटाई पर बैठा लिया—"हो जायगा, यह यहाँ कैसे पहुंच गयी।"

"पहले यह ही नहीं बता सका कि मैं इस मकान तक कैसे पहुंच गया।"

"तब भी, पहले बताओ यह कहाँ मिली ?"

"लम्बी और दर्द भरी कहानी है।" पुरी ने पीड़ा के स्वर में कहा, "इसका परिवार बेघरबार होकर यहाँ आ गया था। यह बेचारी लाहौर में विधवा हो गयी थी। इस के पिता का सब कुछ लुट गया है। हालत बहुत खराब थी। पिता को दिल के दौरे आ रहे थे। वैसी ही हालत मां की। साथ छोटा लड़का था। मैंने कैम्प में लौट कर देखा, वे लोग इसे छोड़ कर चले गये। इस ने अपने दुपट्टे से गला घोंट कर प्राण दे देने चाहे पर बेसुध हो जाने के कारण हाथ शिथिल हो गये। हम दोनों भाग्य के मारे पागलों जैसी स्थिति में थे। यह बार-बार आत्महत्या का प्रयत्न कर रही थी। इसे संभालने के प्रयत्न में अपनी अवस्था भूल सका नहीं तो शायद मैं स्वयं कुछ कर बैठता। उस समय इस के प्रति पुरानी घृणा और खिन्नता कैसे याद रखता। मेरे सोये रहते समय यह फिर अपना गला न घोंट ले इसलिये इसे बाहों में लेकर सोना पड़ता था। इसे विश्वास दिलाना आवश्यक था कि यह वंचिता, निराश्रय और अकेली नहीं

है। उचित कहो या अनुचित उस का दिमाग बदलने के लिये अपने प्रेम का विश्वास दिलाया। मानसिक शारीरिक सभी उपाय किये। एक जान को बचा सकने का प्रश्न था। मुझे इस से अधिक कुछ दिखाई नहीं दे रहा था पर इसे कभी तुम्हारा स्थान देने या पत्नी बनाने की बात नहीं सोची। तुम इसे व्यभिचार ही कह लो परन्तु इस के होश संभालते ही इस चिन्ता में था कि अब इसे अपने पांव पर खड़ी कर जल्दी मुक्ति पाऊं। इसी दुविधा में नैयर से मिलते ही तुम्हें पत्र नहीं लिख सका।"

कनक सिर झुकाये सुन रही थी।

"एक मिनट ठहरो, मुझे चक्कर सा आ रहा है। तुम्हारे लिये चाय का प्रबन्ध करूं.......।" पुरी साथ के दरवाजे की सांकल बिना खटके के हटाकर बाहर निकला।

उर्मिला दरवाजे के एक किवाड़ के साथ कान चिपकाये खड़ी थी। उस ने कपड़े पहन लिये थे। दुपट्टे में सिकुड़ी हुई थी। मांथे पर बिन्दी अब भी फैली हुई थी। उस का चेहरा पुराने कागज की तरह पीला हो गया था। पुरी समझ गया, उर्मिला कनक और उस की बातें सुन रही थी।

पुरी चकरा गया। फिर भी उस ने उर्मिला को बांह से पकड़ कर दरवाजे से कुछ परे आड़ में, दीवार के साथ ले जाकर बहुत धीमे स्वर में कहा--"तुम्हें मैं सब बता दूंगा। तुम घबराओ मत !"

उर्मिला बाँह पकड़ने से खिंच गयी थी परन्तु उस ने पुरी की ओर आंख नहीं उठायी।

"चाय बनायी है ?" पुरी ने पूछा।

उर्मिला सुन्न खड़ी रही।

पुरी ने बगल की रसोई में झांका। चौका ठंडा-सूना पड़ा था। पुरी को याद आया, सुबह से दूध भी वैसे ही पड़ा था। पुरी ने उर्मिला के कंधे पर हाथ रख कर, दूसरे हाथ से उस की ठोड़ी उठा कर बहुत कातर स्वर में आश्वासन दिया--"तुम घबराओ मत। मेरा विश्वास रखो। घबराकर बात न बिगाड़ो। तुम अपने घर में हो। तुम उस से मेहमान की तरह ठीक से व्यवहार करो।"

उर्मिला ने पुरी से आँख नहीं मिलायी, सिर झुकाये रसोई में चली गयी।

पुरी ने जीने के निचले दरवाजे में जाकर खेमी को पुकारा। उसे एक रुपया देकर डबल रोटी, मक्खन की टिकिया और हलवाई के यहाँ से कुछ मीठा-नमकीन ले आने का आदेश दे दिया।

पुरी ने फिर कनक के समीप चटाई पर बैठ कर बात की--"कन्नी, इस

समय, ऐसी परिस्थिति में आकर तुम्हें बहुत दुख हुआ परन्तु तुम मेरी सहायता के लिये आ गयी हो। तुम मेरी स्थिति सम्भालने-सुलझाने में मदद दोगी। उस का दुर्भाग्य और असहाय परिस्थिति तुम्हारे सामने है। मैं पहले से ही उस के लिये किसी अच्छे परिवार मे रह कर कुछ पढ़-लिख सकने और प्रबन्ध कर देने के लिये सूद जी से कह चुका हूं। वह हो जायेगा लेकिन इस समय उसे ऐसे सम्भालना होगा कि फिर पागल न बन जाये।"

कनक सिर झुकाये मौन थी। पुरी ने ढाबे की नौकरी मे सूद जी से सामना हो जाने और उन के प्रेस को सम्भालने के सुझाव की बात बतायी। बीच में उस ने अनुरोध कर दिया--"वह चाय बना कर ला रही है। तुम उसे बुला लेना।" और फिर बोला, "सुविधा से सांस लेने का अवसर पाते ही मैने तुम्हें नैनीताल के पते पर पत्र लिखा था। उत्तर न आने पर दूसरा पत्र लिखा। उस का भी उत्तर नहीं आया तो रजिस्ट्री करा कर पत्र भेजा..."

पुरी ने चटाई से उठ कर समीप की आलमारी से एक रजिस्टर्ड लिफाफा निकाल कर कनक के सामने प्रत्यक्ष प्रमाण रख दिया--"यह लौट आया तो मै बहुत निराश हो गया। फिर अचानक कचहरी मे नैयर दिखायी दे गया। उसने बताया, पिता जी दिल्ली मे दिल्ली गेट के पास है पर पता ठीक से नही बताया। उस के पुराने रुख के ख्याल से अधिक पूछना भी अच्छा नही लगा।"

"जीजा से क्या बातचीत हुयी थी?" कनक पूछ रही थी कि पीठ पीछे आहट सुन कर पुरी ने उधर देखा। एक थाली मे चाय का सामान दिखायी दिया। उर्मिला स्वयं आड मे रह कर थाली बढाये थी।

"आओ आओ, तुम भी आओ।" पुरी ने थाली लेते हुए पुकारा।

कनक के मुख से शब्द न निकल सका। गर्दन झुकाये रही।

पुरी थाली चटाई पर रख कर उर्मिला को समझाकर भीतर खींच लाया। दोनो एक दूसरी से मुंह मोडे, गर्दन झुकाये बैठी थी। पुरी ने बाजार से आया नाश्ता बीच मे रख कर दोनो से खाने का अनुरोध किया। एक और प्याला लाकर तीन प्यालों मे चाय बना दी।

कनक और उर्मिला दोनों गर्दन झुकाये सुन्न बैठी थी। सम्भवतः कनक की कल्पना मे घर मे आते ही देखा दृश्य और उर्मिला के कान मे किवाड़ की ओट से सुने शब्द गूंज रहे थे। पुरी ने भी गर्दन झुकाये किसी का नाम न लेकर, किसी की ओर आंख न उठा कर कई बार अनुरोध किया--"खाओ न, कुछ खाओ, चाय पियो! ...ठंडी हो जायेगी!"

पुरी ने बर्फी का एक टुकड़ा मुह मे डाल लिया था। परिस्थिति की

परेशानी में उसे लग रहा था, मिट्टी का ढेला मुंह में डाल लिया हो और चाय पीने लगा। कनक कुछ न खाकर चाय के घूंट ले रही थी। उर्मिला निश्चल बैठी रही।

पुरी सोच नहीं पा रहा था क्या करे, क्या कहे! वह दोनों के सामने अपराधी था। आधा प्याला समाप्त करने तक उस का विचार बदला––दोनों एक दूसरी को सह नहीं सकतीं। इन्हें व्यवहार तो ढंग से करना चाहिये; क्या तमाशा कर रही हैं। जो कुछ कहना है, मुझ से कहें!

याद आ गया, सुना था, उस की दो दादियाँ थीं।···आखिर क्या हुआ, प्रायः ही लोगों के दो-दो पत्नियाँ होती थीं, अब भी सैकड़ों के होंगी। इन्हें ढंग से तो बोलना-बैठना चाहिये···।

जीने पर फिर कदमों की आहट हुयी और साथ ही सुनायी दिया—"अरे पुरी, क्या हुआ? क्या बात है?"

पुरी चौंक कर, लगभग उछल कर खड़ा हो गया। वह दरवाजे की ओर जा रहा था कि सुनायी दिया—"क्या बिस्तर में हो?"

उड़के हुये किवाड़ बाहर से धक्का पाकर खुल गये। सूद जी कमरे में आ गये पर ठिठक गये।

पुरी के पीछे चटाई पर दो जवान लड़कियाँ रूठी हुयी सी गर्दन झुकाये बैठी थी। सूद जी लड़कियों के सामने अचानक आ जाने की झेंप से बिना कुछ कहे ही जीने में लौट गये। पुरी स्वयं ही जीने की ओर जा रहा था।

सूद जी की पुकार सुनायी दी––"पुरी सुनो तो, जरा यहाँ आओ।"

"पुरी जीने से नीचे पहुंचा तो दरवाजे के सामने सूद जी और उन का चपरासी जगन्नाथ खड़े थे। सूद जी का चेहरा तमतमा गया था। उन्होंने चपरासी को गली में टांगे पर बैठ कर प्रतीक्षा करने के लिये कह दिया और पुरी को प्रेस के दफ्तर के कमरे में ले गये। दोनों ओर के दरवाजे बन्द करके सूद जी बोले––"यह क्या तमाशा है? अपना मुंह काला करा रहे हो, हमारा भी कराओगे। क्या नाम अ···अ···तबीयत खराब होने का बहाना करके ऊपर दो-दो लड़कियों को लेकर पड़े हो! ऐसी करतूतों से तबीयत खराब नहीं होगी तो क्या होगा? क्या नाम हम ने कहा था, या तो उस लड़की से शादी करो या अ अ अ उस के घर भेजो! तुम ने तो दो-दो छिपायी हुयी है।" सूद जी का स्वर तीखा हो गया, "तुम ऐसे रजवाड़े के राजा-नवाब हो गये कि तुम्हें क्या नाम दो-दो रानियाँ चाहिये?"

"भाई जी सुनिये, मुझे मालूम भी नहीं था। वह तो अभी आयी है।

"पुरी कैसे स्वीकार कर लेता कि यह सब स्वयं उस का रचा हुआ जाल था। वह इसे परिस्थितियों का धोखा समझ रहा था। सूद जी के क्रोध और प्रतारणा से क्षुब्ध होकर वह कह देना चाहता था—मुझे आप की परवाह नहीं, प्रेस की और अखबार की जरूरत नहीं पर कह नहीं सकता था। उस के विरुद्ध झूठे आरोप सच बने जा रहे थे। वह असहाय चुप हो गया और सूद जी क्रोध में चुप रहे।

"भाई जी" पुरी ने दीनता से कहा, "स्ट्रेंज कोइन्सीडेंसिज (असाधारण घटनाएं एक साथ) का चक्कर मुझे आप के सामने अपराधी बना रहा है।···"

सूद जी क्रोध और चिन्ता में कई पल तक अपने मशीन से कतरे केशों पर से गांधी टोपी उतार कर, सिर पर हाथ फेर-फेर कर सोचते रहे। फिर अपनी ऊनी बंडी की जेबों में हाथ फंसाये दीवार की ओर देखते हुये सोच कर बोले—"चलो, ऊपर चलो! यह फैसला करना होगा।"

सूद जी पुरी के आगे-आगे जीने पर चढ़ते जा रहे थे। आधे जीने में आकर ठिठक गये। यह सोच कर कि ऊपर लड़कियां हैं, पुरी से कहा—"तुम आगे चलो।"

पुरी और सूद जी कमरे में पहुंचे तो कनक चटाई पर बैठी थी, उर्मिला उठ कर चली गई थी।

"भाई सूद जी, पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी हैं।" पुरी ने कनक को बताया।

सूद जी ने कनक की नमस्ते के उत्तर में पूछ लिया—"तुम ग्वालमंडी वाले पंडित गिरधारीलाल जी की लड़की हो न?"

कनक ने गर्दन झुका कर स्वीकार किया।

"पंडित जी कहाँ हैं?"

"दिल्ली में।"

"उन से पूछ कर आयी हो?"

कनक को यह प्रश्न बहुत बुरा लगा परन्तु उत्तर दे दिया—"मैं लखनऊ में थी, वहाँ से आयी हूं।"

"पंडित जी से पूछे बिना क्यों आयी हो? यह ठीक नहीं है।"

"आप को मतलब?" कनक ने नज़र उठा सूद के हस्तक्षेप का विरोध किया।

"ह-हाँ मुझे मतलब है।" सूद जी क्रोध में कुछ थुथला गये, "अ-अ-अभी तुम्हारा ब्याह तो नहीं हुआ है!"

कनक की गर्दन क्रोध और अपमान से झुक गयी। उस ने सूद जी की ओर आंख उठाये बिना अंग्रेजी में कह दिया—"इन बातों से आप को क्या मतलब है?"

"हाँ-हाँ है, जरूर मतलब है। पंडित जी क-क्या नाम कांग्रेस के पुराने रिस्पेक्टेबल आदमी हे। उन की इज्जत से मुझे मतलब है। क्या नाम पुरी म···मेरा भाई है। उस की पोजीशन से मुझे मतलब है। क्या नाम पंडित जी तुम दोनों की शादी करना चाहते है तो मुझे तुम से भी मतलब है।"

सूद जी ने अपनेपन का अधिकार बता कर अपमान कर दिया। कनक को लगा मानो जीजा नैयर उग्र रूप धारण करके सामने आ गया हो। कनक बात की मार खाकर निरुत्तर रह गयी। गर्दन और भी झुक गयी। सांस रुक रही थी। वह सहायता के लिये पुरी की ओर देखना चाहती थी।

"भाई जी" पुरी ने साहस किया, "लाहौर में इन के यहाँ सदा ही आता-जाता रहता था। यह भी हमारे यहाँ आती-जाती थी।"

कनक को साँस मिली।

सूद जी ने पुरी को डांट दिया—"अ-अ-क्या पंडित जी ने कह दिया है कि ब-ब-बिना व्याह किये एक साथ रह जाओ! क्या बकते हो! व्याह क्यों नहीं कर लेते? पंडित जी चाहते है, तुम लोग चाहते हो तो व्याह क्यों नहीं कर लेते? तुम लोग क्या हम सब की बदनामी करवाना चाहते हो?"

पुरी चुप रह गया।

कनक ने आंचल आंखों पर रख लिया। वह सूद जी जैसे आदमी की और ऐसी परिस्थिति की कल्पना नही कर सकती थी। जीजा नैयर ने इस प्रकार डांटा होता तो कह देती—हाँ कर दो व्याह—परन्तु इस अपरिचित और इतने अधिकार से बोलने वाले को क्या उत्तर देती।

सूद जी कनक के रो पड़ने की ओर सकेत कर पुरी से बोले—"इस सब का कुछ फायदा नही है। क्या नाम मैं आज ही पंडित जी को लिखता हूं, जल्दी व्याह करके झगडा खतम करे। आ-आ, और यह यहाँ नही रहेंगी। अपनी बहिन के यहाँ जाकर रहें। क-क्या नाम तुम वहाँ जाकर उस से मिल सकते हो।"

सूद जी ने अपना निर्णय और निश्चय अनिवार्य होने के संकेत मे दोनों बाहें सीने पर बांध कर एक फुंकार छोड़ दी और पुरी की ओर घूम कर धीमे स्वर में पूछ लिया—"वह कहाँ है?"

पुरी बिलकुल यंत्रवत हो गया था। सिर झुकाये आंगन के दरवाजे से देखने गया। उर्मिला आगन मे कमरे की दीवार से पीठ लगाये घुटनों पर सिर रखे सिमटी बैठी थी। बिल्कुल जड़, निश्चल। पुरी उसे कुछ क्षण देखता रहा। उर्मिला की मुद्रा देख कर पुरी उसे सूद जी के सामने चलने के लिये कहने का साहस न कर सका। लौट कर उस ने सूद जी को आगन की ओर संकेत कर दिया।

सूद जी कुछ ठिठके और आंगन में चले गये। उर्मिला उसी तरह बैठी रही। सूद जी उस के सामने खड़े होकर धीमे परन्तु गम्भीर स्वर में बोले—"तुम ब्याह नहीं करना चाहती, अ-अ अपने पांव पर खड़ी होना चाहती हो तो यहाँ पड़ी रहने का क्या मतलब है ?"

सूद जी उर्मिला के उत्तर की प्रतीक्षा न कर एक साथ कहते गये—"तुम्हें कोई काम सीखना चाहिये; नार्मल स्कूल में जाओ या नर्स का ही काम सीखो या नौकरी करो। पढ़ना या कुछ सीखना चाहती हो तो खर्च का इन्तजाम हो जायगा, यहां तुम्हारे रहने का कोई मतलब नहीं है।"

उर्मिला सिर झुकाये निश्चल रही।

सूद जी ने पूछ लिया—"नार्मल स्कूल में जाना चाहती हो या नर्सिंग में ?"

उर्मिला जड़वत निश्चल, निर्वाक बैठी रही।"

सूद जी ने कुछ क्षण सोच कर कह दिया—"अच्छा हस्पताल की सिस्टर तुम्हें आकर ले जायेगी।"

सूद जी और उन के पीछे-पीछे पुरी जीने की ओर चले गये।

पुरी सूद जी को प्रेस के दरवाजे तक छोड़ने गया था। सूद जी उस से कुछ न बोले। गली में प्रेस के सामने खड़े टांगे पर बैठ कर चले गये। पुरी को ऊपर घर में कनक और उर्मिला के सामने जाने का साहस न हुआ। प्रेस के दफ्तर में बैठ कर सोचने लगा, क्या करे ? वह ऐसा घिर गया था कि कोई राह नहीं रही थी। उर्मिला कहाँ जायगी ? उस बेचारी का क्या दोष है ? उस बेचारी को धोखा क्यों दूं ?""कनक को भी धोखा नहीं दे सकता। मैं दोनों के सामने अपराधी हूं।

रिखीराम ने आकर कुछ पूछ लिया। पुरी ने उस की बात नहीं समझी। क्रोध में उफ न पड़ा—"सब कुछ मैं ही करूं ? मुझे अखबार की तैयारी का काम नहीं है ?" फिर उत्तरदायित्व अनुभव कर पुरी संभल गया, "मैं सूद जी की सुनूं या तुम्हारी सुनूं ? तुम अपना प्रेस नहीं चलाते थे ? इसे अपना काम नहीं समझ सकते ?"

रिखीराम ने आदरभरी डांट के उत्तर में विनय से कहा—"कर तो रहा ही हूं पर मालिकों से पूछ लेना भी ठीक होता है।" वह चला गया।

पुरी के मन में सहसा विरोध उठा। सूद जी का दबाव उसे कुचले डाल रहा था। इस दबाव को वह क्यों सहे !""सूद जी मेरे मामले में हस्तक्षेप क्यों करें ? मैंने जो कुछ किया है, उस के लिये मैं उत्तरदायी हूं। परिणाम

को सहना और संभालना मेरा काम है, चाहे प्राण देकर संभालूं। असाधारण परिस्थितियों में जो कुछ हो गया, उसे साधारण दृष्टि से कैसे जांचा जा सकता है ? उस के लिये जो भी असाधारण उपाय हों, करने होंगे ! परिणाम मुझे भुगतना है, किसी दूसरे को नही। दोनों में से किसी को भी कैसे धक्का दे सकता हूं ?""हम तीनों का मामला है, कोई क्यों बोले ?""परन्तु सूद जी की परवाह न करके दोनों को कहां ले जाऊं ? प्रेस और मकान तो सूद जी की इच्छा बिना मेरा नहीं है। इस घर को छोड़ कर तीनों बाजारों-सड़कों पर निकल जायें ? पुरी के विरोध का उफान बैठ गया।

असह्य दबाव और विवशता में पुरी उर्मिला पर होते अन्याय को रोक सकने के लिये अपने ही नाखूनों से अपना हृदय फाड़ देना चाहता था। अपना सिर पक्की ईंट की दीवार से टकरा कर तोड़ देना चाहता था। स्थिति को संभाल सकने का साधन उस के हाथ में न था। वह कनक और उर्मिला के सामने जाकर क्या करता ?

पुरी ने विवशता में सोचा—सूद जी का सहारा लेकर प्रेस, मकान और अखबार के जाल में फंस गया हूं। अदृश्य फौलादी तारों से बने इस जाल को कैसे तोड़ सकता हूं। यदि यह प्रेस और मकान न होते तो यह सब होता ही क्यो ? यदि मैंहरे के ढाबे पर बर्तन मांज कर ही निर्वाह करता रहता तो यह अपराध और अपमान तो न होता।

प्रेस की मशीनें बंद हो जाने से ध्यान आया, एक बज गया है। याद आया, सुबह से घड़ी में चाबी नही दी। उँगलियों ने घड़ी में चाबी भर दी। ऊपर घर मे कैसे जाता।

प्रेस की मशीने फिर चलने लगीं। पुरी की दृष्टि घड़ी पर गयी। आध घंटे का समय और बीत गया था। फिरकू को बुलाकर उस ने एक गिलास पानी मंगवा कर पी लिया।

प्रेस के दरवाजे पर जोर से सांकल खटकने की आवाज से फिरकू बाहर गया। लौटा तो उस के पीछे पीछे सलवार-कमीज, दुपट्टे में एक गरीब अधेड़ सी स्त्री चली आयी।

फिरकू के साथ आयी स्त्री ने एक लिफाफा पुरी की ओर बढ़ा दिया। लिफाफा पुरी के ही नाम था। पत्र सिविल हस्पताल के पुर्जे पर था। सूद जी के आदेश से उर्मिला को लिवा ले जाने के लिये हस्पताल से दाई आयी थी।

पुरी को जान पड़ा उसे संज्ञा-शून्य मशीन बना दिया गया था। उस के हाथों हत्या करवायी जा रही थी। वह कुछ पल बैठा रहा।

दाई ने उस का ध्यान आकर्षित किया—"बाबू लड़की को बुलाओ। बाहर गाड़ी (एम्बुलेंस) खड़ी है। ड्राइवर बिगड़ेगा।"

पुरी अपनी पूरी शक्ति लगा कर उठा। दाई को उत्तर दिया—"बुला कर लाता हूं।" वह जीने की ओर चला गया।

सूद जी ने जड़वत दीवार से पीठ लगाये बैठी उर्मिला को सम्बोधन कर कह दिया था—"...तुम्हारे यहां पड़ी रहने का क्या मतलब? ...तुम्हें कुछ सीखना चाहिये। ...हस्पताल से ...आकर ले जायेगी—निर्णय देकर सूद जी चले गये थे।

उर्मिला वैसे ही सिर झुकाये जड़वत निर्वाक बैठी रही थी। कुछ मिनट बाद उस की चेतना जागी ...मुझे यहां से निकाल रहे हैं। ...कहां जाऊंगी? ...अब मेरे लिये दुनिया में और कहां स्थान है! उर्मिला की आंखों में आंसू टपकने लगे। मन चाहा जोर से चीख कर रो दे परन्तु सौत की तरह आ बैठी उस स्त्री को अपना रोना कैसे सुनने देती? दम घोटे सिर झुकाये आंसू टपकाती रही। कान आहट की प्रतीक्षा कर रहे थे, पुरी आये तो पांव पकड़ कर कहेगी—मुझे गली-बाजार में धक्का मत दो! जैसे कहोगे, एक तरफ पड़ी रहूंगी। निकालो मत। बेशक जहर देकर मार डालो।

उर्मिला के कान आहट की प्रतीक्षा में निराश होने लगे थे; आंसू रुक कर आंखें खुश्क हो गयी थीं। सामने पूर्व से उठता सूर्य सिर पर आ पहुंचा था और फिर दीवार की छाया उस पर आकर दो हाथ सामने तक फैल गयी थी। उर्मिला वैसे ही बैठी हुयी थी। उसे कदमों की आहट सुनायी दी। पुरी ही था। उर्मिला तुरन्त उठ कर खड़ी हो गयी। पुरी की भी आंखें लाल थीं।

"तुम्हें ले जाने के लिये हस्पताल से दाई आयी है। तुम घबराना मत। मैं वहां आकर तुम से बात करूंगा। अपने कपड़े साथ ले लो। दाई नीचे खड़ी है।" पुरी ने बहुत धीमे स्वर में कहा।

उर्मिला ने आंसू निगल कर हाथ जोड़ दिये—"मुझे मत निकालो! मैं ..."

"तू घबरा मत। इस समय जल्दी आ जा।" पुरी तुरन्त लौट गया। उस के लिये आंसू रोक पाना कठिन हो रहा था।

उर्मिला ने सिर पकड़ कर दीवार का सहारा ले लिया। फिर बैठ गयी। कुछ देर बाद जीने की ओर से अपने नाम की पुकार सुनायी दी। किसी स्त्री का स्वर था।

उर्मिला निराशा में पूरी शक्ति लगा कर उठी। बच्चे के खटकने की परवाह

न कर झटके से उसे खोला। एक जोड़ा धुले हुये कपड़े और दुपट्टा ले लिया। मालूम था, दूसरे कमरे में नयी आयी औरत चटाई पर बैठी होगी। उर्मिला उसे न देखने के लिये सिर झुकाये चली गयी। जीने में खड़ी स्त्री के पीछे-पीछे वह दीवार का सहारा ले-ले कर उतर गयी।

पुरी प्रेस की ड्योढ़ी में खड़ा था। उर्मिला सिर झुकाये समीप से जा रही थी। पुरी ने उस की ओर मुट्ठी बढ़ा कर कहा—"ज़रूरत के लिये यह रख लो।"

उर्मिला ने सुन कर भी उधर नहीं देखा।

पुरी किवाड़ के साथ लगा खड़ा देखता रहा। दाई और उस के पीछे उर्मिला सिर झुकाये गली से बाजार की ओर जा रही थी।

ड्राइवर ने एम्बूलेंस गाड़ी का दरवाज़ा खोल दिया। दाई ने उर्मिला को सहारा देकर गाड़ी पर चढ़ाया और स्वयं भी गाड़ी में हो गयी। ड्राइवर ने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

पुरी प्रेस के पिछवाड़े बनी संडास की ओर चला गया। आँसू रुक नहीं सके। दस-पन्द्रह मिनट बाद उधर से आया तो नल के नीचे मुंह-हाथ धोकर दफ्तर में जा बैठा। फिर कुछ मिनट बाद उठ कर धीमे-धीमे जीना चढ़ गया।

पुरी उर्मिला को बुलाने आया था तो कनक कम्बल ओढ़े दीवार की ओर मुख किये सो रही थी। वह कमरे में से दबे पाँव चला गया था। इस बार उस ने पुकारा—"कन्नी सो रही हो?"

कनक उठ कर बैठ गयी—"तुम चले गये तो मुझे नींद आ गयी थी। रात भर की जगी थी। ओह, तीन बज गये? कहाँ चले गये थे?"

"कन्नी, तुम भूखी ही सो गयी। क्या बताऊं, ऐसा उलझ गया था। उस बेचारी के इन्तजाम के लिये गया था।"

"वह चली गयी?" कनक ने सांत्वना से पूछा।

"सूद जी से पहले ही कह रखा था। मैट्रिक भी नहीं है। नर्सिंग सीखना चाहती थी लेकिन जब तक अपने पाँव पर खड़ी न हो जाये, मै उत्तरदायित्व निबाहना चाहता हूं।"

पुरी के विचार का विरोध न कर कनक ने कहा—"यह तुम्हारे भाई सूद जी बोलते कैसे हैं? मेरे यहाँ रहने से उन्हें क्या मतलब है?" कनक का चेहरा झेंप से लाल हो गया। झेंप मिटाने के लिये उस ने मचल कर पुरी के कन्धे से सिर टिका दिया। उस की आँखों में देख कर बोली, "हम इतनी दूर से इसीलिये आये है?"

पुरी ने कनक को बाहों में लेकर समझाया—"सूद जी की बात तो पिता जी टालेंगे नहीं।"

"बड़े आये तुम्हारे सूद जी !" कनक ने गर्व से कहा, "मैं दिसम्बर में दिल्ली गयी थी। पिता जी ने तभी स्वयं ही बात कही थी। पिता जी तो स्वयं चाहते हैं, जल्दी हो जाये।" कनक ने पुरी के सीने में मुंह गड़ा दिया।

कनक ने नाजिर के प्रकाशन की तैयारी के विषय में पूछा, अपनी लखनऊ की नौकरी के विषय में बताया। अवस्थी जी की करतूत भी बता दी और बोली—"तुम ने नहीं बुलाया तब भी मैं तुम्हारी सहायता के लिये ठीक समय पर आ पहुंची हूं।"

कनक ने रात बहिन के ही घर ठहरना उचित समझा। नैयर का डाक का पता मालूम था। मंडी बाज़ार में मकान ढूंढ़ सकने में सहायता के लिये पुरी साथ गया। वह नैयर के घर बिना बुलाये नहीं जाना चाहता था परन्तु कनक के अनुरोध और भविष्य का ख्याल करके उसे जाना ही पड़ा।

महेन्द्र नैयर और कांता ने समझ लिया, कनक नैयर से पुरी का समाचार पाते ही जालन्धर आयी थी। समाचार पाकर पुरी ही उस के लिये स्टेशन पर पहुंचा था। बहिन और जीजा को उस के आने के प्रयोजन के विषय में क्या सन्देह हो सकता था।

नैयर और कांता ने कनक पर प्यार का क्रोध प्रकट किया—"क्या हमें भी पहुंचने की खबर नहीं दे सकती थी ?"

कनक ने टाल दिया—"मेरा अचानक आ जाना अधिक अच्छा नहीं लगा ?" और नानी के लाड़ में कुछ न सुन सकने के बहाने उस विषय में कुछ न कहा, दूसरी बातें करती रही।

नैयर को बहुत कम जगह में निर्वाह करना पड़ रहा था पर मकान बहुत पुराना नहीं, इसी शताब्दी का बना था। जीना छोटे आंगन में खुलता था। एक कमरा बाजार की ओर दूसरा बाजू में था। छोटी सी रसोई, गुसलखाना और ईन्धन रखने के लिये कोठरी थी। सामने का कमरा दफ्तर भी था और बैठक भी। एक मेज, तीन मामूली कुर्सियां। एक छोटा तख्त दीवार के साथ सटा हुआ। रात हो जाने पर इसी बैठक में नैयर की माँ के लिये खाट डाल दी जाती थी। नैयर नौ-साढ़े-नौ तक कनक से गप्प करता रहा फिर अपने केस तैयार करने में लग गया। कनक को कांता के साथ ही सोना पड़ा। कनक को लाहौर माडल टाउन में नैयर की कोठी के ठाठबाट और सलीके की बात याद आये बिना न रही पर उस विषय में कुछ कहना व्यर्थ था।

सूद जी ने पुरी और कनक का मामला हाथ में लिया तो अपने स्वभाव और अभ्यास के अनुसार उसे शीघ्र ही निबटा देना चाहा। पुरी से नैयर का पता पाकर उसे मिलने के लिये बुलवाया। कांता और नैयर ने पंडित जी को जो पत्र दिल्ली लिखा उस में वांछनीय-अवांछनीय की कोई चर्चा न कर, कनक को शीघ्र से शीघ्र सफल-सन्तुष्ट गृहस्थ का आशीर्वाद दे देने के लिये प्रबन्ध का ही सुझाव था।

पुरी ने अपनी भूलों को विक्षिप्त जीवन के कारण अव्यवस्थित मानसिक अवस्था का परिणाम समझ लिया। जीवन को भविष्य में नियमित और संयमित रूप से निबाह सकने के लिये अपनी भूलों का उत्तरदायित्व निबाहना भी उस ने नैतिक कर्तव्य माना। कनक को दिल्ली जाने के लिये गाड़ी पर चढ़ा देने के बाद वह प्रेस में लौटने के पहले हस्पताल गया।

उर्मिला सन्देश पाकर बरामदे में आयी। पुरी को देख कर उस ने गर्दन झुका ली।

पुरी ने उसे न घबराने और पूरी सहायता का आश्वासन देकर उस की आवश्यकता की बात पूछी।

उर्मिला ने गर्दन नहीं उठायी। कुछ भी बोले बिना लौट गयी।

पुरी तीन दिन बाद फिर हस्पताल गया तो मालूम हुआ कि उर्मिला नर्सों के ट्रेनिंग स्कूल में दाखिल होने के लिये लुधियाना चली गयी थी।

७

गांधी जी के निधन के पश्चात कई अप्रत्याशित समस्यायें उठ खड़ी हुयी थीं। होम सेक्रेटरी मिस्टर रावत बहुत ही व्यस्त रहे। उन्हों ने तारा के विषय में कुछ सोचने का आश्वासन दिया था, पर उन्हें अपनी ही सुध नहीं रही थी। एक संध्या बहुत थक कर और ऊब कर क्लब चले गये थे। वहाँ अगरवाला साहब से भेंट हो गयी। रावत को याद आया, अगरवाला को दिया निमन्त्रण भी स्थगित रह गया था।

होम सेक्रेटरी के निमन्त्रण पर तारा को क्लब में साथ ले जाना मिसेज अगरवाला को कतई पसन्द नहीं था। उन की आशंका ठीक ही निकली।

रावत, डे साहब और नरोत्तम सभी को बस तारा ही दिखायी दे रही थी। रावत ने उसे बाँह से पकड़ कर अपने साथ की कुर्सी पर बैठा लिया था। ऐसे बात कर रहा था कि बरसों का परिचय हो।...इतना भी नहीं सोचा, उस की बेटी की उमर की है। श्यामा तो उसे यों ही मुँह लगाये है।

मिसेज अगरवाला क्लब में डिनर के निमन्त्रण पर सच्चे काम की बनारसी साड़ी और नवरत्न का सेट पहन कर गयी थीं, इन चीजों की किसी ने कद्र नहीं की। तारा बालिस्त भर काला किनारा लगी मामूली सफेद वायल की साड़ी और काला ब्लाउज पहने थी। गले और कानों में कुछ नहीं था। कलाइयों पर काँच की मोटी-मोटी दो काली चूड़ियाँ थीं। अपनी नौकर तारा के मुकाबिले अपनी उपेक्षा मालकिन को बहुत खली। उन्हों ने सोचा, मर्दों को जेवर, कपड़े की तमीज ही क्या होती है? वे तो बस जवान छोकरी देखते हैं; रोज नयी चाहिये।

मिसेज अगरवाला ने पुरुष स्वभाव का ध्यान रख कर तारा को साहब और अतिथियों के सामने कम से कम लाने की सावधानी बरती थी। पहली गवर्नेस मिस एडवर्ड और स्वयं अपनी छोटी विधवा बहिन को साथ रखने का अनुभव उन्हें था, पर लड़कियाँ मर्दों के सामने हुये बिना मानती कब हैं। नरोत्तम तो छोकरी को देखते ही उस पर मंडराने लगा था। ऊपर के ड्राइंग रूम में ड्रिंक-पार्टी की संध्या से साहब की आँखें भी तारा को खोजने लगी थीं। बाल सफेद हो रहे थे पर पुरानी आदत लौट रही थी। अखबार की भी जरूरत होती तो पूछने के लिये तारा को बुलवा लेते। मन के क्रोध के कारण मालकिन तारा से अधिक नहीं बोलना चाहती थीं पर बोलना आवश्यक हो जाता था। कभी-कभी खिन्नता में ताने दे बैठती थीं।

तारा ने ए-ए कोठी में आकर जो आश्वासन और सन्तोष अनुभव किया था, वह धीरे-धीरे उड़ गया था। वह मालकिन की खिन्नता और उस का कारण भी जानती थी। कौन युवती है जो नारी की ईर्षा और पुरुषों के भावों को नहीं ताड़ लेती। तारा जानती थी कि वह कोठी की नौकर है। वह किसी की भी अवज्ञा नहीं कर सकती थी। मालकिन जिन बातों को मन ही मन खूब बढ़ा कर खिन्न थीं उन कारणों से तारा को स्वयं भी संकोच होता था। यह उस की असहाय अवस्था से खेलना था। अपनी ओर साहब का जरा सा भी झुकाव उसे भला नहीं लगता था। अपनी ओर रावत साहब के ख्याल से भरोसा होता था परन्तु वह भी आशंका से खाली नहीं था।

नौकरी के लिये तारा का प्रार्थना-पत्र जा चुका था। नरोत्तम ने प्रार्थना पत्र

स्वयं लिख कर टाइप कराकर तारा से हस्ताक्षर करा लिये थे। प्रार्थना-पत्र में तारा के एम० ए० की विद्यार्थी होने की बात लिखी गयी थी। इस झूठ पर हस्ताक्षर करते तारा को डर लग रहा था। नरोत्तम ने समझाया, मम्मी और डैडी सभी से कहते रहे है कि आप एम० ए० है। रावत ने भी रिहैबिलिटेशन के डाइरेक्टर को फोन पर, आप के एम० ए० होने की बात कही थी। अब सब को झूठा कैसे बना दिया जाये। आप को टेम्परेरी नौकरी मिल जायेगी। सर्टिफिकेट के लिये पूछेगे तब देखा जायेगा।

नरोत्तम ने तारा को रावत के विषय में सब कुछ बता दिया था—आदमी दबग और दिल का बहुत अच्छा है, बट पीपल सेज वीमेन आर हिज वीकनेस (सुना है, नारी लोलुप है)। रावत की पत्नी का देहांत हो गया था। लड़का बिहार मे डिप्टी कलक्टर था। घर मे बुढ़ियां बहन या छोटी लड़की नीलम मालकिन थी। नीलम 'मिरांडा' मे एक बार फेल होकर फिर बी० ए० मे पढ़ रही थी। रावत चाहता था, रिटायर होने से पहले लड़की की शादी कर दे इसीलिये नरोत्तम पर रावत का विशेष वात्सल्य भाव था। अगरवाला साहब इस विषय मे जात-पाँत की सकीर्णता और लाख डेढ़ लाख के दहेज का मोह भी छोड़ देने के लिये तैयार थे परन्तु नरोत्तम को नीलम जैसी 'शोई' (छिछोरी) लड़की पसन्द नही थी।

मार्च से तारा के लिये और मुसीबत हो गयी थी। मिसेज अगरवाला की चिड़चिड़ाहट बहुत बढ़ गयी थी। नरोत्तम की उपस्थिति का सहारा भी जाता रहा था। नौकरी की अधिक आवश्यकता तो तारा को थी परन्तु उस से पहले नौकरी मिल गयी थी नरोत्तम को। नरोत्तम पिता-माता की नाराजगी के बावजूद शादनगर आर्डनेंस फैक्टरी मे 'वर्क्स मैनेजर, अंडर ट्रेनिंग' बन गया था। वह प्रातः सात ही बजे मोटर साइकिल पर दिल्ली से शादनगर चला जाता था और संध्या साढ़े छः-सात से पहले नही लौटता था।

मिसेज अगरवाला सध्या समय कही गयी हुई थी। तारा सात बजे बच्चों को डिनर खिला रही थी। साहब बाहर से आये। उन्हों ने नौकर से मालकिन के लिये पूछा और तारा को बुलवाकर कहा—"हम क्लब जा रहे है, तुम भी चलो। रावत साहब तुम्हें याद कर रहे थे।"

तारा रावत साहब को अपने लिये कोई इंतजाम न हो सकने की बात जरूर याद दिलाना चाहती थी परन्तु उत्तर दिया—"बहिन जी नही है। उन्हें बताये बिना ···।"

"अरे, तुम चलो। साड़ी बदलनी हो तो बदल आओ। हम इंतजार कर रहे हैं।" साहब ने हुक्म दिया।

रावत साहब बिलियर्ड रूम में थे। अगरवाला साहब तारा के साथ वहाँ ही चले गये। रावत ने दोनों को देख लिया। प्रतीक्षा का संकेत करके बिलियर्ड का राउण्ड समाप्त करने के लिये खेलते रहे।

बिलियर्ड का राउण्ड समाप्त करके रावत अतिथियों को लाउंज में ले गये। अगरवाला साहब ने तुरन्त दो ह्विस्की और तारा के लिये पाइन एप्पल जूस का आर्डर दे दिया। रावत ने तारा से स्वयं ही पूछ लिया—"तुम्हें रिहैबिलिटेशन के डाइरेक्टर से कोई खबर नहीं मिली ?"

तारा ने बहुत करुण दृष्टि रावत की ओर उठा कर इन्कार में गर्दन हिला दी—"जी नहीं।"

"ह्वाट ?···ह्वाई ?" रावत ने विस्मय प्रकट किया और बटलर को पुकार लिया। अपना पाइप सुलगाते हुये रावत ने बटलर को नम्बर बता कर कहा, "नम्बर मिला कर हमें खबर दो।"

बटलर ने कुछ मिनट बाद नम्बर मिलाने की सूचना दी। रावत पाइप दांतों में दबाये फोन की ओर चले गये।

फोन से लौट कर रावत ने तारा से जवाब तलब किया—"तुम मिस्तल, आई सीन रिहैबिलिटेशन के डाइरेक्टर से बात करने क्यों नहीं गयी ?"

"जी मुझे कुछ मालूम नहीं हुआ कब बुलाया था।"

"यू सिल्ली गर्ल" रावत पाइप की नली दांत से चबाते हुये बोले, "वह तो तुम्हारे लिये बेकैनी रखे इन्तजार कर रहा है। कहता है, उस ने तुम्हारी कोठी पर फोन भी करवा दिया था।"

"जी मुझे बिलकुल मालूम नहीं हुआ।" तारा ने आतुरता से क्षमा चाही।

रावत ने अगरवाला पर क्रोध दिखाया—"क्यों लाला, क्या मतलब है ? लड़की को कब्जे से निकल जाने देना नहीं चाहते ?"

"जनाब मेरी क्या औकात।" अगरवाला हंस दिये, "मैं आप के मुकाबिले कैसे आ सकता हूं !"

तारा को अपने सम्बन्ध में मजाक अच्छा नहीं लगा परन्तु खुशामद में सराहना के लिये उस ने रावत की ओर आँख उठा कर जरा मुस्करा दिया।

"यह देखिये !" अगरवाला बोल उठे, "आप ही के सामने ब्लश करती है। हमारे सामने तो मुस्कराती भी नहीं।"

तारा ने झेंप कर अगरवाला की ओर भी देख कर मुस्करा दिया ताकि

किसी भी ओर झुकाव न समझा जा सके ।

रावत ने उंगली दिखा कर अगरवाला को चेतावनी दे दी—"परसों ग्यारह बजे मिस तारा को रिहैबिलिटेशन के डाइरेक्टर से मिलने जाना है, याद रहे ।"

"जरूर, परसों पौने ग्यारह बजे गाड़ी इन्हें पहुंचा देगी ।"

रावत की ह्विस्की समाप्त हो गयी तो अगरवाला ने पूछा—"एक और लीजिये । डिनर आर्डर कर दूं ?"

"नहीं नहीं ।" डिनर नहीं रावत ने इन्कार किया और अगरवाला से पूछा, "तुम ने कभी 'घुरड़' (पहाड़ी हिरन) का गोश्त खाया है ? चंदोला ने रानीखेत से भेजा है । तुम भी हमारे यहाँ खाना ।"

तारा क्लब ने कोठी लौट जाना चाहती थी कि परन्तु रावत की बात न टुलख सकी ।

रावत ने अपने ड्राइंग रूम में आकर बैरे को आदेश दिया—"खाना लगवाओ" उस ने अतिथियों की ओर भी संकेत कर दिया, "दो मेहमान हैं । तब तक ह्विस्की-सोडा दे जाओ ।"

अगरवाला और रावत मेज पर भोजन लग जाने के इन्तजार में ह्विस्की पी रहे थे । तारा ने एक एलबम उठा ली थी और चित्र देख रही थी परन्तु साथ के कमरे के दरवाजे पर पर्दा हिलने से आभास मिल गया कि कोई झाँक गया है । पर्दे के नीचे से साड़ी का छोर दिखायी दे गया था ।

अगरवाला साहब और तारा कोठी पर लौटे तो तब दस बज रहे थे । मालकिन ड्राइंग रूम से निकल आयीं । फूला हुआ चेहरा क्रोध से और बड़ा लग रहा था । वे कुछ नहीं बोलीं ।

अगरवाला साहब अपने कमरे के जीने की ओर बढ़ गये । तारा ड्राइंग रूम की बगल से पिछवाड़े अपने कमरे की ओर जा रही थी—"यहाँ आओ" उस ने मालकिन की कड़क सुनी । वह ड्राइंग रूम में लौट आयी ।

"कहाँ गयी थीं तुम ?" मालकिन ने पूछा ।

"साहब क्लब ले गये थे । रावत साहब ने बुलाया था ।"

"तुम यहाँ नौकरी करती हो या रंगरेलियाँ करने आयी हो ? किस से पूछ कर गयी थी ?"

"मैंने साहब से कहा था, आप से पूछ कर जाना चाहिये पर साहब ने⋯।"

"साहब से तुम्हें मतलब ? तुम यहाँ नौकरी करने आयी हो या सौत बनने ? मेरी क्या आँखें नहीं है ? साँप को हजार दूध पिलाओ वह डंक मारने

से थोड़े ही रहेगा।" मालकिन गरजती जा रही थीं तारा सिर झुकाये खड़ी थी।

जुगुल ने आकर स्वर दवाये मालकिन से कहा—"साहब आप को बुला रहे हैं।"

"चलो आते है" मालकिन ने जुगुल को डांट दिया और फिर तारा पर बरस पड़ीं, "हमें नहीं जरूरत, कल वापस कैम्प में चली जाओ।"

"क्या है ?" अगरवाला कमरे में चले आये।

तारा तुरन्त कमरे से चली गयी। दरवाज़े से निकलते-निकलते साहब की बहुत क्रोध भरी गरज सुनायी दे गयी। मालकिन की आवाज भी सुनायी दी। तारा ने शीघ्रता से अपने कमरे में जाकर किवाड़ मूंद लिये।

तारा रात भर, भय, अपमान और क्रोध से काँपती रही। भाग्य में कभी शान्ति नहीं है तो वह मर ही क्यों नहीं जाती !

बच्चों को छः बजे उठाया जाता था। तारा उस से पहले नहा-धोकर, कपड़े पहन कर तैयार हो जाती थी। रात भर सो नहीं पायी थी फिर भी छोटी टाइमपीस में समय देख कर वह छः बजे तैयार हो गयी। तैयार होकर कमरे में बैठी रही। बच्चों की ओर नहीं गयी। उसे कैम्प में लौट जाने के लिये कह दिया गया था। वह उस के लिये तैयार थी। कल उस का अपमान हुआ था। वह किसी के सामने नहीं जाना चाहती थी। निश्चय कर लिया था, कैम्प लौटने के बजाय श्यामा का पता लेकर उस के यहाँ जाकर बात करेगी। एक सौ पचहत्तर रुपये उस के पास थे। वह कोठरी-कमरे का किराया दे सकती थी। अगले ही दिन उसे डाइरेक्टर के यहाँ भी जाना था। नौकरी की पूरी आशा थी।

दरवाज़े से पुकार कर शिबनी भीतर आ गयी। वह लाली का स्कूल जाने का फ्राक लिये थी। उस ने पूछा—"बीबी जी, अभी तक लेटी हैं, क्या जी अच्छा नहीं है ? यही फ्राक पहना दें कि बदली जायेगी।" शिबनी साधारण ढंग से बोली थी जैसे कुछ न हुआ हो।

"यही पहना दो।"

"आप आयेंगी कि हम बाबा-लोग (बच्चों) को नाश्ता दे दें ? आप के लिये चाय ले आयें।"

तारा ने समझ लिया स्थिति आशंकाजनक नहीं है। उत्तर दिया —"मैं आ रही हूं।"

तारा बच्चों को लेकर डाइनिंग रूम में आयी तो नरोत्तम नाश्ता कर रहा था। सुबह जल्दी जाने के लिये वह साढ़े छः बजे ही नाश्ता कर लेता

था। कभी-कभी बच्चों से भी पहले। उस ने तारा से अंग्रेजी में बात की—"कल रात क्या गोलमाल था ?"

"कुछ भी नही।"

"कल रात डैडी और मम्मी मे काफी गड़बड़ी थी। मेरे कमरे मे आवाज आ रही थी।"

"मुझे क्या मालूम।"

"डैडी आप को क्लब ले गये थे तो मम्मी बहुत पूछताछ कर रही थीं। बहुत उत्तेजित थी। रात बहुत बकझक हुयी। मुझे रोने की आवाज की भी शंका हुयी। काफी गड़बड़ी थी।"

तारा को बता देना पड़ा, बोली—"मै आज चली जाऊंगी।"

"यह कैसे हो सकता है ? कहाँ जायेंगी ? जाना है तो पहले जगह निश्चय करनी होगी।"

"तो अपमान कराऊँ ? निकाली जाऊँ ?"

"कौन अपमान कर सकता है और कौन निकाल सकता है ? क्लब जाना कोई अनाचार नही है। आप को तो डैडी ले गये थे। उन की जिम्मेवारी है।"

"मिसेज अगरवाला ने मुझे चली जाने के लिये कह दिया है।"

"बकने दीजिये। जाना होगा तो ढंग से प्रबन्ध करके जाना होगा।"

"उन्हों ने अभी आकर फिर कहा तो ?"

नरोत्तम दो पल चुप रह गया और फिर बोला—"मै यहाँ हूं। फैक्टरी नही जाऊंगा। फोन किये देता हूं।"

तारा ने आग्रह किया—"नहीं, आप फैक्टरी जाइये।"

नरोत्तम ने तारा की बात अनसुनी कर २८१ नम्बर फोन कर दिया।

आठ बजे ही दो आदमी अगरवाला साहब से मिलने आ गये थे। साहब ड्राइंग रूम में उन से बात करते रहे थे। उन्हों ने साढ़े आठ बजे नाश्ता मांगा और दफ्तर जाने से पहले तारा को बुलवाया।

तारा सिर झुकाये थी। साहब ने अंग्रेजी में पूछा—"किसी बात की परेशानी तो नहीं ?" और कह दिया, "कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है।"

नरोत्तम तारा को साहब के सामने बुलाये जाने की बात जान कर जरा समीप आ गया था। साहब ने उसे देख कर पूछ लिया—"आज फैक्टरी नहीं गये ?"

"नहीं जा सका। साइकिल का प्लग स्पार्क नहीं दे रहा। मैने फोन कर दिया है।"

"जरूरत थी तो छोटी गाड़ी क्यों नहीं ले ली ? खैर सुनो, तुम्हें आज फुर्सत है। कल से मिस तारा को नौकरी पर जाना है। इसे कपड़े-वपड़े या दूसरी चीज की जरूरत हो तो तुम ख्याल कर लेना। बिल मुझे दे देना समझे !"

मालकिन अपने कमरे से नहीं निकलीं। कोठी में सब काम साधारण रूप से चल रहा था केवल मालकिन की आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। माँ जी ने बहू के लिये पूछा तो शिवनी ने कह दिया—"इन के सिर में दरद है।"

रात भर सो न सकने और सोचते रहने के कारण तारा को सिर में पीड़ा हो गयी थी। दोपहर में वह बच्चों के साथ कुछ खा न सकी। बच्चों को आराम करने के लिये भेज कर उसने शिवनी से कहा—"तुम्हें मालूम है, नींद आने की या सिर दर्द की गोली कहाँ होगी, मुझे ला दो। एक प्याली चाय बना दो या गर्म पानी ही दे दो। मैं लेटूंगी।"

शिवनी चाय की प्याली और गोली लेकर आयी तो खाट के समीप फर्श पर बैठकर ममता से बोली—"कहो तो सिर में तेल लगा दूं। माथा दबा दूं।"

तारा के इंकार कर देने पर भी शिवनी उठी नहीं और स्वर दबा कर बोली—"मालकिन ने कुछ खाया नहीं। गुस्से में पड़ी हैं। रात पिट गयीं। जबान पर काबू तो है नहीं। फिजूल का बकवाद कर रही थीं। जब ऐसा बकती हैं, पिटती हैं। खुद अपनी इज्जत बिगाड़ती हैं। इन की अपनी बहिन थी तब भी ऐसी बात होती थी। जात की तो बनिया हैं। असल सरकारी-साहबी खान्दान की थोड़े ही हैं। बड़े लोगों में हमारे गरीब-छोटे लोगों की बिरादरी की सी बात थोड़े ही है कि औरत किसी दूसरे मर्द से हँसे-बोले नहीं। खुद तो सब के मुँह लगती हैं। हम मुँह देखकर नहीं कहते, हम ने तो बड़े घर की हजारों बहू-बेटियाँ देखी हैं। इन्हीं लोगों की खिदमत में उमर कटी है पर बीबी जी, तुम जैसी ठहरे हुये सुभाव की लुगाई नहीं देखी। तभी लोग आप को मानते हैं···।

"मैं सोऊँगी। तुम भी आराम करो।" तारा ने करवट ले ली।

शिवनी चली गयी पर तारा को नींद न आयी। सोच रही थी—हाय रे स्त्री का जन्म; तेरी यही हकीकत है। इतनी बड़ी सेठानी—मालकिन, बच्चों की माँ, कोठियाँ, कारें, लाखों का जेवर, नौकर-चाकर, सामाजिक स्थिति और आदर पर पति जब चाहे, पीट डाले। उसे अपनी सुहागरात याद आ गयी। स्त्री का जीवन मर्दों के जुल्मों का शिकार होने के सिवा और क्या है ?

दस बजे शिवनी ने तारा को खबर दी कि ड्राइवर लछमन गाड़ी लाकर खड़ा है। तारा सुबह बच्चों को स्कूल भेज चुकी थी। मालकिन उस दिन भी

ऊपर से नहीं उतरी थीं। तारा कोठी से चली जाने का निश्चय कर चुकी थी। मालकिन की उसे परवाह नहीं थी परन्तु फिर भी उस ने शिवनी की मार्फत सन्देश भिजवा दिया और रसोई में जाकर मां जी को भी बता दिया कि कहाँ जा रही है।

मिसेज़ अगरवाला कब तक अनशन किये कोप-भवन में बैठी रहतीं। इस से अपने ही तन-मन को यातना थी और अपना ही अपमान था। तीसरे दिन सुबह अपने कमरे से उतर आयीं पर पिछवाड़े रसोई की तरफ ही रहीं। डाइ-निंग रूम और ड्राइंग रूम की तरफ नहीं आयीं। तारा ने नियमित रूप से सुबह बच्चों को स्कूल भिजवा दिया था। उसे दस बजे सेक्रेटेरियेट के 'पी' ब्लाक में पहुंच जाना था। उसने मालूम कर लिया था कि इन्डिया गेट के पास बस मिलती है। सवा नौ बजे चलने लगी तो इच्छा न होने पर भी मालकिन को बता देना उचित समझा। मालकिन रसोई के सामने एक पीढ़ी पर बैठी बैंगनों के पेट चीर कर मसाला भर रही थीं।

तारा ने सिर झुकाये बता दिया—"मैं दफ्तर जा रही हूं।"

मालकिन सब बात पिछले दिन ही शिवनी से जान चुकी थीं।

"लछमन से गाड़ी के लिये कह दिया था ?" मालकिन ने बैंगन पर ध्यान लगाये पूछा।

"मैं बस में चली जाऊंगी। रास्ता देख लिया है। रोज ही जाना होगा।" तारा ने सिर उठाये बिना ही कहा।

"देखो तो इस की बातें ?" मालकिन ज़रा जोर से बोलीं, "भले घर की जवान लड़की बस में जाती अच्छी लगेगी ?"

"कहवें, इन्ने सरकारी दफ्तर में नौकरी कल्ली है ?" मां जी ने पूछ लिया।

"हम ने तो जो कुछ कहा था, इसी की भलाई के लिये ही कहा था।" मालकिन बोलीं, "अब ये जाने, हमें क्या।"

"यह तो बड़ी ठहरी हुयी लगे थी" मां जी ने विस्मय प्रकट किया, "इत्ते मर्दों में इकल्ली जवान लड़की को कैसा लगेगा ? इसे डर नहीं लगेगा ?"

तारा पैदल ही बस के लिये सड़क की ओर चली गयी।

दफ्तर जाना आरम्भ करके भी तारा तेरह दिन तक कोठी पर ही बनी रही। उचित किराये पर रह सकने लायक जगह ही नहीं मिल रही थी। तारा ने 'वर्किंग वीमेन्स होस्टल' में पता लिया। उस समय वहाँ जगह खाली नहीं थी। नरोत्तम रविवार को जहाँ भी कमरा, कोठरी खाली होने की खबर पाता तारा को जगह दिखा लाता। अकेली जवान लड़की के लिये जगह ढूंढ़ने

में सोच-समझ से काम लेना जरूरी था। नरोत्तम समझाता था—जंगल में थोड़े ही पड़ी हो, तुम्हें जल्दी क्या है ?"

मिसेज अगरवाला ताना देतीं—"यहाँ इसे कौन तकलीफ है ? किराया देगी, नौकर रखेगी, नहीं रसोई में हाथ जलायेगी। यहाँ कष्ट-मुसीबत में फिक्र करने वाले हम लोग हैं। वहाँ कौन होगा ? हम ने तो सदा छोटी बहिन की तरह रखा है। जब कभी कुछ कहा, इसी के भले के लिये अपनी बहिन समझ कर कहा........"

मिसेज अगरवाला सचमुच नहीं चाहती थीं कि तारा चली जाये। तारा सुबह-शाम बच्चों को देखती ही थी, वही तो देखने का समय होता है। अब तनखाह का भी सवाल नहीं था। एक चारपाई खाली रख कर उस पर क्या खेती कर लेतीं ? तारा की दो रोटी तो परात की खुर्चन के आटे से में ही हो जाती थी।

तारा के लिये उचित जगह की चिन्ता में नरोत्तम को नर्स मिस लीला मर्सी सोरल की याद आ गयी। आठ मास पूर्व पुत्तन बहुत बीमार हो गया था। उस समय दो नर्सें बारह-बारह घंटे की ड्यूटी पर रहती थीं। मर्सी सोरल नरोत्तम को समझदार और भली लगी थी। मर्सी दरियागंज में फ्लैट लेकर एक दूसरी नर्स के साथ रहती थी। उस के यहाँ फोन भी था। मर्सी से नरोत्तम के परिचय का एक और सूत्र भी था। मर्सी कामरेड मास्टर निरंजन चड्ढा की प्रेमिका थी। सोलह वर्ष पूर्व जब नरोत्तम दिल्ली के यूरोपियन स्कूल में पढ़ता था, निरंजन उस स्कूल में मास्टर था। मार्च के दूसरे सप्ताह में कई जगह कम्युनिस्टों की गिरफ्तारी का समाचार पढ़ कर ही नरोत्तम को मर्सी का ध्यान आया था। नरोत्तम ने मर्सी से बात की।

मिस लीला मर्सी सोरल दरियागंज की नयी बस्ती में दूसरी मंजिल पर छोटे फ्लैट में रहती थी। फ्लैट में जीने के साथ छोटा बैठकनुमा कमरा, दो और कमरे, रसोई, गुसलखाना और बराम्दा था। उस का बप्तिस्मे में दिया गया नाम 'मर्सी', पारिवारिक नाम 'सोरल' और प्यार का नाम 'लीला' था। मर्सी के साथ साझे में रहने वाली नर्स सिल्वा भी प्राइवेट नर्स थी। सिल्वा विवाह करके मैसूर चली गयी थी। मर्सी ढाई बरस से उसी फ्लैट में थी। पुराना किराया, चालीस रुपये महीना ही दे रही थी। मर्सी को शिकमी किरायेदारों की कमी न थी परन्तु वह अपने साथ के कमरे में पूरा परिवार भर लेने के लिये तैयार नहीं थी। रात भर कहीं ड्यूटी करके आये और दिन

में नींद भी नसीब न हो सके । किसी अकेले मर्द को भी कमरा नहीं दे सकती थी।

मर्सी ने नरोत्तम की सिफारिश पर तारा को कमरा देना तो स्वीकार कर लिया परन्तु स्पष्ट शब्दों में अपनी शर्तें भी बता दीं । तारा अपने किसी सम्बन्धी या सहेली को साथ नहीं रख सकेगी । बरामदे या कमरे में अंगीठी रख कर अलग भोजन नहीं पका सकेगी । यदि रसोई में साझा कर लेगी तो सौ रुपये में दोनों समय खाना, चाय, नाश्ता, कमरा, नौकरानी सब कुछ हो जायेगा । यदि भोजन पृथक या बाहर करेगी तो कमरे का किराया मय बिजली के पैंतीस रुपये देना होगा । फोन का व्यवहार करेगी तो खर्चा देना होगा । खर्चा प्रति मास सात तारीख तक पेशगी दे देना होगा । तारा को इस से अधिक अनुकूल स्थान और कहाँ मिलता । पुराने अभ्यास के अनुसार यह खर्च उसे अधिक लगा पर रुपया बचाने का प्रयोजन क्या था ? उस ने सब स्वीकार कर लिया ।

लीला मर्सी मोरल की आयु सत्ताइस-अट्ठाइस थी । रंग गहरा सांवला, आँखें बड़ी-बड़ी । चेहरा बहुत तीखा, आकर्षक—जैसे तांबे से मूर्ति गढ़ दी गयी हो । कद मे बिल्कुल तारा के ही बराबर, केश बहुत लम्बे, शरीर की गठन बहुत सुन्दर । ड्यूटी पर जाते समय फ्राक पहनती थी तो पेटी मे पतली कमर बहुत अच्छी लगती थी । पहले हस्पताल में सिस्टर नर्स थी । अपनी तरक्की का अधिकार मारा जाने के विरोध मे नौकरी छोड़ आयी थी । अब भी इर्विन हस्पताल से सम्बन्ध था । प्राइवेट वार्ड में काम मिलता रहता था । फीस प्रति दिन के पन्द्रह रुपये और रात के अठारह थे । डाक्टरों से अच्छा परिचय था इसलिये महीने मे पाँच-सात दिन से अधिक खाली नहीं जाते थे । दिल्ली में पाँच बरस से थी । उस से पहले लखनऊ मे रही थी इसलिये व्याकरण का मामूली भूलों और अंग्रेजी शब्दो के साथ हिन्दी खूब बोल लेती थी । उस ने आरम्भिक शिक्षा अंग्रेजी में पायी थी इसलिये निःसंकोच अंग्रेजी बोलती थी । अखबार से मतलब नही था पर उपन्यास, कहानी और पत्रिकाओं का शौक था । शुरु में चार-पाँच दिन तारा को ठीक समझ लेने के लिये उस ने अधिक बातचीत नहीं की और मिस तारा पुरी या मिस तारा पुकारती रही । जल्दी ही सहेलपना जम गया और केवल तारा कहने लगी । अनुरोध किया—मुझे सिस्टर क्यों पुकारती हो, इतना फार्मल होने की क्या जरूरत है ? मुझे घर में लीला कहते हैं ।

तारा को मर्सी अच्छी लगी । यूरोपियन प्रभाव से कुछ आगे बढ़ी हुयी,

कुछ मुंहफट परन्तु निश्छल थी।

तारा को अपना इतिहास गढ़ना पड़ा। पिछले एक वर्ष के अति कटु अनुभवों को वह याद नहीं करना चाहती थी। वह सही हुयी यातनाओं और अपमान का विज्ञापन करके दया और घृणा की पात्र नहीं बन जाना चाहती थी। उस ने कहानी बनायी—बचपन से अपनी बहिन के यहाँ पली थी। लाहौर में एम० ए० कर लेने के बाद से ट्यूटर या गवर्नेस का काम करती थी। बहिन और जीजा लाहौर से उखड़ कर बम्बई चले गये हैं। उसे यहाँ दिल्ली में नौकरी मिल गयी है।

मर्सी ने सांत्वना दी—"अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है, बीस-इक्कीस क्या होती है। अच्छी सरकारी नौकरी मिल गयी है तो जरूर अच्छा पति भी मिल जायेगा। दिल्ली में बहुत चांसिस हैं। मेरा काफी परिचय है। फुर्सत होने पर तुम्हारा भी परिचय कराती रहूंगी। प्रायः जिस परिवार में केस मिलता है, परिचय भी हो जाता है। जानती हो, केवल समृद्ध भले लोगों के यहाँ ही केस मिल सकते है। टैक्सी का खर्चा मिला कर लगभग अठारह-बीस तो देने ही पड़ते है।"

मई के पहले सप्ताह में मर्सी और तारा के बीच से एक और पर्दा दूर हो गया। तारा संध्या पौने छः दफ्तर से लौटी थी। मर्सी दिन की ड्यूटी के केस पर थी। ए-ए कोठी पर लगातार चाय पीते रहने से तारा को चाय का शौक हो गया था। चिम्मो ने उस के लिये बैठक में चाय रख दी थी। तारा मुंह धो, साड़ी बदल कर अपने लिये चाय बना रही थी। घंटी बजी, जैसे मर्सी बजाती थी। एक लम्बी घंटी और फिर छोटी, जैसे लकीर पर बिन्दु लगा दिया हो। चिम्पो रसोई में थी। तारा मर्सी के लिये किवाड़ खोल देने के लिये उतर गयी।

किवाड़ खोलने पर सामने एक जवान दिखायी दिया। जवान ने कुछ झिझक कर पूछा—"सिस्टर मर्सी नहीं हैं?"

"पन्द्रह-बीस मिनट तक आ जायेगी।" तारा ने मर्सी का कोई परिचित समझ कर उत्तर दे दिया पर जवान का स्वर पहचाना सा लगा।

तारा ने जवान को बैठक में बैठा कर पूछा—"आप के लिये चाय बना दूं।"

जवान ने मुस्कराकर कहा—"बना दो। तुम यहाँ कब आयीं?"

तारा ने ध्यान से देखा, भाई हीरासिंह—"यह क्या? हीरालाल बन गये। आवाज तो पहचानी हुयी ही लगी थी।"

"तुम यहाँ दिल्ली में ही हो? पुरी तो जालन्धर में है। उस ने एक

अखबार निकाला हैं। यहाँ क्या एम० ए० ज्वाइन किया है ?"

"मैंने नौकरी कर ली है।" तारा ने अपने को सम्भाल कर उत्तर दिया जैसे भाई के विषय में उसे मालूम ही था।

"अच्छा किया। तुम तो एकदम बड़ी-बड़ी सी लग रही हो, शायद साड़ी की वजह से। स्कूल में पढ़ा रही हो ?"

"नहीं, रिहैबिलिटेशन के दफ्तर में हूं। यहाँ दिल्ली में क्या कर रहे हैं ?"

"वही।"

"वही क्या ? नरेन्द्र, प्रद्युम्न भाई भी यहाँ ही हैं ?"

"अखबार नहीं पढ़ती हो ?"

"अखबार में तो आप की बाबत कोई खबर नहीं थी। शायद चूक गयी।" तारा मुस्करायी।

"गिरफ्तारियों की बाबत नहीं पढ़ा ? नरेन्द्रसिंह अम्बाला में गिरफ्तार हो गया है। प्रद्युम्न यूजी (छिपा हुआ) है। पार्टी कांग्रेस के बाद से सब जगह गिरफ्तारियाँ हो रही है। बेबे (बहिन) जुबेदा फरवरी के शुरू में लाहौर से आ गयी थी। प्रद्युम्न से विवाह करके इन्डियन सिटीजन बन गयी है। तुम्हारी बाबत सुनेगी तो जरूर मिलने आयेगी।"

"हाँ मैं जरूर मिलूंगी, मैं ही चली चलूंगी। चलो फरारी से आप को यह तो फायदा हुआ। सर्दार से मिस्टर बन गये ?"

मर्सी जीने के किवाड़ खुले पाकर चढ़ आयी। लाल और तारा को परिचितों की तरह बात करते देख कर उसे विस्मय हुआ। लाल ने जेब से एक लिफाफा निकाल कर मर्सी को दे दिया और तारा की ओर संकेत किया—"यह तो मेरा पहला रूप भी जानती है। लाहौर में स्टडी-सर्किल में आती थी। बहुत सहायता देती रही हैं। इस का भाई भी शान्ति-आन्दोलन में साथ दे रहा था।"

मर्सी ने लिफाफा लेकर अपने कमरे में जाते हुये आवाज़ दी—"चिम्मो, हमारे लिये भी चाय और कुछ खाने को दो।"

बैठक में लौटी तो मुंह-हाथ धोकर बाल ठीक किये और साड़ी पहन ली थी। लाल तारा को समझा रहा था--

"....बूर्जुआ डैमोक्रैटिक रेवोल्यूशन का हमारे देश में प्रश्न ही नहीं है। यहाँ पोलिटिकल पावर फ्यूडल या जमीन्दार क्लास के हाथ में नहीं है, कैपिटलिस्टों के हाथ में है। हमारा टास्क लैंडलेस पेजेन्टरी और वर्किंग क्लास (वे जमीन के किसानों-मजदूरों) को लेकर पोलिटिकल पावर पर कब्जा करना है।'

"पोलिटिकल पावर लेने का तरीका क्या है ?" तारा ने पूछा, "सर्व-साधारण लोग न आप का सिद्धान्त समझते हैं न आप के प्रोग्राम को। हमारी गली में सिर्फ दो आदमी जानते थे कि कम्यूनिज्म क्या है, भाई और डाक्टर प्रभुदयाल। वे दोनों आप के प्रोग्राम के विरुद्ध थे। यहाँ हमारे दफ्तर में असिस्टेंट दरबारीलाल कहता है—कम्यूनिज्म में सिर्फ उन्हीं लोगों को रोटी मिलती है जिनके हाथों में छाले पड़े हों। यहाँ क्लब में दो बार बातें सुनी हैं। वे लोग कम्युनिज्म का मतलब समझते हैं, सब कुछ लूट लेना और ध्वंस कर देना—वे आप से क्या सहानुभूति रखेंगे ?"

"इस इग्नोरेंस(अज्ञान) के खिलाफ हमें फाईट करना है।" लाल ने कहा।

"आप ने तो अज्ञान दूर करने से पहले ही क्रांति शुरू कर दी है। शासन की शक्ति से लोगों को कम्युनिज्म समझाइयेगा ? लेकिन लोग आप को शासन-शक्ति लेने ही नहीं देंगे। जिस जनता की भलाई के लिये कम्युनिज्म लाना चाहते हैं वही आप का विरोध करेगी। वे आप का नहीं गाँधी जी के वारिसों का साथ देंगे। अंग्रेजों के खिलाफ लोगों को विद्रोह की बात जंचती थी, अपनी सरकार के खिलाफ बगावत उन्हें नहीं जंचेगी। आप को वैधानिक रास्ते पर चलना चाहिये था। कांग्रेस को लोगों ने कितने बरस में पहचाना ? आप एक ही झटके में सब कुछ कर लेना चाहते हैं। बंगाल और मद्रास में आप की पार्टी इल्लीगल हो गयी है, क्या कर लिया आपने ?"

"तो फिर बिड़ला-टाटा का राज हो जाने दें !" मर्सी बोल पड़ी।

"तुम्हारा ख्याल है, हम लोग समय की प्रतीक्षा करते रहें और कैपिट-लिस्ट लोग अपना कब्जा मजबूत कर लें।" लाल ने भी कहा।

तारा ने उत्तर दिया—"सर्वसाधारण का हित कैपिटलिस्टों के पक्ष में है या आप के पक्ष में ?" जनवरी तक आप लोग नारे लगा रहे थे—गाँधी जी राष्ट्रपिता हैं, नेहरू के हाथ मजबूत करो। आज नेहरू कैपिटलिस्टों के एजेंट हो गये। लोग चकरायेंगे या नहीं ?"

"नेहरू बिलकुल कैपिटलिस्टों के हाथ में है।" मर्सी ने कहा।

"अच्छा मैं तुम्हें पूरा पार्टी प्रोग्राम पढ़ने के लिए दूंगा। फिर बात करेंगे।"

मर्सी ने तीस रुपये के नोट मेज पर रख दिये थे। लाल ने नोट उठाकर जेब में रखते हुए तारा की ओर देखा—"तुम अब जाब में हो। तुम भी सहायता करो न। यह पार्टी के लिए क्रिटिकल टाइम है।"

"आप के प्रोग्राम में तो मेरा विश्वास नहीं है। पर्सनली दूसरी बात है।"

"पार्टी की तो सहायता करनी ही चाहिये। बीस रुपये महीना तो दो,

तुम्हारे लिये कुछ ज्यादा नही है।" मर्सी ने अनुरोध किया।

"आज तो दे दूंगी पर वायदा नही करती। मुझे यह लाइन ठीक नही लग रही।"

"सरकारी नौकरी का असर बहुत जल्दी हो गया।" लाल ने ताना दिया।

"यह भी कोई तर्क है? मै तो समझने के लिये तैयार हूं।"

मर्सी ने लाल को डांट दिया—"वह तुम्हें मदद देने को तैयार है, तुम फिर भी ऐसी बात कहते हो।"

मर्सी ने तारा से पूछा—"मै ला दूं रुपये?"

"नही मै देती हूं" तारा ने अपने बटुये मे बीस रुपये लाकर लाल को थमा दिये।

चिम्मो ऊपर की छत पर पानी छिडक कर खाली बाल्टी लिये उतर रही थी। तारा खुली हवा मे लेट सकने के लिये ऊपर चली गयी। हीरासिह से जुबेदा और प्रद्युम्न के विवाह का समाचार पाकर लाहौर की घटनाये और असद की याद ताजा हो गयी। जुबेदा दिल्ली आ गयी है—हमारी यदि कल्पनाये पूरी हो गयी होती तो मै इस समय लाहौर मे या और भी दूर कही पश्चिम मे होती। कैसा जीवन होता?······ जो अब देख रही हूं, इसकी भी क्या कल्पना कर सकती थी!—तारा को हाफिज इनायतअली के घर मे बिताया एक मास का जीवन याद आगया। वह वातावरण तारा को सह्य नही था। सोचा—क्या सब अच्छा ही हुआ?

सूर्यास्त के पश्चात हवा की गरमी घट गयी थी। अधेरा होता जा रहा था। तारे अभी नही निकले थे। तारा आकाश की ओर अपलक आखे लगाये कल्पना मे डूब गयी—यदि असद के साथ चले जाना सभव हो जाता तो इस समय जैसे जुबेदा प्रद्युम्न की पत्नी है, वह असद की पत्नी होती। असद भी प्रद्युम्न और जुबेदा की तरह हिन्दू-मुसलमान नही। फिर भी वह पाकिस्तान मे मुसलमानो से घिरी रहती, जुबेदा भी तो हिन्दुओ से घिर कर रहेगी।··· क्या वह असद के लिये पाकिस्तान मे रहने को तैयार हो जाती?···रहना ही पडता; पर अब नही। तारा ने करवट ले ली। व्यर्थ कल्पना मे दिमाग परेशान करने से क्या लाभ था।

तारा ने करवट ली तो मर्सी ऊपर आती दिखाई दी। समीप दूसरी खाट थी परन्तु मर्सी तारा के साथ ही बैठ गयी। वह बहुत चिन्तित थी—कामरेड गिरफ्तार हो रहे है, छिप-छिप कर कब तक काम कर सकेंगे। धीरे धीरे मर्सी ने बहुत रहस्य और चिन्ता की बाते बता दी—सन १९४४ मे निरजन

लाल चड्डा कंधे की हड्डी टूट जाने के कारण दो मास हस्पताल में था। मर्सी का हस्पताल में चड्डा से हुआ परिचय गहरा होता गया। उन में प्रणय हो गया। मर्सी ने बताया—चड्डा बहुत बुद्धिमान और निस्वार्थ है। पहले यूरोपियन स्कूल में पढ़ाता था। १९३२ में क्रान्तिकारी षड्यंत्र में पकड़ा गया था। तीन बरस जेल में रहा। जेल से छूट कर ट्युशनें करके निर्वाह कर रहा था। कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य और महत्वपूर्ण नेता था। मर्सी और चड्डा का विचार था, अप्रैल में सिविल मैरेज कर लेंगे पर चड्ढा को मार्च से ही फरार हो जाना पड़ा था। उस ने पत्र में लिखा था कि मिलने की कोशिश करेगा।

मर्सी के यहाँ हीरालाल के आने के तीसरे दिन प्रातः तारा दफ्तर के लिये गयी तो मर्सी घर पर ही थी। उस दिन उस के पास कोई केस नहीं था। मर्सी को तारा पर पूरा विश्वास हो गया था। उस ने तारा को बता दिया था कि उसे संदेश की प्रतीक्षा थी। संदेश आने पर वह चड्डा से मिलने जायेगी।

तारा संध्या दफ्तर से लौटी तो जीना चढ़ते ही सामने बैठक में जुबैदा बैठी थी। जुबैदा ने उसे देखते ही गूढ़ आलिंगन में ले लिया। दोनों गले लग कर मिलीं। कुछ देर दोनों आँखों में आंसू भरे मौन रह गयीं। फिर कुशल-मंगल की बात हुई।

जुबैदा ने मर्सी के जाने का प्रयोजन तारा को बताकर कहा—"हीरा से तुम्हारी बाबत सुना तो मुझे बहुत विस्मय हुआ। पिछले साल अप्रैल के शुरू में ही शायद तुम्हें देखा था। मई के बाद तो पुरी भाई भी नहीं मिले पर सितम्बर को शायद २८-२९ तारीख थी। असद बहुत घबराया हुआ हमारे यहाँ आया था। उसने हमारे यहाँ तुम्हारे लिये प्रबन्ध करने के लिये कहा था। संध्या मुझे लेकर तुम्हें लिवा लाने के लिये डी० ए०वी० कालेज कैंप में गये थे लेकिन तुम लोग वहाँ से जा चुकी थीं। तुम शेखूपुरा कैसे पहुंच गयी थीं!"

तारा बहुत देर तक मौन सोचती रही। अपनी यंत्रणाओं के जिस रहस्य को वह छिपाये थी जुबैदा को वह मालूम था। लाहौर में असद और तारा अपने रहस्य को बहुत छिपाये थे। जिन तीन-चार व्यक्तियों को इस रहस्य का आभास था उन में जुबैदा भी थी।

तारा ने जुबैदा को स्वयं ही सुहागरात के दिन दुर-व्यवहार पाकर आग लगने पर ससुराल से भाग जाने की आपबीती बता दी परन्तु बहुत संक्षेप से कह दिया—"मैंने यहाँ किसी को कुछ भी नहीं बताया है, बताना भी नहीं चाहती। यहाँ सब लोग मुझे कुआरी ही समझते हैं।"

जुबेदा ने समर्थन किया—"ठीक ही समझते हैं। इसे व्याह कौन कह सकता है। अच्छा हुआ मैंने हीरा से इस विषय में कोई बात नहीं की। मर्सी से शायद कह देती परन्तु अवसर ही नहीं था। कहने की भी जरूरत नहीं है।" जुबेदा सोमराज के यूनीवर्सिटी के कांड से परिचित थी। उस ने पुरी के अन्याय के प्रति आक्रोप प्रकट किया—पुरी भाई की अक्ल पर क्या पत्थर पड़ गये थे।

जुबेदा को स्वयं बहुत कुछ तारा को बताना था। प्रद्युम्न के परिवार के लोगों को संतुष्ट करने के लिये उसने अपना नाम बदल कर जमना नाम स्वीकार कर लिया था। जब तक प्रद्युम्न घर में था, वह जुबेदा के प्रति किसी भी प्रकार का भेद देख कर अलग रहने की धमकी दे देता था परन्तु उस के फरार हो जाने पर जुबेदा के लिये ससुराल का व्यवहार असह्य था। फरार प्रद्युम्न अपनी पत्नी को मिलने आयेगा, इस आशा में पुलिस भी उस के पीछे लगी रहती थी। वह वर्किंग वीमेंस होस्टल में चली गयी थी। कम्युनिस्टों से गुप्त सहानुभूति रखने वाले लोग जुबेदा के लिये नौकरी की कोशिश कर रहे थे। जुबेदा स्वयं भी यत्न कर रही थी। मिस सेवा भाई से मिल कर उस ने अपना केस प्रधान मंत्री तक पहुंचा दिया था।

मर्सी संध्या साढ़े नौ के बाद लौटी। जुबेदा तब तक नहीं ठहर सकती थी। मर्सी लौट कर तारा से जुबेदा के विषय में बात करने लगी। उसे जुबेदा बहुत पसन्द थी। तारा समझ गयी थी, मर्सी को या तो लोग बहुत पसन्द आ जाते थे या बिलकुल असह्य हो जाते थे। मर्सी जुबेदा के ससुराल के संकीर्ण व्यवहार के विषय में सुन चुकी थी। ईसाई होने के नाते उसे स्वयं भी हिंदुओं की संकीर्णता का अनुभव था। तारा के सामने जुबेदा के प्रति अन्याय के प्रसंग में वह उबल पड़ी—हिन्दुओं से अधिक अहंकारी, असहिष्णु लोग दुनिया में कोई नहीं। इन्हें जाने अपनी किस पवित्रता का घमण्ड है? हजारों वर्ष सब लोगों से मार खाते रहे फिर भी अपने आप को सब से पवित्र जरूर समझेंगे। दूसरे लोगों में कोई और गुण होता है इन में केवल पवित्रता का अहंकार है। जो दूसरों को छूने योग्य न समझे उस से बड़ा अहंकारी कौन होगा···?

तारा संध्या साढ़े पाँच-पौने छः दफ्तर से लौटती थी। मर्सी घर पर रहती तो दोनों बैठक में साथ बैठ कर चाय पीतीं और कुर्सियों पर लुढ़की हुई कुछ देर बातें करती रहतीं। कभी मन-बहलाव के लिये बुढ़िया नौकरानी चिम्मो को गुसलखाने में कपड़े धो डालने के लिये कह देती और दोनों रसोई में गप्प लगाती हुई कभी पंजाबी, कभी मद्रासी खाना बनाने लगतीं। तारा

संध्या समय बाहर नहीं जाती थी। कभी मर्सी का कोई परिचित आ जाता तो वह उस के साथ चली जाती थी। कभी कोई परिचित आकर घंटे-डेढ़ घंटे बैठ जाता। मर्सी परिचित के साथ बैठक में बैठी हंसती, बात करती रहती। तारा अपने कमरे में लेटी कुछ पढ़ती रहती। कभी मर्सी तारा को बुलाकर अपने अतिथि से परिचय करा देती और कुछ बातचीत होती रहती। नरोत्तम कभी शनिवार की संध्या या रविवार को आता था। मर्सी के अतिथि अधिकांश में ड्यूटी के प्रसंग में परिचित हो गये व्यक्ति होते। कभी कोई डाक्टर आ जाता तो मर्सी बहुत खातिर करती थी, उनका मन रख कर बहुत आदर से बोलती थी। बाद में तारा से कह भी देती, इन की खातिर तो करनी ही पड़ती है। यही तो केस दिलाते हैं। खुश न रहें तो हर बात में टोकेंगे, केस नहीं मिलने देंगे।

मर्सी प्रायः ही नर्सों पर डाक्टरों के दबाव और हस्पतालों में धांधली की बातें सुनाती रहती थी—"हस्पताल तो प्राइवेट प्रैक्टिस के अड्डे हैं। तनखाह से डाक्टरों का बनता क्या है? चार-साढ़े चार सौ तनखाह पाते हैं, हज़ार-डेढ़ हज़ार की प्रैक्टिस करते हैं। उन्हें पहले फीस न दो तो हस्पताल में जगह नहीं मिलेगी। लखनऊ में प्राइवेट आपरेशन में एक डाक्टर ने ज़ुल्म की हद्द कर दी।" मर्सी की आँखें भय से फैल गयीं, "·····सोलह-सत्रह बरस के लड़के के पेट का आपरेशन था। पेट खोल दिया था। डाक्टर ने आधा आपरेशन छोड़ कर लड़के के बाप से कह दिया, एक हज़ार रुपया और दो तो पेट सीयेंगे। तुम्हें विश्वास नहीं होगा पर मैं डाक्टर और पेशेंट को जानती हूं। यह लोग तो जल्लाद हैं, जल्लाद! मौत की धमकी देकर पैसा लेते हैं। गरीब इन से क्या इलाज करायेगा? इन से नीच कौन है? हमारी रोज़ी तो इन्हीं ज़ालिमों के हाथ में है। रोज़ी की परवाह न करो तो इन से आँख मैली करो। खुशामद से खुश हो जायें तो इन की दया समझो वर्ना नर्सों की इज्ज़त इन के लिये मज़ाक है। ··"

दफ्तर में आने के तीसरे-चौथे दिन ही तारा बराम्दे में एक जवान लड़की को देख कर ठिठक गयी थी। जवान लड़की भी आँखें फाड़े अवाक रह गयी थी। उस ने पुकार लिया था—"तारा भैन जी!"

तारा को संदेह न रहा। लाहौर, भोलापांधे की गली की पड़ोसिन पूरनदेई की लड़की सीता थी। दोनों एक दूसरी से लिपट गयीं। सीता को अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। वह बराबर तारा के मुख पर टकटकी लगाये

थी। तारा भी सीता को विस्मय से देख रही थी, नौ मास में सीता कितनी बदल गयी थी। लग रहा था, ब्याह हो गया है। चेहरे पर पाउडर-सुर्खी, आंखों में कानों तक खिचा हुआ सुरमा, होठों पर लाली, माथे पर बिंदी, भंवर डालकर बांधे हुये केश। सीने पर कमीज का उभार और कसाव ऐसा कि तारा ने आँखें हटा लीं। तारा प्रायः ही हैरान रह जाती थी। दिल्ली आकर पंजाब की लड़कियों को हो क्या गया था? किसी को किसी का लिहाज नहीं रहा था।

"बड़ी अच्छी लग रही है तू, माँ कहाँ है? यहाँ कैसे आयी?" तारा ने मौन तोड़ा।

"आप कहाँ थीं इतने दिन?" सीता ने पूछा।

"यहाँ दिल्ली में ही। एक जगह बच्चों को पढ़ा रही थी। अब इस दफ्तर में हूं।"

"नहीं बहिन जी, गली में तो सब लोग कुछ और ही समझ रहे थे। बन्नी हाते में आप की ससुराल में तो मुसलमानों ने आग लगा दी थी न! सब कहते थे, आप का कुछ पता नहीं चला, शायद बच ही नहीं सकीं।"

"तेरे सामने खड़ी तो हूं।"

"हाँ, पर कैसे क्या हुआ? आप की माँ, मास्टर जी, पुरी भाप्पा, ऊषा तो रो-रो कर बेहाल हो गये। हम सब रोते रहे। हम सब ने तो समझ लिया था...। शीलो-पुष्पा तो इतनी रोयीं ...।"

सीता ने दो वाक्यों में बता दिया कि गली में रह गये सब लोगों को देव-समाज के कैम्प में चले जाना पड़ा था। वहाँ मास्टर जी का कोई पुराना शागिर्द अफसर आकर उन्हें ले गया था। वे कहीं हिन्दुस्तान—यू० पी० में चले गये थे।

तारा कुछ पल खोयी सी रह गयी। फिर बोली—"मैं अपनी मेज पर जाऊंगी, देर हो रही है। एक बजे लंच टाइम में मिलेंगे?"

"दो मिनट में क्या बिगड़ा जाता है। बहिन जी, मैं भी तो इसी दफ्तर में काम करती हूं।"

तारा को अपनी बीत चुकी दुनिया का परिचित पहला व्यक्ति मिला था। एक उल्लास सा अनुभव हुआ पर तुरन्त चिन्ता में बदल गया। सीता ने तारा को बताया—परिवार और गली के लोग उसे जल कर मर गया समझ चुके थे। शेखूपुरा की हवेली से आते समय असद ने भी उसे यही बताया था। अपने आप को मर गयी समझा जाना बहुत बुरा लगा। फिर सोचा, मैं उन के लिये मर चुकी तो अच्छा ही है। वैसे भी वे तो मुझे निपटा चुके थे। मैं

उस के लिये चिन्ता का कारण क्यों बनूं ? उस ने मिस तारा पुरी के नाम से नौकरी आरम्भ की थी। तारा पुरी न लिख कर 'तारापुरी' लिखती थी, जैसे भाई ने अपना उपनाम जयपुरी रख लिया था। सीता उसी दफ्तर में थी। वह तारा के विवाह के बारे में जानती थी। सीता यहां क्लर्क बन गयी थी। वह मैट्रिक भी पास नहीं थी। लाहौर में सीता की मां की हालत अच्छी नहीं थी। अब उस के कपड़े और सिंगार आंखों में गड़ रहे थे।

एक बजे तक तारा ने सीता को सुनाने लायक कहानी सोच ली थी। उसे बताया, संध्या समय मुझे घर की औरतों ने ऊपर की मंजिल के कमरे में बैठा दिया था। मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। नीचे लोग अभी खा-पी रहे थे तभी मुसलमानों का हमला हो गया, आग लग गयी। सब लोग अपनी-अपनी फिक्र में पड़ गये। कोई मेरी खबर लेने नहीं आया। सब जीने जल रहे थे, मैं नीचे कैसे जाती ? छत से साथ के मकान की छत पर कूद गयी तो पांव में मोच आ गयी। किसी तरह पीछे की गली में पहुंची। वहां एक भले मुसलमान ने दूसरी गली में हिन्दू के घर पहुंचा दिया। सुबह तक मेरा पांव बहुत सूज गया बुखार भी हो गया। भला आदमी मुझ से पूछता रहा--कहां जाना है। मैंने कह दिया कहीं नहीं जाऊंगी, दरिया में डाल दो। मेरी फिक्र किसी को नहीं। चौदह-पन्द्रह दिन उन्हीं के साथ रही। उन्ही लोगों के साथ अमृतसर, अम्बाला गयी फिर दिल्ली आ गयी। आयी हूं तब से नौकरी कर रही हूं।

दफ्तर में तारा और सीता की भेंट का अधिक अवसर नहीं था। दोनों में तीन ग्रेड का अन्तर था कमरे भी अलग-अलग थे। तारा लंच टाइम में भी अपने कमरे से नहीं उठती थी।

तारा को बाजार या इधर-उधर जाने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती थी। दिल्ली में उस का परिचय भी बहुत कम था। कभी मर्सी आग्रह कर उसे साथ खींच ले जाती तो जाना ही पड़ता। जान पड़ता था, पश्चिम से आये पंजाबी पूरे नगर पर टिड्डी-दल की भांति छा गये थे। चांदनी चौक में पैदल चलने वाली पटरियों पर, दरियागंज में, कनाट प्लेस में सभी जगह पंजाबी ही सब कुछ बेचते दिखाई देते थे। मर्सी लाल किले के सामने झोपड़ियों की नयी बन गयी बस्ती की ओर संकेत कर कहती—यहां तो पूरा नया बाजार ही बन गया है। सस्ते की आशा में लोग चांदनी चौक छोड़ कर उसी बाजार में जाते थे।

सेक्रेटेरियेट से बस में दरियागंज लौटते समय तारा कनाट सर्कस के मोड़

थी। तारा भी सीता को विस्मय से देख रही थी, नौ मास में सीता कितनी बदल गयी थी। लग रहा था, व्याह हो गया है। चेहरे पर पाउडर-सुर्खी, आंखों में कानों तक खिचा हुआ सुरमा, होठों पर लाली, माथे पर बिंदी, भंवर डालकर बांधे हुये केश। सीने पर कमीज का उभार और कसाव ऐसा कि तारा ने आँखें हटा लीं। तारा प्रायः ही हैरान रह जाती थी। दिल्ली आकर पंजाब की लड़कियों को हो क्या गया था? किसी को किसी का लिहाज नहीं रहा था।

"बड़ी अच्छी लग रही है तू, माँ कहाँ है? यहाँ कैसे आयी?" तारा ने मौन तोड़ा।

"आप कहाँ थीं इतने दिन?" सीता ने पूछा।

"यहाँ दिल्ली में ही। एक जगह बच्चों को पढ़ा रही थी। अब इस दफ्तर में हूं।"

"नही बहिन जी, गली में तो सब लोग कुछ और ही समझ रहे थे। बन्नी हाते में आप की ससुराल में तो मुसलमानों ने आग लगा दी थी न! सब कहते थे, आप का कुछ पता नहीं चला, शायद बच ही नहीं सकीं।"

"तेरे सामने खड़ी तो हूं।"

"हाँ, पर कैसे क्या हुआ? आप की माँ, मास्टर जी, पुरी भाप्पा, ऊषा तो रो-रो कर बेहाल हो गये। हम सब रोते रहे। हम सब ने तो समझ लिया था···। शीलो-पुष्पा तो इतनी रोयी ··।"

सीता ने दो वाक्यों में बता दिया कि गली में रह गये सब लोगों को देव-समाज के कैम्प में चले जाना पड़ा था। वहाँ मास्टर जी का कोई पुराना शागिर्द अफसर आकर उन्हें ले गया था। वे कहीं हिन्दुस्तान—यू० पी० मे चले गये थे।

तारा कुछ पल खोयी सी रह गयी। फिर बोली—"मैं अपनी मेज पर जाऊंगी, देर हो रही है। एक बजे लंच टाइम में मिलेंगे?"

"दो मिनट में क्या बिगड़ा जाता है। बहिन जी, मै भी तो इसी दफ्तर में काम करती हूं।"

तारा को अपनी बीत चुकी दुनिया का परिचित पहला व्यक्ति मिला था। एक उल्लास सा अनुभव हुआ पर तुरन्त चिन्ता में बदल गया। सीता ने तारा को बताया—परिवार और गली के लोग उसे जल कर मर गया समझ चुके थे। शेखूपुरा की हवेली से आते समय असद ने भी उसे यही बताया था। अपने आप को मर गयी समझा जाना बहुत बुरा लगा। फिर सोचा, मै उन के लिये मर चुकी तो अच्छा ही है। वैसे भी वे तो मुझे निपटा चुके थे। मैं

उस के लिये चिन्ता का कारण क्यों बनूं ? उस ने मिस तारा पुरी के नाम से नौकरी आरम्भ की थी। तारा पुरी न लिख कर 'तारापुरी' लिखती थी, जैसे भाई ने अपना उपनाम जयपुरी रख लिया था। सीता उसी दफ्तर में थी। वह तारा के विवाह के बारे में जानती थी। सीता यहाँ क्लर्क बन गयी थी। वह मैट्रिक भी पास नहीं थी। लाहौर में सीता की माँ की हालत अच्छी नहीं थी। अब उस के कपड़े और सिंगार आँखों में गड़ रहे थे।

एक बजे तक तारा ने सीता को सुनाने लायक कहानी सोच ली थी। उसे बताया, संध्या समय मुझे घर की औरतों ने ऊपर की मंजिल के कमरे में बैठा दिया था। मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। नीचे लोग अभी खा-पी रहे थे तभी मुसलमानों का हमला हो गया, आग लग गयी। सब लोग अपनी-अपनी फिक्र में पड़ गये। कोई मेरी खबर लेने नहीं आया। सब जीने जल रहे थे, मैं नीचे कैसे जाती ? छत से साथ के मकान की छत पर कूद गयी तो पांव में मोच आ गयी। किसी तरह पीछे की गली में पहुंची। वहाँ एक भले मुसलमान ने दूसरी गली में हिन्दू के घर पहुंचा दिया। सुबह तक मेरा पाँव बहुत सूज गया बुखार भी हो गया। भला आदमी मुझ से पूछता रहा—कहाँ जाना है। मैंने कह दिया कहीं नहीं जाऊंगी, दरिया में डाल दो। मेरी फिक्र किसी को नहीं। चौदह-पन्द्रह दिन उन्हीं के साथ रही। उन्हीं लोगों के साथ अमृतसर, अम्बाला गयी फिर दिल्ली आ गयी। आयी हूं तब से नौकरी कर रही हूं।

दफ्तर में तारा और सीता की भेंट का अधिक अवसर नहीं था। दोनों में तीन ग्रेड का अन्तर था कमरे भी अलग-अलग थे। तारा लंच टाइम में भी अपने कमरे से नहीं उठती थी।

तारा को बाजार या इधर-उधर जाने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती थी। दिल्ली से उस का परिचय भी बहुत कम था। कभी मर्सी आग्रह कर उसे साथ खींच ले जाती तो जाना ही पड़ता। जान पड़ता था, पश्चिम से आये पंजाबी पूरे नगर पर टिड्डी-दल की भाँति छा गये थे। चाँदनी चौक में पैदल चलने वाली पटरियों पर, दरियागंज में, कनाट प्लेस में सभी जगह पंजाबी ही सब कुछ बेचते दिखाई देते थे। मर्सी लाल किले के सामने झोपड़ियों की नयी बन गयी बस्ती की ओर संकेत कर कहती—यहाँ तो पूरा नया बाजार ही बन गया है। सस्ते की आशा में लोग चाँदनी चौक छोड़ कर उसी बाजार में जाते थे।

सेक्रेटेरियेट से बस में दरियागंज लौटते समय तारा कनाट सर्कस के मोड़

पर, बस स्टैंड के समीप प्राय: ही एक अद्भुत चलता-फिरता रेस्तोराँ देखा करती थी। पूरा रेस्तोराँ बाइसिकल पर था। बाइसिकल के आगे तारों की बनी बड़ी टोकरी में उबले हुए चनों का बर्तन और भटूरे भरे रहते थे। साइकिल के बीच के डंडे पर थैलों में सामान भरा रहता था। साइकिल स्टैंड पर खड़ी रहती। साइकिल के पीछे कैरियर पर तह हो जाने वाली छोटी सी मेज फैल जाती थी। मेज पर एक छोटी सी अंगीठी रहती थी। साइकिल वाला साइकिल के हैंडल से लटकी एक बाल्टी में से तश्तरियां, चम्मच निकाल कर चने परोस देता और अंगीठी पर भटूरे सेंक-सेंक कर देता जाता। तीन-चार गाहक मेज को घेरे खड़े होकर खा लेते। उस का छ:-सात बरस का बेटा साइकिल के दूसरे हैंडल से लटकी बाल्टी में से गिलास निकाल कर समीप के नल से पानी देता जाता। जूठी तश्तरियाँ और चम्मच नल पर धो लाता। उस मोड़ पर गाहक निबट जाने पर पूरी दुकान साइकिल पर दूसरे मोड़ की ओर चल देती। तारा को गर्व अनुभव होता—रिफ्यूजियों के मुफ्त स्थान और राशन मांगने की लांछना का इस से अच्छा उत्तर और क्या हो सकता था।

तारा पुरी ज्यों-ज्यों दफ्तर का काम समझने लगी, दफ्तर में देर तक ठहरने लगी थी। आफिस सुपरिंटेंडेंट शिवनाथ मिश्रा जी पुराने ढंग के अफसर थे। अपनी कुर्सी पर आठ घंटे बैठे रहते तो बंद गले का कोट और किश्टी टोपी अपनी जगह पर बनी रहती। दफ्तर में पान भी नही खाते थे। चपरासी उन के लिये लंच भी नहीं लाता था। मिश्रा जी परिश्रमी थे। तेरह बरस पूर्व अपर डिवीजन क्लर्क भरती हुये थे, अपने अध्यवसाय से उन्नति करके सुपरिंटेंडेंट बन गये थे। तारा को उन की सहायता के लिये असिस्टेंट के टैम्परेरी (अस्थायी) पद के लिये सौंपते हुये डायरेक्टर साहब ने इशारा कर दिया था, होम सेक्रेटरी ने भेजा है।

मिश्रा जी को बीस-इक्कीस बरस की एम० ए० पास, अनुभवहीन लड़की को असिस्टेंट के स्थान के लिये भेज दिया जाना भला नहीं लगा था। उस से काम में सहायता की क्या आशा हो सकती थी। ऐसी छ: सात रिफ्यूजी लड़कियां दफ्तर मे और भी आ गयी थी? मिश्रा जी ने कुछ विरक्ति से ही तारा को काम सौंपना शुरू किया था। जल्दी ही उन का विचार बदल गया। वे उस के पास अधिक फाइलें भेजने लगे। अढ़ाई महीने बाद उन्हों ने सिलाई की मशीनों की दर्खास्तों के केस सहाय से लेकर तारा को सौंप दिये।

जून के आरम्भ में सुपरिटेंडेंट मिश्रा जी ने तारा पुरी को उस की एपांइटमेंट फाइल पूरी करने के लिये बुलाया। तारा को लाहौर में एम० ए० की विद्यार्थी

होने और दिल्ली में समाज सेवा का काम करते रहने के कारण सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार सरकारी नौकरी के लिये एम० ए० पास मान लिया गया था। मिश्रा जी ने उस से औपचारिक रूप से प्रश्न किया—"आप किसी राजनैतिक दल की सदस्या तो नहीं हैं? राष्ट्रीय सेवा संघ या कम्युनिस्ट पार्टी से सम्बन्ध या सहानुभूति तो नहीं है? ऐसे लोगों को सर्विस में नहीं लिया जा सकता।"

"जी नहीं।" तारा ने उत्तर दे दिया। कानपुर, कलकत्ता और बम्बई की हड़तालों के समाचारों के पश्चात ऐसा उत्तर देने में उसे कोई संकोच नहीं था। व्यर्थ उत्पात खड़ा करने वाले लोगों से वह सहानुभूति और सम्बन्ध स्वीकार करना नहीं चाहती थी।

१९४८ जून मे शरणार्थियों की सहायता का काम नये मंत्री को सौंप दिया गया था। नये मंत्री सक्सेना साहब की नीति दूसरी थी। अब दफ्तर में छोटे कर्जों के लिये प्रार्थना-पत्रों का हिसाब लगाकर कर्ज बांट सकने और भिन्न-भिन्न कैम्पों में दस लाख व्यक्तियों के लिये आये बिलों के हिसाब के अतिरिक्त दूसरी बातें हो रही थीं। अब सहायता देने का अर्थ शरणार्थियों की भोजन-वस्त्र और औषध की आवश्यकताएं पूरी कर देना नहीं बल्कि उन के लिये निरंतर सहायता की आवश्यकता को समाप्त कर देने के लिये, उन्हें कारोबार से बसा देने का यत्न करना था। मंत्री महोदय ने मुफ्त राशन और वास-स्थान देने वाले कैम्पों को छः मास में समाप्त कर देने का नोटिस दे दिया था। वे देश मे अन्न-कष्ट और बेकारी दूर करने के लिये, बड़े भारी आर्थिक बोझ के साथ शरणार्थियों के लिये दस लाख रुपया प्रतिदिन का व्यय सरकार के कंधों पर बनाये रखने के लिये तैयार न थे।

शरणार्थियों के विरुद्ध कई प्रकार की शिकायतें आ रही थीं—शरणार्थियों ने रोजगार आरम्भ कर दिये हैं, अच्छा भला कमा रहे हैं फिर भी मुफ्त राशन ले रहे हैं, मुफ्त खाने की आदत पड़ गयी है; काम करना ही नहीं चाहते। अच्छा भला पहनते हैं, अच्छा भला खाते हैं पर मुफ्त राशन और जगह नहीं छोड़ते। पार्टीशन क्या हो गया, यह तो जमाई बन बैठे! उन्हें 'ओखले' और 'नीलोखेड़ी' में रहने की जगह और काम दिया जा रहा है लेकिन दिल्ली छोड़ कर नहीं जाना चाहते। दूसरे लोग अपने पेट पर पट्टी बांध कर इनके लिये दस लाख रोजाना कहाँ तक देते रहें? तारा को बहुत बुरा लगता था, वह भी शरणार्थी थी। पौने तीन सौ वेतन पा रही थी। ऐसे जीवन की तो उन ने

कभी कल्पना नहीं की थी। मन ही मन वह यह वेतन छोड़ कर सवा सौ, डेढ़ सौ पर भी यह काम करने के लिये तैयार थी। तारा का व्यय इस से अधिक था ही नहीं।

दफ्तर में कई काम बढ़ गये थे। शरणार्थियों को मकान बना सकने के लिये जमीन की व्यवस्था, गृह-उद्योगों के लिये साधन और सुविधा प्रस्तुत करना। नये मंत्री महोदय का आदेश था—दफ्तर में और अधिक आदमी नहीं लिये जायें। फिर से काम का बंटवारा हुआ। सुपरिन्टेंडेंट के सुझाव पर असिस्टेंट डाइरेक्टर साहब ने स्त्रियों को कर्ज और गृह-उद्योगों की सहायता के प्रार्थना-पत्रों पर कार्रवाई का काम तारा को सौंप दिया। उसे अलग कमरा दे दिया गया। उस के लिये एक चपरासी भी नियत हो गया।

तारा फाइलों में डूबी हुयी थी। 'हजूर' सुन कर तारा ने आँख उठायी। असिस्टेंट डाइरेक्टर सितोले साहब के चपरासी ने सलाम किया—"साहब ने इस माई को आप के पास भेजा है।" चपरासी ने निवेदन किया और एक बुढ़िया को भीतर आ जाने का रास्ता दे दिया।

बुढ़िया मैले से दुपट्टे में सिमटी, हाथ जोड़े थी। उस की छीजी हुयी बदरंग सलवार-कमीज, झुर्रियों से भरा चेहरा, आँसू पोंछी आँखें दिल को बेंध रही थीं।

तारा ने बुढ़िया की ओर देखा। उस के मुख से निकल गया—"बिट्टो की दादी!"

संगरूर से आयी शरणार्थी बुढ़िया, उस की बहू और बच्चे कश्मीरी गेट के कैम्प में तारा के साथ थे। बुढ़िया सूख कर पिंजर-मात्र रह गयी थी। तारा कुर्सी पीछे धकेल कर उठ गयी और आगे बढ़ कर बुढ़िया की बाँह पकड़ ली।

बुढ़िया ने तारा का स्वर पहचाना और उस के पाँव पर गिर कर रो पड़ी। तारा के आँसू बह आये। उस ने बुढिया को बाँहो से ऊपर खींच कर उठाया और कुर्सी पर बैठाने लगी।

बुढ़िया 'न! न!' कर दुहाई दे रही थी—"धिये, (बेटी) मैं कभी इस पर नहीं बैठी।" कुर्सी पर जबरन बैठा दी जाने पर बुढ़िया पांव कुर्सी पर समेट कर उकड़ूं बैठ गयी। तारा स्वयं मेज पर बैठ कर उस के कन्धे पर हाथ रखे उस की बात सुनने लगी।

दिसम्बर से कश्मीरी गेट का कैम्प समाप्त हो गया था। तब से बुढ़िया अपनी बहू और पोते-पोती को लेकर मोरीगेट की फसील के पास गली में, एक

गिरे से मकान की एक कोठरी में रह रही थी। सब कोठरियों में पूरे-पूरे परिवार भरे हुये थे। वह और बहू दोनों कभी पंसारी के यहाँ मसाले कूट-पीस कर, कभी बनिये के यहाँ दालें बीन कर या दल कर निर्वाह कर रही थीं। दोनों मिल कर कभी चौदह आने, कभी अठारह आने कमा लेती थीं। कभी काम नहीं भी मिल पाता था। बहू का सब जेवर समाप्त हो चुका था।

बुढ़िया ने तीसरे महीने की आठवीं तारीख को सिलाई की मशीन के लिये दरख्वास्त दी थी। चौथे महीने की २२ तारीख को इंस्पेक्टर को उस ने पाँच रुपये भी दे दिये थे। अब सुमित्रा कह रही थी कि दस रुपये और देगी तो मशीन मिलेगी।

बुढ़िया ने महाराज जी की सौगन्ध खाकर कहा, अब उस के पास रुपये नहीं थे। मशीन नहीं मिल सकती तो उस के पाँच रुपये ही वापस मिल जायें। बिट्टो बीमार थी। डाक्टर कहता था संतरा खिलाओ, दूध पिलाओ। जब तक छल्ला-चूड़ी बाकी था, तब तक खिलाया। अब कहाँ से पिलाती। सुमित्रा को दूसरी बार भी मशीन मिल चुकी थी। उसे मदद के लिये दो सौ रुपये भी मिले थे। उस का मर्द विलायती स्याही बना कर भी बेचता था। गरीबों की ही सुनवायी नहीं थी।

तारा ने गहरी सांस लेकर दाँत दबा लिये। दो मास से सिलाई की मशीनें असिस्टेंट डायरेक्टर की ओर से, उसी की देख-रेख में बँट रही थीं। बहत्तर मशीनें दी जा चुकी थीं। ऐसी शिकायतों की भनक उसे दरियागंज की गली में भी मिल चुकी थी। तारा एक निमट गाल पर उंगली रखे सोचती रही। वह दफ्तरी कार्रवाई से परिचित हो चुकी थी।

तारा ने क्लर्क धर्मसिंह को बुला कर आदेश दिया—"ठाकुर साहब, इस बुढ़िया का बयान लिख कर इस का अंगूठा लगवा लीजिये। बयान दो क्लर्कों के सामने लीजिये, उन के भी दस्तखत करवा लीजिये।"

बिट्टो की दादी से तारा ने कहा—"पहले ठाकुर साहब को अपनी बात लिखवा दो। फिर मेरे पास होकर जाना।"

बिट्टो की दादी तारा के कमरे में आयी तो उस ने फिर तारा का पांव पकड़ लेना चाहा। गिड़गिड़ा कर बोली—"सरकार से मशीन दिला दो। मेरी बहू मशीन चलाना जानती है। महाराज जी की सौगन्ध है, हम जितना हो सकेगा, हर महीने कर्जा चुका दिया करेंगे, सूद भी दे देंगे।"

तारा ने बिट्टो की दादी की मुट्ठी में दस-दस के दो मुड़े हुये नोट देकर कहा—"तुम लड़की का इलाज कराओ। डाक्टर जैसे-जैसे कहे खाने को देना।

जरूरत हो तो मुझे बताना। आशा है, मशीन तुम्हें अगले महीने के पहले हफ्ते तक मिल जायेगी।"

बुढ़िया तारा को गले लगा कर फिर रो पड़ी—"बेटी, महाराज ने यह हाल कर दिया कि मैं भीख ले रही हूं। महाराज ही दया करके उबारेंगे। मैं तेरे रुपये वापस कर दूंगी। कर्ज लेकर नहीं मरूंगी। इस जन्म का जो हुआ अगले जन्म का क्या होगा?"

तारा ने इंस्पेक्टर भानुदत्त के विरुद्ध खेमी माई की शिकायत की फाइल बना कर सुपरिन्टेंडेंट साहब के यहाँ भेज दी। सुपरिन्टेंडेंट ने भानुदत्त की इन्क्वारी पर मशीनें पाने वाले लोगों की लिस्ट मंगवायी और तारा को आदेश दिया कि सीनियर इंस्पेक्टर इन्द्रनाथ के साथ स्वयं जीप पर जाये और इंक्वायरी करे कि जिन लोगों को मशीनें दी गयी है, उन के पास मशीनें है या नहीं है; उन के पते ठीक है या नही है?

तारा और इन्द्रनाथ ने ग्यारह स्थानों पर जाँच की। तीन जगहों पर इंस्पेक्टर के बीस-बीस रुपये रिश्वत लेने की शिकायतें मिली। दो पतों पर मशीन पाने वाले थे ही नही।

असिस्टेंट डायरेक्टर सितोने साहब ने भानुदत्त को ड्यूटी से स्थगित किये जाने का आर्डर दे दिया और उस को नौकरी से पृथक कर देने का मामला डायरेक्टर की स्वीकृति के लिये भेज दिया।

दफ्तर में अच्छा-खासा हल्ला हो गया। भानुदत्त कांग्रेस का खद्दरधारी कार्यकर्ता था। सत्याग्रह मे जेल भी गया था। उसने प्रभावशाली कांग्रेसी लोगों के यहाँ जाकर अन्याय के विरुद्ध दुहाई दी। दफ्तर के अपरग्रेड और लोअरग्रेड क्लर्कों की हड़ताल करवाने की भी कोशिश की गयी। बहुत से क्लर्क वास्तविक स्थिति जानते थे, इसलिये हड़ताल का यत्न असफल रहा।

भानुदत्त ने अन्याय के विरुद्ध अनशन की घोषणा कर दी। वह सफेद खद्दर का कुर्ता-पाजामा और गांधी टोपी पहन कर दफ्तर के बराम्दे मे काला कम्बल बिछाकर लेट गया। उसने एक कागज पर अपना बयान लिखकर रख लिया था। जो पूछने आता उसे पढ़ा देता। बयान का भावार्थ इस प्रकार था:—

मेरे विरुद्ध असिस्टेंट सुपरिन्टेडेट मिस तारा पुरी ने रिश्वत का जाली केस बनाया है। मेरे प्रति उन की नाराजगी का कारण यह है कि मैंने उन के हुक्म पर उन की मौसी खेमी को सिलाई की मशीन दी जाने की सिफारिश नहीं की। मिस तारा पुरी इस दफ्तर में तीन सौ रुपया महीना पाती है। वे अपनी मौसी की सहायता क्यों नही करती? डिपार्टमेंट के अफसरों पर मिस तारा

पुरी का नाजायज प्रभाव है। वह क्लब में जाकर अफसरों के साथ शराब पीती है और नाचती है। उस की मुनासिब न मुनासिब सभी बातें मानी जाती हैं।

तारा ने भानुदत्त का मामला पेश करते समय स्वयं दफ्तर में नौकरी पाने से पहले ७ मार्च को खेमी माई की दरखास्त आने की बात, रिसीप्ट क्लर्क के रजिस्टर के प्रमाण सहित लिख दी थी। इस विषय में उसे कुछ नहीं कहना था।

सहायता और पुनर्वास विभाग के डायरेक्टर मित्तल साहब को कांग्रेस के कई प्रभावशाली लोगों के टेलीफोन आये कि मामले को रफा-दफा कर दें। मित्तल साहब बदली हुई स्थिति से बेपरवाह नहीं थे। विवशता प्रकट कर देते– फाइल डिपार्टमेंट के सैक्रेटरी के पास है। उन के ही निर्णय से मुझे चलना होगा।

भानुदत्त के अनशन के चौथे दिन तारा को दोपहर के समय डायरेक्टर साहब का फोन मिला कि कुछ मिनट के लिये तुरन्त उन के कमरे में आ जाये। डायरेक्टर साहब के कमरे में एक बिना दाढ़ी-मूंछ का, गर्दन तक केश छंटे पठान लड़का बैठा दिखाई दिया। खद्दर का कुर्त्ता और कंधे पर तह किया दुपट्टा था।

मित्तल साहब ने विनय से परिचय कराया—"मिस तारा पुरी 'स्त्रियों के लिये सहायता विभाग' का काम कर रही हैं। यह स्वयं सब स्थिति स्पष्ट कर देंगी।" डायरेक्टर ने आगन्तुक की ओर संकेत किया, "कुमारी मंजुला सेवाभाई को तो जानती हैं न। आप हमारे विभाग की पथदर्शक और परामर्शदात्री हैं। मिस तारापुरी बैठिये…।"

मित्तल साहब ने कुमारी सेवाभाई को बताया–"मिस तारापुरी ने सीनियर इंस्पेक्टर के साथ स्वयं जाकर इन्क्वायरी की है।……"

"क्या इन्क्वायरी की है?" कुमारी सेवाभाई डायरेक्टर को टोक कर तारा से अंग्रेजी में बोली, "मैं सब जानती हूं। गरीबों पर सरकारी दबाव डाल कर जो चाहे कहलवा लिया जा सकता है। कितने ही लोगों ने मेरे पास आकर कहा है। भानुदत्त पुराना कांग्रेसी है, जेल गया है, वह बेईमान बन गया! तुम उस गरीब के पीछे पड़ी हो। इतनी तनखाह से पेट नहीं भरता, मशीनें भी अपने ही घर ले जाना चाहती हो……?"

डायरेक्टर साहब कुमारी सेवाभाई के इस अप्रत्याशित व्यवहार से सन्न रह गये। इतनी प्रतिष्ठित, प्रभावशाली महिला से क्या कहते।

कुमारी जी ने तारा को डायरेक्टर के सामने ही धमकाया—"तुम कौन होती हो उसे नौकरी से निकलवाने वाली। मैं प्राइम मिनिस्टर को फोन करके तुम्हें ही निकलवा दूंगी। तुम्हें भानुदत्त से मुआफी मांगनी होगी।"

तारा की गर्दन ऊंची हो गयी। वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई। धीमे परन्तु स्थिर स्वर में बोली—"मैडम, मैं इस डिपार्टमेंट की कर्मचारी हूं। आप को मुझे कुछ कहना है तो विभाग के डायरेक्टर की मार्फत कहिये।" वह मित्तल की ओर घूम गयी, "सर, मैं जा सकती हूं?"

मिस्टर मित्तल ने कह दिया—"मिस तारापुरी, मुझे अफसोस है। इस समय आप जा सकती हैं।"

दस मिनट बाद तारा को फिर डायरेक्टर का फोन आया—"मिस तारा पुरी मुझे इस घटना के लिये बहुत खेद है। आप का व्यवहार सर्वथा उचित था। एक मिनट के लिये मेरी बात सुन जायें।"

तारा के जाने पर डायरेक्टर ने उसे समीप बैठा कर समझाया—"सेवा भाई के सामने मैंने आप को इसलिये बुलावाया था कि दो महिलाओं मे शांति से बात हो सकेगी लेकिन इस औरत का दिमाग ठिकाने नहीं है। प्राइम मिनिस्टर के मुंह लगी है। हर जगह नाक डालती है। मैं तो डिपार्टमेंट के सैक्रेटरी को लिखूंगा ही लेकिन आप मिस्टर रावत के कान में बात जरूर डाल दीजियेगा।"

तारा का मन अपमान से जल रहा था। संध्या उसे बहुत भरी हुयी देख कर मर्सी ने बार-बार पूछा—"क्या बात है?"

तारा ने सब बता दिया और बोली—"मन करता है, इस्तीफा दे दूं।"

मर्सी ने समझाया—"ऐसा न करना। इन कांग्रेसियो का तो सभी जगह यही हाल है। हस्पताल मे जिसे देखो, मिनिस्टरों और पार्लियामेंट के मेम्बरों की चिट्ठी लिये चला आ रहा है। जुकाम हो जाय तो वार्ड में जा लेटते है और सब कुछ फ्री करवा लेते है। जो गरीब बीमार है, उन के लिये जगह नही है। डाक्टर अपने ऊपर के लोगों को यह करते देखते है तो जहाँ मौका देखते है वह भी हाथ मार लेते है।"

साढ़े सात बजे तारा ने नरोत्तम को फोन किया कि रावत साहब से मिलना जरूरी है। वह रावत के यहाँ नरोत्तम के साथ ही जाना उचित समझती थी।

नरोत्तम नौ बजे स्वयं आया। उस ने बताया—रावत शिमला गये है, सोमवार को लौटेंगे। तारा ने उसे भी घटना बता दी। नरोत्तम ने उस के विचार का समर्थन किया—"आप का आत्म-सम्मान पहले है। उस बोर का मतलब क्या था, दफ्तर मे जाने का? गयी थी तो डायरेक्टर को उस से खुद बात करनी चाहिये थी। डायरेक्टर ने मुसीबत आप पर डालनी चाही होगी"

तारा ने उत्तर दिया—"डायरेक्टर खुद कह रहे थे पी० एम० के मुंह लगी है। सब डरते है उस से। पी० एम० को जाने क्या समझा दे!"

भानुदत्त ने कुमारी सेवाभाई के आश्वासन पर अनशन समाप्त कर दिया था। दफ्तर में सनसनी थी कि कुमारी सेवाभाई ने मिस तारापुरी के अन्याय और धृष्टता की शिकायत प्रधान मंत्री से कर दी है। तारापुरी टैम्परेरी सर्विस में थी। दफ्तर में आशंका थी, गरीब मारी जायगी।

भानुदत्त के झगड़े की बात डाक्टर श्यामा ने भी सुनी थी। उस ने तारा को फोन किया—"मिस सेवाभाई जरा गुस्सैल हैं पर दिल की बुरी नहीं हैं। मैं उस से बात करूंगी। तुम भी उस से जाकर बात कर लो। सब ठीक हो जायगा।"

तारा ने स्वीकार नहीं किया। तारा ने नौकरी छोड़ देने की तैयारी कर ली। उस के पास पर्याप्त रुपया था। विश्वास था, स्कूल-कालेज में कहीं नौकरी मिल ही जायगी। वह अपमान सहने के लिये तैयार न थी।

मंगलवार की संध्या नरोत्तम दरियागंज आकर तारा को क्लब ले गया। रावत कुछ लोगों से घिरे बात कर रहे थे। नरोत्तम और तारा अलग से बात कर सकने के अवसर के लिये एक ओर खड़े हो गये थे।

रावत उन की ओर बढ़ आये। उस ने तारा को निस्संकोच बांह में ले लिया जैसे उस की अपनी बेटी या बहुत छोटी बहिन हो और बोल उठा—"शाबाश, बहादुर लड़की! खूब मुंह तोड़ा तुम ने उस बेहूदी औरत का! मैं सब सुन चुका हूं। नित्तल तुम्हारी तारीफ कर रहा था। वह तो सीधी प्राइम मिनिस्टर के यहाँ जा पहुंची कि तुम्हें खा जायगी और देखो प्राइम मिनिस्टर की अक्ल, अपने पी० ए० से सक्सेना साहब को फोन करवा दिया।

सक्सेना साहब पी० ए० का फोन पाकर उल्टा चिढ़ गये। बेचारा मिनिस्टर हफ्ते भर से इंतजार में था कि पी० एम० से पालिसी के बारे में कुछ बात कर सके। पी० एम० को मिनिस्टर की बात सुनने की फुर्सत नहीं पर सेवाभाई की बात सुनने की फुर्सत है। उन ने पी० एम० को डी० ओ० लिख दिया—मिस सेवाभाई का मेरे विभाग के दफ्तर में आकर दखल देना उचित नहीं था। जरूरत होने पर उन्हें मुझ से बात कर लेनी चाहिये थी। इंस्पेक्टर भानुदत्त के मामले में सर्वथा न्यायोचित कारवाई की गयी है। पी० एम० को जब सुविधा होगी, उन्हें स्थिति समझा दी जायगी।

नरोत्तम ने तारा पर मजाक कसा—"यह तो नौकरी छोड़ने के लिये तैयार बैठी थीं।"

"सिल्ली गर्ल!" रावत ने डांटा, "लड़की तो फिर लड़की। तुम्हारा इस में क्या अपमान था। यह तो सरकार का अपमान था। सरकारी नौकरी करनी

है तो याद रखो; तुम्हारा व्यक्तित्व कुछ नही है। तुम तो भारत के राष्ट्रपति की प्रतिनिधि हो। अगर पालिसी के तौर पर मिनिस्टर उस बेईमान इस्पेक्टर को बहाल भी कर देता तो डायरेक्टर तुम्हारी कार्य-तत्परता, योग्यता और प्रशंसा का नोट तुम्हारी सर्विस बुक पर दे देता। हम लोग तुम्हारा कुछ भी बिगड़ने नही देते।

सेक्शन असिस्टेंट ने सीता के लिये खराब रिपोर्ट दे दी थी—'वह असिस्टेंट डिसपेचर का काम ठीक नही कर पाती है। दफ्तर मे भी नियमित समय पर नही आती है। उसे एक मास का नोटिस देकर बरखास्त कर दिया जाये।' सीता के विरुद्ध उच्छृंखलता की और भी शिकायतें थी। उस के कारण दफ्तर के दो क्लर्कों मे मार-पीट हो चुकी थी।

मिश्रा जी नही चाहते थे कि शरणार्थी लड़की बेरोजगार हो जाये। लड़की को नौकरी करनी पड़ी है तो उस के परिवार की अवस्था जरूर दयनीय होगी। दफ्तर में चार और भी शरणार्थी लड़कियां काम कर रही थी। वे बहुत संयम से रहती थी। जवानों की तरह सिगरेट और गप्प लगाने में समय नष्ट नही करती थी। उन का काम अपने साथ के क्लर्कों से अधिक अच्छा था। मिश्रा जी को आशा थी, यह लड़की भी ध्यान दे तो काम कर सकती है। मिश्रा जी लड़की से स्वयं क्या बात करते। उन्हों ने तारापुरी को मामला बताकर अनुरोध किया—"तुम लडकी को समझा सको तो उस की नौकरी क्यो जाये।" उन्हो ने सेक्शन असिस्टेंट को फोन कर दिया था, "सीता से कह दो मिस तारा पुरी से बात कर ले।"

सीता तारा के कमरे मे आयी तो तारा काम मे बहुत ही डूबी हुई थी। तारा ने पुराने परिचय के नाते पंजाबी मे बात की—"मरी तू मेरे घर कभी नही आयी। खैर, आज मुझे जरा भी फुर्सत नही है। दरियागंज जानती है? मेरे घर आना। रात साथ-साथ खायेंगे।" उस ने सीता को अपना पता समझा दिया और लिख कर भी दे दिया।

सीता ने हामी भर ली पर संध्या समय तारा के घर नही पहुंची। वह दूसरे दिन संध्या आठ बजे आई। बहुत अच्छा ओवरकोट पहने थी। तारा ने उसे अपनेपन से पूछा—"मरी, तू कल क्यो नही आयी?"

"भैंन जी कल सिनेमा चली गयी थी।"

तारा उस की ओर देख कर चुप रह गयी। कुछ पल सोच कर पूछा—"तू कपड़ो पर इतना खर्च करती है, सिनेमा जाती है, खर्च कैसे चलता है?"

"हमें आप की तरह जोड़ने की फिक्र तो है नहीं। आपको इतनी तनखाह मिलती है पर अपने कपड़े देखिये ! बुढ़िया बनी रहती हैं।" सीता ने पुराने-परिचय के अधिकार से मजाक कर दिया।

तारा ने भी स्नेह से बात की--"मरी जोड़ न सही, पर सौ रुपये में क्या बनता है ? मां अब भी कहीं काम करती है ?"

सीता ने गर्दन झुका कर स्वीकार कर दिया--"मैंने तो मां से बहुत कहा, क्या जरूरत है पर वह मानती ही नहीं।"

"तूने कितने सूट बनवा लिये हैं ? हाय, तेरे कांटे कितने प्यारे हैं। कितने में लिये हैं ?

"प्रेजेंट है" सीता ने ठुमक कर मुस्करा दिया।

"मालूम होता है तू बहुत कपड़े बनवाती है, सिनेमा जाती है। इतना पैसा कहां पा जाती है ?"

"सब हो जाता है" सीता ने बेपरवाही से कहा, "जब 'उसे' देना होता है तो आलों-कोनों में पड़ा मिलने लगता है।"

"क्या तुम्हारे मकान में मुसलमान सोना दबा हुआ छोड़ गये हैं ? बड़ी किस्मत वाली है।" तारा ने अनुमान प्रकट किया। कई लोगों को इस प्रकार काफी सोना गड़ा हुआ मिल जाने की बातें सुनी जाती थीं। लोग कहते थे, यही तो भगवान की माया है। किसी की जमा छीन ली किसी की झोली भर दी।

"स्वाह-मिट्टी (धूल पत्थर) उन के सिर ! दिल्ली में पैसे की कमी है ? जो जितना खर्चता है, उसे मिलता है। कोई लाहौर थोड़े ही है।" सीता मटक-मटक कर शेखी से बात कर रही थी। उस ने समीप की खिड़की से गली में झांक कर देख लिया।

तारा कुछ पल चुप रही। सीता का हाथ पकड़ कर उसे सोफा पर अपने साथ बैठा कर पूछा—"तू इतना खर्च करती है तो मां नहीं कुछ कहती ?"

"मैं क्या मां से मांगती हूं।"

तारा विस्मित थी--लड़की कितनी मुंह जोड़ और उच्छृङ्खल हो गयी है। मन में आया धक्का देकर कह दे, जा मर परे, मुझे क्या ? लेकिन मिश्रा जी ने समझाने के लिये कहा था। उसे याद आया--गली में भी वीरसिंह और मेवाराम से कुछ ताक-झांक तो करती थी पर तब डरती थी। अब डर नहीं रहा। इस का क्या बनेगा ?

तारा ने मन की ग्लानि दबा कर बात की—"तुझे मालूम है, तेरी शिकायत आयी है। मिश्रा जी कह रहे थे, तू शायद दफ्तर में काम नहीं करना चाहती।"

"वह मरा खैरातीलाल खामुखा मेरे पीछे पड़ा है।"

"आखिर तेरे पीछे क्यों पड़ा है ?"

"वह समझता है मैं उस की नौकर हूं।"

"उस की नौकरी का क्या मतलब है, शिकायत तो है कि तू दफ्तर का काम ठीक नही करती।"

"मुझ से जितना होता है, करती हूं। सब करती तो हूं।"

"नौकरी छूट जायगी तो क्या करेगी ?"

"वाह, मुझे बडी परवाह है ! नौकरी मुझे मिल जायगी। डेढ़ सौ की मिल रही है। वहां मैं टाइप भी सीख लूंगी।"

"डेढ़ सौ तुझे किस बात के मिल जायंगे ?" तारा ने जरा रुखाई से पूछा।

"क्यों ? मुझे खुद कहा है। उन्हों ने कई बार कहा है ?"

"ऐसा है तो वेदो और सत्या को भी वहाॅ ही नौकरी दिला दे ?"

"स्वाह थोड़ी सी। वे अपनी शक्लें तो देखे ?"

तारा गम्भीर हो गयी—"सीता यह ढंग ठीक नही है ? यह तूने क्या शुरू किया है ? तुझे कुछ लिहाज-शरम नही रही।"

"क्या किया है मैंने ? क्या जरा हंसें-खेलें भी नहीं ?"

"यह हंसना-खेलना है" तारा ने अधिकार से डांटा, "लोगों से प्रेजेंट लेना, उन के पैसे पर मौज उडाना हंसी-खेल है ?"

"तुम्हें क्या ?" सीता अकड़ गयी, "मै हंसती-खेलती हूं, तुम्हें जलन होती है ? तुम से कुछ माॅगती हूं ?"

तारा मन ही मन जल गयी थी परन्तु लड़की को गुस्ताखी न करने देने के लिये अपने आप को सम्भाल कर बोली—"बहना, मुझे जलन क्यों होगी। तुझे ऊषा की तरह अपनी छोटी बहिन समझ कर बात कर दी। तुझे जरूरत हो तो मुझ से माॅगने का तेरा हक है पर यह देने वाले तेरे क्या लगते है ?"

सीता तैश मे उठ कर खड़ी हो गयी—"तुम्हें तीन सौ की नौकरी दिला देने वाले तुम्हारे क्या लगते है ? पहले अपनी खटिया के नीचे झाँक लो, तब दूसरों से बोलो ! अपना ससुराल क्यों छोड़ आयी हो ? अपना रोब अपने दफ्तर मे रखो। सब अपनी-अपनी किस्मत का खाते है। मुझे नौकरी की कमी नही है।" सीता बकती हुयी चली गयी।

तारा को बहुत ग्लानि अनुभव हुयी। व्यर्थ में अपनापन जता कर अपमान कराया। उस से बात करके तो खुद झगड़े मे पड़ने की आशंका थी। ... कमबख्त को धूल फांकने दो, मेरा क्या है ? मुझ पर तोहमत लगा रही

थी''''कुछ लोग मेरे लिये भी बातें बनाते होंगे। सीता जैसी भी हो। स्त्री के लिये जब बात और शंका उठती है तो उस के नारीत्व के सम्बन्ध में ही। कुछ स्त्रियाँ अपने नारीत्व के प्रति आशंका से काँपती रहती है, कुछ उसी को हथियार, जाल, सौदा, बनाये है''''।

तारा मन की झुंझलाहट मिटाने के लिये मर्सी के लिये आरम्भ किया हुआ स्वेटर बुनने लगी पर मन न लगा। मर्सी होती तो उस से ही कोई सार्थक-निरर्थक बात करती। मर्सी रात की ड्यूटी पर थी। तारा ने खाना खा लिया और लिहाफ में लिपट कर नींद में भूल जाने का यत्न करने लगी। बहुत देर में नींद आयी। अगले दिन प्रातः उठते ही और फिर कई दिन तक सीता की बातें याद आती रहीं।

समझदारी और काम में तत्परता के कारण दफ्तर में तारा का बहुत आदर था। उसे काम में उत्साह भी अनुभव होता था। मर्सी उस से बहुत आत्मीयता मानने लगी थी। कभी लाड़ में तारा का सादगी से बाँधा हुआ जूड़ा खोल कर अपने शौक से नये फैशन का बाँध देती। मर्सी बाजार साथ ले जाते समय तारा को जबरदस्ती पकड़ कर उस के 'ऊं-ऊं' करते रहने पर भी लिपस्टिक लगा देती। तारा पोंछ डालती तो भी कुछ लाली बनी ही रहती। मर्सी और भी प्रसन्न हो जाती—हाय, कितनी नैचुरल (स्वाभाविक) लग रही है। वह उस के लिये एक हल्के रंग की लिपस्टिक खरीद लायी थी।

तारा मर्सी के सामने हंस कर कह देती, इस जंजाल में फंसने से लाभ क्या ? मन में कई चुटकियां ताजी हो जातीं। चौदह-पन्द्रह की होते ही गली-मुहल्ले की स्त्रियां उसे सराहने लगी थीं। इसी भरोसे मां और तायी ने उसे अमीर घर में ब्याह देने की आशा बांध ली थी इसीलिये सोमराज उसे एक बार देख कर ही ब्याह के लिये तैयार हो गया था।'''असद भी कहता था—मुस्कराकर चितवन से देख लेती हो तो तुम्हारे दिल की अच्छाई तो तुम्हारा चेहरा ही बता देता है। वह उस की ओर देख कर गर्व से गदगद हो जाती थी। तारा उन झगड़ों को याद नहीं करना चाहती थी। इन सब बातों का प्रयोजन क्या था।

सन ४९ का फरवरी था। बसंत की हवायें नये पल्लवों को जगह देने के लिये वृक्षों से पुराने पत्ते झाड़ रही थीं। देहली की चौड़ी-सुथरी सड़कों पर सूखे पत्तों के बगोले उड़ने लगे थे। जाड़े के पांव उखड़ रहे थे। जाड़ा

जाते-जाते अंतिम चुटकियां ले रहा था। युवतियों ने 'अब जाड़ा कहां है!' कह सकने का अवसर पाते ही, उन की सुघड़ता को छिपाये रखने वाले ढीले-भारी गरम कोटों को अगले जाड़े तक के लिये खूटियो पर 'फांसी' दे दी थी। उन्हें हवा से रोंगटे खड़े हो जाने की भी चिन्ता न थी।

सरकार के सहायता और पुनर्वास विभाग में अस्थायी नौकरी पाये लोगों के रोंगटे दूसरे कारण से भी खड़े हो रहे थे। विभाग के मंत्री ने आदेश दे दिया था कि ३१ मार्च की संध्या दिल्ली मे मुफ्त राशन पाने वाले चालीस हजार शरणार्थियों से भरे किंग्सवे कैम्प, और दस लाख शरणार्थियों से भरे देश भर के सभी कैम्पों को समाप्त कर दिया जायगा। मंत्री ने सरकार की ओर से यह भी आश्वासन दिया था कि सरकार रोजी चाहने वाले लोगों के लिये किसी न किसी प्रकार के धंधे, बसने के लिये मकान या भूमि, व्यवसाय आरम्भ कर सकने के लिये कुछ कर्ज का भी प्रबन्ध करेगी परन्तु ३१ मार्च की संध्या के बाद मुफ्त राशन किसी को नही दिया जायेगा। सितम्बर ४८ में शरणार्थियों को छः मास की अवधि मे मार्च ३१ से पूर्व अन्यत्र प्रबन्ध कर लेने के लिये कह दिया गया था।

सहायता और पुनर्वास विभाग मे नौकरी पाये लोगों को आशंका थी कि कैम्पों की समाप्ति विभाग की समाप्ति का भी आरम्भ है। वे क्या करेंगे, कहां जायगे? कैम्पों के दस लाख शरणार्थियो के अतिरिक्त दूसरे शरणार्थी भी मंत्री की इस आज्ञा का विरोध कर रहे थे। राज्य सरकारों को आशंका थी कि केन्द्र द्वारा यह उत्तरदायित्व छोड़ देने पर, उन के राज्यो के कैम्पों में बैठे शरणार्थियो का बोझ, स्वयं उन पर ही पड़ जायेगा। बेरोजगार, बेघरबार और दुस्साहसी हो चुके, भूख से व्याकुल लोग जाने क्या उत्पात खड़ा कर दे! राज्य सरकारे भी यह आज्ञा स्थगित कर दिये जाने के पक्ष में थी।

सहायता और पुनर्वास विभाग के मंत्री की आज्ञा के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था। इस विरोध में अनेक प्रतिनिधि मडल प्रधान मंत्री के पास पहुंच रहे थे। कुमारी सेवाभाई भी मंत्री का निर्णय स्थगित करा सकने का प्रयत्न कर रही थी। सहायता और पुनर्वास विभाग के दफ्तर में इस परिस्थिति के सम्बन्ध मे अनुमान और बहस चलती रहती थी।

कुछ दिन पहले तारा ने इस विषय मे क्लब मे भी कुछ चर्चा सुनी थी। एक बहुत बडे ठेकेदार रावत को समझा रहे थे। रावत शरणार्थियों को मुफ्त राशन देते रहने के लिये प्रतिदिन दस लाख रुपये का खर्च जारी रखने का समर्थन करने के लिये तैयार नही थे। बोले—"यह दस लाख कौन दे

रहा है ? इस की वजह से हमारी सिंचाई, शिक्षा और स्वास्थ्य-सुधार की योजनायें डूब रही हैं। लोगों को निठल्ले बैठा कर प्रतिदिन दस लाख खर्चा करते रहना क्या अक्लमन्दी है ? हम बेरोजगारों को रोजगार पर या उत्पादन में लगाने के लिये दो सौ करोड़ खर्च कर सकते हैं, उस से देश को कल तो लाभ होगा। ···इतने समय तक भी मुफ्त राशन बाँटना भूल थी। बहुत से लोग इन कैम्पों में वर्ष भर से पड़े हैं। वे दिन भर क्या करते है ? मैंने सुना है, वे लोग सिनेमा के सब शो देखते हैं, रोजगार भी चलाये हैं, जुआ खेलते हैं पर मुफ्त खाने की आदत पड़ गयी है। यह अजीब बात है कि पैदावार करने वाले किसान तीन-चार आने रोज में निर्वाह करें और टैक्स दें और मुफ्त खाने वालों पर हम एक रुपया रोज खर्चें···!

तारा रावत की बात से सहमत थी। तीन सौ मासिक की नौकरी हाथ से चली जाने की आशंका के बावजूद वह विभाग के मंत्री की आज्ञा पूर्ण करने के प्रयत्न में साथ देना चाहती थी। दफ्तर में अस्थायी नौकरी पाये बहुत से लोग उस से असन्तुष्ट थे।

पाँच मास पूर्व ही २१ मार्च को कैम्प समाप्त कर दिये जाने का नोटिस दे दिया गया था पर बहुत कम लोगों ने कैम्प छोड़े थे। सर्व-साधारण को विश्वास था कि कैम्पों की समाप्ति की तिथि स्थगित कर दी जायेगी। बहुत से कांग्रेसी नेता और कुमारी सेवाभाई भी उस के लिये प्रयत्न कर रहे थे। मार्च के पहले सप्ताह में शरणार्थियों ने कैम्प तोड़े जाने की तिथि स्थगित करने के लिये बहुत बड़ा प्रदर्शन भी किया था पर सहायता और पुनर्वास विभाग के मंत्री अपने निर्णय में परिवर्तन करने के लिये तैयार नहीं थे।

शरणार्थियों पर सरकार के इस अत्याचार के विरोध में, कैम्प की एक पुरानी कांग्रेसी समाज-सेविका महिला ने अनशन आरम्भ कर दिया था। महिला की माँग थी कि कैम्पों को भंग करने की तिथि स्थगित की जाये और कैम्पों को भंग करने से पूर्व कैम्पों में काम करने वाले सैकड़ों कर्मचारियों और इस विभाग में नौकरी पाये लोगों को अन्यत्र नौकरियाँ दी जायें। महिला के अनशन से मंत्री की आज्ञा के विरोध के आन्दोलन को उत्तेजना मिली। कैम्प और नगर में भी सरकारी आज्ञा के विरोध में अनेक प्रदर्शन होने लगे। मंत्री को बरखास्त कर दिये जाने के लिये नारे भी लगाये जाने लगे।

आन्दोलन के कारण 'सहायता और पुनर्वास' विभाग के दफ्तर में भी बहुत उत्तेजना थी। अफवाह थी कि प्रधान मंत्री विभाग के मंत्री के हठ से असन्तुष्ट थे। उन्हों ने मंत्री से अपने निर्णय पर मानवी दृष्टिकोण से पुनः

विचार करने का अनुरोध किया था। पुनर्वास विभाग के मंत्री को सन्देह था कि कैम्प कर्मचारियों की सहायता के लिये, कैम्प में अनशन और प्रदर्शनों में स्वयं कैम्प कर्मचारियों का भी हाथ है। मंत्री ने विभाग के डायरेक्टर को आदेश दे दिया था कि कैम्प कमाण्डर को बुला कर नोटिस दे दिया जाये कि यदि कैम्प में अनशन और प्रदर्शन सात दिन में समाप्त नहीं हो जायेंगे तो कैम्प के सभी कर्मचारियों को बर्खास्त करके, कैम्प को सैनिक नियन्त्रण में दे दिया जायेगा। भविष्य की नीति के सम्बन्ध में उस के बाद ही विचार किया जायेगा।

दफ्तर के कुछ लोगों का प्रस्ताव था कि मंत्री महोदय की सेवा में दफ्तर के सब अस्थायी और शरणार्थी कर्मचारियों के हस्ताक्षरों से एक आवेदन-पत्र अनशनकारी महिला की माँगों के समर्थन में भेजा जाये। कुछ क्लर्कों ने तारा से भी आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर करने का अनुरोध किया। तारा के इन्कार करने पर वे तारा से तर्क करने लगे।

तारा ने उत्तर दिया—"इस विभाग और कैम्प के बनाये जाने का प्रयो-जन शरणार्थियों की समस्या को हल कर देना था। यह विभाग और कैम्प स्थायी तो होने नहीं चाहिये थे। यदि कैम्प और यह विभाग समस्या को हल नही कर सके तो यह सर्वथा उचित है कि सरकार दूसरा उपाय करे। मुझे यह बिलकुल स्वीकार नहीं है कि मैं अपनी नौकरी बनाये रखने के लिये विभाग के कायम रखे जाने की माँग करूं या कोई मेरी नौकरी बनाये रखने के लिये अनशन करे....।"

तारा के इस तर्क से आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर करने से डरने वाले कई दूसरे लोगों को भी बल मिल गया। बहुत से लोग दफ्तर के कर्मचारियों में फूट डाल देने के कारण तारा से असन्तुष्ट भी हो गये। हवेलीराम तारा को डायरेक्टर और अफसरों का खुशामदी कह कर उस के विरुद्ध नारे लगाने के लिये तैयार हो गया। नरेन्द्र चावला ने बड़ी कठिनाई से ऐसे लोगों को संयम रखने के लिये समझा कर रोका। उसे विश्वास था कि तारा को तर्क से समझा लिया जा सकेगा।

तीसरे दिन नरेन्द्र ने 'नाजिर' का अंक लाकर तारा को पढ़ने के लिये दिया। नाजिर में कैम्पों के तोड़ दिये जाने के विरोध में अनेक तर्को सहित बहुत दरद भरी अपील थी। तारा को उर्दू लिपि पढ़ने का कम अभ्यास था, केवल छपा हुआ ही पढ सकती थी। उस.ने स्कूल में उर्दू नही पढ़ी थी। शौक में पिता जी से पढ़ ली थी। तारा को लेख की शैली बहुत अच्छी और परिचित लगी। लेख के तर्क से सहमत न होने पर भी पूरा पढ़ लिया। अन्त में लेखक

का नाम हस्ताक्षरों के रूप में देख कर शरीर सिहर उठा—जय पुरी ।

तारा कुछ पल सन्नाटे में रह गयी । याद आया—हीरासिंह ने कहा था, पुरी जालन्धर से अखबार निकाल रहा है । पत्र के प्रकाशन का स्थान देखने के लिये पलट कर अन्तिम पृष्ठ के नीचे देखा–संचालक सम्पादक—'जय पुरी', सम्पादक—'कनक पुरी ।' माईहीरां गेट, जालन्धर ।

तारा का सिर घूम गया और याद आ गया—भाई के साथ ग्वालमंडी गयी थी । भाई ने कनक को सन्देश देने के लिये उस के घर भेजा था ।"''वह रेस्तोरां से असद के साथ बाहर निकली तो भाई को कितना क्रोध आ गया था ।'''टांगे में भाई से तकरार और दूसरे दिन भाई से अपमान पाकर सिर फोड़ लेने की घटनायें, बिजली की कौंद से सामने पड़े अखबार के पृष्ठ पर नाच गयीं । याद आया—उस के विवाह के बाद भाई के नैनीताल जाने की तैयारी थी ।

तारा ने कल्पना की—भाई मेरे बन्नी हाते में जल कर मर जाने के समाचार से मुक्ति अनुभव कर नैनीताल गया होगा । वहाँ कनक से विवाह कर लिया । उस में परिवार को कोई विरोध नहीं हुआ ? याद आया—'''माँ तो लड़की के ब्राह्मण होने की बात से घबरा गयी थी पर भाई तो प्रगतिशील थे, ऐसे विरोध की क्या परवाह करते ? तारा ने अखबार को लपेट कर एक ओर रख दिया ।

तारा का मन विक्षिप्त हो गया था । काम में ध्यान लगा सकना सम्भव नहीं रहा । चार बज रहे थे । वह मेज पर कोहनियाँ टिकाये एक कागज पर नीली पेंसिल से गोल-गोल वृत्त बनाती और उन्हें काटती जा रही थी । आहट सुन कर सिर उठा कर देखा, नरेन्द्र चावला एक फाइल लिये कमरे में आया ।

तारा ने 'नाजिर' उठा कर उस की ओर बढ़ा दिया ।

नरेन्द्र के चेहर पर एक विचित्र सी मुस्कान थी—"बहिन जी, अच्छा ही हुआ हम लोगों ने आवेदन-पत्र नहीं भेजा । कैम्प कमाण्डर ने अनशन बिना किसी शर्त के समाप्त करवा दिया है ।"

८

पुरी ने अदालती विवाह के लिये दिल्ली जाने से पहले ही सोनवां से पिता-माता और भाई-बहिनों को जालंधर बुलवा लिया था। प्रेस के ऊपर दो कमरे, रसोई-गुसलखाना और आंगन की जगह अधिक नही थी पर उस ने निश्चय कर लिया था कि अपने आराम के लिये परिवार की उपेक्षा नही करेगा। उस ने कनक से निःसंकोच कह दिया, लाहौर में तो हम लोग एक ही कोठरी में निर्वाह कर रहे थे।

पुरी सूद जी के सहयोग में कांग्रेस के अधिक सम्पर्क मे आता जा रहा था। उसने कमीज-पतलून छोड़, सादी पोशाक, खद्दर का कुर्ता-पाजामा अपना लिया था। कनक आग्रह से नित्य उस के कपड़े बदलवा देती थी। पुरी का कुर्ता-पाजामा वह नित्य स्वयं धोकर प्रेस भी कर देती थी।

कमल प्रेस के बोर्ड के ऊपर 'नाजिर' का बोर्ड लग गया था। प्रेस के दफ्तर के कोने में एक दूसरी मेज रख ली गयी थी। सम्पादकीय, टिप्पणियां और दो कालम का विशेष रोचक लेख 'हाट-बाजार मे' पुरी स्वयं लिखता था। विदेशी शासन के समय की धांधली, महंगाई और कुनबा-परवरी, सात-आठ मास के कांग्रेसी शासन मे जनता को और भी बढ़ गयी जान पड़ती थी। विदेशी शासन मे जनता भय से चुपचाप सब कुछ सहे जा रही थी अब लोग उस तरह सहने के लिये तय्यार नही थे। जनता की जबाने खुल गयी थीं। लोग आक्रोश में कहने लगते—''''इस से तो अंग्रेज का राज अच्छा था। अब तो धांधली और घूसखोरी के लिये किसी का डर ही नही रहा। गांधी जी नये शासन के 'पम्प एड शो' एंड एक्स्ट्रा वेगेस' (वैभव प्रदर्शन और व्यर्थ व्यय) की आलोचना कर आदर्शो की चेतावनी देते रहते थे। अब उन की आलोचना का भी भय नहीं रहा था। पुरी ऐसे प्रसंगों पर तीखे विद्रूप लिखता था।

पुरी को प्रेस के काम की ओर ध्यान देने के लिये बहुत कम समय रहता था। मास्टर जी के लिये बेकार बैठे समय काटना कठिन था। पुरी ने प्रेस और अखबार का हिसाब-किताब रखने का काम मास्टर जी को सौप दिया था।

अंग्रेजी पत्रों से लिये अंशों के अनुवाद का काम कनक करती थी। इस के अतिरिक्त 'हरिजन' के गत मासों के अंकों मे प्रकाशित गांधी जी की, आदर्श की चेतावनी देने वाली टिप्पणियों और कम्युनिस्टों के पत्र 'क्रास रोड' मे प्रकाशित पूंजीपतियों के प्रति सरकार के पक्षपात की नीति की आलोचना के

स्त्रियां बधाई और सगुन देने आ गयी थीं। केवल इतना ही उल्लास और समारोह हुआ कि ऊषा उत्साह-उमंग वश न कर पायी तो पड़ोस से अपनी सम-वयस्क तीन-चार लड़कियों को बुला लाई। लाला कृपाराम की लड़की गंगा ढोलकी ले आयी। लड़कियों ने कनक को बीच में बैठा कर आधी रात तक खूब टप्पे गाये :—

"कन्नी कांटे पाये होये ने।
साडे नालों बटन चंगे, जेड़े सीने नाल लाए होये ने।"

(लड़की कहती है—"मेरे कानों में बुंदे है। हमसे तो बटन भागवान हैं जो तुम्हारे सीने से लगे है।)

"दफ्तरतों आवागे।
बटनानूं लाहके ते, तैनूं सीने नाल लावांगे।"

(लड़का उत्तर देता है—"जब दफ्तर से लौटेगे, बटनों को उतार कर फेंक देगे और तुम्हें सीने से लगा लेगे।"

पुरी ने ऊषा को कालेज में दाखिल करवा दिया था। भागवंती को अपनी लड़की पर बहू का प्रभाव अच्छा नही लगता था पर उषा ने कनक को अपना आदर्श मान लिया था। रूखे-रूखे बालों की ढीली-ढीली दो चोटियां कर लेती, दुपट्टा सिर पर टिकता ही न था। हर बात में भाभी की नकल। दूध-लस्सी छोड़ कर चाय पीना। लड़के जो करें, लड़कियों का चाय पीना पुरी की मां को अच्छा न लगता था।

ऊषा कालेज से लौटती तो कोई अखबार-किताब लेकर पढने बैठ जाती या नीचे दफ्तर में मर्दो के बीच भाभी के पास जा बैठती।

भागवंती बहू को तो कुछ न कहती परन्तु बहू से ओझल लड़की को टोकती रहती—"यह क्या तरीके हैं। लड़कियों को लड़कियों की तरह रहना चाहिये। तुझे क्या बाबू बनना है!" चाहती थी, लड़की का कहीं जल्दी ही निपटारा हो जाये। लड़कियों को बहुत पढ़ाने के परिणामं उस ने देख लिये थे।

कनक ने बहुत साध और संघर्ष से मनोवांछित पाया था। तुष्टि के उन्माद से वह प्यार और काम में डूब गयी थी। यही उस का 'हनीमून' था। उस का पूरा दिन दफ्तर में ही बीत जाता। पुरी के सो जाने के बाद भी प्रायः ही उसे ग्यारह-बारह बजे तक नीचे दफ्तर में रह जाना पड़ता। 'नाजिर' के लिये समाचारों के अनुवाद, टिप्पणियों के चयन और प्रूफ संशोधन का काम उस प्रकार का साहित्यिक काम नहीं था जिसका स्वप्न कनक के मन में था, ऐसा काम जिसे मन की उमंग कराती है। कनक को याद आ जाता —असीर

ने ठीक कहा था—अखबार यह तो कारखाने का रोटीन है। कनक उस काम में रुचि का आकर्षण न होने पर भी कर्तव्य को उत्साह से आधी-आधी रात तक निबाह रही थी।

गरमी के कारण पुरी और कनक की खाटें ऊपर की छत पर डाल दी गयी थीं। वह नीचे प्रेस में गरमी और थकावट से चूर होकर ऊपर आकाश की शीतलता के नीचे नींद में बेसुध पुरी के गले में बांहें डाल देती। थके हुए पति की नींद तोड़ने में संकोच होता पर उस के थके हुये मस्तिष्क को तुरन्त नींद न आ पाती। प्यार का आवेग रुक न पाता।······केवल वही पति की नहीं थी, पति भी तो उस का था। कनक न चाहने पर भी पुरी को जगा देती। बाद में पुरी की खिन्नता से पछताना पड़ता तो बहुत ग्लानि होती।

जुलाई में एक दिन प्रातः कनक की तबियत ठीक न थी। चक्कर आ रहे थे और चेहरा पीला लग रहा था। पुरी ने उस की नब्ज देखी, माथा छूकर देखा और मां से कहा—"अमृतधारा दे दो या डाक्टर को बुला कर दिखा दें।"

मां ने पुरी की बात पर उपेक्षा प्रकट कर दी—"ऐसी क्या बात है, सब ठीक हो जायगा।"

मां को बहू के प्रति लड़के की इतनी चिंता भली नहीं लग रही थी। बहू की हालत क्या उन्हें नहीं दीख रही थी ?···सिर ही चढ़ा लेना हो तो दूसरी बात है।

पुरी का मन न माना। कुछ देर बाद उस ने फिर कनक के पलंग पर झुक कर पूछा—"कैसी तबियत है ? डाक्टर बुला लूं ?"

कनक की तबियत दोपहर तक काफी संभल गयी थी। उस से पुरी को पलंग की पाटी पर बैठा लिया और लजा कर बोली—"मां जी तो शायद कुछ और ही समझ रही है। शायद वही हो।"

पुरी ने चिंता और विस्मय प्रकट किया ! सोच कर बोला—"ऐसा ख्याल है तो हस्पताल की डाक्टर मिसेज चान्नणा को दिखा लो। डाक्टर कहते है, ऐसी अवस्था में बहुत सावधानी से रहना चाहिये। फिर सोच कर कहा, "अगर ऐसा है तो तुम्हारा बाहर आना-जाना तो मुश्किल हो जायगा। 'नाजिर' का काम भी कैसे कर सकोगी ?"

पुरी दूसरे दिन कनक के लजाने पर भी उसे डाक्टर मिसेज चान्नणा के यहां ले गया।

मिसेज चान्नणा 'नाजिर' के सम्पादक से परिचित थीं। यह सुन कर कि कनक भी सम्पादन में सहायता दे रही थी डाक्टर ने उसे सहेली की तरह

लिया। उस की परीक्षा कर कई बातें पूछीं और आत्मीयता से कहा—"तुम भी क्या हो। ब्याह को चार महीने नहीं हुये, मुसीबत डाल ली। साल-डेढ़ साल तो हंस-खेल लेतीं? फिर तो यह होना ही है। पुरी जी कहते हैं, तुम बहुत अच्छी लेखिका हो, बहुत अच्छा सम्पादन करती हो। बस कर ली तुम ने एडीटरी। बंदरिया की तरह चिपकाये दफ्तर में बैठोगी! पहले ही हफ्ते में यह हाल है तो दफ्तर में कैसे काम करोगी? प्रोफेशन (व्यवसाय) करने वाली स्त्री को तो कुछ संभल कर ही चलना पड़ता है।""मैं मेडिकल कालेज के तीसरे साल में थी तो ब्याह हो गया था। मैं बहुत सावधानी से रहती थी लेकिन परीक्षा से पहले गड़बड़ हो ही गया। ठीक परीक्षा के समय दिन पूरे होते थे। एक साल के लिये रह जाती। जानती हो, मेडिकल कालेज का साल भर का खर्च? और अपना मज़ाक बनवाती। सोचलो, अभी तो ऐसा कठिन भी नहीं है।

कनक ने पुरी से बात की।

पुरी निमंत्रणों और सभा-समाजों में कनक को साथ ले जाता था। प्रायः दोनों साथ ही जाते थे। सम्भ्रान्त शिक्षित पत्नी साथ होने से वह विशिष्ट और सम्मानित स्थिति का जान पड़ता था। 'नाज़िर' में भी कनक के सहयोग की आवश्यकता थी। अन्य सहायक रखने का मतलब सवा-डेढ़ सौ रुपये का खर्च था। पुरी को इतनी जल्दी पिता के पद से सम्मानित हो जाने की भी इच्छा नहीं थी। कनक को गोद में छोटे से प्यारे बच्चे की कल्पना से तो पुलक अनुभव हुआ परन्तु पति की संगति और काम में सहयोग का अवसर खो देना अच्छा नहीं लगा।

कनक की तबीयत बिलकुल ठीक हो गयी तो मां ने मुंह फुला लिया। नये जमाने के पापों के परिणाम की आशंका में भगवान को स्मरण करने लगी। ऊषा को कनक से चिपटते देखती तो डांट देती—तुझे कोई काम नहीं है, घर का भी कोई काम सीखेगी या सदा माही मुंडा (लड़का सी लड़की) बनी रहेगी?

पुरी ने नाज़िर के सम्पादन के लिये स्वयं अपने या कनक के लिये भी सूद जी से किसी तनखाह की चर्चा नहीं की थी। बिना किसी चर्चा के प्रेस और अखबार भी पुरी के ही थे। वह स्वयं अपने आप को क्या तनखाह देता? तीन मास में नाज़िर की जनप्रियता बढ़ कर उस की साख जमने लगी थी परन्तु पत्र में विज्ञापन नाम-मात्र ही थे। अधिकांश में काम प्रेस की आमदनी से ही चल रहा था।

प्रेस का काम देखने और प्रेस में काम लाने के लिये पुरी के पास समय न था। उस ने रिखीराम को सन्तुष्ट रखने के लिये उस का वेतन पच्चीस रुपये बढ़ा कर प्रेस का सब बोझ उसी पर डाल दिया था। सावधानी के लिये रोकड़, हिसाब और प्रेस की दूसरी बातों पर मास्टर जी भी नजर रखते थे। हिसाब में बहुत मीन-मेख निकालने के कारण प्रायः ही रिखीराम की मास्टर जी से चख-चख हो जाती थी। मास्टर जी छोटी से छोटी बात पर टोक देते। रिखीराम हिसाब लिखाते समय पार्सल आफिस में काम जल्दी कराने के लिये दुअन्नी-चवन्नी या कचहरी में चपरासी को अठन्नी रुपया देने का खर्च बताता तो मास्टर जी आपत्ति कर देते।

रिखीराम बताता—सभी को देना पड़ता है।

मास्टर जी एतराज करते—रिश्वत तो रिश्वत है; चाहे पैसे की हो चाहे हज़ार रुपये की हो।

पुरी ऐसे अवसर पर चुप रह जाता। पुरी के मौन को दोनों ही अपना अनुमोदन समझ लेते।

सिलेंडर मशीन प्रेस के टाइम के बाद भी चल रही थी। रिखीराम फार्म पूरा करने के लिये कागज देकर चला गया था। साढ़े सात बजे कागज समाप्त हो गया। मशीनमैन ने मास्टर जी को बुलवा कर पूछा, अभी और कागज लेना होगा कि मशीन रोक दें। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का फार्म छप रहा था। मास्टर जी ने नीचे आकर देखा बोर्ड से आया कागज अभी बीस रिम ही छपा था। पांच रिम कागज़ पड़ा था। मास्टर जी ने मशीनमैन को पाँच रिम और छाप देने के लिये कह दिया।

दूसरे दिन रिखीराम ने मास्टर जी पर कागज बिगाड़ देने के लिये झुंझलाहट प्रकट की। मास्टर जी ने उस की भूल सुझायी—"आर्डर पचास हज़ार फार्म का है। जरा हिसाब करके देखो। तुम चालीस के लिये कागज दे गये थे। उन के कागज में से पाँच पड़े थे कि नहीं।"

रिखीराम ने कारीगरों के सामने ही मास्टर जी को डांट दिया—"आप बहुत हिसाब जानते हैं। समझते नहीं हैं तो दखल क्यों देते हैं! पैंसठ रुपये का कागज बरबाद करवा दिया! बोर्ड के क्लर्कों को मैं अपनी जेब से दूंगा?"

मास्टर जी को प्रेस के काम का अनुभव ज़रूर नहीं था परन्तु इतने कच्चे भी नहीं थे कि रहस्य न समझ जाते। स्पष्ट था कि रिखीराम चालीस हज़ार फार्म छपवा कर पचास हज़ार का बिल बनवायेगा और सरकार का पाँच रिम कागज़ भी दबा लेगा। साढ़े चार सौ रुपये के बिल में अस्सी रुपये का घपला

था। मास्टर जी के लिये यह असह्य था। सरकारी कामों में पोल होती है, यह मास्टर जी भी जानते थे। उन के बड़े भाई रामज्वाया क्या करते थे, उस का कुछ आभास उन्हें था परन्तु वह इसे पाप समझते थे। अब तो अपनी सरकार थी। उन के उपकारक सूद जी सरकार मे पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी थे। अपनी सरकार के साथ धोखा !

पुरी 'नाजिर' में रिश्वत और धांधली के विरुद्ध आवाज़ उठाता था। मास्टर जी को गर्व था कि उन का योग्य पुत्र सत्य और न्याय के लिये लड़ रहा था। वह अपने आदर्श के लिये एक बार नौकरी पर भी लात मार चुका था।

मास्टर जी ने रिखीराम की बेईमानी और सब के सामने उन का अपमान कर देने की शिकायत बेटे से की। पुरी ने सब कुछ सुन कर उन्हें इस विषय में चुप रह जाने के लिये कह दिया।

मास्टर जी बेटे की योग्यता का बहुत आदर करते थे। उसे अपने से अधिक विद्वान-बुद्धिमान समझते थे परन्तु इस विषय में चुप न रह सके, आत्म-सम्मान का प्रश्न था। वह सब के सामने बोल पड़े—"अखबार में तुम क्या लिखते हो ? तुम्हीं ने लिखा था—सरकार का रुपया जनता का रुपया है। लोटा, धोती चुरा लेने वालों को जेल होती है तो पूरे देश और जनता का धन चुराने वालों को फांसी होनी चाहिये !"

पुरी पिता की अव्यवहारिक बात से चिढ़ गया। सब लोगों के सामने उन का ऐसे बोलना उसे अच्छा नहीं लगा। अखबार और प्रेस में सब से अधिक अधिकार और आदर पुरी का ही था। उस ने रूखे ढंग से कह दिया—"आप को यह अच्छा नही लगता तो आप इस की चिन्ता न कीजिये। आप घर में बैठ कर आराम कीजिये।"

पुरी का पिता जी को धमका देना कनक को बहुत बुरा लगा। वह काम में व्यस्त रहती तो मास्टर जी की उपस्थिति में सिर पर आंचल खींच लेना चाहे भूल जाती परन्तु उन से बोलती बहुत ही आदर से थी। उन की सेवा का कोई भी अवसर होता तो बहुत चाव और यत्न से करती थी। कनक को उन की बात भी उचित जंची। हाँ, सब लोगों के सामने उन का पुरी के विरुद्ध बोल देना मुनासिब न था। फिर भी वे पिता थे। कनक मन मार कर रह गई।

उस संध्या मास्टर जी ने भोजन से अनिच्छा प्रकट कर दी। पुरी ने अपने रूखेपन के लिये खेद प्रकट कर सफाई दी—"मुझे स्वयं ऐसी बात से बहुत ग्लानि होती है परन्तु दफ्तर के अकाउन्टेंटे की न सुनें तो वह काम दूसरे को दे देगा। बिल में इतनी मीन-मेख निकालेगा कि बरस भर में भी पेमेंट नहीं

हो सकेगी। मैं अकेला सदियों से लोगों के खून में समाई हुयी बेईमानी को एकदम तो समाप्त नहीं कर दे सकता। हम लोग गंदगी में पैदा हुये हैं तो कुछ तो गंदी हवा निगलनी ही पड़ेगी। उस के विरुद्ध धीरे-धीरे अवसर से, ही लड़ सकते हैं। अखबार में अभी विज्ञापन भी नहीं हैं। प्रेस की आमदनी के सहारे हम धांधली और अन्याय के विरुद्ध आवाज तो उठा सकते हैं। अखबार की अपनी आमदनी होने लगे तो ऐसा अपमानकारी व्यवहार हम क्यों सहें। प्रेस को कैसे समाप्त कर दें।"

कनक स्वयं थाली परोस कर मास्टर जी के सामने ले गयी। उन के समीप सिर झुकाये बैठ कर उस ने बहुत विनय से कहा—"पिता जी, आप का कहना बिलकुल ठीक है। आप इस समय हम लोगों की बेबसी को क्षमा कर दीजिये। यह अब ऐसा नहीं होने देंगे।"

पिता जी ने कनक को आशीर्वाद देकर कहा—"बेटी, मैंने उम्र भर कठिन परिश्रम किया है, गरीबी में अपना ईमान और इज्जत निबाही है। अब मैं देख कर कैसे मक्खी निगल लूँ? प्रभु तुम लोगों का कल्याण करें, सुबुद्धि दें। उन की जो इच्छा हो। प्रभु तू ही तू है।" गला रुंध जाने से मास्टर जी मौन हो गये।

मास्टर जी के न खाने के कारण कनक की सास ने भी नहीं खाया था। ऊषा, भाई और भाभी के लिये थाली परोस कर दूसरे कमरे में ले गयी। पुरी और कनक एक ही थाली में खाते थे। ऊषा के बुलाने पर कनक ने धीमे से कह दिया—"कह दे खा लें मेरा मन नहीं कर रहा।"

पुरी कनक को बुला कर झुंझला उठा—"...सभी मुझे चोर बना कर थू-थू करो। यह सब मैं अपने पेट के लिये कर रहा हूं तो मुझे जहर दे दो!"

कनक ने आँखों में उमड़े आँसू निगल लिये और अध-चबाये कौर निगलती गयी।

दफ्तर में या घर में पुरी को पुकारना होता तो कनक 'जी' सम्बोधन कर लेती थी। एकान्त में भी 'जी' ही कहती थी परन्तु ध्वनि बदल जाने से अर्थ भी बदल जाता था। रात ऊपर की छत के एकान्त में पुरी का हाथ अपने हाथों में लेकर उस ने बात की—"जी, तुम्हें भी यह स्वयं अच्छा नहीं लगता, इस का उपाय होना चाहिये। दूसरे अखबारों में तो काफी विज्ञापन रहता है....!"

पुरी ने अपनी परेशानी बतायी—"समय भी हो। रिफ्यूजी भी जान खाये रहते हैं। देखती हो, तुम्हें भी रोज ही दस-ग्यारह बज जाते हैं। एक और आदमी रखे बिना काम नहीं चलेगा।"

अखवार के कारण पुरी का प्रभाव और स्थिति वढ़ गयी थी। उस की व्यस्तता भी वहुत वढ़ गयी थी। कांग्रेस का वार्ड सेक्रेटरी तो था ही। रिफ्यूजी एसोसियेशन में कुछ झगड़े खड़े हुये थे। मई में दुवारा चुनाव हुआ तो पुरी मंत्री चुन लिया गया। म्युनिसिपल प्राइमरी स्कूल टीचर्स एसोसियेशन ने 'नाजिर' और पुरी से सहायता की आशा में मास्टर रामलुभाया जी को अपना प्रधान चुन लिया था।

मास्टर जी ने प्रेस के काम में अपना अपमान समझ कर उस काम से हाथ खींच लिया था। खाली वैठे समय विताना उन के लिये कठिन था। पुत्र का आदर और पुत्र की वजह से अपना आदर देख कर भी वे स्वयं अपनी ही कमाई पर निर्वाह करना चाहते थे परन्तु पुरी को यह कैसे सह्य होता कि उस के पिता सत्तर-अस्सी रुपये माहवार की नौकरी करें। मास्टर जी नहीं माने तो उस ने दूसरा उपाय सोचा। पुरी ने सूद जी से प्रार्थना करके मास्टर जी को एक कोल् डिपो एलाट करवा दिया। मास्टर जी के लिये दो-तीन सौ रुपये माहवार की पृथक आमदनी का सहारा हो गया।

मास्टर जी को कोल डिपो के लिये जगह, कमल प्रेस से दो मील दूर रेल-लाईन के पार वसी-निगारखाँ में मिली थी। खुली जगह के साथ दो कोठरियाँ भी थीं। मास्टर जी सुविधा के विचार से वसी-निगारखाँ में ही रहना चाहते थे। कनक की सास भी यही चाहती थी। कनक उन का आदर जरूर करती थी परन्तु कनक के प्रभाव से ऊपा वहुत सिर चढ़ने लगी थी। मां ऊपा को कनक के प्रभाव से दूर रखना चाहती थी।

जितनी जगह में पुरी चार-पाँच मास अकेला या केवल उर्मिला के साथ रहा था वहाँ अव पूरा परिवार भरा हुआ था। असुविधा उसे भी अनुभव होती थी। पुरी और कनक सौजन्य के नाते माता-पिता को कई दिन तक प्रेस में रोके रहे। आखिर एक दिन मास्टर जी प्रातः नाश्ते के वाद ऊपा, हरी, उन के छोटे लड़के और मां को लेकर वसी-निगारखाँ चले गये।

पुरी की मां के घर में रहते नौकर या रसोइया रखने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। उन के घर से जाते ही समस्या सामने आयी। कनक दफ्तर में अखवार का काम करती या रसोई-चौके का! पुरी ने उसे कह दिया था, जव तक नौकर नहीं मिलता, खाना ढावे से आ जायेगा। खेमी थालियाँ लगवा कर ले आयेगा।

कनक साढ़े ग्यारह वजे दफ्तर का काम छोड़ कर ऊपर चली गयी थी। इतने दिन ऊपर की दो कोठरियों में इतने लोगों की भीड़ से कनक को स्थान

की तंगी अनुभव होती थी, विशेषकर बरसात के समय। अब ऊपर कोई भी नहीं था। जान पड़ा जैसे कोठरियां बहुत बड़ी-बड़ी हो गयी थीं और खाली हो जाने के कारण धूप में बहुत अधिक गरम और चौंधिया रही थीं। कनक को रसोई में पिछले दिन की बची जो सब्जी पड़ी मिली झटपट कतर डाली, चूल्हा सुलगा कर देगची चढ़ा दी और आटा गूंधने लगी। लाहौर में कनक के घर में रसोई मां स्वयं सम्भालती थी फिर भी घर में दो-दो नौकर रहते थे। मां लड़कियों को सिखाने के लिये कभी-कभी रसोई में बुला लेती थी। पूरी रसोई का बोझ लाड़ली लड़कियों पर कभी नहीं पड़ा था परन्तु नारी को रसोई की रसायन के ज्ञान का वैसे ही भरोसा होता है जैसे मछली को तैरने की शिक्षा पाये बिना ही किसी भी जल में तैर सकने का।

पुरी बुलावा पाकर ऊपर गया तो रसोई से घी जलने की सुगन्ध आयी।

पुरी उधर ही चला गया। देखा—दोपहर की प्रखर गरमी में कनक चूल्हे के समीप बैठी परौंठे बना रही थी। चेहरा टमाटर जैसा लाल, माथे पर पसीने के मोती, गालों और कनपटियों पर पसीने की धारायें।

कनक ने मुस्कराकर कहा—"यहां बहुत गरमी है। खाना परोस देती

"ऐसे तुम कितनी खूबसूरत लग रही हो" पुरी ने आंच से लाल चेहरे, पसीने से लथपथ गुसलखाने की ओर जाती कनक को बाहों मे उठा लिया। अधीरता से उस के माथे, कपोल, चिबुक, ओठों को बारबार चूमने लगा। कनक ने इतने प्यार के गर्व से पुरी के प्यार को और उकसाया—"छी, गंदे; देखो तो कितना पसीना!" उस ने पुरी के गले मे बाहें डाल दीं।

सास-ससुर और परिवार के चले जाने से घर में भर गया सूनापन उड़ गया। घर प्रेमोन्मत्त मिथुन के कूजन और घुटरघूं से भर गया। कनक और पुरी को प्रेम के उन्माद में आत्मविस्मृत हो जाने का अवसर मिला।

कनक को पुरी के लिये रसोई-चौका, बिस्तर लगाना-उठाना, कमरों में झाड़ू-बुहारी करना कुछ भी भारी न था। इस सब के साथ वह अखबार का काम करती थी। वह पंखों के नीचे पली थी, उस ने गरमियां पहाड़ों पर काटी थीं पर उसे जुलाई-अगस्त मे पंजाब की गरमी और उमस भी नहीं खल रही थी।

उसे एक बात खल जाती थी। वह थी कभी-कभी पुरी का अकारण चिड़-चिड़ा उठना; विशेष कर, तृप्ति से श्रान्ति की मुग्धावस्था में। कनक को ऐसा अनुभव पहली बार, विवाह के तीन सप्ताह बाद ही हो गया था। माधुर्य की मुग्ध मूढ़ता में ऐसा अपमान और कटुता कनक के हृदय को आर-पार बेंध देती थी।

कनक के ससुराल में आने पर पुरी ने उस के प्रति इस प्रकार विनय और आदर का व्यवहार आरम्भ किया था कि वह स्वयं उस की अपेक्षा भी अधिक आदर की पात्र थी। बहू को इतना सिर चढ़ा लेना सास को अच्छा नहीं लगा था परन्तु दो मास बीतते-बीतते बहुत थकावट, उत्तेजना और क्षोभ की अवस्था में कनक के प्रति व्यवहार में पुरी से भूल हो जाने लगी। कनक को इस से बहुत चोट लग जाती थी। वह उस ओर लक्ष न करने या भूल जाने का यत्न करती थी। परिवार के बसी-निगाहरखों चले जाने पर दोनों को प्रेम के उन्माद मे निर्बाध हो जाने का अवसर मिला तो कनक उस से गदगद हो गयी थी। उसे आशा थी वह अपने आप को न्योछावर करके अपने प्यारे को अधिक यत्न से सम्भाल सकेगी परन्तु अबाध सामीप्य, स्वच्छंदता और कनक के प्रेम के व्यवहार का परिणाम उल्टा ही होने लगा। कनक को लगा, पुरी के स्नेह के आवेग का उच्छ्वास क्षीण होता जा रहा था। जिस चुहल और काम-केलि के लिये वह पहले आतुर हो जाता था, अब उसे आकर्षित नही करती थी। प्रेम के व्यवहार में से उमंग मिटती जा रही थी।

पुरी कभी आवेग में बह भी जाता तो अंत में उसे आत्मक्षय के असंयम का उग्र संताप घेर लेता।

कनक ने बहुत गंभीरता से बहुत बार सोच कर समझा—अनेक कामों की थकावट और चिन्ता से यों ही इतने परेशान रहते हैं, मैं व्यर्थ बातों से परेशान करती हूं। उसे मन में ग्लानि और लज्जा अनुभव होती। कनक संयम का निश्चय कर लेती तो कुछ समय बाद पुरी का उच्छ्वास और आवेग छलक पड़ता। कनक को अच्छा लगता परन्तु परिणाम में फिर पुरी की चिड़चिड़ाहट, विरक्ति और आत्म-ग्लानि मिलती। कनक लज्जा और संताप से मिट्टी हो जाती—क्या मेरी भूख इतनी अधिक है? उसे बहुत अपमान अनुभव होता।

नाजिर की नीति गांधीवादी और कांग्रेसी समाजवादी विचारधारा के समर्थन की थी। पुरी और कनक के अतिरिक्त नाजिर के दफ्तर और कमल प्रेस में कोई भी 'नाजिर' की नीति का समर्थक नहीं था। 'नाजिर' का मैनेजर मनमोहन सिद्धू विभाजन के परिणाम देखकर कांग्रेस-विरोधी हो गया था। कांग्रेस ने विभाजन को स्वीकार कर लिया था इसलिये सिद्धू के विचार में कांग्रेस ही विभाजन के परिणामों और हिन्दुओं के हनन के लिये उत्तरदायी थी। राष्ट्रीय-सेवक-संघ के गैरकानूनी करार दे दिये जाने से भी वह असंतुष्ट था। रिखीराम और सिलंडर का मशीनमैन भी कांग्रेस-विरोधी थे। उन के कांग्रेस विरोध का कारण यह था कि कांग्रेस मुस्लिम-विरोधी नहीं थी परन्तु वे सब 'नाजिर' के या पुरी के नौकर थे। उन्हें जो कुछ लिख कर दे दिया जाता, वे छाप देते थे। पुरी कभी-कभी उलझन भी अनुभव करता था। वह चाहता था कि ठीक समझ रखने वाले सहायक हों तो काम अधिक सरलता से हो, दफ्तर में वातावरण ठीक रहे।

मास्टर जी के बसी-निगारखां चले जाने से पूर्व ही पुरी ने मनमोहन सिद्धू को नाजिर में सवा सौ मासिक पर मैनेजर रख लिया था। सिद्धू लाहौर में 'केसरी' के दफ्तर में असिस्टेंट मैनेजर था। उसने पत्र की बिक्री संगठित करके और कुछ विज्ञापन बटोर कर अपनी उपयोगिता शीघ्र ही प्रमाणित कर दी थी परन्तु संपादन कार्य में केवल कनक ही हाथ बटा रही थी। पुरी को सार्वजनिक काम में पूर्वापेक्षा अधिक समय देना पड़ रहा था। नवम्बर से कनक की तबीयत फिर शिथिल रहने लगी थी। पुरी अनुभव कर रहा था, कनक के लिये दफ्तर में दस-बारह घंटे बैठना कठिन था, उचित भी नहीं था।

भूपेन्द्र 'रक्स' लाहौर में 'छत्रपति' के सम्पादकीय विभाग में था। वह

कहानी और मजाहिया मजमून (विद्रूप) भी लिख लेता था। दो कहानियां और कम्युनिस्टों की नयी नीति पर एक तीव्र विद्रूप उसने सौजन्य में ही 'नाजिर' को दे दिये थे। दिसम्बर मे पुरी ने उसे सहायक संपादक रख लिया था परन्तु उस के काम से पुरी को संतोष न था। 'रक्स' का व्यवहार नितान्त व्यवसायिक था। उसे भाषा पर अच्छा अधिकार और पत्र की दूसरी व्यवहारिक बातों का अनुभव था परन्तु वह केवल तनख्वाह के लिये काम कर रहा था। पुरी उसे पत्र का उत्तरदायित्व देकर निश्चिन्त नहीं हो जा सकता था।

कनक ने अप्रैल-मई तक तो किसी तरह काम निवाहा परन्तु अब उस की अवस्था दफ्तर मे बैठने लायक नहीं थी। इस अवस्था मे भी कनक जितना काम कर देती थी, 'रक्स' उस का आधा भी करने के लिये तैयार नहीं था। पुरी को ऐसे सहायक की आवश्यकता थी जो कनक की अनुपस्थिति को पूरा कर सके और थोड़ा बहुत स्वयं उस का भी उत्तरदायित्व बटा सके।

पुरी और कनक ने अपने विवाह की सूचना प्रीतमसिंह गिल को दे दी थी। 'नाजिर' नियमित रूप से उस के पते पर भेजा जा रहा था। पुरी और कनक ने गिल से अनुरोध किया था, तुम अनुभवी पत्रकार हो। हम लोग तुम्हारी राय और सुझाव से सहायता की आशा रखेंगे। गिल इस अनुरोध की रक्षा के लिये वर्ष भर मे चार लेख नाजिर के लिये भेज चुका था।

कनक ने पुरी को लखनऊ मे गिल से परिचय होने की घटना, उस की उदारता, परस्पर विश्वास की सभी बातें बता दी थी। प्यार के गर्व मे यहाँ तक कह दिया था—

"तुम मेरे मन में न बसे होते तो गिल को आत्म-समर्पण कर देती। तुम ऐसे ठग हो कि पहले ही बांध लिया था। ऐसा बांधा कि सैकड़ों मील दूर रह कर, मिल पाने का कोई सहारा न होने पर भी तुम्हारा सम्मोहन मुझे जकड़े रहा।" कनक ने आंखे तरेंरी, "खुद ऊटपटांग करते रहे पर मुझे अपनी चीज बनाकर जकड़े रखा।"

पुरी ने खिन्नता प्रकट की—"कन्नी, मेरी उस यंत्रणा और विक्षिप्ति की याद क्यों दिलाती हो?"

"हंसी-मजाक का बुरा न माना करो। हम और किस से दिल्लगी करें।" कनक ने प्यार से मना लिया।

पुरी के सामने जब भी सहायक सम्पादक का प्रश्न आता था, उसे गिल की याद सब से पहले आती थी। वहसिद्धू और कनक से चर्चा भी करता था।

सिद्धू कहता था—"आप दोनों के साथ गिल मिल जाये तो कहना ही क्या 'सितारा' तो उसी के दम पर चलता था।"

पुरी भी कहता था, 'गिल आ जाय तो सब चिन्ता दूर हो जाये पर गिल को बुलाने में संकोच होता था। इस के दो कारण थे।

पुरी लाहौर में गिल को अपना सीनियर कह कर सम्बोधन करता रहा था। दो वर्ष पूर्व बेकारी के समय वह उस से सहायता की याचना कर चुका था। लखनऊ में गिल प्रूफरीडर बन कर चाहे केवल ८०-९० रुपये ही ले रहा था परन्तु क्या वह पुरी के आधीन काम करना स्वीकार करेगा ? गिल को पुरी डेढ़ सौ दे देने के लिये तैयार था। पुरी ढाई सौ ले रहा था परन्तु वास्तव में यह पुरी और कनक दोनों के श्रम का वेतन था। गिल अकेला था। समाजवादी साथी होने के नाते उसे सवा सौ में भी बुरा न मानना चाहिये था। अपनी पार्टी में काम करता तो चालीस ही लेता। दूसरी शंका थी—अगर गिल ने कम्युनिस्ट होने के कारण अपना दृष्टिकोण भी पत्र में देना चाहा तो ? गिल पार्टी से बहिष्कृत था परन्तु कम्युनिस्टों का भरोसा क्या। पुरी का अनुभव था—कम्युनिस्ट, पार्टी से सम्पर्क टूट जाने पर भी कम्युनिस्ट बने रहते हैं। पुरी संचालक और सम्पादक के स्थान से अपना और कनक का नाम बदलने के लिये भी तैयार नहीं था। गिल क्या पत्र पर अपना नाम दिये बिना काम करना स्वीकार कर लेगा ?

अनुभव के बिना व्यवसाय का रहस्य नहीं पाया जा सकता। पुरी ने भी अनुभव से समझा कि पत्र के सम्पादन और संचालन का मर्म बहुत अच्छा लिख लेना ही नहीं है। सैनिक का कौशल शस्त्र प्रयोग है परन्तु सेनापति शस्त्र नहीं उठाता। सेनापति का काम कुशल सैनिकों का उचित संचालन होता है। अच्छे लेखकों का उचित प्रयोग कर सकना सम्पादक का काम है। एक अच्छा लेख लिखने में दिन भर खपा देने की अपेक्षा समुचित प्रसंगों पर अच्छे लेख लिखवाकर उन का समन्वय और उपयोग कर सकना है। पुरी के मन से कशिश जी के प्रति क्रोध मिट गया। अब उसे भूपेन्द्र जैसे लोगों से असंतोष था, जो अपने सामर्थ्य का कम से कम उपयोग करना ही चातुर्य समझते थे।

पुरी ने गिल को स्वयं न लिख कनक से पत्र लिखवाया। नाजिर में सहयोग के लिये अनुरोध था परन्तु अपनेपन के अधिकार से स्पष्ट बात लिख दी:—

"...अपनी योग्यता का वेतन चाहो तो हम कहाँ से दे सकेंगे। जिस तरह हम दोनों निर्वाह कर रहे हैं, तुम्हारे लिये भी हो जायेगा। पत्र की नीति तुम्हारे सामने है। शायद उस से तुम्हें सन्तोष न हो परन्तु तुम्हारे लिये

असह्य होने का भी कारण नहीं है। संचालक-सम्पादक के नाम दूसरों के हैं इसलिये नीति का उत्तरदायित्व भी तुम क्यों अनुभव करो ? हमें सहायता की आवश्यकता है और संगति का भी तो कुछ मूल्य समझना चाहिये।"

गिल जालन्धर आ गया था। नाजिर के दफ्तर के लिये अब प्रेस के ऊपर केवल एक कमरा काफी न था। सदा प्रेस और दफ्तर में रहने से पुरी और कनक को भी शान्ति नसीब न होती थी। पुरी ने, एक सरकारी अफसर का शिमला तबादिला हो जाने के कारण, विक्रमपुरा मुहल्ले में खाली हो गया छोटा सा मकान अलाट करा लिया था। गिल के लिये भी कुछ प्रबन्ध करना जरूरी था। प्रेस के ऊपर रसोई की कोठरी बहुत छोटी न थी। चौका-चूल्हा तोड़ देने से उस मे एक खाट समा गयी और दरवाजे के सामने ढाई-तीन फुट जगह भी रह गयी। गिल के रहने का प्रबन्ध हो गया।

रिखीराम प्रेस का लगभग पूरा काम सम्भाले था। अखबार और बाजार का काम मिला कर अब प्रेस में इतना काम था कि रिखीराम एक और ट्रेडिल खरीद लेने का परामर्श देता रहता था। उस के आग्रह पर हिन्दी और गुरुमुखी लिपि के टाइप भी मगा लिये गये थे। पंजाब मे सरकारी कागजों और विज्ञप्तियो के अंग्रेजी और उर्दू मे छापे जाने की परम्परा चली आ रही थी परन्तु अब सिक्खों का आग्रह था कि पंजाबी को सभी कामो मे स्थान दिये जायें और हिन्दू, हिन्दी को भी सभी जगह स्थान दिया जाने की माँग करते थे। प्रेस के लिये काम की कमी न थी। जगह-जगह नये प्रेस खुल रहे थे।

गिल ने नाजिर का काम सम्भाल लिया था। कनक दफ्तर न आ सकती तो भी पुरी की उपस्थिति अनिवार्य न होती। पुरी को दूसरे बहुत से काम थे। वह प्रेस जाता भी तो दो-तीन घटे से अधिक न ठहर पाता। सम्पादकीय भी कभी-कभी गिल ही लिख देता था। पुरी का काम सुविधा से, चल रहा था, तभी एक दिन भारी विपत्ति आ पड़ी।

पुरी ऊपर दफ़्तर मे था। रुल्दू ने जीने से पुकारा—"बाऊजी ! (बाबू जी) जल्दी आओ ! कचहरी से बाऊ और सिपाही आये है।"

पुरी ने अनुमान किया—छपाई का कोई अर्जेण्ट काम होगा।

रिखीराम तीन दिन से प्रेस मे नही आ रहा था। उस ने न छुट्टी की दरखास्त भेजी थी न कोई समाचार। प्रेस मे यही अनुमान था, शायद बीमार हो गया होगा। प्रेस का काम कोई दूसरा व्यक्ति नही समझता था। पुरी को नीचे जाना पड़ा।

अदालत के आदमियों का प्रयोजन जान कर पुरी के पाँव तले की धरती हिल गयी। अदालत से मस्कूरियान (कुर्की के क्लर्क) कमल प्रेस से तेरह हज़ार सवा सौ रुपया वसूल करने आये थे। रुपया न दे सकने की अवस्था में वे प्रेस पर कब्जा कर लेना चाहते थे।

पुरी बहुत घबरा गया। कुछ समझ नहीं पा रहा था। उस ने गिल को बुलवाया। अदालत का हुक्म देखने पर मालूम हुआ कि अदालत ने कमल प्रेस के मैनेजर रिखीराम के खिलाफ अच्छरूराम महाजन की तेरह हज़ार सवा सौ रुपये की डिग्री मंजूर करके प्रेस की कुर्की का हुक्म जारी कर दिया था। पुरी और प्रेस के दूसरे लोग कुछ समझ नहीं पा रहे थे।

पुरी मस्कूरियान के साथ गिल को छोड़ कर समीप बाजार में गया। उस ने सरदार मेहरसिंह के यहाँ से सूद जी को फोन किया। सूद जी भी कुछ समझ न पाये। उन्हों ने मेहरसिंह से अनुरोध किया कि सरदार मेहरसिंह और लाला क्रिपाराम पुरी की सहायता करें। जरूरत हो तो जमानत दे दें। शेष वे पता करेंगे।

पुरी ने मेहरसिंह और कृपाराम को बताया--रिखीराम प्रेस का मैनेजर नहीं, केवल साधारण नौकर था। प्रेस के नाम पर कर्ज लेने का उसे कोई अधिकार नहीं था। प्रेस के लिये अच्छरूराम से कोई कर्जा नहीं लिया गया।

सरदार मेहरसिंह और लाला कृपाराम कचहरी-कानून की बात समझते थे। वे मामला भाँप गये। उन्हों ने पुरी को समझाया— रिखीराम ने कुछ जाल रचा है। अदालत ने गवाही के आधार पर रिखीराम को प्रेस का मैनेजर और मुख्तार मान कर अच्छरूराम को डिग्री दे दी है। तुम्हें अदालत के हुक्म के खिलाफ कानूनी चारा-जोई करनी होगी लेकिन वह बाद की बात है। फिलहाल प्रेस को बचाना जरूरी है।

सूद जी के लिहाज से सरदार मेहरसिंह ने कमल प्रेस का सुपुर्दवार बनना स्वीकार कर लिया। संध्या तक प्रेस के पूरे सामान की लिस्टें बनायी गयीं। एक लिस्ट अच्छरूराम ने ले ली, एक मस्कूरी ने रख ली।

पुरी और गिल अड्डा-होशियारपुर में रिखीराम को ढूँढ़ने गये। काफी खोज-पड़ताल के बाद रिखीराम का मकान मिला। गली में ही ट्रेडल मशीन के चलने की आहट आ रही थी। मालूम हुआ वह कई दिन पहले एक ट्रेडल मशीन खरीद लाया था।

रिखीराम ने आँखें दिखा कर बात की—"...जो करना है कर लो! प्रेस तुम्हारे बाप का था? प्रेस पर हक मेरा था। जेहलम में अपना प्रेस छोड़कर

आया हूं। तू जानता ही क्या था ? कांग्रेसी मिनिस्टरों के चूतड़ पोंछ-पोंछ कर प्रेस दबा लिया, मुझे आंखें दिखाता है। प्रेस तेरा नहीं, मेरा है। अठारह महीने में तुझे इतना कमा कर दिया है, तूने मेरा कौन अहसान माना ? भिखारी से शाह बना दिया। मुझ पर चोरी लगाने आया है। पहले तेरह हजार सवा सौ रुपया भर दे फिर यहां आना। जो बात करनी हो अदालत में करना…।"

संध्या समय पुरी, कनक और गिल नैयर के यहां गये। कांता और नैयर ने ध्यान और चिन्ता से मामला सुना। कनक, पुरी और गिल समझ ही नहीं पा रहे थे कि अदालत ने रिखीराम को प्रेस का मैनेजर-मुख्तार कैसे मान लिया ? अच्छरूराम ने उसे प्रेस के नाम पर इतना रुपया उधार कैसे दे दिया ? अदालत ने उसे कैसे डिग्री दे दी ?

नैयर के प्रश्नों के उत्तर में पुरी ने बताया--पिछले महीनों में रिखीराम के नाम अदालत से कई बार सम्मन आये थे। वह कई बार आधे-पूरे दिन की छुट्टी लेकर अदालत जाता था। रिखीराम कह देता था कि उस के मुहल्ले में कोई मारपीट का मामला हो गया था, उसे गवाही देने जाना पड़ता था।

सितम्बर १९४७ में रिखीराम सूद जी से ईसाक मुहम्मद के बंद पड़े कमाल प्रेस को चालू कर सकने की अनुमति मांगने गया था। उसे विश्वास कर लेना पड़ा था कि प्रेस सूद जी की सम्पत्ति थी। निर्वाह के लिये उसने कमल प्रेस में नौकरी कर ली थी।

मई १९४८ में ईसाक मुहम्मद परमिट लेकर पाकिस्तान से जालंधर आया था। ईसाक अपना प्रेस सूद जी को सौंप गया था। उसे आशा थी कि सूद जी की सहायता से अपने प्रेस के दाम वसूल कर सकेगा।

ईसाक ने अपनी करुणाजनक स्थिति बतायी। पाकिस्तान में उसे सिंध में 'सक्खर' भेज दिया गया था। सिंध की बोली उस के लिए अबोध थी। शहर में यू० पी० और बिहार से भाग कर आये मुसलमान सक्खर शहर में भर गये थे। वे लोग पंजाबी मुसलमानों को दहकानी (असभ्य) समझते थे, पंजाबी और सिंधी बोली पर हंसते थे। उन का ख्याल था, जो उर्दू नहीं बोल सकता वह मुसलमान क्या ?

पाकिस्तान के शहरों से निकाल दिये गये हिन्दू-सिक्ख अक्सर सभी दुकानदार, व्यापारी या पेशेवर थे। भारत से पाकिस्तान पहुंचे मुसलमान नौकरी पेशा या कारीगर लोग थे। वे दूकान, तिजारत क्या समझते। ईसाक को रोजगार के लिये एक हिन्दू पंसारी की दूकान अलाट कर दी गयी थी।

इस नये रोजगार को वह कुछ समझता नहीं था। सूखा मेवा, बादाम, मुनक्का, किशमिश, छुहारा कुछ बाल-बच्चे खा गये; कुछ जिस भाव बिका, बेच दिया। हजारों का माल होगा पर उसके लिये तो कूड़ा ही था। वह क्या जानता। कौन घास 'बनफशा' थी, कौन 'नीलोफर' और 'गौजबां'! सफेद-मूसली और काली मूसली उस की बला जाने! आधी बोरी काली मिर्च उसने तीन रुपये सेर के भाव बेच दी थी। जालंधर आकर मालूम हुआ कि भाव ३५-४० रु० सेर का था। बेचारे ने सिर पीट लिया। दुकान पर कोई 'तुख्मलंगा' मांगने आ जाता, कोई 'बीदाना'। वह क्या पहचानता इन चीजों को। उस की मां कभी-कभी कुछ बता देती थी। पुराने लोगों को इन चीजों की पहचान होती थी। वह जिस बोरी में झांकता या डिब्बे को खोलता, छींकों से परेशान हो जाता था। डरता रहता, दवाई की जगह जहर ही न दे दे। गेहूं, चना, बाजरा होता तो भी एक बात थी। गाहक आता तो उसे कह देता—"भाई तुम पहचानते हो तो ढूंढ़ कर ले लो।"

ईसाक ने अपने पुराने हमसाये, माई हीरांगेट के घड़ीसाज हाजी इमामदीन का भी हाल सुनाया। इमामदीन भी सक्खर में ही था। उसे किसी हिन्दू की विलायती शराब की दुकान अलाट हो गयी थी। वह हाजी नमाजी आदमी था। शराब को छू नहीं सकता था। सरकारी अफसर जब चाहते, बोतल उठा ले जाते थे। पुराने रईस लोग भी पचास रुपये की बोतल उठा ले जाते और दस रुपये का नोट डाल जाते। गरीब की दुकान खाली हो गयी, हाथ कुछ लगा नहीं। वह घड़ी-साजी के औजार लाने के लिये लाहौर गया था लेकिन दाम नहीं दे पाया। लोग एक के पांच मांगते थे। गरीब बिना रमजान के ही रोजे रख रहा था।

पुरी ने ईसाक को आदर से टिकाया था। लस्सी, परांठे, गोश्त खिला कर खातिर की। ईसाक को संतोष भी हुआ कि उस की मशीनें ढंग से चल रही थीं। ईसाक को कानून के अनुसार पूरा अवसर था कि उस का जेवर, सोना-चांदी कहीं गड़ा रह गया हो तो वह निकाल कर ले जाये परन्तु हिन्दुस्तान छोड़कर जाने वालों को अपनी संपत्ति बेचकर जाने का अधिकार नहीं था। सूद जी गैरकानूनी काम की इजाजत देने के लिए तैयार नहीं थे।

रिखीराम ने ईसाक को अपना दुःख सुनाया। वह भी तो जेहलम में अपना प्रेस छोड़कर आया था। ईश्वर को जो मंजूर था। अप्रत्यक्ष तौर पर सूद जी ने पुरी को ईसाक के लिये दो हजार रुपये का प्रबन्ध कर देने के लिए कह दिया था। पुरी को कृपाराम से एक हजार उधार भी दिलवा दिया था।

ईमाक तो निराश लौट गया परन्तु रिखीराम के मन में कसक बैठ गयी थी। उसने अच्छरूराम महाजन के साथ मिलकर षड्यंत्र किया। प्रेस में उसे सभी कुछ कर सकने का अवसर था। वह प्रेस के छपे हुये चिट्ठी लिखने के कागजों पर 'फार कमल प्रेस—मैनेजर' की मोहर लगाकर ले गया। इन कागजों पर उस ने कुछ-कुछ समय के अंतर से पिछली तारीखों में, छः प्रतिशत सूद पर बारह हजार के प्रोनोट लिख कर अच्छरूराम को दे दिये और तीन हजार रुपया नकद ले लिया था।

नैयर ने अनुमान प्रकट किया—रिखीराम ने अच्छरूराम को समझा दिया होगा—मैं अदालत में कर्जा कबूल कर लूंगा। डिग्री हो जायगी। कमल प्रेस हम दोनों साझे में चला रहे है। पुरी बारह हजार कहाँ से देगा? मशीनें इस जमाने में पंद्रह हजार से कम की नही है। हम तुम मिल कर प्रेस चलायेंगे। सात-आठ सौ माहवार की आमदनी का रोजगार है। नीलाम में दाम बहुत ऊपर जायगा तो बीस हजार हो जायगा। तुम्हें सात-आठ हजार देना भी पड़ा तो पंद्रह हजार का माल हाथ लगेगा।

अच्छरूराम ने सोचा होगा—पुरी अगर आधे पर अपना हक साबित कर देगा तो भी अच्छरूराम कानूनन प्रेस में आधी पत्ती का साझीदार बन जायगा।

कनक पुरी और गिल हैरान थे। कनक ने अविश्वास प्रकट किया—"यह हो कैसे गया! अदालत ने ऐसा फैसला दे कैसे दिया?"

नैयर ने कहा—"क्यों, अदालत फैसला कैसे नही देगी। कानून के अनुसार कर्ज लेने की गवाही प्रोनोट मौजूद है। कर्ज लेने वाला कबूल कर रहा है। कर्ज वसूल करने में मदद करना कानून और सरकार का काम है।"

"लेकिन अदालत को यह तो निश्चय करना चाहिये था कि प्रेस किस का है?" पुरी ने शंका की।

"अदालत ने प्रेस मैनेजर रिखीराम के नाम से सम्मन भेजा। रिखीराम ने सम्मन कबूल किया। वह प्रेस की ओर से अदालत में पेश हुआ। उस ने प्रेस की ओर से जिम्मेवारी कबूल की। अदालत के सामने किसी ने इस विषय में आपत्ति नही की। प्रोनोट खुद प्रेस के कागज पर है। प्रोनोट पर प्रेस और प्रेस के मैनेजर की मोहर है। यह गवाही काफी है। अदालत और क्या निश्चय करे?" नैयर ने उत्तर दिया।

"अदालत ने क्या निश्चय कर लिया? अदालत है तो गलती पर" कनक ने कानून और अदालत के ढंग पर असंतोष प्रकट किया, "इन्हें सब जानते है। जज को इन्हें बुलाकर बात करनी चाहिये थी कि रिखीराम है कौन,

कबूल करता है ।" नैयर ने बात टोक कर समझाया ।

"तो फिर शब्द भी वैसे ही होने चाहिये थे ।"

पुरी ने पूछ लिया—"यह कोई प्रश्न नहीं कि रिखीराम को प्रोनोट लिखने का क्या अधिकार था ?"

"सब लोगों को प्रोनोट लिखने का पूरा हक है । कानून कर्ज लेने-देने और व्यापार करने का सब को समान रूप से अधिकार देता है । तुम यह कहो कि रिखीराम के लिये प्रोनोट की जिम्मेदारी प्रेस पर नहीं है ?"

"यही सही" कनक ने स्वीकार किया ।

"यह चिन्ता अच्छरूराम को होनी चाहिये थी पर अच्छरूराम रिखीराम के साथ मिला हुआ है । प्रोनोट प्रेस के कागज पर, प्रेस की मोहर से लिखा गया है । यह प्रमाण अदालत के लिये काफी है कि रिखीराम प्रेस का प्रतिनिधि है । अदालत का काम अच्छरूराम के कर्ज उगाह सकने के अधिकार की रक्षा करना और उसे सहायता देना है ।"

"पूंजीवादी सरकार सदा कर्ज उगाहने वाले की ही सहायता करती है । बेचारे कर्ज देने वाले की चिन्ता उसे नहीं होती, सब कुछ बनियों के ही पक्ष मे है ।" गिल ने कहा ।

"क्या बात करते हो कामरेड !" नैयर ने गिल को संबोधन किया, "पंजाब में जमींदारों का जोर था तो उन्होंने "अराजी मुंतकिल (खेती की भूमि के विनिमय) का कानून नही बनवा दिया था ? किसान जमींदार की जमीन को खत्री, बनिया कुर्की में भी नहीं खरीद सकता था । नीलाम में भी किसान के खेतों को केवल दूसरा खेती-पेशा आदमी ही ले सकता था ।"

"ठीक है, गिल ने स्वीकार किया—" कानून, कानून बना सकने वाले या कानून पर प्रभाव डाल सकने वाले वर्ग के ही पक्ष मे रहता है ।"

"तो तुम क्या किसी शाश्वत न्याय का स्वप्न देख रहे थे ?" नैयर ने विद्रूप से पूछ लिया ।

"खैर, यदि हम साबित कर दे कि प्रेस ने कर्ज लिया ही नहीं ।" पुरी ने पूछा ।

"कैसे साबित कर दोगे ? प्रोनोट सुबूत है कि कर्ज दिया गया है ।"

नैयर ने पुरी को चुप करा दिया और फिर कहा—"तुम्हें साबित करना है कि रिखीराम को प्रेस के नाम पर कर्ज लेने का अधिकार नहीं था ।"

"लेकिन कर्ज तो लिया ही नहीं गया । प्रेस को रुपये की जरूरत ही नहीं थी, हम क्यों लेते ? हम ने खर्च कहां किया ?"

"तुम फिर फिजूल बात कर रहे हो। कर्ज लिया गया या नहीं इस तथ्य से अदालत को मतलब नहीं है। गवाही मौजूद है कि कर्ज लिया गया है। जज की पहुंच तथ्यों तक नहीं है, उस की पहुंच केवल गवाही तक हो सकती है इसीलिये जज तथ्य को जानकर भी गवाही के विरुद्ध नहीं जा सकता।"

"पर यह तो मामूली अक्ल की बात है।" गिल के साथ ही कनक भी बोल पड़ी, "इसका मतलब है झूठी गवाही गढ़कर कानून की शक्ति से किसी को भी परेशान किया जा सकता है।"

"जरूर किया जा सकता है। कानून मामूली अक्ल नही है, स्पेशल नालेज (विशेष समझ) है। अदालत में साधारण समझ की बात हो तो वकीलों की क्या जरूरत ? खैर, तुम पहले रिखीराम के विरुद्ध पुलिस में रिपोर्ट करो कि उस ने तुम्हारे चिट्ठी लिखने के कागज और मोहर का चोरी से अनुचित प्रयोग किया है। उसी के आधार पर कुर्की का आर्डर स्थगित हो सकेगा। तुम्हें साबित करना होगा कि वह वास्तव में प्रेस का मैनेजर और प्रतिनिधि नही है।"

पुरी बहुत परेशानी में रहा। नैयर बिना फीस लिये उस की पैरवी कर रहा था वर्ना पांच-सात सौ फीसों में देना पड़ जाता परन्तु उसे पेशियाँ भुगतनी पड़ रही थी। अच्छरूराम ने रिखीराम की ओर से वकील खड़ा कर दिया था।

पुरी ने अदालत में ईसाक मुहम्मद का विश्वनाथ सूद जी के नाम लिखा पत्र पेश किया कि ईसाक प्रेस सूद जी को सौंप कर गया था। सूद जी को गवाही देनी पड़ी कि उन्होंने प्रेस का मैनेजर पुरी को नियुक्त किया था। बैंक की चैक-बुक पेश की गयी। रिखीराम ने प्रेस की रसीद की किताबों और हाजिरी के रजिस्टर पर मैनेजर के रूप में अपने दस्तखत दिखाये। मुकद्दमे की पेशियाँ बढ़ती जाने लगी।

पुरी, कनक और गिल कानून के दाँव-पेच से परेशान थे। वकील कानून के दाँव-पेचों से न्याय पा सकना कितना कठिन बना सकते है। वकील सभी विवादों में दोनों ही पक्षों के समर्थन मे कानून और युक्तियाँ पेश कर सकते है, दोनों ही पक्षों के समर्थन में कानून की व्याख्या कर सकते है। दो बहुत अमीर पक्षों में मुकद्दमा होने पर दोनों ही ओर से बहुत कानूनदाँ वकील खड़े होते है। अदालत वास्तविकता से अजान बन कर, दोनों पक्षों की गवाहियों और तर्कों के आधार पर निर्णय दे देती है। लोग तथ्य को जानते हुये भी उस निर्णय को स्वीकार करने के लिये विवश हो जाते है क्योंकि उस निर्णय के पीछे शासन की शक्ति रहती है।

मुकद्दमे का निर्णय दिसम्बर १९४९ में हुआ। कमल प्रेस रिखीराम के कर्ज के उत्तरदायित्व से छूट गया परन्तु पुरी के लिये अदालत का झगड़ा तब भी समाप्त न हुआ। रिखीराम पर चोरी से कमल प्रेस की मोहर और कागज के प्रयोग का फौजदारी मामला चल रहा था।

नैयर ने पुरी को परामर्श दिया, तुम इस मामले में मत पड़ो। पुलिस जो चाहे करे रिखीराम को दंड दिलाने के प्रयत्न में तुम्हें परेशानी होगी। पन्द्रह-बीस पेशियां भुगतनी पड़ जायेंगी, अपना समय नष्ट करोगे। जिरह में अपनी मिट्टी पलीत करवाओगे।

रिखीराम को सजा हो जाने से पुलिस को क्या लाभ होगा ? अलबत्ता पुलिस उसे बचने में सहायता देकर कुछ पा सकती है।

रिखीराम के विरुद्ध पर्याप्त गवाही न होने के कारण उसे सजा नहीं हुई। वह बरी हो गया। मुकद्दमे के परिणाम में पुरी का भी नुकसान नहीं रहा। मुकद्दमा समाप्त हो जाने पर सूद जी ने भविष्य में झगड़े की सम्भावना मिटा देने के लिये कमल प्रेस को पुरी के नाम अलाट करवा दिया।

६

भारत सरकार के सहायता और पुनर्वास विभाग के दफ्तर के लोगों की आशंकायें व्यर्थ ही रहीं। ३१ मार्च की संध्या कैम्प समाप्त कर दिये गये थे पर विभाग का दफ्तर वैसे ही चालू रहा। कैम्पों में मुफ्त राशन नहीं दिया जा रहा था परन्तु किंग्सवे कैम्प उजड़ नहीं गया। लोग जहाँ स्थान पाये हुये थे, वहां ही बने रहे। अधिकांश लोग कोई न कोई रोजगार कर ही रहे थे। अब शेष भी कुछ न कुछ जोड़-तोड़ कर अपना निर्वाह करने लगे। दिल्ली में ऐसे नये-नये रोजगार दिखायी देने लगे थे जो पहले कभी सुने नहीं गये थे। जहां कहीं दस आदमियों के आने-जाने की सम्भावना थी एक दुकान बन गयी थी। गलियों में छोटे-छोटे ठेलों कपड़े पर इस्त्री कर देने वाले घूमने लगे थे। लोगों को बिजली, टेलीफोन और पानी के बिल देने जाने की जरूरत नहीं रही। शरणार्थी द्वार पर आकर बिल ले जाते थे और रसीद पहुंचा देते थे। इस तवालत से बचने की फीस थी चार पैसे। बाजार में जो चीज खरीदिये,

कागज की थैली में मिलने लगी थी। दिल्ली में आ बसे पंजाबी 'शरणार्थी' पुकारे जाने पर आपत्ति करते थे। उन्हों ने अपने लिये 'पुरुपार्थी' नाम रख लिया था।

पुनर्वास विभाग के दफ्तर में काम घटने के बजाय बढ़ गया था। विभाग के मंत्री महोदय ने और आदमी भरती किये जाने की अनुमति नहीं दी थी। उन का विचार था, दफ्तर में दो आदमी कम होने से काम चल सकता है परन्तु एक आदमी अधिक हो जाने से गड़बड़ हो जायेगी। दफ्तर में छोटे कर्ज देने और क्लेम्स (शरणार्थियों की पश्चिम में छूट गयी जायदाद के दावों) का बहुत बड़ा काम आ गया था। तारा अब क्लेम्स की पड़ताल और उन पर रिपोर्ट का काम कर रही थी।

तारा क्रम से लगे हुए दावों को देखती जा रही थी। एक दावे पर मोहन-लाल टण्डन, पिता का नाम मोतीलाल टण्डन और पुराना पता लाहौर शीशा-मोती की गली देख कर ठिठक गयी। मन शीलो की याद से तड़प उठा। बचपन की बातें—शीलो की चंचलता, शरारतें, प्यार, झगड़े और रहस्य की सहेली। रतन से शीलो का गुप्त प्रेम और उस का परिणाम····सब कुछ याद आ गया। दावे पर वर्तमान पता था, दिल्ली, सब्जीमंडी, शक्तिनगर—मकान नम्बर १३१५। मोहनलाल भी सेंट्रल सेक्रेटेरियेट के शिक्षा विभाग में क्लर्क था। तारा चाहती तो पता लेकर उस से मिल सकती थी। सोचा, पहले-शीलो से ही मिलेगी।

दफ्तर में प्रतिदिन दस से पांच तक कुर्सी पर सधे रहने के लिये मजबूर बाबुओं के लिये, रविवार के दिन सब से बड़ा सुख, दोपहर में खाट पर कमर सीधी कर के दिवानिद्रा ले सकना होता है। जून के अंतिम सप्ताह की दोपहर में लू अपना प्रताप दिखा सकने का अंतिम अवसर समझ कर, धूप से पिघलती तारकोल की चौड़ी सड़कों पर उन्मत्त की तरह दौड़ रही थी। बाजारों और तंग गलियों में भी दूर तक चली जा रही थी। ऐसे समय बाजारों में गाहकों की आशा न होने से दुकानदार दुकानों पर टाट के पर्दे डाले सो रहे थे। टैक्सी, टांगा, रिक्शा वाले सब छांव ढूंढ़ कर अपनी गाड़ियों में ऊंघ-ऊंघ कर धूप ढलने और लू कम होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। केवल पंजाबी लहजा लिये बरफ, शरबत और आइसक्रीम बेचने वाले 'पुरुपार्थियों' की पुकारें सुनाई दे जाती थीं। उनके पुरुषार्थ को लू भी नहीं सुखा सकती थी।

दरियागंज की नयी, खुली बस्ती में लू का जोर और भी अधिक था। मर्सी ने अपने फ्लैट के बराम्दे और खिड़कियों पर मोटे टाट के पर्दे मई में

ही लटकवा लिये थे, फिर भी पंखे गरम हवा दे रहे थे। बूढ़ी नौकरानी चिम्मो रसोई का फर्श पानी से ठंडा करके सोई हुई थी। मर्सी ने डाक्टर अय्यर के किल्निक में स्थायी काम ले लिया था। केवल आठ से एक वजे तक काम पर जाती थी। वह भी गाढ़ निद्रा में थी। तारा लेटी हुई थी पर उसे नींद नहीं, शीलो की याद आ रही थी।

तारा ने जैसे-तैसे मन को दबा कर चार वजे तक अपने आप को रोका। रह नहीं सकी तो उठ कर साड़ी बदली और रसोई में जाकर चिम्मो को जगा कर, जीने के किवाड़ बन्द कर लेने के लिये कह दिया। चिम्मो ने इतनी धूप-लू में बाहर न जाने के लिये समझाया। तारा उस की बात अनसुनी कर घर से निकल गयी।

ड्राइवर ने शक्तिनगर में पहुंच कर तारा से पूछा, कहां उतरेंगी। नये बनते शक्तिनगर की सड़क पर एक ओर दोमंजिले मकान खड़े हो गये थे। दूसरी ओर मैदान में झुग्गीवालों की झोपड़ियां तब भी फैली हुई थीं। पश्चिम की ओर ढलते सूर्य की धूप से चकाचौंध नये बने मकानों पर नजर टिक नहीं पा रही थी।

तारा ने मकान का नम्बर और लाहौर वाले मोहनलाल टण्डन का नाम बताया। ड्राइवर मकानों के नम्बर देखता हुआ कुछ और आगे बढ़ा। उस ने मोहनलाल टण्डन लाहौर वाले का पता पूछने के लिये, धूप में लट्टू खेलते बच्चों को पुकार लिया।

टैक्सी से पुकार सुन कर तीन बच्चे दौड़ आये। बच्चों ने उत्साह से बताया, मोहनलाल वहीं पिछवाड़े एक कोठरी में रहता है। वे बच्चे तारा को राह दिखाते एक नये मकान के बराम्दे और आंगन से पिछवाड़े ले गये।

तारा की आंखों के सामने पंजाब का दृश्य आ गया। दोमंजिले मकानों के पीछे दूर तक छांव फैली हुई थी। कमरों और कोठरियों के सामने बहुत सी खाटें पड़ी थीं। कई चटाइयां विछी थीं। आस-पास दो-दो, तीन-तीन स्त्रियां बैठीं ऊंचे स्वर में बातचीत करती हुईं, हाथों में कोई न कोई काम लिये थीं। इधर-उधर बंधी रस्सियों पर धोये हुये कपड़े सूख रहे थे। स्त्रियों से कुछ हटकर दो जगह आमने-सामने खाटों पर बैठे मर्द बीच में रखी कली (हुक्का), बारी-बारी से पीते हुये बातचीत कर रहे थे। स्त्रियां शील के विचार से मर्दों की ओर पीठ किये थीं। मकानों के पीछे मोटरें रख सकने के लिये कई गैराज भी थे। गैराजों के चौपट खुले दरवाजों से उन में बिछी खाटें और गृहस्थी का सामान दिखाई दे रहा था।

कई स्त्रियों की आंखें कौतूहल से नवागन्तुका की ओर उठ गयीं। तारा को लाने वाले बच्चों ने घोषणा कर दी—"बाऊ मोहनलाल के यहाँ आयी हैं।" बच्चों ने तारा को एक एक कोठरी के सामने ले जाकर पुकारा, "घुल्लू दी मां ! ओ चाच्ची। घुल्लू दी मां ! तुम्हें मिलने के लिये आयी हैं।"

कोठरी के किवाड़ बन्द नहीं थे। तारा भीतर चली गयी। बड़ी सी खाट पर एक स्त्री चेहरे पर दुपट्टा ओढ़े लेटी हुई थी। स्त्री पुकार सुन कर उठ बैठी थी। स्त्री की पीठ पीछे, जाली के टुकड़े से ढका बच्चा सो रहा था।

तारा के सामने खाट पर शीलो बैठी थी। शीलो कितनी बदल गयी थी परन्तु निसन्देह शीलो ही थी। पीला रंग आंखों के नीचे कालिमा, रूखे-रूखे बाल।

शीलो नींद से लाल आँखें फैलाये, निश्चल खाट पर बैठी तारा की ओर अवाक देखती रह गयी।

"शीलो !" तारा ने पुकारा और लपक कर शीलो पर गिर सी पड़ी। उसे जोर से आलिंगन में बाँध लिया। उस के गाल पर अपना गाल रख दिया। आँखों से आँसू टपकने लगे।

शीलो ने तारा की बाहों से छूटने का यत्न कर, तारा का मुख सामने कर शंका प्रकट की—"तारा, तू तारा है ?" उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। सन्देह हुआ, स्वप्न तो नहीं देख रही थी।

तारा ने आँसू भरा मुंह शीलो के सीने में गड़ा दिया और फिर उस से लिपट गयी। शीलो ने स्वप्न-चालित की तरह फिर तारा का मुंह उठा कर देखा और तारा को पूरी शक्ति से बाहों में ले कर ऊंचे स्वर में रो पड़ी—"हाय मेरी भैण ! तू तो जल कर मर गयी थी। मर जायें तुझे मरा कहने वाले। मेरी भैण ! मेरी भैण...."

शीलो इतने ऊंचे स्वर से चीख कर रोयी कि समीप सोया बच्चा चौंक कर रो पड़ा। तारा ने शीलो के आलिंगन से छूट कर घुल्लू को गोद में लेकर सीने से चपका लिया—"हाय मैं सदके, तू क्यों रोता है ?" परन्तु शीलो तारा को छोड़ना नहीं चाहती थी।

शीलो का रोना सुन कर चार-पांच पड़ोसिनों ने आकर कौतूहल से भीतर झांक कर देखा। मिलन का रोना पहचान कर स्त्रियों ने गाल पर उंगली रख कर अनुमान प्रकट किया—"विछुड़ी हुयो बहनें मिली हैं। रब्बा, (भगवान) जो अभी तक नहीं मिल पाये उन्हें भी मिला दे।" स्त्रियाँ चली गयीं।

शीलो कई मिनट तक रो लेने के बाद सम्भल सकी। तारा का चेहरा हाथों में लेकर पूछा—"मरी तू कहाँ थी ? तुझे क्या हो गया था ? आग से बच गयी थी ?"

तारा ने अन्तिम प्रश्न का उत्तर संकेत से देकर उत्तर में पूछ लिया—"मोहन जी कहाँ हैं ?"

"तू क्या जालन्धर में थी ? कहाँ से आयी है?" शीलो ने तारा का प्रश्न अनसुना कर पूछा।

"यहाँ दिल्ली में ही हूं।"

"जीजा जी भी यहाँ ही हैं ?"

"नहीं मालूम" तारा ने सिर झुका कर हाथ से संकेत कर दिया।

तारा अपनी बीती का प्रसंग बचाने के लिये शीलो के ही विषय में पूछना चाहती थी—कैसे-कैसे घर से निकले ? कैसे यहाँ पहुंचे ?

"हमें कौन मौत आ रही थी, ऐसी किस्मत कहाँ ! जैसे दूसरे हजारों-लाखों रोते-कलपते जहाँ परमेश्वर ले गया, चले गये। हम यहाँ आ गये।" शीलो ने खिन्नता से अपनी बात समाप्त करके फिर तारा के विषय में उत्सुकता से पूछा।

तारा ने सिर झुका कर कह दिया—"यह सब मुझ से न पूछ''''कुछ नहीं जानती। वन्नी हाते में आग लग गयी, मर ही गयी थी या समझो भयंकर सुपने में खो गयी थी। होश आया तो कैम्प में थी। यहाँ आयी तो नयी दिल्ली में एक कोठी पर नौकरी मिल गयी थी। अब सरकारी नौकरी है।"

घुल्लू तारा की गोद से मां की गोद में चला गया था। तारा ने मन की व्यथा दबा सकने के लिये उसे खींच कर अपनी गोद में लिया और उस की नाक से अपनी नाक छुआ कर उस की आँखों में अपनी आँखें गड़ा बहुत लाड़ से पुकारा—"मेरे चांद, मेरे पास, अपनी माच्छी के पास नहीं आयेगा ?"

तारा ने घुल्लू का मन जीत लिया। शीलो बहुत देर तक घुटने पर ठोड़ी टेके चुप बैठी रही फिर तारा के बहुत से प्रश्नों के उत्तर में उस ने तोड़-तोड़ कर आँसू पोंछ-पोंछ कर संक्षेप में बताया :

"हम डी० ए० वी० कालेज के कैम्प मे चले गये थे। वहाँ कुछ मिलता ही नहीं था। छोटी कोठरी में दो परिवार। बेहद गरमी। घुल्लू बीमार हो गया था। आटा रुपये का सेर, दूध रुपये का सेर। 'ये' दूध लेते ही नहीं थे। तुझे तो सब मालूम है। 'वह' मुझ से बोलता ही नहीं था (शीलो रतन का नाम न लेकर 'वह' कहती थी) लेकिन तब ढूंढ़ता हुआ आया। तुम्हारी गली

के लोग 'देव समाज' के कैम्प में ठहरे हुये थे। इस की (घुल्लू) हालत देख कर पूछा--क्यों, क्या हुआ ?

"मैं रो पड़ी--दूध कहाँ से पिलाऊं। पेट में कुछ जाये या पास हो तो खरीद कर दूं ? पैसा कहाँ हैं ? पचास रुपये जबरदस्ती मेरे हाथ में दे गया। मैंने रुपये 'इनके' हाथ दे दिये कि जो हो इस के लिये दूध लाओ। लाहौर से फीरोजपुर गये तो भी 'वह' मुझे ढूंढ़ता कैम्प में आ गया। घुल्लू के पेट में मरोड़ उठते थे। मैंने 'इन से' कई बार कहा, डाक्टर को दिखाओ। न 'ये' सुनते थे, न ससुर न सास सुनती थीं। 'वह' आया तो मैं रो पड़ी। कहा, मेरे बच्चे को किसी तरह बचा दे। वह बड़े डाक्टर को बुला लाया। डाक्टर को अपने आप रुपये दे दिये। मेरी तो मुसीबत हो गयी। सास और 'ये' चिल्लाने लगे कि वह तेरा कौन है !"

सास कहने लगी--"यह तो उसी का है। नैन-नक्श सब उसी के हैं। चार महीने हम लोग कुरुक्षेत्र के कैम्प में रहे। 'वह' हफ्ते-पन्द्रह दिन में इसे देखने आ जाता था। मेरी मुसीबत आ जाती थी। मैं 'उसे' कैसे कह देती कि न आ। ससुर को तो शिमले में दफ्तर में नौकरी मिल गयी। 'इन्हें' यहाँ मिली। यहाँ आयी तो भी वह महीने में एक बार आ ही जाता है। यहाँ कहीं करोलबाग है, वहाँ ही रहता है।" शीलो घुटनों में मुंह दबा कर रोने लगी।

तारा ने अपने सिर की कसम दी--"बता न, क्या बात है ?"

मां को रोते देख घुल्लू भी रो पड़ा था। तारा बच्चे को सीने से लगा कर बहलाने लगी।

शीलो ने आंसू पोंछ कर खिड़की से पुकार लिया--"बल्ली (प्यारी) सुमन, जरा सुन तो !"

आठ-नौ बरस की लड़की दौड़ आयी। शीलो ने उसे प्यार से कहा--"सुमन, जरा घुल्लू को ले जा। यह ले एक आना। पतीसा (गुन्तान पापड़ी) लेकर तुम दोनों खा लेना।"

सुमन घुल्लू को पुचकार कर उठा ले गयी।

शीलो फूट-फूट कर रोई और फिर बोली--"पिछले महीने ननद सास के साथ यहां आयी थी। तब एक दिन दोनों बाजार गयी थीं तो 'वह' आ गया था। बच्चे के लिये दूध के दो डिब्बे, संतरे-अनार, कपड़े के चार टुकड़े छोड़ गया था। उस से पहले 'वह' कुछ दे जाता था तो 'ये' कुछ नहीं कहता था इसलिये मैंने चीजे रख ली थीं। ननद ने बहुत शोर मचाया--कहने लगी--वह घुल्लू की फिक्र क्यों करता है ? लड़के का मुंह-मत्था सब उसी पर है।

तब से इस के मन में बात बैठ गयी है। रोज कहता रहता है, तेरी उस से पुरानी आशनाई है, सच बता लड़का किस का है ? मैंने कह दिया—शक है तो मुझे कत्ल कर दे। कभी कहता है, तू सती है तो आग हाथ पर रख कर दिखा। कभी कहता है, मेरे सिर पर हाथ रख कर कसम खा कि सती न होऊं तो रंडी हो जाऊं। तू बता मैं क्या करूं ? सुबह से गुस्से मे चला गया है। अभी तक नही लौटा।"

दोनों बहनें कुछ देर चुप बैठी रही। कुछ देर बाद शीलो बोली—"अपने पाप सामने आ रहे है। दिल करता है, बच्चे को गोद मे लेकर जल मरूं, पाप खतम हो। अब नही सहा जाता।" शीलो फिर रोने लगी।

"बक मत।" तारा ने शीलो के होठो पर हाथ रख कर डांटा, "इतना परेशान करता है तो मैं तुझे ले जाऊंगी। हम दोनों अलग कोठरी लेकर रह जायंगी।" तारा ने उसे अपनी स्थिति समझा दी।

शीलो ने आसू बहाते हुए कहा—"क्या करूं ? जी तो यही चाहता है मैं और लड़का दोनों मर जाये पर उस का (रतन का) खयाल आ जाता है। सुनेगा तो जाने क्या कर डालेगा।"

"उसी के यहा क्यो नही चली जाती।"

"तू भी क्या पागल है ? कैसे चली जाऊ ?' शीलो ने बहुत दुख मे अपने माथे पर हाथ मारा, "मैं क्या कर बैठी ? फेरे तो इसी मरे के साथ लिये है। अपना मुंह काला करूं, मा-बाप का मुंह काला करूं ? कभी नही कहा था, आज कहती हू। मुझे 'इसके' साथ रहना तो कभी भी अच्छा नही लगा पर 'इसके' साथ ब्याही गयी थी तो धर्म समझकर, मन मार कर सह जाती थी। ये जब से ऐसी बाते करने लगा है, मुझे छूता है तो बदन मे आग लग जाती है। मरा रह भी नही सकता। लड़ता है, झगड़ता है, गालिया देकर रुलाता है पर तग करने से बाज नही आता। इनकार करती हूं, तो गालिया देने लगता है। मैं कहा जाऊं ?" शीलो फिर रोने लगी।

"मैं तो कहती हूं, तू इस पाप को खतम कर।' तारा ने गहरे श्वास से कहा।

"यह तो मेरी मौत से ही खतम होगा।"

तारा ने समझाया—"देख, तू कुछ ऊटपटाग न कर बैठना।"

तारा ने शीलो को अपना पता और मर्सी का फोन नम्बर लिख कर दे दिया। अपने दफ्तर का भी फोन नम्बर लिख दिया। करोलबाग मे रतन का पता पूछ लिया। जरूरत के लिए कुछ रुपये रख लेने के लिए भी कहा पर

शीलो ने नहीं लिये—मेरे पास देखेगा तो समझगा 'वह' दे गया है। मेरी मुसीबत हो जायगी।"

तारा ने आश्वासन दिया—"अच्छा, एतवार को फिर आऊंगी। अब चलूं। घुल्लू को तो बुला ले, प्यार कर लूं।"

"हाय, तू मेरे घर से ऐसे ही बिना कुछ खाये-पिये चली जायगी ?"

तारा ने कुछ सोच कर स्वीकार किया—"अच्छा मंगा ले, क्या मंगायेगी ?"

"वाह, मुझे याद नहीं क्या ?" शीलो के चेहरे पर मुस्कान आ गयी, "तुझे मुंगरा और रामदित्ते के छोले-कुलचे (चने और रुई जैसी बहुत नरमख मीरी रोटी) अच्छे लगते थे। याद है, हम दोनों दौड़ी-दौड़ी 'मच्छीहट्टा' जाकर ले आती थीं। किसी बच्चे को कहती हूं, ले आयगा। यहां लाहौर की सब चीजें मिल जाती है ?"

शीलो एक मिनट के लिये बाहर गयी तो तारा ने कोठरी में आंख घुमाकर देख लिया। पूरा घर एक ही कोठरी में था। बड़ी खाट के पावों के नीचे ईंटे रखकर उसे ऊंची कर लिया गया था। उस के नीचे एक और खाट धकेली हुई थी। छोटी खाट के नीचे दो बक्से पड़े थे। अलगनी और खूंटियों से कपड़े लटके हुए थे। एक कोने में कनस्तरों में आटा-दाल और उस पर मुरझाई हुई सब्जी पड़ी थी। खाट के सिरहाने कोने में मंजे हुए बर्तन रखे थे। दिवार से एक शेल्फ लटका हुआ था। शेल्फ में दूध के पाउडर के दो डिब्बे और छोटे-छोटे डिब्बों में मसाले और दूसरी आवश्यक चीजें रखी हुई थीं। बायें कोने में पुरानी बाल्टी में मिट्टी लगा कर बनायी हुई अंगीठी भी रखी हुई थी जो सुबह से प्रयोग में न आने के कारण ठंडी पड़ी थी।

पड़ोस का एक छोटा लड़का पत्तों के दोनों और अखबार के कागजों में खाने का सामान और बर्फ का एक टुकड़ा ले आया। शीलो ने लोटे में बरफ का पानी बनाया। कोने से एक थाली लेकर दोनों और कागज में लाया सामान रख दिया। चारपाई पर बैठी तारा के सामने थाली रख दी। स्वयं समीप बैठ स्नेह से बोली—"ले खा न, छोले खूब गरम है।"

"तू भी खा। तू सुबह से भूखी है इसीलिये तो मैंने हामी भर ली। मुझे तो भूख नहीं है।"

"मै कैसे खा लूं। क्या मालूम 'उसने' खाया है कि नहीं।"

"मारूंगी एक चांटा। गधी कहीं की।" तारा को सचमुच क्रोध आ गया था, "आग लगे तेरे संस्कारों को! जिस से इतना संताप पाती है, जिस से ग्लानि होती है उसी के लिये जान देती है? तुझे उस से क्या लेना है?"

"रति तो है ही। यही है मेरी किस्मत।" शीलो ने गर्दन झुका कर गहरी सांस खींच ली।

"तू नही खायेगी तो मैं भी नहीं खाऊँगी।"

"तू जानती है, मैं कैसे खा सकती हूं।" शीलो की आंखें डबडबा गयी।

तारा शीलो पर क्रोध मे बड़बड़ाती हुई, बिना खाये उठकर चली गयी।

तारा सोमवार संध्या दफ्तर से लौटी तो नरोत्तम का पत्र मिला। पिछले दिन से उस का मन बहुत भारी हो रहा था। नरोत्तम के पत्र से जरा स्फूर्ति मिली। तीन मास से नरोत्तम कलकत्ता मे था। कानपुर में 'वर्क्स-मैनेजर' की ड्यूटी से उस का तबादला कलकत्ता मे 'असिस्टेंट डिप्टी डाइरेक्टर' की ड्यूटी पर हो गया था। वह नियमित रूप से प्रति सप्ताह तारा को पत्र लिखता था। उस के पत्र पृष्ठ डेढ़ पृष्ठ के होते थे। उस के नये अनुभवों की चर्चा और कभी कोई हंसी-मजाक की बात भी रहती थी। तारा संक्षिप्त सा उत्तर देती थी—"···बातें न बनाया करो, मेरी याद क्यों आती होगी···? नीलम बेचारी तुम्हारी प्रतीक्षा में है। वहाँ किसी बंग बाला से तो मन नहीं लगा लिया है? ऐसी करतूत की तो याद रखना। अस्तु, मुझे तुम पर विश्वास है, तुम बड़े भले हो। तुम सचमुच बहुत ही अच्छे लड़के हो।

"कलकत्ता में तुम्हारे बीसियों परिचित बन गये होगे तिस पर क्लब, थियेटर, सिनेमा। अपने तो दो ही परिचित है एक मर्सी दूसरे तुम। तुम चले गये। आओगे तो जवाब-तलब करूंगी। झूठ-मूठ लिख देते हो, याद आती है।

"अस्तु, ड्यूटी के कारण तुम्हारा वहाँ रहना आवश्यक है तो मुझे क्या शिकायत। इतनी दूर से क्या कहू। जब आओगे तो आमने-सामने बातें होंगी। दफ्तर में तो मन काम में रमा रहता है परन्तु रविवार तुम्हारे बिना बहुत सूना हो जाता है, यों तो सभी कुछ सूना है।"

नरोत्तम ने इस पत्र में लिखा था····—"मुझे विश्वास है कि मेरे जीवन पर तुम्हारा बहुत प्रभाव है। मेरी बदली, नयी दिल्ली डिफेंस मिनिस्ट्री के साथ 'लियासों' की ड्यूटी पर हो गयी है। देखो, तुम ने चाहा और मेरी बदली हो गयी। तुम ने इस से पहले क्यो नही चाहा था?

"शुक्र को दिल्ली पहुंचूंगा। अब देखूंगा, तुम आमने-सामने कितनी बातें करती हो या सदा की तरह केवल मेरी बातों पर मुस्कराकर रह जाओगी। जिस बात की मुझे प्रतीक्षा है, वह बात भी तुम कहती हो या नहीं। तुम नहीं कहोगी तो मुझे तो कहनी ही पड़ेगी। मालूम नही ठीक से कह पाऊंगा या

नहीं। लोहे-लक्कड़ से माथा फोड़ने वाला इन्सान हूं। तुम्हारी तरह शब्दों की सूक्ष्मता का खिलाड़ी नहीं हूं।

मुझे जान पड़ता है मैं मेल में बैठ गया हूं और तुम्हारी ओर उड़ा जा जा रहा हूं ''''''।

नरोत्तम शुक्र की संध्या ही तारा के यहाँ आया। मर्सी भी मौजूद थी। दोनों ने ही उस का उमंग से स्वागत किया। वह दो घंटे बैठा रहा परन्तु बहुत कम बोला, प्रायः मुस्कराता रहा। तारा भी अधिक नहीं बोली। शीलो की चिन्ता से मन भारी था। नरोत्तम चलने लगा तो तारा ने कहा—"तुम तो बहुत बातें करने को कहते थे। कुछ भी तो नहीं बोले। पाँच मास बाद आये हो। अब तो तुम्हें नित्य आना चाहिये।"

नरोत्तम दूसरे दिन संध्या छः बजे आया। मर्सी भी साथ रही। नरोत्तम उस संध्या भी अधिक नहीं बोला। लगता था जैसे बहुत दिन, बहुत दूर गंभीर काम में लगा रहने से गंभीर हो गया हो।

मर्सी ने टोक दिया—'क्या बात है, तुम दोनों ही चुप हो। तारा तो नाराज है। तुम उसे छोड़ कर कलकत्ता चले गये थे। उसे मनाना होगा।"

चलते समय नरोत्तम ने कहा—"कल रविवार है। आप दोनों को फुर्सत हो तो मैं नौ-दस बजे आ जाऊँ?"

तारा के मन में शक्तिनगर जाने का विचार था परन्तु उस ने अनुमति दे दी। और कहा—"लंच यहाँ ही खाना।" अनुमति देकर मन ही मन सोचा शक्तिनगर दोपहर बाद चली जायगी।

तारा ने एक बार नरोत्तम के लिए आलू भरे परौठे बनाये थे। नरोत्तम ने बहुत सराहा था। तारा ने चिम्मो को आलू के परौठों का सामान तैयार करने के लिए कह दिया था। मर्सी को रविवार के दिन भी दिल्ली में बाहर से आये केस के कारण क्लिनिक जाना था। कह गयी थी मैं भी आ जाऊँगी। जरा प्रतीक्षा कर लेना।

नरोत्तम सवा दस बजे ही आ गया। तारा रसोई में स्वयं भिंडियों में मसाला भर रही थी। धोती पर इधर-उधर हल्दी के हाथ लग कर दाग पड़ गये थे। तारा ने सोचा, नरोत्तम के लिये कपड़े क्या बदले।

तारा ने नरोत्तम को लंच देर में देने के विचार से कुछ आम मंगवा कर बरफ और पानी में डाल दिये थे। नरोत्तम को बैठा कर उसने एक प्लेट में लखनऊ का दसहरी आम काट दिया और कहा—"तुम चखो। चिम्मो सब्जी

न जला दे, मैं अभी एक मिनट में आती हूं।"

तारा लौटी तो नरोत्तम ने आम को हाथ नहीं लगाया था। तारा के अनुरोध पर उसने एक फांक खाकर हाथ रूमाल से पोंछ लिया और चुप रहा।

"क्यों, इतने चुप क्यों हो? नीलम की याद आ रही है। वहां गये थे?" तारा ने मुस्कराकर कहा। नरोत्तम गंभीर बन रहा तो झेंप की लाली तारा के चेहरे पर आ गयी।

"तुम मुझे इतना निकम्मा समझती हो।" नरोत्तम ने पूछा।

"राय बदलने का तो कोई कारण नहीं हुआ" कह कर तारा ने होंठ दबा लिये और फिर विस्मय से भौं उठा कर पूछा, "बहुत बड़े अफसर हो गये हो तो खुशामद सुनने का भी चाव हो गया है। अपने मुख पर ही प्रशंसा सुनना चाहते हो?"

"नहीं, प्रशंसा नहीं सुनना चाहता। प्रशंसा के लायक हूं भी नहीं। शायद मुझे लोग असह्य ही समझते हों। अपने दोष तो कोई नहीं जानता।"

"तो फिर क्या चाहते हो?" तारा ने नरोत्तम से आंखें चुरा कर पूछा। उस की गंभीरता पर तारा को हंसी आ रही थी और हंसी को दबा लेने के प्रयत्न से चेहरा लाल हो गया था।

"जो मैं चाहता हूं वह करोगी?"

"यत्न तो करूंगी।" तारा ने गम्भीर बनना चाहा।

"तुम मुझे काफी समय से पर्याप्त रूप में जानती हो?"

"हां, ख्याल तो ऐसा ही है।" तारा गम्भीर हो गयी।

"मेरा अनुरोध है कि तुम ने मुझ में जो दोष देखे हों बता दो।" नरोत्तम का स्वर भारी हो गया।

तारा ने गर्दन झुका कर सोचा, इसे आज क्या हो रहा है?

"बोलती क्यों नहीं?"

"एक दोष तो है" तारा ने गम्भीर बन आंखें फर्श पर गड़ाये कह दिया।

"क्या?"

"परेशान करने के लिए ऊटपटांग सवाल करते हो।"

"परेशान करने का इरादा तो नहीं था। ऐसा क्या सवाल किया मैंने?"

'पागल हो, तुम्हारे दोष दीखते तो तुम्हें बार-बार यहां आने को कहती।" तारा ने नरोत्तम के प्रश्न के प्रति मान प्रकट करने के लिए फिर भी उस की ओर नहीं देखा।

नरोत्तम चुप रह गया।

तारा ने उठते हुए कहा--"एक मिनट में आती हूं। जरा देख लूं चिम्मो क्या कर रही है। उसे कुछ तमीज नहीं है।"

तारा की सूक्ष्म अनुभूति ने शंका अनुभव की, लड़के के दिमाग में कुछ खलल तो नहीं आ गया ? उसने व्यर्थ गम्भीरता को समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया। रसोई से लौटते ही बोली-"क्यों, क्या बात है ? क्या नीलम ने कोई दोष बता दिया ?" इतने तीखे मजाक से वह स्वयं गुलाबी हो गयी।

नरोत्तम भी लाल हो गया। कुर्सी पर आगे झुक आया। गला खरखरा कर अंग्रेजी में बोला—"नीलम की बात समस्या बन गयी है। रावत ने पिता जी से सगाई-वगाई कर लेने की बात की है। इस विषय में वास्तविक स्थिति तुम जानती हो।"

तारा ने आंखें झुकाये ही पूछ लिया-"क्या ?"

"तुम खूब जानती हो मैं नीलम से विवाह नहीं करूंगा परन्तु लड़की के पिता से यह कह देना कि उसकी बेटी पसंद नहीं है, बहुत बड़ी क्रूरता है।"

तारा ने नरोत्तम की कठिनाई के प्रति सनवेदना अनुभव की। सिर झुकाये सहानुभूति के स्वर में बोली-"सच तो किसी न किसी प्रकार कहना ही पड़ेगा।"

"ऐसी क्रूरता किये बिना, दूसरा सच कह देने से भी उपाय हो सकता है।" नरोत्तम का स्वर और भी भारी हो गया।

"क्या ?" तारा ने भी नरोत्तम के विश्वास का उत्तरदायित्व अनुभव कर रहस्य के स्वर में पूछा।

"वह सब सच कहने के लिये तुम्हारी अनुमति की आवश्यकता है।"

'मैं क्या तुम्हारा अनिष्ट चाहती हूं ? सच को भी छिपाऊँ और तुम्हारा अनिष्ट भी करूं ? मैं अनुमति क्यों नहीं दूंगी ?"

'मैं सच कह देना चाहता हूँ कि नीलम के लिये मेरे मन में आदर है परन्तु मैं पहले ही दूसरा निश्चय कर चुका हूं......तुम से वचन-बद्ध हो चुका हूं।" नरोत्तम साहस करके कह गया।

तारा को बिजली की तार छू जाने का झटका लगा। उस ने एक गहरी सांस ली और उठकर रसोई की ओर चली गई।

तारा रसोई में न जाकर छज्जे से अपने कमरे में गयी और खाट पर लेट गयी। लगभग बीस मिनट निढाल लेटी रही। मस्तिष्क में न जाने क्या-क्या घूम गया। इस लड़के को क्या हो गया ? फिर ख्याल आया, वह अकेला बैठा है। तारा ने उठ कर मुख धोया, सिर पर भी कुछ जल डाला, एक गिलास जल पिया। धोती बदली। कंघी से केश ठीक किये। कुछ मिनट

फिर खाट पर बैठ कर सोचा और सीधी बैठक में आकर नरोत्तम के बहुत समीप कुर्सी पर बैठकर अंग्रेजी मे बोली :

"नोत्तन क्या तुम्हारा दिमाग फिर गया है ? ऐसी बात तुम ने कह कैसे दी ? मेरा-तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? याद नही, तुम ने मुझे अपनी और डौली की बड़ी बहिन कहा था।

"मुझे खेद है" नरोत्तम सकपका गया। कुछ क्षण मौन रह कर बोला, "तुम्हें इस बात से दुख या अपमान अनुभव हुआ है तो मैं अपनी बात एकदम और सदा के लिये वापस लेता हूं।"

"नोत्तन, अपमान की बात नही है। तुम ने ऐसा आदर करना चाहा जो उचित, स्वाभाविक और संगत नही है। यह तुम्हारा लड़कपन है। मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूं। मेरे लिये तुम हो, मर्सी है, एक और अभागिन है। मेरे लिये दुनिया में और कोई नही है इसलिये चाहती हूं, तुम्हें प्यार करती रहूं। तुम्हें कम से कम अपनी और मेरी आयु का तो ख्याल करना चाहिये। तुम अभी लड़के हो। मैंने पुरुषों को जिस रूप में देखा है, पुरुषों के विचार से ही मुझे जन्म भर के लिये भय और घृणा हो चुकी है। तुम्हें इसलिये प्यार कर सकी कि तुम्हें पुरुष नही लड़का-भाई समझा है। अब भी तुम्हें प्यार करना चाहती हूं। तुम सचमुच बहुत भले लड़के हो। अपने इस पागलपन को भूल जाओ। मैं इस बात को बिलकुल भूल जाऊंगी।"

नरोत्तम की गर्दन झुक गयी—"मुझे खेद है, मुझे क्षमा कर दो।....इस समय जाना चाहता हूं।"

"बस उस बात को जाने दो। न खेद की जरूरत है, न क्षमा की पर तुम्हें ठहरना चाहिये। दीदी तुम्हारे साथ लंच खाने के लिये जल्दी आने को कह गयी है। अगर बात भूल सकते हो तो फिर बैठ क्यों नहीं सकते ?"

"तारा दीदी, सब भूल जाऊंगा। तुम से कभी दूर नही जाऊंगा परन्तु इस समय मैं संयत नही हूं। मर्सी के सामने ऐसी अवस्था मे ठहरना ठीक न होगा। मैं फिर आऊंगा।"

"अच्छा तो जाओ।" तारा ने अनुमति दे दी।

मर्सी लौटी तो उस ने बैठक मे टेबल पर प्लेट मे कटे हुये आमों पर मक्खियाँ भिनभिनाती देखी। मर्सी चिम्मो पर चीख पड़ी और प्लेट उठा कर पटक दी।

"हमे कालरा से मारेगी ? जरा शर्म नही है मरी को। इसे मौत का

एंजल कब्र में घसीट रहा है। हमें भी साथ ही ले जाना चाहती है।"

तारा अपनी चारपाई पर लेट गयी थी। मर्सी की चीख के बाद सुना, चिम्मो उस पर दोष दे रही थी, "छोटी बीबी ने आम काटा, हमें क्या मालूम ?"

"क्या दोनों ने खा लिया ?"

"किसी ने नहीं खाया। साब चला गया।"

तारा के पलंग से उठते-उठते मर्सी उस के कमरे में पहुंच गयी—"नरोत्तम चला क्यों गया ? मैंने बहुत हरी किया।" प्लेट तोड़ कर मर्सी के गुस्से का उफान बैठ चुका था।

"नोत्तन कह रहा था कि उसे एक बजे कोई बहुत ही अनिवार्य काम था।"

"तुम बहुत हंगरी हो तो खा लें नहीं तो बाथ ले लूं। पसीना-पसीना हो रही हूं।"

दोनों मेज पर खाने बैठीं तो मर्सी ने तारा को घूर कर पूछ लिया—"क्यों, ह्वाट इज़ रांग ? तेरी तबियत ···?" उस ने तारा की कलाई पकड़ ली, "हाओ डू यू फील ! क्यों, अकेला समय पाकर आपस में लड़ लिये ?"

"नहीं तो ! तुम्हारा भी दिमाग कहाँ रहता है। बाहर से आ रही हो, लू का असर तो नहीं हो गया है ?"

तारा इच्छा न होने पर भी खा रही थी। तारा का खा न सकना मर्सी से छिप नहीं पा रहा था। नित्य ही साथ-साथ खाती थीं।

"मेरी छुटको, दाई से पेट छिपाती हो।" मर्सी आलू के परौंठे में मसाला भरी साबुत भिंडी के साथ हरी मिरच लपेटती हुयी हंस दी, "बच्ची, मैं तो पेट और दिल दोनों की दाई हूं। तेरा चेहरा साफ कह रहा है।"

"अपना ही दिल और पेट टटोलो।" तारा प्लेट पर ध्यान लगाये ग्रास तोड़ने लगी।

"मैं तो परसों से आबजर्व कर (देख) रही हूं। दोनों भरे-भरे थे। एक दूसरे से बोल नहीं पा रहे थे।"

मर्सी ने गोल लपेटे परौंठे से दूसरा ग्रास काट कर आँखों में शरारत भरी मुस्कान से कहा—"मैं सब बता दूं ? उस ने प्रोपोज किया होगा। छुटको नखरे से बनी होंगी, बड़ी शरम दिखायी होगी। अब मन में लड्डू फूट रहे हैं।"

"दीदी कुछ अक्ल करो" तारा झुंझलाई, "मेरी उम्र देखो, उस की उम्र देखो। मेरे छोटे भाई की तरह है।"

"हाय री दादी !" मर्सी ने विस्मय में आंखे चढ़ा लीं, 'क्या उम्र है ? बीस की है तू।"

"बारह की क्यों नहीं कह देती ? अब बाइसवाँ लग जायगा।"

"वह क्या अठारह का है ?"

"चौबीस बताता है। बिलकुल लड़कपन है। लड़कों जैसी बातें करता है। खैर, मुझे शादी का ख्याल ही नहीं है।"

"अच्छा उस ने प्रोपोज किया है तो तेरा तो फायदा ही है। तेरे लिये ज्यादा देर तक जवान रहेगा। न मानी तो बाद में पछतायेगी। यही तो उम्र है शादी की बाद में हमारी तरह……!"

"क्या बकती हो दीदी !" तारा फिर झुंझलाई, "तुम्हीं कर लो।"

"मैं क्या पांच-छः करूंगी। मेरा ओल्ड बॉय (जवान) जल्दी लौट आये। खैर, तारू कहे देती हूं, पछतायेगी। हमारे यहां कहावत है—चढ़ती जवानी में मर्द लड़की से शादी की बात करता है तो लड़की भौं उठा कर पूछती है, तू क्या है ? लड़की जवान हो जाती है तो बात करने वाले से पूछती है—तुम कौन हो ? उम्र ढलने लगे तो खुद ही चीखती फिरती है—कहां है कोई ? कहां है कोई ?"

"दीदी प्लीज, और कोई बात नहीं है दुनिया में ?"

"तू कभी शादी नही करेगी ?"

"नहीं करूंगी।"

"तू इतनी बड़ी सांडनी ऐसे ही हो गयी। कभी प्यार नहीं किया तूने ? या करेगी नहीं। तेरे मन और शरीर नहीं है ?"

"कब कहा नहीं है। प्यार एक बात है। प्यार तुम से नहीं करती ?"

"मुझ से प्यार करके क्या लेगी ? सिस्टर कुन्त तुम्हारी पंजाबी में कहती है—सुथरा सुथरे के साथ सोये तो कौन किस से क्या पाये।"

"प्लीज स्टाप ! सेक्स के अलावा दुनिया में और कुछ नहीं है ?"

"तेरे लिये सेक्स नहीं है ? क्या तू एबनार्मल (असाधारण) है।"

"यही समझ लो। मेरे लिये यह सब नहीं है।"

"तो तुझे डाक्टर के पास ले जाकर दिखाना जरूरी है।"

"दीदी, मैं खाना छोड़ कर उठ जाऊंगी।"

"हूं।"

मर्सी ने परौंठा समाप्त करके दो घूंट पानी पिया और आमों की ओर हाथ बढ़ाती हुई अंग्रेजी में बोली—"सुन तारू, तू अपने आप को मार रही है। अपने आपको धोखा देना चाहती है। तीन-चार बरस का फरक बहुत काफी होता है। तेरे दिल में उस के लिये आकर्षण है। जिस दिन से उस का पत्र आया, तू चुप थी। यह केवल झिझक है।"

"नहीं दीदी, सचमुच यह सब कुछ नहीं है" तुमने गलत समझ लिया, तारा ने गम्भीरता से उत्तर दिया, "तुम्हें अभी बताया नहीं। मेरी एक बहिन है। उस का पति उसे व्यर्थ संदेह में बहुत यातना दे रहा है। गोद में सवा दो बरस का लड़का है। मैं उसी के लिये बहुत परेशान हूं। सोचती हूं, अगर उस ने बेचारी को निकाल दिया तो ? वह तो ऐसी पढ़ी-लिखी, अपने पांव खड़ी होने लायक भी नहीं है।" तारा ने आंचल आंखों पर रख लिया। शीलो आंखों के सामने आ गई थी।

मर्सी चुपचाप आम खाती रही। उठते हुये बोली—"दो चार दिन के लिये उसे यहां रखना चाहो तो एक बात है परन्तु मैंने पहले ही कह दिया था कि यहाँ एक से अधिक को रखना मेरे बस का नहीं है और बच्चे तो तुम जानती हो......।"

तारा लेट गई तो चार बजे के लगभग आंख लग गयी। उठी तो साढ़े पांच बज रहे थे। शक्तिनगर जाना चाहती थी पर शरीर ने साथ न दिया। सोचा, फिर सही।

तारा के मन में शीलो की चिन्ता ही मुख्य थी। नरोत्तम की बात वह भुला देना चाहती थी। उस लड़के से कोई आशंका नहीं थी पर मरी शीलो का क्या होगा ? मोहनलाल ऐसे पीछे पड़ा है तो कह क्यों नहीं देती कि बेटा उसी का है, कसम क्यों नहीं खा लेती। अब भी उसे पति मानती है तो उस की शांति के लिये कसम क्यों नहीं खा लेती। कमबख्त को जाने क्या विश्वास है कि पति के सिर की कसम खा लेगी तो सचमुच उस का सिर गिर पड़ेगा ! कहती है, उस का छूना बुरा लगता है पर उसे खिलाये बिना स्वयं खा नहीं सकती ''हिन्दू औरत के बराबर जाहिल गुलाम और कौन होगा''''अगर मोहनलाल ने किसी दिन मरी को सचमुच ही घर से निकाल दिया तो ? मैं कोई दूसरा कमरा या मकान क्यों न ले लूं। साठ या अस्सी में तो मिल ही जायगा। हम दोनों गुजारा कर लेंगी। मेरी किस्मत में सदा दुखियों का ही साथ है। पहले बंती मिली थी। मर्द जब चाहे औरत को ठोकर दे दे।

तारा के मन में आया, क्यों न रतन से मिलकर बात करे। बचपन—नौ-दस बरस पहले की स्मृति मस्तिष्क में फिर गयी। रतन उस से छेड़खानी किया करता था। रतन की शरारत अच्छी नहीं लगती थी पर रतन तो अच्छा लगता था।...... जब उस ने छत पर शीलो और रतन को देखा था तो उसे कितनी घृणा हुई थी। रतन पर क्रोध आया था—शीलो से ईर्ष्या भी हुई

थी। बचपन में रतन से लड़ती थी पर रतन अच्छा भी लगता था। फिर असद! अब यह नरोत्तम!.......प्यार तो सदा ही करती रही परन्तु अच्छा ही हुआ, शीलो की तरह फंस नहीं गयी। प्यार सचमुच बड़ी मुसीबत है। रतन से कहूं तेरी जिम्मेवारी है पर रतन तो स्वयं इसे ले जाने के लिये तैयार था। इस नये समय में तो कोई आपत्ति करने वाला भी नहीं। वह जरूर मान जायेगा। बचपन की बातें दूसरी थीं। वह आदमी भला है। शीलो से पूछ कर ही रतन से बात करना ठीक होगा। हो सकता है, मोहनलाल कुछ दिन चिड़चिड़ा कर चुप हो जाये पर वह मरी तो कहती है कि उस का अपना दिल मोहनलाल के साथ रहने को नहीं करता। मरी है बड़ी जाहिल और जिद्दी, कहीं कुछ कर ही न बैठे।

मर्सी के यहां खूब अच्छा रेडियो था परन्तु रेडियो लगाने का अवसर नहीं आता था। गली में ठीक सामने पंजाबी पुरुपार्थी आ बसे थे। उन का रेडियो कभी बन्द नहीं होता था। रेडियो का स्वर भी काफी ऊंचा रखते थे, शायद घर के लोग बहुत ऊंचा सुनते थे या उन्हें अपने रेडियो से गली भर का मन बहलाने का ख्याल था। तारा सोमवार दफ्तर जाने से पहले साढ़े आठ बजे खाना खा रही थी तब भी रेडियो पर ऊंचे स्वर में पक्का गाना चल रहा था—

"ऐ री आली, पिया बिन,
मोहे कल न परत सखी घरी पल छिन दिन।
ऐ री आली, पिया बिन!
जब से पिया परदेस गवन कीनो,
रतियां कटत मोसों तारे गिन-गिन।

तारा सोचे बिना न रह सकी—बड़ी तड़पन है पिया के लिये! अपनी दुर्गति हुये बिना कल कैसे पड़े। वंती, शीलो, मिसेज अगरवाला कौन पिया की जूती नहीं खातीं। लाहौर की गली में कौन औरत थी जो पति की घुड़कियां नहीं सहती थी। मर्सी को भी पिया चाहिये। भुगतेगी तो जानेगी। बेचारी शीलो...।

बृहस्पतिवार को तारा दफ्तर जाने के लिये जीना उतर ही रही थी कि फोन की घंटी बज उठी। फोन मर्सी के लिये ही आते थे। तारा के लिये कभी सप्ताह-पन्द्रह दिन में कोई फोन आ जाता था। मर्सी क्लिनिक गयी हुई थी। मर्सी के लिये कोई संदेश होता था तो तारा लिख कर छोड़ जाती थी।

तारा ने लौट कर फोन सुना—"तारा भैन जी को बुला दीजिये।" कोई बालक बोल रहा था, लहजा पंजाबी था।

बालक ने कहा—"घुल्लू की मां, शीलो चाची ने कहा है कि तारा एकदम आये।"

तारा पूछना चाहती थी, तुम कौन हो? क्या बात है पर लड़के ने फोन रख दिया था।

तारा के मस्तिष्क में खटका अनुभव हुआ, शीलो अवश्य असाधारण कठिनाई में होगी—क्या करे? नौ बज चुके थे। दफ्तर कैसे जाय, दफ्तर में छुट्टी के लिये भी फोन कैसे करे? अभी तो वहां चपरासी भी नहीं आये होंगे पर उस बुलावे पर जाये बिना नहीं रह सकती थी।

तारा टैक्सी में शीलो की कोठरी के सामने पहुंची। इतनी जल्दी में थी कि भाड़ा चुकाये बिना भीतर चली गई। घुल्लू बाहर सुमन के समीप बैठा दिखाई दिया। शीलो खाट पर चादर ताने पड़ी थी। तारा उसे पुकार कर उस की बगल में खाट पर बैठ गयी और शीलो के चेहरे से कपड़ा खींच लिया।

शीलो का चेहरा, उस के शरीर पर क्रेप की पीली कमीज की तरह ही पीला और मैला था। केश उलझे हुए, आँखें लाल और खुश्क थीं। शीलो ने लेटे ही लेटे तारा को बाहों में लेकर अपना सिर उस की गोद में रख दिया। न बोली न रोई।

तारा ने उसे प्यार कर पूछा—"क्या हुआ?"

तारा के कई बार पूछने पर शीलो ने धीमे से कहा—"घुल्लू को ले जा।" और चुप रही।

तारा के बार-बार पूछने पर वह इतना ही कह कर चुप हो गयी।

तारा ने स्वर कड़ा कर के कहा—"तू बतायेगी नहीं तो मैं कुछ नहीं करूंगी। मैं भी यहाँ ही बैठी रहूंगी, न बोल!"

शीलो ने गर्दन झुकाये अनुरोध किया—"बस तू इतना ही कर और कुछ करने के लिये नहीं है।"

"काके को क्यों ले जाऊं? जब तक बतायेगी नहीं, मैं कुछ नहीं करूंगी।"

शीलो ने गर्दन झुकाये कहा—"कल रात मैं ने कह दिया। मैं परेशान हो गयी, हार गयी। मैंने कह दिया हाँ लड़का उसी का है। बेशक मुझे मार डाल, इसे भी मार डाल। सुबह उठकर कहा कि मुझे नहीं रखेगा। जो कुछ जेवर हाथों, गले में था उतार लिया है। कह गया है, बाप के पास चली जा। दफ्तर से लौट कर शाम को गाड़ी पर बैठा देगा। मुझे कहीं नहीं जाना है। तू घुल्लू को ले जा।"

तारा सुनकर चुप रह गयी। शीलो की खुश्क लाल आंखों से उस का

विचार भाँप गयी। कुछ और पूछना आवश्यक न था। तारा शीलो का सिर गोद में लिए अपना सिर दोनों हाथों में थामें सोचती रही, क्या करे ?

टैक्सी ड्राइवर ने झाँककर तारा को याद दिलाया--"बीबी जी, टैक्सी खड़ी रहे ?"

. तारा संभली। ड्राइवर को उत्तर दिया—"अभी चलती हूं" शीलो से कहा, "मै अभी आधे घंटे में लौट कर आती हूं।"

तारा ने टैक्सी में बैठकर ड्राइवर को करोलबाग चलने के लिए कहा। तारा करोलबाग कभी नही गयी थी। मन में बड़ी दुविधा थी, रतन घर पर मिलेगा या नहीं। घर पर उसके माता-पिता ही मिले तो वह उन्हें क्या कह सकेगी, रतन को क्यों ढूंढ़ रही है ?

तारा रतन का पता ठीक से नही जानती थी। उसे रतन का पता केवल, नाई वाली गली नम्बर तीन मालूम था।

ड्राइवर करोलबाग की नई बस्ती में एक गली के सामने गाड़ी खड़ी करके पूछ-ताछ करने लगा।

तारा ने पुकार लिया—"रतन भाप्पा।"

रतन ने पीछे घूम कर देखा। आवाज सुन कर उसने टैक्सी में झांका और टैक्सी की खिड़की पर झुक कर आंखे फाड़े रह गया।

"ता···"

"शीलो मर जायेगी।" तारा ने रतन के विस्मय की परवाह न कर कह दिया।

रतन के मुख मे आयी पुकार प्रश्न में बदल गयी—"क्या हुआ ?" और उस का विस्मय मे खुला मुख बन्द हो गया। उस ने फिर पूछा, "क्या हुआ ?"

"तुम वहाँ नही गये, कब से नही गये ?"

"कई दिन हो गये।"

"मेरे साथ चलो, बताती हूं।" तारा ने एक ओर सरक कर रतन के लिये जगह दे दी।

टैक्सी शक्तिनगर की ओर लौट चली। तारा निःसंकोच बोली--"शीलो ने मोहनलाल से सब कुछ कह दिया है। मोहन ने उसे घर से निकाल दिया है। फांसी लगा लेने के लिये तैयार बैठी हे। मुझे घुल्लू को ले जाने के लिये बुलाया था।"

रतन पथराई हुयी आँखों से सुन रहा था—"बता मै क्या करू ?"

"दो-तीन दिन तो मैं रख लूंगी। तू क्या कुछ नहीं कर सकता ?"

"मैं सब कर लूंगा ।"

"मासी जी, बाबू जी क्या कहेंगे ?" तारा ने आंखों से चिन्ता प्रकट की।

"दोनों कल देहरादून गये हैं। बुआ जी का स्वर्गवास हो गया है। सोमवार को लौटेंगे।"

"घर में रख लेगा ?"

"क्यों नहीं। हाँ, तुम कहाँ थी ?"

"मरने दे मुझे, बता दूंगी। तू पहले शीलो की फिक्र कर।"

तारा ने सुमन को पुकार कर घुल्लू को अपनी गोद में ले लिया। शीलो को बाँह से खींच, कोठरी से बाहर निकाल कर टैक्सी मे बैठाया। कोठरी पर ताला लगा कर कुंजी सुमन को दे दी और कहा—"कुंजी मोहनलाल को दे देना। शीलो अपनी मां के घर जा रही है।"

शनिवार की संध्या नरोत्तम ने तारा को फोन किया तो बिलकुल स्वाभाविक ढंग से बोला। उस ने प्रस्ताव किया—"रविवार को मैटिनी में चार्ली की 'माडर्न टाइम्स' है। मर्सी भी साथ रहे, हम तीनों चलें। मैं साढ़े आठ बजे आ जाऊंगा। नाश्ता तुम्हारे यहाँ कर लूंगा। लंच कनाट प्लेस में ले लेंगे। तुम्हें सूट करेगा ?"

नरोत्तम के उन्मुक्त ढंग से तारा के मन से बोझ हल्का हो गया। उस ने स्वीकार कर लिया।

रविवार को तारा, मर्सी और नरोत्तम के साथ जीना उतरी तो गली में रतन को अपने जीने के दरवाजे पर देखा। तारा ने जरा एक ओर होकर रतन से बात की।

रतन ने पिता के लौटने से पहले ही पचकुइयां रोड पर एक गली में जगह ले ली थी। शनिवार की संध्या ही शीलो को वहाँ ले गया था। वह तारा को अपने यहाँ लिवा ले जाने के लिये आया था।

रतन ने तारा की मजबूरी जान कर कहा—"कोई बात नहीं। मैं दो-अढ़ाई बजे या संध्या जब कहो फिर आकर तुम्हें ले जाऊंगा।"

तारा ने कह दिया—"मैं कनाट प्लेस से ही तुम्हारे यहाँ पहुंच जाऊंगी।" उस ने पता ठीक से समझ लिया।

बहुत रोचक, सार्थक, विद्रूप-भरी फिल्म देखते और 'पैलेस' में खाना खाते समय भी तारा मन ही मन शीलो के पास पहुंच जाने के लिये छटपटाती रही।

रतन ने तारा को अच्छी तरह समझा दिया था--पचकुइयां रोड पर दर्जी की दुकान के साथ गली में, तीन मकान छोड़ कर एक जीने के साथ गराज के फाटक पर रतन नाम दिखायी देगा।

गराज के पल्ले वन्द नहीं, उड़के हुये थे। तारा संकेत के लिये किवाड़ पर खटका करना चाहती थी, भीतर से रतन का खूब पहचाना स्वर सुनायी दिया--"आहा जी आहा...!"

तारा ने किवाड़ धीमे से खिसका कर देखा, कमरे के बीचोंबीच बिछी चटाई पर रतन पाल्थी मारे बैठा था। उस की पीठ गली की ओर थी। वह जांघ पर शीलो को बाँह में लिये था और दूसरी जांघ पर घुल्लू को बैठाये उछल रहा था--"आहा जी साड्डा टब्बर! आहा जी साड्डा टब्बर! (वाह-वाह, हमारा परिवार! वाह-वाह हमारा परिवार!)"

तारा झेंप कर पीछे हट जाना चाहती थी। रतन और शीलो ने किवाडों की चर्राहट सुन कर पीछे देख लिया। शीलो लाज से भागने लगी। रतन ने उसें और भी जोर से पकड़ लिया। वह तारा को देख कर भी नहीं झेंपा। शीलो ने लाज से चेहरा छिपा लिया। घुल्लू भी 'ओ! ओ!' किलक-किलक कर उछल रहा था।

रतन बोला--"तारा देखो, मेरा टब्बर!"

तारा का हृदय उमग कर गले में आ गया। आनन्द के आँसू टपक पड़े। उस ने लाड़ से, गद्‌गद् स्वर में डाँटा--"रतन भाप्पा, क्या करता है? क्यों बेचारी को परेशान कर रहा है!"

रतन ने शीलो को नहीं छोड़ा। तारा से बोला--"मुझे भाप्पा क्यों कहती है, जीजा कह।"

"चल चन्द्रया (हट पाजी) यह मुझ से छोटी है। मैं तो तेरा नाम लूँगी। तू मुझे भैन जी कह।" तारा ने चटाई पर बैठ कर घुल्लू को अपनी गोद में खींच लिया।

तारा ने उडती-उड़ती नजर से देख लिया। रहने का स्थान शीलो की शक्तिनगर की कोठरी जैसा ही था। दीवार के साथ एक खाट। खूँटी और अलगनी पर कपड़े। दीवार में वने शेल्फ पर आलमीनियम के दो पतीले और चीनी मिट्‌टी की दो-तीन तश्तरियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। शेल्फ में कुछ आम रखे हुये थे पर रतन और शीलो बहुत सन्तुष्ट थे।

दफ्तर की भारी-भारी फाइलें उठा कर साथ लाना तारा के बस का न

था। काम अधिक था इसलिये छः-साढ़े-छः बजे से पहले घर न लौट पाती थी। तब तक जाड़ों की संध्या का अंधेरा हो जाता था। मर्सी प्रायः प्रति संध्या ही बाहर चली जाती थी। कई दिन से वह विक्षिप्त सी थी। पहले चड्ढा दूसरे-तीसरे महीने चुपके से आकर या मर्सी को कहीं बुला कर मिल लेता था। इधर उस का समाचार भी नहीं मिल रहा था। ऐसी अवस्था में मर्सी मन को भुलाये रखने के लिये परिचितों से मिल कर, बक-झक कर दिल बहला लेने का यत्न करती रहती थी। अक्सर सिनेमा चली जाती।

उस संध्या हल्की बूंदा-बाँदी हो रही थी, खूब जाड़ा था। तारा ने दफ्तर से लौट कर पुकारा—"चिम्मो मौसी, मैं तो जाड़े से जम गयी। खूब तेज गरम चाय दे। मेरे कमरे में ही ले आ।"

तारा ने बूंदों से सीला हो गया कोट खूंटी पर लटका दिया और अपने कमरे में पलंग पर रजाई में घुस गयी। चिम्मो तारा के पलंग के साथ तिपाई लगा कर चाय, चिउड़ा और तली हुयी मूंगफली रख रही थी कि जीने की घंटी बज गयी। तारा को बुरा लगा। सोचा, नरोत्तम या माथुर होगा। उठ कर बैठक में जाना पड़ेगा। शाल ओढ़ रही थी कि जीने से बैठक में आती, कोट पहने एक जवान लड़की दिखायी दी। पहचान कर तारा को कुछ विस्मय हुआ—सीता थी।

तारा ने बुला लिया—"सीता, यहाँ ही आ जा! मेरी याद कैसे आ गयी! आ यहीं आ जा, बड़ी सर्दी है। कोट भीग गया होगा। वहाँ ही खूंटी पर लटका दे। यह शाल ओढ़ ले। आ खूब गरम चाय है।" तारा ने पंजाबी बोलते-बोलते हिन्दी में आवाज दी, "चिम्मो मौसी, एक प्याला और दे जा।" तारा फिर लिहाफ में घुस गयी और सरक कर सीता के लिये जगह कर दी।

सीता पिछले वर्ष वाला ही कोट पहने थी। चेहरे पर वह उल्लास और शोखी नहीं, थकान और चिन्ता जान पड़ रही थी। पंजों पर उचकती चाल भी नहीं थी। उस ने कोट बैठक में खूंटी पर लटका दिया तो कपड़े भी मसले-मैले दिखायी दिये।

सीता शाल ओढ़ कर तारा के पलंग पर बैठ गयी। सलवार के पाँचे गली-सड़क के कीचड़ से छिटे हुये थे इसलिये पांव लटकाये रही।

"पहले चाय पी ले। चिउड़ा बहुत करारा है, चख कर देख! मरी मद-रासन बड़ी मिर्चें खाती है।

"आप पियें, मेरा मन नहीं है।"

"एक प्याले चाय से क्या है? चिउड़ा तो चख ले!"

"नहीं भैन जी, अभी-अभी खाना खा कर आयी हूं। मन नहीं है।"

तारा ने विस्मय से उस की ओर देख कर फिर आग्रह किया पर सीता ने कुछ न छुआ।

सीता ने गर्दन झुका कर बताया—"भैन जी, नौकरी तो छूट गयी है। मैं बड़ी परेशानी में हूं।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"भैन जी, वे लोग बड़े बेईमान आदमी थे। दो महीने हो गये तनखाह नहीं दे रहे थे। मैंने वहाँ नौकरी छोड़ दी है। दूसरी ढूंढ़ रही हूं। मुझे बड़ी जरूरत है इस समय। मुझे किसी का डेढ़ सौ रुपया देना है। मैं आप को जल्दी ही लौटा दूंगी।" सीता गर्दन झुकाये रही।

तारा कुछ देर सोच कर बोली—"मान लिया, तू लौटा देगी पर कहाँ-कैसी नौकरी ढूंढ़ रही है ?"

"भैन जी, जैसी मिल जाये। आप के पास इसीलिये आयी हूं। आप तो मदद कर सकती हैं।"

"मैं क्या कर सकती हूं ? तब मैं तुझे समझा रही थी। मिस्रा जी तुझे मौका देने के लिये तैयार थे, तब तू ने सुना ही नहीं। तब ऐसे बात कर रही थी कि तुझे कुछ परवाह ही नहीं थी। तेरी फिजूलखर्ची की कोई हद थी।"

"बहिन जी, तब मुझ से बहुत गलती हो गयी। अब ऐसा नहीं....।"

तारा के बात करते-करते घंटी फिर बज गयी। घंटी के ढंग से ही पहचान कर चिम्मो स्वयं दरवाज़ा खोलने चली गयी थी।

"क्या बिस्तर में घुस गयी है।" मर्सी ने जीना चढ़ने से फूले हुये श्वास से पूछा और तारा के कमरे में आ गयी।

"हाँ दीदी, आज तो सचमुच बड़ी सर्दी है, आओ !" तारा ने सरक कर मर्सी के लिये भी जगह बनाते हुये कहा, "यह मेरी गली की बहिन सीता है। अब बेचारी यहाँ सदर बाजार में रहती है।"

मर्सी का कोट भीगा हुआ नहीं था। वह कोट पहने, तारा के सिराहने पांव लटकाये बैठ गयी। वह सीता की ओर घूर रही थी। सीता गर्दन झुका कर कुछ और सिमिट गयी थी।

"तुम डाक्टर अय्यर के क्लिनिक में आया था ?" मर्सी ने पूछा।

सीता गर्दन झुकाये रही।

"एक बार मुसीबत उठा कर भी तुमारा अकल नहीं आया !" मर्सी ने कड़े स्वर में सीता से पूछा, "तुमारा हस्बैंड तुमारा खियाल करना नहीं मांगता

तो तुम को भी अपना जान का परवाह नहीं है ? क्या तुम जानवर है ? अव्वर बोलता, तुम को एक बार गरीब ख्याल किया। कंसीडरेशन शो किया। तुम को परवाह नहीं तो मजा करो। सो रुपया भरो।"

तारा मर्सी और सीता की ओर चुप देखती रही।

"तारा, मैं भी चाय लूंगी।" मर्सी ने तारा से कहा और चिम्मो को चाय और एक जग गरम पानी के लिये आवाज देकर उठ गयी, "अभी आती हूं।"

सीता की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे थे। तारा ने स्वर दबा उसे घृणा से फटकार दिया—"चली जा बेशरम यहां से, इसीलिये रुपया चाहिये।"

सीता ने हाथ जोड़ दिये—"भैन जी, इस बार बचा लीजिये। आप के पांव पड़ती हूं। फिर ऐसी गलती नहीं होगी।"

"क्या नहीं होगी ?" तारा ने घृणा से कहा, "तेरे साथ क्या किसी ने जबरदस्ती की है ? यही तो तेरा हंसना-खेलना था। जा मर, मुझे क्या ? अब कहां गये तेरे हंसाने-खिलाने वाले ?"

सीता तारा के घुटनों पर हाथ रखकर गिड़गिड़ाई—"भैन जी, मैं तुम्हारी गाय हूं। बर्तन-भांडे मांज कर भी रुपया चुका दूंगी। नहीं तो मैं जहर खाकर ...।" सीता ने रोने की आवाज दबाने के लिए आंचल मुंह में भर लिया। उस की पीठ रुलाई के वेग से थिरक रही थी।

तारा को ग्लानि अनुभव हो रही थी। मर्सी अभी आयेगी और सीता की वास्तविकता जानकर क्या कहेगी—मर्सी को बता दिया है। उसने सीता को डांटा—"मैं कह रही हूं दफा हो यहां से, वह आ रही है।"

सीता दुत्कार खाकर जीने की ओर चली गयी। रुलाई वश न कर सकने के कारण जीने के समीप दीवार से सिर टिकाकर रोने लगी।

मर्सी रसोई में चिम्मो से कुछ कह रही थी। तारा उठी और सीता के पास जाकर फिर डांटा—"तू जाती है या मेरी भी नाक कटायेगी।" तारा कह तो गयी पर उस की आंखें भी डबडबा आयीं।

सीता ने आंसू भरी लाल, कातर आंखें उस की ओर उठाकर हाथ जोड़ दिये 'भैन जी... ...।"

"अच्छा कल आना।" तारा ने कह दिया।

मर्सी कोट उतार, शाल ओढ़कर प्याले में चाय लिये बैठक में ही आ गयी। सोफा पर बैठकर उसने अंग्रेजी में पूछ लिया—"तेरी सहेली चली गयी ?"

'हां"

"क्या करता है इस का पति ?" मर्सी ने चाय का घूंट भर कर पूछा।

"मुझे क्या मालूम ?"

"तू तो बड़े प्यार से गले की बहिन बना रही थी। रुपया उधार मांगने आयी होगी।"

"मरने दो चुड़ैल को।"

मर्सी ने दो घूंट और लेकर कहा—"तुझे गुस्सा आ गया कि अबोर्शन कराने गयी थी ?"

"तो क्या खुश होने की बात है ?"

"खुश होने की बात नहीं है। उस की मुसीबत की बात है, मजबूरी की बात है। अबोर्शन नहीं करा सकेगी तो बच्चे को पाल लेगी ?"

"अपना सिर पाल लेगी।" तारा ने बहुत घृणा और ग्लानि से कह दिया।

"पाल सकती तो पहला अबोर्शन क्यों कराती।" मर्सी ने चाय का घूंट भर कर अनुमान प्रकट किया और बोली, "क्या फूहड़ है। ज़रा सी सावधानी से दो-ढाई रुपये में बच सकती थी अब सौ का झगड़ा डाल लिया। नहीं करा सकी तो उम्र भर का झगड़ा। तू कहे तो मैं अय्यर से बात करूं ? दस तो मैं ही छोड़ दूंगी।"

"क्या मतलब ?"

"तुझे नहीं मालूम मैं अय्यर के क्लिनिक में ही काम कर रही हूं। मैं दस परसेंट लेती हूं। मुझे साढ़े-तीन सौ देना चाहती थी, मैं नहीं मानी। उस की पहली नर्स ब्याह करके त्रिचूर चली गयी है। पंद्रह-बीस रोज के हो जाते हैं। बस आठ से एक बजे तक काम। हफ्ते में कभी दिन-दो दिन खाली भी चला गया तो क्या ? कभी चालीस-पचास भी मिल जाते हैं। एक दिन तो सौ मिल गया। पैसे की बड़ी पीर है। केस को खूब भांपती है। कुआरी या विधवा हुई तो अढाई सौ से कम में बात नहीं करेगी। एक सेठ की अठारह बरस की लड़की का केस था। इस ने हजार रखवा लिया। वह चुपके से दे गया। जहाँ देख लेती है कि सौ-सवा-सौ कमाने वाली है, चालीस-पचास ही ले लेती है पर कमाल की एक्सपर्ट है। मैंने डफरिन में बहुत से केस अटैंड किये हैं। इस का तो टैक्नीक ही दूसरा है। कमबख्त अपना टेकनीक सीक्रेट रखती है। दस मिनट भी नहीं लेती। वैरी लिटिल पेन।" मर्सी हाथों के संकेतों से अवयवों की बनावट और आपरेशन की प्रक्रिया समझाने लगी।

"प्लीज ! रहने दो।" तारा ने संकोच और ग्लानि से मुंह फेर लिया।

"क्यों, इस में क्या है ! यह तो साइंस है। जैसे दूसरे आपरेशन होते हैं वैसे यह भी है। औरतों की जान और उन्हें परेशानी से बचाना है। अरे

मरन तो बेचारी औरत का ही है। कोई भी मुसीबत में फंस सकती है। कल तू ही फंस जाय तो ?"

"क्या बकवास करती हो ? मुझे यह सब वाहियात पसन्द नहीं है।" तारा ने खिन्नता से डांट दिया।

"कैसी बेवकूफ है।" मर्सी चुप नहीं हुई, "किसी की तकलीफ और परेशानी दूर करना वाहियात है ? अय्यर ठीक कहती है, क्या दूसरे आपरेशन पाप हैं ?"

"यह कोई बीमारी है ? इट इज़ क्राइम।"

जीने की घंटी फिर बज उठी।

"चिम्मो, नीचे देख कौन है" मर्सी ने कह दिया और उत्तेजना में बोलती गयी, "अय्यर ठीक कहती है, बीमारी नहीं तो क्या है ? सभी बीमारियां असंयम और असावधानी से होती हैं। जो बात शरीर को कष्ट दे, परेशानी पैदा करे, बीमारी है।"

जीने से मर्दाने, चुस्त कदमों की आहट के साथ आवाज़ आयी—"आ सकता हूं।" माथुर भीतर आकर बोला, "बड़ी बहस हो रही है। मर्सी दीदी, क्या बात है ?"

ऐसे प्रसंग में जवान मर्द के आ जाने से तारा और भी संकुचित हो गयी।

"यह गर्भपात का बहुत विरोध कर रही है" मर्सी ने निःसंकोच अंग्रेजी में कहा, मैं कहती हूं संयम और सावधानी से चलने वाले बीमारी से बच जाते हैं, जो नहीं बच पाते उन्हें इलाज की जरूरत होगी ही। इस में घृणित और वाहियात क्या है ? यह तो कष्ट निवारण है।"

माथुर की आंखें झुक गयीं। तारा भी आंखें झुकाये रही। मर्सी उत्तेजना में कहती गयी—"इस जमाने में कितने लोग चार-पांच बच्चों का वरदान चाहते हैं, उन के लिये स्वस्थ भोजन और शिक्षा का प्रबन्ध कर सकते हैं ? उन सब की जिन्दगी नरक बन जाये ? उन के लिये गर्भ और बच्चे जीवन भर की बीमारी नहीं तो क्या है।"

माथुर ने आंखें ऊपर नहीं उठाईं। मर्सी की चुनौती का उत्तर उस ने बहुत शुद्ध अंग्रेजी में दिया—"यह तो परिवारों की स्थिति और लोगों के विचारों के अनुसार उनका नितांत निजी प्रश्न है। हां, निम्न-आर्थिक स्थिति और जन-संख्या के बोझ से दबे देशों में यह राष्ट्रीय प्रश्न भी हो सकता है।"

तारा मौन मुंह फिराये रही परन्तु मर्सी फिर बोल उठी—"क्यों, अब यह जो तुम्हारे जैसे हजारों लड़के-लड़कियां ब्याह से बचना चाहते हैं, इन के क्या शरीर नहीं है, क्या इन्हें कभी जरूरत महसूस नहीं होती या होगी नहीं ?"

माथुर ने इस बार मर्सी की ओर देख कर उत्तर दिया--"जो लोग विवाह और गृहस्थ का उत्तरदायित्व नहीं उठाना चाहते उन्हें त्याग भी करना चाहिये, संयम रखना चाहिये।"

"त्याग-वाग की फिजूल बातें रहने दो" मर्सी झुंझला उठी, "विवाह और सेक्स सब चाहते हैं। वह तो शरीर का स्वभाव है। उन लोगों को मौका नहीं है। मैं जानती हूं, नर्सिंग में, अध्यापिका की लाइन में, दफ्तरों में जितनी लड़कियां जा रही हैं, सभी शादी करना चाहती हैं। उन के मां-बाप लायक लड़का समेट नहीं सकते या कुछ को अपनी हैसियत का पति नहीं मिल पाता। वही बात लड़कों के लिये है लेकिन शरीर उन के भी है, सेक्स है। अपने आप को घोंटे रहती हैं तो बीमारियों में घुलती रहती हैं। अगर एक बार फिसल गयीं तो जिन्दगी बरबाद।"

"मर्सी दीदी!" इस बार माथुर ने मर्सी से आंख मिला कर कहा, "अगर सेक्स का सम्बन्ध प्रेम से है तो उसे इतनी निम्न और उच्छृङ्खल वस्तु नहीं बन जाने देना चाहिये" मर्सी और भी झुंझला उठी, "मर्द-औरत में प्रेम क्या होता है; लव इज दी ग्लोरीफाइड नेम फार सेक्स (प्रेम यौन सम्बन्ध का समादरित नाम ही है)।"

तारा ने असुविधा अनुभव कर बात बदलने के लिये कह दिया—"माथुर भाई, आप के मामले का क्या हुआ?"

माथुर बहुत वर्ष पहले देहली के एक कालेज में अध्यापक था। उसे सशस्त्र गुप्त क्रान्तिकारी आन्दोलन से सहानुभूति के कारण तीन वर्ष जेल काटनी पड़ी थी। उस के बाद वह अंग्रेजी अमलदारी में सरकारी नौकरी क्या करता और उसे सरकारी नौकरी मिलती भी कैसे? उस के संपर्क अच्छे थे। एक बड़ी कम्पनी में नौकरी मिल गयी थी। आदमी योग्य था, दस-ग्यारह बरस में भत्ता-वत्ता मिला कर नौ-सौ मासिक पाने लगा था। सन ४७ में स्वराज्य हो जाने पर माथुर के मन में फिर राष्ट्र-सेवा की महत्वाकांक्षा जाग उठी थी। राष्ट्रीय सरकार ने आई० सी० एस० का नाम बदल कर आई० ए० एस० कर दिया था। राष्ट्रीय भावना रखने वाले योग्य और अनुभवी व्यक्तियों को सीधे ऊंचे और जिम्मेवार पदों पर लिया जा रहा था। माथुर नौ सौ के बजाय पांच-छ: सौ लेकर भी राष्ट्रीय सरकार को सफल बनाने में योग देना चाहता था।

माथुर चड्डा का पुराना सहयोगी था। दोनों ने एक साथ जोखिमें झेली

थीं। सन् ४२ में चड्ढा और माथुर की राजनीति में मतभेद हो गया था पर माथुर चड्ढा की ईमानदारी का आदर करता था। वह मर्सी का भी आदर करता था क्योंकि मर्सी धन और जोखिम की परवाह न कर चड्ढा से प्यार करती थी। उस से विवाह करना चाहती थी। माथुर बहुत गंभीरता से अपने सिद्धांत की घोषणा करता रहता था—कैरेक्टर आफ मैन इज़ ग्रेटर दैन पालिटिक्स ! माथुर महीने में दो-चार बार मर्सी के यहाँ मिलने, हालचाल पूछने आ जाता था। मर्सी आत्म-निर्भर थी परन्तु माथुर उस की चिंता रखना सौजन्य का कर्त्तव्य समझता था।

मर्सी ने तारा को माथुर का परिचय दे दिया था—"बहुत भला, भरोसे का आदमी है। 'ब्रह्मचारी' है। अपने सब परिचितों की पत्नियों और माता-बहनों की सहायता और आदर करता है। मर्सी ने कटाक्ष से कहा, किसी स्त्री को उस से किसी प्रकार की आशंका नहीं हो सकती।"

तारा के प्रश्न के उत्तर में माथुर ने कहा—"....मैंने प्राइम मिनिस्टर के सामने अकाट्य प्रमाण रख दिये कि आई० ए० एम० में खूब कुनबा-परवरी चल रही है। थर्ड डिवीजन के लोग लिये जा रहे हैं और फर्स्ट क्लास फर्स्ट को टाल दिया जाता है।"

"पी० एम० ने क्या कहा ?" तारा ने उत्सुकता से पूछा।

"क्या कह सकते थे, कहने लगे—फर्स्ट क्लास-फर्स्ट तो अक्सर कम्युनिस्ट होते हैं। सर्विस में कम्युनिस्टों को कैसे ले लिया जाये ?"

मर्सी प्रसन्न हो गयी—"कम्युनिस्ट कब इन के टुकड़ों के लिये बैठे है। यह तो उसे मानना ही पड़ेगा कि कम्युनिस्ट लायक होते हैं।"

"लेकिन आप तो कम्युनिस्ट नहीं हैं।" तारा ने माथुर से प्रश्न किया।

"हाँ, मैंने पी० एम० से कहा—न मैं कम्युनिस्ट हूं, न कम्युनिस्ट पार्टी का मेम्बर हूं। बोले—मैं कुछ कह नहीं सकता, शायद तुम्हारी रिपोर्ट में कोई बात होगी।"

"मैंने साफ कहा—सी० आई० डी० और नौकरशाही की रिपोर्ट का क्या क्राइटीरियन (मापदंड) है। मिलिटरी के जो मर्सीनरी लोग (भाड़े के टट्टू) अंग्रेजो के पिट्ठू बने रहे उन्हों ने आई० एन० ए० वालों को भरोसे के अयोग्य बता दिया। उसी तरह अंग्रेजों की खैरख्वाही की विरासत संभाले पुलिस और नौकरशाही अपनी पुरानी रिपोर्टों के आधार पर, पुराने क्रान्तिकारियों को सरकारी नौकरी के अयोग्य बता रही है। पी० एम० चुप रह गये। क्या जवाब देते ?"

और स्थिति के प्रति बहुत सहानुभूति हो गयी थी। तारा बाइस की हो चुकी थी। इतनी पढ़ी-लिखी लड़की के लिये भी विवाह की यही आयु थी। बेचारी के विवाह की चिन्ता करने वाले या दहेज का प्रबन्ध करने वाले अभिभावकों के न होने के कारण, वह सदा के लिये कुआँरी रह जाये, यह माथुर को भयंकर निर्दयता जान पड़ रही थी। तारा सरकारी नौकरी पर तीन सौ रुपये मासिक पा रही थी। तारा का दहेज तो उस के साथ ही था। यह भी न होता तो भी उस के व्यक्तित्व के कारण कोई भी सम्मानित, समृद्ध आदमी उसे पत्नी के रूप में पा कर कृतार्थ होता।

माथुर का परिचय और सम्बन्ध काफी विस्तृत थे। कभी-कभी वह अपनी विवाहित बहिन को मर्सी और तारा के यहाँ ले आता था। तारा और मर्सी को भी अपनी बहिन के यहाँ निमन्त्रण दे देता था। वहाँ दो-चार दूसरे लोग भी आ जाते थे। माथुर, तारा और मर्सी को कई लोगों से मिलाता रहता और बाद मे उन लोगों का पूरा परिचय दे देता। माथुर का पुराना विद्यार्थी नित्यानन्द तिवारी, दिल्ली यूनीवर्सिटी मे इतिहास मे पी० एच० डी० करके दिल्ली यूनीवर्सिटी में लेक्चरार हो गया था। तारा और मर्सी से परिचय हो जाने के बाद वह माथुर के साथ या कभी अकेला भी मर्सी के यहाँ मिलने आ जाता था। तारा को पढ़ने का शौक था। वह तारा के लिये कोई न कोई पुस्तक ले आता। तारा को तिवारी की बातचीत और उस का ढंग अच्छा लगता था। माथुर भी तिवारी की बहुत प्रशंसा करता रहता। तिवारी ने सब सफलता अपने साहस और श्रम से ही पायी थी। कुछ मास मे तिवारी को अलीगढ यूनीवर्सिटी मे अधिक अच्छी नौकरी मिल गयी। तिवारी तारा से मिलने के लिये रविवार के दिन अलीगढ से भी चला आता तो तारा को संकोच अनुभव हुये बिना न रहता।

स्वयं जवान लड़की से उस के विवाह की बातचीत करते माथुर को संकोच होता था परन्तु तारा के सामने वह अपने सुझाव और प्रयत्न से हुये विवाहों की विस्तृत चर्चा करता रहता था—दम्पति खूब सुख से रह रहे थे। माथुर ने स्त्री-पुरुषों की प्रकृति ठीक-ठीक पहचान सकने के अपने कई अनुभव बता-कर, तारा को अपनी गहरी सूझ के प्रमाण दिये। उस ने पच्चीस से लेकर पैंतीस-चालीस तक की उम्र के, तीन-चार सौ माहवार से दो हजार आमदनी वाले विवाह योग्य तीन जवानों के वंश और स्वभाव का पूरा परिचय तारा को दे दिया। माथुर मर्सी से अकेले मे पूछ लेता, तुम ने तारा से कुछ बात की थी? क्या विचार है उस का?

तारा को माथुर की सज्जनता और निस्वार्थ परोपकारी प्रवृत्ति पर विश्वास था परन्तु बार-बार विवाह की चर्चा से ऊब कर मर्सी से कह देती थी—दीदी, उन्हें मना क्यों नहीं कर देती। वह मुझे ठिकाने लगा देने के लिये क्यों परेशान है ? वह लोग क्यों समझते हैं कि बिन ब्याही औरत आवारा ही होती है, उसे किसी न किसी खूंटे पर बांध ही देना चाहिये, किसी न किसी को उस का मालिक बन ही जाना चाहिये''''।

१०

रहे। उसी में उनका लाभ भी था। अन्तरदलीय राजनीति में डाक्टर साहब के समर्थन का अर्थ सूद जी का विरोध था। शासन की सत्ता और प्रभाव के लिये दोनों दलों की होड़ का प्रभाव शरणार्थियों के संगठन पर भी पड़ रहा था। प्रेमनाथ गुलाटी डाक्टर साहब के दल का आदमी था और जयदेव पुरी सूद जी के दल का। स्वभावतः ही सोमराज प्रेमनाथ की सहायता के लिये दौड़-धूप कर रहा था।

पुरी के मन मे सोमराज के प्रति कभी कोई मैत्री भावना नहीं थी। बन्नी हाते की आग मे अपनी बहिन की उपेक्षा की जाने का क्रोध भी था। जब बहिन ही नहीं रही थी तो वह व्यर्थ में साला बन कर सोमराज के सामने विनय क्यों प्रकट करता! अब वह भी दैन्य स्थिति में या किसी की धौंस में नहीं था।

सामना होने पर उसने सोमराज की विशेष परवाह नहीं की थी, यों ही रुखा-रूखा हाल-चाल—कहां हो? मजे में हो? पूछ लिया था।

मास्टर जी ने समधी की मृत्यु का समाचार सुना तो पुरी को समझाया —"प्रभु ने यदि हमारी बेटी की अल्पायु कर दी तो भी उन की इच्छा से जो सम्बन्ध बन गया, टूट नहीं सकता। सम्बन्ध की उपेक्षा कैसे की जा सकती है? उन लोगों के कर्म उन के साथ है। हमें अपना कर्तव्य निबाहना चाहिये ......।" मास्टर जी पुरी की मां, पुरी और कनक को लेकर समधी की मृत्यु पर शोक और समवेदना प्रकट करने के लिये बसी-निगारखां गये।

शोक की रीति के लिये समधी परिवारों के मिलने पर लाहौर की पुरानी परिपाटी के अनुसार उचित अनुष्ठान तो हो नहीं सकता था। परिस्थितियों के परिवर्तन से छः मास में ही वातावरण बदल गया था। परम्परा, मान-सम्मान का वैसा विचार नही रह गया था। फिर भी लाला सुखलाल की स्मृति में रोना-धोना हुआ ही। मास्टर जी, सोमराज, पुरी सभी सहमत थे कि अब उन प्रथाओं का समय नही रहा इसलिये स्त्रियों को संक्षप से ही संतोष कर लेना पड़ा।

मास्टर जी ने उखड़ा-पुखड़ी की संकटमय परिस्थिति मे अवसर पर समाचार न मिल सकने के लिये बहुत खेद प्रकट किया और शोक के लिये समय पर न पहुंच सकने के लिये क्षमा चाही। लाला सुखलाल के साहस, उदारता और कृपाओं का बहुत बखान किया।

पुरी अब नाजिर का सम्पादक था, रिफ्यूजी एसोसिएशन का मंत्री और कांग्रेस के अधिक समर्थ दल के नेता सूद जी का दाहिना हाथ था। सोमराज

ने पुरी के प्रति आदर और आत्मीयता प्रकट की। वन्नी हाते पर आक्रमण ओर आग की घटना की व्योरेवार लम्बी चर्चा हुई। सोमराज की आँखें तारा की स्मृति से बार-बार छलक आती थीं। उस ने विश्वास दिलाया कि तारा को आग से बचाने के लिये कोई भी सम्भव उपाय उस ने नहीं छोड़ा था। उस ने अपनी पिंडलियों और बाहों पर माँस झुलसने के दाग दिखाकर कहा—"भगवान की इच्छा के विरुद्ध क्या हो सकता था ? वही नही रही तो फिर कमबख्त मकान-वकान का क्या था, छोड़कर चले आये।"

अगस्त में मास्टर जी को कोयले का डिपो अलाट हो गया था। डिपो के लिये उन्हें जगह बसी-निगारखाँ में मिली.तो सोमराज भी सहायता करने लगा। स्टेशन से कोयला उसी के ट्रक पर आ जाता था। मास्टर जी का डिपो सोमराज के मकान से लगभग फर्लांग भर ही था। उस के घर कोयला मास्टर जी के यहाँ से ही जाने लगा। कई और अच्छे गाहक भी उसने लगवा दिये थे। कोयले का चूरा और धूल भी भट्ठे वालों के यहाँ बिकवा देता था।

दोनों परिवारों के पड़ोसी हो जाने पर स्त्रियों में आना-जाना होने लगा। कोयले की जरूरत होती तो सोमराज की माँ, बहिन या भाँजी ही कोयला भेज देने के लिए कह आतीं। स्त्रियाँ आतीं तो कुछ देर बैठ कर बात-चीत भी हो जाती। अति सामीप्य हो जाने पर दोप छिप नहीं पाते, विशेप कर स्त्रियों में। वे अपना दुख दूर करने के लिए दूसरों पर निर्भर रहती हैं इसलिए उनकी जिह्वा अपना दुख प्रकट करने के लिये व्याकुल हो जाती है।

सोमराज की बड़ी विधवा बहिन महेशाँ निरन्तर मायके में ही रहती थी। वह और कभी सोमराज की माँ भी तारा की माँ के पास आ बैठतीं और आँचल से आँसू पोंछती हुई अपनी परेशानी कहने लगतीं—इतनी साध से चाँद जैसी सुलच्छनी बहू लाये थे। वह तो देवी थी। उसे तो मालूम था इस परिवार पर क्या मुसीबत आने वाली है। अपनी इज्जत संभाले चली गयी। कर्मों का फेर, हम तो अपने घर में मोहताज हो गये हैं—वे अपनी दुर्गति सुनाने लगतीं।

लाला सुखलाल के बड़े भाई कुन्दनलाल गुजराँवाले में सर्राफे का छोटा-मोटा कारोबार कर रहे थे। उन्होंने रहने के मकान के अतिरिक्त दो मकान और बनवा लिये थे। उन के पश्चात बड़ा लड़का कर्त्तारराम दुकान पर बैठने लगा तो कारोबार गिरता गया। छोटे लड़के ने डाकखाने में नौकरी कर ली थी। जैसे-तैसे निर्वाह चल रहा था।

कर्तारारम बहुत मोटा थल-थल आदमी था। सिर और चेहरा कंधों पर ही चिपका मालूम होता था। गले में भी इतनी चर्बी जमा हो गयी थी कि आवाज निकलने के लिये सूराख कम ही रह गया था। स्वभाव का बहुत ही डरपोक। कर्ताराम की बहू शाँति पति का ठीक प्रतिरूप, छमक छड़ी, पतली और बिजली सी चपल थी। गुजराँवाले से भागते समय कर्ताराम स्टेशन पर फिसल गया था। पाँव के टखने की हडडी में जरब आ गयी थी। उस का छोटा भाई दाताराम जैसे-तैसे माँ, भाभी और अपनी बहू तथा बच्ची के साथ बड़े भाई को सम्भाल कर जालंधर पहुंच गया था।

लाला सुखलाल ने बसी-निगारखाँ में 'बेगों' के खूब बड़े मकान पर कब्जा कर लिया था। उन्हों ने भाभी, भतीजों और बहुओं को भी शरण दी। दो-अढ़ाई मास बाद दाताराम की ड्यूटी कर्नाल में लग गयी। वह अपनी बहू-बच्ची के साथ वहाँ गया तो माँ भी उस के साथ चली गयी। कर्ताराम और शाँति जालंधर में ही रह गये। कर्ताराम का पाँव महीनों गलत ढंग से बंधा रहा था। अब डाक्टर हड्डी को उखाड़ कर नये सिरे से जमाने के लिये कहते थे। कर्ताराम में इतना साहस और सहन-शक्ति नहीं थी। उसे आपरेशन झेलने के बजाय लंगड़ा बने रहना मंजूर था।

प्रेमनाथ गुलाटी रिफ्यूजी एसोसिएशन का सेक्रेटरी था। सोमराज ने उस से कहकर सर्राफा बाजार में एक दुकान कर्ताराम के नाम अलाट करवा ली थी। कर्ताराम उस दुकान पर बैठने लगा था। दुकान में माल कुछ था नहीं। कर्ताराम गुजरांवाला से आठ-दस हजार का सोना-चांदी और तीन हजार नकदी लेकर आया था। शांति ने वह सब सोमराज के हाथ संभलवा दिया था। कर्ताराम रुपया और माल मांगता तो सोमराज कह देता, माल बैंक में रख कर रुपया लिया है। तुझे सूद चुका दूंगा। शांति भी पति को डांट देती—दुकान बहुत चल रही है न, बाकी भी बरबाद करना चाहता है?

असमर्थ क्रोध में कर्ताराम की सांस फूल जाती। वह चुप रह जाता।

सोमराज की बहिन महेशां और मां, भागवंती की समवेदना पाकर, उस के साथ खाट पर बैठ जातीं और दोनों हाथों में सिर थाम कर अपनी विपन्नता प्रकट करतीं—हम तो अपने ही घर में मोहताज हो गये, नौकरों से भी गिर गये हैं; कहाँ डूब मरे। 'उसने' तो ऐसे घर संभाल लिया है कि वही मालकिन हो, घर उस के ही खसम का हो। हम तो टुकड़ों पर पड़े है। हम घी-दूध को हाथ नहीं लगा सकतीं। खसम की सब जमा दबा ली है और इस घर की भी मालकिन बन गयी है। क्या चलितर हैं …।"

महेशां या उस की मां जब भी आतीं, पहले से कुछ अधिक सुना जातीं—"डायन ने राजे (सोमराज) को जरूर कुछ खिला दिया है या वशीकरण जानती है। उस के इशारे पर नाचता है। हमारी बात ही नहीं सुनता। एक ज्योतिषी पंडित ने दो रुपये लेकर कहा था कि पूजा कर देगा। लड़के की मति ठीक हो जायगी पर कुछ नहीं हुआ। मरा वह नाई भी सवा रुपया ले गया। हम ने उस चुड़ैल को कंघी मे टूटे केश भी उठा कर दिये पर कुछ नहीं हुआ। यह हुनर तो मुसलमान औलिया और फकीरों को था कि झट कील देते थे पर मरे सब पाकिस्तान भाग गये हैं....."

महेशां ने शरम से मुंह पर हाथ रख कर कहा—"वह मरा दलिद्दर की पंड (भारी गठड़ी) भी क्या बेहया है। मर्द हो तो ऐसी औरत को गंड़ासे से काट कर फेंक दे। मरे की खाट नौकर की तरह नीचे बराम्दे में डाल देती है। खुद ऊपर की मंजिल में सोती है। कौन नहीं जानता पर दोनों को न शरम है न हया। लाहौर में कोई ऐसा करता तो ....। मरी के व्याह के बाद एक लड़की हुई थी। छः महीने की ही मर गई। तब से बांझ ही थी अब तो.....जरा हया-शरम नहीं है।"

तारा की मां ने यह सब अनाचार सुना तो जल उठी। वह सोमराज को अब भी जमाई मानती थी। जमाई तो जन्म भर पूजा जाता है। वह सोमराज के घर को तारा का घर मानती थी। कोई 'खसमानूंखाणी, (पति को खा जाने वाली) रंडी' आकर उसकी लड़की के घर पर कब्जा कर ले यह तारा की मां को सह्य न था। तारा के बाद सोमराज ढंग से दूसरा विवाह कर लेता तो वह आपत्ति न करती। पत्नी की मृत्यु के बाद लड़कों का दूसरा व्याह होता ही है। भागवंती जमाई के सम्बन्ध से उस बहू को भी तारा की तरह अपने घर बुला कर नेग-सगुन करती पर तारा के घर में अनाचार और अत्याचार वह नहीं सह सकती थी।

भागवंती ने कमल प्रेस जाकर बेटे के सामने दुहाई दी। वह जानती थी, अब पुरी की भी हैसियत कुछ कम नहीं थी। सोमराज भी उसे मानता था। वह सोमराज को रोकता क्यों नहीं था।

पुरी ने सुन कर कहा—"हमें इस झगड़े से क्या मतलब ? सोमराज तो पुराना लफंगा और गुंडा है। मैं तारा की शादी से पहले कहता था तो किसी ने सुना नहीं था। अब हमारी लड़की नहीं रही तो हमें उस के झगड़ों से क्या मतलब ? मैं तो उसे ज्यादा मुंह नहीं लगाता। उस की तो न दोस्ती भली न दुश्मनी। जो करेगा सो भरेगा। डाक्टर तो ऐसे ही लोगों को पाले हुये है।

लोगों को अपने आप समझ आ जायेगी, सब कलई खुल जायगी। मुझे दूसरे क्या कम झंझट है ? पिता जी और तुम खामुखा का सम्बन्ध माने बैठे हो। भिड़ों के छत्ते को छेड़ने से क्या लाभ ? शहद की उम्मीद हो तो कोई परेशानी भी झेल ले....।"

कनक पुरी से सहमत थी कि केवल व्यवहार के नाते ऐसे लोगों से क्यों सम्बन्ध माना जाये और उन के झगड़ों में पड़ा जाये परन्तु मन में उसे बहुत दुख लगता था। कनक ने अपने जीजा से भी सोमराज के भला आदमी न होने की बात सुनी थी। पुरी ने भी उस के भला आदमी न होने की बात स्वीकार की थी। बताया था, वह उस विवाह से प्रसन्न नहीं था परन्तु तारा को ही सोमराज के प्रति आकर्षण था। उसे दुख होता, तारा जैसी सुन्दर और समझदार लड़की ऐसे गुण्डे के चक्कर में कैसे फंस गयी। नैनीताल में भी पुरी से तारा की मृत्यु का समाचार सुन कर उसे बहुत दुख हुआ था। यदि तारा जीवित होती तो दोनों मे कितना प्रेम और सहेलपना हो सकता था।

सोमराज के परिवार से पुरी का पुनः सम्पर्क हुए पूरा वर्ष बीत गया था। पंजाब सरकार के मंत्रिमंडल में दूसरी बार उथल-पुथल होने पर सूद जी मंत्रिमंडल में ले लिये गये थे। पंजाब सरकार का केन्द्र उस समय भी शिमला में ही था। सूद जी बहुत समय शिमला में ही रहते थे। जालंधर में पुरी ही उन का प्रतिनिधि था। पुरी से सोमराज की घनिष्टता बढ़ती ही जा रही थी। वह नाजिर के दफ्तर मे या पुरी के घर पर भी, रिखीराम से मुकद्दमे में गवाहों की तैयारी के विषय मे सलाह देने या मिलने के लिये आता रहता था। वह सब तरह की सहायता के लिये तैयार था। यहाँ तक कि रिखीराम की पुरानी ट्रेडिल उठवा कर कमल प्रेस मे रखवा देता और रिखीराम की शरारत के लिये उसे बाजार मे पिटवा देता। पुरी को यह सब पसन्द नही था। कनक को ऐसी बातें सुन कर आग लग जाती थी परन्तु चुप रह जाना पड़ता था।

सोमराज कनक से भी सलहज के नाते निस्संकोच आत्मीयता से बात करता था। कोई और प्रसंग न होने पर कनक के मुंह पर ही उस की योग्यता और परिश्रम की सराहना करने लगता। उस की लड़की के जन्म के अवसर पर सोमराज ने बच्ची के लिये चांदी की कटोरी-गिलासी और झुनझुना भेंट किये थे। कनक ने वे सब चीजें उठा कर रख दी थीं। उन का कभी उपयोग नही किया था। सोमराज को देखते ही उसे तारा की याद आ जाती थी और मन घृणा से भर जाता था।

१९४९, दिसम्बर में एक दिन दोपहर बाद की डाक फिरकू ने ऊपर दफ्तर में दे दी। कनक मैनेजर, एडीटर और पुरी की निजी डाक छांटने लगी। कभी-कभी पिता जी का भी पत्र आ जाता था। एक लिफाफे पर कोने में पर्सनल लिखा था। पत्र दिल्ली से आया था। पुरी दफ्तर में नहीं था। कनक ने कौतुहल से पत्र खोल लिया।

कनक पत्र पढ़ कर हैरान रह गयी। पत्र को दूसरी बार पढ़ा। पत्र कारोल-बाग, दिल्ली से गोबिन्दराम ने लिखा था। पुरी को 'अज़ीज जयदेव 'संबोधन कर उस का पता मिल जाने के लिये प्रसन्नता प्रकट की थी। मास्टर जी और मां को स्नेह से नमस्कार लिखा था। तीस बरस से अधिक समय तक एक ही मकान में, भाइयों की तरह सुख-दुख में साथ रहने की याद थी। मास्टर जी से मिलने और उन का पत्र पाने की उत्कट इच्छा प्रकट की थी। कुछ बातें ऐसी थीं जिसे वे मिलने पर ही बताना चाहते थे।

पत्र में नाज़िर के सम्पादन की प्रशंसा थी। खेद प्रकट किया था कि कभी यह न देखा कि सम्पादक कौन था ? पुरी को अपनी योग्यता प्रमाणित कर देने के लिये बधाई दी थी और रोमांचक बात थी—तुम्हें तो बेटी तारा का खत मिलता ही होगा। बेटी को जीती-जागती और तन्दुरुस्त देख कर हैरान रह गया। परसों यहां आयी थी। उस ने बताया, ससुराल में आग लगने पर उसे बचाने कोई नहीं पहुंच सका। जीना आग से भर गया था। वह पड़ोस की छत पर कूद गयी। पांव में बहुत चोट आ गयी थी। किसी भले मुसलमान ने मदद करके उसे पड़ोस के हिन्दू घर में पहुंचा दिया था। उस के पुण्य से उसे सहायता करने वाले भी मिल गये थे। उन्हीं लोगों के साथ वह दिल्ली आ गयी थी। बेटी तो देवी है। देख कर ऐसा लगा कि मुजस्सिम स्वर्ग चली गई थी वैसी ही मुजस्सिम लौट आयी है। वही प्यारी हंसमुख भोली सूरत, वही प्यारा स्वभाव। आयी तो अपनी तायी से लिपट गयी। सुन कर खुश होगे कि रिलीफ-रिहेबीलिटेशन के महकमे में साढ़े तीन सौ रुपया माहवार पर बाइज्जत काम कर रही है ......।

कनक मन का उत्साह और प्रसन्नता वश न कर पायी। पुकार लिया—'गिल जी !" गिल के जालंधर आने पर कनक ने उसे गिल जी पुकारा था। तब से आदर का व्यवहार बनाये रखने के लिये वैसे ही पुकारती थी। कभी भ्राजी भी कह लेती थी।

"बहुत बड़ी खुशखबरी है, तारा इज अलाइव (तारा जीवित है)।"

"कौन ?" गिल ने पूछा।

"आप नहीं जानते ? मेरी ननद तारा को नहीं जानते ?"

गिल ने इंकार में सिर हिला दिया।

"पार्टीशन से पहले कम्युनिस्टों के शांति-रक्षा आंदोलन में भी कुछ भाग लेती थी।"

गिल को याद नहीं आया।

"हाय, बहुत ही स्वीट और ब्रिलिएंट है। सदा फर्स्ट डिवीजन पाती थी।" कनक ने गिल की ओर झुककर स्वर दबाकर कहा, "उसी का तो इस बेईमान सोमराज से विवाह हुआ था। बेचारी की ससुराल में पहली ही रात मुसलमानों ने आक्रमण कर आग लगा दी थी। इन लोगों का ख्याल था कि वह बूढ़ी बुआ के साथ जलते मकान में ही रह गयी थी, बच नहीं सकी।" कनक ने उत्साह में पूरा पत्र ही पढ़ कर सुना दिया, "मुझे उस से मिलने का अवसर कम ही मिला है पर मुझे उस से बहुत ही प्यार है। मैं स्वयं ही उसे लेने जाऊंगी।"

गिल ने प्रसन्नता प्रकट कर बधाई दी।

पुरी उस दिन दोपहर बाद दफ्तर में नहीं आया। कनक बहुत उत्साह से खबर देने की प्रतीक्षा में थी। पोती के जन्म के समय से पुरी की माँ बेटे के यहाँ ही थी। वही बच्ची को संभाले थी। कनक दोपहर में भोजन के लिये और बच्ची को दूध पिलाने के लिये घर आती थी। संध्या बच्ची के कारण पाँच बजे फिर घर पहुंच जाती थी। कनक ने बहुत कठिनाई से उमंग रोकर कर सास को नहीं बताया था कि पुरी को पहले न कह दें। पुरी संध्या नौ बजे घर आया। कनक ने देखते ही गदगद स्वर से कहा—"मिठाई खिलाओ तो खुशखबरी सुनाऊं।"

कनक की किलक और पुलक देखकर माँ ने भी पूछ लिया—"क्यों, क्या बात है ?"

पुरी ने पत्र पढ़ा तो चुप, निश्चल रह गया और फिर सिर खुजलाते हुए सोचने लगा।

कनक बोल उठी—"पत्र में पता तो दिया हुआ है। लिख दीजिये, एक दम आकर मिले। हाय, मेरा दिल चाहता है, उड़कर जाऊं और ले आऊं।"

"क्यों क्या बात है ?" माँ ने समीप आकर उत्सुकता प्रकट की।

"इस बारे में सोचना होगा।" पुरी चिन्ता की श्वास लेकर अंग्रेजी में बोला, "पहले पत्र लिखकर स्थिति समझनी होगी।"

"ऐसी क्या परिस्थिति है ?" कनक ने अंग्रेजी में बात की, "वहिन आकर हम लोगों से, माता-पिता से क्यों न मिले ?"

"तुम सोमराज की करतूत नहीं जानती ? सब से पहला सम्बंध तो लड़की का उसी से है ।"

"वह बेईमान शांति को खुद निकालेगा । अब तो हमें बोलना ही होगा । यह कैसे सहा जा सकता है ।"

"तुम पूरी बात नहीं जानती । मुझे इस में काफी संदेह जान पड़ता है । यह कैसे हो सकता है कि उस ने नाजिर की बावत सुना ही न हो । उसने स्वयं तो अब भी नहीं लिखा । हमारा पता पा लेना उस के लिये कठिन न था । शायद वह आने से इन्कार कर दे । वह इस विवाह से प्रसन्न नहीं थी ।"

कनक के माथे पर विस्मय के तेवर पड़ गये—"पर तुम तो कहते थे, उस का सोमराज से प्यार था ?"

पुरी सम्भला—"अडोलसैंस (अल्हड़पन) की बातें थीं । बाद में बदल गयी थी । एक दूसरे लड़के, मुसलमान कम्युनिस्ट असद को जानती होगी, उस का जादू छा गया था उस विकट वातावरण में । इस मामले में कुछ अस्थिर सी थी । यह विवाह तो मैं जेल में था तभी पक्का हो चुका था । दो परिवारों की फजीहत का सवाल था ।"

बेटे और बहू को अंग्रेजी में उलझते देखकर माँ ने फिर पूछा—"मुझे भी तो बताओ क्या बात है ?"

"हाँ हाँ, एक मिनट में बताता हूं ।" पुरी ने माँ को प्रतीक्षा का संकेत किया ।

कनक विस्मित रह गयी थी । जीजा नैयर से सुनी बातें याद आ गयीं, विवशता में विवाह कर दिये जाने की यंत्रणा की कल्पना । कनक सामने खड़े पुरी को पहचान नहीं पा रही थी । वह उसे कुछ दूसरा ही लग रहा था । पूछ लिया—"बहन यह विवाह नहीं चाहती थी ?"

"पहले चाहती थी, फिर नहीं चाहती थी । ऐसी हालत में मैं क्या कर सकता था ?" पुरी को तारा के सिर पटक लेने की बात याद आ गयी ।

"विचित्र बात है, सभी उस की इतनी प्रशंसा करते हैं । पत्र में भी·····।"

"लोगों को असलियत क्या मालूम ?" पुरी खीझ उठा ।

कनक चुप नहीं हुई—"खैर, वह आकर असलियत बताये । माता-पिता से मिले ।"

"तुम तमाशा चाहती हो ।" पुरी ने क्रोध से कहा, "वह आयेगी तो माँ उस औरत का मामला लेकर तूफान कर देगी । साहनी की माँ और बहन भी इस मामले पर हुड़दंग खड़ा कर देंगी । साहनी पूछेगा, वह इतने दिन क्यों नहीं बोली ? अगर उसने कहा—वह स्वेच्छा से इतने दिन नहीं आयी और बात

भी ठीक है—मैं नहीं रखता तो मेरी तो मुसीबत हो जायगी।"

"तुम्हें साहनी से ही सहानुभूति है।" कनक ने विरोध किया।

मा बड़बड़ा उठी—"सोमराज की क्या बात है? मरा क्या जमाना आ गया है कि मां-बाप से ही पर्दा होने लगा। हम ही बात सुनने लायक नहीं रहे। मरे अंग्रेज तो चले गये पर अपना अंग्रेजा छोड़ गये।"

"तुम खामुखाह बिगड़ रही हो" पुरी ने मां की ओर देखा, "सोमराज डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के इलेक्शन के लिये नामीनेशन पेपर फाइल करना चाहता है। तुम क्या समझोगी? क्या बताऊं तुम्हें?"

कनक को मौन विरोध में मुंह फेरते देखकर पुरी फिर बोला—"खबरदार, इस विषय मे मां से या पिता जी से, किसी से भी कुछ नहीं कहना। यह लोग सुनेगे तो चुप नहीं रह सकेंगे। मैं सोचकर बताऊंगा। जो कुछ भी सम्भव होगा, मैं करूंगा ही। मैं स्वयं उसे पत्र लिखूंगा।"

कनक चुप हो गयी। याद आ गया—पूरा परिवार पुरी से विवाह करने की उस की इच्छा के विरुद्ध था। नैयर को पुरी पसन्द नही था। नैयर ने पुरी के विरुद्ध आरोप लगाया था कि वह प्रेम और विवाह की स्वतंत्रता केवल अपने लिये ही चाहता है। कनक ने इस आरोप का घोर विरोध किया था। अब वह बात स्वीकार करनी पड़ रही थी। नैनीताल मे पुरी ने तारा की सोमराज से विरक्ति हो जाने की बात तो नहीं कही थी। विरक्ति हो गयी थी तो विवाह क्यों कराया गया? नैयर यदि कह दे तुम अल्हड़पने मे पुरी के चक्कर में आ गयी....।

कनक का मन खिन्न हो गया था। भोजन के लिये इच्छा न थी। पुरी इस पर और भी बिगड़ा। कनक ने कुछ उत्तर न दिया। सिर दर्द का बहाना करके लेटी रही। दूसरे दिन भी पुरी से बोलने की इच्छा न हुई।

कनक दूसरे दिन नाजिर के दफ्तर मे गयी तो गिल ने ताना दिया—"क्यों, बहन की खबर मिलने की मिठाई मियां-बीबी चुपके-चुपके खा गये? हमारा हिस्सा?"

"उस बात को जाने दीजिये।" कनक ने कठिनता से आंसू रोके।

"क्यों?" गिल ने उस के चेहरे की ओर देखा, "क्या बात है।"

"मालूम नहीं, शायद इस मे कुछ उलझन है। उस पत्र के बारे में आप पिता जी से, किसी से, इन से भी कुछ न कहियेगा।"

"क्या बात है?"

"इन्हों ने मना कर दिया है।" कनक ने कातर अनुरोध से गिल की आंखों में देखकर गर्दन झुका ली।

कनक ने फिर तारा के सम्बन्ध में किसी से, पुरी से भी कोई बात न की। मन पर एक विचित्र सा बोझ आ गया था। उसे लगता था तारा के रूप में उस का ही अपमान किया जा रहा है, उसी पर अन्याय किया जा रहा है। नैयर की बात सच थी। नैयर की बात के साथ ही ससुर के प्रेस का काम छोड़ देने की घटना, रिखीराम से मुकद्दमे की घटना भी क्रम में जुड़ जाती... फरेब...फरेब...। 'इन' का स्वभाव और व्यक्तित्व कैसा विचित्र है ? एक उदासी सी मन पर छा जाती। पुरी अपने संतोष और प्रसन्नता में उस के सहयोग की उपेक्षा अनुभव करता तो कनक बच्ची में व्यस्तता का बहाना कर लेती।

पुरी तारा के प्रति कनक की असंगत भावुकता और जिद्द में मौन से खिन्न था। उस ने कनक को मनाने का कोई यत्न नहीं किया परन्तु घर में सदा के लिये तनाव भी सह्य नहीं था। प्रायः तीन सप्ताह बाद उस ने कनक को समझाने के लिये बात की—"तुम्हें तो यही लगा था कि मैं तारा की उपेक्षा कर रहा हूं परन्तु उस ने मेरे पत्र का उत्तर भी नहीं दिया। स्वयं समझ लो।"

"कहो तो एक बार मैं लिख कर देखूं ?"

"तुम्हें मेरा विश्वास नहीं है ?" पुरी उत्तेजित हो गया।

"मैंने अविश्वास नहीं प्रकट किया पर मेरे लिखने में तुम्हें क्या आपत्ति है।"

कुछ दिन से कनक पहले की तरह प्यार में गम न खाकर उत्तर दे बैठती थी। उस से बात बढ़ जाती थी। वही हुआ। घर में दो-तीन दिन गुमसुम बनी रही।

मां, बेटे-बहू में तनातनी से खिन्न होकर ताने देने लगती—"अपना घर अपने आप सम्भालो। मुझे तुम्हारे पिता जी और दूसरे बच्चों की भी फिक्र करनी है। यह नये जमाने के, अपनी पसन्द के ब्याह का हाल देख लो।.... मर्द तीमी (अबला) को सिर चढ़ा ले तो फिर औरत डर क्यों मानेगी।...कुर्सी पर बराबर बैठेगी तो जबान भी लड़ायेगी।...बड़े बुजुर्गों में तो कायदा था कि तीमी मर्दों के सामने खाट या पीढ़े-पीढ़ी पर भी नहीं बैठती थी।"

पुरी दफ्तर में आता तो कनक औचित्य के विचार से बिलकुल साधारण व्यवहार करती थी। इस से बातचीत तो शुरू हो जाती परन्तु मिठास नहीं लौट पाता था।

सास को कनक के प्रति सहानुभूति नहीं थी। उस के विचार में पुत्र ने फैशन के चक्कर में आकर बड़े आदमी की मुंहजोर लड़की से ब्याह कर लिया था और उस से डरता था। कनक अब कांता के यहाँ भी बहुत कम जाती थी। कांता को भी दिन में आने की सुविधा कम ही मिल पाती थी। वहाँ जाने

पर पुरी का प्रसंग चलता तो मुंह से कोई बात निकल जाने की आशंका थी। उसे सहानुभूति मिल सकती थी केवल ससुर और गिल से। ससुर प्रेस और घर से दूर बसी-निगारखाँ मे रहते थे। गिल से नित्य सामना होता था। गिल कनक के सब प्रयत्नों के बावजूद पुरी और कनक में खिचाव भाँप ही जाता था पर इस प्रसंग का कोई संकेत न करता। बात करने के लिये दूसरे बहुत से प्रसंग थे। कनक गिल से और रक्स से भी खूब बात करती थी। खूब बोल लेने और हंस लेने से मन हल्का हो जाता था।

पंजाब में पश्चिम से बहुत लोगों के आ बसने के कारण, आगामी चुनावों के लिये नये सिरे से निर्वाचन क्षेत्र बनाये जाने का काम चल रहा था। अकाली दल और सिक्खों का प्रयत्न था कि निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार बाँटे जाये कि पूरी आबादी मे सिक्खों की संख्या प्रतिशत कम होने पर भी उन के अधिक उम्मीदवार सफल हो सकें। शासन की बागडोर संभाल सकने की होड़ में कांग्रेस के दोनों दल, सिक्ख मेम्बरों और सिक्खों के साम्प्रदायिक संगठनों को सन्तुष्ट करके, उन का सहयोग पाने के प्रयत्न मे थे। सिक्खों के साम्प्रदायिक संगठनों की माँगें बढ़ती जा रही थीं। पुरी के मस्तिष्क पर राजनैतिक दल-बाजी के दांव-पेंचों का बहुत बोझ बना रहता था। घर मे कनक बहुत अधिक खिंच गयी थी। विचित्र स्थिति थी। सार्वजनिक जीवन में पुरी संघर्ष में फंसा हुआ था। घर मे भी उस के लिये अपने आप को भूल जाने और संतोष का अवसर न था।

पुरी ने कनक को समझाया। उस का गला स्नेह के आवेग से रुंध रहा था और आँखे उपेक्षा के अत्याचार से छलक आयी थीं—"... इतनी साध और संघर्ष से पाये हमारे जीवन को क्या हो गया है ?... तुम्हीं मेरी उपेक्षा करो तो मुझे परिवार, पत्र और राजनीति से क्या लेना है !...तुम मुझे गलत क्यों समझने लगी हो ?... तारा जो भी हो, मेरी बहन है। अल्हड़पन के आवेग की बातों को जाने दो। उसे बहुत सहना पड़ा है।...वह यहाँ आना चाहती तो तुरन्त मेरे पत्र का उत्तर देती ! पिता जी और मां को पता लग गया तो उन की तो जिद होगी कि वह ससुराल जाकर रहे। उसे यहाँ बुला कर फिर सोमराज जैसे निरंकुश, नृशंस के हाथों मे धकेल दूं...? समाज और कानून तो सोमराज के ही पक्ष में होंगे। बेचारी छिप कर निर्वाह कर रही है, उसे जिन्दगी काट लेने दो ! तुम क्या स्वयं यह नहीं सोच सकती थी ? उसे पत्र लिखने के लिये तुम्हें मुझ से पूछने की जरूरत ही क्या थी ? बल्कि

मैं चाहता हूं तुम दिल्ली जाओ तो उस से मिल कर बात करो। ठीक-ठीक सब बातें तो तभी जान सकोगी…तुम्हारी उन के प्रति ममता देख कर मैं तो तुम्हारे सामने और भी अधिक झुक गया हूं। वास्तव में तुम्हारा हृदय विशाल है। पुरी का दिल भर आया।

बंटवारे से पूर्व जालन्धर पचास-साठ हजार की आबादी का उपेक्षित सा नगर था। तीन बरस में जालन्धर की जन-संख्या तीन लाख से भी बढ़ गयी थी। पश्चिम पंजाब के कस्बों और नगरों से आये हिन्दू दुकानदार दुकानदारी ही करना जानते थे। जालन्धर की गलियों में मकानों के नीचे की बैठकें तोड़-तोड़ कर दुकानें बना दी गयी थीं। गलियां बाजार बनती जा रही थीं। मकानों की समस्या विकट से विकटतर होती जा रही थी।

सरकार ने निम्न और मध्यवित्त लोगों को, निवास स्थान की समस्या में सहायता के लिये नगर से मील भर के अन्तर पर छोटे बंगलानुमा मकानों की नयी बस्ती 'माडल टाउन' आरम्भ कर दी थी। माडल टाउन में पश्चिम से आये लोगों की सहायता के लिये पन्द्रह-बीस हजार के बने-बनाये मकान और मकानों के लिये जगहें नीलाम किये जाने की व्यवस्था थी। मकानों और धरती के दाम निश्चित थे। नीलाम में बोली केवल भुगतान की वार्षिक प्रतिशत दर की ही मांगी जाती थी। एक मकान या बंगले की जगह से अधिक खरीदने की किसी को अनुमति नहीं थी। माडल टाउन में मकानों की बिक्री आरम्भ होने पर बहुत से बने-बनाये मकान एकदम पूरे-पूरे मोल के भुगतान पर बिक गये। फिर कुछ मकान पचहत्तर फीसदी पर बिके। भाव और गिरे—पचास से चालीस, बीस, दस प्रतिशत प्रति वर्ष के भुगतान पर आ गया था।

जगह । आप चलकर देखिये तो सही । मकान ऐसे नकशे के बने हैं कि चाहें तो आधा हिस्सा किराये पर दे सकते है ।"

सोमराज की यह पहली बात थी जो कनक को अच्छी लगी । वह गली के मकान की तंग कोठरियों, तंग जीनों और चारों ओर की बस्ती के दबाव में सुविधा अनुभव नहीं करती थी । अच्छे मकान में पली थी । उसे लाहौर माडल टाउन में बहिन के यहाँ जाकर रहना अच्छा लगता था । मकान के सामने घास के आंगन और फूलों की क्यारियाँ उस की कल्पना में कौंद गयीं । जया वहाँ खेल कर कितनी स्वस्थ और प्रसन्न रहेगी ।

"आजी, खुले मकान का क्या कहना । दिल किस का नहीं करेगा परन्तु दो हजार साल का कहाँ से देंगे । यहाँ तो घर का खर्च भी ऐसे-वैसे ही चलता है ।"

पुरी ने कनक का समर्थन किया--"पन्द्रह बरस तक सालाना इतनी बड़ी रकम की जिम्मेदारी ले लेने से क्या फायदा ? जब वैसी अवस्था होगी, देखा जायेगा । प्रेस और नाज़िर के अकाउण्ट में मिलाकर पाँच हज़ार भी नहीं निकलेगा । अभी मुश्किल से कृपाराम का हज़ार भुगताया है । कागज़ लेना पड़ता है, सब बातों का खयाल रखना है । बीस हजार का कर्जा सिर पर...।" पुरी की भवें उठ गयीं । बचपन से गरीबी के संस्कारों के कारण, इतनी बड़ी रकम के विचार से ही वह आतंक अनुभव करने लगता था ।

पुरी की अपने हित के प्रति अदूरदर्शिता पर सोमराज ने स्नेह की झल्लाहट प्रकट की--"क्या बात करते हो, कर्जा होगा तो मकान तुम्हारी जायदाद नहीं हो जायगा ?"

"कैसे हो जायगा, जब तक कर्जा नहीं दे देंगे मकान सरकार का रहेगा, उस पर सूद ।"

"क्या सूद पड़ेगा ? यहाँ का किराया नहीं बचेगा । सब मकान दो सेट के हैं, एक सेट किराये पर दे दोगे तो आधी रकम तो तुम्हें किराये में ही मिल जायगी । याद रखो, दो-तीन साल में इस प्रापर्टी का दाम ड्योढ़ा हो जायगा ।"

"नमस्ते पुरी भाप्पा जी" बहस के बीच में सूरजप्रकाश भी आ गया था ।

सूरजप्रकाश ने प्रसंग समझा तो अपने मांसल-गदबदे हाथ का पंजा सोमराज के चेहरे के सामने उठाकर बोल उठा--"यार, तुम भी लाभ और सम्पत्ति की बात किन लोगों को समझा रहे हो । यह आर्टिस्ट-राइटर लोग ठहरे । इन्हें माया के बंधन से मतलब ? इन्हें दो वक्त रोटी मिल जाये । रोटी भी न मिले तो चाय मिल जाये । यह लोग अपने जुनून में मस्त रहते हैं । इन की

कलम से मोती झड़ते हैं। इन्हें उन का भी लालच नहीं। लोग इन के लिखे से हजारों पैदा करते हैं, पर इन्हें परवाह नहीं। पुरी भाप्पा को तुम ने अभी तक नहीं पहचाना ! यह तो संत आदमी हैं। इस बात का खयाल करना तुम्हारा काम है।"

सूरजप्रकाश का स्वर ऊंचा हो गया—"यह सम्पत्ति न जोड़ पर सिर छिपाने के लिये मकान तो चाहिये। गृहस्थी है, बेटी है।" वह उत्साह में आगे खिसक आया, "सुनो, माडल टाउन में तीन कनाल का टुकड़ा मैंने भी लिया है। मैं तो अपने डिजाइन से मकान बनवाऊंगा पर तुम चूको मत।"

"पर यह माने भी....." सोमराज ने दुहाई दी।

"तुम इन की मत सुनो इन के नाम से दस पर्सेन्ट पर बी क्लास का बंगला ले लो, जिम्मेदारी मेरी।" सूरजप्रकाश ने अपना मांसल हाथ अपने गद्देदार सीने पर धप्प से मार लिया।

"नहीं, नहीं, मुझे उधार नहीं चाहिये" पुरी ने इंकार में हाथ हिला दिया, "जब रुपया होगा, जमीन-मकान भी हो जायेंगे।"

"क्या बात करते हो पुरी भाप्पा !" सूरजप्रकाश ने विस्मय प्रकट किया, "रुपया तो जब चाहो हो सकता है पर जमीन-मकान तो हर समय बिकाऊ नहीं रहते। इस में रिस्क (जोखिम) की बात क्या है ? रुपया खर्च तो हो नहीं रहा है। जमीन की शक्ल में रुपया सेफ रहेगा, सवाया ड्योढ़ा हो जायगा। लाहौर के कृष्णनगर में और माडलटाउन में क्या हुआ था ? लोगों ने पचास रुपया मरला खरीदी जमीन तीन सौ-चार सौ रुपया मरला में बेची थी। गेंदाशाह तो इसी में बन गया....।"

"नहीं-नहीं, जरूरत क्या है ? मुझे उधार नहीं चाहिये।" पुरी ने फिर भी अनिच्छा प्रकट की।

"सुनो।" सूरजप्रकाश ने अपना पंजा पुरी के चेहरे के सामने फैला दिया, "मैं जमीन ले रहा हूं, मैं दूसरा मकान नहीं ले सकता।" उसने सोमराज की ओर देखा, "तुम मकान ले लो, यह तीन हजार दे दें। इन्हें किश्त देने में परेशानी होगी तो" उसने सीने पर हाथ मारा, "मेरा जिम्मा रहा। यह चाहें तो तीन हजार भी मुझ से ले लें। इस में उधार कैसा ? मेरा क्या नुकसान है। रकम का सूद मकान का किराया चुका देगा। मुझे तो मुनाफा ही है।"

कनक गली के मकान से मुक्ति पाकर बंगलानुमा जगह में रहने की उमंग न दबा सकती थी परन्तु पुरी इस समस्या पर बहुत सावधानी से विचार करना चाहता था।

पुरी सूरज प्रकाश की बात सहसा कैसे मान जाता। उसे सूरजप्रकाश से सतर्क रहने का ध्यान रहता था।

सूरजप्रकाश को पुरी लाहौर से भी थोड़ा बहुत जानता था। अदायरा मुनव्वर के गौसमुहम्मद ने प्रोफेसर शाह के नाम से प्रकाशित करने के लिये इतिहास की एक पुस्तक पुरी से लिखवायी थी। पुस्तक तैयार हुई तो दंगो मे गौसमुहम्मद का कत्ल हो गया था। पुरी वह पुस्तक लेकर सूरजप्रकाश के यहाँ गया था। सूरजप्रकाश को पुस्तक की जरूरत नही थी। उस ने पुरी से बहुत रूखा व्यवहार किया था।

१९४८ मे पुरुषार्थी एसोसिएशन के चुनाव के समय सूरजप्रकाश ने नाजिर के सम्पादक और सूद जी के पक्ष के आदमी पुरी का समर्थन किया था। पुरी ने उस की सहायता के लिये कृतज्ञता प्रकट की थी तो सूरजप्रकाश ने बेलाग ढग से कह दिया था—एहसान की क्या बात है। हम तो सच्चाई और ईमानदारी का साथ देते है। सामना होने पर वह पुरी को नमस्ते कर देता था। लाहौर के परिचय की उस ने कभी चर्चा नहीं की थी। सूरजप्रकाश जालंधर मे भी पाठ्य-पुस्तको के प्रकाशन का ही काम कर रहा था।

१९४९ नवम्बर मे सूद जी ने पुरी को हाई स्कूल बोर्ड की परीक्षा के लिये पाठ्य-पुस्तको की अनुमोदक कमेटी का मेम्बर बनवा दिया था। फरवरी मे एक सध्या सूरजप्रकाश पुरी के यहाँ आया। पुरी घर पर नही था। वह दूसरी सन्ध्या भी आया। पुरी को सन्देह हुआ, पाठ्य-पुस्तक प्रकाशक उस के यहाँ बिना प्रयोजन नही आयेगा। पुरी जानता था, पाठ्य-पुस्तको के अनुमोदन मे खूब रिश्वते चलती थी। पुरी को धाँधली से सिद्धाततः घृणा थी विशेषकर, भावी पीढी की शिक्षा मे धाँधली, वह देश के भविष्य से धोखा समझता था। वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति सतर्क था।

सूरजप्रकाश पुरी को 'राष्ट्रीय-सेवक-सघ' के गुप्त आन्दोलन की कुछ खबरे देने आया था। तब से वह आठवे-दसवे पुरी के यहाँ हो जाता था। व्यवसाय की बात उस ने कभी नही की। वह नाजिर के 'हाट-बाजार' स्तम्भ के लेखो की सराहना या साहित्यिक चर्चा ही करता था। कभी कोई मजाक सुना देता। प्राय डाक्टर के दल के लोगो की तिकडमों की बाते बता जाता था। पुरी से वह ऐसे बात करता था कि सामने बैठे पुरी से उसे कोई सम्पर्क नही था, वह पुरी के राजनैतिक पक्ष और गुणो का भक्त था। पुरी ने पंजाब की भाषा हिन्दी स्वीकार किये जाने के समर्थन मे कुछ लेख लिखे थे।

सूरजप्रकाश को पुरी का विचार बहुत उचित जान पड़ा था। वह हिन्दी नहीं जानता था परन्तु हिन्दी प्रेमी था।

मुगल प्रभाव और अंग्रेजी राज की शक्ति से पंजाब पर फारसी लिपि और उर्दू शैली जकड़ दी गयी थी। सरकार की ओर से उर्दू ही शासन और शिक्षा का माध्यम थी। सरकारी नौकरी और बौद्धिक जीविका के लिये उर्दू सीखना अनिवार्य था। पंजाब के हिन्दू-मुस्लिम और सिख अपने पारिवारिक और सामाजिक जीवन में उर्दू नहीं पंजाब की अनेक बोलियों का उपयोग करते थे परन्तु शिक्षा और शासन के लिये उर्दू का ही प्रयोग होता था। वही शैली और लिपि उन की साहित्यिक अभिव्यक्ति का भी माध्यम बन गयी थी परन्तु हिन्दुओं और सिक्खों ने उर्दू को अपनी भाषा और संस्कृति स्वीकार नहीं कर लिया था। विभाजन के पश्चात आत्म-निर्णय का अवसर पाने पर वे उर्दू को सहने के लिये तैयार नहीं थे।

उर्दू का स्थान हिन्दी ले या पंजाबी, इस विषय में विकट प्रतिद्वन्द्विता उठ खड़ी हुई थी। इस प्रतिद्वन्द्विता के मूल में हिन्दी या पंजाबी के अनुराग के साथ दूसरे सम्प्रदाय का प्रभाव बढ़ जाने की आशंका भी थी। तलवार के जोर से पाकिस्तान न बनने देने की घोषणा करने वाले मास्टर तारासिंह और उन के अनुयायी सिक्खों की ओर से पंजाब में खालसा राज (सिक्खराज) बनाने की भी माँग उठा रहे थे। हिन्दू इस माँग को अल्पमत का अन्याय समझते थे। वे पंजाबी बोलते थे, पंजाबी बोली में ही पंजाबी को न सहने के लिये हुंकारते थे। हिन्दी और पंजाबी को समान रूप से पंजाब की भाषाएं स्वीकार कर देने के भी सुझाव थे। ऐसे सुझाव को दोनों ही पक्ष, दूसरे पक्ष की जीत मान कर इस का विरोध कर रहे थे। सूरजप्रकाश भी पुरी के साथ दोनों भाषाएं स्वीकार कर लेने का विरोध करता था। वह कहता था—दो-दो जबानों की टेक्स्ट बुकें कम्पलसरी हों तो हमें तो फायदा ही है लेकिन सिर्फ अपनी जेब की ही फिक्र तो नहीं करनी चाहिये। कौम और मुल्क के मुफाद का भी तो खयाल जरूरी है।" पुरी को विश्वास हो गया था कि सूरजप्रकाश स्वार्थी नहीं था, वास्तव में ही उन का समर्थक और प्रशंसक था।

परिवार माडल टाउन के मकान में आ गया था। मकान इस प्रकार बनाया गया था कि दो बराबर भागों में बंट सकता था। दो रसोइयां और दो गुसलखाने भी थे परन्तु आधा मकान किराये पर दे देना पुरी को न सुविधा-जनक, न सम्मानजनक लगा। एक कमरा आये गये के बैठने के लिये, एक पुरी के काम करने के लिये चाहिये था। कनक अपने लिये अलग कमरा चाहती थी। उस ने पुरी के काम करने के कमरे में ही उस के लिये पलंग लगा दिया। अपने लिये दूसरी ओर के गुसलखाने के साथ के कमरे में पलंग लगा कर जया का खटोला वहां रख लिया था। ऊना को उस वर्ष बी० ए० की परीक्षा देनी थी। बसी-निगारखां के मकान में बिजली नहीं थी। वह माडल टाउन में मां से जिद्द करके आ गयी थी। जया की आया माई हीरां को कनक ने एक रसोई कोठरी के तौर पर दे दी थी।

पुरी को पहले ही आशंका थी, माडल टाउन जाने से खर्च बढ़ जायेगा। नगर तक आने-जाने का ही काफी खर्च था। जरा-जरा सी चीज के लिये शहर दौड़ना पड़ता था। अकेली हीरामाई क्या-क्या कर सकती थी? कनक को नाजिर का दफ्तर और प्रेस दूर होने के कारण दोपहर में घर आ सकने की सुविधा नहीं थी। एक और नौकर रख लिया था। पुरी पत्र और प्रेस के हिसाब में से अपने वेतन के लिये ढाई सौ के अतिरिक्त कनक की तनखाह के रूप में सवा सौ प्रतिमास और लेने लगा था। वर्ष के अन्त में ढाई हजार रुपया मकान के हिसाब मे भुगताने की चिंता थी। घर का खर्च अधिक हो जाता तो पुरी चिढ़ जाता। अधिक खर्च की जिम्मेवारी वह कनक पर समझता था। माडल टाउन में रहने का उसे ही बहुत आग्रह था। घर का खर्च संभालना पत्नी का ही काम था।

बसी-निगारखाँ में पुरी की मां ने दूध के लिये भैस रख ली थी फिर भी पांच प्राणियों का खर्च ढाई सौ रुपये भी नही होता था। इसी में मास्टरजी और भागवंती बहुत सन्तुष्ट थे। सास भी कनक को ताने देती रहती थी— बहुएं कुर्सी पर बैठ कर दफ्तर करें तो घर को कौन देखे। कनक इन तानों और पुरी की चिड़चिड़ाहट से प्रायः झुंझला उठती। कह देती— अच्छा मुझे समझ नहीं है। रुपया-पैसा तुम अपने ही हाथ में रखो। पछताने भी लगती कि ऐसी कलह से तो विक्रमपुरा का तंग मकान ही भला था। खयाल आता हम से तो गिल अच्छा। डेढ़ सौ में निबाह रहा है। ऐसे बंगले, फर्नीचर और नौकरों का सुख भाड़ में जाये। सुख की मृगतृष्णा में दुःख के कारण समेटते जा रहे हैं। क्या स्वप्न थे—साहित्य और कला में सब कुछ भूल जाने के?

अब उस का तो कहीं जिक्र ही नहीं था। पिछले तीन बरस में पुरी ने एक भी कहानी नहीं लिखी थी। कनक ने दो बार आरम्भ की तो पूरी नहीं कर पाई। इस विषय में पुरी से चर्चा करती तो पुरी कह देता—जरा जम जायें, फिर उस का भी समय आयगा। कनक कोई अच्छी रचना पढ़ कर पुरी को सुनाना या दिखाना चाहती तो पुरी दूसरी समस्याओं में उलझा रहने के कारण रस न ले पाता।

एक दिन सूरजप्रकाश ने पुरी के सामने अपनी परेशानी प्रकट की। सूरज-प्रकाश को अपनी पुस्तकें दिल्ली, इलाहाबाद और अलीगढ़ में छपवानी पड़ती थीं। प्रेस वाले उसे परेशान कर देते थे। मिडिल, मैट्रिक, इंटर, बी० ए० के लिये उस की नौ पुस्तकें अनुमोदित थीं। वह मैट्रिक, इंटर और बी० ए० की पाठ्य-पुस्तकों की कुंजियां भी छपवाता था। पुस्तकें समय पर न आ सकने के कारण दूसरे प्रकाशकों की ही पुस्तकें बिकती थीं। 'विद्या सदन' वाला हेमराज उस का पुराना प्रतिद्वन्द्वी था। सूरजप्रकाश जिस प्रेस में अपनी पुस्तकें छपने के लिये देता, हेमराज भी वहां ही अपना काम कुछ अधिक भाव पर दे देता था और सूरजप्रकाश का काम रुकवा देता था।

सूरजप्रकाश का प्रस्ताव था कि पुरी कनक प्रेस में एक लेटर प्रेस सिलेन्डर लगवा ले और सूरजप्रकाश का काम निकाल दिया करे, नहीं तो उसे अपना प्रेस लगवाना पड़ जायेगा। सूरजप्रकाश प्रति वर्ष बारह-पन्द्रह हजार रुपया छपाई के लिये दे देता था। इतने में सेकिन्डहेंड सिलेन्डर मजे में खरीदी जा सकती थी। सूरजप्रकाश कनक प्रेस को कर्ज में मशीन खरीद कर दे देने और रकम धीरे-धीरे छपाई में काटते जाने के लिये तैयार था।

पुरी स्वयं भी लेटर प्रेस सिलेन्डर की फिक्र में था। सरकारी कामों में उर्दू का स्थान गुरुमुखी और हिन्दी लेती जा रही थीं इसलिये लिथो प्रेस के लिये काम कम आने लगा था। पुरी ऐसी स्थिति में फंस गया था कि कदम पीछे हटाना आत्महत्या होता। रक्षा आगे बढ़ने में ही थी। उस ने सूरज-प्रकाश का प्रस्ताव मान लिया।

की जनता, नये शासन में निधड़क कुनबापरवरी, नोच-खसोट और धाँधली से निराश और खिन्न हो रही थी।

अंग्रेजी सरकार के पुराने रायबहादुर और खैरख्वाह अमन-सभाई और सरकारी अमलदारी से लाभ उठाने वाले लोग, कांग्रेस के मेम्बर बन कर सफेद नोकीली टोपी पहनने लगे थे। अब कांग्रेस का चन्दा चार-चार आने और रुपये-रुपये की रसीदों से इकट्ठा नहीं किया जाता था। चुनाव फंड में चंदा मिलों और कम्पनियों से बीस-चालीस हजार और लाख दो लाख रुपये के चैकों से आता था। कांग्रेस से सम्बन्ध रखने वाले जो लोग चार साल पहले सौ-सवा-सौ की नौकरियों से निर्वाह कर रहे थे अब अपने संबन्धी के मंत्री बन जाने या किसी महत्वपूर्ण कमेटी का मेम्बर बन जाने पर जहां-तहां हजार-बारह सौ पाने लगे थे। मंत्रियों के मैट्रिक भी पास न कर सकने वाले सुपूत, सरकारी विभागों के अध्यक्ष बन कर हजार रुपये मासिक से भी असंतुष्ट थे। मंत्रियों के दामादों के लिये मैनेजिंग डायरेक्टर से कम कोई पद सोचा ही नहीं जा सकता था।

मुनाफे को ही धर्म समझने वाले बड़े-बड़े पूंजीपति कांग्रेसीय लोगों के प्रति श्रद्धा और उदारता, घाटा उठा कर नहीं दिखा रहे थे। ऐसे मामलों की अफवाहें और संवाद सब लोगों की जबानों पर थे। लोग धारासभा के सदस्यों, (मेम्बर आफ लेजिस्लेटिव असेम्बली) को एम० एल० ए० न कह कर घृणा से 'मैले' लोग कहने लगे थे। कांग्रेस के मुकाबले में कोई दूसरा सशक्त राजनैतिक संगठन नहीं था। नये उठते संगठनों में से राष्ट्रीय-सेवक-संघ और कम्युनिस्ट पार्टी ने विद्रोह खड़ा करके कांग्रेस सरकार को उन्हें कुचल डालने का कानूनी अवसर दे दिया था। लोग जानते थे कि चुनाव में कांग्रेस ही विजयी होगी। निराशा की उपेक्षा में लोग कह देते थे—इन्हें ही राज कर लेने दो। यह पांच बरस से खा रहे है, इन का पेट कुछ तो भरा होगा; इन का पेट थोड़े में पुरा हो जायगा। दूसरा कोई आयगा तो जितना यह खा चुके है, उतना खाकर फिर और खायेगा।

कांग्रेस सत्ता से ऐसी निराशा और अविश्वास में, ऐसे भी कांग्रेसी नेता और मंत्री थे जो इन अफवाहों के अपवाद थे। सूद जी के लिये न जमीन जायदाद बटोर लेने की निन्दा थी, न मकान खड़ा कर लेने और बैंक बेलेन्स जमा करने की अफवाह थी। सूद जी से उन के विरोधी भी उन्हें जर-जन-जमीन के मोह से मुक्त मानते थे। उन के हजारों समर्थकों ने लाभ उठाया था। हजारों लाभ उठाने की आशा में थे। वे सब लोग तन-मन से सूद जी के समर्थक थे। उनकी सहायता के लिये तत्पर थे। पंजाब पार्लियामेंटरी बोर्ड में सूद जी का हाथ

मजबूत था। उन्हें इस समय शासन का काम न होने से नये चुनाव का व्यूह बांधने का पूरा अवसर था। उन के सामने स्वयं चुन लिये जाने का ही प्रश्न नहीं बल्कि धारासभा में अपने अधिक से अधिक समर्थक ला सकने का लक्ष था।

सूद जी का विचार नये चुनाव में पुरी को भी कांग्रेस उम्मेद्वार का टिकट देने का था। पुरी ने इस विषय में कनक से बात की और फिर गिल के सामने भी चर्चा हुई। कनक और गिल दोनों को ही इस विषय में अधिक उत्साह नहीं था। 'नाजिर' सदा कांग्रेसी शासन और धारासभा के मेम्बरों के स्वार्थपर व्यवहार की आलोचना करता आया था। पत्र अब तक गांधी जी के अंतिम दिनों के सुझावों के अनुसार कांग्रेस जनों की शासन-शक्ति का लोभ न कर, सर्व-साधारण में मिलकर उन की सेवा करने का उपदेश देता आया था। अब एकदम पासा पलट कर पुरी का धारासभा की मेम्बरी के लिये उम्मीदवार बन जाना उन्हें क्या अच्छा लगता? कांग्रेस सरकार और धारासभा से सम्बद्ध लोगों का जैसा व्यवहार और वातावरण कनक ने लखनऊ में देखा था और पंजाब के बारे में सुना था, उस से भी उत्साह नहीं हो सका।

पुरी का कहना था, चोरों को घर में चोरी कर लेने के लिये घुस जाने का अवसर देकर,स्वयं बाहर खड़े होकर चिल्लाते रहने से क्या लाभ होगा? धारासभा में जाकर सूद जी की सहायता करना आवश्यक है या हम कम्युनिस्टों की तरह सरकार के विरुद्ध खुली बगावत करें। उस का तो परिणाम देख लिया है। धारासभा में जाकर जनवादी और वैधानिक मार्ग से शासन-को, कांग्रेस के कराची अधिवेशन में स्वीकृत समाजवादी नीति के अनुसार चलाने का यत्न करना चाहिये। शासन की नीति पर सामन्ती और पूंजीवादी हितों के बढ़ते दबाव को रोकना आवश्यक है। जनता के प्रतिनिधित्व का अवसर स्वार्थी आदमियों के हाथ जाने देना राष्ट्रीय आत्म-हत्या है। मास्टर जी, नैयर, सोमराज सब पुरी के पक्ष में थे। दिल्ली से पंडित गिरधारीलाल जी ने भी पत्र लिखकर पुरी को उत्साहित किया था। कनक को चुप रह जाना पड़ा।

पुरी चुनाव की तैयारी में, अपने और सूद जी के समर्थन के लिये 'नाज़िर' का पूरा उपयोग करना चाहता था। अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने के उपालंभ से बचने के लिये उस ने 'नाज़िर' पर से अपना नाम हटा कर संचालक के स्थान पर कनक का नाम और सम्पादक के स्थान पर गिल का नाम दे देना उचित समझा।

गिल मित्रता निवाहने का निश्चय कर चुका था। उसने नाज़िर में बहुत चतुराई से, अपने संतोष और पुरी के प्रयोजन में सामंजस्य करने के लिये,

प्रजातंत्र व्यवस्था में नागरिक के कर्तव्य की चर्चा आरम्भ की। उसने शासन की नीति और विधान से उपेक्षा को आत्मरति और कर्तव्य-विमुख प्रवृत्ति बताकर, जनता को चुनाव में सतर्क रहने का आह्वान आरम्भ किया। इस के साथ ही चेतावनी थी कि जनता भावुकता में अपना वोट असमर्थ राजनैतिक संगठनों को न देकर, कांग्रेस के प्रगतिवादी पक्ष को दे। वह जनता को आश्वासन देता था, कांग्रेस जनता की है। यदि जनता सचेत रहे तो कांग्रेस जनता की भावना की ही प्रतिनिधि होगी।

पुरी गिल के सम्पादन और लेखों से गद्‌गद् हो जाता था। संध्या समय गिल से न गिल पाने पर उसे अच्छा न लगता। यदि गिल संध्या समय माडल टाउन न आ पाता तो पुरी को खल जाता।

जून में एक दिन कनक दस बजे नाजिर के दफ्तर में आयी तो गिल एक बीमार, बूढ़े से व्यक्ति से बहुत आदर और आत्मीयता से बात कर रहा था। गिल ने बूढ़े का परिचय कराया।

कामरेड दौलतराम आजाद दो मास पहले फिरोजपुर जेल से छूटा था। बेचारा जहां नौकरी पाता था, सी० आई० डी० उस की चौकसी के लिए दुकान या कारखाने के दरवाजे पर बैठी रहती थी। सरकार की दृष्टि में ऐसे संदिग्ध को अपने साथ रख कर पुलिस को कौन नाराज करता। उसे नौकरी मिल नहीं पा रही थी। दूसरा रोजगार जमाने के लिये साधन नहीं थे।

दौलतराम आजाद केवल उर्दू मिडिल पास था। वह १९३० में रावलपिंडी के एक कारखाने में खराद की मशीन पर काम करता था। वह आतिशीचक्कर (अंग्रेजी राज से देश की स्वतंत्रता के लिये सशस्त्र क्रान्तिकारी दल) में सम्मिलित हो गया था। और बम के खोल खरादने में सहायता देता था। पंजाब में कई जगह बम-विस्फोट होने पर दूसरे लोगों के साथ आज़ाद भी गिरफ्तार हो गया था।

राजनैतिक शसस्त्र षड्यंत्र के अपराध में आजाद सात बरस तक जेल में रहा था। जेल में वह पढ़े-लिखे राजनैतिक बंदियों की संगति और निकट संपर्क में रहा था। उस संगति के प्रभाव से आज़ाद की कल्पना में देश की स्वतंत्रता का चित्र बदल गया था। वह केवल अंग्रेजी राज का ही विरोधी न रह कर, देश में किसान-मजदूर और गरीब जनता के राज के स्वप्न देखने लगा था। जेल से छूटा तो उस के छोटे भाई ने घर की हालत संभाल ली थी। दौलतराम कम्युनिस्ट पार्टी का मेम्बर बन गया। 'पार्टीबेज' (कम्युनिस्ट

कार्यकर्ता को पार्टी से मिलने वाला वेतन) पच्चीस रुपया माहवार पर दिन भर मजदूरों के संगठन के काम में लगा रहता । १९४० में वह युद्ध-विरोध के लिये जेल भेज दिया गया था । १९४२ में पार्टी की नीति युद्ध में सहयोग देने की हो गयी थी । आज़ाद जेल से छूट कर फिर पार्टी का काम करने लगा था । १९४८ में कम्युनिस्ट पार्टी ने सक्रिय क्रान्ति का नारा दिया तो वह फिर गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया था ।

१९४८-१९४९ में गिरफ्तार कम्युनिस्ट लोग–'स्ट्रगल फरोम आउट साइड एण्ड स्ट्रगल इनसाइड दि जेल (बाहर और जेलों के भीतर भी संघर्ष) में विश्वास करते थे । वे जेलों में भी विद्रोह और विरोध का प्रदर्शन करते थे । वे जेलों में नारे लगाते थे--'साम्राज्यशाही का नाश हो, पूंजीवादी सरकार का नाश हो । कांग्रेस सरकार मुर्दाबाद । नौकरशाही मुर्दाबाद । रोटी रोजी दो या गद्दी छोड़ दो । सड़ी गली सरकार को, एक ठोकर और दो । मजदूर राज जिन्दाबाद ! संसार के मजदूरो एक हो ।" देश और सरकार के भक्त, नमकहलाल जेल अधिकारी यह कैसे सह सकते थे ।

जेल के अफसर अंग्रेजी शासन में, 'अंग्रेज साम्राज्यशाही मुर्दाबाद' के नारों पर आपत्ति करते थे । कांग्रेस शासन में वे अब कांग्रेस सरकार के विरुद्ध नारों पर आपत्ति करते थे । कम्युनिस्ट, अंग्रेज सरकार की जेलों में विरोध प्रदर्शन करते रहे थे । वे लोग अंग्रेजी शासन में जेल काटने की कला में पक्के हो चुके थे । आजाद भी उन्हीं में से था । वे जेल अफसरों की आपत्ति का उत्तर उन्हें 'सरकारी कुत्ते मुर्दाबाद, जेल के कुत्ते मुर्दाबाद' नारे लगा कर देते थे ।

अहिंसा और जनवाद में विश्वास रखने वाली कांग्रेसी सरकार ने अंग्रेजी शासन के समय के जेल नियमों में बहुत से परिवर्तन कर दिये थे ।

आज़ाद, अंग्रेजी राज के समय जेल में रहा था तो कैदियों को गेहूं, जौ, चना मिली रोटी और दाल लोहे के तसला-कटोरी में मिलती थी । अब तसला कटोरी पीतल के थे और निरे गेहूं की रोटी दी जाती थी । कुछ गुड़ भी मिलता था । अब जेल के जांघिये की लम्बाई घुटने से नीचे पिंडली तक बढ़ा करे जांघिये को ऊंचा पाजामा बना दिया गया था परन्तु जंजीरें, बेड़ियां और वार्डरों के हाथों में डंडे वैसे ही थे । अकेले बन्द कर दिये जाने के लिये काल कोठरियां भी वैसी ही थीं । जेल में पुलिस का दख़ल पहिले से बहुत अधिक था । कानूनी अधिकारों की सुनवाई पहले से कम थी ।

आज़ाद, अंग्रेजी सरकार से सशस्त्र-विद्रोह के अपराध में जेल भेजा गया था । वह राजनैतिक कैदी होने के कारण बी क्लास में रहा था । वह

भोजन में रोटी, मक्खन, मांस, दूध पाता था और पढ़ने के लिये पुस्तकें भी मिल सकती थीं। वह देवली कैम्प जेल से छूटा था तब भी अढ़ाई बरस में उस का वजन दस पौंड बढ़ गया था। कांग्रेस, अंग्रेजों से लड़ते समय लाठी-गोली के उत्तर में सिर झुकाकर मार खा लेने की नीति निबाहती थी परन्तु हिंसा में विश्वास रखने वाले कम्युनिस्टों के प्रति, कांग्रेस सरकार की नीति दूसरी ही थी। सरकार के पास प्रमाण थे कि कम्युनिस्ट शासन के विरूद्ध सशस्त्र-विद्रोह की तैयारी कर रहे थे। उन्हें कानूनी सुविधायें और अधिकार देने का प्रश्न नही था।

आजाद ने दूसरे कम्युनिस्ट कैदियों के साथ जेल के नियमों की अवज्ञा करने के अपराध में हफ्तों दोनों पाओं के बीच, दो फुट का अन्तर बनाये रखने वाली बेड़ियां पहनीं, सत्याग्रह करने पर जेल की सड़कों पर घसीटा गया और डंडे खाये। काल कोठरी में बन्द कर दिया जाने पर उस ने हफ्तों के अनशन किये। उसे और उस के साथियों को मरने न देने के लिये उन की नाक में रबड़ की नाली डाल कर पेट में दूध पहुंचाया जाता था।

जेल में सब प्रकार के विद्रोह करके दंड भुगत लेने के बाद, जेल में बन्द कम्युनिस्टों को अखबारों से मालूम हुआ कि पार्टी की नीति बदल गयी थी। उन्हें जेल से छूट कर जनता मे काम करने का आदेश मिला।

आजाद जेल से छूट गया। जेल में पड़ी मार से उस की बायीं भौं टेढ़ी हो गयी थी, नाक जरा बायीं ओर झुक गयी थी। माथे और ठोड़ी पर घावों के स्थायी चिन्ह बन गये थे। जेल डाक्टर की रिपोर्ट के अनुसार उस का फेफड़ा खराब हो चुका था। उस की आयु भी पचास से ऊपर हो चुकी थी।

आज़ाद का छोटा भाई पिंडी में कत्ल हो गया था। उस की बहू का कुछ पता नहीं चल सका। आजाद अपनी बूढ़ी मां और भतीजे-भतीजी को किसी प्रकार बचा कर ले आया था पर वह १९४८ में गिरफ्तार कर लिया गया था। जेल से छूटने पर उसे पता चला कि उस का चौदह बरस का भतीजा अम्बाला छावनी में, साइकिल-मरम्मत की एक दुकान पर, आठ आने रोज और दस-बारह झापड़ और गालियां पा रहा था। बूढ़ी मां एक खद्दरधारी वकील के घर में बर्तन-भांड़े और झाड़ू-बुहारी का काम कर रही थी। नौ बरस की भतीजी वकील साहब के छोटे लड़के को गोद मे लिये रहती थी। बुढ़िया और उस की पोती को दोनों समय रोटी और महीने में पन्द्रह रुपये मिल जाते थे।

अज़ाद जेल से छूटा तो 'पार्टी' बहुत कमजोर हो चुकी थी। 'पार्टी बेज'

पर काम करने वालों की संख्या घटा दी गयी थी। आजाद इंपार्टेंट कामरेड भी नहीं था। वह स्वयं भी बुढ़िया मां और भतीजे-भतीजी की देखभाल करना चाहता था। चाहता था उस के भतीजा और भतीजी स्कूल में पढ़ें। आजाद मिस्तरी का काम जानता था परन्तु पुलिस छाया की तरह उस के पीछे लगी रहती थी। उसे नौकरी कौन देता? आज़ाद ने साइकिल-रिक्शा चलाने का यत्न किया पर फेफड़ा खराब हो जाने के कारण कड़ी मेहनत से उसे खांसी आने लगती थी और बलगम में खून आ जाता था।

गिल पिंडी में मैट्रिक में पढ़ता था तभी से आज़ाद से उस का परिचय था। आज़ाद ने ही उसे मार्क्सवादी साहित्य पढ़ाना शुरू किया था। जब गिल कालेज में पढ़ रहा था, आज़ाद नौजवानों को इकट्ठा करके गिल और दूसरे अच्छे पढ़े-लिखे नौजवानों से मार्क्सवाद के सिद्धान्तों पर बातचीत करवाता रहता था और स्वयं भी सुनता रहता था। १९४५ में गिल केश कटवा देने के कारण पार्टी से पृथक कर दिया गया तो आज़ाद, गिल पर उस के पार्टी की अवज्ञा करने के कारण बहुत नाराज हुआ था लेकिन गिल 'पार्टीवेज' छोड़ कर सितारा में सवा सौ मासिक लेने लगा था तो अवसर पर आज़ाद की मदद करता रहता था। उस के मन में आजाद के लिये आदर था। आज़ाद ने नाज़िर पर गिल का नाम देखा था और उस से मिलने के लिये जालंधर चला आया था।

आजाद का परिचय पाकर और उस की बीमारी की बात सुनकर कनक को बहुत सहानुभूति हुई। उसे कम्युनिस्ट पार्टी की नीति पर क्रोध आया, जिस के कारण आज़ाद की जेल में इतनी दुर्गति हुई। बोल पड़ी—"पार्टी का क्या है, रोज नीति बदला करते हैं। कभी युद्ध का विरोध, फिर वही युद्ध जन युद्ध हो गया। सन् ४८ में आमूल क्रान्ति, ५० में बूर्जुआ-डैमोक्रैटिक-रवोल्यूशन! लोग बरबाद होते रहें।"

"और तुम्हारी कांग्रेस क्या करती रही है? गांधी जी क्या करते रहे हैं?" आज़ाद ने कनक की सहानुभूति के उत्तर में उसे घूर कर धमकाया, "पहले नामिलवर्तन (असहयोग) में हजारों लड़कों के स्कूल-कालेज छुड़वाये, हजारों लोगों की नौकरियां छुड़वाईं और लाखों डंडे खाकर जेल गये और तुम्हारे बापू को लगा---ओह, हिमालयन ब्लंडर हो गयी! आन्दोलन वापस ले लिया। पहले विदेशी कपड़े की होली जलवानी शुरू की, उसे बन्द किया। नमक सत्याग्रह किया और बन्द किया। जंगल सत्याग्रह किया, लगान न देने का आन्दोलन चलाया और बन्द किया। काउन्सिलों का बायकाट किया, और फिर कौंसिलों में गये। राउण्ड-टेबल कांग्रेस का बायकाट किया, फिर उस में भी गये। पहले

जंग का बायकाट नामुनासिब बताया फिर उसी जंग का बायकाट किया। पहले पार्टीशन की मुखालफत की फिर उसे कबूल किया। गांधी और कांग्रेस ने कब, कितनी वार नीति नही बदली ? तुम मुझे सिखाती हो ! मै १९१९ से, जब तुम पैदा भी नहीं हुई थी, आजादी के लिये लड़ रहा हूं। तुम्हारी कांग्रेस का तो गोल (लक्ष्य) ही चेंज होता रहा है। कभी 'डोमीनियनस्टेटस' कभी 'फुल फ्रीडम अंडर द एम्पायर' कभी 'इनडिपेन्डेंस' कभी 'रिपब्लिक' कभी 'रामराज' कभी 'कैपिटलिज्म' कभी 'सोशलिज्म' ! हमारी पार्टी का तो एक ही गोल है--मजदूरों-किसानों की डिक्टेटरशिप ! टैक्टिस तो बदला ही करते है। तुम कांग्रेस वाले हमें सिखाने चले हो। जाकर शीशे में मुंह देखो ...।"

गिल ने आजाद को खांसी आ जाने के कारण कई बार--ठीक है ठीक है ! कह कर उसे चुप कराना चाहा परन्तु वह खांस-खांस कर भी बोलता ही गया।

आजाद की डांट मे कनक का चेहरा उतर गया। फिर भी बोली --"बड़े भाई जी, गांधी जी और कांग्रेसियों की गलतियों की जिम्मेवारी उन पर थोड़े ही है। गांधी जी को तो भगवान जैसे समझा देता था, मान लेते थे पर कम्युनिस्ट तो दावा करते है कि वे तर्क से काम लेते है।"

आजाद कनक की बात सुन कर पल भर मुंह खोले सोचता रहा और फिर ताली बजा कर हंस पड़ा--"अरे बहुत चालाक लड़की है, बहुत चालाक है।"

गिल और कनक ने आजाद को आश्वासन दे दिया, वह सपरिवार जालंधर आ जाये, उस के लिये प्रबंध हो जायगा।

पुरी ने सहानुभूति से कहा--प्रेस मे रख लो पालिटिकल आदमी है। जरूरत तो नही है पर उस के लिये कुछ तो करना ही चाहिये। बेचारे ने बहुत सफर किया है। चालीस-पैंतालीस से अधिक तो नहीं दे सकेंगे।"

गिल ने अनुरोध किया--"उस के घर में चार प्राणी है। मामूली से मामूली कोठरी का भी किराया दस-पन्द्रह तो देना ही होगा। बीमार आदमी है। इलाज के लिये भी खर्च चाहिये। इतने लोगों की मदद करते हो। सब कुछ सूद जी के हाथ में है। नाम को मंत्री नही है तो क्या है। डायरेक्टर जानता है, छः महीने बाद यही फिर मिनिस्टर होंगे। उन्ही के इशारे पर सब कुछ हो रहा है। आजकल तो चुनाव की तैयारी मे खूब परमिट, कोटा बांट रहे है। विशेश्वरदयाल और खेमसिंह को पांच-पांच टन का कोटा दिलाया है। इस गरीब को एक टन का ही दिला दो। तुम पर बोझ क्यों हो ?"

पुरी ने कुछ सोच कर कहा--"बात करूंगा पर भाई वह कम्युनिस्ट है।"

"क्या पोलिटिकल सफरर नहीं है ? कम्युनिस्ट पोलिटिकल नहीं होते ?" कनक बोल पड़ी ।

"कम्युनिस्ट जरूर है लेकिन इस समय तो बीमार है ।" गिल ने बीच-बचाव किया, "उस ने क्रान्तिकारी के रूप में और युद्ध-विरोध के लिये भी जेल काटी है। कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी भी नहीं है । गवर्नमेंट के लिये तो सब राजनैतिक पार्टियां बराबर होनी चाहिये !"

"हां, बात ठीक है । खैर, मैं बात करूंगा ।" पुरी ने स्वीकार कर लिया, "शायद कुछ कोटा बाकी है। सूद जी का विचार भी था पोलिटिकल सफररस को थोड़ा-थोड़ा बांट देंगे ।"

पुरी ने कह-सुन कर आज़ाद का नाम, एक टन टीन की चादर के लिये, कोटे की लिस्ट में लिखवा दिया था । गिल को संतोष था, आजाद छोटी-मोटी दुकान खोल लेगा । दुकान नहीं कर सकेगा तो दूसरे लोगों की तरह कोटा किसी के हाथ बेच दिया करेगा तो भी उसे सवा-डेढ़ सौ माहवार मिल जायगा । कोटा अलाट होने में विलम्ब होता जा रहा था । जिला सप्लाई आफसर को सूद जी ने कुछ दिन प्रतीक्षा करने के लिये कह दिया था । सूद जी कभी दिल्ली चले जाते थे, कभी अम्बाला, कभी शिमला ।

नवम्बर में सूद जी ने लिस्ट बदलवा दी । आजाद के नाम का एक टन टीन का कोटा उन्हों ने कटवा दिया और शंकरलाल मठानी के नाम तीन टन का कोटा करवा दिया ।

पुरी ने कनक के सामने अपनी विवशता प्रकट की—"मैंने तो सब कुछ किया पर सूद जी ने बदलवा दिया । मैं क्या कर सकता हूं ?"

कनक बौखला उठी—"तुम ने हम लोगों से वायदा किया था । गिल बेचारा पांच महीने से उन का बोझ अपने सिर उठाये है । सूद जी इतना न्याय भी नहीं कर सकते ? आजाद पोलिटिकल सफरर है, मठानी ने देश के लिये क्या किया है ?"

"तुम इस बात को नहीं समझती, खामुखाह बोलती हो" पुरी अंग्रेजी में झुंझलाया, "मठानी का सिंधियों में बहुत प्रभाव है । आजाद का काम तो फिर भी हो सकता है ।"

"लानत है तुम्हारे इस इलेक्शन पर और ऐसे बेईमानों पर ।" कनक के मुंह से निकल गया. फिर सहम गयी ।

"ह्वाट डू यू मीन ?" पुरी की आंखें लाल हो गयीं, "तुम अपने आप को समझती क्या हो ? मैं क्या तुम्हारा पालतू हूं......।"

कनक आंचल से मुख ढंककर पिछवाड़े के बरामदे में चली गयी परन्तु पुरी इतने जोर से बोलता रहा कि जया डर कर चीख-चीख कर रोने लगी।

बरसात समाप्ति पर थी। सूरजप्रकाश प्रायः ही संध्या समय पुरी के यहाँ आकर काफी देर तक बातचीत करता रहता था। पंजाब के स्कूलों के लिये स्वीकृत और अनुमोदित पाठ्य-पुस्तकों में परिवर्तन-परिवर्धन के लिये विचार का समय समीप आ रहा था। कनक इन बातों में कोई दिलचस्पी नही लेती थी। पुरी भी उस से इस विषय मे कोई चर्चा न करता था। इतना कनक भी जानती थी कि शिक्षा-पद्धति में परिवर्तनों के कारण पाठ्य-पुस्तके बदली और बढ़ाई जा रही थीं। पाठ्य-पुस्तकों के बदलने और बढ़ने से सूरजप्रकाश का लाभ था। पुस्तकें कमल प्रेस में छपने से उन्हें भी लाभ था। जब से प्रेस के आंगन में टीन का छप्पर डाल कर लेटर प्रेस सिलेन्डर मशीन लगाई गयी थी, मशीन प्रतिदिन दो शिफ्ट चल रही थी। पुरी खर्च के बोझ की चिन्ता से मुक्त जान पड़ता था। बल्कि दो-तीन बार बात कर चुका था कि उस के और कनक के शहर आने-जाने, इधर-उधर घूमने पर नित्य दो-तीन रुपये खर्च हो जाते थे। रुपया और समय दोनों ही बरबाद होते थे। इस से तो कोई छोटी सी सेकेण्ड-हैंड गाड़ी मिल जाती। कनक का भी विचार था, हो जाये तो अच्छा ही है।

पुरी के पड़ोस का 'बी' क्लास का बंगला रिटायर्ड अकाउन्टेंट हिम्मत-राय का था। हिम्मतराय का लड़का जीवनराय रेलवे में कोचिंग एन्ड गुड्स (सवारी और माल की गाड़ियों) का सब-इंस्पेक्टर था। उन दिनों उस की नियुक्ति अमृतसर में थी। अमृतसर में भी मकानों की बहुत तंगी थी। भग-वान ने उसे सन्तान का वरदान मुक्त-हस्त होकर दिया था। दस बरस में दो लड़कियां और चार लड़के थे। जीवनराय खर्च के विचार से बीवी-बच्चों को पिता के यहाँ ही रहने देता था।

हिम्मतराय बच्चों की शिक्षा के बढ़ गये खर्चे पर क्षोभ और विस्मय प्रकट करते रहते थे--हम लोगों के जमाने में प्राइमरी तक लकड़ी की पट्टी और स्लेट से ही काम चल जाता था। अब तो दूसरी-तीसरी जमात में बच्चों को इतनी कापियाँ चाहिये जितनी हम ने मेट्रिक में भी नही खरीदी थीं।.... हमारे जमाने में सातवी-आठवीं के कोर्स मे चार नही पाँच किताब हो जाती थीं, अब तो मजमूनों की गिनती नहीं और किताबों की गिनती नहीं। इन के बस्ते देखो, जैसे वकील कचहरी जा रहे हों! लियाकत देखो तो खाक पढ़ायी

नहीं होती। इतने खर्च का बोझ गरीब लोग कैसे उठा सकते हैं? हर रोज किसी बच्चे को कापी, किसी को किताब चाहिये। यह तालीम फैलाने का तरीका है या उसे रोकने का···।

कनक जानती थी, दिल्ली में पिता जी की अवस्था अच्छी नहीं थी। बटवारे से पहले उन की भी चार-पांच पुस्तकें पाठ्यक्रम में अनुमोदित थीं परन्तु सन् ४९ तक वे बहुत कठिनाई से एक पुरानी ट्रेडल खरीद कर, केवल दो छोटी-छोटी पुस्तकें छाप सके थे। पुस्तक विक्रेता उन से व्यवसायिक सम्पर्क टूट जाने के कारण पिछले उधार चुका देना भी आवश्यक नहीं समझ रहे थे। बाजार में उन की पुस्तकें न मिल सकने के कारण पाठ्य-पुस्तक कमेटी उन की पुस्तकों को पाठ्य-पुस्तकों की सूची से हटा देने के लिये विवश थी। पुरी ने यत्न करके सूची में दो पुस्तकें रखवा ही दी थीं।

पंडित गिरधारीलाल जी फिर से पांव जमा लेने के लिये बहुत परिश्रम कर रहे थे। साधारण साहित्यिक पुस्तकें छाप कर निर्वाह कठिन था। ऐसी पुस्तकों पर तिहाई या उस से भी अधिक कमीशन पुस्तक-विक्रेता की होती। वर्ष भर में पांच सौ प्रतियां बिक गयीं तो क्या बनता है? पाठ्य-पुस्तक कमेटी से सम्पर्क रखने वाले लोगों से, पुस्तक लिखवाने के लिये पेशगी रकमें चाहिये थीं।

पंडित जी ने कनक को लिखा था कि उन्हों ने बारह-चौदह वर्ष के किशोरों के लिये नागरिक-नैतिकता के विषय पर रोचक और उपयोगी पुस्तक बहुत मेहनत से लिखी थी और उसे पाठ्य-पुस्तक अनुमोदक कमेटी की बैठक से पहले ही छपवा लेने का प्रयत्न कर रहे थे। कनक ने वह पत्र पुरी को दिखा दिया था।

पाठ्य-पुस्तकों के निर्णय का समय आ गया था। कनक के मन में बार-बार चिन्ता उठती थी कि पुरी पिता जी की पुस्तकों के बारे में न भूल जायें परन्तु आज़ाद के लिये टीन के कोटे का झगड़ा अभी ताजा ही था। गिल के सामने लज्जित होने और उसे निराश करने के क्रोध में मुख से कड़ी बात निकल गयी थी। अब स्वयं ही ऐसी बात करती! सोचती थी—इन्हों ने जाने किन लोगों से क्या-क्या वायदे किये हुये होंगे। मेरी बात का मूल्य भी क्या?

नैयर कभी दो-तीन महीने में ही आ पाता था। पुरी भी व्यस्तता के कारण नैयर के यहाँ बहुत कम जा पाता। दिल्ली से माँ ने दोनों लड़कियों के लिये करवा के व्रत का 'बायना' (व्रत के समय मां की ओर से उपहार) कांता के यहाँ ही भेज दिया था। 'बायना' व्रत से पहले कनक के यहाँ पहुंचा देना आवश्यक था। कांता का नौकर ज्वर से पड़ा था इसलिये उसे

स्वयं ही पुरी के यहाँ आना पड़ा। नैयर को भी साथ ले आयी थी। आजाद के लिये कोटे के प्रसंग पर कलह हुये अभी पाँच ही दिन बीते थे। पुरी और कनक के बीच कलह का तनाव अभी समाप्त नहीं हो पाया था। कनक, पति से कलह की बात बहन और खास कर जीजा की आँख से बचाये रखने का बहुत यत्न करती थी परन्तु नैयर ताड़ गया। उस ने अर्थपूर्ण दृष्टि से एक बार कनक की आँखों में देख लिया। फिर ऐसे बन गया कि कुछ नहीं समझा। कनक लज्जा के मारे मर गयी थी।

कनक का जीजा से प्यार, विश्वास और आंतरिकता का बहुत गहरा सम्बन्ध था। कनक ने अपनेपन और निस्संकोच अधिकार के भरोसे पुरी के प्रति अपने प्यार को सब से पहले उस के सामने ही स्वीकार किया था और सहायता के लिये उस से लड़ी भी थी। उसी प्रेम के कारण अपनी लज्जाजनक और दयनीय स्थिति प्रकट हो जाने से वह लज्जा से गड़ जाती थी।

कांता और नैयर के लौट जाने के बाद कनक सोचती रही—''''हम दोनों को क्या हो गया है ! उस ने अपने आप को धिक्कारा—प्यार के लिये अब कोई बात होती ही नहीं। उस के मन में कभी प्यार की उमंग उठती भी थी तो पुरी को सामने पाकर बैठ जाती थी। '''पुरी के खिन्नता, झुंझलाहट और आत्म-ग्लानि में बार-बार अपने केश नोच लेने और अत्यन्त आन्तरिकता के समय उर्मिला के साथ अपनी सफलता की बात बताने की याद आ जाती थी। कनक का मन असह्य बोझ से दब जाता था।

कनक ने मन में तर्क किया—यह तो उन की प्रकृति है। उस के बिना भी तो प्यार हो सकता है। हम भी तो बहन और जीजा जी की तरह पति-पत्नी हैं।

दूसरे दिन 'करवा' का व्रत था। देश भर की स्त्रियां अपने पति को भावी जन्म में भी पाने के लिये व्रत किये थीं। कनक को इस विश्वास में कोई निष्ठा नहीं थी परन्तु व्रत कर ही लेती थीं। दिन भर निराहार रहने की तैयारी में सूर्योदय से पूर्व उठ कर सरगी खा लेना कनक के बस का नहीं था। वह दिन भर उपासी रह गई।

पति के लिये व्रत के दिन, पति से तनाव की लज्जा ने उसे और भी उदास कर दिया था। दफ्तर में पिता जी की भी बात याद आ गयी थी। कठिनाई में पड़े पिता की सहायता के लिये पति से बात करने में संकोच ! ''''यह तो प्यार का रूठना नहीं है कि मना लिये जाने की चाह हो। '''यह तो विरक्ति की फांस है। '''हाय क्या होता जा रहा है ?

कनक ने अपनी प्रतारणा की, यह विरक्ति मेरी ओर से ही है। उन की तो प्रकृति ही ऐसी है। उन का बस नहीं है। कनक ने उस अवस्था को दूर करने का निश्चय कर लिया था—जो उचित है वही करेगी, अपने अहंकार को कुचल देगी। दफ्तर में वह दिन भर यही सोचती रही। वह प्रायः चुप ही रही थी।

कनक दिन भर निराहार, निर्जल रही थी। लगभग पांच बजे उस का सिर चकराने लगा था और निर्बलता अनुभव हो रही थी तो चाय का एक प्याला पी लिया था। उस ने मेज पर पड़ी घंटी दबा कर फिरकू को बुला लिया और गली के मोड़ पर एक रिक्शा रोक लेने के लिये कह दिया।

गिल ने पूछ लिया—"क्या बात है? बहुत चुप हो। तबियत तो ठीक है?"

"व्रत से हूं, खाना नहीं खाया। कमज़ोरी सी लग रही है। आराम करूंगी।" कनक ने मुस्कराकर बता दिया।

कनक घर लौट कर अपने पलंग पर लेट गयी थी। जया को अधिक देर लाड़ न कर सकी थी। चुपचाप लेटी रही। दिन भर की सोची बातें मन में आ रही थीं। वह अपने निश्चय को दोहरा रही थी। ऊंघ आने लगी। अंधेरा हो गया था पर पुरी नहीं लौटा था। हीरां माई ने आकर पूछा—"बेटी, क्या बात है, बिजली जला दूं?"

कनक ने कहा—"कुछ नहीं। हां, जरा बिजली जला दो।" उसने कलाई पर समय देख लिया। सात बजे थे। उसने हीरां को फिर बिजली बुझा देने के लिये कह दिया। वह पुरी की प्रतीक्षा में ऊंघने लगी।

"बेटी आ, चांद देख ले!"

कनक रिवाज के तौर पर व्रत रख लेती थी पर चांद देखने का या दूसरे अनुष्ठान पूरे करने का कोई आग्रह उसे नहीं रहता था। हीरां की पुकार पर वह उठ गयी।

हीरां चलनी में दीपक जलाये खड़ी थी। बरामदे में पटरा भी रख दिया था। यह सब अनुष्ठान कनक ने मां को करते देखा था और तीन वर्ष पूर्व घर में सास के साथ रहते समय भी किया था। पिछले दो वर्षों में भी हीरां सब तैयारी कर देती थी और कनक उस का मन रखने के लिये निबाह देती थी पर उसे कुछ उत्साह अनुभव नहीं होता था।

कनक पटरे पर खड़ी हो गयी। हीरां के हाथ से दिया और चलनी ले लिये। दिये को चलनी की कोर में रखा और चलनी उठाकर चांद को देखा।

हीरां करवा के व्रत का सूत्र पढ़ने लगी—"सिर धड़ी, पैर कड़ी अर्घ देवां चौवारे खड़ी...।"(सोलह सिंगार किये, छत पर जाकर, काठ पर खड़ी होकर

अर्घ दे रही हूं) कनक हीरां माई का बोलना ध्यान से सुन रही थी।

कनक को अच्छा लग रहा था। मन ही मन पति के लिये दीर्घ आयु और कल्याण की कामना कर रही थी।

पुरी ने आते ही चेला को पुकारा--"चेला, खाना दो।"

कनक आहट पाते ही उठ गयी थी। आलमारी से नया तौलिया ले गयी। पुरी के समीप आकर कहा--"यह लो तौलिया, मुंह-हाथ धो लो। थाली तुम्हारे कमरे में ले आती हूं।"

खाने के लिये मेज पीछे के बराम्दे में थी। पुरी वहां ही जा बैठा। उस ने कह दिया—"हाथ-मुंह में क्या लगा है, सब ठीक है।"

"हाय, घूमने फिरने में पसीना आता है। शहर में धूल की कमी है।" कनक ने लाड़ से कहा, "चेला यहां ही पानी दे देगा। खाना मैं ला रही हूं।"

कनक एक ही थाली में परोस कर ले आयी थी। कनक के मन की बात खाना खाते समय बार-बार होठों पर आ रही थी परन्तु पुरी आने वाले चुनाव की बात कर रहा था—"कांग्रेस को कम से कम चालीस सीटें सिखों को देनी होंगी। अकालियों के तो सब उम्मीदवार सिख ही होंगे। जिस क्षेत्र में सिखों की संख्या अधिक है, वहां कांग्रेस के हिन्दू उम्मीदवार के लिये कोई चांस नहीं। असेम्बली में सिक्खों की मैजोरिटी पक्की हो जायेगी। वैसे तो वे तेंतीस फीसदी ही हैं। इसका कोई उपाय नहीं।..."

भोजन के बाद कनक ने स्वयं जल लाकर पुरी के हाथ धुलायें, तौलिया दिया और उस के साथ उस के कमरे में चली गयी। पुरी लेट गया तो वह पलंग की पाटी पर बैठ गई। बिना किसी भूमिका के उसने कह दिया, "पिता जी ने अपनी नयी पुस्तक के लिए लिखा था, याद है न।"

"हूं" पुरी ने चिन्ता में गोता ले कर उत्तर दिया, "इसबार मामला टेढ़ा है। खैर, जोधसिंह से बात करूंगा। यह लोग तो कदम-कदम पर सौदा करतेहैं।"

"वे लोग पुस्तक को देख लें।" कनक ने कहा।

"पुस्तक को कौन देखता है ?"

"यह तो तुम्हें करना होगा।" कनक की आंखों में आग्रह था कहा।

"क्यों नहीं" पुरी ने कनक की उँगलियों में पंजा उलझा लिया।

कनक ग्लानिपूर्ण स्मृतियों से आतंकित हो उठी। अपने प्यार के कर्तव्य को कड़वा नहीं हो जाने देना चाहती थी। मुस्कराकर कहा—"सोऊंगी, सिर में दरद है। आज व्रत था न, सिर में चक्कर आ रहे हैं।"

"कैसा व्रत।" पुरी ने कनक को पास खींच कर पूछा।

"वाह, जानते भी नहीं ! करवा का एक ही तो व्रत रखती हूं।"

"तुम भी किन वहमों में पड़ी हो" पुरी ने कनक का सिर अपने सीने पर रख कर दबा लिया।

कनक ने गहरा सांस लेकर आंखें मूंद लीं। उस समय उठकर चली जाने की जिद्द उचित नहीं थी। वह प्यार जरूर करना चाहती थी परन्तु.......।

११

तारा दो वर्ष से केन्द्रीय सरकार के सहायता और पुनर्वास विभाग में काम कर रही थी। जीवन में स्थिरता आ गयी थी। उस की संरक्षिता सीता भी बहुत अच्छी तरह हिन्दी स्टेनो का काम सीख रही थी।

रतन शीलो को लेकर पांच मास पचकुइयां रोड की गली में रहा। उस ने माता-पिता से स्पष्ट कह दिया था कि वह शीलो को लेकर ही घर लौट सकता है वर्ना वह अलग ही रहेगा। बाबू गोबिन्दराम पांच मास तक इस विषय में चुप रहे, फिर उन्हों ने शीलो को घर में ले आने की अनुमति दे दी। रतन की मां स्वयं शीलो को लिवा लाने गई और उन्हों ने उसे स्नेह से पुत्र-वधू के रूप में अपने घर में ले लिया था। उन्हों ने पड़ोसियों से शीलो के अतीत की कोई चर्चा नहीं की। पूछने वाला भी कौन था ? रतन शीलो के साथ अपने घर आगया तो एक रविवार स्वयं आकर, तारा को करोलबाग़ में अपने यहां ले गया था। उस के माता-पिता तारा को देख पाने के लिये बहुत उत्सुक थे।

तारा पहली बार रतन और शीलो से मिलने के लिये गयी थी तो संध्या तक वहां ही रही। रतन ने पुरी, मास्टर जी और चाची के विषय में पूछा था। तारा ने बता दिया था—भाई जालंधर में 'नाज़िर' के सम्पादक हैं। सब लोग ठीक ही होंगे।

रतन जब से दिल्ली में आया था, जीविका जमा लेने के संघर्ष में इतना व्यस्त रहा था कि उसे अखबार-वखबार से कोई मतलब नहीं था। पुरी का पता पाकर उसने उत्साह से पत्र लिखने और मिलने जाने का विचार प्रकट किया।

तारा ने बहुत संक्षेप में कह दिया था, इस विषय में कुछ सोचने या पत्र लिखने की जरूरत नहीं है। शीलो तारा की बात अधिक समझ सकती थी।

उस ने भी रतन और सास को समझा कर चुप रहने के लिये कह दिया था। गोप्य रहस्य की बातें रतन पिता को क्या बताता ?

बाबू गोविन्दराम के पते पर जालंधर से दो लिफाफे आये। एक स्वयं उन के पत्र का उत्तर था और दूसरा उन की मार्फत तारा के नाम था।

बाबू गोविन्दराम ने अपने हफजाबाद के मकान और लाहौर में कृष्ण नगर के दो मकानों के क्लेम के आधार पर सरकारी ऋण के लिये दरखास्त दी थी। सार्वजनिक कार्य-विभाग के वह पुराने अनुभवी आदमी थे। अपना काम करवा लेने के सब तरीके जानते थे। रतन ने पिता को बता दिया था कि तारा उसी दफ्तर में थी, वे निश्चित रहें। तारा ने सचमुच उन का काम बहुत जल्दी करवा दिया था। बाबू गोविन्दराम दो-ढाई सौ खर्च करके भी इतनी जल्दी काम बन जाने की आशा नही करते थे। गोविन्दराम तारा के प्रति स्नेह और कृतज्ञता से गद्गद् हो गये थे। उस की कुछ सेवा-सहायता करना चाहते थे। उन्हो ने रतन से पुरी का पता पाकर पुरी को पत्र लिख दिया और रतन से भी जिक्र कर दिया — उत्तर आने पर मास्टर जी और पुरी की मां को मिलने के लिये जाने का यत्न करेंगे।

रतन ने समझ लिया था — तारा के विषय में भी जरूर लिखा होगा, देखें क्या होता है ? इस विषय मे तारा को कुछ कह कर चिंतित करना उचित नहीं समझा।

रतन संध्या समय घर लौटते ही तारा के नाम का लिफाफा लेकर दरिया-गंज पहुचा। लिफाफा तारा के सामने रख कर उस ने क्षमा सी मांगी—"बाबू जी से कुछ कहना मैंने उचित नही समझा था। उत्साह मे पत्र लिखे बिना रह नहीं सके। पुरी भाप्पा ने लिखा है, मास्टर जी, मा, उषा, हरी सब राजी-बाजी है। पुरी भाप्पा का ब्याह हो गया है।"

तारा ने लिफाफा हाथ मे ले लिया। आंखे झुकाये रतन की बात सुनती रही। रतन के चले जाने पर उस ने लिफाफा खोला। पुरी ने स्नेह से खूब विस्तृत पत्र लिखा था। वास्तविक स्थिति जानने के लिये दिल्ली आने का आश्वासन दिया था। विस्मय भी प्रकट किया था कि तारा को रेडियो या दूसरे साधनों से उस का पता क्यो नही चल सका ? अनुमान प्रकट किया था कि उर्दू पढ़ने का अभ्यास न होने से वह शायद नाजिर के बारे मे नहीं जान सकी। घर का पता पूछा था और नियमित रूप से पत्र लिखने की इच्छा प्रकट की थी। पत्र मे कनक के तारा की भाभी के रूप मे आ जाने की बात भी थी। मास्टर जी का कोलडिपो अच्छा-खासा चलने की खबर थी। घर मे खुशहाली थी। अनुरोध

था कि रुपयों की आवश्यकता हो तो निःसंकोच लिख दे। उस सब के बाद सोमरजा साहनी का हाल और उस की करतूत लिख दी थी—उस ने अपनी भाभी को घर में बैठा लिया था। आश्वासन था कि अभी सोमराज से कोई चर्चा नहीं की है। सोमराज मास्टर जी के पड़ोस मे ही रहता था। उसे तारा का पता न चले इसलिये अभी मां और पिता जी से भी कोई चर्चा नहीं की थी। तारा का उत्तर मिलने पर, वह जो कुछ, जैसा चाहोगी, करने का आश्वासन था। अंत में फिर आश्वासन था कि वह शीघ्र ही दिल्ली आकर मिलेगा...।

पत्र पढ़ कर तारा गुमसुम रह गयी। उस विषय में किसी से क्या बात करती। अतीत बार-बार स्मृति में जाग उठता था। भोलापांधे की गली का जीवन, विवाह से अनिच्छा, भाई का व्यवहार, सुहागरात ...नारकीय वीभत्स अनुभव। अब उस का एक स्वतंत्र, आत्म-निर्भर जीवन बन गया है। वह उसे नही छोड़ेगी।...सोमराज जो चाहे करे, मुझे मतलब नहीं। मां और पिता जी से चर्चा नहीं की, अच्छा ही किया।

पत्र अप्रीतिकर होने पर भी तारा ने तीन दिन में उसे तीन बार पढ़ा। सोचती रही, पत्र का उत्तर क्या दे, दे या न दे? तीसरे दिन मन की व्याकुलता और उत्तेजना कम होने पर पत्र में प्रत्यक्ष के भीतर गूढ़ प्रयोजन समझने का यत्न करने लगी। पुरी ने लिखा था—आने से कुछ दिन पहले ही सूचना अवश्य दे देना। जालंधर आकर मिलने का अनुरोध नही था। अभी सोमराज या किसी को भी कुछ नहीं बताया है।... जैसा चाहोगी अवश्य किया जायेगा।

सोचा—मेरे अकस्मात चले जाने से असुविधा हो सकती है। यदि मैं उत्तर न दूं तो स्थिति जैसी है, वैसी ही रहेगी। मुझे क्या जरूरत है दबी आग में फूंकें मारूं और राख उड़ कर मेरी आंखों और सिर पर पड़े...। तारा ने भाई से कोई अनुरोध करने या सहायता मांगने की आवश्यकता अनुभव न की। पत्र का कोई उत्तर न देना ही ठीक समझा।

पुरी के पत्र से तारा के मस्तिष्क में जो तूफान उठ आया था वह कुछ दिन में स्वयं शांत हो गया। उस के सामने अपना भविष्य स्पष्ट था। उसे आत्म-निर्भर रह कर जीवन बिताना था। शरणार्थियों के लिये सहायता और पुनर्वास की समस्या पूरी हो जाने पर, विभाग के समाप्त हो जाने की संभावना थी। तारा की सहायता और सिफारिश करने वाले मौजूद थे। नरोत्तम, रावत साहब और डाक्टर श्यामा ने उसे उत्साहित किया। वह 'पब्लिक सर्विस कमीशन' की परीक्षा की तैयारी कर रही थी। प्रधान मंत्री का झुकाव प्रगति की ओर था। सरकारी नौकरियों में योग्य स्त्रियों को विशेष रूप से स्थान

देने की नीति थी। मई १९५० में तारा, सेंट्रल सेक्रेटिरियेट सर्विस के चुनाव में ले ली गयी थी।

अंडर-सेक्रेटरी के रूप में तारा की नयी नियुक्ति 'नारी-कल्याण-केन्द्रों' (वीमेंस वेलफेयर सेंटर्स) की अध्यक्ष के रूप में हुई। वह सरकारी मकान की अधिकारी थी। नयी सरकार के दफ्तरों में अफसरों और सरकारी नौकरों की संख्या बरसात में घास की तरह बढ़ रही थी। तारा से पूर्व नियुक्त या दिल्ली में स्थानान्तरित अनेक अफसर मकानों के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। तारा का वेतन भी बढ़ गया। दफ्तर आने-जाने के लिये पचास रुपया मासिक यातायात का भत्ता भी मिलने लगा। उसे एक चपरासी भी दिया गया। वेतन के खयाल से अब अलग पूरा मकान लेकर रह सकना भी कठिन नहीं था परन्तु अकेली जान के लिये इतना सरंजाम बांधते संकोच होता था। अनजाने नौकर जाने कैसा व्यवहार करें? नौकरों के व्यवहार में परिवर्तन आ जाने और उन के उच्छृंखल और दुस्साहसी हो जाने की अफवाहें फैल रही थीं। सहसा ऊंची उठ कर, लोगों की नजरों में गड़ने के विचार से झिझक अनुभव होती थी। पोशाक में इतना परिवर्तन जरूर होगया था कि दफ्तर जाते समय नित्य धोबी की धुली, झक सफेद साड़ी पहनती थी और बस के लिये क्यू में खडे रहना अच्छा नहीं लगता था। दफ्तर आना-जाना प्रायः ही टैक्सी पर हो गया था। वह मर्सी के साथ सांझी व्यवस्था में पेइंग-गेस्ट के रूप में ही संतुष्ट रहना चाहती थी।

तारा को माथुर, नरोत्तम और मर्सी ने उत्साहित किया—"तुम्हें पचास रुपया माहवार यातायात का भत्ता मिलता है। गजेटिड सरकारी अफसरों को गाड़ी खरीदने के लिये कर्जा भी मिल सकता है। तुम्हारी स्थिति और सुविधा के लिये भी उचित है कि एक छोटी सी गाड़ी ले लो।" माथुर और नरोत्तम गाड़ी चुनने और खरीदने में सक्रिय सहायता देने के लिये तैयार थे।

तारा ने संकोच प्रकट किया—"आप लोग मुझे क्यों बेवकूफ बनाते है। मैं बारह आने रुपया रोज के लिये मेहनत करने वाली, असहाय स्त्रियों की सहायता के लिये बनायी गयी संस्थाओं का प्रबन्ध करूं और उन के बीच मोटर पर चढ़ कर जाऊं?"

"आदर्शवाद की इस भावुकता को छोड़ो" "नरोत्तम ने माथुर और मर्सी के सामने ही कहा, "तुम भारत सरकार और भारत के राष्ट्रपति की प्रतिनिधि हो। राष्ट्रपति महल में रहता है। वह इस देश के किसानों की झोपड़ियाँ या फुटपाथ पर सोने वालों को देखकर लज्जित नहीं होता। हम-तुम सरकारी

नौकर हैं। हमें देखकर सरकार की सत्ता और उस का रोब प्रकट होना चाहिये। तुम्हें जनता का ऐसा दरद है तो संत विनोबा के पास जाओ या कम्युनिस्ट पार्टी की मेम्बर बनकर पार्टीबेज पर आन्दोलन करो!"

तारा ने निरुत्तर होकर भी नयी जगह लेने या गाड़ी खरीदने की इच्छा नहीं की थी परन्तु तीन ही मास में स्थिति बदल गयी।

जुलाई में चड्ढा अज्ञातवास से प्रकट हो गया था। इतने लम्बे विरह के पश्चात चड्ढा को पाकर मर्सी उसे कई घंटे के लिये आंखों से ओझल हो जाने नहीं देना चाहती थी। चड्ढा सवा दो बरस फरार रहा था। फरारी से पहले वह श्रद्धानंद बाजार के पीछे गली में रहता था। उस की फरारी के समय मालिक मकान ने उस का कमरा कब्जे में कर लिया था और दुगुने किराये पर दूसरे किरायेदार को दे दिया था।

मर्सी ने चड्ढा को निधड़क अपने यहाँ ही रख लिया और अपने विवाह के लिये अदालत में दरखास्त दे दी थी। मर्सी अपनी उमंग और प्रसन्नता वश नहीं कर पाती थी। होठों से मुस्कान बिखरती रहती, उन्माद से गुलाबी बड़ी-बड़ी आंखें चमकती रहतीं। चिकने, कोमल, गहरे सांवले मुख पर लाली छायी रहती, जैसे रक्त फट पड़ेगा। दिन भर किलकती रहती।

चड्ढा के कारण माथुर भी पहले की अपेक्षा अधिक आने लगा था। कई दूसरे कामरेड भी आ जाते थे। लम्बी-लम्बी बहसें चलती रहती थीं। विषय प्रायः एक ही रहता—कम्युनिस्ट पार्टी की नीति की आलोचना और उस की सफाई। जोशी की नीति 'स्ट्रेंगथन नेहरूज़ हैंड्स' (नेहरू की सहायता करो) रणदिवे का सोशलिस्ट रेवोल्यूशन का नारा; बोर्जुआ डेमोक्रेटिक रेवोल्यूशन (राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक क्रांति), रेवोल्यूशनरी रोल आफ स्माल नेशनल बोर्जुआ, रोल आफ वर्किंग क्लास इन डेमोक्रेटिक रेवोल्यूशन, डेंजर आफ बोर्जुआ मोनोपली, पीपल्स डेमोक्रेटिक रेवोल्यूशन...!

तारा बहसों से ऊब जाती थी। चड्ढा अब भी नेशनल बोर्जुआ की सहायता से फ्यूडलिज्म और पूंजीवादी अधिनायकत्व को समाप्त करने की नीति में विश्वास करता था। वह ज़मींदारी प्रथा के उन्मूलन, खेती की भूमि और बड़े उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के कार्यक्रम को प्राथमिकता देना चाहता था। कांग्रेस सरकार द्वारा रियासतों-रजवाड़ों की सत्ता की समाप्ति उस की दृष्टि में प्रजातंत्र की ओर सन्तोषजनक कदम था।

माथुर और तिवारी कम्युनिस्टों के समाजवादी लक्ष्यों का समर्थन करते थे परन्तु उन्हें पार्टी की नीति पर भयंकर आपत्ति थी। वह भारतीय कम्युनिस्ट

पार्टी को स्वतंत्र राष्ट्रीय संगठन नहीं, अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट संगठन का आनुषंगिक अंश ही मानते थे। उन्हें आपत्ति थी कि कम्युनिस्ट पार्टी की नीति अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियों की चेतना से नहीं अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की स्ट्रेटेजी (दाँव-पेंच) के आधार पर बनती है।

"तो इस में दोष क्या है ?" चड्ढा का उत्तर था, "किसी भी देश में साम्राज्यवादी अथवा शोषण की व्यवस्था का अन्त प्रजातंत्रवाद के लिये सहायक होगा। ऐसा प्रगतिवादी अन्तरराष्ट्रीय सहयोग किसी भी देश के राष्ट्रीय हित के विरुद्ध कैसे हो सकता है ? कांग्रेस सरकार देश की खाद्य समस्या के लिये अन्तरराष्ट्रीय सहायता ले रही है या नहीं ? कश्मीर के प्रश्न पर आप अन्तर-राष्ट्रीय मत की सहायता चाहते हैं या नहीं ? अपने उद्योग-धन्धों का विकास करने के लिये आप अमेरिका-ब्रिटेन से सहायता और ऋण ले रहे हैं या नही ?"

"यही तो मै कह रहा हूं।" माथुर बीच में ही बोल उठा, "अमेरिका-ब्रिटेन हमें अपना आश्रित बनाये रखने के लिये सहायता दे रहे हैं। याद रखिये, वह हमें बाजारू माल बनाने में सहायता देते हैं, बुनियादी उद्योग चालू करने में सहायता नहीं देते; सामरिक सामान स्वयं बना सकने में सहायता नहीं देते। ऐसे ही रूस भी अपनी शक्ति बढ़ाने में हमारा उपयोग...."

"यह इसलिये कि पूँजीवादी देशों का लक्ष्य साम्राज्यवादी है !" चड्ढा ने चेतावनी दी, "तुम सोवियत का उदाहरण चीन और कोरिया में देखो।"

तारा ने चड्ढा के समर्थन में टोक दिया--"कांग्रेस सरकार तो इन ऋणों के लिये अपनी राष्ट्रीयकरण की शर्त को भी स्थगित करने के लिये विवश हो रही है ! कांग्रेस अब अपने बीस बरस पहले स्वीकार किये कराची प्रस्तावों को क्यों नहीं पूरा करती ?"

"इन्हों ने तो सब कुछ पूंजीपतियों के हाथ में दे दिया है।" मर्सी ने क्षोभ प्रकट किया।

"नहीं-नहीं" माथुर ने आग्रह किया, "कम्युनिस्ट पार्टी एम्फेसिस (प्राथमिकता) देश की स्थिति को नहीं बल्कि अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट नीति को देती है। इन लोगों ने १९४७ में, चीन में कम्युनिस्ट सत्ता कायम हो जाने की सम्भावना देखी, पूर्वी यूरोप में समाजवादी व्यवस्था कायम होते देखी, पूर्वी बरमा, इन्डोनेशिया में विप्लव के प्रयत्न होते देखे तो भारत में भी समाज-वादी क्रांति कर लेने के लिये तैयार हो गये।..."

नरोत्तम कुर्सी पर आगे खिसक कर बोल उठा—"सर, (नरोत्तम पुराने अभ्यास और आदर से चड्ढा को अब भी 'सर' सम्बोधन करता था) उन

दिनों तो कामरेडों ने प्रोलिटेरियेट डिक्टेटरशिप कायम कर लेने की पूरी तैयारी कर ली थी। एक पुराने कामरेड मित्र हैं" नरोत्तम ने तारा की ओर देखा, "तुम जानती हो, वही लेखक साथी जो कभी-कभी कोठी पर भी आता था, लिटरेचर बेच जाता था। पिछले साल कलकत्ता से जून-जुलाई में लौटा तो कनाट-प्लेस में मुलाकात हो गयी। अपनी नयी कहानियों के संग्रह की दो प्रतियाँ लिये था। एक प्रति मुझे देकर बोला, नये ढंग की कहानियाँ हैं। पढ़ कर देखो! अपनी राय देना।"

"साथी कहानी सचमुच बहुत अच्छी लिखता है।" तारा ने याद कर कहा, "एक संग्रह मैंने पढा था।"

"हाँ सुनिये तो, साथी पन्द्रह-बीस दिन बाद कोठी पर आया। कहानियाँ मैंने पढ़ ली थीं। कुछ संकोच से कहा, भई, इस संग्रह की सभी कहानियाँ तो उतनी नहीं जंचीं।

"कामरेड एकदम बिगड़ उठा—तुम्हें क्यों जचेंगी। तुम्हें तो बोर्जुआ-ट्रेश और सेक्स चाहिये। प्रोग्रेसिव लिटरेचर क्यों अच्छा लगेगा? दिस इज़ योअर क्लास नेचर (यह तुम्हारी श्रेणी की प्रवृत्ति है)।

"मैंने सफाई दी, भई यह बात तो नहीं। तुम्हारा पहला संग्रह अच्छा लगा था।

"बोला—वह अच्छा इसलिये लगा कि तब स्पष्ट बात कहने का समय नहीं आया था। नाओ आई हैव क्लिन्चड दि इशूज़ फ्राम वर्किंग क्लास प्वांइट आफ व्यू (अब मैंने मजदूरों के दृष्टिकोण से दो टूक बात कह दी है)।

"फिर भी कामरेड को समझाना चाहा कि प्रोग्रेसिव लिटरेचर तो अपने साहित्यिक गुण के कारण भी अच्छा लगना चाहिये। गोर्की, अलेक्सी-टालस्टाय, माइकोवस्की, फास्ट, हैमिंगवे अच्छे लगते है। दो तीन हिंदी-उर्दू लेखकों के भी नाम लिये।

"साथी बहुत बिगड़ा, यह कुछ नहीं। वह सब बोर्जुआ नफासत थी, अब उस साहित्य का समय नही है। नाउ डिसाइसिव मोमेंट हैज़ कम। इट इज़ योअर क्लास नेचर! यू कांट इस्केप इट (अब निर्णय का समय आ गया है। यह तुम्हारी श्रेणी की प्रवृत्ति है तुम्हें भी पता चल जायेगा)।

कामरेड क्रोध में लौट जाने के लिये उठ खड़े हुये।

"मैंने पूछा—क्या पता चल जायेगा?

"कामरेड ने मुट्ठी बाँध कर चेतावनी दी—दोज़ हू आर नाट विद अस आर अगेंस्ट अस (जो हमारे सहायक नहीं है वह हमारे शत्रु है)। क्रांति के

समय जो कुछ होता है, जो फ्रांस में हुआ, रूस में हुआ, पूर्वी योरूप में हुआ, वही यहाँ भी होगा।"

माथुर ने टोक दिया—"बिजली के खम्भे से फांसी लगा देने की धमकी नहीं दी ?"

"सम्भव है, दे दी हो।" चड्डा मुस्करा दिया, "उत्तेजना में कौन धमकी नहीं दे देता। तुम्हारी कांग्रेसी सरकार तैलंगाना में क्या कर रही है ?"

"तैलंगाना के लिये तुम जिम्मेवार हो। तुम ने शासन को शस्त्र-शक्ति से चुनौती दी है तो शस्त्र-शक्ति से उत्तर मिल रहा है।"

नरोतम ने हाथ उठा कर सुनने का संकेत किया—"मैंने चिन्ता प्रकट की, भाई साथी, हम तो सदा तुम्हारा साथ देते रहे हैं। मार्कसिज़म को हम सपोर्ट करते है। पार्टी लिटरेचर खरीदते रहे हैं, कभी-कभी पार्टी को चन्दा भी दिया है।

साथी ने नाक चढ़ा कर कहा—"लिप सिम्पथी (थोथी बातों) से क्या होता है ? कभी दस रुपये फेंक दिये तो क्या हुआ ? फ्लैश या ब्रिज के चस्के में बीस भी फेंक देते हो। टेस्ट आफ थियोरी इज इन प्रेक्टिस (सिद्धांत की कसौटी व्यवहार होता है)।

"कातरता से मैंने अनुरोध किया—साथी, हम तुम्हारा विरोध कैसे कर सकते है ? पुरानी दोस्ती का भी ख्याल नही करोगे ?

"कामरेड दायें पाँव पर घूम कर बोले, वायदा नही कर सकता।"

माथुर और तारा हंसी से उछल पड़े।

"चल बातूनी, तुम हो ही पक्के बोर्जुआ।" मर्सी ने डाँट दिया। उसे कम्यूनिस्टों का मजाक अच्छा नहीं लगा।

"बचकाना लोग तो सभी जगह होते है" चड्ढा मुस्करा दिया।

माथुर ने कहा—"मै बचकाना लोगों की बात नहीं कह रहा हूं। तुम लोगों की नीति सदा अन्यत्र से प्राप्त आदेशों के अनुसार चलती है। सब जानते हैं, तुम लोगों ने अपनी कलकत्ता काँग्रेस की नीति 'फार लास्टिंग पीस एण्ड पीपल्स डेमोक्रेसी' में प्रकाशित लेख के आधार पर बदली है। तुम इन्कार नहीं कर सकते !"

"इन्कार करने की जरूरत क्या है ?" चड्डा ने उत्तर दिया, "यदि पार्टी अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिवादी प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर, देश के लिये नीति निश्चित करने का यत्न करती है तो हर्ज क्या है ? यदि किसी समय इस देश के साथी, परिस्थितियों पर मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को उचित रूप से लागू न

कर सकें तो दूसरे समझदार या अनुभवी लोग सीख सकते हैं। इस में आपत्ति क्या है? कांग्रेस सरकार भी तो विशेषज्ञों को विदेशों से बुलाती है।" चड्ढा ने तिपाई पर ऊंगली मार कर पूछा, "साम्राज्यवाद से मुक्ति चाहने वाले और साम्राज्यवाद-विरोधी देशों के हित निश्चय ही साझे होंगे?"

"नहीं-नहीं, तुम्हारी पार्टी का दृष्टिकोण कभी राष्ट्रीय नहीं रहा।" माथुर ने विरोध किया। वह प्रमाण देने के लिए फिर १९४२ की घटनाओं की विवेचना को दोहराने लगा।

तारा यह सब कई बार सुन चुकी थी। अपने कमरे में चली जाने के लिये उठ गई।

"अरे बैठो, इतनी जल्दी क्या है।" मर्सी ने उसे रोक दिया।

मर्सी अपने संतोष में इतनी डूब गयी थी कि कभी उसे स्वयं ही शंका हो जाती कि लड़की कहीं उपेक्षा तो अनुभव नहीं करती। वह तारा के प्रति और भी अधिक लाड़ और चिन्ता प्रकट करने लगती। चाहती थी, तारा उन की छोटी बहिन के नाते चड्ढा से हंसी-मजाक और छेड़-छाड़ करे। घर में रौनक हो। हंसी-मजाक और चुटकी लेने में तारा को स्वयं भी रस आता था परन्तु उस के संस्कारों की सीमा थी।

मर्सी तारा को जरा भी अन्तर या परायापन अनुभव नहीं होने देना चाहती थी। पहले कभी तारा की प्रतीक्षा किये बिना भी खा-पी लेती थी परन्तु अब चड्ढा और मर्सी तारा की प्रतीक्षा करते रहते। जब तक स्वयं या चड्ढा को नींद न आने लगती, मर्सी तारा को भी बैठक में बैठाये रखना चाहती थी। तारा से उसे क्या संकोच था? वह तारा की उपस्थिति में ही पति के साथ निःसंकोच व्यवहार करने लगती। चड्ढा को 'निजू' या डार्लिंग सम्बोधन कर लेती। तारा के सामने ही चड्ढा का हाथ अपने हाथों में ले लेती या बात करते-करते उसकी बाँह पर सिर टिका देती। तारा आंखें फेर लेती या उठने लगती तो मर्सी टोक देती—"बैठो न, अभी से कहाँ जा रही है।"

तारा को पति-पत्नी के बीच में बने रहना भला नहीं लगता था। उसने बचपन से, गलियों में रहते समय, पति-पत्नी में और परिवारों में दूसरे प्रकार का व्यवहार देखा था। उस समाज में प्यार नितान्त व्यक्तिगत और गोपनीय वस्तु थी। नव-विवाहित दम्पति का दूसरों के सामने परस्पर संकोच से बात न करना शालीनता समझी जाती थी। तारा वैसा संकोच आवश्यक या उचित नहीं समझती थी। जानती थी, मर्सी आधुनिक है, उस के संस्कार दूसरे प्रकार के हैं। वह संकोच का आडम्बर क्यों करे? वे पति-पत्नी हैं, जैसे

चाहें व्यवहार करें परन्तु मेरे सामने नाटक या बेसब्री की क्या जरूरत है ? तारा को यह सब देखकर असुविधा-सी अनुभव होती थी । अपने कमरे में चले जाने पर भी साथ के कमरे से स्त्री-पुरुष में हंसी और बोलचाल सुनाई देता रहने से विचित्र बेचैनी सी लगती थी ।

तारा, नारी-कल्याण-केन्द्रों का विस्तार करने और उन्हें उपयोगी बना सकने के लिये बहुत परिश्रम कर रही थी । दफ्तर से वह थकी हुई लौटती थी परन्तु घर मे कल-कल, कायं-कायं के मारे चैन न था । उसी घर मे सवा दो बरस उस ने बहुत शान्ति से बिताये थे । उसे विश्राम के लिये चुप की आदत हो गयी थी । अब वह दफ्तर से लौटती तो घर में बहस जमी होती । बहस न होती तो मर्सी की प्रणय-लीला का दृश्य होता । तारा ऊब कर दूसरी जगह भाग जाना चाहती ।

नये अभ्यास और स्थिति के विचार से तारा के लिये अब जैसी-तैसी कोठरी में निर्वाह कर लेना कठिन था । सरकारी मकान मिल सकने के लिये प्रतीक्षा की आवश्यकता थी । उस ने वर्किंग वीमेंस होस्टल में चले जाने की बात सोची । होस्टल के बारे मे कई तरह की अफवाहें थीं । अफवाहों की परवाह न भी करती परन्तु तारा के चाहते ही तो वहाँ जगह खाली नहीं हो जा सकती थी । बीच में जब जगह खाली हुई थी, वह वहाँ गई नहीं । उस ने अपने दफ्तर के दो-तीन भले क्लर्कों से मकान ढूंढ़ देने के लिए कह दिया था। दो कमरे, रसोई-गुसलखाना समेत छोटी-से-छोटी जगह का किराया अब साठ से कम नही था । अलग मकान ले लेने पर रसोई का प्रबन्ध और तारा के दफ्तर मे रहते समय घर की रखवाली कौन करता ? तारा को विचित्र लगता था कि केवल उस की रसोई बनाने और जगह संभालने के लिए एक व्यक्ति की आवश्यकता हो । इस काम के लिए एक व्यक्ति को भोजन, रहने का स्थान दे और तनखाह भी दी जाये । दो वर्ष पूर्व वह ऐसी बात स्वीकार न करती । दफ्तर जाने से पहले और लौटकर रसोई बना लेना ही उचित समझती पर अब यह आवश्यक जान पड़ रहा था । उत्तर था, अपना काम ढंग से कर सकने की सुविधा चाहिये । फिर भी अपनी अकेली जान के लिए दो-ढाई सौ खर्च करने के विचार से मन पर बोझ सा लगता था परन्तु उस के प्रति लोगों के विचार और व्यवहार ने अपनी स्थिति ऊंची मान लेने के लिये विवश कर दिया । प्रति मास साठ-सत्तर वह सीता को भी दे रही थी । वह मन मार कर मर्सी के यहाँ होने वाली असुविधा को सहे जा रही थी ।

सीता की सहायता रोक देना उचित नहीं था । लड़की अब बहुत संयत

ढंग से चल रही थी। परिश्रम भी बहुत करती थी। उसे टाइप का अच्छा अभ्यास हो गया था। माथुर उसे कभी-कभी टाइप का काम भी दिला देता था। पन्द्रह-बीस रुपये बना लेती थी। मां-बेटी को अपनी अंधेरी सी कोठरी का किराया ही बारह रुपये दे देना पड़ता था। सीता की मां होजरी फैक्टरी से मोजे ले आती थी। मां-बेटी घर में मोजों के पंजे-एड़ियाँ भी कर रुपया सवा रुपया रोज कमा लेती थीं। उन की सहायता रोकना उचित नहीं था।

अक्टूबर के पहले सप्ताह में डिप्टी सेक्रेटरी बात्रा साहब ने तारा को बुला कर पूछा—"तुम्हारा कम्युनिस्ट पार्टी से कोई सम्बन्ध है ?"

"जी नहीं।" तारा ने उत्तर दिया। उसे प्रश्न से विस्मय हुआ। अंडर सेक्रेटरी के पद में नियुक्ति के समय, दूसरी बार भी उस के राजनैतिक विचार-व्यवहार के विषय में पूछ-ताछ हो चुकी थी। फिर ऐसा प्रश्न क्यों ? उस ने जिज्ञासा से बात्रा साहब की ओर देखा।

बात्रा साहब ने फिर पूछा—"क्या तुम्हारे मकान पर कम्युनिस्ट लोग आते-जाते हैं ? तुम्हारे मकान पर उन लोगों की मीटिंगें होती हैं ?"

तारा के मस्तिष्क में सन्देह कौंद गया। 'स्पेशल इन्टेलिजेंस' पुलिस के विषय में सुन चुकी थी। सरकारी वातावरण में सावधानी से बात करना भी सीख लिया था। सभी जानते थे कि राजा जी और सरदार पटेल ने कम्युनिस्टों को 'एनेमी नम्बर वन' (सब से बड़ा शत्रु) करार दे दिया था। सरकार कम्युनिस्टों से सम्पर्क या सहानुभूति रखने वाले अफसरों को विश्वास योग्य नहीं समझती थी।

आवश्यकता और अपनी स्थिति के विचार से अपनी गाड़ी भी रखनी चाहिये। मैं तुम्हारे हितैषी के रूप में बात कर रहा हूं। खैर, मैं तुम्हारा उत्तर लिख दूंगा लेकिन बेहतर है कि तुम जल्दी ही स्थान बदल लो। मैं लिख दूंगा, तुम जगह की तलाश में हो। सर्विस रोल में इस तरह की बात आना ठीक नहीं। जानती हो, तुम्हारा रिकार्ड एक्सेलेंट चल रहा है। तुम ने मकान के लिये एप्लाई किया है ?"

"सुना है, अभी कोई सम्भावना नहीं है। बीसियों लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं। कैसे मिल सकेगा ?"

"हाँ, ठीक है पर लेडीज को प्रायरटी दी जा सकती है। मैं उस के बारे में लिख भी सकता हूं। सरकार मकान किराये पर भी लेकर दे सकती है। खैर, समय लग सकता है, हो सकता है छः मास लग जायें। तुम मकान जल्दी बदल लो, अधिक किराया भी देना पड़े तो सर्विस के इंटेरेस्ट में परवाह मत करो।"

तारा मर्सी के स्नेह के बावजूद उस के घर की परिस्थितियों से परेशान हो चुकी थी। स्वयं ही स्थान बदल लेने की बात सोच रही थी परन्तु सरकारी दबाव से मकान बदलने की मजबूरी अच्छी नहीं लगी। वह सरकारी नियम जानती थी कि सरकारी कर्मचारियों को किसी भी राजनैतिक पार्टी का सदस्य नहीं होना चाहिये। सैद्धांतिक तर्क था कि शासन से सम्बन्धित लोगों में किसी भी राजनैतिक दल के लिये पक्षपात या विरोध होना उचित नहीं है परन्तु कांग्रेस से सहानुभूति राजनैतिक दल से सहानुभूति नहीं राजभक्ति समझी जा रही थी।

तारा ने मकान बदलने की मजबूरी के विषय में मर्सी से कुछ कहना उचित न समझा। वह दबाव में मकान बदल रही थी, यह बताना स्वयं उसका अपमान था। तारा मन ही मन कुढ़ती रही—राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री दूसरे मंत्री सब कांग्रेस के मेम्बर है ? कहने को वे एक्जीक्यूटिव (शासक अफसर नहीं हैं परन्तु नीति कांग्रेस के पक्ष में निश्चित कर ही रहे हैं। दूसरे दलों के प्रति यह असहिष्णुता कांग्रेस की डिक्टेटरशिप नही है तो क्या है ? खद्दर की हुन्डियाँ खरीदने के लिये अप्रत्यक्ष दबाव डालना क्या है ?

गांधी जयन्ती के दो सप्ताह पहले से सब सरकारी दफ्तरों में कर्मचारियों को खद्दर की हुंडियाँ खरीदने के लिये उत्साहित किया जा रहा था। उदाहरण दिये जा रहे थे कि सैक्रेटरियों ने सौ-सौ, दो-दो सौ की हुंडियाँ खरीदी है। मिस्टर बात्रा ने भी डेढ़ सौ रुपये की हुंडी खरीद ली थी। बात फैल गयी

थी कि वेतन के हिसाब से दस प्रतिशत की हुंडी सभी को खरीदनी चाहिये। तारा ने विशेष इच्छा न होने पर भी एक सौ रुपये की हुंडी खरीद ली थी।

तारा के सेक्शन के दो-तीन क्लर्कों ने अफसर की नर्मी से साहस पाकर कहा—"रुपये की तो कोई बात नहीं है पर हम खद्दर का उपयोग नहीं करते। हमें खद्दर में विश्वास नहीं; बहुत महंगा भी पड़ता है। आप कहें तो हुंडी खरीद कर घर में डाल देंगे।"

तारा ने उन्हें उत्तर दिया—"इस में विश्वास का क्या प्रश्न है? हुंडी ले लीजिये और जैसे चाहें इस्तेमाल करिये। खद्दर पहनने की मजबूरी नहीं है।"

छोटी-मोटी हुंडी सभी क्लर्कों ने खरीद ली थी परन्तु बड़बड़ाये भी जरूर थे। रामस्वरूप भट्ट फाइल लेकर तारा के कमरे में आया था। वह तारा को कभी 'सर' कभी 'हजूर' कहता था। उस ने विनय से खड़े होकर क्लर्कों के नाम ले-ले कर चुगली खायी—"''' कह रहा था, गाँधी-आश्रम और खद्दर तो सदा से पोलिटिकल रहे हैं। खद्दर में हमारा विश्वास नहीं है और महंगा भी बहुत है।''''कह रहा है, रुपये में सात आने कमीशन धोखा है। सात आने कमीशन भी तो सरकार पब्लिक से लेकर ही भरेगी। वह भी तो हमारा ही पैसा है। टैक्स हम भरें और खद्दर पहनने वाले सस्ता कपड़ा खरीदें। हम हुंडी क्यों खरीदें?'''कह रहा था, हम से कहते हैं, पी० डब्ल्यू०-ए० और आई० पी० टी० ए० (प्रगतिशील लेखक संघ और जन नाट्य संघ) कम्युनिस्टों की संस्थायें है, उन में सरकारी नौकर सहयोग न दें। अपना खद्दर जबरदस्ती पहनाते है। गाँधी-भंडार का घाटा पब्लिक से टैक्स लेकर पूरा करते है। नेहरू को चर्खा कातने का शौक है तो दिन भर 'राजघाट' पर जा कर काता करें, हमारे सिर खद्दर क्यों लादते है''''''''?"

तुरन्त मकान बदल लेने का दबाव पड़ने पर तारा को क्लर्कों के असंतोष की बातें याद आने लगीं। मकान बदलने की मजबूरी के विषय में किसी से कुछ कह कर अपना अपमान प्रकट नहीं करना चाहती थी। इतनी सी बात के लिये नौकरी छोड़ दे''''''''यह त्याग किस आदर्श के लिये करे? मैं तो केवल जीविका कमाने के लिये ही जिन्दा हूं। मेरा क्या, सभी का यही हाल है।

माथुर, रतन और दफ्तर के दो क्लर्कों की दौड़-धूप से तारा को पचकुइयाँ रोड पर एक मकान मिल गया। फ्लैट कुछ-कुछ मर्सी के फ्लैट जैसा ही था। किराया देना पड़ा अस्सी रुपये। खाना बनाने और तारा के दफ्तर में रहते समय घर की रखवाली के लिये नौकरानी की जरूरत थी। तारा यदि मर्द अफसर होती तो कोई कठिनाई न थी। उस के चपरासी के बीबी,

बाल-बच्चे दिल्ली में नहीं थे। चपरासी ऐसे साहब लोगों की तलाश में रहते थे जो रहने का स्थान दे दें। चपरासी रसोई और झाड़ू-बुहारी भी कर देते थे और रहने का स्थान और भोजन पा जाते थे। बीड़ी-तम्बाकू के लिये इनाम-इकराम भी मिलता रहता था। उन की पूरी तनखाह बच जाती थी। तारा मर्द चपरासी को कैसे रख लेती ? प्रगति की पहली मंजिल पर स्त्रियां क्लर्क और अफसर बन गयी थीं, चपरासी नहीं बनी थीं।

तारा ने सीता को बुला कर स्पष्ट बात की—"मुझ पर बहुत खर्च आ पड़ा है। नया मकान लेना है। अब सत्तर-पचहत्तर माहवार कैसे दे सकूंगी। तुम मां-बेटी को मैं एक कमरा दे दूंगी। मां घर संभाल ले। जैसी दाल-रोटी मैं खाऊंगी, तुम्हारे लिये भी हो जायगी। इधर विस्थापित स्त्रियों के दुस्साहस की भी अनेक कहानियाँ फैल रही थीं। किसी अजनबी का भरोसा और विश्वास करके जोखिम में पड़ने की अपेक्षा तारा ने यही उचित समझा। सीता और उस की माँ के लिये भी इस से अच्छा और क्या प्रबन्ध हो सकता था।

तारा कुछ दिन घर बसाने में व्यस्त रही। जीने के सामने पड़ता बराम्दानुमा कमरा आने-जाने वालों और उठने-बैठने के लिये रखा, दूसरे कमरे में अपना पलंग। बड़ा कमरा उस ने सीता और उसकी मां को दे दिया। पिछवाड़े रसोई के साथ भी बराम्दा था। मकान मालिक की एक बहुत भारी पुरानी भद्दी सी मेज वहाँ पड़ी थी। तारा ने मेज पर मोमजामा डाल दिया था।

तारा के मकान के पिछवाड़े छोटे-छोटे मकानों की गलियां थीं। सन ४७ तक वहाँ गरीब मुसलमान रहते थे। अब निम्न-मध्यवित्त पंजाबी बस गये थे। तारा रविवार के दिन पिछले बराम्दे में, मेज पर सीता के साथ खाना खा रही थी। गली के स्त्री-पुरुषों ने उन्हें देखकर ऊंचे स्वर में बात शुरू कर दी—

"देखो, देखो ! 'मेमें हो गयी है।"

"मेमे तो हैं ही !"

"वाह अच्छी भली पंजाबिने है !"

गली में चारपाई पर बैठ कर एक थाली में खाना खाते दो मर्द गाली देकर बोल पड़े—"बड़ी जंटलमैन है ! मेज पर खाना खाती हैं......"

तारा और सीता अपनी थालियां ले कर भीतर चली गयीं। सीता की माँ ने रसोई से बाहर निकल कर विरोध किया, "तुम्हें क्या, अपने घर में कोई कुछ करे ! तुम खाट पर बैठ कर नहीं खा रहे हो ! मेरी भतीजी जैसी सीधी लड़की तो दुनिया में नहीं मिलेगी, अंडर-सकटरी सरकारी अफसर है। टेलीफोन पर पुलिस बुला कर खड़ी कर देगी तो पता लगेगा।

सीता ने उसी संध्या फिर वहीं बैठ कर खाना खाया। किसी ने कुछ नहीं कहा। तारा भी वहीं बैठ कर खाना खाने लगी।

नये मकान में तारा को समय ही समय था। उस से मिलने आने वाले लोग बहुत कम थे। माथुर नियमित रूप से बुध या बृहस्पति की संध्या छः बजे के लगभग आता था। माथुर ने तारा के प्रति बड़े भाई या संरक्षक का कर्त्तव्य अपना लिया था। रूमाल में कुछ फल बाँध लाता या चांदनी-चौक से मिठाई या दाल-मोठ की पुड़िया ले आता। नरोत्तम भी आता था। वह निश्चित रूप से मास के अन्तिम सप्ताह में तारा को क्लब ले जाने के लिये आता था। कोई नयी पुस्तक खरीदता तो पढ़ कर तारा को दे जाता या घर के व्यवहार से खिन्न होता तो तारा के पास बैठ कर दिल हल्का कर जाता था। नीलम से उस की सगाई का झगड़ा मिट चुका था। अब वह रावत की अधिक प्रशंसा करता था। रावत ने उस की इच्छा भांप कर फिर बात नहीं उठाई पर आंख भी मैली नहीं की। रावत ने नीलम के लिये दूसरा लड़का देख लिया था।

दफ्तर के दो आदमी सेक्शन असिस्टेंट रामस्वरूप भट्ट और अपर ग्रेड क्लर्क खुशीराम मेहता भी तारा के यहाँ आते रहते थे। रामस्वरूप लगभग तारा से दस-बारह बरस बड़ा था। दफ्तर में तारा को अत्यन्त विनय से 'सर' या 'हुजूर' संबोधन करता था। मैडम संबोधन करते उसे झिझक अनुभव होती थी। घर पर आता तो बहिन जी या माता जी भी कह लेता था। तारा चेहरे पर मुस्कराहट नहीं आने देती थी। रामस्वरूप दफ्तर में कौन लोग क्या कहते है, क्या करते हैं यह सब खबर तारा को दे जाता था। भट्ट ने बताया था कि महादेव और विश्वास महिला-कल्याण-केन्द्रों के लिये खरीदे जाने वाले माल पर कमीशन खाते है परन्तु प्रमाण पर्याप्त नहीं दे सका। तारा कुछ नहीं कर सकी।

महता की कोशिश से ही तारा को वह फ्लैट मिल पाया था। मेहता भी पचकुइयाँ रोड पर तारा जैसे फ्लैट में ही रहता था। बेचारे की तनखाह-भत्ता मिला कर दो सौ बीस ही थी। उस ने फ्लैट में एक शिकमी किरायेदार परिवार भी रखा हुआ था। पांच बरस से उसी फ्लैट मे था। तब से पैंतालिस रुपये ही किराया दे रहा था।

मेहता प्रति रविवार अपनी डेढ़ वर्ष की लड़की को गोद में लेकर आता था। लड़की से कहता था—"बुआ जी को जय कर दे। छोटी बुआ को जय कर दे। माँ जी को भी जय कर दे!"

मेहता पूरणदेई से पूछ लेता था—"मां जी, मेरे लायक कोई सेवा हो तो

बता दीजिये। शुरू में राशन, बर्तन-भाँडे खरीदने में भी उसी ने सहायता दी थी। मेहता के मामा ने पहाड़गंज में किराने की दुकान खोल ली थी। वह सब चीजे साफ कराकर, बिनवाकर थैलियो मे बन्द करके बेचता था। उस की दुकान खूब चल निकली थी। मेहता तारा के घर के लिये सब सौदा-सुल्फ वही से ला देता था।

तारा के मकान ले लेने पर रतन, शीलो और घुल्लू को लेकर आया था। पूरणदेई और सीता स्थिति समझ कर जरा गम्भीर हो गयी थीं। तारा ने भाँपा और उस ने शीलो और रतन के साथ और भी अधिक आत्मीयता दिखायी। उन का बहुत आदर किया। घुल्लू को गोद मे लेकर दोनो के साथ एक ही थाली मे खाया। पूरणदेई और सीता को अपने माथे के तेवर छिपा लेने पड़े।

पचकुइया रोड से करोलबाग बहुत दूर नही था परन्तु तारा ने शीलो की अवस्था देख कर कहा—"उधर सड़क बहुत खराब है, तुम तकलीफ न करना। मै तुम्हारे यहाँ आ जाऊगी।"

एक संध्या नरोत्तम आया हुआ था। उसी समय माथुर भी आ गया। माथुर के हाथ मे डिब्बा देख कर नरोत्तम ने पूछा—"क्या पेस्ट्री लाये है? बहुत अच्छे आये। हमारा भी हिस्सा है।"

"पेस्ट्री, नही भाई, देखो!" माथुर ने डिब्बा नरोत्तम के सामने कर दिया। रग-बिरगे डिब्बे पर छपा हुआ था—'देवीचन्द, लाहौर सँद मिट्ठा वाले।' डिब्बा खोलने पर देखा, उस मे बर्फी थी।

"वाह भई वाह!" नरोत्तम बोल उठा, "पंजाबी रिफ्यूजियो ने आकर दिल्ली को तमीज सिखा दी वर्ना यहाँ तो मिठाई मक्खियो से भरे दोनो मे ही मिलती थी।" नरोत्तम कुर्सी पर आगे बढ़ कर उत्साह से सुनाने लगा, "परसो हमारे मामा भिवानी से बरसो बाद दिल्ली आये है। उन्हे दिल्ली की चाट याद आ गयी। उन्हे चाट खिलाने के लिये चाँदनी-चौक ले जाना पड़ा। चाट तश्तरी मे दी गयी और चम्मच भी साथ था। मामा पुराने खयाल के हिन्दू है। उन्हें चीनी और कांच के बर्तन से परहेज है। झेप कर बोले—भैया, हमे यह विलायती चाट नही चाहिये। हमे तो चाट पत्ते पर दो। चाट का पत्ता और उगली चाट कर चटकारा नही लिया तो चाट क्या हुयी? हम ने तो इस उम्र तक दुकान पर पूडी और चाट पत्तो पर ही खायी है, पानी कुल्हड मे पिया है। इस बुढापे मे नयी बात क्या सीखे? बेचारे जिधर नजर डालते थे, आँखे फटी रह जाती थी। कह बैठते—"अरे दिल्ली तो सब बदल

गयी ! बड़ी रौनक हो गयी है । दुकानों पर अंगिया की वन्दनवारें देख कर उन की आँखें झेंप से नीचे हो जाती थीं…।"

तारा ने संकोच से मुंह फेर लिया ।

नरोत्तम ने तुरन्त क्षमा माँगी और बोला—"भई, यह व्यापार की नैतिकता है । जिस चीज़ की खपत बढ़ेगी उसे बेचने के लिये उस का प्रदर्शन भी अधिक होगा । यूरोप में दुकानों पर स्त्रियों की पिंडलियाँ ही पिंडलियाँ—जनाने मोजों के इश्तहार के लिये, दिखायी देती हैं । वे लोग नारी का सौंदर्य पिंडलियों में ही देख पाते हैं ।"

नरोत्तम ने तारा की ओर देखा—"दीदी, अभयदान दें तो एक बात बताऊं !"

"हाँ, क्या ?" तारा ने पूछ लिया ।

"जैसे यहाँ के ठलुये-छोकरे आपस में कह देते हैं न, चलो भई सूरतें देख कर समय काटा जाये, वहाँ का मुहावरा है—चलो भई, सड़क पर पिंडलियों का निरीक्षण किया जाये !"

"चुप, बेशर्म !" तारा ने मुस्कान दबा कर डाँट दिया ।

माथुर ने बात बदली—"भई दिल्ली वालों को तो पंजाबियों ने चौपट कर दिया । क्या कम्पीटीशन करते हैं ! सब बिजनेस पंजाबियों ने समेट लिया है । लाजपतराय मार्केट, कमला मार्केट, करोलबाग तो बसा ही दिये; चाँदनी-चौक भी पुराने दिल्ली वालों से छीन लिया है । दिल्ली वाले भी अब सम्भल रहे हैं । पंजाबियों से ढंग सीख रहे हैं । नहीं तो मजे-मजे कहीं दस बजे दुकान खोलते थे ।"

मेहता की पत्नी और उस की बहिन दोनों जीना चढ़ कर आ गयीं । बहुत भव्य पोशाक में मेहता की बहिन गुड्डी को गोद में लिये थी । गुड्डी ने तारा को देख कर बाँहें फैला दीं—"बुआ जय !"

गुड्डी भी खूब बनी-ठनी थी । घुंघराले बालों में रिबन, बढ़िया फ्राक । तारा ने गुड्डी को गोद में लेकर चूमा और बरफी खाने को दी । नरोत्तम और माथुर ने भी बच्ची को पुचकारा—बड़ी प्यारी लग रही है ।

मेहता की पत्नी और बहिन बैठी नहीं । उन्हों ने खड़े-खड़े ही बात की—"कल बसन्त के दिन आप की गुड्डी का नामकरण कर रहे हैं । इन्हों ने तो आप से कहा ही है । सोचा, हम भी याद दिला आयें । वैसे तो पंडित को भी बुला लिया है पर 'ये' कह रहे थे, जो नाम आप कहेंगी वही रखेंगे ।"

"इतनी सी बात के लिये तकलीफ की, जरूर आऊंगी ।"

तारा से आश्वासन पा कर दोनों महिलायें चली गयीं ।

"पास-पड़ोस में काफी रिश्ते जम गये हैं?" नरोत्तम ने पूछ लिया।

"यह तो मेरे दफ्तर के क्लर्क मेहता की बीवी और बहन थीं। बहुत भले लोग है।"

"क्लर्क?" माथुर ने विस्मय प्रकट किया, "ढंग और पोशाक से तो लगा कि नयी दिल्ली के किसी ठेकेदार या दो हजार रुपया तनखाह पाने वाले अफसर के परिवार की होंगी। यू० पी० और दिल्ली के लोगों में अपनी स्थिति से बढ़ कर पहनने का कभी रिवाज नहीं था। इन्हें कतई नहीं पहचाना जा सकता कि लोअर मिडिल क्लास की स्त्रियाँ हैं?"

"यह पहचानने की जरूरत क्या है? आप को उन की सम्पत्ति और अमीरी से क्या मतलब है; वह अपनी गरीबी क्यों स्वीकार करें?" तारा ने पूछ लिया, "उन्हें शौक पूरा करने का अधिकार नहीं है?"

नरोत्तम ने माथुर की ओर देखा--"प्रोफेसर साहब, पोशाक से आर्थिक स्थिति छिप नहीं सकती।"

"क्यों नहीं छिपती; कैसे पहचान लोगे?" माथुर ने पूछ लिया।

नाखूनों और एड़ी से सब पता चल जाता है। काम-काज में लगे रहने वाले हाथ-पांव में, निठल्ले रहने वाले हाथ-पांव की कोमलता और रंगत कैसे रह सकती है, जरूर कुछ खुरदरापन या धारियां दिखायी दे जायेंगी।"

"बहुत गहरी छान-बीन करने लगे हो नोरात, पक्के लुच्चे हो गये हो।" तारा ने पूछा, "तुम्हें निठल्ले हाथ-पांव ही अच्छे लगते हैं?"

"मुझे तो हरामखोरी की निशानी, लम्बे रंगे नाखून देख कर ऊब लगती है।" नरोत्तम ने कहा, "पर इन लोगों के खर्चे कैसे चलते है?"

"शौक है, पहनते है। खर्च करते ही है। किसी से माँगने तो नहीं जाते।" तारा ने कह दिया।

"माँगने नहीं जाते पर निबाहते कैसे है! अब दिल्ली वालों में भी बीमारी फैल रही है।" माथुर ने परेशानी प्रकट की।

"निबाहते ही हैं।" तारा ने कहा, "यह तो इच्छा और निबाहने का ढंग है। पिछवाड़े के बरामदे में जाकर खड़े हो जाओ। देख लो, कैसे मकान है और किस तरह के कपड़े पहने लड़के-लड़कियाँ उन में से आ-जा रहे हैं। खुद कपड़े धोती है। घर में प्रेस न भी हो तो रेढ़ी वाले को दो पैसे देकर प्रेस करवा लेती है। दफ्तर में तो ड्रेस से पता लग जाता है कि अमुक पंजाबी है, अमुक यू० पी०, बिहार, बंगाल का है। पंजाबी तो कहता है, मैं तुम से किस बात में कम हूं। मेरी तनखाह-जायदाद से तुम्हें क्या मतलब? पंजाबी अपनी

कठिनाई या दीनता प्रकट नहीं करना चाहता ...।"

"परन्तु पंजाब और भारत के दूसरे प्रान्तों में स्वभाव का यह भेद क्यों है ? इस का कारण क्या हो सकता है ?" नरोत्तम ने गम्भीरता से जिज्ञासा प्रकट की ।

माथुर ने माथे पर गूढ़ विचार के तेवर डाल कर अनुमान प्रकट किया, "मेरा तो ख्याल है, ब्रिटिश राज ने गदर के पश्चात यू० पी०, बिहार का जैसा दमन किया वह पंजाब को नहीं भुगतना पड़ा । खास तौर पर यू०पी० बिहार की भूमि-व्यवस्था । ब्रिटिश राज में पंजाबियों को सेना-पुलिस में सब से अधिक अवसर रहा । जलवायु के प्रभाव की बात मैं नहीं मानता....।"

माथुर और नरोत्तम काफी देर तक रिफ्यूजियों के कारण दिल्ली में आ गये परिवर्तनों की चर्चा करते रहे ।

बसन्त पंचमी के दिन तारा सीता के साथ प्रातः आठ बजे मेहता के यहां गयी । तीस-चालीस स्त्री-पुरुषों का जमाव था । दफ्तर के पांच-छः क्लर्क भी थे । कई बुजुर्ग भी उपस्थित थे परन्तु तारा को ही सब से अधिक आदर-सम्मान दिया जा रहा था । तारा को संकोच अनुभव हो रहा था । वह स्त्रियों में बैठ गयी और ऐसे व्यवहार करने लगी जैसे दूसरों से भिन्न न हो ।

वैदिक रीति से नामकरण संस्कार की तैयारी थी । वेद मंत्रों से हवन-कुंड की पवित्र अग्नि में, सुगंधित सामग्री की आहुतियां दी गयीं । हवन पूर्ण हो जाने पर खुशीराम मेहता ने तारा के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—"हमारी माता जी की विनती है कि आप ही बच्ची को नाम दें ।"

इतने आदर और बड़प्पन के बोझ से तारा को पसीना आगया । निबाहने के लिये उस ने कहा—"माता जी के मुख से आशीर्वाद रूप जो नाम निकले वही सब से शुभ होगा । माता जी, आप कोई भी नाम बोल दीजिये ।"

संस्कार के पुरोहित पंडित जी ने तारा को संबोधन किया—"देवी जी, बच्ची की दादी और पिता-माता की इच्छा है कि आप अनुमति दें, तो बच्ची का नाम आप के ही नाम पर रखा जाये । वह आप की तरह योग्य, शीलवती और सफल हो सके ।"

"ठीक है, ठीक है ! सत्य है ।" बहुत से स्त्री-पुरुषों ने अनुमोदन किया ।

तारा की गर्दन झुक गयी । मस्तिष्क में ऐसी झनझनाहट हुई कि पीतल का कोई भारी बर्तन फर्श पर पटक दिया गया हो । मन में कहा—नहीं, जो मैंने भोगा है, कोई न भोगे । तारा ने अपने आप को संभाला । कंठ रुंध जाने के

कारण मुख से केवल इतना कह सकी—"सुखी हो ! उसका कल्याण हो !"

पडित जी ने वेद-मत्र पढ़ कर बच्ची का नाम 'तारा' रख दिया और आशीर्वाद दिया—"जिस योग्य विद्वान, सौम्य, साहसी देवी के आशीर्वाद से पुत्री का 'तारा' नाम रखा गया है, यह पुत्री उसी के समान गुणवती, यशवती होकर अपने जीवन में ध्रुव तारे के समान उज्ज्वल बनी रहे।"

"धन्य हो ! धन्य हो ! तथास्तु !" बहुत से लोगो ने पुरोहित का समर्थन किया।

गुड्डी को आशीर्वाद पाने के लिये तारा की गोदी मे दे दिया गया। तारा ने उमड आये आंसू रोके रहने के लिये नीचे का ओंठ दांतो से काट कर गुड्डी को सीने से लगा लिया।

सस्कार पूर्ण हो जाने पर मेहता सब मे पहले तारा के लिए लड्डू लाया और फिर अतिथियो को लड्डुओं की थैलिया बांटने लगा।

पुरोहित ने मगल कार्य का आर्यसमाजी भजन आरम्भ कर दिया—

"आज सब मिल गीत गाओ, उस प्रभू के धन्यवाद।"

सब स्त्री-पुरुष भजन मे साथ देने लगे।

तारा गर्दन झुकाये थी। उस की स्मृति मे पाच वर्ष पहले का एक ऐसा ही दिन कौंद गया था। उस की सहेली सुरेन्द्र के भांजे का नामकरण सिक्ख पंथ की रीति से हुआ था। पुरोहित ने हवन नही, ग्रन्थी ने गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ किया था। उस दिन भी अवसरवश लडके का नाम तारासिह ही रखा गया था। असद ने उस की ओर झुक कर कह दिया था—तुम्हारा भाई हो गया।

तारा के लिये समाज मे बैठे रहना कठिन हो गया। भजन समाप्त होते ही उस ने पांच रुपये का नोट, शगुन के लिये गुड्डी की छोटी सी मुठ्ठी मे दबा कर लौटने की आज्ञा चाही। औपचारिक भजनो के बाद लड़कियों का विचार ढोलकी पर टप्पे-बोलिया गाने का था। सीता गाने के लिये ठहर जाना चाहती थी। मेहता तारा को घर तक छोड़ आने के लिये चलने लगा। तारा ने उसे मना कर दिया। वह अकेली मकान पर लौट गयी।

तारा घर आकर अपने कमरे मे लेट गई। पांच बरस पहले के नामकरण की याद बार-बार मन मे आ रही थी। उस दिन प्रसाद के रूप मे थैली में लड्डू नही, हाथो की अंजलियों मे हलवा दिया गया था। हाथ घी से सन गये थे। जानती थी—पवित्र प्रसाद को कागज या बर्तन मे लेना उचित नही था। असद जेब में रूमाल न होने से बहुत झेप गया था। ग्वालमंडी से दोनो बात करते करते साथ-साथ उस के घर की गली तक गये थे। उसी दिन दोनों में

पहली बार लम्बी बातचीत हुई थी। वह बात कितनी बढ़ गयी''''''कितनी दूर तक सोच लिया था, कितना साहस बांध लिया था।''''मेरी गलती ही थी पर उस ने ही तो साहस बंधाया था ! '' समय पर साथ नहीं दिया ! उस के अपने कारण थे; स्वार्थी तो नहीं था ! अंत में तो फिर भी उस ने कहा था। हां, जब मैं मिट्टी में मिला दी जा चुकी थी। यदि वह कल्पना पूरी हो गयी होती; मैं इस समय कहां होती ? कैसी होती ? क्या वह सह्य होता ? जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ ?''' क्या सचमुच मेरे भाग्य का लेखा पहले से इस प्रकार निश्चित तैयार था ? मेरे भाग्य के कारण देश का बंटवारा हुआ या देश के भाग्य के कारण मेरी दुर्गति हुयी तारा को जब भी असद की याद आ जाती थी, इसी प्रकार की कल्पनाओं में डूब जाती थी। अपने आप को समझाती—उन बीती बातों से मतलब ! मैं जैसी हूं, बहुत अच्छी हूं।''''क्यों मान लूं कि मिट्टी में मिला दी गयी हूं !

तारा को ऊंघ आ गयी थी। सीता ने उसे पुकार कर उठाया। पूरणदेई ने लाड़ से कहा—"हाय, खाना भी भूल गयी। आओ लड़कियो, मैं परस दूं।"

तारा खाना खाने बैठी तो सीता बताने लगी—"भैन जी आप आ गयीं। बाद में भी सभी आप ही की बातें कर रही थीं। कह रही थीं, हाय कितनी सोहणी (सुन्दर) है, भोला-भोला चेहरा। बीस-बाइस की लकड़ी सी लगती है पर कितनी बड़ी अफसर है, कैसी गंभीर, ठहरी हुई है, ढंग कैसे दाना लोगों जैसे, बड़ी-बूढ़ियों जैसे हैं।"

"अच्छा रहने दे, मैं बूढ़ी नहीं तो और क्या हूं।" तारा ने टोक दिया।

"सिर स्वाह उन्हादे (उन के सिरों में धूल) बूढ़ी वे खुद होंगी, उन की बेटियां-बहुएं बूढ़ी होंगी। तू कहां बूढ़ी है ?" पूरणदेई विरोध में बोल उठी।

डिप्टी सेक्रेटरी बात्रा साहब ने तारा को फोन पर कहा—"प्लानिंग के लिये तुमने जो दूसरी रिपोर्ट दी है उस में भी वह लोग बहुत-सा ब्योरा मांग रहे हैं। उन्हों ने और भी बहुत से सवाल पूछ डाले हैं। उन का प्रश्न-पत्र भेज रहा हूं। मेरा ख्याल है, तुम इस प्रश्न-पत्र के उत्तर तैयार करके उन के दफ्तर में स्वयं ही चली जाओ। डाक्टर नाथ से मैं यही कहे देता हूं। ठीक है न !"

तारा ने तीन दिन तक नयी रिपोर्ट और नये ब्योरे तैयार किये और प्लानिंग कमीशन के औद्योगिक विभाग के आर्थिक परामर्शदाता डाक्टर नाथ के सामने पूरी व्याख्या कर सकने के लिये, निश्चित समय पर तीन बजे चप-

रासी से फाइलें उठवाये, मानसिंह रोड पर प्लानिंग के नये दफ्तर मे चली गयी।

डाक्टर पी० नाथ का चपरासी, सेवा में चपरासी लिये चली आती महिला को देख कर बेंच मे उठ कर खडा हो गया। नाम लिखने के लिये पर्ची सामने कर दी। तारा ने लिखा दिया—तारा पुरी, अंडर सेक्रेटरी, फार स्माल स्केल इन्डस्ट्रीज, वीमेंस सेक्शन।

चपरासी ने भीतर से तुरन्त लौट कर तारा के लिये दरवाजे का पर्दा उठा दिया।

डाक्टर नाथ नवम्बर के आरम्भ की सुहावनी ऊष्णता में हलके पंखे के नीचे, बडी मेज पर कोहनी टेके अपने दाहिने बैठे स्टेनो को लिखवाया नोट ध्यान से सुन रहे थे। तारा की ओर देखे बिना ही उन्हों ने अंग्रेजी में कह दिया—"कृपया एक मिनट प्रतीक्षा कीजिये, बैठिये!" स्टेनो नोट पढता रहा।

तारा ने कुर्सी पर बैठ कर डाक्टर नाथ की ओर देखा। उस की पलकें विस्मय से खुली रह गयी। प्रोफेसर डाक्टर प्राणनाथ! ···कनपटी पर और कान के नीचे बचपन मे गरम पानी से जल जाने के अमिट हलके चिह्न···। तारा को अपने हृदय की धड़कन सुनायी देने लगी। हाथ होंठो पर चला गया। फिर कुर्सी पर सम्भली, आंचल सम्भाला!"

नोट पढ लिया जाने पर प्रोफेसर ने उस पर दस्तखत कर दिये और तारा की ओर घूमा। आगन्तुक को देख कर प्रोफेसर की पलकें कुछ और खुल गयीं, पल भर को स्तब्ध रह गया। मेज पर पडी पुर्जी पर नजर डाली। चेहरे पर एक दमक सी आ गयी। बोलने के लिये गहरी सांस खीची पर बोल न सका। फिर तारा के चेहरे पर दृष्टि टिकाये, आगे झुक कर अंग्रेजी मे निश्चय के स्वर में बोला—"तुम तारा हो!" उस ने फिर मेज पर पडे पुर्जे की ओर देखा—तारा पुरी! "अपना नाम तुम ने स्वयं लिखा है। मै स्वप्नावस्था मे नही हूं। तारा को पहचानने मे भूल नही कर सकता!"

प्रोफेसर डाक्टर प्राणनाथ को देख कर गत पाँच वर्ष की स्मृतियाँ तारा के मस्तिष्क मे आँधी की तरह उमड आयी थी। उस ने मन के आवेग को वश मे कर लेने के लिये गर्दन झुका ली थी।

डाक्टर नाथ ने मेज पर झुक कर अपना हाथ तारा की ओर बढा दिया—"तुम मुझे नही पहचानती?"

प्रोफेसर नाथ के अनुमान के समर्थन मे तारा ने अपना हाथ मिलाने के लिये बढा दिया और फिर बिलकुल दृढ बन जाने के लिये दोनों हाथों की उंगलियों को आपस में जकड़ कर निश्चल हो गयी।

नाथ का मन उबल पड़ा था । वह तारा के चेहरे पर दृष्टि लगाये कुछ और आगे बढ़ कर बोलता गया—"वह क्या बेहूदा अफवाह थी...पर स्वयं मास्टर जी ने मुझ से कहा;...बहुत रो रहे थे। 'फ्लैटीज़' में आये थे तो बहुत परेशान थे। बताया था, तुम ससुराल में ऊपर की मंजिल में थीं, बच नहीं सकीं, यह क्या बकवास थी ?"

नाथ के चुप होते ही साथ के कमरे से टाइप राइटर की पट-पट बहुत ज़ोर से सुनायी देने लगी, तारा के मस्तिष्क के भाड़ में स्मृतियाँ चटख रही थीं।

तारा के मन के सब दुख और स्मृतियाँ बह जाने के लिये उमड़ पड़े थे। वह फूट-फूट कर रो देना चाहती थी। प्रोफेसर क्या नहीं जानता था ? कालेज में दाखिल होते समय आर्थिक कठिनाई का उपाय उसी की सहायता से हुआ था। जिस रहस्य के कारण, आत्म-सम्मान की रक्षा के लिये भाई के सामने सिर तोड़ लेना पड़ा था, आत्म-हत्या का यत्न किया था, उस बात में भी प्रोफेसर की सहानुभूति तारा के प्रति थी। जब वह रहस्य लज्जा का कारण बन गया, तब भी प्रोफेसर ने उस के रहस्य की रक्षा की थी परन्तु अपने आप को संभाले रखना अनिवार्य था। इतने बड़े आदमी के सामने रोना। अब वह लड़की नहीं, महिला और अफ़सर थी ! तारा के मस्तिष्क में चक्कर आ रहा था। वह दोनों हाथों की उंगलियाँ आपस में जकड़े, दांत दबाये निश्चल बनी हुयी थी। साथ के कमरे से टाइपराइटर की पट-पट बहुत ज़ोर से सुनायी दे रही थी।

प्रोफेसर मेज पर कोहनी टिकाये तारा की ओर झुक कर शीशे के पेपर-वेट को लट्टू की तरह घुमाते हुये याद कर-कर के कहता गया--'मास्टर जी सोनवां चले गये थे लेकिन मैं अगस्त के अन्त तक लाहौर में ही रहा। कैसा ध्वंस, कैसा हाहाकार ! होटल से बाहर निकलने में डर था कि पहचान कर, होटल का मुसलमान बैरा ही न छुरा मार दे ! होटल में प्रायः यूरोपियन ही थे इसलिये भय नहीं था। बैठे-बैठे ख्याल आता था, हम तो हिन्दू-मुसलमानों की दो कौमें होने की बात पर विश्वास ही नहीं कर सकते थे लेकिन यह सामने प्रत्यक्ष क्या है ? सब कुछ हमारे विश्वास पर ही निर्भर नहीं कर सकता। यदि पाकिस्तान बनाने वाले हमें शत्रु समझते हैं तो हम उन्हें जबर-दस्ती अपने साथ बाँध कर नहीं रख सकते। हम, मेरा अभिप्राय है सामूहिक-सामाजिक रूप से जिन से छू जाना असह्य समझते रहे हों, आज उन्हें अपना अंग बता कर बहकाने का यत्न करना धोखा नहीं है ? हम ने चाहे जिस कारण ऐसा व्यवहार किया हो, उस की कीमत देनी होगी। हिन्दू-मुसलमान के

हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे का बीज, सरकारी नौकरियों को हिन्दू-मुसलमानों में साम्प्रदायिक अनुपात से बाँटने के दिन या उन के चुनाव-क्षेत्र अलग-अलग बना देने से नहीं बोया गया था बल्कि मुसलमानों को म्लेच्छ और अछूत समझने के दिन से ही वह बीज बो दिया गया था। हिन्दू को आप अछूत बना कर भी दबा सकते हैं क्योंकि वह आप के धर्म से बंधा है। मुसलमान तो उस धर्म से बंधा नहीं। वह अछूत समझे जाने का अपमान क्यों बर्दाश्त करे ? जिस नियम को हम ने अपनी सत्ता की रक्षा के लिये अपनाया था, उसी नियम ने हमें खा लिया। कैसा द्वन्द्व है ?"

डाक्टर नाथ ने गहरी सांस ली। आँखें पल भर झपकीं और शायद यह सोच कर कि तारा के लिये बोल पाना कठिन है, मेज पर उंगलियों के बीच घूमते पेपरवेट पर नजर टिकाये कहने लगा—"शिमला से मास्टर जी को सोनवां पत्र लिखा था। उन का उत्तर मिला था। फिर मैं ही नहीं लिख सका। छः महीने व्यर्थ शिमला में पड़ा रहा। पंजाब यूनीवर्सिटी में कुर्सियों के लिये अजीब पैंतरे चल रहे थे। पंजाब ने मुझे केन्द्र को सौंप दिया। केन्द्र ने बंगाल भेज दिया।

"मुख्य मंत्री घोष बाबू गांधी जी की कल्पना के अनुसार विकास की योजना आरम्भ करना चाहते थे। मुझे भी लगा कि इस काम में उपयोगी हो सकूंगा लेकिन वे विकास योजनायें बंगाल का भाग्य हाथ में लिये जबरदस्त लोगों के स्वार्थों के अनुकूल नहीं थीं। उन लोगों ने घोष को ही उखाड़ फेंका। नये चीफ मिनिस्टर का ख्याल था कि मैं घोष का आदमी था। उन के तरीके में खटकता था। बरस भर से यहाँ प्रोफेसर सालिस के साथ पंचवर्षीय योजना के काम में साथ दे रहा हूं।"

तारा अब भी दोनों हाथों की उंगलियां आपस में जकड़े चुप और निश्चल थी। प्रोफेसर ने पेपरवेट को जोर से घुमाते हुये पूछ लिया—"मास्टर जी दिल्ली आ गये हैं, पुरी भी ?"

"जालंधर......" तारा ने सूख गये कंठ से घूंट भर कर कहा।

"तुम यहाँ ससुराल में होगी ?" नाथ ने अनुमान प्रकट किया।

तारा ने इंकार में गर्दन हिला दी।

"अच्छा तो तुम यहाँ नौकरी के कारण हो। खूब अच्छी जगह मिल गयी है। सिलेक्शन में आगयी होगी !"

तारा ने गर्दन हिला कर हामी भर ली।

"तुम्हें देख कर लाहौर याद आ गया। किक्के, गुल्ली, बूल्लू को पढ़ाने

तुम हवेली में आती थीं। वे भी कैसे दिन थे ? अंतिम बार तुम्हारे घर गया तो तुम विवाह के रंग-बिरंगे, गोटा लगे कपड़े पहने थी, हाथों में मेंहदी लगी हुई थी। बहुत छोटी-सी लग रही थी। अब तो सफेद कपड़ों में बिलकुल सीरियस लेडी बन गयी हो !"

तारा ने आँखें उठाईं। बहुत यत्न से फीकी सी मुस्कान चेहरे पर ला सकी।

"तुम्हारे ससुराल के लोग, तुम्हारा मियां ......" नाथ मुस्कराया, "कहाँ है ?"

तारा की गर्दन फिर झुक गयी।

नाथ मौन रह गया। कुछ पल सोच कर उस ने फिर पूछ लिया—"जालंधर में पुरी क्या कर रहा है ?"

"अखबार।"

"किस अखबार में है ?"

"नाजिर।"

"नाजिर; उर्दू में होगा। कभी देखा नहीं। ठीक चल रहा है ?"

तारा ने हामी भर ली।

नाथ ने कह दिया—"तुम भी तो कुछ बोलो। तुम ने तो कुछ बताया ही नहीं। तुम जानती हो, मुझे तुम्हारे बारे में बहुत उत्सुकता है। अपनी सब बात बताओ।"

"फिर तारा ने सूखे गले से घूंट निगल कर कहा।

नाथ ने ध्यान से तारा के चेहरे की ओर देखा और उधर से नजर हटा कर कहा—"इट्ज आल राइट।"

टाइपराइटर की आवाज खूब जोर से बार-बार कह रही थी—आलराइट, आलराइट ...आलराइट !

नाथ तारा को अपनी नजर की असुविधा से बचाने के लिये कई क्षण तक दायीं ओर की दीवार पर आंखें टिकाये पेपरवेट को लट्टू की तरह घुमाता रहा और फिर कलाई पर घड़ी देख कर बोला—"साढ़े चार बजे हैं। इस समय तो मुझ से कुछ भी काम नहीं हो सकेगा। तुम्हें देख कर इतना प्रसन्न हो गया हूं कि ध्यान काम में नहीं लगेगा।"

तारा ने कृपा और सांत्वना की छाया पाकर गर्दन झुका ली और कृतज्ञता में मुस्करा दी।

"कल साढ़े-दस-ग्यारह आ जाना, तभी काम कर सकेंगे। आ सकोगी, असुविधा तो नहीं होगी ?"

"नहीं नहीं, कोई असुविधा नही होगी।" तारा ने विश्वास दिलाया।

नाथ ने चपरासी को बुलाने की घंटी की ओर हाथ बढ़ाते हुये पूछा—"चाय मंगाऊं ?"

"इच्छा हो तो मंगा लीजिये।"

नाथ ने पूछ लिया—"तुम इस समय अपने दफ्तर जरूर जाना चाहती हो ?"

"बहुत जरूरी तो नही है।"

"तो हम लोग कही बाहर चाय पियें। कुछ देर बातचीत होगी। कितने दिन बाद मिले है। तकरीबन चार बरस बाद पर जान पड़ता है, बीच के समय में प्रलय गुजर गयी है।"

तारा ने गर्दन झुका कर हामी भरी।

नाथ ने मेज पर पड़ी फाइलो को समेट कर घटी बजायी। चपरासी के भीतर आने पर आदेश दे दिया—"यह फाइले मकान ले जाओ। तुम बस से चले जाना। हम सात-आठ बजे तक आयेंगे। हां, मेम साहब की यह फाइलें इन के चपरासी को दे दो।"

गाड़ी मे भी नाथ ही बोलता रहा—"'''मुझे बहुत दूर, अलीपुर रोड पर, फ्लैगस्टाफ मे अगे जगह मिली है। आने-जाने मे बारह मील का चक्कर हो जाता है।"

कनाट प्लेस में नाथ भीड़ से बचने के ख्याल से तारा को रायल में ले गया। तारा ने सोचा, कुछ तो वह भी बोले। उस ने इंस्पेक्टर भानुदत्त की घटना ब्योरे से सुना दी।

सात बजे नाथ ने तारा को उस के मकान के सामने पहुंचा दिया।

तारा ने अनुरोध किया—"ऊपर आइये। दो-चार मिनट बैठिये !"

"आज नही, फिर कभी आऊंगा।"

पचकुइयां रोड पर पूरणदेई तारा की बुआ और सीता उस की बहिन के रूप मे उस के साथ रहती थी। पूरणदेई का पुराना काला रेशमी लहंगा तार-तार हो गया था। नया लहगा बनवाने की समस्या थी। लाहौर-अमृतसर की प्रथा के अनुसार मध्यवित्त श्रेणी (चाहे उच्च हो या निम्न) की स्त्रियों के सम्मान का आवरण काला रेशमी लहंगा ही था परन्तु दिल्ली आकर प्रौढ़ा पंजाबने भी लहंगा छोड कर साड़ी-धोती पहनने लगी थी। तारा और सीता ने पूरणदेई को राय दी—"काले लहंगे की मनहूसियत मे क्या रखा है ? तुम भी सब लोगों की तरह धोती-पेटीकोट पहनो या सलवारें सिलवा लो !"

पूरणदेई का काला लहंगा छूटा तो राख या कोयला घोल कर रंगा दुपट्टा-चादर भी छूट गयी। तारा की स्थिति के विचार से उसे बाहर-भीतर आते-जाते समय साफ कपड़े पहनने का ख्याल रहता था। तारा ने कह-सुन कर फरवरी से सूचना विभाग में सीता को हिन्दी स्टैनो की नौकरी दिलवा दी थी। सीता भत्ता मिलाकर सवा सौ पाने लगी थी।

सीता पहली तनख़ाह लायी तो उस ने उमंग से नये कपड़े सिलवाये। अब कपड़े भड़कीले साटिन और क्रेप के नहीं सोफियाना, हल्के रंग की पापलीन और लट्ठा ही खरीदा। नकली टैबी की प्रिंटिड दो साड़ियां भी ले लीं। तारा के प्रभाव में सीता की पसन्द भी कुछ बदल गयी थी। सीता ने अपनी तनख़ाह से मां के लिये भी एक धोती जोड़ा खरीदना चाहा।

पूरणदेई ने स्नेह से विरोध किया—"कैसी बात मुंह में लाती है? महाराज जी ऐसा पाप न करायें कि बेटी की कमाई खाऊं-पहनूं। मैंने तो कठिन समय में भी तेरी कमाई का पैसा नहीं छुआ। महाराज करें, तुझे इज्जत से तेरे घर विदा कर दूं। मुझे कुछ नहीं चाहिये।"

पूरणदेई लड़की को सवा सौ की सरकारी नौकरी मिल जाने का गर्व मन में दबा नहीं पा रही थी। पड़ोस की गुरांदेई और तायी के यहां भी जाकर सुना आयी—देखो लड़की कैसी बातें करती है।

तारा ने सोचा-मैंने धोती जोड़ा, दुपट्टा लाकर दिया था, तब तो बुआ ने ऐसा नहीं कहा था। सीता पेट की लड़की है इसलिये उस की कमाई नहीं छू सकती या पैसा बचाने का बहाना है। याद आया, भोलापांधे की गली में पूरणदेई के लिये लोग क्या-क्या कहते थे""मर जाये बेहया। परमेश्वर ने यह हालत कर दी है फिर भी इस का खड्डी-चर्खी का शौक नहीं गया। छिपा-छिपा कर घसीटे से दोने लेती है। लड़की का बेड़ा गरक करेगी।" तारा ने सोचा—वह पाप नहीं था। बेटी की तनख़ाह ख़र्च करना पाप होगा। जिस बात के लिये आलोचना की आशंका हो, वही पाप है।

पूरणदेई के अच्छे दिन आ गये थे। उसे खर्च की तंगी नहीं थी फिर भी उस ने होज़िअरी-फैक्टरी से सम्बन्ध नहीं तोड़ लिया था। अब भी एड़ियां और पंजे सीने के लिये मोजे ले आती थी परन्तु अब यह धंधा लोगों की नज़रों से बचाकर करती थी। वह अफसर लड़की की बुआ थी, उस की लड़की भी सम्मानित सरकारी नौकरी पर थी। रात के भोजन के बाद सीता को भी कुछ समय के लिये साथ काम में लगा लेती।

तारा ने भी कई बार कहा—"बुआ छोड़ो इस झगड़े को, क्यों परेशान

होती हो। तुम्हारे लिये घर और रसोई का काम क्या कम है ? अब तुम्हारे आराम करने के दिन है। राम का नाम लिया करो।"

पूरणदेई ने लाड़ से उत्तर दिया—"धिये, झगड़ा क्या है। बलिहारी, तू तन्दुरुस्त रहे। मुझे काम ही क्या है। राम-नाम के लिये तो भगवान ने जिभिया (जिह्वा) दी है। हाथ-पांव चलते रहें, तभी इन्सान ठीक रहता है। जरा दिल ही बहलता है। तू जानती है, लड़की भी सियानी हो रही है। इसे बिदा करने के लिये भी चार पैसे चाहिये। मुझे और किस का भरोसा है ? मेरे लिये तो तू ही बेटा है। बहन के लिये तुझे ही फिक्र करनी है।"

तारा के पड़ोस के फ्लैट मे लाहौर की पुरानी अनारकली के दुलीचन्द तलवार रहते थे। लाहौर में वे जमीनों और मकानों की दलाली करते थे। उन्हें दिल्ली आ जाना बहुत फला था। आते ही उन्हों ने मथुरा रोड पर चार आने गज के मोल मे कुछ खेती की और कुछ ऊसर धरती खरीद ली थी। धरती में सड़कों और गलियों की दागबेल डाल कर प्लाट बना कर बेच रहे थे। सन् ५०-५१ मे उन की धरती आठ-दस रुपये गज विक रही थी। उन्हों ने कमला नगर में दो बिल्डिगे बना ली थी। मकानों और दुकानों का किराया तेरह-चौदह सौ ले रहे थे। स्वयं सवा सौ रुपया मासिक किराये के फ्लैट मे गुजारा कर रहे थे। एक बूइक गाड़ी खरीद ली थी। उन का एक लड़का पिता के साथ कारोबार कर रहा था। दुलीचन्द अपनी दोनो लड़कियों के विवाह कर चुके थे। आयु अट्ठावन के लगभग थी। चेहरे पर तेज था। सब लोग उन्हें लाला जी या ताया जी कहते थे। इसी सम्बन्ध से उन के दो लड़को की माता मुहल्ले भर की तायी कहलाती थी।

तायी पड़ोस के नाते स्वयं ही तारा की सरक्षक बन गयी। उन के घर में बहू थी, नौकर था। तायी को पड़ोसियो के यहाँ देख-भाल करने और परामर्श देते रहने के लिये काफी समय था। पूरणदेई के घर मे मर्द कोई नही था और दो-दो तडग जवान लड़कियाँ थी। तायी उन का ख्याल रखना आवश्यक समझती थी। आ बैठती तो पड़ोस के लोगों के फूहड़पन की चर्चा करती और स्वर दबाकर, पूरणदेई से तारा और सीता के विवाह के विषय में, पूछ-ताछ कर राय देने लगती।

तारा ने पूरणदेई को आरम्भ में ही सख्त ताकीद कर दी थी कि उस के घर-बार, विवाह और आग की दुर्घटना की चर्चा किसी से करने की कोई ज़रूरत नही है।

तायी तारा की बहुत सराहना करती थीं इसलिये उस की चिन्ता भी उन्हें अधिक थी। कहने लगतीं--"छोटी का क्या है। आजकल बीस-बाइस की उम्र अधिक नहीं समझी जाती। अपनी छोटी का व्याह मैंने बीस की आयु में किया था। उस ने कालेज से बी० ए० पास कर लिया था। बहना, लड़की को ज्यादा पढ़ा दो तो उस के लिये वर ढूंढ़ना और मुश्किल हो जाता है। मैं ही जानती हूं, मेरी छोटी के लिये लड़का ढूंढ़ने में कितनी परेशानी हुयी थी।''' अब यह बीए-एमे अफसर है तो इस के लिये बीए-एमे से बड़ा ही चाहिये। खुद आठ-नौ सौ की अफसर है तो इस के लिये कोई डेढ़-दो हजार का अफसर ही होना चाहिये। बहना, लड़की का व्याह आसान काम नहीं है'''। लड़की इतनी बड़ी अफसर है पर गाय जैसी सीधी है बेचारी। क्या मीठा बोल है, बोलती है तो सौ बार 'जी' कहती है, मुंह से फूल झड़ते हैं। इस के लिये परमेश्वर जी कोई ऐसा ही भेजेंगे।"

तायी अपने भतीजों की चर्चा करने लगतीं--उस के भाई का छोटा लड़का जंगलात के महकमे में अफसर है। तनख्वाह हजार ही है पर आमदनी ईश्वर की दी हुई बहुत। सरकारी सवारी, छः-छः नौकर। बड़ा लड़का रेलवाई में अफसर है। पाँच सौ तनखाह है पर आमदनी उस की भी अच्छी है। छोटे का आठ बरस का एक लड़का है। देहरादून में अंग्रेजी स्कूल के बोर्डिंग में पढ़ता है। बहू बेचारी दूसरे बच्चे के समय दिल की बीमारी से मर गयी थी। बेचारे की उम्र कुछ भी नहीं, तीस-बत्तीस-तैंतीस की होगी। रिश्ते तो बीसियों आते हैं पर वह कहता है, छोटी उम्र की लड़की से शादी नहीं करेगा। लड़की अच्छी समझदार, पढ़ी-लिखी हो। उस की पोजीशन है। घर में बड़े-बड़े अफसर, डिप्टी कमिश्नर, मजिस्ट्रेट आकर ठहरते हैं। आदमी तो इतने अच्छे हैं''''।"

तायी यह सब चर्चा तारा के सामने भी करती रहती। वह पूरणदेई से संकेत पाने की प्रतीक्षा में रहती।

सीता अपने कटु अनुभव और तारा के प्रभाव से बहुत संभल गयी थी परन्तु तारा की सूक्ष्म दृष्टि ने भांप लिया था कि लड़की संयम के बन्धनों में फिर अकुलाने लगी थी। रेडियो पर सुने प्रेम और विरह के गीत उसे याद हो जाते थे। गला उस का सुरीला था। कुछ न कुछ गुनगुनाती रहती--

'किसी की खाक में मिलती जवानी देखते जाना!'

'नाले लम्मी ते नाले कालो, हाय वे चन्ना रात जुदाइयां वाली।'

माथुर, नरोत्तम या दूसरे मर्दों के आने पर पूरणदेई चाय, शरबत सीता के हाथ बैठक में भिजवा देती थी परन्तु सीता का वहाँ बैठे रहना उसे पसन्द नहीं था। तारा एक तो अफसर दूसरे गम्भीर और समझदार भी थी। सीता को वह अल्हड़ ही समझती थी। पूरणदेई यह भूल जाती कि सीता दफ्तर में दिन भर जवान मर्दों में ही रहती थी। तारा ने देखा सीता, माथुर, चड्ढा या देवेन्द्र और दूसरे लोगों के आने पर बैठक में न ठहरती परन्तु नरोत्तम के रहते दो-चार बार चक्कर लगा लेती। किसी कारण से ठहर भी जाती। आंचल बार-बार संभालती। उसे नरोत्तम की नज़र से भी कुछ शरारत की शंका हुयी। नरोत्तम से उसे ऐसी आशा नहीं थी परन्तु आँखों देखे का विश्वास कैसे न करती ?

तारा ने नरोत्तम से तुरन्त बात की—"नोत्तन, क्या बात है ! कोई इरादा है तो साफ बात करो।"

"दीदी, तुम भी क्या बात करती हो !"

"तो फिर यह खिलवाड़ क्यों ?"

"कोई लड़की बार-बार खिलवाड़ के लिये ललकारे तो ?" नरोत्तम ने झेंप से बचने के लिये उत्तर दिया।

तारा ने मन में कौंच अनुभव की।

"तुम्हारा खिलवाड़ उस की तबाही बन गया तो ?"

"ऐसी क्या बात है, मैं इतनी दूर नहीं जाता।"

"तुम्हारा तो खिलवाड़ है। उस ने तुम्हें सीरियस (सचमुच अनुरक्त) समझ कर मन में रोग बसा लिया तो ? वह इतनी सोफिस्टिकेटिड (बातों ही बातों में रस लेने वाली) नहीं है। गली की सीधी-साधी लड़की है। सच बात है, वह तो बस जाने का सहारा चाहती है।"

"अच्छा, ऐसी बात नहीं होगी।" नरोत्तम ने मान लिया।

"नोत्तन, वैसे भी क्या यह ठीक है ?" बात चल पड़ी थी तो तारा ने पूरी बात कह लेनी चाही, "हमें तो यह अच्छा नही लगता।"

"क्या ?"

"बहुत 'भौंरे' बन रहे हो आजकल ! रोज़ नयी दोस्तियाँ। दो-तीन महीने लवंग व्यास थी, फिर रेखा, मीना, अब देवा है।"

"देवा ? दीदी, क्या कह रही हो ? वह तो डौली की टीचर है, मिरांडा में। मुझ से उम्र में बड़ी है। तुम ने कभी उस से बात भी की है ? बहुत सीरियस एकेडमिक टाइप है। किसी गलतफहमी की गुंजाइश नहीं है।"

"अच्छा उस से न सही परन्तु दूसरी लड़कियों को आशा देकर, उन से दो दिन खिलवाड़ करके उन्हें ठुकरा देना क्या अच्छा है ? तुम्हें अपनी वदनामी का भी ख्याल नहीं है ?"

"दीदी, मैंने कभी किसी को आशा नहीं दी। न किसी के पीछे भागता हूं। वे कबड्डी में पकड़ लेना चाहती हैं, मैं कतरा जाता हूं।" नरोत्तम मुस्करा दिया, "मैं भौंरा नहीं वन रहा हूं, तितलियों की ही भीड़ है।"

"नानसेंस !" तारा के माथे पर त्योरी पड़ गयी। नरोत्तम की भलाई के लिये वह उसे डांट भी सकती थी, अपने आप को क्या समझने लगे हो ?"

"बिलकुल ठीक, किसी भ्रम में नहीं हूं इसलिये फुसलाने में नहीं आता हूं। वे जोंक की तरह पलने के लिये मोटा पशु चाहती हैं। मैं ऐसा पशु नहीं वन जाना चाहता।"

"तुम्हारे मन में अहंकार वैठ गया है कि लड़कियां तुम पर मरती हैं और तुम उन से खेल सकते हो। यह कोई अच्छी वात है ?"

"कोई नहीं मरती केवल वे खेलती हैं।" नरोत्तम कुर्सी पर आगे सरक आया, "वही वाजी लगाती हैं। वाजी में जोखिम से भी नहीं डरतीं। मैं वाजी पर नहीं खेलता, केवल टाल देता हूं।"

"यह अहंकार नहीं तो क्या है ?" तारा को उस की वात अच्छी नहीं लगी।

नरोत्तम बहुत गम्भीर हो गया—"दीदी, मुझे अहंकार है ? तुम मुझे इन में से एक भी ऐसी वता दो जो साथी या पार्टनर की तरह जीवन में साथ देना चाहती हो। वे केवल जिन्दगी के लिये सप्पोर्ट (भर्ता) चाहती हैं। वे किसी का व्यक्तित्व नहीं देखतीं केवल आमदनी देखती हैं। अच्छी आमदनी वालों के लिये इन में कितनी होड़ है। 'एडवांटेज' और 'प्रेम' एक वात नहीं हैं। इन में से एक ही वता दो जो जीवन के संघर्ष का सामना करना चाहती हो ? मान लो, कल मैं भी चड्डा की तरह हो जाऊं, है इन में से कोई जो मर्सी की तरह मेरा साथ देगी ? लोग डाक्टर श्यामा को वदनाम करते हैं लेकिन मैं समझता हूं, उस लेडी में नैतिक वल है। वह एडवांटेज के लिये छल नहीं करती......।"

तारा ने गहरा सांस लिया और मुट्ठी पर ठोड़ी टिका कर मौन रह गयी। यह लड़का भी अपने ढंग से त्रस्त है।

तारा ने मन ही मन सोचा—ठीक ही है कि मां-वाप लड़कियों को संकट समझते हैं। मैंने व्यर्थ का झमेला समेट लिया है।

× × ×

मेहता की लड़की के नामकरण के प्राय. दो मास बाद, मेहता की पत्नी सरोज ने तारा के यहां आकर कुछ सकोच से बात की थी। मेहता के छोटे मामा की ओकाढ़ा मे बजाजी की खूब बड़ी दुकान थी। दिल्ली आये तो बजाजी जमाने लायक पूंजी नही थी। उन्हों ने टीन की अंगीठियों, बाल्टियों, बक्सों की छोटी सी दुकान लगा ली थी। बाद मे डिबियां बनवाने लगे। फिर एक मशीन ले आये। अब हजार-बारह सौ महीने की आमदनी का जुगाड़ हो गया था। लड़के ने बी० ए० पास किया था पर डेढ़-दो सौ की नौकरी मे उस का क्या बनता ? वही कारोबार को सभाले था। नामकरण के अवसर पर मेहता की मामी भी आयी थी। सीता उसे पसन्द आ गयी थी। सीता ब्राह्मणी थी, यह जान कर मामी ने सरोज से तारा के सामने बात रखने का अनुरोध किया था।

सरोज ने बताया, मामा को दाज-दहेज की विशेष चिन्ता नही थी। लड़की ढंग की, हाथ-पैर की दुरुस्त होनी चाहिये। सरोज ने साफ-साफ कह दिया कि लड़का सत्ताइस-अट्ठाइस का था। एक तरह क्वारा ही था। बटवारे से बरस भर पहले उस का विवाह हुआ था। बहू पहले जापे (प्रसव) मे मायके मे थी। उन लोगों का पूरा का पूरा परिवार ही कत्ल हो गया था।

तारा ने सरोज का प्रस्ताव पूरणदेई को बता दिया। पूरणदेई बहुत उत्साहित हुई परन्तु एकदम 'हां' कर देना उचित नही था। होंठो पर हाथ रखकर बोली—"लड़के का एक बार ब्याह तो हो चुका है, कुआरा क्या हुआ ?"

तारा चुप रह गयी। कह भी क्या सकती थी। उस ने सरोज को कुछ उत्तर न दिया। मेहता रविवार के दिन गुड्डी को लेकर अपने योग्य सेवा पूछने के लिये आता ही था। उस ने कोई उत्तर न पाने मे इस प्रसंग की चर्चा उचित नही समझी।

तारा ने उस विषय मे फिर कुछ न कहा तो पूरणदेई ने मेहता के लौट जाने के बाद तारा के कान के पास मुह ले जाकर पूछा—"इन लोगो ने फिर उस लड़के के बारे मे कुछ नही कहा ?"

तारा ने विस्मय प्रकट किया—'बुआ, तुम्ही ने तो कहा था, लड़का कुआरा क्या हुआ ? उन्हे जवाब नही मिला तो चुप रह गये।"

"हाय, मैं मर गयी, मैंने यह थोड़े ही कहा था। मैंने तो कहा था तू ही सोच कर बात कर ले।"

"अब मेहता आयगा तो कह दूंगी सरोज को भेज दे। तुम उस से खुद बात कर लेना।"

"बेटी, मैं अपढ़, मूरख क्या बात करूंगी।" पूरणदेई ने अपनी अकिंचिनता प्रकट की, "सब तेरे ही सहारे है, तू ही ठीक समझती है। यह पुण्य तो तेरे ही हाथों होना है। तू यह काम करा दे तो मैं गंगा नहा लूं। मुझे क्या कहना है ? तू उस की बड़ी बहन है, तू ही उस का भाई है। मैंने तो यों ही कहा था। तू सोच, जब बाल-बच्चे नहीं हैं तो कुआरा ही हुआ। मर्दों का क्या है, मर्द और घोड़ा नहा लिया, सुथरा हो गया।"

"सीता से ही क्यों नहीं पूछ लेती, मैं पूछ लूं, उस का क्या ख्याल है ?"

"हाय, लड़कियों से ऐसी बातें की जाती हैं ?" पूरणदेई ने विस्मय प्रकट किया, "उस बेचारी को समझ ही क्या है ? तेरी और बात है। तू बड़ी समझदार दाना ठहरी। तू उन लोगों को कह कर लड़के को देख ले। तू कहेगी तो मैं चली चलूंगी पर अभी किसी से बात न करना। तू जानती है, लोग किसी का भला होता नहीं देख सकते।" पूरणदेई जानती थी कि गुरांदेई भी अपनी छोटी बेटी के लिये वर की खोज में परेशान थी।

तारा चुप रह गयी। सोचा, दाना तो क्या हूं पर अब पुरखिनों के काम ज़रुर कर रही हूं।

सरोज आयी तो पूरणदेई ने घुमा-फिरा कर कहा—"अमृतसर में मेरा जेठ है, अजनाला में भाई-भाबी है, उन से भी पूछ लूं। यह फैसले ऐसे थोड़े ही हो जाते हैं। तुम्हारे देहाती शहरों के रीति-रिवाज मालूम नहीं। लाहौर-अमृतसर में ऐसी बातें 'हां' 'ना' में तो नहीं हो जाती थीं। हर बात का एक ढंग होता था। लड़के वालों के घर से स्त्रियां लड़की के घर चाकरी के लिए छः-छः महीने जाती थीं।

सरोज और मेहता की भाभी चार-पांच बार पूरणदेई के पास बैठ कर बात कर गयीं। बात एक तरह से तय ही थी लेकिन वे लोग लड़के को लड़की दिखा देना चाहते थे। पूरणदेई कैसे इन्कार करती ? यह तो लाहौर अमृतसर में भी होने लगा था। पूरणदेई तैयार थी कि वह मंगलवार की संध्या सीता को पहना-ओढ़ा कर हनुमान जी के मन्दिर में ले जायगी। सरोज लड़के को दूर से लड़की दिखा दे। अल्हड़ सीता को लड़का दिखाने की बात उसे पसन्द न थी।

प्रकट में सीता को कुछ नहीं बताया गया था परन्तु वह पहले ही दिन से सब बात जानती थी।

तारा ने पूरणदेई को समझाना व्यर्थ समझा। उस ने सीता से उस की इच्छा पूछी। सीता लजा गई—"भैन जी, मुझे क्या मालूम ? आप जो मुनासिब समझें।'

तारा ने चिढ़ाया—"फिर न कहना कि मेरी आँखें बाँध कर धकेल दिया। मुझे नही मालूम, कोई कह रहा था, रंग काला है, चेचक के दाग है, एक आँख में जरा फरक है।"

"आप ठीक समझती है तो ठीक है" सीता ने गर्दन झुकाये होंठ दबा लिये। हनुमान के मन्दिर की राह में उस ने भी देख लिया था कि सरोज के साथ उसे देखने आने वाला कैसा था। .

"तू लड़के को देखना नही चाहती, तुझे शरम आती है तो रहने दे।"

"इस मे शरम क्या ? आजकल तो सभी देखते है, बातचीत भी कर लेते है।" सीता ने गर्दन नही उठायी।

"मर चुड़ैल ? अभी कहती थी, मैं क्या जानूं। अब कहती है, बात भी करवा दो।"

सीता ने आँचल मुंह में ले लिया।

खुशीराम मेहता के मामा पंडित ब्लाकीराम लड़के के विवाह में देर नहीं करना चाहते थे। मेहता और सरोज ने आकर तारा के सामने पूरणदेई को विश्वास दिलाया—"हम लोग तो लड़के वाले भी है, लड़की वाले भी है। कुछ आडम्बर थोड़े ही करना है हम भी तो घर-बार से उजड़े-पुजड़े, किसी तरह घर बसने का जतन कर रहे है। किसी तरह यह पुण्य कार्य हो जाये। आप फिक्र-परेशानी का ख्याल न करें। हम लोग खुद आकर सब करा देंगे।"

पूरणदेई ने अमृतसर में अपने जेठ को पत्र लिखवा दिया था। वे लोग सोलह बरस पहले सम्बन्ध तोड़ चुके थे। अब लड़की के विवाह का खर्च सिर पर लेने के लिए क्या आते। अजनाला से पूरणदेई के भाई-भाबी और जगरावाँ से उस की बहिन आ गये थे। तारा को इस विवाह में क्या उत्साह होता। चार-पाँच दिन के लिये घर में भीड़ की परेशानी और छः-सात सौ का खर्चा सिर पर आ पड़ा था। कर्तव्य समझ कर निबाह रही थी। उस की ओर से सुझाव और प्रबन्ध का उत्तरदायित्व माथुर ने सम्भाल लिया था। नित्य आकर पूछताछ कर जाता था।

नरोत्तम को भी सीता के विवाह का समाचार मिल गया था। उसने तारा के सामने ही सीता को पुकार कर बात की—"बधाई है, बोलो क्या प्रेजेंट लोगी ?"

सीता शर्मा कर गर्दन झुकाये रही।

तारा ने कह दिया—"अच्छा, सोच लेगें।"

मर्सी और चड्ढा को निमंत्रण दिया था तो तारा डाक्टर और मिसेज नाथ को क्यों न बुलाती।

-

प्लानिंग कमीशन के औद्योगिक विभाग के आर्थिक परामर्शदाता के रूप में डाक्टर प्राणनाथ से, अकस्मात मुलाकात के दूसरे दिन तारा साढ़े दस बजे उस के दफ्तर में पहुंच गयी थी और काम समाप्त करके डेढ़ बजे अपने दफ्तर में लौटी थी। लौटते समय तारा ने डाक्टर से रविवार का भोजन अपने यहाँ करने का अनुरोध किया था।

तारा ने शुक्र और शनि की संध्या अपनी बैठक को फिर से सजा लेने में पचास-साठ रुपये खर्च कर दिये। ऐसी सावधानी और पुलक से सब कर रही थी जैसे किसी पर्व की तैयारी हो। दरवाजे-खिड़कियों के पर्दे बदले। तिपाई और तख्त के लिये भी पर्दों के ही रंग के मेजपोश और पलंगपोश लायी।

लाहौर में डाक्टर की हवेली के सब आंगन ईंटों से पटे थे। पेड़ या फूल-फुलवारी लगाने की कोई जगह नहीं थी। डाक्टर ने अपने हिस्से के बरामदों में कुछ क्रोटन रखे हुये थे। कमरे के सामने खुली छत पर नांदों में बोगनवेलिया की बेलें लगायी हुई थीं। कमरे में भी दो बहुत छोटे-छोटे परन्तु खूब घने पाम थे। तारा को याद था डाक्टर साहब को नरगिस के फूलों का बहुत शौक था। तारा को ऐसे पौदों के नाम प्रोफेसर ने ही बताये थे। तारा ने नर्सरी से एक चीनी पाम और एक खूब रंगीन कोलियस खरीद लिये थे। उन्हें रखने के लिये इम्पोरियम से पीतल के गमले ले आयी थी।

डाक्टर ने पूछ लिया—"यहाँ अकेली रहती हो?"

"भोलापांधे की गली की एक पड़ोसिन और उन की लड़की साथ है।"

'जालन्धर से कब आयीं?"

"वहाँ तो गयी ही नहीं।" तारा की गर्दन झुक गयी।

"आग की दुर्घटना के बाद तुम्हें ससुराल वालों का पता कैसे चला?"

तारा गर्दन झुकाये मौन रह गयी।

नाथ ने तारा के छोटे से साफ-सुथरे, सुरुचि से सजे कमरे की सराहना की। बोला—"मेरे बंगले में सामने इतनी जगह है पर उजाड़ पड़ी है। हमारी बीवी को ऐसी तमीज कहाँ?"

"हैं!" तारा की आंखें विस्मय से फैल गयीं, "भाभी जी को क्यों नहीं लाये! आप ने पहले क्यों नहीं बताया? उन से मिलाया ही नहीं।"

"हूं" डाक्टर ने होंठ सिकोड़ लिये और मौन रह गया।

"विवाह कब हुआ ?" तारा ने कौतूहल प्रकट किया।

डाक्टर दूसरी ओर देख कर बोला—"उस बंगले मे कुछ लगाना भी व्यर्थ है। मई के शुरू मे ही शिमला जा रहा हूं। पिछले साल भी आधे सितम्बर तक शिमला मे ही था। पीछे सब कुछ सूख गया या जानवर खा गये।"

"रविवार को मैं भाभी जी से मिलने के लिये आऊंगी।"

"यहाँ ही भेज दूं ?"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"क्यो ?"

"पहले मेरा जाना उचित है, फिर उन्हें यहाँ लाइयेगा।"

"ऐसे तकल्लुफ की क्या जरूरत है ?"

तारा मौन रह गयी—बड़े आदमी है। इन्हें पसन्द नही तो समझेगे बहुत मुंह लग रही है। उस ने फिर प्रसंग नही उठाया।

डाक्टर बहुत आत्मीयता से बाते करता रहा। बताया—"सोनवा मे सन् १९४८ मे उस के पिता देवीलाल जी की मृत्यु हो गयी थी। याद दिलाया, एक बार तुम्हें जायदाद के कारण घर के झगड़े की बात बतायी थी। लाहौर की हवेली के इंशोरेंस मे जो मिला वह भाइयो ने दूसरी शूगर मिल में लगा दिया है। अब सब भाइयो ने मुझे भी मिलाकर लिमिटेड कम्पनी बना ली है। भाइयो ने वर्किंग पार्टनर के रूप मे हजार-हजार रुपये तनखाहें बाँध ली है। टैक्सो से बचने के लिये कम्पनी को घाटा ही होगा। तनखाहें वह लेगे, घाटा मेरे भी हिस्से आयेगा। मेरी पत्ती उसी मे डूबती जायेगी।"

तारा को भी कुछ कहना था, उस ने अगरवाला साहब की कोठी के बिगड़ैल बच्चो की कुछ बाते सुना दी।

तारा को भाभी (मिसेज नाथ) से मिलने की उत्कट इच्छा हुयी थी परन्तु डाक्टर ने उस इच्छा को अनावश्यक तकल्लुफ कह कर टाल दिया था। तारा को अच्छा नही लगा। सोचा, ससुराल के विषय मे उन की जिज्ञासा का उत्तर नही दे सकी, शायद इसीलिये बुरा मान गये !···पर बताऊं भी क्या ?··· इन्हे तो 'वह' तब भी पसन्द नही था, तारा को डाक्टर के शब्द भी याद थे--तुम्हारे ताऊ ने किसी बेवकूफ लड़के से तुम्हारी सगाई कर दी है। और बाते भी याद आने लगी--सगाई की बात जान कर भी डाक्टर ने असद के बारे मे जो कुछ कहा था ! सोचा, इतने उदार है तो जरा सी बात पर चिढ़ जायेंगे ?

तारा की उन स्मृतियों को तीन-चार महीने पहले भी एक दिन अखबार

ने कुरेद दिया था--पाकिस्तान में व्यापक राजनैतिक षड्यन्त्र पकड़ा जाने के समाचारों के प्रसंग में कई कम्युनिस्ट नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार था। गिरफ्तार लोगों में असद का भी नाम था। सोचा--असद अब भी पार्टी का काम कर रहा है। पार्टी के प्रति वफादारी के ख्याल से ही तो वह बाल रह गयी थी।''''यदि उस दिन डी० ए० वी० कालेज कैम्प में कहीं असद के भरोसे रह गयी होती! कितनी बड़ी भूल से बची! मैं क्या बची, कौशल्या-देवी और कैम्प के लोग मुझे कैसे चले जाने देते? व्यक्ति समाज के चक्कर में कैसे विवश रहता है?''''समाज कभी डुबा देता है, कभी बचा लेता है परन्तु सदा निर्मम रहता है।

लगभग मई के दूसरे सप्ताह में तारा ने फिर अखबार में असद का नाम देखा। समाचार था: मिसेज जोहरा असद ने अपने पति की जमानत के लिये दरख्वास्त दी थी। असद जमानत पर जेल से छूट गया था। गिरफ्तारी से दो सप्ताह पूर्व ही जोहरा और असद का विवाह हुआ था। तारा को जोहरा का चेहरा याद आ गया-लाल गेहूं जैसा पक्का रंग, चौड़ा गोल चेहरा, खूब घुंघ-राले केश, मेडिकल कालेज में थी। तारा को केवल इतना ख्याल आया--अच्छा, जोहरा से ब्याह हो गया पर बेचारा ब्याह होते ही गिरफ्तार हो गया। खैर, जेल से छूट गया, अच्छा हुआ!''''''सचमुच ही दो देश, दो दुनियां बन गयीं हैं।

मई के आरम्भ में ही डाक्टर के शिमला चले जाने की बात थी। डाक्टर शिमला का पता भी नहीं दे गया था। अगस्त-सितम्बर के लिये बात टल गयी थी। डाक्टर नाथ ने शिमला से लौटने पर तारा को फोन करके हाल-चाल पूछ कर अपने लौट आने का समाचार दे दिया था।

सीता का विवाह सितम्बर के अन्तिम सप्ताह के लग्नों में निश्चित हुआ था। तारा ने सभी को फोन पर ही निमन्त्रण दिया था। तारा ने सुबह आठ बजे ही प्रोफेसर के बंगले पर फोन किया। सोचा, भाभी ही बोलें। उत्तर मिला, बूढ़े चपरासी की आवाज में।

तारा ने बताया--"तारा पुरी बोल रही हूं। मिसेज नाथ को या डाक्टर साहब को खबर कर दो।"

"हम साहब को खबर देते हैं" चपरासी ने कुछ झिझक से उत्तर दिया था।

तारा को खटका--यह क्यों?

"तारा है?" नाथ का स्वर प्रसन्न था, "कहो क्या हाल-चाल है?

सोच रहा था कि उधर आऊं या फोन करूं ?"

"आना तो पड़ेगा ही।" तारा मान से बोली, "सीता का ब्याह है। भाभी जी को जरूर लाइयेगा।"

"हूं ?" नाथ ने कुछ रुक कर कहा।

"भाभी जी को जरूर लाइयेगा।" तारा ने आग्रह किया।

"अच्छा, अच्छा।"

"अच्छा नहीं, जरूर !"

"बहुत अच्छा।"

पूरणदेई के पास अपने शरीर के अतिरिक्त और क्या था ? उस की पहली सन्तान पति के जीवन में एक बरस की होकर मर गयी थी। इक्कीस बरस की आयु में विधवा हो गयी थी तो सीता गोद में थी। पूरणदेई ने जेठ के घर में निर्वाह असम्भव देखा तो तीन बरस की सीता को लेकर, लाहौर में मामा के यहाँ चली गयी थी। मामा ने भी उसे दो बरस से अधिक नहीं झेला। वह पन्द्रह रुपया महीना तनखाह पर स्कूल में 'बुलावी' का काम करने लगी। भैन जी (हेड मास्टरनी) के घर का भी थोड़ा-बहुत काम करना पड़ जाता था। स्कूल कमेटी दया कर कभी-कभी उस का वेतन आठ आने-रुपया बढ़ा देती थी। पच्चीस-छब्बीस बरस की पूरी जवान, अच्छी खूबसूरत, जरूरत से परेशान पूरणदेई को फुसलाना चाहने वालों और ईर्षा से उसे व्यर्थ बदनाम करने वालों की क्या कमी थी। इस तरह निर्वाह करके भी उस ने सीता को दसवीं श्रेणी तक पहुंचा दिया था। तब पाकिस्तान बन गया और उसे लाहौर से भागना पड़ा।

दारिद्र्य में भी पूरणदेई के संस्कार तो मध्य-वित्त श्रेणी के ही थे। बेटी का विवाह था। जेठ से कुछ सहायता न मिली। उस ने अपने टीन के बक्से में से ढूंढ़-ढूंढ़ कर थोड़ा-थोड़ा रुपया निकालना शुरू किया। साढ़े छः सौ रुपया निकाल चुकी थी। पच्चीस बरस से कलाइयों पर सोने की दो चूड़ियां पहने थी। चूड़ियां घिस कर तार की तरह पतली हो गई थीं। पूरणदेई ने वह चूड़ियां भी बेच दी थीं पर फिर भी पूरा नहीं पड़ रहा था। आंसू आ-आ जाते थे। तारा के समने हाथ जोड़ कर बोली—"बेटी, कफन के लिये भी कुछ नहीं रखा है। अब बहिन का कारज निवाह देना तेरे ही हाथ है। सब तेरा ही पुण्य है ...।"

पड़ोस की पुरखिन ताई भी सब प्रबन्ध पर नजर रख रही थी। उस से पूरणदेई की अवस्था और तारा का सम्बन्ध छिपा नहीं रह सका था। तारा

के लिये ताई की ममता और भी अधिक उमड़ पड़ी थी। तायी के आदेश तारा ने अपने लिये भी चार तोले सोने की चार चूड़ियां बनवा लीं थीं।

व्याह के दिन ताई ने पूरणदेई की बांह खाली देखी तो टोक दिया—"तेरी शक्ल को क्या हो गया है ? शुभ कार्य और कन्यादान के समय हाथ खाली रख कर असगुन करेगी ?"

तारा ने अपनी दो चूड़ियां पूरणदेई को दे दीं तो उस पर भी तायी की डांट पड़ गयी—"बेटी, क्या हो गया है तुम लोगों को ! और सब जगह खर्च करते हाथ नहीं रुकते। अपनी उम्र, हैसियत, इज्जत का कुछ भी खयाल नहीं ? ....यह सरकारी अफसर है। पंजाबियों की नाक कटायेगी। बरात आ रही है, इस के हाथ देखो !"

तायी ने अपने घर से एक जोड़ी कड़े, गले की जंजीर और पड़ोस से चार चूड़ियां मांग कर पूरणदेई और तारा को पहना दिये।

तारा ने हिसाब किया था, उसे पांच-छः सौ खर्च करना पड़ेगा पर साढ़े आठ सौ से अधिक खर्च हो चुका था। माथुर बहुत किफायत का खयाल रख कर भी जरूरी खर्च बताये जा रहा था। मजबूरी थी। व्यवहार और इज्जत की छुरी गर्दन पर रखी हुई थी। प्रकट में यह सब खर्च आह्लाद और उल्लास के उच्छ्वास से किया जा रहा था। गनीमत यह थी कि नगर में राशनिंग का कंट्रोल था। किसी भी दावत में पच्चीस से अधिक आदमियों को निमंत्रण देना वर्जित था। तारा सरकरी नियम का उलंघन नहीं कर सकती थी।

मेहता बहुत सावधान था कि तारा को कोई परेशानी न हो। वह पहाड़गंज वाले मामा के साथ इस ओर का भी सब प्रबन्ध संभाले था। माथुर भी नजर रख रहा था। विभाजन से पहले के ढंग भी अब नहीं रहे थे कि व्याह के लिये कुछ दिन पहले घर में भट्ठी बना कर हलवाई बैठा लेना आवश्यक समझा जाता। पड़ोस की दुकान ने, उचित दाम में समय पर आवश्यकता के अनुसार सब कुछ पहुंचा देने का ठेका लिया था। बरात और अतिथियों के स्वागत-भोजन का प्रबन्ध वैसे ही किया गया था जैसे नगरों में स्थान की कमी के कारण मध्यवित्त लोग कर पाते हैं।

पचकुइयां रोड पर फ्लैटों की पंक्ति के नीचे सड़क किनारे दुकानें हैं। संध्या गाहकों का समय होता है। उस समय दुकानों के सामने कोई आड़ या सामरोह करके रास्ता रोकना दुकानदारों से झगड़ा मोल लेना होता। तारा का फ्लैट गली के नुक्कड़ पर था। गली में ही कनातें खड़ी करके बरात और अतिथियों के स्वागत के लिये स्थान बना लिया गया था। मंडप आम के पत्तों

बदनवारों और रंगीन कागजों की झंडियों से सजा दिया गया था। अंधेरा होने से पहले ही बिजली के रंगीन लट्टूओं की मालायें प्रकाशमान कर दी गयी थीं। कनातों के भीतर कुर्सियों की कतारें थीं। बिजली के फर्शी पंखे चल रहे थे। दो बड़े-बड़े टबों में मीठे सोडे की बोतलें बरफ में दबा कर रख दी गयी थीं। सब प्रबन्ध संक्षिप्त था।

मेहता उत्सव का वातावरण बनाने के लिये ग्रामोफोन और लाउडस्पीकर का प्रबन्ध करना भी नहीं भूला था। बरात पहुंचने से आधे घंटे पहले ही उस समय का प्रचलित फिल्मी गाना, ऊंचे स्वर में विवाह के लग्न की घोषणा करने लगा था:—

"हवा में उड़ता जाये, मेरा लाल दुपट्टा मलमल का
मेरा लाल दुपट्टा मलमल का। ओ जी, ओ जी··· !"
"इस दिल के टुकड़े हजार हुए,
कोई यहाँ गिरा कोई वहाँ गिरा···।"

झुटपुट अंधेरा हो जाने पर बरात का नेतृत्व करता बैंड बाजा सुनायी दिया। पूरणदेई के भाई-भाभी, बहिन और पड़ोस के लिहाज से सम्बन्धी बन गये लोग बरात के स्वागत के लिये आगे बढ़े। तारा को भी अवसर के विचार से लाल साड़ी पहननी पड़ी थी। मर्सी गुलाबी साड़ी में अपने गहरे साँवले चमकीले चेहरे पर लाल बिन्दी लगाये, मांग में सिंदूर भर कर आयी थी। जूड़े पर बेला का गजरा बांधे थी। चड्ढा, माथुर, नरोत्तम, मिस देवा और माथुर की बहिन सब तारा के साथ खड़े थे। लड़की के विवाह में लोग विनोद और आनन्द के लिये नहीं सहायता और सेवा के लिये सम्मिलित होते है। तारा के दफ्तर से सेक्शन असिस्टेंट रामस्वरूप भट्ट, कई क्लर्क और प्रौढ़ सुपरिटेंडेंट भी निमंत्रण की परवाह न कर, योग्य सेवा पूछने के लिये समीप खड़े थे।

बैंड पंजाबी 'बोलिया' बजा रहा था। बैंड के पीछे पैदल बरातियों से घिरा वर घोड़ी पर सवार था। वर के सिर पर मुकुट था। उसका चेहरा सेहरों (फूलमालाओं) से ढंका था। वर की सजधज दिखा सकने के लिये मजदूरों के सिरों पर चार बड़े-बड़े गैस साथ चल रहे थे। वर के सम्मुख गैस के प्रकाश में, बैंड की धुन के साथ पंजाबी नौजवानों की टोली बाहें फैलाये, कमर मटका-मटका कर, उछल-उछल कर, तालियों से ताल देती होक्कं-होक्क !' हुंकारतीं भंगड़ा नाचती आ रही थी। नौजवान ऊचे स्वर मे बोलियाँ गा रहे थे:—

"बारहीं बरसी खटण गया, खटके ल्यादें पावे,

बुड्ढियां तरस दियां। सानुं फेर जवानी आवे।"
(बारह बरसी कमाने गये, कमा कर लाये पावे।
डुकरिया का मन तरसे, हाय फिर जवानी आवे।)
"बारहीं बरसी खट्टन गया खट्ट के ल्यादी चांदी।
मुंडया पसन्द कर ले गड्डी भर कुड़ियां दी आंदी।"
(बारह बरसीं कमाने गये कमाकर लाये चांदी,
लौंडे पसन्द करले, लढ़िया भर लौंडियों की आई)

पड़ोस की पंजाबी जवान बहुयें और लड़कियां बरात के स्वागत में गीत गाने के लिये ऊपर खिड़कियों में इकट्ठी हो गयी थीं। उन्हों ने तुरन्त समवेत स्वर में नौजवानों की चुनौती का उत्तर दिया—

"बारहीं बरसीं खट्टन गया खट्ट के ल्यांदी चांदी।
कुड़िये पसन्द कर ले गड्डी भर मुंडयां दी आंदी।"
(बारह बरसी कमाने गये कमाकर लाये चांदी
लौंडियो पसन्द कर लो, लढ़िया भर लौंडों की आई।)

बरात के साथ कुछ स्त्रियां भी थीं। उन की जरीदार, मखमली और भारी रेशम की पोशाकें और गहने देखकर माथुर, चड्ढा, नरोत्तम और मिस देवा विस्मित हो रहे थे।

चड्ढा बोल उठा—"कोई कह सकता है, पाँच बरस पहले यह लोग शरणार्थी थे, पेडों के नीचे पनाह ढूंढ़ रहे थे।"

मेहता का एक मित्र समीप ही खड़ा था। बोल पड़ा—"भाई साहब, लड़के का परिवार चार बरस पहले आया था तो इतनी भी पूंजी नहीं थी कि बजाजी की फेरी लगा सकते। बाप-बेटों ने चार महीने कुलफियां बेचकर निर्वाह किया। घर में औरतें कुलफी बनाती थी, बाप-बेटा बेंचते थे। अब तो पचास-साठ हजार का जुगाड़ बांध लिया है।"

तारा ने कहा—"बरात में भंगडा नाचने का रिवाज लाहौर में नहीं था। मेलों में देहाती लोग ही नाचते थे। दिल्ली में देहात और सीमांत के लोग भी तो आये है। यहाँ नयी ही संस्कृति बनती जा रही है।"

मिलनी और जयमाल के बाद लड़कियाँ और बहुयें वर को ऊपर ले गयीं। बरात कनातों में भोजन करने लगी। तारा अब भी नीचे ही खड़ी थी। उस की नजर निरन्तर सड़क की ओर थी। डाक्टर नाथ पहले से आकर व्यर्थ में न ऊबे इसलिये तारा ने उन्हें सवा आठ-साढ़े आठ तक आ जाने के लिये कह दिया था। तारा ने अपने खास अतिथियों के लिये भोजन का प्रबंध

ऊपर अपने कमरे में ही किया था।

डाक्टर की गाड़ी आती देख कर तारा सड़क की ओर बढ़ गयी। गाड़ी में प्रोफेसर अकेला ही था। तारा को लाल साड़ी में देख कर और उस के कड़े-चूड़ियों की ओर सकेत कर डाक्टर प्रसन्नता से बोल उठा—"तुम तो स्वयं ही वहू बनी हुई हो। सच, बड़ी अच्छी लग रही हो।"

तारा ने झेंप छिपाने के लिये दूसरी बात की—"भाभी जी को नहीं लाये ?"

"मेरी प्रतीक्षा तो नही करनी पड़ी ?" डाक्टर ने पूछा।

"भाभी जी को क्यों नहीं लाये !" तारा ने शिकायत दोहरायी।

"अरे छोड़ो" प्रोफेसर ने कह दिया जैसे वह प्रसंग अच्छा न लग रहा हो।

तारा के मन में सन्देह हुआ, क्या बनती नहीं आपस में ?

तारा ने डाक्टर को ऊपर ले जा कर दूसरे लोगों से परिचय कराया—"प्रोफेसर, डाक्टर प्राणनाथ, प्लानिंग कमीशन के आर्थिक परामर्शदाता।"

चड्ढा, माथुर, नरोत्तम, मर्सी और मिस देवा ने डाक्टर का स्वागत किया। चड्ढा उस के समीप बैठ कर तुरन्त बात करने लगा—"...सरकार की योजना कृषि के विस्तार और विकास से खाद्यान की उपज बढ़ाने की है परन्तु भूमि के उचित वितरण के बिना, पूरी भूमि पर उचित ढंग से कृषि हो कैसे सकेगी !....भूमिहीन किसानों का क्या होगा ?...उपज बढ़ भी गयी, परन्तु लोग बेकारी के कारण खरीद न सके तो क्या लाभ ?"

डाक्टर नाथ और उस की पत्नी के बीच क्लेश का अनुमान कर तारा को बहुत दुख था। वह दुख बार-बार उस के मन में खटक जाता था। उस की नजर डाक्टर के खुले कालर पर गयी। डाक्टर कोट नहीं पहने था। कमीज धुली हुयी बिलकुल ताजा थी। कोहनी तक लपेटी हुयी, आस्तीनों में और सामने दोनों ओर पेटी तक इस्त्री की दाब अब भी मौजूद थी। कमीज नयी नही, पर मजबूत थी। कालर की सिलाई से फूनड़ निकल आये थे।

तारा ने सोचा—इन की मिसेज को इतना भी ख्याल नहीं; शायद आपस में बोलचाल भी बन्द हो। दोनों को कभी साथ नहीं देखा। डाक्टर साहब इतने गम्भीर और समझदार है। ऐसी स्त्री से विवाह कैसे कर लिया ? शायद मिसेज नाथ भी मिसेज अगरवाला की तरह घुमक्कड़ हों या मिसेज डे की तरह परेशान करती हों।...सीता का व्याह हो रहा है। क्या मालूम, छः मास बाद उन का भी ऐसा ही हाल हो जाये।

मर्सी को चड्ढा और डाक्टर की बातचीत में रस नहीं आ रहा था। उस ने तारा से पूछ लिया—"सीता अपनी नौकरी जारी रखेगी या छोड़ देगी ?"

"करे तो अच्छा ही है।" माथुर ने विचार प्रकट किया, "छोड़ देगी तो तुम ने उस की ट्यूशन पर जो खर्च किया, व्यर्थ जायेगा।"

"मै तो चाहती हूं नौकरी न छोड़े पर आशा नहीं वह काम करेगी।"

"यह सचमुच बहुत बड़ा राष्ट्रीय अपव्यय है।" नाथ बोला, "अच्छी स्थिति के लोगों की लड़कियाँ ही ऊंची शिक्षा का अवसर पाती हैं। विवाह के बाद वे कुछ काम नहीं करतीं। उन की शिक्षा पर राष्ट्र का सब खर्च व्यथ जाता है। खास कर मेडिकल और ट्रेनिंग कालेजों में तो उन्हीं लड़कियों को जगह दी जानी चाहिये जो प्रैक्टिस या सर्विस की शर्त मानें।"

"लड़कियाँ तो केवल मैरिज क्वालिफिकेशन के लिये बी० ए०, एम० ए० करती हैं।" नरोत्तम ने भी योग दिया।

"हम ने उन्हें पालिटिक्स और लिटरेचर पर बात करते कभी नहीं देखा। बस साड़ी-सिनेमा, सोहर की ही बात करती हैं।" माथुर ने कहा।

"चौका सम्भालने और कपड़े धोने में लिटरेचर से क्या सहायता मिल सकती है?" मर्सी ने पूछा।

"पर पति को पत्र लिखते समय शेक्सपियर और बायरन की पंक्तियां काम आ सकती हैं।" नाथ ने भी कहा।

तारा ने अनुमान किया—यह विद्रूप भाभी पर है! उस ने बातचीत में विशेष योग नहीं दिया। उसे प्रबन्ध भी करना था। उस समय सीता तो सहायता कर नहीं सकती थी।

सीता दूसरे दिन प्रातः ही अपने वर के साथ सदर बाजार ससुराल में चली गयी थी। तारा दफ्तर से लौटी तो बहुत सूना-सूना लगा। पूरणदेई कुछ उदास थी परन्तु उसे बहुत बड़ा बोझ सिर से उतर जाने का सन्तोष था। पूरणदेई तारा के समीप बैठ कर बात करने लगी—"बेटी, महाराज जी की कृपा और तेरी हिम्मत से सब ठीक हो गया। अब मुझे महाराज जी का नाम ही लेना है। मेरा बोझ उन्हों ने उतार दिया। बेटी सब तेरे ही पुण्य का प्रताप है। अब तो तू ही मेरी बेटी....।"

तारा के मन में विचित्र बात आयी—मैं बेटी होती तो मेरा भी बोझ उतारने की बेचैनी होती। बात मन में ही दबा ली। पूरणदेई से विवाह के लिये मंगनी में आया हुआ सामान लौटा देने के सम्बन्ध में बात करने लगी।

पूरणदेई दो दिन बाद सदर जाकर सीता को लिवा लायी थी। न जाती तो सीता की ससुराल वाले ख्याल कर सकते थे कि लड़की के मायके में उस की

चिन्ता करने वाले नहीं हैं। तारा दफ्तर से लौटी तो सीता मौजूद थी। दोनों गले लग कर मिलीं। लाहौर में सीता तारा की खास सहेली नहीं थी। दिल्ली में तारा को उस के व्यवहार के प्रति घृणा ही थी और फिर उस की सहायता करने के लिये विवश हो गयी थी लेकिन दस मास साथ रहने से प्रेम हो गया था, जैसे थान पर एक साथ बंधने वाले बैलों में भी हो जाता है।

तारा ने सीता को ध्यान से ऊपर से नीचे तक देखा। लड़की दो ही दिन में बदल गयी लगती थी। बराबरी का ही नहीं बड़प्पन और अधिकार का सा भाव आ गया था।

तारा ने रहस्य के ढंग से पूछा—"बता, घबराई तो नहीं ?"

सीता संकोच से मुस्कराई—"हाय, मुझे तो बहुत डर लग रहा था।"

"कैसे लोग है ?"

"बहुत अच्छे हैं।"

"अब तो डर नहीं लगेगा ?"

"डर क्या है, शुरू में ही घबराहट होती है।"

"कैसे बातचीत की ?"

"ठीक ही है।"सीता ने गर्व से संकोच प्रकट किया कि तारा को क्या बताये।

तारा ने भी मुस्कराकर संतोष प्रकट किया पर उसे सीता की आंखों में गर्व और संतोष की चमक धृष्टता सी जान पड़ रही थी। मन में खयाल था—संतुष्ट है, घर मिल गया, आश्रय मिल गया। उसी के लिये तड़प रही थी। एक ही दिन के परिचय में प्रेम कहाँ से आ गया ? स्वयं ही खयाल आया—प्रेम और क्या होगा ? जो कुछ चाहती थी, उस सब की पूर्ति का आधार प्रेम ही है? प्रेम भी तो चाह और भूख ही है या चाह और भूख के उपाय की चिंता है ...।

तारा ने सीता को हीन समझने के लिये अपनी प्रतारणा की —मुझे जब तीसरी मंजिल पर ले जाकर बैठा दिया था, तब मैं किस बात की प्रतीक्षा कर रही थी ? तब मेरे मन में कोई घृणा या विरोध तो नहीं था। प्रेम की ही आशा और प्रतीक्षा थी। अमानुषिक व्यवहार ने ही घृणा जगा दी।

तारा अपने आप को घर-गृहस्थी, रसोई, बच्चे, दूसरी ही परिस्थितियों में देखने लगी। उन परिस्थितियों के चित्र मस्तिष्क में वृत्ताकार घूमते जा रहे थे।

मर्सी की बातें याद आ गयीं—तू नहीं चाहती ? तू असाधारण है ?

तारा झुंझला उठी—नहीं मैं नहीं चाहती। मैं इतनी साधारण नहीं बन जाना चाहती। मैं ऐसे ही अच्छी हूं।

शनिवार था। तारा डेढ़ बजे दफ्तर से लौट आयी। सीता की सास और

एक दूसरी स्त्री बहू को ससुराल लौटा ले जाने के लिये आई हुई थीं। सीता सामान की गठड़ी-मुठड़ी बाँध कर तारा की ही प्रतीक्षा कर रही थी। ढाई बजे सास सीता को लेकर चली तो वह और तारा फिर गले मिलीं। पूरणदेई आंचल आंखों पर रखे रो रही थी। तारा की आंखों में भी आंसू आ गये। सास और सीता जीना उतरीं तो पूरणदेई और तारा भी साथ गईं। टैक्सी चल दी तो तारा को अकेली रह जाना बहुत खटका।

मर्सी सीता के विवाह की संध्या भीड़-भड़क्के के कारण तारा से बात करने का अवसर नहीं पा सकी थी। जाते समय तारा से अनुरोध कर गयी थी, तुम से जरूरी बात करनी है। उधर आना या फोन पर कह देना। संध्या तो मैं भी आ सकती हूं।"

तारा ने मर्सी से फोन पर पूछा, क्या कहना चाहती थी। अनुमान किया—शायद चुपके-चुपके पार्टी फंड के लिये चंदा लेना चाहती होगी! मुझ से दूसरी प्राइवेट बात क्या हो सकती है परन्तु इस समय तारा किसी से भी बात कर मन हलका कर लेना चाहती थी।

मर्सी ने उत्तर दिया—"इस समय ठीक नहीं होगा। दो-तीन और लोग भी बैठे है। कल दोपहर आओ, लंच यहाँ ही खा लेना।"

तारा को संध्या तक अकेले ही रहना पड़ा। पूरणदेई का साथ भी क्या साथ था। मन चाहा, नरोत्तम माथुर में से कोई आ जाता। ख़याल आया, शीलो के यहां हो आये। फिर स्वयं ही सोचा, मुझे किसी की जरूरत नहीं है। बिना साड़ी बदले पलंग पर लेट गयी। पुरानी बातें···! भाई से सुना हुआ एक शेर जबान पर आगया। कोई सुन नहीं रहा था। आह से गुन-गुना उठी—

"बुल-बुल को दिया नाला परवाने को जलना,
ग़म हम को दिया जो सब से मुश्किल नजर आया!"

तारा ने अपनी प्रतारणा की—···मुझे क्या हो रहा है? क्या गम है मुझे? मुझे कोई गम नहीं है।

नाथ ने तारा को प्लानिंग कमीशन की रिपोर्ट की एक प्रति दी थी। मन न लगने पर भी उसे पढ़ने लगी—जानना तो चाहिये देश में क्या हो रहा है। पूरणदेई का भी अकेले मन नहीं लग रहा था। अब उसे काम ही क्या था। खाली बैठी क्या करती इसलिये होज़ियरी फैक्टरी से मोज़े लाने चली गई थी। वह छः बजे लौटी। तारा ने तब तक रिपोर्ट के सैंतालीस पृष्ठ पढ़ लिये थे।

पूरणदेई होज़ियरी फ़ैक्टरी से लौटते समय सदर बाज़ार की अपनी पुरानी पड़ोसिनों से भी मिल कर आयी थी। चार-पांच मील पैदल चलना हो गया

था। वह बहुत थकी हुई थी। व्याह के समय की थकावट भी अभी शरीर में भरी हुई थी। बैठी रहने के लिये तारा से कोई न कोई बात करती जा रही थी।

तारा ने रिपोर्ट उठाकर एक ओर रख दी। पलंग से उठ कर बोली--"बुआ तुम थकी हो, जरा लेट लो। आज खाना मैं बनाती हूं।"

"नहीं नही, तू क्यों बनायेगी, मुझे क्या मौत आ गई है। मैं कर लूंगी।"

"नही बुआ, आज मुझे बना लेने दो। महीना हो गये। देखूं, भूल तो नहीं गई।"

"चल कमली (पागल)" पूरणदेई लाड़ से बोली, "तीमियां (अबलाओं) कभी रसोई बनाना भूल सकती है ? वे तो जन्म ही इसी प्रयोजन से लेती है कि पका कर खिलाये।"

तारा जिद्द कर रसोई में चली गयी। पूरणदेई रसोई की दहलीज पर बैठी उसे बताने लगी, अमुक चीज कहां रखी है।

तायी आ गयीं। जाना लेना जरूरी था कि पूरणदेई ने लड़की को बिदाई के समय क्या-क्या दिया था। तायी तारा को रसोई में देख कर प्रसन्न हो गयी--"तीमी तो चौके और ससुराल में ही सजती है। अब इस का भी ठौर-ठिकाना बनाने की फिक्र करो न !" तायी कई बार कही हुई बाते कहने लगी, "इस के लिये तो बहुत देख, समझ कर ही करना होगा।" तायी ने अपने भाई के लड़के की चर्चा की, "इसके लिये तो वैसा ही घर चाहिये।"

"जिस महाराज जी ने इतना किया है, वही सब करेंगे।" पूरणदेई ने बात समाप्त कर देनी चाही। जानती थी, ऐसी बातो से तारा को झुंझलाहट होती थी।

तारा रविवार को एक बजे मर्सी के यहाँ पहुंची। मर्सी ने चिम्मो को खाना मेज पर रख देने के लिये कहा।

तारा को चड्ढा दिखाई नही दिया था। उस ने कहा--"जल्दी क्या है, "जीजा जी को भी आ लेने दो।"

'वे तो लखनऊ गये है। तभी तो मैंने तुम्हें बुला लिया कि अकेले मे बात कर सकेंगे। तिवारी के बारे में तूने क्या फैसला किया ?" मर्सी ने सहसा प्रसंग आरम्भ कर दिया।

"किस बात का फैसला ?" तारा ने विस्मय से पूछा।

"तुम नही जानती ?"

"तिवारी जी, नित्यानन्द तिवारी को जानती क्यों नहीं, अलीगढ़ में है।"

"माथुर ने तुम दोनों के बारे में कहा था न ?"

"मैंने तभी कह दिया था, मेरा कोई विचार नहीं है।"

"तुमने तो कहा था कि अभी विचार नहीं है। यह थोड़े ही कहा था कि तिवारी पसन्द नहीं है।"

"उस बेचारे में दोष क्यों बताऊं। भला आदमी है पर मुझे विवाह की इच्छा ही नहीं है।" तारा कुछ झल्लाहट से बोली।

"वाह, माथुर तो कहता है तुमने कहा था, तिवारी इज ए वैरी नाइस मैन। तुम्हारे जैसी नखरेलो एकदम हां थोड़े हीकर देगी। अब तुम चौबीस की हो। माथुर का तुम पर और तिवारी पर भी बहुत स्नेह है। तिवारी माथुर का स्टूडेंट था न, अब रीडर हो गया है। हां, तनखाह तुम से कम है। सब कुछ पैसा ही तो नही है!"

"माथुर भाई का तो दिमाग खराब है" तारा अंग्रेजी में बोली, "जो कुछ स्वयं नही कर सके, वह दूसरों को करता देख कर संतुष्ट होना चाहते हैं। मैच मेकिंग (सम्बन्ध मिलाने) का खब्त है। अपना मैच ढूंढने की फिक्र क्यों नही करते?"

"वह तन-मन से सन्यासी आदमी है। तैंतालीस से ऊपर हो गया है। अब क्या ब्याह करेगा?"

"इसीलिये दूसरों के ब्याह करा कर अपना मन भरते हैं?"

"क्या बुरा है। तुम जानती हो, तुम्हें वह बहुत ही मानता है। तुम्हारी चिन्ता तो ऐसे करता है, जैसे बेटी बना लिया हो।"

"मैं क्या उन का कम आदर करती हूं? बाल सफेद नहीं हैं, नहीं तो चाचा जी कहने लगती।"

चिम्मो ने खाना दे दिया। चिम्मो भूल गयी थी कि तारा मिर्च कम खाती थी। तारा खाये भी जा रही थी और सू-सू, सी-सी भी किये जा रही थी।

"जानती है, माथुर कह रहा था कि तिवारी के लिये सम्बन्ध के कई अच्छे प्रस्ताव आये पर उस ने स्वीकार नहीं किये। वह तुम्हारा ध्यान लगाये बैठा है।"

"नानसेंस।"

"नानसेंस नही, बताऊं, तुम्हारी तसवीर की पूजा करता है।"

"कुछ और बढ़ा कर कहो।"

"तुम्हारी कसम। माथुर कहता है।"

"मेरी तसवीर कहाँ से मिल गई उसे?"

"माथुर ने मुझ से मांग ली थी।"

"वह तो हम दोनों की साथ-साथ थी । तुम्हारी पूजा करता होगा।"

"मैने अपनी तसवीर काट कर तेरी दे दी थी ।"

"मेरा बहुत उपकार किया। धन्यवाद दूं ?" तारा सचमुच खीझ गयी।

"क्या अनुपकार कर दिया ? कोई तुझे चाहता है, तेरी कदर करता है तो तुझे बुरा लगता है ?"

"ऐसे चाहने को क्या करूं ? ऐसा तो एक और भी है। शायद सुपनों में मुझे देखता हो ।"

मेरे लिये इस तरह रास्ता देता है, पर्दा उठाता है कि मैं साबुन का बुलबुला हूं। मुझे कुछ भी छू गया तो फट्ट हो जायगी ।"

"तू चिढ़ती क्यों है ?"

चिढ़ूं कैसे नही ? जब मैने उन लोगों के सामने ऐसा कोई विचार या संकेत नही प्रकट किया तो क्यों परेशान होते है ? मुझे बदनाम करायेंगे !"

"तुम्हें कोई पसन्द आयगा भी ?"

"ऐसी क्या फिक्र हो गयी है ?"

"फिक्र क्यों नहीं होगी ?

"मुझे घर-आश्रय ढूंढने की जरूरत नहीं। न मैं सीता की तरह बेचैन हूं।"

"माथुर कहता है, तिवारी तेरे लिये उम्र, शिक्षा-दीक्षा, रूप-रंग सभी तरह से बहुत उपयुक्त है।"

"पर यह सब निश्चय करने की जरूरत क्या आ पड़ी है ? मुझे तो उस के प्रति कभी कोई आकर्पण अनुभव नही हुआ, कभी उस के विपय मे उस प्रकार का ख्याल नहीं आया । वह मेरे लिये प्रतीक्षा न करे ।"

"तो फिर किसके विपय में सोचा है ?"

"जब सोचूंगी, बता दूंगी ?"

"हूं" मर्सी तारा की ओर देखती चुप रह गयी।

"जीजा जी कब लौटेंगे ?"

"लम्बा प्रोग्राम है। पहले लखनऊ, पटना, फिर कलकत्ता। दो सप्ताह लग जायेंगे। क्यों, क्या बात है ?"

"कह रहे थे न कि लौट कर एक दिन डाक्टर साहब से बातचीत करने के लिये मिलना चाहते है। डाक्टर साहिब कह रहे थे कि उन की कोठी तो बस रूट से भी एक मील दूर है। जीजा जी जब लौट आयें तो डाक्टर साहब को बुला लूंगी या मै उन्हें यहाँ ही ले आऊंगी ।" तारा ने बात बदली, "दीदी, सोचती हूं, छोटी गाड़ी तो मिल नहीं रही । छोटी के दाम ज्यादा माँगते है,

वही फोर्ड ले लूं। डाक्टर साहब भी यही कहते हैं, मुझे कौन दिन भर घूमना है जो पैट्रोल की बचत सोचूं।

"डाक्टर पर तू बहुत मरी हुई है। सदा उसी की बात! दिल उसी से तो नहीं लगा हुआ ?"

"क्या बक रही हो दीदी ?" क्रोध में तारा की गर्दन सीधी हो गयी।

"मैं बक रही हूं, देखा नहीं मैंने ? कैसे चिपकी-चिपकी चलती थी, नजरों के आगे बिछी जा रही थी।"

मैं उन के सामने क्या चीज हूं! उन की पोजीशन का ख्याल नही है तुम्हे ?" तारा का चेहरा तमतमा गया।

"ऐसी खुशामदी कब से हो गई, क्या पोजीशन है ? खुदा है क्या ? वह जवान मर्द है तू जवान औरत है। तू लाल क्यों हो गयी ?" मर्सी ने अपने अनुमान की सचाई का प्रमाण देने के लिये प्रसन्न होकर अंगूठा दिखा दिया, "कैसा पकड़ा ?"

"इतना तो सोचो, ही इज़ मेरिड। उन की वाइफ है।"

"वाइफ ?" मर्सी ने विस्मय प्रकट किया, "वाइफ उस दिन तो साथ नहीं आयी ?"

"अंदेशा है, कुछ गड़बड़ न हो। कभी साथ नहीं देखी।" तारा गंभीर हो गयी।

"तेरी वजह से ही तो गड़बड़ नहीं है, डे जैसा ही मामला तो नहीं है ?"

"दीदी, तुम लिमिट हो।" तारा का स्वर कड़ा हो गया, "मैंने मिसेज नाथ को कभी देखा तक नहीं।"

"उस ने तुम दोनों को देख लिया होगा, उसे संदेह हो गया होगा ?"

तारा की आंखों में क्रोध के आंसू आ गये—"दीदी, ऐसे बकोगी तो मैं कभी यहां नहीं आऊंगी। तुम जानती नहीं, डाक्टर साहब हम लोगों के लिये क्या हैं! उन्होंने मेरे पिता की सहायता की है, मेरे भाई की सहायता की है, मेरी सहायता की है। बड़े भाई से भी अधिक उनकी इज्जत करती हूं। वह हम लोगों के रक्षक रहे हैं। हम उन के एहसान कभी भूल नहीं सकते।"

मर्सी चुप रह गयी। तारा भी दस मिनिट तक चुप बैठी रही, बोली नहीं। फिर सहसा बोली—"मैं अब चलूंगी।"

"जरा बैठ!"

"नहीं अब जाने दो!"

मर्सी तारा को जीने से नीचे छोड़ने चली तो मुंह से कुछ न कह कर

तारा को जोर से आलिंगन में ले कर गाल पर चूम लिया।

तारा के मन का क्रोध धुल गया।

चड्ढा महीने भर बाद ही दिल्ली लौट पाया। उसे डाक्टरर नाथ से मिलने की बहुत उत्सुकता थी। उसने तारा से अनुरोध किया। रविवार के दिन डाक्टर चार बजे आया। तारा उस की गाड़ी का हार्न सुन कर जीना उतर गयी और डाक्टर को दरियागंज में मर्सी के मकान पर ले गयी।

मकान पर केवल चड्ढा, मर्सी और माथुर ही थे। बहुत देर तक डाक्टर और चड्ढा में बातचीत चलती रही। मर्सी आदर में चुप रही। बड़ी होने के नाते उस ने खातिरदारी का भार तारा पर डाल दिया। तारा और माथुर भी बीच में कम ही बोले।

मिसेज अगरवाला ने तारा से सम्पर्क टूटने नहीं दिया था। खासकर अपने लिये ब्लाउज सिलवाने होते तो कई बार फोन करती थी और गाड़ी भी भेज देती थी। कहती—मरे दर्जी को कौन नाप दे। मरे नाप चाहें जितना ले लें, ठीक फिट तो कर ही नही पाते। बच्चों के जन्मदिन पर उसे भी जरूर बुला लेती थीं।

नवम्बर के दूसरे सप्ताह में पुत्तन का जन्म-दिन था।

तारा ने दफ्तर से लौट, घर में चाय पी, कपड़े बदल कर, जरा विलम्ब से 'ए ए' में पहुंची। घरेलू ढंग की अनौपचारिक पार्टी थी। स्त्रियां और बच्चे काफी थे। काफी शोर भी था। अतिथि स्वयं तीन ओर बंट गये थे। एक ओर बच्चे, दूसरी ओर स्त्रियां, तीसरे दल में स्त्री-पुरूष। पाँच-सात गांधी टोपियां भी थीं। तारा कई कांग्रेसियों को पहचानने लगी थी। सिफारिश या किसी काम से लोग उस के दफ्तर में भी आते रहते थे।

प्रसाद जी ने बहुत अधिकार और उपालम्भ से स्वागत किया—'तारा जी तो ईद का चांद हो गयी हैं। अब सरकारी अफसर है। हम जन-साधारण से क्या सम्पर्क रखेंगी!"

"आप भी क्या बात करते है भाई साहब आप लोग तो राजा की बिरादरी है" तारा ने उत्तर दिया।

"वाह वाह! बहुत खूब।", अगरवाला साहब, और उनके समर्थन में दूसरे लोगों ने भी कहकहा लगा दिया।

तारा ने मिसेज अगरवाला और साहब को बधाई दी।

सराफ जी और गोपी बाबू ने भी तारा को पहचान कर जयहिंद कहा।

मिसेज अगरवाला ने उसे बांह में लेकर कहा—"हम तो कहते हैं और बड़ी अफसर हो जाये पर हमारी तो छोटी बहन ही है।"

तारा बातचीत की भनक से समझ गयी—चुनाव चर्चा चल रही थी। दिल्ली में सभी जगह चुनाव की ही चर्चा थी। विधान सभा और लोकसभा के चुनाव में केवल दो ही महीने शेष थे। कौन चुनाव लड़ेगा, कांग्रेस का टिकट किसे मिलेगा ? किस के लिये आशा है।

तारा पुतन के लिये उपहार आंचल में छिपाये, उसे प्यार करने के लिये बच्चों की ओर चली गयी।

तारा मिसेज अगरवाला की ओर लौटी तो प्रसाद जी और गोपी बाबू बात कर रहे थे। तारा जरा झिझकी परन्तु मिसेज अगरवाला ने उस की ओर संकेत कर कह दिया—"इस से ही पूछ लो, यह खूब जानती है। तारा ने उसे क्लब में भी कई बार देखा है। क्लब में डे और रावत साहब के साथ भी उस ने शराब पी थी।"

गोपी बाबू मुंह में भरा पान और पलकों के नीचे कोये घुमाते हुए बोले —"अरे उस की तो बहुत बदनामी है। उस का कोई कैरेक्टर है ! हम तो उसे मुद्दत से जानते हैं। जब कश्मीरी-गेट पर रहती थी, डाक्टर जाफरी से ताल्लुक था। वह इसे तमाम मुसल्मानों के केस दिलाता था। 'माल्कम-हे' का एजेंट समर्थ इसी के यहां पड़ा रहता था। अब डे को फंसाये है।"

प्रसाद जी ने कुर्ते की दोनों जेबों में हाथ धंसा लिये। दुबले कंधों को फैलाने के लिये पीछे खींच कर गर्दन उठा कर समर्थन किया—"हमें सब इन-फार्मेशन है। सिंह और महाजन उसे ताव पर चढ़ा रहे हैं। हम उसे टिकट देकर कांग्रेस की बदनामी करवायेंगे ? उस का कोई कैरेक्टर है ?"

नरोत्तम समीप खड़ा था। उस ने सुना तो होंठ सिकोड़ परे हट गया।

तारा समझ गयी थी कि डाक्टर श्यामा की निन्दा हो रही थी। जानती थी श्यामा, प्रसाद जी और मिसेज अगरवाला के विरोधी कांग्रेस दल में थी।

अगरवाला बोल उठीं—"वह तो क्लब में सरेआम पीती है, सिगरेट फूंकती है, जुआ खेलती है, अंडा-मछली-कबाब खाती है, क्या नहीं करती ? उस की नाक में नकेल थोड़े ही है। इसायन है, उसे किसी का डर-लिहाज थोड़े ही है। उस के किस्से बेचारी मिसेज डे से पूछो। गरीब का घर उजाड़े दे रही है। इलेक्शन-बोर्ड के सब लोगों के पास जा-जा कर रो रही है"'। दत्त जी के पास भी गयी थी"'।

प्रसाद जी ने चुनौती दी—"दत्त क्या कर लेंगे ? वह समझती क्या है

अपने आप को ! हमीं तो उसे कांग्रेस में लाये, उस की प्रैक्टिस वढ़ायी। हमारे सामने अकड़ेगी ? हमारी बिल्ली हमीं को खौखियाए ! ...तमाम बड़े लोगों में हमीं ने तो उसे इन्ट्रोड्यूस कराया है। हम उस की प्रैक्टिस मिट्टी में मिला देंगे। क्या और लेडी डाक्टर नहीं हैं शहर में ? मिस ग्रिफथ है, बरोडकर है, मिसेज चरन है, सिंघल है। वह भंगी-कालोनी में फ्री केस करती रहे। उस पापुलारिटी (जनप्रियता) से क्या होता है ? हम उस का दिल्ली में रहना मुश्किल कर देंगे...।"

तारा लाल्ली को पुकार उस की ओर चली गयी। उस से दो बातें करके डौली की ओर बढ़ गयी। डौली ने मुंह बना कर बहुत मान किया। अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियों की भाषा में बोली—"हम ने तो आप को आते ही विश किया था। आप ने तो ऐसा इग्नोर मारा ! हमारा तो दिल किया आप से कभी बात न करें।"

तारा ने डौली को अपनी कसम लेकर विश्वास दिलाया कि उस को नजर नहीं पड़ी वह तो उसे खुद ढूंढ़ रही थी। डौली ने संतुष्ट होकर तारा की साड़ी की सराहना की—"हाय कितनी स्वीट लग रही है।" उस ने आंखें चढ़ा लीं, "बड़ी लाइट मार रही है।"

तारा मां जी का भी हालचाल पूछने गयी। फिर नरोत्तम से बात करती रही। तारा का जल्दी जाना मिसेज अगरवाला को खटकता इसलिए वह कुछ लोगों के चले जाने की प्रतीक्षा करती रही। सराफ, प्रसाद जी और गोपी बाबू चले गये। नरोत्तम ने उसे छोड़ आने का आश्वासन दे दिया था।

तारा ने भी आज्ञा चाही।

मिसेज अगरवाला ने फिर तारा से बात की—"हमें क्या परवाह है ? मेम्बरी के भत्ते को हम जूती मारें है ! यही लोग हमारे पीछे पड़े है। हम तो इंडिपेंडेंट भी चुनाव लड़ ले और जीत जायें। उसे... बोर्ड टिकट देगा नहीं, खामुखा अपनी फजीहत करायेगी। तुम उसी के भले के ख्याल से उसे समझा दो। तुम्हें तो बहुत मानती है।"

श्यामा की निन्दा तारा को भली नहीं लगती थी। उस पर श्यामा का एहसान था। श्यामा जब भी मिलती थी, बहुत ही अपनेपन से व्यवहार करती थी। मर्सी प्रायः ही कांग्रेस वालों की कटु आलोचना करती थी परन्तु वह जिन कांग्रेस वालों को निस्वार्थ और इमान्दार बताती थी उन में श्यामा का भी नाम विशेष आदर से लेती थी। कहती थी, श्यामा असल में डाक्टर है। उसे फीस का लालच नहीं है। चाहे जो जिस समय बुला ले। बहुत ही गरीब

केस हो तो दूध-दवाई के लिये दो रुपये जेब से भी दे आती है परन्तु श्यामा के ऐसे-वैसे सम्बन्धों की कुछ अफवाह उस ने भी सुनी थी। मर्सी ने यह भी बताया था कि मिसेज डे श्यामा की निन्दा करती फिरती थी परन्तु उस की अपनी कौन बड़ी कीर्ति थी? प्राइवेट नर्स के रूप में बड़े लोगों के रहस्यों की अफवाहें मर्सी तक भी पहुंच जाती थीं।

तारा अपने मकान पर लौट कर श्यामा के ही विषय में सोचती रही। श्यामा को उस ने दो बार डिनर में निस्संकोच शराब-सिगरेट पीते देखा था फिर भी मन उस की निन्दा को स्वीकार नहीं करता था। तारा ने सोचा, थोड़ी-बहुत लेते मिसेज अगरवाला को भी देखा। यह बन कर, जरा नाक चढ़ा कर लेती है। श्यामा निस्संकोच लेती है दूसरों की आलोचना नहीं करती। वह बुरा नहीं मानती होगी। मिसेज अगरवाला तो बुरा कहती हैं, और पी भी लेती हैं। दूसरों के पीने की चुगली भी कर देती है"'। कई लोग प्याज को भी बुरा मानते हैं। मिसेज अगरवाला के विचार में मांस शराब से कहीं बुरा है।

सहसा ख्याल आया—"' तेरी वजह से ही तो डाक्टर और मिसेज नाथ में गड़बड़ नही है? मर्सी ने बक दिया था। ऐसे ही बेचारी श्यामा के लिये भी बकते होंगे। मिसेज डे सन्देह में जल कर बकवास करती रहती होगी। श्यामा ऐसी कहां है? इतनी सहृदय""। मुझे इन लोगों के चुनाव के झगड़ों से या किसी की चुगली खाने से क्या मतलब! लेकिन उस बेचारी के विरुद्ध यह लोग क्यों पड़े है?

तारा को श्यामा से मिले बहुत दिन हो गये थे। बरस भर पहले एक बार उस के बंगले पर गयी थी। सोचा, रविवार अकेली पड़ी रहने से अच्छा हो कि श्यामा के यहां हो आये।

श्यामा बहुत दूर राजपुर रोड पर रहती थी। तारा ने पहले फोन कर लेना उचित समझा। तारा के फोन के उत्तर में श्यामा ने पूछा—"क्यों, क्या बात है? तुम्हारी तबियत तो ठीक है? संकोच मत करो! दोपहर बाद पचकुइयां रोड पर आकर देख जाऊं?"

तारा ने विश्वास दिलाया—"बहिन जी, केवल मिल लेने के लिये ही आना चाहती हूं। मिले बहुत दिन हो गये।"

"आओ आओ, सिर आंखों पर आओ, चार बजे आ जाओ! आज यहां चार बजे से ब्रिज होगी। तुम भी खेलना।"

"बहिन जी, ब्रिज तो सीखी नहीं। सात बजे ही आ जाऊंगी।"

"फ्लैश तो खेलती हो।"

"नही बहिन जी, ऐसे कभी मजबूरी मे"

श्यामा ने फिर भी अनुरोध किया—"नही खेलती तो भी हर्ज नही। जल्दी ही आना, चाय यहां ही पीना।"

तारा सात बजे राजपुर रोड पर श्यामा के यहां पहुंची। सामने बराम्दे में तिपाई-कुर्सिया लगी हुई थी परन्तु कोई नही था।

माली और नौकरानी ने बताया—दो बजे एक मर्द-औरत मरीज दिखाने के लिये बुला ले गये थे। तब से गयी अभी तक नही लौटी। दूसरे मेम और साहब लोग भी आकर लौट गये।

तारा माली से बात करने से पहले टैक्सी छोड़ चुकी थी। समीप टैक्सी-स्टैंड कहां है, मालूम नही था। वह माली से टैक्सी ला देने का अनुरोध कर रही थी कि श्यामा अपनी छोटी गाड़ी में आ गयी। उस ने तारा को सम्बोधन किया—"हाय, तब से बैठी हो, लौट रही थी ?"

श्यामा तारा से हाल-चाल पूछती उसे अपने साथ भीतर ले गयी। चेहरे से बहुत थकी हुई लग रही थी। सोफा पर बैठी तो शिथिलता से गर्दन पीछे डाल दी—"बहुत एबनार्मल केस था। खैर, जच्चा-बच्चा दोनो बच गये। तुम्हें देखे तो महीनों हो गये। तुम ने याद तो किया ? अब तुम बड़ी अफसर भी बन गयी हो, फुर्सत कहां है ?"

"बहिन जी, आप कैसी बात कहती है ?" तारा ने कातर आंखों से देखा।

"नही नही, यों ही कह दिया। तुम तो बहुत स्वीट हो। तुम्हें पहली बार ही देखा था तब भी जाने क्यों अपनापन लगा था।" श्यामा ने तारा के कंधे पर हाथ रख लिया, "याद नही !"

"कैसे भूल सकती हूं। मिले बहुत दिन हो गये थे। बहुत याद आ रही थी।" तारा का स्वर घुल गया।

श्यामा ने उसे अपनी ओर खींच लिया—"चाय पियोगी ?"

"पीकर आयी हूं पर साथ दे दूंगी।"

"बिन्दो !" श्यामा ने पुकारा, "चाय लाओ।" और फिर तारा से बोली, "तुम एक मिनट बैठो। मुंह-हाथ धो लूं। बहुत थकी हुई हूं।"

चार-पांच मिनट बाद तारा ने बगल के दरवाजे से सुना—"यहां ही आ जाओ।" श्यामा पर्दे के पीछे ड्रेसिंगगाउन पहने खडी थी।

श्यामा ने तारा को पलंग के समीप पड़ी आराम कुर्सी पर बैठा दिया। बोली—"तारा, बुरा न मानना, मैं बहुत थक गयी हूं।" और करवट से पलंग पर लेट गयी।

नौकरानी चाय ले आयी। तारा ने किश्ती अपनी ओर खींच ली और चाय ाने लगी।

श्यामा ने पूछ लिया—"सुनाओ, समय कैसे बीत रहा है ?"

"कुछ खास नहीं, दफ्तर और घर। इस बृहस्पति की संध्या 'ए ए' में गयी। पुत्तन का जन्मदिन था। आप नहीं आयीं।"

"उन लोगों से दूर ही भली।" श्यामा चाय के घूंट भरती रही।

"क्या बात है, बहिन जी ?" तारा ने बात चलाने के लिये पूछा।

"बात क्या होगी" श्यामा गम्भीर हो गयी, "एक प्याला और लूंगी।"

दूसरे प्याले से घूंट भर कर श्यामा बोली—"मैं तो परेशान हो गयी इन लोगों से और इस कांग्रेस से ! इसे छोड़ दूं तो बस बीमार, केस और सूनापन ! आज सोचा था, तीन-चार घंटे ब्रिज खेलेंगे। जरा डाइवर्शन (बहलाव) होगा। इस कमबख्त केस को भी इसी वक्त आना था।"

श्यामा ने दूसरा प्याला आधा ही छोड़ दिया और दीवार पर नजर लगाये मौन रह गयी।

"क्या बात है, आप वरीड (चिंतित) हैं।" तारा ने टोका।

"सिवाय वरी के और है ही क्या।" उस ने गहरी सांस ली।

"यह चुनाव की उम्मीदवारी का क्या झगड़ा है तारा ने पूछा ?"

"अरे झगड़ा यह है कि तीन सीटें स्त्रियों के लिये हैं। अगरवाला कांग्रेस का टिकट चाहती है। प्रसाद उस का समर्थन कर रहा है। कुछ लोगों ने मेरा नाम दे कर मेरी मुसीबत कर दी है। वे लोग अगरवाला को नहीं चाहते। ठीक भी है। सन् ४७ से पहले कहां थी यह ? अंग्रेज सैक्रेटरियों की मेमों के पीछे-पीछे घूमा करती थी। बिलकुल जाहिल है, क्या करेगी असेम्बली में जा कर ? दो-चार को खिला रही है, वे लोग उसे आगे बढ़ा रहे है। मैं तो कहती हूं कि इस में स्त्री-पुरुष का सवाल क्या है, जो लोग राजनीति-अर्थनीति और शासन की बातें समझते हैं, उन्हें असेम्बली में भेजो। महाशय जी खामुखाह मेरे नाम के लिये जिद्द करके मेरी फजीहत करवा रहे है।"

तारा कुछ पल मौन रही फिर बोली—"आप इन्हें ऊटपटांग बकवास करने का मौका क्यों देती है ?"

"क्या ?"

"बहिन जी यह मत ख्याल करियेगा कि चुगली कर रही हूं पर आप के लिये कोई ऊटपटांग बकता है तो मुझे बुरा लगता है। मैं आप का बहुत आदर करती हूं।"

"कौन, क्या कह रहा था ?" श्यामा ने तारा की ओर झुक कर पूछा ।

"यही अगरवाला । विश्वास कौन करेगा पर सुन कर बुरा तो लगता है। मिसेज डे का नाम लेकर कांग्रेसियों के सामने जाने क्या-क्या बक रही थी ।"

श्यामा मौन सीधी लेट गयी । आंखें मूंद लीं ।

तारा भी चुप थी । बिलकुल सन्नाटा हो गया । तारा की नजर श्यामा की ओर गयी तो देखा, वह उंगलियों से कनपटियों को दबा रही थी ।

"सिर दरद है, दबा दूं ?" तारा ने पूछा ।

"हूं ।"

तारा पलंग के सिरहाने बैठ गयी और श्यामा का सिर दबाने लगी । दो मिनट बाद श्यामा ने कहा—"रहने दो ।"

"नहीं क्या है, दबा देती हूं । थकी नहीं हूं ।"

"नही, सिर में दरद नही है, परेशानी है ।"

"क्यों, क्या बात है ?" तारा ने हाथ श्यामा के माथे पर रखकर पूछा ।

"तू यहाँ ही आ जा ।" श्यामा तारा को अपने साथ लिटाने लेने के लिये सरक गई ।

"क्या बात है दीदी, बहुत परेशान हो ?"

"कुछ समझ नहीं आता, क्या करूं इस जिन्दगी का ।...शायद यही बुराई है कि ब्याह नहीं किया । घरों मे बन्द औरतें शायद हम से अच्छी है । गृहस्थ के धन्दे और बच्चों की चिन्ता और चिल्लपों, उनके दिमाग मे और कोई बात आने ही नही देती होगी ।... पेट भरता रहता है, काम तृप्ति भी होती रहती होगी पर मै वह भी न सह सकती । स्त्री को बाँध कर रखना है तो उसका व्यक्तित्व जगाने, उसे आत्मनिर्भरता की बात सिखाने की क्या जरूरत है ? पति होता तो उसे शायद मुझे बहुत पीटना पड़ता, शायद मेरा कत्ल ही कर डालता । हो सकता है, मेरा मन बदल जाता, पशु बन जाती । कभी रस्सी तुड़ाने का यत्न न करती । हाँक दी जाने पर भी दरवाजे पर अड़ी रह कर रम्भाने लगती ।"

श्यामा मौन हो गयी । तारा भी सोच में पड़ कर चुप थी ।

श्यामा फिर बोली—"तैंतीस की हो गयी हूं । अब शादी कर लूं ? किस से कर लूं ? चौबीस-पच्चीस बरस के लड़के से कर लूं ? पैंतीस-चालीस की उम्र तक शादी लायक कौन मर्द प्रतीक्षा करता रहता है ? किसी विवाहित को दूसरी से छीन लूं ! मर्द जरूर पहले जिस स्त्री को चाहते थे जोर-जबर से उसे उठा ले जाते थे । अब दूसरे ढंग है । मेरा भी इरादा होता तो शायद असंभव

न होता पर ऐसा नहीं सोचा। मैं ऐसा सोच भी नहीं सकती। डे की बीबी किस बात के लिये मरी जा रही है। उसे यही ख्याल है कि उस की गृहस्थी की गाड़ी के घोड़े को मैं छीने ले रही हूं पर मैं ऐसा नहीं कर रही हूं। कभी घंटे आधे घंटे बात कर ली तो उस का क्या लूट लेती हूं? उसी का आदमी है, उसी के घर रहता है! वही उस की कमाई खाती है, उस की शरण पाकर उसी को धौंस देती है। उसी की वजह से पोजीशन है, वर्ना वह खुद क्या है? रोटी-कपड़े को मोहताज फिरे! मैं कभी दो बात कर लेती हूं तो उस का कौन सा धन छीन लेती हूं, जिस से वह भूखी रह जाती है?""क्या जिस-तिस से ब्याह कर लूं? मैं क्या गाय-भैंस हूं। जो साथ के लिये अच्छे लग सकते हैं, वे सब गृहस्थियां लिये बैठे है।"

तारा को लग रहा था श्यामा किसी बीमारी का अप्रिय चित्र उसे दिखा रही थी। गहरी सांस लेकर बोली—"दीदी, फिजूल क्या सोचना है। क्या उस के बिना निभ नहीं सकता?"

"कहां निभ सकता है? कैसे निभ सकता है?" श्यामा ने बेबसी प्रकट की, "सदा अपने आप को दबाते-कुचलते रहना यातना नहीं है? जो विवाहितों के लिये स्वाभाविक है वही अविवाहितों के लिये स्वाभाविक है। रोकने का यत्न करते ही है। रोके रहने के विश्वास में ही कुछ हो जाता है।" श्यामा हाथ पर कनपटी टिका कर मौन हो गयी।

तारा ने अपना विचार प्रकट किया—"प्यार में क्या व्यवहार का संयम नहीं रह सकता?"

श्यामा फुंकार सी छोड़ कर बोली—"तरसना ही प्यार है? प्यार क्या संतोष नहीं चाहता? रक्त-मांस का उन्मेश ही सही पर हृदय और क्या है, मस्तिष्क और क्या है? शरीर को काट कर परीक्षा करने से तो हृदय में प्यार या मस्तिष्क मे विचार रखे हुये नहीं मिलते। प्यार और विचार शरीर का व्यवहार मात्र है।"

श्यामा ने गहरी सांस ली—"कभी सोचती हूं, आध्यात्म का नशा लगा लूं पर उस में मेरा मन नही जमता, जबरदस्ती कैसे विश्वास कर लूं। जो विश्वास कर पाते है, उन की बात दूसरी है। ऐसी भी तो स्त्रियां है जो टोना करके संतान पा लेने में विश्वास कर सकती है; इस विश्वास में जान की बाजी लगा देती है, हम-तुम वैसा विश्वास कर सकती है!"

तारा क्षण भर सोच कर बोली—"दीदी, जिस समाज में रहते है उस के नियम भी तो माने जाते है, भूख से व्याकुल हो जाते है तो भी संयम रखते है।"

"कुछ दिन भूखी रह कर देख, तब कहना।" श्यामा ने तारा की आंखों में देखा।

"तीन-तीन दिन भूखी रह कर, कई-कई दिन आधा पेट खा कर देखा है दीदी! कुछ को टुकड़ों के लिये लड़ते भी देखा है। जो नहीं लड़ीं, उन्हें भी देखा है। अपना आत्म-सम्मान भी तो कुछ होता है जिस के लिये प्राण दे दिये जा सकते है।"

तारा ने संक्षेप में शेखूपुरा की कैद के अनुभव बता दिये। श्यामा आंखें फाड़े सुनती रही। अंत में कुछ पल मौन रह कर उसने तारा से पूछ लिया—"तुम मानने को तैयार हो कि तुम्हारे कर्मों का फल था?"

"यह कैसे मान लूं? कैसे मान लूं कि भगवान मेरे कर्मों का फल देने के लिये दूसरों से पाप करवा रहा था? बस में नहीं था इसलिये सहना पड़ा, अपने बस की सीमा तो माननी ही पड़ेगी।"

श्यामा कुछ पल मौन रह कर बोली—'मैने अपने आप को बहुत रोका है। डे बहुत दुखी हो जाता है।"

कुछ सोच कर तारा बोली—"पर दीदी, उस के तीन बच्चे है। उन लोगों का क्या होगा?"

"उन का क्या बिगड़ रहा है। वही चुड़ैल बवंडर खड़ा किये रहती है। मैंने ले क्या लिया, छीन क्या लिया है, वही बता दे! उसे ईर्ष्या है, यही जलन है कि पति जरा खुश क्यों हो जाता है? प्राइड आफ पोजेशन (स्वामित्व का अहंकार) और क्या? ईर्षा! ईर्ष्या के सिवा उस चुड़ैल को काम ही क्या है? खाना-पहनना और शिकायत करना। घर अब भी डे की मां संभालती है। रसोइया है, आया है। पहले तो उसी चुड़ैल ने ऊटपटांग किया। डे किसी से कहता तो नाक कटाता......एक बार तो बेचारा जहर खा लेने के लिये तैयार हो गया। चुड़ैल से बोलना छोड़ दिया। एक जमाना था, पुरुष अपने सम्मान की रक्षा के लिये ऐसी स्त्री का सिर काट लेता था, अब जानकर भी उस पर परदा डालता है....वह सब के सामने गरीब की बदनामी करती फिरती है। डे खून के घूंट भर कर, अपनी घृणा को दबाकर चुप रह जाता है। एक दिन तो इतना परेशान हो गया कि सोचने लगा—रात बंगले के सब दरवाजे बंद करके आग लगा दे, कोई भी न बचे ...।"

तारा कुछ भी न बोल सकी। कल्पना में डूब गयी—दुखों और व्यथाओं का अंत नहीं है। कहीं शारीरिक, कहीं मानसिक। मेरे दुख, बंती के दुख, विद्दो की दादी के दुख, मिसेज अगरवाला और डे के दुख, शीलो और श्यामा

के दुख। जब कोई और दुख न हो तो, अपूर्ण प्यार का दुख ! संसार की सब भूलों से बडी भूल, बेमेल ब्याह की भूल।''''मैं कैसे बच गयी।'' क्या भुगत कर बची ?''' पर वह यातना गले पड़ जाती तो उस का अंत तो मृत्यु से ही हो सकता था।''''

रात दस बजे श्यामा तारा को अपनी गाड़ी में पचकुइयां रोड पर छोड़ आयी।

पूरणदेई ने जीने के द्वार पर सांकल का खटका सुन कर तारा के लिये किवाड़ खोले। उस का चेहरा गम्भीर हो गया जैसे मुंह में आ गयी बात निगल ली हो।

तारा ने आंखें फेर लीं—"जो चाहे सोच ले। मैं अपने लिये स्वयं जिम्मेवार हूं।"

दिल्ली चुनावों के बवंडर के कारण क्षुब्ध था। सभी राजनैतिक दलों के लोग पचकुइयां रोड के मकानों में भी देश-सेवा और जन-सेवा कर पाने के अवसर के लिये वोट मांगने आ चुके थे। दीवारों, दरवाजों, सवारियों पर सभी जगह किसी न किसी राजनैतिक दल के वोट मांगने के विज्ञापन लग गये थे। दीवारों पर मोटे से मोटे अक्षरों में अपने दल की जय और दूसरे दलों के क्षय के नारे लिख दिये थे। मन चले लोगों ने अपने नारे छुट्टे घूमते सांडों की पीठ पर भी लिख दिये थे। छोकरों को दूसरे दलों के विज्ञापन फाड़ देने या उन के नारों को अपशब्दों में बदल देने के लिये उकसाया जाता था। बच्चे दो मीठी गोलियों के लिये पहले एक दल की जय और फिर दूसरे दल की जय पुकार देते थे। देशहित और जनहित के उत्साह और नशे में उचित-अनुचित की चिंता नहीं रही थी।

तारा को संतोष था कि श्यामा ने उम्मीदवार बनने से इंकार कर दिया था परन्तु कांग्रेस का टिकट मिसेज अगरवाला को भी नही मिल पाया था। चुनाव का सब से विराट आयोजन और प्रचार कांग्रेस का था। दूसरे दलों से कांग्रेस का संघर्ष ऐसे ही जान पड़ता था जैसे बहुत बड़े हाथी को घेर कर, बहुत से मेढ़े हाथी से टक्कर लेने के लिये आपस मे झगड़ रहे हों। सरकारी अफसर जानते थे कि फिर कांग्रेसी सरकार कायम होगी। वे भी ठकुर-सुहाती में कांग्रेस का साथ दे रहे थे।

चड्ढा, मर्सी, माथुर सब चुनाव के बवंडर में बदहवास थे। यह भी जानते थे कि शासन में धांधली और अयोग्यता के बावजूद कांग्रेस की ही

विजय होगी। सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दोनो ही कांग्रेस को पूंजीपतियों की सस्था कह कर, मजदूर-किसानों के शासन की मांग के नारे लगा रहे थे। दोनों को शिकायत थी कि कांग्रेस चुनाव जीतने के लिये शासन-शक्ति का प्रयोग कर रही है।

विरोधी दलो ने मांग की थी कि चुनाव के समय, ब्रिटेन की तरह इस देश में भी किसी राजनैतिक दल की सरकार न रहे और शासन निष्पक्ष हाथ मे रहे परन्तु काग्रेस-सरकार ने मांग मंजूर नही की थी। सोशलिस्टों और कम्युनिस्टो का आपस मे सब से उत्कट विरोध था। दोनों जानते थे कि वे कांग्रेस-विरोधी लोगों को आपस में बाट कर, दोनों ही कांग्रेस से हारेंगे पर वे आपस में मिल न सकते थे।

तारा और नरोत्तम चुनाव के बावलेपन के दौरे से बचे हुये थे। सरकारी अफसर होने के कारण, उन से चुनाव के प्रचार मे भाग लेने की आशा नही की जा सकती थी। चुनाव के नियमों के अनुसार, चुनाव के दिन से चौवीस घंटे पूर्व प्रचार कार्य और कन्वेसिग के लिए व्याख्यान, जुलूस और लाउडस्पीकरों का प्रयोग बन्द हो गया। सप्ताह भर के शोरोगुल और चीखो-पुकार की तुलना मे तारा को सन्नाटा मालूम हो रहा था, जैसे नगर वीरान हो गया हो।

चुनाव के दिन नरोत्तम को भी अवकाश था। उसे किसी दल विशेष की हार-जीत से कुछ सम्पर्क नही था परन्तु कौन जीतता और कौन हारता है, जानने का कौतूहल जरूर था जैसे घुड़दौड़ के परिणाम के लिया होता है। पडोसी हरसुखराय ने उस से जनसंघ के उमीदवार के जीतने पर पांच रुपये की शर्त लगायी हुई थी। अगरवाला साहब के मित्र राय नवीनचंद कांग्रेस के खिलाफ इंडिपेंडेट खडे हुए थे। स्वतंत्र भारत में यह पहला चुनाव हो रहा था। नरोत्तम शहर के पश्चिम भाग के पोलिग स्टेशनों के सामने घूम रहा था। काफी रोचक दृश्य था। पोलिग स्टेशन के समीप प्रतिद्वंद्वी दलों के कैम्प लगे हुए थे। सभी दलों के लोग मतदाताओं को उन के रोल नम्बर की पर्ची देने के लिये होड़ कर रहे थे। सभी दलों के कार्य-कर्ता बहुत मधुरभाषी बने हुए थे। स्वतंत्र उम्मीदवारों के कैम्पों में, मतदाताओं के लिये, पूरी-मिठाई, चाय और पान-सुपारी की भी व्यवस्था थी।

कश्मीरी दरवाजे के बाजार में नरोत्तम को फुटपाथ पर मिस देवा दिखाई दे गयी। नरोत्तम ने उसे गाडी में ले लिया। देवा फैज बाजार में जाने के लिये निकली थी। कुछ देर बस के लिए क्यू में खड़ी होने के बाद उस ने टैक्सी लेने का यत्न किया परन्तु सब टैक्सियां किसी न किसी दल ने रिजर्व की हुई

थीं। दूसरे दलों को सवारी न मिल सके, इस प्रयोजन से भी टैक्सियां रोक ली गयी थीं।

देवा बहुत क्षोभ में बोली—"पुलिस नहीं जानती, मतदाताओं को सवारियों में ले जाना गैरकानूनी है ?"

नरोत्तम हंसा—"मतदाताओं को पूरी, मिठाई, चाय देना क्या कानूनी है ?"

देवा को फैज बाजार पहुंचाने के लिये नरोत्तम को लौटना पड़ा तो नयी दिल्ली कोठी पर ही चला गया। तिपहर सोचा, एक ही दिन का मेला है, फिर पांच बरस बाद यह मेला हो या न हो; एक चक्कर और सही। याद आया, तारा सब्जी मंडी में पोलिंग अफसर नियुक्त थी। देखें तो क्या कर रही है ? लौटते समय टैक्सी न मिली तो क्या करेगी ? उसे भी घर पहुंचा देगा।

नरोत्तम सब्जी मंडी के पोलिंग स्टेशन पर पहुंचा तो तारा को अच्छी-खासी उलझन में फंसे पाया। बहुत उत्तेजित भीड़ उस की मेज-कुर्सी को घेरे हुए थी। 'दीपक' (जनसंघ) का बिल्ला लगाये एक पोलिंग एजेंट ने, एक बैलों की जोड़ी (कांग्रेस) का बिल्ला लगाये आदमी के विरुद्ध इलेक्शन के टिकट खरीदने की शिकायत की थी। तीन-चार जनसंघी उस आदमी को घेरे हुए थे। जनसंघियों का तकाजा था कि तुरन्त उस की तलाशी ली जाये। वह व्यक्ति तलाशी देने के लिये तैयार नहीं था।

तारा ने मामला पुलिस के हाथ में दे दिया।

जनसंघी लोग तलाशी अपने सामने ली जाने का तकाज़ा कर रहे थे।

तारा ने उत्तर दिया—"मेरा अधिकार और काम तलाशी लेना नहीं है, संदिग्ध व्यक्ति को पुलिस के हवाले कर देना ही है। इस से अधिक कुछ नहीं कर सकती।"

पुलिस उस व्यक्ति को तलाशी लेने के लिये थाने ले गयी।

जनसंघी तारा पर पक्षपात का आरोप लगा रहे थे—"कांग्रेसी राज की पुलिस भला उस के पास से टिकट बरामद करेगी ?"

चुनाव विभाग की जीप तारा को घर तक पहुंचा देने के लिये मौजूद थी परन्तु वह नरोत्तम की गाड़ी में बैठ गयी। नरोत्तम ने झगड़े का कारण पूछा।

"यहां से चलो, घर चल कर ही बताऊंगी" तारा ने थकावट प्रकट की।

नरोत्तम सदर बाजार होकर चला कि चड्ढा का हालचाल भी देखता चले कि उस पोलिंग स्टेशन पर क्या हुआ ?

चड्ढा बृजबिहारी के साथ था। बृजबिहारी प्रसाद जी का साथी था। नरोत्तम से भी नमस्ते-नमस्ते थी। दोनों को ही गाड़ी में बैठा लेना पड़ा।

वोट पड़ चुके थे। अब वोट पाने के लिये उत्तेजित होने से कोई लाभ नहीं था। चुनाव के सिपाही शिथिल हो चुके थे इसलिये बात सहिष्णुता से हो रही थी। बृजबिहारी चड्ढा पर आरोप लगा रहा था कि वोट पाने के लिये कम्युनिस्ट, जातीय भावना भड़का रहे थे--छोटी जात के लोग ब्राह्मण को वोट न दें, यह जातिगत द्वेष नहीं है?

चड्ढा ने उल्टा आरोप लगाया--"तुम कम्युनिस्टों पर जातिवाद का आरोप लगाते हो, तुम्हारे तो चीफ मिनिस्टर भरी सभा में साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाते हैं। लखनऊ की सभा में यू० पी० के चीफ मिनिस्टर ने कहा है, जो लोग भगवान पर विश्वास नहीं करते उन्हें किस पाप से डर हो सकता है। ईश्वर-विश्वास कांग्रेस और राष्ट्रीयता का लक्षण कब से हो गया? तुम्हारे आदमी भरी सभा में कहते हैं कि कम्युनिस्टों की सरकार हो जायगी तो स्त्रियों को सामाजिक सम्पत्ति बना दिया जायेगा।"

नरोत्तम ने टोका--"कामरेड तुम फिर गप्प लगा रहे हो।"

"मैंने अपने कानों से सुना है।"

"तो यह लोग इतने इग्नोरेंट (अबोध) हैं या इतने फ्राड (धोखेबाज) हैं?" नरोत्तम ने पूछा।

"आल इज़ फेयर इन लव एन्ड इलेक्शन" (प्रेम और चुनाव में सब जायज है)" बृजबिहारी, चड्ढा की खिसियाहट पर हंस कर बोला, "कामरेड एक ही चोट में तिलमिला गये? क्या खाकर कांग्रेस का मुकाबिला करोगे? चुनाव के प्रचार की करामात क्या हो सकती है, इसका नमूना देखना हो तो सन् ३५ के चुनाव की बात सुनिये; जब पहिली कांग्रेस सरकार बनी थी। कांग्रेस की बिल्कुल मामूली स्त्री उम्मीदवार ने देश-प्रसिद्ध राजनैतिक नेता, लीडर के सम्पादक सी० वाई० चिन्तामणि को पछाड़ दिया।

"वह तो एतिहासिक है।" चड्ढा ने अपना कान छू लिया, "उस का मुकाबिला तो कहीं नहीं मिलेगा।"

"क्या-क्या?" नरोत्तम ने उत्सुकता प्रकट की।

"हां, बताइये!" तारा ने भी अनुरोध किया।

"अरे भाई चिंतामाणि उदार दल के थे। चुनाव में कांग्रेस के मुकाबिले खड़े हो गये थे। लगभग बीस बरस से यू० पी०, इलाहाबाद के एक-मात्र अंग्रेजी राष्ट्रीय पत्र के सम्पादक थे। मुकाबिले में कांग्रेसी टिकट पर उम्मीदवार थी एक राजपूत स्त्री। आगरे का देहाती चुनाव क्षेत्र। तुम जानते हो, पूरे देश में दस प्रति साक्षर हैं। अंग्रेजी जानने वाले कितने हो सकते है? तिस पर

देहात का मामला। वहां लोग अंग्रेजी और अंग्रेजी पत्र के सम्पादक को क्या जानते और सी० वाई० चिंतामणि को क्या जानते ? कांग्रेसी भाइयों ने प्रचार कर दिया—बोलो, राजपूत की बिटिया को वोट दोगे या इलाहाबाद की रंडी बाई चिंतामणि को वोट दोगे ? भला रंडी को कौन वोट देता ? कांग्रेस की उम्मीदवार स्त्री जीत गयी। चिंतामणि जाकर गांधी जी के सामने रोने लगे।"

"देख लो, प्रचार के साधनों के मालिक क्या करते हैं ! यह पूंजीवादी प्रजातंत्र की स्वतंत्रता है और कांग्रेस की अहिंसा है।" चड्ढा ने टिप्पणी कसी।

"हद हो गयी ! गांधी जी ने क्या कहा ?" नरोत्तम ने पूछा।

"गांधी जी ने बहुत दुख प्रकट किया। बेचारे क्या कर सकते थे।"

"नहीं मैं पूछता हूं, गांधी जी ने इस के विरुद्ध अनशन नहीं किया और कांग्रेसी उम्मीदवार से इस्तीफा नहीं दिलाया ?"

"हम ने तो कहा, आल इज़ फेयर इन लव एंड वार, एंड इलेक्शन इज़ ए वार ! यह गांधी जी का निजी मामला थोड़े ही था।"

नरोत्तम ने तारा के मकान के नीचे गाड़ी खड़ी कर दी। तारा को सौजन्य के नाते कहना पड़ा—"ऊपर आइये, आप लोग बहुत थके हुए हैं। एक प्याला चाय····।"

चड्ढा तुरन्त उतर पड़ा। नरोत्तम को भी आपत्ति नहीं थी। बृजबिहारी भी साथ ही गया।

नरोत्तम ने तारा से पूछा—"हां तुम्हारे स्टेशन पर टिकट बेचने-खरीदने का क्या झगड़ा था ? टिकट तो 'बूथ' में जाते समय ही मिलता है और पेटी में डाल कर ही निकलते हैं। न डालें तो दुबारा तो जा नहीं सकते। हाथ पर निशान जो बना देते है।"

बृजबिहारी हंस दिया। चड्ढा ने तारा को बोलने का कष्ट न देने के लिये समझाया—"तुम टिकट लेकर बक्स में न डालो, साथ लौटा लाओ, मुझे बेच दो। मै तुम्हारे बाद जाऊं। बूथ में कोई देख नहीं सकता। मै सौ टिकट एक साथ डाल सकता हूं।"

"माई गाड (तोबा) !" नरोत्तम ने बहुत गहरी सांस खींची, "इन उपायों से देश-सेवा और जन-सेवा कर सकने की स्पर्धा में चुनाव लड़े जाते है ? इन उपायों से असेम्बली में जायेंगे तो वहां जाकर क्या नहीं करेंगे ? यह प्रजातंत्र सरकार कायम करने का तरीका है ? इस से तो डिक्टेटरशिप भली।"

"डिक्टेटर कहां से आयगा ?" तारा ने पूछ लिया, "अब तो डिक्टेटर भी चुना ही जायगा। गलत आदमी को चुनकर उसे हटा सकने का अधिकार

और अवसर भी हाथ से खो दिया जाये ?"

"डिक्टेटरशिप से मतलब क्या ?" "चड्ढा बोल उठा, "क्या अब कांग्रेस की डिक्टेटरशिप नही है ? सब सरकारे डिक्टेटर ही होती है। किसी भी सरकार की शक्ति और अधिकार पर केवल सरकार की अपनी इच्छा और निर्णय की ही सीमा होती है। हडताल को गैरकानूनी करार देना क्या है ? आर० एस० एस० को गैरकानूनी कर देना, सब कम्युनिस्टो को गिरफ्तार कर लेना, संदेह मात्र पर गिरफ्तार कर लेना और प्रिवेंटिव डिटेंशन (बिना मुकद्दमा चलाये कैद) का कानून क्या है ? कम्युनिस्टों को सरकारी नौकरी न देने का हुक्म क्या है ? तुम्हारी 'सी' फैक्टरी से पाच हजार मजदूर कम्युनिस्ट होने के सदेह मे निकाल दिये गये थे, वह क्या था ? डिक्टेटरशिप और क्या होती है ? प्रश्न यही है कि सरकार का लक्ष्य किस श्रेणी का हित है, डिक्टेटरशिप चोरो की है या मेहनत करने वालो की !"

नरोत्तम ने समझा, तारा थकी होने के कारण ऊब रही है। वह एकदम खड़ा हो बोल उठा—"भाई मुझे देर हो रही है आप लोग चले तो कनाटप्लेस पहुचा दूं।"

चुनाव के बवंडर के साथ-साथ तारा के मस्तिष्क मे श्यामा की बातो से उठा बवंडर भी शनैः-शनैः बैठता जा रहा था। श्यामा के प्रति उसे वैसी ही सहानुभूति हो गयी थी जैसी किसी रोगी बहिन के प्रति होती है। ख्याल आ जाता, मिसेज डे इतना उत्पात कर सकती है, यदि मर्सी की बात सच है तो क्या मिसेज नाथ नही कर सकती ? डाक्टर साहब के जीवन मे यह कैसा घुन लग गया ? भ्रम और सदेह तो बिना वास्तविक कारण के, अपने मन मे बसी भावनाओं से भी हो जाता हे परन्तु भ्रम दूर भी हो सकना चाहिए !

तारा कल्पना करने लगती—मिसेज नाथ कैसी होगी ? क्या मिसेज डे जैसी ही होगी ! मिसेज डे के पास कुछ तो कारण हे, मिसेज नाथ के पास क्या कारण हो सकता है ? शायद सचमुच मुझे डाक्टर साहब के साथ देख लिया हो ! इस विचार से तारा को बहुत ग्लानि अनुभव हुई। निश्चय कर लिया—जो भी हो, अगर ऐसा सदेह है तो उसे दूर कर देना जरूरी है पर अवसर तो मिले।

तारा ने निश्चय कर लिया था, किसी न किसी तरह मिसेज नाथ से मिलेगी जरूर तब स्वयं ही सब कुछ स्पष्ट हो जायगा। डाक्टर नाथ के बजाय वह भाभी से ही मिलना चाहती थी परन्तु नाथ ने उस की इच्छा जानकर भी टाल

गया था इसलिये नाथ से मिलने की इच्छा होने पर भी तारा ने उसे फोन नहीं किया।

मार्च के अंतिम शनिवार नरोत्तम तारा को क्लब ले गया था। तारा नौ बजे मकान पर लौटी तो पूरणदेई ने बताया—"वही डाक्टर साहब आये थे।"

तारा ने तुरन्त नाथ के मकान पर फोन किया। उत्तर बूढ़े चपरासी की परिचित आवाज में मिला—"हम साहब के चपरासी हैं, कौन साहब हैं?"

"तारा पुरी बोल रही हूं। बीबी जी को फोन दो।"

"कौन बाबू जी? यह प्लानिंग के साहब का बंगला है।"

"हां, मेम साहब को बुलाओ।"

"हुजूर, हम नहीं जानते। साहब को फोन दे दें?" चपरासी बड़बड़ाया। फिर डाक्टर की आवाज आयी, "हलो!"

तारा ने मकान पर न मिलने के लिये क्षमा मांगी और अपने आप ही कह दिया—"मैं कल आप के बंगले पर आ जाऊं?"

"क्या गाड़ी ले ली, चलाना भी सीख लिया?"

"अभी कहां ले पायी हूं। नरोत्तम ने कह दिया, वह गाड़ी ठीक नहीं है। टैक्सी तो है।"

"हूं, बहुत दूर है। तुम ने जगह भी नहीं देखी है। मैं दोपहर बाद उधर आ जाऊंगा।"

तारा ने आग्रह किया—"अच्छा सुनिये, भाभी जी को जरूर लाइयेगा। आप ने अभी तक नहीं मिलाया। यह बात हम नहीं मानेंगे। कल जरूर लाइये।"

"अच्छा मै कल चार बजे उधर ही आऊंगा।"

"तो फिर भाभी जी को जरूर लाइयेगा।"

"अच्छा, देखा जायगा।"

"देखा नहीं जायगा, मै उन की प्रतीक्षा करूंगी।"

"अच्छी बात।"

तारा ने बहुत उत्साह से तैयारी की। रात और दूसरे दिन भी सोचती रही, क्या और कैसे बात करेगी कि स्थिति बिलकुल स्पष्ट हो जाये।······ पिता जी की बातें, भाई की बातें, हवेली में बच्चों को पढ़ाने की बातें! कब से, इतनी छोटी थी तभी से डाक्टर साहब को जानती हूं।

नाथ अकेला ही आया।

तारा ने निराश होकर भाभी को न लाने, उन से न मिलाने की शिकायत

की। डाक्टर मुंह बना कर मुस्करा दिया—"अच्छा फिर सही।"

तारा ने सोचा उस का प्रयत्न व्यर्थ है। डाक्टर अपनी पत्नी से नहीं मिलने देना चाहता। वह क्या कर सकती है? बहुत मुंह लगना भी ठीक नहीं। सोचती रही, शायद स्थिति इतनी खराब हो चुकी है कि डाक्टर साहब कुछ प्रकट करने में अपमान समझते है, सुधार सकने की आशा छोड़ चुके हैं।.... जल्दबाजी में ब्याह कर लिया होगा पर पसन्द नहीं है, ऐसा किया तो बहुत बुरा किया।....ऐसी भूल कैसे कर बैठे?

चुनावों की आंधी बिलकुल शांत हो चुकी थी। कुछ लोगों ने कांग्रेस सरकार को गिरा देने के जो काल्पनिक किले बना लिये थे वे कोहरे के बादलों की तरह उड़ गये थे। भारत के सभी राज्यों में कांग्रेसी सरकारें कायम हो गयी थी। सभी विधान सभाओं में कांग्रेस का निर्णायक बहुमत था परन्तु कांग्रेसी सरकार की आलोचना करने वालों की संख्या पूर्वापेक्षा बढ़ गयी थी। कई राज्यों में कम्युनिस्ट भी विधान सभाओं में पहुंच गये थे। लोकसभा में भी पाँच सौ में तीस के लगभग कम्युनिस्ट सदस्य आ गये थे। अब कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी नहीं कही जा सकती थी। कानूनन कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति दूसरी राजनैतिक पार्टियों के ही समान थी। फिर वही व्यवस्था चलने लगी थी। सरकारी क्षेत्रों में पंचवर्षीय योजना के सफल-असफल होने के अनुमानों और उसे सफल बना सकने के प्रयत्नों की चर्चा थी। तारा की बदली 'उद्योग और व्यापार' विभाग में हो गयी थी।

एक संध्या नरोत्तम ने फोन पर तारा से बात की—"डैडी डाक्टर नाथ से परिचय चाहते है। उनकी फर्म, 'गोपाल शाह एण्ड संस' से डैडी का पुराना व्यवसायिक सम्बंध है। पूछ रहे थे, डिनर पर बुलाना ठीक रहेगा या चाय पर? ड्रिंक-विंक लेते हों तो डिनर ही ठीक रहेगा। तुम्हें भी आने के लिये कहा है।

तारा नाथ के 'ड्रिंक-विंक' के बारे में कुछ नही जानती थी। सोचा—शायद ले भी लेते हों, इंग्लैंड मे रहे है। नरोत्तम को उत्तर दिया—"मुझे बुलाना है तो चाय ही रखो।"

नरोत्तम ने फिर कहा—"सिस्टर (मर्सी) कह रही थी मिसेज़ नाथ भी है। उन्हें भी तो बुलाना उचित है।"

"हां, जरूर उचित है" तारा ने समर्थन किया।

निमंत्रण रविवार की संध्या के लिये था। तारा मन ही मन बहुत

प्रसन्न थी—यह अच्छा हुआ। वहां तो भाभी को लायेंगे ही ! एक बार मिलें तो सही, फिर देखा जायगा।

तारा ए० ए० में पहुंची तो डाक्टर अभी नहीं आया था। नरोत्तम ने उसे देखते ही झुंझलाहट दिखायी—"मर्सी और तुमने मिसेज नाथ का मिथ (रहस्य) कहां से घड़ लिया ?"

"क्यों, कैसा मिथ ?"

"डैडी ने फोन पर कहा, मिसेज नाथ को भी जरूर लाइयेगा; डाक्टर हैरान रह गया बोला, अभी तक तो कोई मिसेज नाथ नहीं हैं। अभी तो शादी नहीं की।"

तारा चक्कर में आ गयी परन्तु अपनी उलझन मुस्कान में छिपाकर बोली—"तुम्हीं ने कहा था, सिस्टर कहती हैं मिसेज नाथ हैं।" मन में सोचा, यह कैसा चक्कर है ? देखा जायगा। डाक्टर साहब ने मुझ से तो जरूर कहा था हमारी बीवी को ऐसी तमीज कहां ? मिलाने का आश्वासन भी दिया था। यह अजीब रहस्य बन गया है।

अगरवाला साहब ने प्रोफेसर नाथ को बहुत अपनेपन से लिया। 'गोपाल शाह एण्ड संस' से पुराने सम्पर्क की याद दिलायी। उस सीजन में भी 'सोनवां' और 'गडारी' से चीनी ले रहे थे। लाहौर में वे एक बार डाक्टर नाथ के पिता देवीलाल शाह से भी मिल चुके थे। अगरवाला योजना के प्राइवेट (निजी) सेक्टर और पब्लिक (राष्ट्रीय) सेक्टरों के लिये विस्तार के अवसरों के सम्बन्ध में काफी बातें करते और पूछते रहे।

मिसेज अगरवाला ने बात आरम्भ करने के लिये तारा की प्रशंसा की—"बहुत अच्छी लड़की है। हम तो इसे छोटी बहिन ही समझते हैं। बच्चों से बहुत ही प्यार करती है। छः महीने हमारे यहां रही। बच्चे तो इस से ऐसे हिल गये थे कि इस की ही मानते थे। इस ने बताया कि आप के यहां चिल्ड्रन की गवर्नेस थी तो हमने कहा, इससे अच्छी लड़की क्या मिलेगी ?"

"चिल्ड्रन की गवर्नेस ?" विस्मय के स्वर में प्राण ने टोक दिया, "यह तो कितने मदर सेंटरों की गवर्नर रह चुकी है।"

नाथ की बात पर मिसेज और साहब को बहुत जोर से हंसी आ गई। मिसेज ने अपनी बात पर मजाक हो जाने से उत्साह अनुभव किया। उन्हों ने अपनी बात नहीं छोड़ी—"पर हम हजार बार कहेंगे, बेचारी में अफसरी का मिजाज़ जरा नहीं है। कैम्प में जब हम ने इसे देखा था, इस की क्या हालत थी ?"

तारा की आंखें नाथ की ओर उठ गयीं परन्तु नाथ ने उस की ओर नहीं

देखा जैसे अपनी दृष्टि पर संयम किये हो। कुछ सोचते हुये उस ने जेब से सिगरेट केस निकाला और साहब की ओर बढ़ा दिया।

साहब ने ५५५ का डिब्बा डाक्टर के सामने कर कहा—"यह लीजिये, सिगरेट तो सामने पड़े है।"

"आप लीजिये, मुझे कैप्सटन की ही आदत है।" नाथ का खयाल कहीं और चला गया था।

मिसेज अगरवाला कहती गयी—"फिर हम ने रावत साहब से कहा ऐसी लायक लडकी है ...।"

नाथ ने चलने की आज्ञा चाही तो तारा की ओर देख कर पूछा—"तुम अभी ठहरोगी या तुम्हें मकान पर छोडता चलूं ?"

तारा ने साहब और मिसेज से चलने की अनुमति ले ली।

डाक्टर गाड़ी सड़क पर निकालते ही बोला—"यह तुम ने मेरा क्या तमाशा बना दिया, कैसी मिसेज नाथ ? कहाँ-कहाँ प्रचार कर दिया है ?"

"बडे वैसे है, आप से नही बोलूंगी...."तारा के मुंह से निकल गया। अपनी अभद्रता से सिहर गयी पर कह ही गयी, "इतने दिन बेवकूफ बनाते रहे।"

"बेवकूफ तो खुद ही बन गया। अच्छा बदला लिया पर तुम मान कैसे गयी, कुछ सोचा नही ? तुम तो इतनी चतुर हो......।"

"आप ने नही कहा था, हमारी बीवी को ऐसी तमीज कहाँ है ? और कहा था भाभी से मिला देंगे।"

"अरे वह तो बुड्ढा अर्दली भूपसिह है। कोठारी उसे मेरी बीवी कहता है। नौकर चोरी करके भाग गया था। भूपसिह ने कहा, वही खाना बना दिया करेगा, झाड़-बुहार भी कर देता है। वही मेरे साथ रहता है।"

"पर जब मैंने इतनी बार मिन्नत की भाभी से मिलाने की, तब क्यों नही कहा ?" तारा ने अन्याय का विरोध किया।

"तुम्हारा कहना ही फिजूल था, कोई बात होती तो स्वय नही कहता ! क्या बात नही कही तुम से ? खूब कल्पना बांध ली तुम ने।"

अब तारा और क्या क्रोध दिखाती ? हृदय मे भर आया उल्लास धरती से उठाये लिये जा रहा था। बोली—"जो विश्वास कर बैठे, उसे बेवकूफ बनाना चाहिये ?" उत्तर के लिये उस ने डाक्टर की ओर देखा। वह गाड़ी मे नहीं हवा में उड़ी जा रही थी।

"आखिर तो मजाक मुझ पर ही पड़ा। वह अगरवाला क्या बात कर रही थी, तुम कैम्प में कैसे पहुंच गयी ?"

"ठीक कह रही थीं।"

"कैम्प में; न मायके में न ससुराल में; यह कैसे ?"

"मेरी कोई ससुराल नहीं है।"

"क्या मतलब ?"

तारा का मकान सामने आ गया था बोली—"घर चल कर बताऊंगी।"

१२

कमल प्रेस की मिल्कीयत के सम्बन्ध में रिखीराम से मुकद्दमे के समय नैयर और पुरी की बहुत आत्मीयता हो गयी थी। यह सम्बन्ध निबाह सकना पुरी के लिये बहुत कठिन हो जाता था। पुरी को नैयर के व्यवहार में अहंकार की गंध आये बिना न रहती थी। यह अनुभूति कटु-स्मृतियों को जगा देती थी।

पुरी विभाजन से पहले शहालमी दरवाज़े के बाजार में आग लगायी जाने के मामले में अकारण गिरफ्तार कर लिया गया था। कनक समाचार पाकर उस से मिलने के लिये हवालात में पहुंची थी। उसे जमानत पर छुड़ाने के लिये नैयर ने निशुल्क वकालत की थी। पुरी हवालात से छूट जाने पर उन्हें धन्यवाद देने के लिये ग्वालमंडी गया था। नैयर ने उसे औपचारिक आदर से लिया था। मित्र बनकर, वकालती दांव-पेंच से, पुरी से कनक के प्रति उस के आकर्षण की बात कहलवा ली थी और फिर उस का कितना तिरस्कार किया था। पुरी की स्मृति में नैयर की वे बातें लाल लोहे के स्पर्श की तरह दगी हुई थीं—तुमने भावुक लड़की को बहका लिया है। उसे तो तुम्हारे प्रेम में अपने परिवार से सम्बन्ध, सहानुभूति, सामाजिक-स्तर, सम्पन्न परिवार की सुविधायें सभी कुछ छोड़ना पड़ेगा। तुम उसे प्रेम के लिये क्या दोगे; क्या त्याग करोगे ? ''यानि पुरी किसी लायक नहीं था। वह केवल अनाधिकारी स्पर्धा कर रहा था।

पुरी पर नैयर का लाहौर का अहसान था और नैयर से पाये अपमान के लिये क्रोध भी था। पुरी ने, नैयर के विरोध के बावजूद कनक को पा लिया था। उस संघर्ष में पुरी ने नैयर को मात दे दी थी। इस गर्व से पुरी नैयर को क्षमा कर देना चाहता था पर प्रेस के मुकद्दमे में पुरी को फिर नैयर का बहुत एहसान उठाना पड़ गया था। खुशामद भी करनी पड़ी थी। पुरी को यह

अच्छा न लगता था। वह मन को समझा लेना चाहता था—इस में क्या है, कांता बड़ी बहन है। नैयर रिश्ते में और आयु में भी बड़ा है। हम लोगों की सहायता करना उस का कर्तव्य है। फिर भी वह नैयर के लिये कुछ करके समस्तर पर हो जाना चाहता था।

सन् ५०—जनवरी के दिन थे। पुरी बहुत सवेरे ही नैयर के यहां पहुंच गया था। रविवार था। नैयर को कचहरी नहीं जाना था। खूब जाड़ा था इसलिये वह साढ़े सात बजे बिस्तर में बैठा, नींद तोड़ने के लिये चाय ले रहा था। पुरी आत्मीयता से नैयर के बिस्तर पर ही बैठ गया।

कांता ने पूछा—"बबली क्या कर रही थी; उठ गयी थी? इतनी सर्दी में इतने सबेरे-सवेरे कैसे, क्या बात है? कनक क्या कर रही है।"

पुरी ने बताया, सूद जी के यहां जा रहा था। बाद में लोग उन्हें घेर लेते हैं, सुबह ही ठीक रहता है। उस ने नैयर की ओर देखा—"जीजा जी, 'मजाना' केस में गवर्नमेंट दो और वकील ले रही है। मैंने सूद जी से बात की थी। त्रिलोकचन्द बग्गा भी कोशिश कर रहा है। आप ज़रा सूद जी के यहां चले चलते। मुंह देखे का काफी लिहाज हो जाता है।"

"अभी तक तो उन के यहां कभी गया नहीं" नैयर ने रजाई कंधों पर खींच कर कहा, "केस के लिये जाना खुशामद लगेगी। वैसे मेरा क्लेम (दावा) भी क्या है? बग्गा तो दो बरस से कांग्रेसी है।"

"आप इस की परवाह न कीजिये।" पुरी ने आश्वासन दिया।

"धन्यवाद तुमने इतनी चिंता की परन्तु दोस्त ऐसी मुसाहिबी मेरे बस की नहीं है।" नैयर ने अंग्रेजी में कह दिया।

कांता ने चाय का प्याला पुरी की ओर बढ़ाते हुए उस का समर्थन किया —'इस में मुसाहबियत क्या है? औरों के यहां नहीं जाते?"

पुरी को बहुत बुरा लगा। मन में आया कि चाय न ले और उठ कर चला जाये पर क्रोध दबा लिया। अपनी नाराजगी छिपाने के लिये नानो से कुछ बात करता रहा। पुरी ने नैयर से मजाक किया—"जल्दी आकर तुम्हें डिस्टर्ब कर दिया। चलो इंटरवेल हो गया। अब 'मैटिनी' की नींद पूरी कर लो।"

कांता ने पुरी से रुकने के लिये अनुरोध किया पर वह बैठा नहीं चला गया।

पुरी ने घर लौट कर नैयर की ऐंठ के लिये कनक पर झल्लाहट प्रकट की —"वह तो ऐसे अकड़ता है कि मिनिस्टर उस के यहां जाकर मुकद्दमा ले लेने की प्रार्थना करें या जैसे फीस के रुपये मैं ले लूंगा। तुम्हीं कह रही थी कि वे लोग परेशानी में है। दस-बीस रुपये में पेशियां भुगत रहा है, पुरानी अकड़ बनी

हुई है। लाहौर में बाप की कमाई पर ऐंठते थे, कौन बड़ा कमाल था...."

कनक ने टाल दिया—"उन का अपना स्वभाव है। तुम्हें क्या, रहने दो।"

नैयर वास्तव में कठिनाई में था। उसे बैंक के लाकर में रखा ज़ेवर और सिक्यूरिटीज़ मिल गयी थीं। उस का और राजेन्द्र का साठ-साठ हज़ार का क्लेम ी मंजूर हो गया था। मंडी बाज़ार के मकान में उस से निर्वाह नहीं हो रहा था। उस ने 'न्यू एरिया' में कचहरी के समीप जमीन का एक टुकड़ा नीलाम में, क्लेम के मोल में ले लिया था। ज़मीन का असली दाम तीस हजार भी नहीं था परन्तु क्लेम के आधार पर बोली देने वाले तिगुने-चौगुने दाम तक बोली दे देते थे। सरकर से क्लेम में नकदी मिलने की आशा नहीं थी। सोचते थे, रुपये का चार आना हाथ आजाये तो भी बहुत है। नैयर ने नव्वे हजार तक बोली देकर जमीन ले ली थी। पुरी और दूसरे मित्र इस मूर्खता के विरुद्ध थे पर नैयर मकान के लिये बहुत परेशान था। वह अब मकान बना रहा था। सब कुछ बेचकर उस में लगा दिया था। मकान पूरा कर सकने के लिये उसे जमीन की जमानत पर उधार भी लेना पड़ा था। कर्ज का सूद सिर पर पड़ रहा था। कहने को अब उस की प्रैक्टिस बुरी नहीं थी। पांच-छः सौ बना ही लेता था परन्तु लाहौर में तीन-चार सौ तो मकानों के किराये से आ जाता था। आदतें तो थीं वही पुरानी। पुरी उस की सहायता करने का संतोष पाना चाहता था। उसे लगता था कि नैयर केवल उस की अवज्ञा करने के लिये ही नुकसान तक उठाने को तैयार था।

पुरी और नैयर की तनातनी से कनक, कांता और दोनो परिवारों के दूसरे लोगों के लिये भी अच्छी-खासी परेशानी हो जाती थी।

ऊषा सोनवां में रहते समय पढ़ाई जारी नहीं रख सकी थी। वह जालंधर आयी तो पुरी ने उसे एक वर्ष पिछड़ने न देने के लिये इंटर के दूसरे वर्ष में दाखिल करवा दिया था। विभाजन की गड़बड़ी के बाद नियमों में शिथिलता आगयी थी इसलिये उसे इस काम में विशेष कठिनाई नहीं हुई परन्तु यूनिवर्सिटी की परीक्षा में पास हो सकने के लिये ऊषा को बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ी थी। एक ट्यूटर भी रखना पड़ा था। एक वर्ष की कमी का प्रभाव बाद में भी कुछ न कुछ बना ही रहा था। बी० ए० के लिये भी ऊषा को काफी परिश्रम करना पड़ रहा था। बस्ती-निगारखां में मास्टरजी के मकान में बिजली नहीं थी। ऊषा रात में भी पढ़ सकने के लिये दिसम्बर से विक्रमपुरा में भाई के यहां आगई थी। ऊषा की परीक्षा से पहले महेन्द्र नैयर का छोटा भाई लेफ्टीनेन्ट राजेन्द्र नैयर, तीन सप्ताह की छुट्टी पर जालंधर आया था। राजेन्द्र का

कनक से पुराना परिचय था। वह प्राय: ही भाभी की बहिन से मिलने आ जाता था।

राजेन्द्र का जालंधर आना ऊषा की पढ़ाई में अच्छा-खासा विघ्न बन गया।

राजेन्द्र ने सन ४६ में बी० ए० की परीक्षा दी थी। उस का मन पढ़ाई के अतिरिक्त और सभी बातों में खूब लगता था। किसी तरह थर्ड डिविज़न के किनारे लटक गया था परन्तु एम० ए० में दाखिल होने का साहस न कर सका। उसे आशा थी, परिचितों की सहायता से व्यापार-व्यवसाय जमा लेगा या कोई अच्छी नौकरी मिल जायगी। घर की जायदाद पर भी भरोसा था। विभाजन ने सब स्थिति बदल दी थी।

विभाजन के पश्चात राजेन्द्र ने छ: मास तक जहां अवसर समझा, यत्न किया। उसे जीविका का संतोषजनक अवलम्ब न मिल सका। बड़ा भाई स्वयं कठिन स्थिति में गुजारा करके जालंधर में प्रैक्टिस जमाने का यत्न कर रहा था। उस से व्यापार-व्यवसाय के लिये रुपया कैसे मांगता! सन् ४८ के आरम्भ में उस ने सेना के निर्वाचन में ले लिये जाने का यत्न किया। स्वस्थ, चुस्त और चतुर युवक था, चुनाव मे ले लिया गया।

राजेन्द्र नैयर ने सेना की कठिन शिक्षा को लगन से निवाहा। सन् ५० में वह लेफ्टीनेंट बन गया था। अब उस के व्यवहार में अल्हड़पना नही रहा था। कनक को भी उस से खीझ नही आती थी। राजेन्द्र का ऊषा से बात करना भी उसे बुरा नही लगता था।

ऊषा बीसवां वर्ष पूरा कर रही थी। उस पर भी अपनी बड़ी बहन से कम रूप नही चढ़ा था। नख-शिख बहिन की तरह तीखे नहीं थे परन्तु चपलता और शोख़ी बहिन से अधिक थी। गली की आलोचना के दबाव से मुक्त परि-स्थितियों में व्यवहार भी सहमा हुआ और उतना संकुचित नहीं था। राजेन्द्र से तीसरी मुलाकात मे ही ऊषा ने उस की दृष्टि को स्वीकार कर लिया था। राजेन्द्र और ऊषा का भाव कनक ने भी भांप लिया था।

कनक ने पुरी से बात की—'दोनों चाहते है, ऊषा के लिये इस से अच्छा और क्या होगा। मां और पिता जी को भी क्या आपत्ति हो सकती है।''

सुझाव पर पुरी को भी आपत्ति नही थी पर उस ने कहा—"·····अभी इन लोगों का ज्यादा मिलना-जुलना ठीक नहीं है। राजेन्द्र अपने भाई-भाभी से कहे, तुम कुछ मत कहना। नैयर का मिजाज तो जानती हो। समझेगा, उस का भाई कैप्टन बन रहा है इसलिये हम खुशामद कर रहे है। उन लोगों को ही बात उठाने दो। ऊषा परीक्षा दे ले तो बेशक गरमियों में विवाह भी हो जाये।"

कनक को कांता और नैयर से कोई भेद नहीं था परन्तु पुरी ने मना कर दिया था तो कनक ने इस विषय की चर्चा कांता से नहीं की। स्वयं बात करके वह पुरी के आत्माभिमान को ठेस नहीं पहुंचाना चाहती थी। चार ही मास बाद, अप्रैल में राजेन्द्र नैयर फिर जालंधर आया। इस बार वह छः सप्ताह की छुट्टी लेकर आया था। राजेन्द्र पिछले वर्षों में जालंधर बहुत कम आया था। वह बरेली छावनी में था। छुट्टी मिलने पर मंसूरी-नैनीताल चला जाता था। इस बार वह गरमियों में भी जालंधर में ही रहा। नित्य ही माडल टाउन में कनक के यहां आ जाता था। ऊषा को परीक्षा की तैयारी की छुट्टी थी।

राजेन्द्र अब अंग्रेजी ही बोलता था। उस का दृष्टिकोण बिलकुल दूसरा था। कनक और पुरी के सामने निस्संकोच कह देता—हम लोग सिनेमा देख आयें, हम लोग जरा घूम आयें। भाभी जी ने ऊषा जी को चाय पर बुलाया है।

ऐसी अवस्था में ऊषा की पढ़ाई क्या होती। उस की आंखों में दूसरा ही रंग भरा रहता था। वे आंखें पुस्तकों पर क्या टिकतीं। कनक अनुमति न देती तो ऊषा का मुंह लटक जाता। कनक कह देती अच्छा, जल्दी आ जाना।

कनक को याद आ जाता—छः-सात वर्ष पूर्व पुरी से मिलने के लिये उसे लुक-छिप कर जाना पड़ता था। अब लड़के-लड़कियों का साहस कितना बढ़ गया है। वह उन्हें क्यों रोके पर कनक सरल भाव से कह देती —"सैर-सिनेमा के लिये ऊषा की परीक्षा के बाद काफी समय होगा। इसे परीक्षा दे लेने दो। पुरी ने मन ही मन कुढ़ कर कनक से कहा—"यहां सब लोग हमें जानते-पहचानते है। इन का इस तरह खुले आम घूमना ठीक नहीं है। राजेन्द्र इतना ही बेताब है तो शादी कर ले, झगड़ा खतम हो! वे लोग चाहते हैं तो बात क्यों नहीं करते? राजेन्द्र लड़का है। उन्हें क्या परवाह है, लड़की हमारी है। बदनामी तो हमारी ही होगी।"

कनक ने विस्मय प्रकट किया—"यह तुम कैसी बातें करने लगे?"

पुरी नाराज हो गया—"तुम हर बात में बहस करना चाहती हो, व्यवहारिक बात नहीं सोचती।"

बरामदे से नानी जी की पुकार सुनाई दे गयी। कनक को मौन हो जाना पड़ा परन्तु उस संध्या राजेन्द्र और ऊषा को घूमने जाने की अनुमति नहीं दी।

राजेन्द्र को जालंधर में पांच सप्ताह होने को आ रहे थे। शायद ही किसी दिन ऊषा ने मिलने न आया हो। कनक ने बरामदे में आकर राजेन्द्र को बुला लिया।

"जरा इधर बात सुनो।" कनक ने पूछा, "आखिर तुम चाहते क्या हो? तुम दोनों का इस तरह घूमते फिरना क्या उचित है?"

"आप को आपत्ति क्या है? हां, हम विवाह करना चाहते है।" राजेन्द्र ने निधड़क उत्तर दिया।

कनक ने मुस्कान दबाकर कहा—'भैया, विवाह करना चाहते हो तो उसी ढंग से बात करनी चाहिये। तुम ने जीजा जी, बहिन जी से बात की है?"

उन्हें क्या आपत्ति हो सकती है? विवाह तो मुझे करना है न। भाई ने तो कहा—ऊषा राजी है, आप लोग राजी हों तो बहुत अच्छा है। मुझे पूरा विश्वास है, आप इतनी अच्छी है कि दूसरों को संतुष्ट देख कर प्रसन्न होंगी।"

"तुम फौज में गोली चलाना सीखते हो या जबान चलाना?" कनक ने प्यार से डांटा, "बहिन जी ने तो मुझ से कोई बात नहीं की।"

"अभी क्या फायदा है" राजेन्द्र ने कहा, "विवाह तुरन्त तो हो नहीं सकता। मैं वापिस जाकर अनुमति के लिये आवेदन पत्र दूंगा। अनुमति मिलने में तीन-चार महीने लग ही जांयगे। अब मुझे अगले वर्ष अप्रैल-मई से पहले तो छुट्टी मिलेगी नहीं। दो-चार दिन की छुट्टी मिल भी जाये तो उस से क्या फायदा? विवाह के बाद तो हम लोग कश्मीर जाना चाहते है।" राजेन्द्र मुस्करा दिया।

कनक ने समझाया—"अगले वर्ष ही सही लेकिन तुम लोगों के मिलने-जुलने का कोई आधार तो होना चाहिये। ऐसा है तो बात पक्की हो जाये, सगाई-वगाई हो जाये।"

"उस फार्मेलिटी (ढोंग) की क्या जरूरत है।" राजेन्द्र बोला, "समय-सुविधा होते ही शादी कर लेगे।"

'सगाई भी तो शादी का ही अंग होता है। वह कर लेने में क्या आपत्ति है? तुम्हें अपना उत्तरदायित्व तो मालूम होगा।"

"आप चाहें तो मुझे आपत्ति नही है" राजेन्द्र ने तर्जनी उठा ली लेकिन फिर आप या भाई साहब यह तो नही कहेंगे कि मगेतरों का विवाह से पहले मिलना-जुलना ठीक नही? पुराने विचार के लोग यह सब उचित नहीं समझते। अभी तो हम मित्रों की तरह मिल सकते है।"

"अच्छा, हम तुम्हारे मिलने पर आपत्ति नही करेगे पर सगाई हो जानी चाहिये। मेरी तरफ से बहिन जी से कह देना आज ही, नही तो ऊषा से बात नहीं करने दूंगी।"

"आज ही कह दूंगा लेकिन बहिन जी, आज तो……।"

"ऊं हूं।" कनक ने सिर हिला दिया।

"बहिन जी, प्लीज !" राजेन्द्र ने मुस्कराकर हाथ जोड़ दिये, "यू आर सो गुड !"

"दफा हो ! देर न लगाना।" कनक को कह देना पड़ा पर सोचा—पुरी न देखे तो अच्छा है।

तीसरे दिन संध्या कांता कनक के यहाँ आयी। दोनो बहनों में एकांत में बात हुई। कनक ने कहा—"बहिन जी, यह सम्बन्ध हो जाये तो अच्छा ही है पर आप लोगों का खयाल था तो आपने कोई संकेत तो दिया होता !"

कांता ने संकोच से स्वीकार किया—"तुझे क्या कहूं, तेरे जीजा जी को ऊषा से यह सम्बन्ध पसन्द है। असल बात तो यह है कि राजेन्द्र को पसन्द है तो सब ठीक है। मैंने इन से कहा था, कन्नी से या पुरी से बात कर लूं। तू जानती है, है तो बड़े कड़वे न। कहने लगे, तुम कुछ मत कहना। हम लोगों की हालत तो बिगड़ गयी है। पुरी बड़ा आदमी हो गया है। उस ने कहीं नाक मार दी तो क्या होगा ? वह शायद अपनी बहिन के लिये किसी मिनिस्टर के बेटे या मिल मालिक के लड़के की बात सोच रहा होगा। लड़के-लड़की को ही फैसला कर लेने दो। मैं क्या कहती ?"

कनक ने क्रोध प्रकट किया—'बहिन जी, जीजा जी की कितनी ज्यादती है ? उन्हें ऐसा सोचना चाहिये ? 'यह' तो उन की इतनी इज्जत करते है।"

कांता ने स्वीकार किया—"ठीक कहती हो, मैंने तो 'इनके' मुंह पर भी कह दिया था। तुम से नहीं कहा कि तुम्हें बुरा लगेगा। खैर तुम जाने दो।"

कनक ने पुरी की कही बात नहीं बतायी। सोचा, क्या लाभ ! किसी तरह दोनों की कटुता मिटे पर मन ही मन बुरा लगा—बहन ने जैसे निस्संकोच जीजा की आलोचना कर दी थी, वह नहीं कर सकी। कारण भी स्पष्ट था, जानती थी कि हीन भाव पुरी में ही अधिक था।

अस्तु, राजेन्द्र के छुट्टी पर जाने से पहले राजेन्द्र और ऊषा की सगाई हो गई। सगाई की रस्म के समय पुरी और नैयर सम्बन्धियों की तरह स्नेह-आलिंगन से मिले।

पुरी विधान सभा का पहला अधिवेशन समाप्त होने पर शिमला से लौटा था। नैयर और कांता संध्या समय उस से मिलने माडल टाउन आये थे। राजेन्द्र ने लिखा था कि उसे निश्चित रूप मे जून के तीसरे सप्ताह से अवकाश मिल रहा था। विवाह जून के अंतिम सप्ताह में हो ही जाना चाहिये। कांता और नैयर इसी प्रसंग में पुरी और कनक मे बात करने आये थे। कनक ने

चाव और यत्न से बंगले के सामने घास और फूल लगवा लिये थे। मई का आरम्भ था। गरमी के कारण उस ने वहां ही कुर्सियां लगवा ली थीं।

नैयर को लग रहा था कि दो मास में पुरी में काफी परिवर्तन आ गया था। बात करने का ढंग गंभीर हो गया था। बोलने से पहले पल भर ठहर जाता था, गर्दन चिंता से जरा तिरछी हो जाती थी। नैयर को शिमला बहुत पसन्द था। वह शिमले के विषय में कई बातें पूछ रहा था।

पुरी ने गर्दन जरा तिर्छी करके कहा—"जीजा जी, अगस्त में कचहरी बंद रहेगी। आप लोग चाहें तो वहां आकर मेरे क्वार्टर में ठहर सकते हैं।"

"तुम शिमला क्यों नहीं जाती ?" कांता ने कनक से पूछ लिया।

"नाज़िर को छोड़कर कैसे जाऊं, चार दिन के लिये दिल्ली तो जा नहीं सकती।"

कनक की बात पूरी नहीं हुई थी कि नैयर ने कह दिया—"धन्यवाद, मुफ्त मकान की आशा में शिमला चला जाऊं ? जाऊंगा तो किराया भी दे लूंगा।"

पुरी चुप रह गया।

कनक की गर्दन झुक गयी वह उठ कर भीतर चली गयी।

कांता ने भीतर जाकर देखा तो कनक आंचल से मुंह ढके रो रही थी। कांता ने उसे समझाया। कनक ने आंसू पोंछ कर कहा—"यह लोग सम्बन्धी बन रहे हैं और यह हैं इन के आपसी भाव।"

कनक बाहर नहीं आना चाहती थी परन्तु कांता नहीं मानी, उसे खींच ले गयी। नैयर ऊटपटांग मजाक करके स्वयं ही हंस रहा था। पुरी मुंह फेरे मुस्करा रहा था। नैयर अपनी बेहूदगी पर लीपा-पोती करने का यत्न कर रहा था और पुरी उस की बेहूदगी की परवाह न करने का नाटक कर रहा था।

कांता आते ही नैयर पर बरस पड़ी—"किसी समय तो तुम हद ही कर कर देते हो। यह भी कोई तरीका है ! दूसरे की सद्भावना का अच्छा उत्तर है ! यह सम्बन्धियों के तरीके हैं ?"

नैयर गंभीर हो गया—"मुझे अपनी बात के लिये अत्यन्त खेद है।" उस ने स्वीकार कर लिया, "परन्तु पुरी मैंने तुम्हारी सद्भावना का निरादर करने के लिये नहीं कहा था। मुझे अपनी विवशता के प्रति खीझ थी। अच्छा मैं तुम दोनो से क्षमा चाहता हूं।"

"जीजा जी, कोई बात नहीं ! मैंने तो इतना बुरा नहीं माना था।" कनक का क्रोध बह गया।

प्रकट में वह बात वहां ही समाप्त हो गयी थी परन्तु पुरी और कनक

में बाद में भी इस बात पर काफी झगड़ा हुआ। पुरी नैयर के कई व्यवहारों के उदाहरण देकर कनक से कहलाना चाहता था कि नैयर दिल का कमीना है, वह हीन भाव से ग्रस्त है।

नैयर अपनी धृष्टता के लिये खेद प्रकट कर चुका था इसलिये कनक कहने के लिये तैयार नहीं हुई कि नैयर दिल का कमीना है और हीन भाव से ग्रस्त है। पुरी नाराज हो गया। जल कर बोला—"तुम्हें उस पर ही अधिक विश्वास है ? आख़िर इस पक्षपात का मूल कारण क्या है ? कोई दबी हुई भावना भड़क रही है जिस के लिये मुझ से संयम की बातें बनानी पड़ती हैं।"

कनक ने आंसू भरी लाल आंखें तरेर कर स्पष्ट स्वर में पूछा—"क्या मतलब है ? साफ कहो।"

"मैं तो साफ ही कह रहा हूं" पुरी ने साहस दिखाया और मनोविज्ञान के ऐसे तर्क देने लगा जिन का स्पष्ट अर्थ कुछ भी न था।

इस अप्रिय घटना का परिणाम प्रकट में अच्छा ही हुआ। नैयर ने निश्चय कर लिया था कि पुरी से जब इतने निकट का सम्बंध हो गया है तो वह उस के प्रति अपनी विरक्ति को दूर कर देगा। राजेन्द्र और ऊषा के विवाह के समय उस का व्यवहार ऐसा ही रहा।

परन्तु पुरी और कनक के बीच इस विवाह के अवसर पर भी कुछ खटक हो गयी थी। विवाह से तीन-चार दिन पहले ऊषा को हल्दी चढ़ी और गीत शुरू हुये तो पुरी की मां तारा को याद कर रोने लगी।

कनक ने पुरी से कहा—"बहिन को बुलाने का इस से अच्छा अवसर और क्या होगा ?"

पुरी ने उस की मूर्खता के लिये डांट दिया—"तुम क्यों परेशानी का तूफान खड़ा करना चाहती हो। तुम नहीं जानती, मैंने उसे आने के लिये लिखा था। उस ने उत्तर तक नहीं दिया। अब आना चाहिये था, आयी नहीं। जानती हो अब सोमराज के उस की भाभी से दो बच्चे हैं। ऐसी अवस्था में तुम उसे, तारा को और पूरे परिवार को भी मुसीबत में डालोगी !"

सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में एक दिन कांता का छोटा नौकर कनक प्रेस में पत्र लाया। कांता ने दिल्ली से आये कंचन के पत्र के साथ एक पुर्जा भेजा था। कंचन के पत्र में कनक के लिये भी संदेश था। कांता मां की तबियत ठीक न होने का समाचार पाकर दो दिन के लिये दिल्ली जा रही थी। उस ने पूछा था कनक भी चलेगी ?

कनक उस समय जा नही सकती थी । पुरी विधान सभा के अधिवेशन के कारण शिमला मे था । दो-तीन दिन मे ही लौटने वाला था । कनक मकान को हीरांमाई के भरोसे नही छोड़ सकती थी । बसी-निगारखां मे सास को भी ज्वर आ रहा था । कनक को वहां जाकर भी पूछताछ करनी पड़ती थी ।

बीमार सास को छोड़ कर माँ को देखने के लिये कैसे चली जाती । कनक प्रेस से लौटते समय क्रांता के यहां गयी । उसने अपनी विवशता प्रकट की––ये आजाये तो हम दोनों जाकर मा को देख आयेगे, नही तो अगले सप्ताह, मे अकेले ही बृहस्पति की संध्या जरूर दिल्ली पहुच जाऊंगी । माँ की अवस्था के सम्बन्ध मे मुझे तार जरूर दे देना ।"

पुरी अक्तूबर के पहले सप्ताह में जालंधर लौटा तो इतना व्यस्त था कि किसी तरह दिल्ली नही जा सकता था । कांता ने दिल्ली से लौट कर चिंता का कारण न होने की सांत्वना भी दे दी थी । पुरी भी सप्ताह भर बाद चलने के लिये तैयार था ।

दूसरे बृहस्पति सुबह-सुबह पुरी नहाने के लिये गुसलखाने की ओर जा रहा था । फोन की घंटी बज गयी । कनक ने फोन सुनकर तुरंत पुरी को पुकारा—"सुनो-सुनो, प्रेस से गित कह रहा है कि तुम्हारा भाई किशोरचन्द होशियारपुर से आया है । वह तारा और शीलो की बाबत पूछ रहा है । वह फोन पर है, तुम्ही बात कर लो ।"

फोन पर सुनी बात से पुरी का चेहरा गंभीर हो गया । उस ने फोन मे कहा—"प्रेस से रुल्दू को साथ ले लो, वह तुम्हे यहाँ ले आयेगा । यहाँ आकर ही बात करना ठीक होगा ।"

पुरी अभी रात के कपडे––खद्दर की सिली हुई बनियाइन और तहमत मे था । वैसे ही समीप की कुर्सी पर बैठ गया । सिर पर आ पड़ी चिता के बोझ के कारण उस ने ठोडी को दाहिने हाथ की मुट्ठी का सहारा दे लिया । मुख से निकल गया—"यह लड़की हम लोगो के सिर पर न जाने क्या मुसीबत डालेगी····।"

"क्या; कौन ?" कनक ने चिन्ता से पूछा ।

"तारा और कौन !" पुरी ने ठोड़ी से हाथ हटाकर गहरी सांस ली, "किशोरचन्द कह रहा है शीलो के पति मोहनलाल ने बताया है कि तारा शीलो को मायके पहुंचाने के लिये घर से ले गयी थी । शीलो तो होशियारपुर कभी पहुंची ही नही । उस का कुछ पता-ठिकाना ही नही मिल रहा है ।"

"कब ? कैसे ले गयी ?"

"किशोरचन्द आये तो मालूम हो" पुरी ने खिड़की से बाहर देख कहा, "शीलो के तो पार्टीशन के समय ही एक लड़का था। तारा उस के यहां पहुंच कैसे गयी ? जाने क्या तमाशा खड़ा कर दिया है। शीलो कहां चली गयी होगी ?" पुरी किशोरचन्द के पहुंचने से पहले नहा लेने के लिये गुसलखाने में चला गया।

किशोरचन्द से कनक का परिचय नहीं था। पुरी ने दिल्ली जाकर कनक से अदालत में विवाह किया था। उस समय लोगों को निमन्त्रित कर बरात-वरात ले जाने का खर्च उठाने लायक अवस्था नहीं थी। पुरी ने कहा था—लोग बेघरबार हो रहे हैं। सब ओर व्याकुलता छाई है। इस समय गाजे-बाजे और बरात का सामरोह कैसा लगेगा !

बाबू रामज्वाया, विवाह के सम्बन्ध में कोई राय न ली जाने के कारण और बरात में न ले जाये जाने के कारण नाराज हो गये थे। इस नाराजी से भतीजे के विवाह के अवसर पर उसे जोड़ा-कपड़ा देने और बहू को शगुन देने के खर्च से बच गये थे। वह नाराज़गी ऊषा के विवाह के अवसर पर भी दूर नहीं हुई थी। मास्टर जी उन्हें बुला लाने के लिये स्वयं होशियारपुर तक गये परन्तु बाबू रामज्वाया गुस्सा छोड़ कर लड़की के ब्याह का खर्च बटाने के लिये तैयार न हुए। पुरी ने उस प्रसंग को याद कर खिन्नता प्रकट की—"यह लोग तो नाराज़गी दिखा कर हम से सम्बन्ध तोड़ चुके थे। अब मुसीबत लेकर मेरे सिर पर क्यों आ रहे हैं ?"

किशोरचन्द बहुत परेशान था। उस ने बताया—तीन बरस से शीलो या मोहनलाल का कोई पत्र नहीं आया। पत्र लिखने पर भी उत्तर नहीं मिला था। दस दिन पूर्व मोहनलाल के पिता जयकिशन का पत्र आया था। उस ने पत्र में क्रोध प्रकट किया था कि शीलो के ससुराल लौटने के बारे में उन्हें कोई सन्देश नहीं मिला है, आखिर बात क्या है। लड़की को फौरन नहीं लौटाया जायगा तो मोहनलाल का दूसरा व्याह कर लेंगे। फिर हमारी लड़की के बारे में उन की कोई जिम्मेवारी नहीं रहेगी।

समधी का पत्र पाकर रामज्वाया कुछ समझ नहीं पाये, हैरान थे लड़की तीन बरस से कहां थी ? स्थिति जानने के लिये उन्हों ने किशोरचन्द को तुरन्त दिल्ली भेज दिया था।

मोहनलाल बहुत नाराज था। उस ने कहा—वह पत्र का क्या उत्तर देता। शीलो ने उसे कब पत्र लिखा। उसे गये तीन बरस हो गये। बार-बार मायके जाने के लिये ज़िद्द करती थी। रोज झगड़ा खड़ा कर देती थी। उसे छुट्टी

नही मिल सकती थी । वह मान गया कि अगले रविवार सुवह गाड़ी पर चढा देगा । शीलो से कह दिया था कि मायके मे खवर दे दे कि उसे स्टेशन पर मिल जाये । मोहनलाल शुक्रवार सांझ दपतर से लौटा तो कोठरी के किवाडो पर ताला लगा हुआ था । पड़ोसियों ने उसे कुंजी दी और बताया कि शीलो की वहिन आई थी । वही शीलो और वच्चे को टैक्सी पर वैठा कर ले गयी थी । कह गयी थी कि शीलो मायके जारही है ।

तारा के विपय मे सुनकर किशोरचन्द को विश्वास नहीं हुआ था । मोहनलाल ने उसे बताया—तारा ससुराल के घर आग मे मरी नही थी, वच गई थी । तारा शीलो को ले जाने से कुछ दिन पहले भी मिलने आयी थी । तारा ने शीलो को बताया था कि उस ने किसी सरकारी दफ्तर में नौकरी कर ली थी । मोहनलाल के क्लेम की दरख्वास्त से तारा को उन लोगों का शक्तिनगर का पता मिल गया था । मोहनलाल को शीलो और तारा की इस हरकत पर बहुत क्रोध था । उस ने न तारा का पता लेने की, न होशियरपुर पत्र लिखने की जरूरत समझी थी । औरत सरकशी करके गयी थी तो वह क्यों खुशामद करता ! खयाल था, शीलो पछतायेगी, मुआफी मागेगी तो लौटा लायेगा । उस ने तो अव भी पत्र नही लिखा था । कहता था, उसे क्या परवाह है । उस के पिता ने ही पत्र लिख दिया था ।

मोहनलाल शीलो की गुस्ताखी के कारण अपने पूरे ससुराल से नाराज था । उस ने किशोरचन्द को ठहरने के लिये भी नही कहा । किशोरचन्द ने तारा के विपय मे उस से वात करने का कोई लाभ नही समझा । जालंधर पत्र लिख कर उत्तर की प्रतीक्षा कहां करता ? वह रात की ट्रेन से सुवह जालधर पहुंच गया था ।

पुरी ने ठोड़ी को मुट्ठी का सहारा देकर चिता से, किशोरचन्द की वात सुनी । रहस्य समझ पाने का कोई उपाय न था । उस ने सोचकर किशोरचन्द से कहा—"तारा यहा तो नही आयी । दिल्ली जाकर ही पता लेना होगा । तुम रात भर सफर से थके हुए हो, नहा लो, कुछ चाय-लस्सी पियो । फिर सोचेंगे क्या करना चाहिए ।"

किशोरचन्द ने विस्मय प्रकट किया—"तारा यहां नही आयी ? क्यों ? चिट्ठी-पत्री मे हाल तो लिखा होगा ?"

पुरी ने इनकार मे सिर हिला दिया ।

"यह क्या तरीका है ?" किशोरचन्द ने क्षोभ प्रकट किया, "न ससुराल मे रहना, न मायके मे ? दूसरों को भी उजाड़ना ?"

पुरी नज़र बचा कर मौन रह गया ।

किशोरचन्द सामने बैठा था तो पुरी गंभीर बना रहा । वह नहाने के लिये गया तो पुरी ने कनक के सामने परेशानी प्रकट की—"कुछ समझ में नही आता, तारा ने किया क्या है? क्या बदले ले रही है! बाल-बच्चे वाली लड़की को क्या पट्टी पढ़ाकर उजाड़ दिया। हमारी एक पोज़ीशन है। ताया जी आकर 'सीन' करने लगेंगे तो और मुसीबत हो जायगी। तीन बरस हो गये तो अब क्या हो सकता है? हमारी नाक कटाने पर तुली हुई है। शीलो कुछ चंचल स्वभाव तो थी....।"

बदले ले रही है—कनक का मस्तिष्क झनझना गया—"क्या कह रहे हैं, क्या बात है कैसा बदला?" उस ने पूछा।

"क्या बताऊं, सिर चकरा गया है" पुरी ने सिर झटक लिया।

किशोरचंद बहुत बेचैन था। शरीर पर दो लोटे जल डाल कर दोहरी धोती कमर पर लपेटे बैठक में आ गया। वह तौलिये से शरीर को पोंछता जा रहा था। कनक ने मुंह फेर लिया। किशोरचंद का ध्यान उस ओर नहीं गया। गली-मुहल्ले के व्यवहार की दृष्टि से वह कोई अनुचित बात नहीं कर रहा था। कनक पिछवाड़े के बरामदे में चली गयी थी। वहीं से उसने पुकार लिया—"आजाइये, चाय-लस्सी रखवा रही हूं।"

किशोरचंद लस्सी पीने के लिये आया तब भी उसे कमीज पहनने का ख्याल नहीं आया था। पुरी से कहा—"तुम मेरे साथ चलो। तारा यह क्या तमाशा कर रही है? हम से पूछे बिना लड़की को ससुराल से ले आने का मतलब ही क्या था? मोहनलाल दूसरी शादी कर लेगा तो तारा शीलो और बच्चे को उम्र भर अपने यहां रख लेगी? तुम आज ही चलो।"

"चलूंगा" पुरी ने स्वीकार किया, "पर मोहनलाल क्या कहता है? तीन बरस हो गये, वह इतने दिन क्यों चुप था?"

किशोरचंद ने झुंझलाहट प्रकट की—"वह तो इतना नाराज़ है कि बात ही नहीं करता।"

"खैर, पर शीलो ने तुम्हें इस बारे में क्यों नहीं लिखा? ससुराल वाले परेशान करते थे तो तुम्हें खबर तो देती!"

"मैं क्या कहूं, तारा वहां थी, उसी से बात करती होगी। दोनों ने आपस में जो सलाह बना ली हो। तारा बड़ी है। शीलो तो सदा ही बात-बात पर उस से सलाह लेने तुम्हारे यहां दौड़ी चली आती थी।"

"ऐसी बड़ी क्या है, छः महीने का ही तो फरक है।" पुरी ने कहा।

"आखिर तो बड़ी है। वही नजदीक थी। शीलो ने तकलीफ-परेशानी बतायी होगी। तारा खुद ससुराल-मायका छोड़ कर आजाद हो गयी है, कहा होगा तू भी मेरी तरह मौज कर।"

कनक को किशोरचंद की बात अच्छी नही लगी। उस ने पुरी की ओर देखा।

पुरी ने विरोध किया—"मौज का क्या मतलब है? उस ने इतना पढ़ा-लिखा है तो उस का कुछ फायदा होना चाहिये। सरकारी दफ्तर में इज्जत से नौकरी कर रही है।"

"यह क्या इज्जत है कि ससुराल में न रहे?" किशोरचंद ने टोक दिया, तुम लोग अपने ख्याल से चलो। हमारी लड़की को बहकाने का क्या मतलब?"

"बहकाने का क्या मतलब? शीलो कोई बच्चा नहीं है" पुरी का स्वर गम्भीर हो गया।

"मोहनलाल गुस्से में तीन बरस से चुप है तो शीलो को भी गुस्सा होगा। तारा के कहने से ही पति और बच्चे को छोड़ कर चली गई?" कनक ने पति से कह कर जेठ को सुना दिया।

पुरी ने कनक को चुप रहने का इशारा कर दिया—"हां, शीलो को स्वयं तुम्हें लिखना चाहिए था। अच्छी-खासी पढ़ी-लिखी है।" पुरी ने बात संभाली, "दिल्ली जाकर देखे-सुने बिना क्या कह सकते है? आज शाम को ही चलेंगे।"

"मास्टर जी यहां नहीं रहते? चाची, ऊषा, हरी कहां है।" किशोरचन्द ने पूछ लिया।

"हरी तो जब तुम आये, कालेज चला गया था। पिता जी मां को लेकर कुछ दिन के लिये सोनवां चले गये है। उन्हें सोनवां बहुत याद आता रहता है। तुम्हारे कपड़े मैले हो गये है, बदल लो, मै निकलवा दूं?" पुरी ने किशोरचन्द को कमीज़ पहन लेने का संकेत किया।

"कपड़े है।" वह वैसे ही बैठा सीने पर उंगलियों से खुजाता रहा।

कनक मेज से उठ गयी। किशोरचन्द और पुरी समस्या पर अनुमान और तर्क से कई पहलुओं से विचार करते रहे। कनक साढ़े नौ बजे की बस से दफ्तर चली जाती थी। पुरी घर पर होता तो प्रायः साथ ही जाता था। दफ्तर जाने से पहले कनक जया को अपने हाथ से बना-संवार कर कपड़े पहना जाती थी। उस ने पुरी और किशोरचन्द के लिये खाना परोसवा दिया और स्वयं रसोई में जाकर खा लिया।

पुरी ने किशोरचन्द को समझाया—"सांझ या रात के समय दिल्ली पहुंचने से कोई लाभ नहीं। रात की गाड़ी से चलेगे। सुबह सूरज निकलते दिल्ली

पहुंच जायेंगे। तुम रात भर के थके-जागे भी हो। तुम्हारे लिये पलंग लगवा दिया है। आराम करो। मैं कई दिन बाद आया हूं। प्रेस-अखबार के कई जरूरी काम हैं। शाम तक लौट सकूंगा।"

विलम्ब हो जाने से बस निकल गयी थी। पुरी और कनक को शहर के लिये तांगा लेना पड़ा। किशोरचन्द के समने पुरी गम्भीर बना रहा था। अब उस की परेशानी उबल पड़ी। तांगे वाला न समझ सके इसलिये अंग्रेजी में बोला—"यह तो अच्छा-खासा स्कैंडल (लांछन) खड़ा होगा। यह बेवकूफ समझ नहीं सकता कि लड़की तीन बरस से छिपी बैठी है तो जरूर भागकर गयी है वर्ना अपने मायके में न जाती! भागे या भाड़ में जाये, हमारी बला से; यह तारा क्यों बीच में आ पड़ी! इसीलिये यह हमें धौंस दे रहा है। तारा के लिये ही हम क्या जिम्मेवार हैं सिर्फ बदनामी का खयाल है।"

"तारा शीलो को जबरदस्ती तो ले जा नहीं सकती थी" कनक ने पुरी का समर्थन किया।

"यह कह रहा है, मोहनलाल दूसरी शादी कर लेगा तो लड़की का क्या होगा? मोहनलाल तो तीन बरस में यत्न भी कर चुका होगा। ऐसे लोगों के यहां तो स्त्री खाने-कपड़े पर ही नौकर होती है। कुछ बन नहीं पाया तो सोचता होगा—जिस पर जोर है, उसी को लाओ। शीलो बालिग है। लौटना नहीं चाहेगी तो हम क्या कर लेंगे! दोनों तीन बरस चुप रहे क्या तमाशा है! तारा को वहां जा मरने की क्या जरूरत थी?"

"तारा को हमारा पता मालूम था। तुम ने भी पत्र लिखा था। यहां पत्र का भी उत्तर नहीं और वहां स्वयं पहुंच गयी। गोबिन्दराम के घर भी गयी। यह क्या बात है?" कनक ने शंका प्रकट की।

"क्या कहूं?" पुरी ने उत्तर दिया, "मुंह नहीं दिखाना चाहती होगी।"

"क्यों? तुम कह रहे थे, बदला ले रही है, ऐसी क्या बात है?" कनक ने चिन्ता और रहस्य के स्वर में पूछा।

"उसे मैंने छिप-छिप कर असद के साथ मिलते पकड़ लिया था। यही क्रोध हो सकता है। मैंने पूछा—यह क्या तमाशा है तो निर्दोष बनने के लिये सिर तोड़ लिया।" पुरी कहता गया, "मैंने उसे सोमराज के बारे में भी लिख दिया था। चुप्पी मारे बैठी है तो तुम समझ लो। हम सोमराज से किस बात पर झगड़ा करें?"

कनक मौन रह गयी। स्वयं पुरी छिप-छिप कर मिलने, ननीताल में नैयर और कांता द्वारा वैसी अवस्था में देख ली जाने की बातें याद आगयीं। नैयर

की सज्जनता के प्रति कृतज्ञता अनुभव हुई। बाबू गोविन्दराम का दिल्ली से आया पत्र भी याद आ गया—तारा बेटी तो देवी है। जीजा जी ने कहा था, तारा का विवाह उस की इच्छा के विरुद्ध किया गया था....।

प्रेस पहुंचकर काम आरम्भ करने से पहले पुरी ने कनक को एक ओर बुलाकर समझाया—"मेरा दिल्ली जाना ठीक नहीं है। तुम मां को देखने के लिये जाना चाती थी, हो ही आओ। तारा का पता तो गोविन्दराम के यहां से मिल जायेगा। तारा के मन की बात मैं कुछ कह नहीं सकता। विवाह के समय और उस से कई महीने पहले भी वह बहुत सन्तुष्ट थी और अब ससुराल का पता पाकर भी गुम-सुम बैठी है। मुझे देख कर शायद घबरा जाये, कोई तमाशा बन जाये! गोविन्दराम और रतन तो उस से मिलते ही रहते हैं। तुम उन के साथ ही जाना। हरी को भी समझा देना है कि किशोरचन्द से ज्यादा मुंह न लगे। इस विषय में अभी पिता जी से कुछ कहने की जरूरत नहीं है। बात-चीत में स्थिति कापता लेकर जैसा उचित समझना कर लेना। बस, शीलो का पता किशोरचन्द को ले देना। बाकी कोई उत्तरदायित्व तुम मत लेना। किशोरचन्द को तारा या गोविन्दराम का पता देने की जरूरत नहीं है।"

बृहस्पतिवार पत्र का अंतिम दिन होने के कारण कनक को काम अधिक रहता था परन्तु मन में ख्याल आ जाता—'ये' स्वयं नहीं चल रहे है। तारा के प्रति अब भी कितना क्रोध है। तारा भी क्या रहस्यमयी है, कहीं अति प्रशंसा, कहीं घोर निन्दा। किसी झगड़े में न पड़ जाऊं! ऐसी बात होगी तो मैं भी दूर ही रहूंगी।

संध्या समय पुरी ने किशोरचन्द को समझाया—"अचानक ऐसा झगड़ा आ गया है। मैं तो दो दिन नहीं जा सकूंगा। स्त्रियों का मामला है। कनक अधिक सुविधा से स्त्रियों मे जहां-तहां जा सकेगी। तुम कनक के ही घर ठहर जाना।"

कनक और किशोरचन्द सुबह ही दिल्ली पहुंच गये थे। कनक को माता-पिता और कंची से बात करके हाल-चाल पूछते, नहाते-धोते काफी समय निकल गया। साढ़े दस बजे कनक कंचन को साथ लेकर करोलबाग जाने के लिये निकली। कंचन ने बहिन के अनुरोध से कालिज में फोन करके छुट्टी ले ली थी। किशोरचन्द को उस ने घर पर ही प्रतीक्षा करने या बाजार घूम आने के लिये कह दिया। जया डेढ़ बरस बाद नाना-नानी के पास आयी थी। उन्हें पहचान कर उन की गोद में तो चली गयी। उन्हें 'पुच्ची-गक्की' (चुम्बन-

आलिंगन) करके भी प्रसन्न कर दिया परन्तु मां को बाहर जाते देखा तो गला फाड़ कर रो पड़ी। उसे भी साथ लेना पड़ा। कनक ने मां से कह दिया, देर हो जाये तो घबराये नहीं। कई जगह जाना है।

टैक्सी ने कनक और कंचन को करोलबाग में पहुंचा दिया। लगभग पांच बरस पहले कनक पिता के साथ गांधी जी की प्रार्थना में करोलबाग आयी थी। जगह को बिल्कुल पहचान नहीं पा रही थी। तब खुली-खुली बस्ती थी, प्रायः इकमंज़िले-दुमंजिले मकान थे। अब वहाँ गुंजान बाज़ार था। दोपहर में बाजार में भीड़ नहीं थी परन्तु दुकानें माल से गंजी हुई थीं। फल बेचने वाले ठेलों पर संतरे और केलों के पहाड़ बनाये, वृक्षों या ऊंचे मकानों की छाया में खड़े थे और एक दूसरे की प्रतिद्वन्दिता में पुकारें लगा देते थे। बिलकुल लाहौर के लोहारी दरवाजे के बाहर, अनारकली बाजार के चौक का दृश्य था। गलियों में छाया की ओर खाट-खटोली बिछाये पंजाबी स्त्रियां किसी न किसी काम में लगी थीं। कहीं गली में बने तन्दूर से उठता धुंआ दिखायी दे जाता था, कहीं कपड़े धोने के लिये लकड़ी की मोगरी थप्प-थप्प कपड़ों पर पड़ती जा रही थी। पंजाबिनें आस्तीनें कोहनी पर समेटे, सलवार के पहुंचे घुटनों तक चढ़ाये, मर्दों की नज़र बचा कर बिना ओढ़नी लिये ही, इधर से उधर और उधर से इधर चली जा रही थीं।

कनक के पास तीन बरस पूर्व मिले पत्र में, बाबू गोविंदराम का नाईवाला, तीन नम्बर गली का पता था। उस पते पर गोविन्दराम नहीं मिले। उस मकान में कोई दूसरा परिवार था परन्तु परिवार की नौ-दस बरस की लड़की ने साथ जाकर, बाजार की दुकानों की दूसरी मंजिल पर, गोविन्दराम खन्ना का नया मकान दिखा दिया। गली के आरम्भ में, दुकानों की बगल में एक जीने के दरवाज़े पर लगे लेटर बक्स पर अंग्रेज़ी-उर्दू में 'गोविंदराम एंड संस' का छोटा सा बोर्ड था। बिजली की घंटी का बटन भी मौजूद था।

चौदह-पन्द्रह बरस की लड़की ने जीने के किवाड़ खोले। कनक ने बताया, मैं जालंधर से आयी हूं। तारा बहिन की भाभी हूं।"

लड़की के नेत्र फैल गये। लड़की मार्ग देने के लिये एक ओर हुई परन्तु रह न सकी। उल्टे पांव छलांग लगाती जीना चढ़ गयी।

कनक और कंचन को आधे जीने में ही ऊपर से किलकारी सुनाई दी—"झाई, जालंधर से भाभी आई है। पुरी भाप्पा की बहू आयी हैं।"

मेलादेई आंचल संभालती जीने के दरवाजे पर आयी। कनक और कंचन को आशीर्वाद दिये। कमरे में ले जाकर दोनों को दरी-खेस बिछे तख्त पर

बैठाया और पूछा, "असबाब नीचे है ?"

कनक ने बताया--असबाब साथ नही है। फैज बाजार में पिता के यहाँ ठहरी है।

मेलादेई ने शिकायत के स्वर में कहा--"वाह, वह घर है तो यह भी तो तुम्हारा अपना घर है। वहाँ तो हमेशा ठहरती हो। इस बार यहाँ आना था।"

मेलादेई ने साथ के कमरे की ओर मुंह कर पुकार लिया--"चन्ना बेटी, यहाँ आ, तेरी भाभी आयी है।"

जवान बहू ने आकर कुछ लजाते हुये नमस्ते की।

"तेरी भा···जेठानी है, पैरीपैणा कर" मेलादेई ने गदगद स्वर में कहा। बहू झुक कर कनक के पांव छूने लगी।

कनक ने अपने पांव समेट कर, बहू का हाथ पकड़ कर तख्त पर खीच लिया। जया को गोद में ले-ले कर चूमा-पुचकारा गया। उसे सब को नमस्ते करनी पड़ी।

मेलादेई बोली—"बेटियो, बहुत तेज धूप में आयी हो। पहले बताओ, क्या पियोगी ? संतरे का रस, लस्सी, पेड़ों की लस्सी या शिकंजबीन ? जो चीज रुचती हो, बता दो। तकल्लुफ नहीं करना। तुम मेरी बहू हो, तुम्हारे लिये जैसी भागवंती वैसी मैं हूं।"

"मां जी, अभी खाना खाये घंटे भर से भी कम हुआ है। अभी तो इच्छा नहीं है। अपना घर है, स्वयं ही कह देंगी।" कनक और कंचन ने उत्तर दिया।

मेलादेई ने विस्मय प्रकट किया--"यह कैसे हो सकता है ?" उस ने सिर हिला कर कहा, "मेरे लिये जैसी दम्मो, तारा, ऊषा, चन्ना है, वैसी तुम हो। खाना चाहे घंटे, डेढ़ घंटे ठहर कर खा लेना पर अभी पानी-धानी तो पियो।"

मेलादेई ने कनक के सास-ससुर, जयदेव, हरी, ऊषा, तोषी सभी का हाल पूछा, कौन क्या करता है। पुरी के 'मेम्बर' बन जाने और ऊषा का ब्याह हो जाने के लिये संतोष प्रकट किया और बहुत शिकायत भी की—"हाय, ऊषा के ब्याह की हमें खबर नहीं दी।" फिर कहा, "सब मास्टर जी के धर्म और तप का फल है।" पुरी की बहादुरी और ईमानदारी, लियाकत और खान्दान की साधुता और सच्चाई की प्रशंसा की। तारा का नाम आते ही उस के मुंह से फूल झड़ने लगे, "वह तो देवी है, शांति और परोपकार की मूर्ति। भगवान बेटी-बहू दे तो ऐसी ही दें। उस ने किस का भला नहीं किया ? हमारी भोला पांधे की गली की गरीब ब्राह्मणी पूरणदेई बेचारी ठोकरें खा रही थी, सिर पर बीस-इक्कीस बरस की जवान लड़की थी। कोई मदद करने वाला नहीं था।

तारा की हिम्मत थी, लड़की को ट्रेनिंग दिला कर सवा-सौ की सरकारी नौकरी दिला दो और फिर अपना रुपया खर्च करके उस का व्याह करा दिया। दूसरों का ऐसा भला करने वाले कहां मिलते हैं। हमारे साथ क्या कम किया है ? हम तो उस का जस गाते हैं, उसे आशीर्वाद देते हैं। परमेश्वर जी उसे सौ वरस की उम्र दे; वड़ी-से वड़ी लाट अफसर वने.....।"

"तारा वहिन से ज़रूर मिलना चाहती हूं। उन का मकान कहाँ है ?"

"पचकुइयां रोड वाला मकान पूछती हो न ?" मेलादेई ने अनुमान प्रकट किया, "मकान वदले दो साल हो गये। तुम इधर दिल्ली नहीं आयीं ?"

लगभग एक वजे पांच-एक वरस का लड़का, कन्वेंट स्कूल की साफ पोशाक पहने आ गया। मेलादेई ने उस के माथे का पसीना आंचल से पोंछ कर कहा—"घुल्लू मामी को पैरीपेणा कर।"

वच्चा वहुत सुन्दर था। कनक ने प्यार से उसे गोद में ले लिया।

कनक 'भाभी' और 'मामी' के सम्वन्ध सुन कर कल्पना में जोड़-तोड़ कर रही थी।

रतन खाना खाने के लिये घर आया। गोविन्दराम जी किसी काम से मेरठ गये हुये थे। उन के संध्या विलम्व से लौटने की आशा थी। रतन ने कनक का परिचय पाकर वहुत आदर और स्नेह से भाभी सम्वोधन कर पैरी-पैणा किया। समीप वैठ कर हाल-चाल पूछने लगा। पुरी की शिकायत की—हमें व्याह पर नहीं वुलाया। फिर वही प्रश्न जो मेलादेई ने पूछे थे रतन भी पूछने लगा।

मेलादेई ने टोका—"रूखी-सूखी जो कुछ है, खा लो। फिर चाहे सांझ तक वातें करते रहना।"

कनक और कंचन के अनेक कसमें खाने पर मेलादेई ने उन्हें भोजन के लिये विवश न किया। वहू ने एक प्लेट में अंगूर, दूसरी में संतरे और तीसरी में केले भरकर सामने रख दिये। रतन ने अपने लिये थाली वहाँ ही मंगवा ली। जव तक वह खाता रहा, मेलादेई कनक, कंचन को फल खाते जाने के लिया विवश करती रही। उन के ना करने पर स्नेह से उलाहना दिया—"वेटियो, हम लोग तो दिल्ली पहुंचकर भी खाने-पीने के मामले में पंजावी वने हैं, तुम पंजाव में रह कर भी नहीं खा-पी सकतीं। क्या हो गया है तुम्हें ..."

रतन खा चुका तो कनक ने फिर इच्छा प्रकट की कि तारा का पता वता दें या साथ चल कर पहुंचा दें।

"इस धूप में मैं नहीं जाने दूंगी। काकी (वच्ची) साथ है, यह कैसे हो

सकता है ! काकी नींद में झुक रही है । हमारे पास जैसी जगह उसी में आराम करो । सांझ का खाना जल्दी खा लेना, फिर जाना ।" मेलादेई ने निर्णय दे दिया ।

रतन ने मां का समर्थन किया—"तारा बहिन अभी दफ्तर में होगी । सवा पांच-साढ़े-पांच से पहिले कभी लौटती नहीं । आराम कीजिये, अभी बात-चीत ही क्या हुई है ? पांच बजे चलेंगे । मैं पहुंचा दूंगा ।"

रतन की लड़की पंखे के सामने जाली से ढकी खटोली में सोयी हुई थी । दम्मो ने पलंग पर विस्तर लगा दिया । मुन्नी और जया को पलंग पर सुलाकर दोनों को जाली ओढ़ा दी । मेलादेई ने समीप ही अपने लिये भी खाट डाल ली । बातचीत के शोर से बच्चियों की नींद न टूट जाये इसलिये सब दूसरे कमरे के फर्श पर दरी-गद्दे बिछाकर बैठ गये ।

चन्ना ने बक्स से दो धुली धोतियां लाकर कनक और कंची को बदल लेने के लिये दे दीं कि संध्या तक उन की साड़ियां मसल न जायें । रतन सुनाता गया—तारा का सिस्टर मर्सी के साथ दरियागंज में रहने का ब्योरा, भानुदत्त का मामला, कैम्प के टूटने के समय दफ्तर में झंझट, तारा का अंडर-सैक्रेटरी बन जाना, तारा कितनी मेहनत करती है, उस का लिखा नोट सेक्रेटरी भी नहीं बदल सकता । दफ्तरों में रिश्वत का बाजार गर्म है । क्लर्क नीचे-नीचे चाहे जो कुछ कर लें पर तारा को कोई दस लाख का लालच देकर भी तिनका नहीं हिला सकता । हमारी तो उस ने बहुत सहायता की, सोलह हज़ार का कर्ज़ दिलवा दिया, नहीं तो सचमुच डूब जाते.......

अपनी सब पूंजी मिलाकर इस मकान के नीचे की एक सौ चौंतीस गज जमीन खरीद ली थी । फिर यह जमीन रहन रख कर साथ की सौ गज जमीन और ले ली । पंजाबी का कलेजा था । सवाये दाम पर जमीन खरीदी थी । दिल्ली वाले हंसते थे । आधा दाम नकदी और आधे पर बारह रुपया सैकड़ा सूद ! भाभी जी, तीन दुकानों की नींव भरी गयी तो समझो, मुश्किल से दो हजार रुपया जेब में रह गया था । लोग दूकानों के लिये पेशगी देने आने लगे । पिता जी ने कहा बीच की दूकान के दस हजार और दोनों कोनों की दूकानों के पन्द्रह-पन्द्रह हज़ार से एक पैसा कम पगड़ी में नहीं लेंगे । लोगों ने झक मार रुपया दिया । क़िराया भी तीनों दुकानों का सात सौ तय हो गया । सारी रात गैस जला-जला कर, खुद खड़े रह कर काम कराया । तीन महीने में दुकानें खड़ी कर दीं । पिछले साल यह कमरे बना लिये । उधर का हिस्सा सवा सौ पर क़िराये पर दे दिया है । हमें बारह रुपया सैकड़ा सूद क्या बुरा है ! तीसरी

मंजिल पूरी हो जाय तो महीने का डेढ़ सौ कहीं नहीं गया।""पहले मैं गजेन्दर सिंह के साथ एक आना पत्ती पर काम कर रहा था। मजबूरी थी। इस साल मैंने किश्तों पर ट्रक ले लिया है। गजेन्दर हाथ जोड़ने लगा। मैंने कहा, अच्छा मेरा ट्रक भी चलेगा तीन आना पत्ती दे देना""।

रतन ने देखा व्यवसाय की बात में कनक को रुचि नहीं हो रही थी। कंचन दो बार मुंह फेर कर जम्हाई ले कर 'एक्सक्यूज़मी' कह चुकी थी। फिर भी रतन बोला—"भाभी जी, रुपये-पैसे की बात उतनी नहीं होती। चन्ना की तो जान ही तारा ने बचा दी। उसी की कृपा से यह घर बसा है। मैंने तो कौल कर लिया था कि ब्याह नहीं करूंगा।"

चन्ना लज्जा कर चली गयी।

कनक ने मौन प्रश्न से रतन की ओर देखा।

रतन ने मुस्कराकर कहा—"पहचाना नहीं, चन्ना तारा की बहन शीलो ही तो है। तारा समय पर पहुंच कर बचा न लेती तो यह खुदकशी कर लेती।"

कनक के रोयें खड़े हो गये।

रतन कहता गया—"हमारा अब दोहरा रिश्ता है। आप मेरी दोहरी भाभी हैं।"

कनक कुछ कह न सकी, ज़रा मुस्कराकर रह गयी।

रतन उठ कर खड़ा हो गया—"भाभी जी, मुझे ज़रा देर के लिये जाना है। आप कुछ देर झपकी ले लें। पांच बजे आकर ले चलूंगा। नीचे दुकान से तारा बहन को फोन भी कर देता हूं।"

कनक को झपकी क्या आती। मस्तिष्क अजीब भूल-भुलैया में उलझ गया था"'किशोरचंद और पुरी की चिंता और क्रोध! वह तो शीलो के ही घर पहुंच गयी थी। शीलो को बहुत सन्तुष्ट देख रही थी। ऐसी परिस्थिति में मोहनलाल और किशोरचंद की बात कैसे उठाती?

शीलो ने फिर कनक के पास आकर पूछा—"भाभी जी, चाय पियोगी या शिकंजबीन?"

"न न" कनक ने उसे बांह से पकड़ कर बैठाया और पूछ लिया, "मुझे बहुत खुशी है। बता तो यह सब कैसे हुआ?"

शीलो सिर झुकाये मौन रह गयी। कनक के दुबारा पूछने पर उस ने धीमे से कह दिया—"तारा बता देगी।"

रतन सवा पाँच के लगभग आ गया। फिर कनक और कंचन का सत्कार आरम्भ हो गया। पकौड़े, कुल्फी, फालूदा आगये। कनक को इस समय एक प्याली

चाय का अभ्यास था पर इतने तकल्लुफ में एक और फरमाइश कैसे कर देती।

जया का फ्राक कुलफी से गच्च हो गया था। कंची थैले में उस के लिये फ्राक-जांघिया रख लायी थी। चलने से पहले उस के कपड़े बदल कर कंघी की गयी।

कनक चलने लगी तो काफी विवाद खड़ा हो गया। मेलादेई कनक को साड़ी और दस रुपये देना चाहती थी। कनक का संकोच और इंकार किसी तरह नहीं चल सका।

कनक घुल्लू के हाथ में और छोटी मुन्नी की मुट्ठी में पांच-पांच के नोट देने लगी। शीलो कनक को तकल्लुफ के लिये रोक रही थी परन्तु स्वयं जया के हाथ में नोट थमा रही थी। काफी कहा-सुनी के बाद रुपयों की अदला-बदली हो गयी।

रतन के मकान से नीचे उतर कर कनक ने देखा, दोपहर की नींद सोया हुआ बाजार जाग उठा था। दुकानों पर खूब भीड़ थी। स्त्री-पुरुषों से कंधे रगड़े बिना दस कदम चल पाना कठिन था। लाहौर में लोगों को अच्छा पहनने-ओढ़ने का शौक था पर अब दिल्ली में वे उस से भी ज्यादा अच्छा पहन कर दिखा रहे थे। कनक को लग रहा था वह जालंधर शहर से नहीं, गांव से दिल्ली में आ गयी है।

रतन जानता था— तारा अपने परिवार से दूर ही रहना चाहती थी। तीन बरस पहले उस ने पुरी का पत्र उस के यहां पहुंचाया था तो वह पुलकित नहीं हुयी थी। कनक से मिलने के बाद उस ने तुरन्त तारा के दफ्तर में फोन करके, कनक को घर पर ले आने की अनुमति मांगी। बता दिया था, कनक उस के घर पर ही थी। चन्ना के बारे में उसे बता दिया था। चन्ना से बहुत अच्छी तरह बोली। घल्लू और मुन्नी को बहुत प्यार किया था। तारा से मिलने के लिये कनक बहुत आतुर थी। तारा ने अनुमति दे दी।

तारा को उस संध्या मिसेज अगरवाला ने बुला रखा था। सोचा, उन्हें फोन कर देगी। मन मे कल्पना-विकल्पना करती रही, मिलने आने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? मुझे क्या भय है ? सोमराज से मुझे क्या मतलब ? वह घर में अपनी भाभी को रखे हुये है, मेरी बला से। यदि कोई सन्देश है तो इस बार स्पष्ट उत्तर दे देना ही ठीक होगा।

तारा ने दफ्तर से लौट कर पूरणदेई को कह दिया था—"जालंधर से भाभी दिल्ली आयी है। छः बजे यहाँ आयेगी। उस के साथ ही चाय पियूंगी। परसू से कुछ फल-मिठाई मंगवा लो।"

समाचार सुन कर उत्साह से पूरणदेई की धड़कन बढ़ गयी थी। तारा की भाभी उस की भी बहू थी। सुन चुकी थी कि तारा का बड़ा भाई जग्गी जालंधर में अखबार का साहब और 'मिम्बर' बन गया था। वह बड़े घर की, अंग्रेज़ी पढ़ी लड़की थी। परसू को समझ ही क्या थी। तीन दिन पहले उस ने चायदानी का ढक्कन तोड़ दिया था। कटोरी से ढंक कर काम चलाना पड़ रहा था। तायी के यहां से चायदानी मंगवा सकती थी परन्तु तायी को खबर देकर राय भी तो लेनी थी। वह पहली बार घर आ रही थी। मुंह दिखाई या शगुन में क्या कुछ देना चाहिये !

पूरणदेई को यह सब करने-देखने का अवसर कहाँ मिला था। पुराने जमाने में उस के विवाह के समय की तरह सवा रुपया, सात जोड़े छुहारे, एक जुट्ट (एक नारियल के दो टुकड़े) बहू की झोली में डाल देने से तो काम नहीं चल सकता था। अब पांच-दस रुपये देने की रीति चल गयी थी। तायी से पूछ लेना ही ठीक था। इतना बड़ा समाचार पड़ोस में किसी को बताये बिना वह कैसे हजम कर लेती। मेहता के यहाँ भी बताना ज़रूरी था कि बहू को देख जायें, नहीं तो बाद में उलाहने सुनने पड़ेंगे।

कनक और तारा साढ़े पाँच बरस बाद मिली थीं। कनक ने उल्लास से तारा को आलिंगन में ले लिया। तारा भी शील और विनय से, भाभी से वैसे ही मिली थी परन्तु कनक की छलकती आंखों ने तारा का मन जीत लिया। लगा, जैसे बहुत पुरानी आत्मीय सहेली को पा लिया हो। कंचन को भी प्यार से गले लगाया। ठोड़ी हाथ में लेकर बोली—"हाय, इतनी बड़ी हो गयी, कितनी प्यारी लग रही है। तुम तो दिल्लो में ही रहती हो न ?"

तारा ने कनक के घुटने से चिपकी हुई जया को गोद में ले लिया। जया सहसा परिचय बना लेने के लिये तैयार न हुई। तारा को उस की काफी खुशामद करनी पड़ी।

कनक और तारा पांच बरस पहले मिली थीं तो लड़कियां थीं, अब दोनों युवतियां हो चुकी थीं। दोनों के शरीर भर गये थे। कनक का शरीर तारा की अपेक्षा बीस लग रहा था। कनक तारा के चेहरे से आंख नहीं हटा पा रही थी। उसे तारा पांच वर्ष पूर्व की अपेक्षा अधिक प्यारी, रोबीली और सुन्दर लग रही थी।

कनक भोलापांधे की गली में गयी थी तो तारा, घर में मसले-कुचले कमीज़-सलवार पहने चटाई पर बैठी परीक्षा की तैयारी के लिये पढ़ रही थी। कंघी

भी ठीक से नहीं की हुई थी। इस समय तारा दफ्तर से लौटकर बदली, सफेल वायल की साड़ी में थी। सिर पर बिल्कुल सीधी मांग के पीछे बड़ा सा जूड़ा बंधा था। कानों में काले नग लगी सोने की कीलें, गोरे चेहरे पर बहुत फब रहीं थी। गले में कोई जेवर नहीं था। बाईं कलाई पर काली डोरी से बंधी बहुत छोटी, स्टील की घड़ी थी। दूसरे हाथ में सोने की केवल एक मोटी चूड़ी थी।

अक्तूबर की संध्या कुछ गरमी ही थी। हल्का पंखा चल रहा था परन्तु कनक तारा को बांह में लेकर उस के साथ सोफा पर बैठी। मुख से कुछ न बोल कर उस ने तारा का सिर अपने कंधे पर रख लिया। रतन को सामने बैठा देख कर संभल कर बात करने लगी—"पहले जब भी दिल्ली आयी, मकान ढूंढ़ने की फुर्सत ही नहीं मिल सकी कि पता लेती पर मन में बड़ी चाह थी'''।"

तारा ने पिता जी, मां, भाई, हरी, ऊषा, तोपी सब का हाल-चाल पूछा।

पूरणदेई भी धोती बदल कर बहू को आशीर्वाद देने आ गयी। तारा ने परिचय दिया—"हमारे बुआ जी।"

पूरणदेई ने फिर से सब का हाल पूछा।

रतन ने अनुमान प्रकट किया—"भाभी जी दो घंटे तो यहां ठहरेंगी। मैं लौट कर आप को फैज बाजार पहुंचा दूंगा।"

कनक और तारा दोनों ने ही उसे चिंता न करने का आश्वासन दिया।

कनक बहुत कुछ पूछना और बहुत कुछ बताना चाहती थी परन्तु कहां से, कैसे प्रसंग आरम्भ करती। बताने लगी—हम लोग सन् ४७ सितम्बर में नैनीताल से दिल्ली आये थे'''।

परसू ने मिठाई और फल लाकर रख दिये। पूरणदेई चाय लेकर आयी तो बोली—"सांझ का भोजन करके जाना होगा।" वह कनक, कंचन का उत्तर सुने बिना ही चली गयी।

तारा चाय बनाने के लिये झुकी। कंचन ने आगे बढ़ कर कहा—"आप दोनों बात कीजिये, चाय मैं बनाती हूं।"

जीने से सुनाई दिया—"आ सकता हूं ?"

"हां-हां, आओ।" तारा ने बैठे-बैठे पुकार लिया।

"क्यों अभी तैयार''' " नरोत्तम ने झांक कर पूछा परन्तु दो युवतियों को देख कर उस की बात बीच में ही रह गयी।

तारा ने नरोत्तम को कनक और कंचन का परिचय दिया और नरोत्तम की ओर संकेत किया—"नोतन मेरा भाई है।" फिर नरोत्तम से पूछा, "तुम कोठी से आ रहे हो ?"

"नहीं, कपूर के यहां गया था। मम्मी ने कहा था, तुम्हें आना है इसलिये इधर आ गया। सोचा, तुम्हारी गाड़ी ड्राइव करने का अवसर मिलेगा।"

"मम्मी को तो मैंने फोन कर दिया है।"

"अच्छा, मुझे मालूम नहीं था। मुझे आज्ञा दो!"

"बैठो न, चाय लो।"

नरोत्तम कनक की ओर देख कर बोला—"दीदी ने बताया था, आप बहुत अच्छी लेखिका हैं। दर्शन से प्रसन्नता हुई। दिल्ली तो प्रायः आती रहती होंगी?" उस ने कंचन की ओर भी दृष्टि की।

कनक ने फिर तारा से बात आरम्भ की—"दफ्तर के काम में काफी रुचि रहती है?"

"बहुत" नरोत्तम बोल उठा, "क्षमा कीजिये बीच में बोल पड़ा" उस ने इधर-उधर आंख दौड़ाई, "वह देखिये, फाइलें घर में भी ले आती हैं।"

"आदत हो गयी है" तारा ने उत्तर दिया, "बंधा हुआ रुटीन है। जब करना है तो ऊबने और टालने से क्या होगा?"

नरोत्तम ने चाय का प्याला समाप्त कर, कुर्सी पर करवट ले कर कलाई पर बंधी घड़ी में समय देखा। तारा ने पूछ लिया—"कहीं जाना है?"

"जाना तो नहीं पर यहां बैठूंगा तो बार-बार बीच में बोलूंगा।"

"जरूर बोलिये।" कनक नरोत्तम की तारा से आत्मीयता समझ गयी थी।

"तुम्हें कोई काम न हो तो बैठो, जरा ड्राइव कर देना। इस समय रश में मुझे घबराहट होती है। मेरा ही शौक पूरा होगा। तुझे गाड़ी चलाने में बहुत अच्छा लगता है।" तारा ने कहा।

कनक ने नरोत्तम को व्यर्थ कष्ट देने पर आपत्ति की।

"आप मेरी भी तो भाभी हैं।" नरोत्तम ने कह दिया।

"जरूर!" कनक ने स्वीकार किया।

तारा कनक से उषा और राजेन्द्र के विषय में बात करने लगी।

नरोत्तम ने जया से परिचय प्राप्त किया। फिर कंचन की ओर झुककर बोला—"बड़ी बहनें आपस में बात कर रही हैं। हम लोग भी कुछ बात करें?"

"अवश्य!"

"आप को भी लिखने का शौक है?"

"शौक क्या, मुझ से कभी बन ही नहीं पड़ा। मैं कैमिस्ट्री की विद्यार्थी थी।"

"कैमिस्ट्री का शौक है?"

"शौक तो थोड़ा-बहुत म्यूजिक का था। परीक्षा के लिये कैमिस्ट्री पढ़ी है।"

"बहुत कम लड़कियां कैमिस्ट्री पढ़ती है। आप ने एम० एस सी० कर लिया है, अब क्या ख्याल है ?"

"लड़कियों को कैमिस्ट्री पढ़ा रही हूं।"

"शिक्षक का काम अच्छा लगता है। मेडिकल के लिये यत्न नही किया ?"

"किया था। कम्पटीशन में रह गयी। दिल्ली से केवल नौ लड़कियां ली गयी थीं, मै दसवीं थी।"

"ओह, हार्डलक। फिर ट्राई नही किया।"

"अवसर नही था। एक साल व्यर्थ जाता। पांच-छः साल का कोर्स था। अपने पांव खड़ी हो जाना चाहती थी।"

"इतनी जल्दी क्या थी ?" नरोत्तम बहुत सावधानी से बात कर रहा था।

"लाहौर से आने के बाद हामारी आर्थिक स्थिति ऐसी ही है।"

कंचन का उत्तर नरोत्तम के मन मे गढ़ गया।

तायी ने जीने से पूदेणदेई को पुकारा। वह तारा की भाभी को देखने के लिये आयी थी। पूरणदेई और तायी बैठक मे आ गयी।

नरोत्तम कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। कचन के समीप झुककर उस ने धीमे से कह दिया—"दीदी से कह दीजियेगा, मैं घटे-पौन घटे तक आ जाऊंगा।"

तायी ने कनक से मिलकर बहुत प्रमन्नता प्रकट की; कुछ व्यवहारिक बातचीत के पश्चात् तारा की सरलता, सहृदयता और उदारता की भरपूर प्रशसा की। फिर घुमाफिरा कर राय दी—अब तुम आई हो तो इस का व्याह तय कर जाओ। इस से अधिक उम्र हो जाना ठीक नही। ऐसी लड़की को तो कौन सिर आखों पर नही लेगा! लक्ष्मी है। जिस घर मे जायगी, कल्याण करेगी।"

तारा को इस प्रसंग से कनक के सामने विशेप असुविधा अनुभव हो रही थी। उस ने कंचन को बुला लिया—"आओ तुम्हें दूसरा कमरा और रसोई दिखा दूं। मुंह-हाथ तो नही धोना चाहती हो ?"

तायी जाने लगी तो तारा को अपने आप बुलाकर बोली—"कल तुम और तुम्हारी भाभी हमारे यहां भोजन करना।"

तायी चली गयी तो पूरणदेई ने कनक को बताया—तायी इसे बहुत चाहती है। अपने भतीजे के लिए दस-बीस बार कह चुकी है और उस ने तायी के भतीजे, जगलात के अफसर की बहुत सी तारीफें, सुना दी।

तारा झुंझलाई—"हम लोगों को भी कोई बात करने दोगी ?"

पूरणदेई ने अपना अधिकार प्रकट किया—"हाय, मुझे भी तो कह लेने

दो। बहू आयी है तो मुझे सब बताना ही है। दूसरा कौन बतायेगा!"

कनक सोच रही थी, यहाँ सब लोग तारा को कुआरी ही समझ रहे हैं। वह भी ऐसे चुप थी मानो उन का अनुमान ठीक है।

मेहता की पत्नी, बहिन और पड़ोसिन गुरांदेई भी कनक से मिलने आ गयीं। सभी कनक के प्रति बहुत आदर और स्नेह प्रकट कर रही थीं। कनक को अच्छा लग रहा था। जानती थी, यह सब तारा के कारण ही था। तारा से विना पूछे उस की स्थिति और उसके विषय में लोगों की धारणा देख रही थी। संतोष था, पति के कहने से भी वह अपनी इस ननद को बुरा न मान सकी थी परन्तु जिस प्रयोजन के लिये वह आयी थी, उस सम्बन्ध में बात करने का अवसर ही नहीं मिल रहा था।"

मेहता की पत्नी, बहिन और जसोदा जा रही थीं तो नरोत्तम लौट आया। कनक उस के सामने किशोरचंद की बात नहीं बता सकती थी। आठ बजने को हो रहे थे। घर लौट कर जेठ को तो उत्तर देना था।

कनक नरोत्तम की ओर देख कर संकोच से बोली--"आप इजाजत दें तो मैं और बहिन जरा उधर जाकर बात कर लें!"

तारा कनक को अपने कमरे में ले गई। दोनों पलंग पर बैठ गयीं। कनक ने शीलो के सम्बन्ध में उसके माता-पिता की चिंता और किशोरचंद के तारा और शीला को खोजने आने की सब बात बता दी।

तारा कुछ पल चुप रह कर बोली--"उन लोगों को मुझ से क्या मतलब है? मैंने किया क्या है? मोहनलाल ने शीला को घर से निकाल दिया था। जिस क़ारण निकाल दिया था वह अब पहले से दूना है।"

तारा ने कनक को शीला और रतन के पुराने सम्बन्ध की भी बात बता कर कहा—"माना, शीलो ने तब भूल की थी परन्तु वह भूल इस समय सुधर गयी है। उसे फिर अनाचार सहने के लिए विवश करना चाहते हैं, अनाचार को छिपाये रखने में ही नाक की रक्षा मानते हैं तो वे लोग जानें। इस सब में मेरा कोई उत्तरदायित्व नहीं है। मैंने तो केवल शीलो का समाचार रतन तक पहुंचा दिया था।"

कनक फर्श की ओर टकटकी लगाये थी। उस ने सहसा तारा की ओर देख कर पूछा—"मालूम है, सोमराज जालंधर में ही है।"

"मुझे कोई मतलब नहीं है।" तारा ने गर्दन झुका ली।

"कनक ने हाथ तारा के कंधे पर रख कर पूछ लिया—" सुना था, तुम उस से विवाह नहीं करना चाहती थी।"

तारा ने गर्दन झुकाकर स्वीकार कर लिया।

"पर तुम ने यह जबरदस्ती का ब्याह स्वीकार कैसे कर लिया ?"

तारा कुछ क्षण चुप रह बोली—"जो होना था हो गया, अब क्या बताऊं ?"

"तुम्हारे साथ जबरदस्ती की गयी थी ? भाई ने कुछ सहारा नहीं दिया ?" कनक ने विस्मय से पूछा।

"पहले तो भाई के विश्वास में ही मारी गई। मेरा भी दोष था, साहस नहीं किया, मान गई।"

"भाई के विश्वास में कैसे मारी गयी ?"

"भाई इस विवाह के और उस आदमी के बहुत विरुद्ध थे। फिर उन की नौकरी छूट गई। दूसरी जगह नौकरी मिली नहीं, काम करते थे तो पैसा नहीं मिलता था। इन्हीं सब बातों से दब गये और क्या कह सकती हूं ?"

"समझ नहीं आता, तुम अनिच्छा होने पर भी कैसे मान गयी ?" कनक ने फिर विस्मय प्रकट किया।

"साहस की कमी और क्या ? परिस्थितियों के विरुद्ध अकेली खड़े हो सकने का साहस नहीं था। सोचा—लोग मुझे बुरी न समझें, सभी के विवाह ऐसे ही होते हैं, मैं ही कौन निराली हूं। माता-पिता को परेशानी न हो।"

कनक कुछ क्षण के लिये फिर विचार में डूब गयी। फिर पूछ लिया—"ससुराल में तो एक दिन-रात भी नहीं रही।"

"प्लीज लीव इट (बस रहने दो), कुछ और बात करें !"

कनक का मन सहानुभूति से छलक रहा था। मौन रह गयी।

"तुम्हें छोड़ कर जाने को मन नहीं चाहता।"

"जाने की ज़रूरत क्या है ? तुम्हारा घर है।"

"है तो पर मां से कह कर नहीं आयी। पिता जी और मां चिन्ता करेंगे। कभी भाई से मिलने जालंधर नहीं आओगी ?"

"वह क्यों नहीं आ गये ?"

कनक चुप रह गयी।

"अच्छा अब चलूंगी। जब भी दिल्ली आऊंगी, ज़रूर मिलूंगी।"

"चलो छोड़ आऊं।"

"नहीं आज नहीं। किशोरचंद घर पर बैठे हैं। जानती हो, उद्धत आदमी हैं। उन्हों ने कुछ बक दिया तो मुझे बुरा लगेगा।"

"कल शनिवार दोपहर में तुम और कंचन आओ। साथ-साथ खायेंगे।" दफ्तर से पौन बजे आजाऊंगी।

तारा ने नरोत्तम से कहा—"कल एक बजे से ज़रा पहले फुर्सत हो सके तो इन्हें और कंचन को ले आना। आलू के परौंठे खिलाऊंगी।"

"ज़रूर।"

कनक ने आपत्ति की—"इतनी सी बात के लिये इन्हें परेशान करने की क्या ज़रूरत है? गली के सिरे पर टैक्सी मिल जाती है।"

"इन की परेशानी की चिन्ता न करो।" तारा ने अविकार से नरोत्तम की ओर देख लिया।

"आप मेरे परौंठे क्यों छिनवायेंगी। आप की वजह से छः महीने बाद मिल रहे हैं।" नरोत्तम ने दुहाई दी।

तारा ने जया को गोद में लेकर चूम लिया—"कल तेरी खबर लूंगी।"

नरोत्तम तारा की गाड़ी में कनक और कंचन को पहुंचाने चला गया।

•

कनक बहुत विलम्ब से लौटी थी। किशोरचंद प्रतीक्षा में थक कर बहुत खिन्न हो गया था। कनक को देखते ही उस ने पूछ लिया—"क्या पता लगा?"

कनक ससुराल की बातों से माता-पिता को परेशान नहीं करना चाहती थी। कह दिया—सुबह ही बताऊंगी और मां के पास जा बैठी। सुबह तक उस ने सोच-साच कर किशोरचंद को संक्षिप्त उत्तर दे दिया।

मोहनलाल ने ही शीलो को घर से निकाल दिया था। दूसरा ब्याह करना चाहता है तो बेशक कर ले। शीलो तो अब नहीं लौटेगी, वह अब दो बच्चों की मां है। तारा का इस मामले से कुछ सम्पर्क नहीं है।

किशोरचंद ने क्रोध में तारा और शीलो से स्वयं मिलने का आग्रह किया।

कनक ने इस काम में सहायता देने से साफ इनकार कर दिया।

किशोरचंद कनक के उत्तर और व्यवहार से इतना खिन्न हो गया कि उसी समय अपना बिस्तर उठा कर स्टेशन की ओर चला गया।

किशोरचंद दिल्ली से लौटा तो जालंधर स्टेशन से ही होशियारपुर चला गया। शीलो के विषय में सुन कर उस की आंखों में खून उतर आया था। परन्तु भला-बुरा सोचने के लिये पूरी रात और दिन मिल गया था। उस के क्रोध का उबाल बैठ गया। सोचा, अपने कलंक का ढिंढोरा पीटने से क्या लाभ? उस सम्बन्ध में बोलने से अपनी ही फजीहत होगी। शीलो को उस ने मर गया मान लिया। मोहनलाल जो चाहे करे। उस से रिश्ता खतम था।

•

कनक ने सोमवार सुबह जालंधर पहुंच कर पुरी को सब बातें ब्योरे से

बना दीं। सभी लोगों ने मुनी तारा की प्रशंसा बताते समय उस का स्वर गद्गद हो रहा था—"पूछो, तुम उस से क्यों नाराज़ हो ?"

पुरी ने बाबू गोविन्दराम के पत्र की बात याद करके कहा—"हूं, हम लोगों के सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जाने का यही मतलब था।" उस के स्वर में खिन्नता थी, "पड़ोस और चिरमित्रता का रिश्ता तो खूब निबाहा। लोग कहते हैं, चोर भी लिहाज़ में पड़ोस के सात घर छोड़ देता है। रतन और गोविन्दराम को हम लोगों की इज्जत का इतना भी ख़याल न हुआ !"

"क्या मतलब, मैं नहीं समझी" कनक ने आपत्ति के स्वर में पूछा।

"क्या नहीं समझी ?" पुरी को लगा कनक व्यर्थ तर्क पर उतारू है।

"इस का मतलब है, तुम्हें मेरे पिता जी का कोई आदर-लिहाज़ नहीं था ?"

पुरी कनक के प्रश्न से हैरान रह गया। कुछ सोच कर बोला—"तुम कैसी बातें करने लगी हो ? हर बात का अजीब मतलब निकाल लेती हो। मैं तुम्हारे साथ फ्लर्टिंग नहीं कर रहा था। विवाह किया है !"

"शीलो रतन की पत्नी है। उस के घर में आदर-अधिकार से रहती है। रतन के माता-पिता उस का बिल्कुल बहू की तरह आदर करते हैं। मुझे तो कोई विश्वासघात नहीं जान पड़ा।"

"वह मोहनलाल की पत्नी नहीं थी ? किशोरचंद और उस के माता-पिता से पूछो, उन पर क्या बीत रही है ? अगर जालंधर में बात फैले तो हमारा बहुत आदर होगा ?" पुरी का स्वर तीखा हो गया।

"पर अब वास्तविक स्थिति मालूम है। तारा ने क्या बुरा किया ? शीलो ने भूल की थी, भाग्य से भूल सुधर गई है। उसे जन्म भर अनाचार सहने के लिये विवश क्यों किया जाये ? दंड चाहे जितना दे लें, शीलो का मन मोहनलाल को पति नहीं मान सकता।"

पुरी चिढ़ गया—"मन बदल जाये तो अनाचार से बचने के नाम पर दूसरे से सम्बन्ध जोड़ लो !"

"तुम मुझे क्या ताने दे रहे हो ?" कनक ने पुरी की ओर घूर कर देखा।

"तुम समर्थन किस बात का कर रही हो ?"

"तो कहूं कि शीलो के हाथ-पांव बांध कर मोहनलाल के यहां बैठा दो ?"

निरुत्तर रह जाना पुरी को सह्य नहीं था। चिढ़कर बोला—"मुझे उस बात से क्या मतलब ? मैं तो यह कह रहा हूं कि तारा को इस झगड़े में पड़ने की क्या जरूरत थी ? तुम समर्थन और प्रशंसा किस बात की कर रही हो ?"

कनक ने एक बहुत गहरी सांस ली—"बहन तो तुम्हारी है पर मैं कहूंगी

उस का दिल तुम से बहुत बड़ा है।"

पुरी क्रोध से फुंकार उठा। अपने को वश में रखने के लिये उठ कर कमरे से चल दिया पर रह न सका। दरवाजे से घूम कर कह दिया—"देख रहा हूं, तुम्हारा दिल भी बहुत बड़ा हो रहा है। बड़े दिल वालों से मिल आयी हो। इतने बड़े दिल से निवाह सकने की विशालता मुझ में नहीं है। अपने लिये भी बड़ी जगह ढूंढ़ लो!"

कनक प्रेस न जा सकी। पुरी ग्यारह बजे उसे बुलाये बिना शहर चला गया। कनक को मालूम नहीं था कि उस ने भोजन किया या नहीं। स्वयं उस ने कुछ नहीं खाया। बार-बार जल के गिलास पीती रही। चेला और हीरां माई से आंखें चुराये रही। किसी के सामने आंसू प्रकट करने में उसे ग्लानि होती थी। बार-बार मन में आता, यह क्या हो गया है? मैंने कौन गलत बात कही? अपना सिर फोड़ लूं, क्या करूं?"

दूसरे दिन सुबह भी पुरी और कनक में बातचीत बन्द रही। कनक चाय लेकर पुरी के कमरे में नहीं गयी। दोनों ने अलग-अलग पी ली। हीरां माई और चेला सहमे हुये थे। जया भी सभी को गुमसुम देख, उदास हो कर हीरां माई से चिपटी हुई थी। बार-बार होंठ निकाल कर ठुनकने लगती थी। हीरां माई लड़की की बलायें ले-ले कर उसे बहलाने का यत्न कर रही थी। जहां तक बन पड़ता, बच्ची को पिता और मां से दूर रखे थी। कनक को बहुत अपमान लग रहा था। स्थिति संभालने के लिये वह रसोई में गयी। चेला से पूछा—क्या कर रहा है, ऐसा क्यों नहीं करता? हीरां ने जया को गोद में लेकर उस ने बात की। उसे स्वयं नहलाया उस के कपड़े बदले। केशों में फीते बांधे। उस से बात करती रही। नौ बजे पुरी को सुना कर चेले को पुकारा, "हम लोगों के लिये खाना रख दो, मैं नहा कर आ रही हूं।"

कनक नहा कर खाने के लिये आयी तो चेले से पूछा—"बाबू जी को

के उत्तर से गिल का समाधान नहीं हुआ था।

पुरी दिन भर दफ्तर में नहीं आया। कनक, गिल और रस्तू से साधारण ढंग से बोलती-चालती संध्या तक काम करती रही। साढ़े पांच बजे रस्तू उठ कर चला गया था। कनक ने उठने का कोई संकेत नहीं किया।

"अभी बैठोगी ?" गिल ने उस की ओर देखा।

"कल कुछ नहीं किया, घंटे भर और बैठ लूं।"

"उस की परवाह मत करो। घर पर काम हो तो जा सकती हो। बैठो तो चाय मंगवा लूं पर बाजार की चाय तुम्हें अच्छी नहीं लगेगी।" कड़ाई में उबले दूध की चाय कनक को सुहाती नहीं थी।

"मंगवा लो, पी लेंगे।"

"अब आज रहने दो, सब हो जायेगा। चलो तुम्हें अड्डे तक छोड़ आऊं।" गिल कुर्सी धकेल कर खड़ा हो गया।

"घंटे भर कुछ काम कर लेती ?"

"उठो न !"

गली में कनक के साथ चलते-चलते गिल ने पूछ लिया—"घर में क्या गड़-बड़ चल रही है ?"

"क्या मतलब ? किस ने कहा ?"

"मैं जानता हूं।" गिल ने बात टलने नहीं दी, "तुम अपने पति को अभी तक ठीक नहीं पहचान पायी।" गिल गंभीरता से अंग्रेजी में बोला, "पुरी अब बंटवारे से पहले का लंपन प्रोलिटेरियट (बेठौर, साधनहीन) नहीं रहा है। अब वह पेटी बूर्जुआ (कुछ पूंजी वाले) की भांति सोचता है। अब उसे सब ओर अवसर की कमी और व्यवस्था में विषमता नहीं दिखायी देती। उसे अब परिवर्तन और न्याय की नई धारणाओं की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। उस की जड़ें जम रही हैं। अब वह उलट-पुलट के विचारों से घबराता है। तुम मतभेदों को बढ़ा कर उसे चिढ़ा देती हो। अपना पारिवारिक जीवन क्यों खराब कर रही हो ?"

गिल की बात बहुत स्पष्ट थी। कनक समझ गयी, पुरी ने गिल से बात की है। उस पर दुराग्रह का आरोप लगाया है। क्या यह उचित है ?

गिल, पुरी और कनक दोनों का इतना समीपी हो गया था कि घर के मत-भेद और कलह का आभास उस से सर्वथा छिपाये रखना कठिन था। फिर भी कनक ने अपने और पुरी के बीच की बातों की शिकायत उस से कभी नहीं की थी। पुरी ने अपनी यातना और गिल की सहानुभूति पाने के लिये

जो दृष्टिकोण उस के सामने रखा था, वह कनक को अन्याय लगा। अपनी खिन्नता दबा नहीं सकी, बोल पडी—"बताओ, वास्तविकता को छिपाकर सदा छलना का ही सहारा लेकर जीवन कैसे चल सकता है? मैं सदा झूठ को निगलती रहूं? क्या इसी के लिये मैंने सब का विरोध सहा था?" कनक की आंखें छलक आयीं। उस ने निश्चय कर लिया—गिल सुन ही चुका था तो ठीक बात ही क्यों न जाने। जी० टी० रोड से वह बस में नहीं बैठी। गिल से बात करती पैदल माडल टाउन की ओर चल दी। कनक ने गिल को निस्संकोच पूरी बात बता दी।

गिल ने समवेदना से कहा—"तुमने प्रेम और विवाह किया है तो उसे निबाहना चाहिये।"

बताइये, मैं क्या निबाह नहीं रही हूं? यह मेरा दुराग्रह है? इस में मेरी क्या भूल या क्या स्वार्थ है?" कनक ने गिल की आंखों में देखा।

"कह तो चुका हूं, पुरी को अब न्याय की नई धारणाओं की आवश्यकता नहीं है। हाँ, पांच वर्ष पूर्व वह तुम से सहमत होता।"

"पांच वर्ष पूर्व?" कनक ने सन्देह प्रकट किया और बोली, "पांच वर्ष पूर्व इन्हों ने तारा के साथ क्या किया था?" उस ने तारा के विवाह की बात भी बता दी। कनक क्षोभ में उबल पड़ी। कह दिया, "जीजा जी को तभी पता लग गया था। उन्हों ने मुझे बताया भी था परन्तु तब मैं इन के विरुद्ध कोई बात सुन ही नहीं सकती थी।"

"आखिर तुम ने उस में देखा क्या था? उस की कहानियाँ पढ़ कर ही···" गिल ने जीभ काट कर अपने आप को रोक लिया।

कनक की आंखों में इतने वेग से आंसू उमड़ आये कि रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। सड़क पर थी, फिर भी आंचल आंखों पर पहुंच गया। तुरन्त खयाल आते ही आंसुओं को पीकर, आंखें पोंछ आंचल हटा लिया। गनीमत थी, कोई सामने नहीं आ रहा था। बीस-पच्चीस कदम तक वह कुछ बोल ही नहीं सकी। फिर पूछा—"आप से इन्होंने स्वयं बात की है, आप क्यों नहीं समझाते?"

"तुम्हारे समर्थन में उस का विरोध करूंगा तो मेरा यहाँ रहना संभव नहीं रहेगा।"

"क्या मतलब?" कनक ने आशंका प्रकट की।

"पुरी यह नहीं सह सकेगा कि मैं उस का विरोध और तुम्हारा समर्थन करूं। मैं उस की बात सुन कर चुप रहूं तो उसे सहानुभूति जान पड़ती है यदि तुम्हारा समर्थन करूंगा तो उसे अनुचित हस्तक्षेप जान पड़ेगा। सन्देह

करने लगेगा मैं ही तुम्हें बहकाता हूं। तुम्हारी बातों को मेरी प्रतिध्वनि समझ लेगा। तुम पर उस का क्रोध बढ़ जायेगा। तब मैं यहां कैसे रह सकूंगा।"

कनक और गिल बंगले पर पहुंच गये थे। जया देख लेती तो मां से लिपट जाती, बात नहीं करने देती इसलिये कनक गिल के साथ बराम्दे में ही रुक गयी थी कि बात समाप्त कर ले।

पश्चिम क्षितिज पर अटके सूर्य की किरणों से बराम्दा गुलाबी हो रहा था। गिल की बात से कनक की आंखें उस की ओर उठ गयीं। फैली हुयी आंखों में पड़ती किरणों से गहरी भूरी पुतलियों के भीतर तक दिखायी दे रहा था जैसे उस का हृदय उन पुतलियों में ही आ गया था। कनक का सीना बहुत गहरी सांस से उठ कर रह गया। वह भीतर चली गयी।

दो दिन की खिन्नता के अंत में गिल की बातों ने कनक को बहुत विह्वल कर दिया। वह किस से सहारा पा सकती थी? गिल के सामने से भागकर भीतर चली गयी। "बबली!" उस ने जया को पुकार लिया।

जया दौड़ी हुई आकर कनक के घुटनों से लिपट गयी। माँ का बटुआ देखना चाहा। कनक बटुये में जया के लिये टाफी और लाल-नीली पेंसिलें रखे रहती थी। जया पटर-पटर बोलती जा रही थी—मम्मी, दूध में मक्खी पड़ गयी। अम्मा ने (हीरां माई) ऐसे पकड़ कर फेंक दी। मम्मी, चेला ने शेरे (कुत्ते) को घोड़ा बनाया था। मैं घोड़े पर चढ़ी थी। मम्मां, आ-ई लिख कर दिखाऊं......"

जया ने नीली पेंसिल लेकर कमरे की सफेद दीवार पर अपने सिर के आकार में अ अक्षर जैसी लकीरें खींच दीं।

"हाय बबली! मेरे लाल, दीवार पर नहीं लिखते" परन्तु दीवार पर बन गयी लकीरें कनक को प्यारी लग रही थीं। हीरांमाई जया का हाथ-मुंह धो कर कपड़े बदल चुकी थी। कनक मन की उलझन से मुंह चुराने के लिये फिर उस के केशों में कंघी कर नया फीता बांधने लगी।

गिल बैठक में बैठ गया था। उस ओर झांक कर कनक ने कहा—"चाय अभी आती है। जल तो नहीं चाहिये?"

कनक बाहर निकली तो भी पुरी लौट कर नहीं आया था। लौटने के समय का अनुमान भी नहीं था। गिल ने कुर्सियां बाहर घास पर रखवा ली थीं। जया उस की कुर्सी की बाँह पर बैठी हुई 'लेमनड्राप' के पेड़ के विषय में गंभीर जिज्ञासा कर रही थी। पेड़ कितना बड़ा होता है, पत्ते कैसे होते हैं, बच्चे पेड़ पर चढ़ सकते हैं या नहीं?

कनक हाथ-मुंह धोकर और साड़ी बदल कर. संभल गयी थी। आते ही दो प्यालों में चाय बनाते हुये गिल से नज़र चुराये बोल उठी--"ये आप को विश्वस्त मित्र समझते हैं तो मेरा मित्र नहीं समझ सकते ?"

"कोई पति स्वीकार नहीं करेगा। यह सम्बन्ध ही एकाधिकार का है।"

"एकाधिकार का क्या मतलब ! सीमाओं की बात मैं मानती हूं, निवाहती हूं, आप भी जानते हैं।" अंधेरे का सहारा पाकर कनक कहती गयी, "पति अपने स्थान पर है पर किसी से मानसिक संतोष पाने का भी अधिकार न हो, यह मैं नहीं मानती। चोरी-छिपाव मुझे अच्छा नही लगता।"

जीप की आवाज़ समीप आती हुई जान पड़ी। कनक ने उसी सांस में कह दिया--"आ रहे हैं।" जीप बंगले के फाटक पर रुक रही थी।

पुरी जीप के ड्राइवर से कुछ बात कर रहा था--गिल ने समय रहते अनुरोध के धीमे स्वर में कनक से कह दिया—"खैर, रिस्क ले कर साहस दिखाने की ज़रूरत नहीं है।"

गिल उपालम्भ में बोल उठा—"घंटे भर से बैठे हैं !"

पुरी विलम्ब का कारण बता रहा था। कनक ने अपने लिये बनाये प्याले में चम्मच से चीनी चलाते हुये पुरी के सामने कर दिया। तीसरा प्याला पहले से ही मौजूद था।

"थैंक्स जी" पुरी ने कह दिया—वह बहुत थका हुआ था। आते ही चाय मिल जाने से उसे बहुत सन्तोष हुआ।

गिल ने दोनों को सम्बोधन कर परन्तु कनक की ओर देख कर स्नेह से डांट दिया—"मुंह बनाना छोड़ो ! दोनों सीधी तरह बात करो !"

पुरी को अपने समर्थन का संकेत मिला।

"कब बात नहीं की ? जिसे डांटना होता है, मुझ ही पर ज़ोर चलाता है।" कनक ने मान से अन्याय का विरोध किया।

पुरी ने अनुकूल अवसर पाकर गिल के सामने ही कनक को सुना देना चाहा—विधान सभा का सदस्य बन जाने और इतने उत्तरदायित्व संभाल लेने से उस का खर्च और चिंतायें कितनी बढ़ गयी थीं। रिक्शा-टाँगे पर चल कर उस का काम पूरा हो ही नहीं सकता था। बताया, सोमराज उसे एक सैकंडहैंड गाड़ी ले लेने की सलाह देता रहता था पर वह खर्च बढ़ाने से डर रहा था लेकिन अब समझ लिया है, गाड़ी के बिना काम हो नहीं सकता।"

"गाड़ी ले लोगे तो उस से काम हलका हो जायगा ?" गिल ने पूछ लिया।

"भाई समय तो बचेगा। मुझे सूरजप्रकाश से और दोआबा वालों से

रोज़-रोज मांगना अच्छा नही लगता। इसे भी प्रेस-दफ्तर आने-जाने में सुविधा हो जायगी।" पुरी ने उत्तर दिया।

"मेरा खयाल है" गिल ने गहरा सांस लेकर कहा, "गाड़ी पर बैठने की, धूल से बचने की सुविधा तो हो जायगी परन्तु काम का बोझ कम नही होगा बल्कि गाड़ी का खर्चा पूरा कर सकने के लिये, कुछ अधिक ही चिंता और काम करना पड़ेगा।"

गिल और पुरी कुछ देर दार्शनिक चर्चा करते रहे—वास्तविक आवश्यकता क्या होती है ? आवश्यकताओं को सीमित रख कर संतोष मिल सकता है या नहीं; वास्तविक संतोष क्या हो सकता है ?

कनक सोच रही थी, आज ये कितने दिन बाद व्यवसाय या राजनैतिक पैतरे के अतिरिक्त दूसरी बात कर रहे है।

पुरी और कनक में शीलो और तारा का प्रसंग फिर न उठा परन्तु [illegible] और कनक मे इस सम्बन्ध मे, विशेषकर तारा के बारे मे कई बार बहुत [illegible]रे से बातें और उस पर तर्क भी चलता रहा। कनक अपनी आंखों तारा को देख आयी थी, उस के विषय मे बीसियों लोगों की राय जान आयी थी। उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि तारा बहुत निस्वार्थ थी, उस मे शील था, उस के साथ घोर अन्याय हुआ था। उस ने बहुत गरिमा से सब कुछ सह लिया था। ऐसे प्रसग में पुरी की आलोचना हो जाना भी अनिवार्य था।

पुरी विधान सभा के लिये पूर्वोत्तर मुकेरियां क्षेत्र से चुना गया था। उसे वोट देने वाले पुरी को पहचानते नही थे। उस का नाम भी बहुत कम लोगों ने सुना था। क्षेत्र के पुराने निवासियों ने और मुस्लिम किसानों की धरती पर पश्चिम से आकर बसे सिक्ख-हिन्दू किसानों ने काग्रेस को ही वोट दिये थे। उन्हों ने वोट पुरी के नाम पर नही, काग्रेस के चुनाव चिन्ह 'बैलो की जोड़ी' का चित्र देख कर दिये थे। साधारण किसान की धारणा थी, काग्रेस और मुस्लिम लीग ने देश का राज बांट लिया था। पूर्वी पजाब और शेष भारत कांग्रेस को मिल गया था। अब कांग्रेस ही राजा थी। भविष्य मे धरती का लगान अंग्रेज सरकार को नहीं, कांग्रेस सरकार को ही देना होगा। पश्चिम से आये किसानों ने पूर्व में आकर जिन खेतों पर कब्जा कर लिया था, उन्हें वे कांग्रेस सरकार की मंजूरी से ही रख सकते थे। जिन्हें अभी जमीन नही मिल सकी थी, वे कांग्रेस सरकार से ही जमीन की आशा कर सकते थे।

वैधानिक रूप से कांग्रेस पार्टी और कांग्रेस सरकार का अस्तित्व-पृथक-पृथक

था परन्तु कांग्रेस पार्टी और भारत-सरकार के झन्डों का रंग एक ही था। झन्डों पर 'चक्र' और 'चर्खे' के भेद की सूक्ष्मता झंडा पूरा खुला होने पर ही प्रकट होती है। सरकारी एलान था कि सरकार चुनाव में निष्पक्ष थी। चुनाव से पूर्व सरकार ने देश के कल्याण के लिये, मुख्यत: कृषि और किसानों की अवस्था सुधारने और बेकारी मिटा देने के लिये अरबों रुपये के खर्च से नहरें, बांध और सस्ती बिजली बांटने की योजनाओं का प्रचार आरम्भ कर दिया था। इस से पूर्व जनता अंग्रेज़ों के विरोध के लिये कांग्रेस को वोट देना सीख चुकी थी। अब किसान शक्तिमती कांग्रेस को छोड़ कर दूसरे छोटे-मोटे राजनैतिक दल को वोट क्यों देते ? कांग्रेस के लिये वोट पुरी के लिये वोट था।

सूद जी अमृतसर के एक स्कूल के वार्षिक उत्सव में सभापतित्व करने के लिये शिमला से अमृतसर जा रहे थे। स्कूल को पर्याप्त आर्थिक सहायता नहीं मिल रही थी। स्कूल कमेटी ने सूद जी के आशीर्वाद के लिये, उन की सुविधा से ही अपने वार्षिकोत्सव की तारीखें निश्चित की थीं। सूद जी के अमृतसर जाने का वास्तविक प्रयोजन सिक्ख नेताओं से कुछ विचार-विमर्श करना था। पुरी प्रात: ही केवल चाय पीकर स्टेशन चला गया था। कह गया था, शायद अमृतसर भी जाना पड़ जाये।

जया बरामदे में किलकारियाँ मार-मार कर अपनी ट्राइसिकिल की रेल चला रही थी। कनक भीतर के कमरे में बिजली की प्रेस से जया के वायलों के झालरदार फ्राक पर इस्त्री कर रही थी। हीरां माई ढ़ाई बरस में भी यह काम ने सीख सकी थी। वह बच्ची के शरीर पर घी-मक्खन की मालिश बहुत प्यार से करके, उस के नाक-कान में बहुत सा तेल जरूर थोप सकती थी। केशों की महीन वेणियां बना कर चुटिया भी कर देती थी परन्तु केशों में छल्ले डाल कर, उन्हें फुलाकर तितली के आकार मे फीते बांध सकना उस के बस की बात न थी।

शेरा बहुत जोर से भौंका और सहसा जया की चीख सुनायी दी।

"क्या हुआ मुन्नी ?" कनक चौंक कर घबरा गयी। आशंका हुई, गिर पड़ी होगी। प्रेस एक ओर रख कर भागी हुई बरामदे में गयी।

शेरा बंगले में घुस आये लोगों को फाटक पर रोके था। जया डर कर चीख रही थी। कनक ने लड़की को सीने से चिपटा कर शेरा को बुला लिया।

एक बहुत ऊंचे कद का सिक्ख जाट एक स्त्री और तीन बच्चों के साथ बरामदे में चला आया। उन लोगों के भीतर आने पर शेरा का आपत्ति करना और जया का भय से चीख उठना स्वाभाविक था। लंब-तड़ंग जाट के हाथ में

सिर से ऊंची लाठी थी, दूसरे हाथ में कंधे के पीछे पीठ पर, फटी चादर की गठरी मे दो-तीन वर्तन लिये था। सुबह खूब जाड़ा था पर उसके शरीर पर कुर्ता नही था। घुटनों तक बहुत मैला-मटियाला जांघिया था। सिर पर रस्सी की तरह लिपटी बहुत मैली पगड़ी में से केशों की लटे और पगड़ी की धज्जियां लटक रही थी। विकट दाढी-मूंछ गर्द से भरी और उलझी हुई थी। स्त्री का दुपट्टा, कुर्ता, सलवार सब मैले और फटे हुये थे। उस की गोद में जया की ही आयू की नाक बहती बच्ची, फटे हुये खेस के टुकड़े मे लिपटी हुयी थी। छ वरस का लड़का जांघिया और फटी हुयी सूती वनियान पहने था। सर्दी से उस के रोये खड़े हो रहे थे। बड़े लड़के के शरीर पर फटा हुआ कुर्ता भी था। उस लड़के के केशो पर दो हाथ कपडा लिपटा हुआ था।

मर्द की आँखे रूखी और लाल थी। उस ने कनक की ओर देखा—"पुरी वावू से मिलना है।"

कनक को घबराहट हुयी। घर में चेला के अतिरिक्त और कोई मर्द नहीं था। हरि घटे भर पहले कालेज चला गया था।

कनक ने स्वीकार किया—"यहां ही रहते है। आज अमृतसर गये है। सांझ तक लौटेंगे।"

"वैठ जाओ।" मर्द ने अपनी स्त्री और बच्चों को आदेश दिया, "सांझ को नही आयेगा तो कल आयेगा, कभी तो आयेगा। कल सुबह से कांग्रेस के दफ्तर में नहीं आया। उसे कहां-कहा ढूढ़ते फिरेंगे।"

स्त्री वहुत थकी हुयी जान पडती थी। वह बराम्दे की दीवार से पीठ लगा कर वैठ गयी। मर्द और बच्चे भी वैठ गये।

जया भय से सिर मां के सीने मे छुपाये आगन्तुकों को कनखियों से देख रही थी। कनक उसे पुचकार कर हीरां माई की गोद में दे आई।

पुरी के चुनाव क्षेत्र से कभी-कभी मिलने वाले आते रहते थे। प्रयोजन किसी शिकायत या प्रार्थना के सम्बन्ध मे सिफारिश का अनुरोध होता था। पुरी उन से चाय-लस्सी की इच्छा पूछ कर सौजन्य से वात करता था। कनक का अनुमान था, ऐसे ही किसी प्रसंग से यह परिवार भी आया होगा।

कनक ने वराम्दे में लौट कर स्त्री से प्रश्न किया—"क्यों, क्या काम है?"

स्त्री कुछ नही वोली।

मर्द ने उत्तर दिया—"तहसीलदार, डिप्टी कमिश्नर, कांग्रेस कमेटी सव को लिख चुके है। पुरी हमारे इलाके का मेम्बर है। उस को भी दो चिट्ठियां लिखी, कोई जवाब नही आया। अव फैसला करके ही जायेंगे। जाड़े और भूख

से मरना है तो यहां ही मरेंगे। पुरी हमारा कुछ नहीं करेगा तो पांच जीवों को मसान में ले जाकर फूंकेगा, नहीं तो रब्ब, वाह-गुरु उस से समझेगा।"

"कैसी चिट्ठी" कनक ने पूछा।

"कैसी चिट्ठी?" मर्द बिगड़ उठा, "तुम लोग बंगलों में पलंगों पर लिहाफ ओढ़ कर मेम्बरी के ऐश करो। कुण के हलवे खाओ, लस्सी-दूध पियो। तुम्हें हमारी चिट्ठी पढ़ने की फुर्सत कहां? पुरी बाबू बड़े-बड़े चोंगे लगा कर, ऐसे ऐसे 'लारे-लप्पे' देकर वोट मांगता था—कांग्रेस सरकार सब को जमीन देगी, हल-बैल के लिए तकावी देगी, बिजली से कुंए चलेंगे। हमारे साथ यह जुल्म किया कि जो बारह घुमां जमीन अलाट हुई थी वह भी छीन कर अपने जमाइयों को सौ-सौ, दो-दो सौ घुमां दे दी है। या तो जमीन दो, नहीं तो वहां जाड़े-भूख से मरने से यहां तुम्हारे ही सिर पर मरेंगे। मर कर देव बन कर भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेंगे।"

कनक खेती की धरती की कच्ची-पक्की अलाटमेंट में उठने वाली समस्याओं को ब्योरे से नहीं समझती थी। इतना ही जानती थी कि विभाजन के तुरंत बाद रबी की फसलें बोई जाने का समय था। धरती अनजोती पड़ी रहने से अन्न कष्ट और बढ़ जाता। इस विचार से सरकार ने पश्चिम से आये लोगों को भाग गये मुसलमान किसानों के परती पड़े खेत जोत लेने दिये थे। अब किसानों की पश्चिम में छोड़ी जमीन-जायदाद के कागज देख कर स्थाई तौर पर जमीनें दी जा रही थीं। पश्चिम में जो लोग बेजमीन थे, पूर्व में आकर भी बेजमीन बन रहे थे।

कनक को दुखी परिवार पर दया आई। उन का क्रोध भी दयनीय लगा। जया पिछले साल बुनी गई पुरानी फ्राक पहने थी। कनक ने नई फ्राक पहना दी और पुरानी फ्राक सिख की गोद की लड़की के लिये ले आई। वह किसान के सामने बैठ गई और उस की समस्या सुनती रही।

बेलासिंह पश्चिम में सियालकोट जिले से आया था। सन् ४७ में उसने पश्चिम चले गये मुसलमान किसान की बारह घुमां जमीन और कुएं पर कब्जा कर लिया था।

वह 'नरोहा' में शिकमी किसान था। वह पश्चिम में अपनी जमीन की मिल्कियत का कोई प्रमाण-पत्र नहीं दे सका था। सन् ५० में उस पर बेदखली का हुक्म हो गया। उस की जमीन दसौंदासिंह को दे दी गई थी। दसौंदासिंह के पास डेढ़ मुरब्बा नहरी जमीन, पश्चिम में छोड़ कर आने के कागज थे।

बेलासिंह अकाली और कांग्रेसी आंदोलनों में भाग ले चुका था, राजनीति

समझता था। अब तीन वर्ष मालिक किसान रह कर, फिर खेत मजदूर बन जाने केलिये तैयार न था। उसने वेदखली के खिलाफ अर्जी दे दी थी। चुनाव के समय वह कांग्रेस का साथ दे रहा था। सन् ५२ तक उस के मुकद्दमे की बहुत सी तारीखें पड़ती रहीं। चुनाव के बाद उस के विरुद्ध फैसला हो गया। दसौंदासिंह ने कुर्क-अमीन और सिपाही ले जाकर उसकी जमीन पर कब्जा कर लिया था।

कनक को दफ्तर जाना जरूरी था। रक्स तीन दिन से सर्दी-जुकाम से परेशान था। दफ्तर में केवल गिल ही था। कनक खाना खाने के लिए बैठने लगी तो उसने वेलासिंह की स्त्री से कहा—"पुरी सांझ से पहले नहीं आ सकेंगे। तुम लोग चाहते हो तो वाजार जा कर रोटी-पानी से निबट आओ। सांझ को आ जाना। यह पुरी जी का घर है। घर तो आयेंगे ही। तुम भूखे क्यों बैठे रहोगे ?"

वेलासिंह ने क्रोध और खिन्नता से उत्तर दिया—"हमें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। हम तो खेती की जमीन लेकर ही अन्न-पानी मुंह में डालेगे। वाबू रात आये, कल आये, परसों आये, न आये। विना जमीन के हम जायेंगे कहाँ, जियेंगे कैसे ? हम जमीन लेगे या प्राण देंगे। हम बैठे है, आ लेने दो बाबू को।"

"जाने की जरूरत नहीं।" कनक ने समझाया, "आटा-दाल, ईंधन मैं दे देती हूं। तुम उधर दो ईंटें रखकर बना लो। वच्चे भूखें है। इनके लिये दो-तीन फुलके मैं भेज देती हूं।"

कनक ने एक थाली में आठ-दस फुलके और कुछ दाल-सब्जी लाकर स्त्री के सामने रख दी। आटा-दाल ले लेने का अनुरोध दोहराया।

वेलासिंह ने इनकार में सिर हिला दिया—"नहीं, वहुत मेहरवानी है। वच्चों को दे दिया, बहुत है। हम तो जमीन का फैसला कर के खायेंगे।"

कनक दफ्तर जाते समय रास्ते में जया को नर्सरी स्कूल में छोड़ जाती थी। चेला उसे डेढ़ वजे साइकिल में लगी टोकरी में बैठा कर ले आता था। कनक दस वजे जया को ले कर चली तो हीरां माई ने भय प्रकट किया—"ऐसे लोग वराम्दे में बैठे हैं, मुझे तो डर लगता है। हीरां ने अपनी आंखों के सामने अपना सब कुछ लुटते और अनेक लोगों का कत्ल होते देखा था। खुद भी सिर में फर्से की चोट खायी थी। सिक्ख सिपाही उसे कराहता देख कर अर्ध-मूर्छित अवस्था में उठा लाये थे। चार मास अस्पताल में पड़ी रही थी। अव उसे जरा-जरा सी वात से धड़कन होने लगती थी। कभी सपने में चीख कर

पुरी ने गिल को टोक कर अधिक महत्वपूर्ण बात कही--"पंजाब पूरे देश के मूल विधान की अवज्ञा कैसे कर सकता है ? विधान के अनुसार सरकार निजी सम्पत्ति और व्यवसायिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं कर सकती ।"

"वेलफेयर स्टेट में कांस्टीट्यूशन सब लोगों को निर्वाह के अवसर का आश्वासन नहीं देता ? उस मे जन-हित के लिये उत्पादन के राष्ट्रीयकरण की बात भी तो है। जो सम्पत्ति निजी चली आयी है, उस की बात एक हद तक ठीक है परन्तु उखड़े लोगों की सम्पत्ति को तो कानूनन राष्ट्रीय सम्पत्ति करार देकर ही उसे फिर से बाँटा जा रहा है। कोई आदमी पश्चिम में बड़ा जमींदार था, इसी कारण राष्ट्रीय भूमि पर उस का अधिक अधिकार क्यों मान लिया जाये ? या इस धरती को बाँटे बिना इस पर सामूहिक कृषि के लिये अवसर दिया जाता...." कनक ने गिल और पुरी को उत्तर दिया ।

"क्या बात करती हो" पुरी ने टोका, "आधी प्रजा के लिये व्यवसायिक स्वतन्त्रता का और आधी प्रजा के लिये सामूहिक उत्पादन का नियम कैसे चल सकता है ? जो लोग पश्चिम में बड़ी-बड़ी सम्पत्ति छोड़ कर आये है.. ।"

"उन की अमीरी फिर से कायम रखना सरकार का काम है ?" कनक ने भी पुरी की बात काट दी, "तो फिर राष्ट्रीयकरण को लक्ष बताने का मतलब ही क्या है ?"

"राष्ट्रीयकरण ! राष्ट्रीयकरण ! कम्युनिस्टों की तरह रटते जाने से क्या बन जायेगा ?" पुरी खीझ उठा, "पहली जरूरी बात उत्पादन बढ़ाना है या जमे हुये उत्पादन को भी बखेर देना है ? गरीबी और भूख का राष्ट्रीय-करण कर लेने से क्या होगा ?"

बेलासिंह के जोर-जोर से बोलने का स्वर सुनायी दिया । हरि ने आकर बताया—"अमरसिंह मिलने आया हे ।"

पुरी उठ कर बराम्दे में गया । बेलासिंह अपनी बात अमरसिंह को सुना रहा था। वह बंगले की चारदीवारी के साथ खड़े तमाशाइयों को सुना सकने के लिये बहुत ऊंचा बोल रहा था। अमरसिंह भीतर चला गया तो भी बेलासिंह पुकार-पुकार कर सड़क पर खड़े आदमियों को सुना-सुना कर अन्याय के विरुद्ध दुहाई देता रहा ।

पुरी ने दो घण्टे तक बेलासिंह के प्रति उपेक्षा दिखायी परन्तु धौंस से सीने पर उपद्रव खड़ा कर देना और लोगों के लिये तमाशा बनना कब तक सहा जा सकता था । पुरी ने कनक से कहा—"इस की औरत को समझा दो कि यहाँ से चले जाये। माँगे तो सब को खाना खिला दो। किसी तरह इन्हें यहाँ

से दफा करो। हम लोग कब तक कैदी बन कर भीतर बैठे रहेंगे ?"

कनक ने बेलासिंह की स्त्री को बहुत समझाया परन्तु कुछ फल न हुआ। बेलासिंह ने बच्चों के लिये खाना ले लिया परन्तु वह और उस की स्त्री अपना अनशन समाप्त करके बंगले से जाने के लिये तैयार नहीं हुये।

पुरी ने बेलासिंह को कड़े शब्दों में अन्तिम चेतावनी दी—"किसी के घर में घुस कर बैठ जाना सत्याग्रह नहीं है। दूसरे के मकान में बेजा घुस जाना जुर्म है। तुम अपना डेरा-डण्डा उठा कर यहाँ से चले जाओ तो मैं 'सपूतगढ़' या 'रामनगर' में तुम्हारे लिये कोशिश कर दूँगा। अगर दस मिनट में यहाँ से नहीं जाते तो पुलिस को बुला कर उन के हवाले कर दूँगा।"

"तू है कौन ? हम तेरे भरोसे नहीं, वाह-गुरु के भरोसे बैठे हैं। तुझे जो करना है, कर ले। अंग्रेजों की पुलिस के डंडे खाये हैं। अब तेरी कांग्रेसी-पुलिस के डंडे भी देख लें ! तू पुलिस-फौज सब कुछ बुला सकता है। हमें जमीन नहीं दे सकता ? तू अपनी मौज कर, जरा हमारी हालत भी देखता जा !"

पुरी ने बेलासिंह को दस मिनट के बजाय बीस मिनट का समय दिया और बात करता रहा—"बड़ी मुश्किल है। लोगों ने स्वराज का मतलब अव्यवस्था पैदा करने का अधिकार समझ लिया है। उस दिन शिमला में एक नये लेखक दफ्तर में कागजों का पुलिन्दा दबाये राष्ट्रपति की मोटर के सामने लेट गये। दुहाई देने लगे, मैंने देश की स्वतन्त्रता के लिये जेलें काटी हैं। मैं साहित्य-सेवा कर रहा हूँ। मेरे बाल-बच्चे भूखे मर रहे हैं…।"

"राष्ट्रपति तो भी आदमी हैं। मिनिस्टर से कह गये, इन के लिये कुछ कर दीजिये। अब लेखक जी कहते हैं—'मेरा नावल कोर्स बुक बना दो।' एक वाक्य शुद्ध नहीं लिख सकते लेकिन उन का नावल कोर्स में रखा जाना चाहिये। यह अच्छी बला है। इन लोगों के साथ सख्ती करो तो अनपापुलर बनो। वोट देने का अच्छा रोब बना लिया है लोगों ने। इन के सामने दबते जाओ। सरकार की प्रेस्टिज खत्म हो गई है…"

पुरी ने कोतवाली में फोन करके कोतवाल को स्थिति समझा दी। शीघ्र ही पुलिस की लारी आ गयी। बेलासिंह सत्याग्रही शहीद की मुद्रा में बरामदे में लेट गया। वन्देमातरम् ! सतसिरी अकाल ! के नारे लगाने लगा। बंगले की चारदिवारी के साथ बहुत से तमाशाई आ खड़े हुये।

पुलिस ने बेलासिंह को लाठी दिखा कर सत्याग्रह का पाठ अच्छी तरह पढ़ा देने की धमकी दी।

कनक भीतर से देख रही थी। उस ने दरवाजे के समीप होकर इंस्पेक्टर

से अंग्रेजी मे अनुरोध किया—"मेहरबानी करके यहां मारपीट न कीजियेगा। इन्हें उठा कर ले जाइये।"

दो सिपाहियो ने वेलासिह को कधों और पांओं से पकड़ कर उठा लिया। उस की स्त्री और बच्ची चीख-चीख कर रोने लगी। सिपाही वेलासिह को लारी की ओर ले चले तो वह ऊचे स्वर में चिल्ला रहा था—"लोगो देखो, जुल्म हो रहा है! मै इंसाफ के लिये अनशन कर रहा हूं। ये मुझे जेल मे ले जा रहे है।'

वेलासिह की स्त्री डरी—उस के पति को जाने कहाँ ले जाये? वह भय से रोती बच्ची को गोद में लिये, दोनो लडको के साथ स्वयं ही लारी पर जा बैठी। पुलिस की लारी चली तब भी वेलामिह नारे लगा-लगा कर दुहाई दे रहा था।

पुरी 'यातायात परामर्श समिति' की बैठक के लिये शिमला चला गया था। उस सप्ताह का 'नाजिर' उस ने शिमला मे ही देखा। सम्पादकीय पढ़ कर वह बहुत खिन्न हुआ। शैली और भाषा से लेख निश्चय कनक का लिखा था। लेख राष्ट्रीयकरण और इवेक्वी जमीन के बटवारे के सम्बन्ध मे था। पुरी ने सोचा, ऐमे विषय पर लिखना था तो सलाह ले लेनी चाहिये थी। कनक के ऐसी मनमानी करने पर पहले भी उलझन हो चुकी थी। उसे बहुत क्रोध आ गया। गिल पर भी क्रोध आया, उसे तो देख लेना चाहिये था।

सूद जी की कृपा के लिये पुरी से ईर्ष्या करने वाले और उस के विरुद्ध सूद जी के कान भरने वाले भी थे। पुरी सूद जी के यहाँ गया तो उन्हो ने बहुत कडे शब्दों मे पुरी से जवाब-तलब किया—"यह क्या तमाशा है··· क्या नाम न-नाजिर हमारी बहुत सहायता कर रहा है?"

सूद जी को लेख पढने का समय नही था। उन्हें लेख का अभिप्राय बता दिया गया था। पुरी ने आत्म-सम्मान के विचार से कूटनीतिक उत्तर देना चाहा—"भाई जी, लेख में मंत्री-मंडल के या शासन के किसी कार्य की आलोचना नही है। भूमि सम्बन्धी नीति के एक दृष्टिकोण की चर्चा है····।"

सूद जी अब बहुत व्यस्त रहते थे। शब्दों के दाँव-पेच और बहस के लिये उन के पास समय न था। वे अपनी सब बातों की प्रशंसा और समर्थन करने वालों से घिरे रहते थे। उन के आश्रित या आधीन उन की बात का जवाब दें, यह उन्हें कैसे सह्य हो सकता था!

सूद जी ने पुरी को फटकार दिया—"··· अब त-तुम हमे सिखाने चले

हो !...क्या साले ए-डीटर समझते हैं कि हमारी टांग घसीटी जाये ? कह दिया, यह तो कोई बात नहीं है ! स्साला, नहीं है तो दूसरों को क्यों खटकती है ?... किसी ऐसी हरकतें रहेंगी तो स्साला प्रेस और पेपर पर ताला लगवा देंगे। हमें यह सब नहीं चाहिये....."

पुरी का सिर जोर से घूम गया। याद आ गया—लाहौर में इस से कितनी-कितनी स्थिति में उस ने हाकिम की धमकी और अपमान सहना स्वीकार नहीं किया था। उस ने जीवन के एक-मात्र सहारे, नौकरी की भी परवाह नहीं की थी परन्तु अब मामला, तो स्वयं की नौकरी का ही प्रश्न नहीं था। अब पुरी को धरती में चारों ओर फैल गयी जड़ें जकड़े हुये थीं। सूद जी का क्रोध पुरी को अपना कैबिनेट ही रद कर देना, किसी भी आशंका नहीं होनी चाहिये थी। पुरी किसी का आतंक मानने के लिये तैयार नहीं था।

पुरी ने क्रोध को व्यवहार बुद्धि से काम लेने का निश्चय किया। वह सूद जी को 'भाई जी' कह कर सम्बोधन करता था। उन की बात से अपमान अनुभव करना असंगत था ? यह तो उन के बात करने वालों की शराफत थी।

पुरी और कनक में तारा-नीलों के प्रसंग पर हुआ झगड़ा समाप्त हो गया था। उन में शान्ति थी परन्तु निस्संकोच आत्मीयता और लाड़ के अधिकार की सहज और प्यार की जगह भी नहीं थी। पिछले झगड़ों की स्मृति से पुरी ने कनक के रोष को अपनी अवज्ञा समझा। सोचा—उसे किसी की परवाह ही नहीं है।

शिमला से लौटते समय पुरी को कनक के प्रति बहुत क्षोभ था। कनक के अहंकार और अपने प्रति उस की आन्तरिक विरक्ति से पुरी का मन खिन्न होता था तो उसे अपने प्रति उर्मिला के प्रेम की याद बहुत सांत्वना देती थी। उर्मिला चाहे अब उस से दूर थी परन्तु परिस्थितियों के वश, पुरी से इतना अन्याय सहकर भी वह उस पर अनुरक्त थी।

विधान सभा का मेम्बर हो जाने से पुरी को उर्मिला से मिल सकने की बहुत सुविधा हो गयी थी। उर्मिला ने एक बरस पहले ट्रेनिंग समाप्त कर ली थी। वह शिमला के हस्पताल में स्टाफ नर्स थी। पहली बार कोई दूसरा उपाय न होने से पुरी उसे मिलने हस्पताल गया था। हस्पताल के बरान्दे में ही उस ने कुछ मिनिट उर्मिला से बात की थी। उसे कह दिया था कि वह विधान सभा के क्वार्टरों में आकर निधड़क उस से मिल सकती है।

पिछले पांच वर्षों में पुरी को उर्मिला से निस्संकोच पूरी बात कह सकने

का अवसर नहीं मिला था। उर्मिला मिलने आयी तो पुरी ने एकान्त में आँसू भरे गले से उस के प्रति अपने अक्षुण्ण प्रेम और विवशता की पूरी बात कह दी। लुधियाना में संक्षिप्त मुलाकातों के समय कही बातों को विस्तार से दोहरा कर विश्वास दिलाया कि चाहे उस के घर में पत्नी बैठी थी परन्तु उस का मन उर्मिला में ही था। पुरी ने विश्वास दिलाया—दुर्भाग्य से लाहौर में उस की सगाई कनक से हो चुकी थी परन्तु जालन्धर में उर्मिला से मिलने के बाद वह किसी और से विवाह करने के लिये तैयार नहीं था। सूद जी के मकान और प्रेस में था इसलिये उस समय दम मार लिया था कि दूसरा उपाय सोचेगा। पुरी ने याद दिलाया, "इसीलिये मैंने कहा था कि घबराना नहीं। दूसरे दिन हस्पताल गया तो तुम मिली नहीं। फिर गया तो लोगों ने कह दिया, तुम अमृतसर चली गयी हो। अमृतसर में ढूंढा, कुछ पता नहीं चला। आठ मास बाद पता चला, तुम लुधियाना में थीं। लुधियाना में पहली बार तुम ने कैसे रूखी-रूखी बातें की थीं परन्तु मैं रह नहीं सका फिर भी तुम्हारे पास गया।"

पुरी जो कह रहा था, वह तथ्य घटना नहीं थी परन्तु कहते समय बात उस के अन्तरतम से उठ रही थी। उस समय उस का रोम-रोम उर्मिला के आकर्षण के आवेग से थरथरा रहा था। उसे उर्मिला की उजली-भूरी आँखों में भी अपनी इच्छा की प्रतिच्छाया दिखायी दे रही थी।

उर्मिला संध्या साढ़े छः बजे आयी थी। कमरे में वह दोनों ही थे। कमरे के दरवाज़े और खिड़कियों पर पर्दे थे। उर्मिला पुरी के समीप कुर्सी पर थी। पुरी ने उस का हाथ अपने हाथ में ले लेना चाहा। उर्मिला ने अपना हाथ खींच लिया और परे सिमिट गयी।

पुरी ने उसे पिघलाने के लिये याद दिलाया—"याद नही किस अवस्था में हम लोगों को......" वह ज़रा ठिठका और गहरी सांस लेकर कह गया, "आलिंगन से छीन कर जुदा कर दिया गया था!"

उर्मिला ने कुर्सी पर सिमिट कर मुँह फेर लिया।

पुरी कोई जोखिम उठाने के लिये तैयार नही था। उसे कमरे के दरवाज़े बन्द कर देने का साहस नही था परन्तु उर्मिला उस से परे हट गयी। वह यह सह नही सका। यदि उर्मिला कह देती—'हाय, कोई आ जायेगा' तो उसे सन्तोष हो जाता।

"दरवाज़े बन्द कर दूं?" पुरी ने उर्मिला को उत्तेजित करने के लिये सुझाया।

उर्मिला गर्दन झुकाये थी। उस ने झटके से इन्कार में सिर हिला दिया।

"उस पीड़ा को कोई भूल सकता है ?" पुरी का स्वर और भी आर्द्र हो गया, "तुम्हें मालूम है, ऐसी पीड़ा की संवेदना से ही कविता का जन्म हुआ था। संसार के पहले कवि वाल्मीकि ने कहा था—'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम......"

उर्मिला संस्कृत नहीं जानती थी न कविता के जन्म की किंवदन्ती से परिचित थी। पुरी ने श्लोक का अर्थ और काम-चेष्टा में आत्म-विस्मृत क्रौंच के जोड़े की कहानी बता कर कहा—"यही अवस्था हमारी भी थी। हम दोनों ने जो सहा है, उस की पीड़ा जीवन में मिट नहीं सकती...।"

उर्मिला का चेहरा गम्भीर और निस्पन्द था। वह उठ कर खड़ी हो गयी।

लौटते समय उर्मिला ने सड़क पर आकर, जोखिम का कोई अवसर न देख कर गर्दन घुमाके कह दिया था—"तुम्हीं ने तो मुझे निकाल दिया था। हिम्मत है तो उस नरेन्द्र को निकालो ! मैं तो तैयार हूं। मुझे यह नर्सिंग-वर्सिंग नहीं अच्छा लगता पर अब तो मैं पहले मैरेज करूंगी। फिर देखूंगी, तुम्हारा सूद मेरा क्या बिगाड़ लेता है ?"

उस बार शिमला से लौटने से पहले, माल रोड पर एक बार फिर उर्मिला से पुरी का सामना, एक दुकान में हो गया था। उर्मिला अच्छा पहनने की शौकीन तो थी ही। उस समय वह बहुत सजी-धजी थी। काजल की लकीरें आंखों से बाहर तक खिंची हुयी थीं। आमने-सामने होने पर उस ने अपने साथ के जवान का परिचय दिया था, 'डाक्टर सोंधिया।' वह दोनों 'शापिंग' के लिये आये थे।

पुरी को नियमानुसार यात्रा के भत्ते में पहली श्रेणी का तिगुना किराया मिलता था। ऐसे भी एम० एल० ए० थे जो इतना किराया पाकर भी दूसरे या तीसरे दर्जे में यात्रा करके काफी रकम बचा लेते थे। विधान-सभाओं के बहुत से सदस्य ऐसा व्यवहार विधान-सभा की और सरकार की प्रतिष्ठा के लिये अपमानजनक समझते थे। उन का विचार था कि सदस्यों को उसी दर्जे का किराया देना चाहिये, जिस में वे यात्रा करें। पुरी का भी ऐसा ही विचार था। इस प्रकार की शिकायतें बार-बार आने से 'उत्तर प्रदेश' की सरकार ने निर्णय दे दिया था कि विधान-सभा के सदस्य चाहे जिस दर्जे में यात्रा करें, नियमानुसार वे प्रथम श्रेणी के तिगुने किराये के अधिकारी होंगे। सरकार ने विधान-सभा के सदस्यों के अनैतिक व्यवहार को नैतिक मान्यता दे दी थी। पुरी ने 'नाजिर' के हाट-बाजार के कालम में इस प्रसंग पर एक नोट लिखा

था–विधान बनाने का उत्तरदायित्व लेने वालों की नैतिकता ऐसी है तो विधान कितना नैतिक बन सकेगा और विधान में नैतिकता की क्या अवस्था होगी ?

पुरी पहले दर्जे में ही यात्रा करता था इसलिये रात में सोते हुये आराम से यात्रा कर सकता था। वह प्रायः संध्या शिमला से चल कर प्रातः चार बजे जालन्धर पहुंच जाता था। यदि विलम्ब से चलता तो अम्बाला में गाड़ी बदल कर छः-सात बजे जालन्धर पहुंच जाता था।

गाड़ी में आराम से सो सकने के लिये पूरा बर्थ था परन्तु मस्तिष्क में भरी उलझनें पुरी को नींद नहीं आने दे रही थीं। जानता था, 'नाज़िर' में प्रकाशित लेख के सम्बन्ध में कनक से बात करने पर जरूर झगड़ा होगा पर इस विषय में वह चुप भी नहीं रह सकता था। जब भी वह कनक से परेशानी अनुभव करता था, कल्पना में उर्मिला की छाया आ जाती थी। ऐसी ही उलझनें और कल्पनायें उसे नींद नहीं आने दे रही थीं। उस बार वह शिमला में उर्मिला से मिल पाने का सन्तोष भी नहीं पा सका था।

पुरी पिछली बार सितम्बर में 'शिक्षा-समिति' की बैठक के लिये शिमला आया था तो उर्मिला से मिला था। तब उर्मिला ने बहुत अनुरोध किया था कि वह शिमला की सर्दी नहीं सह सकती। पिछले वर्ष उसे जाड़ों में बहुत कष्ट हुआ था। वह अपनी बदली अमृतसर में करवा लेना चाहती थी। उस ने अमृतसर में बदली के लिये प्रार्थना-पत्र भी दिया हुआ था। पुरी ने स्वास्थ्य विभाग के संचालक के यहाँ जाकर कह दिया था, उर्मिला को शिमला की जलवायु माफिक नहीं है। शिमला से उर्मिला की बदली हो गयी थी।

कालका-अमृतसर एक्सप्रेस जालन्धर पहुंचने से पहले ही पुरी की नींद खुल गयी थी। उसे याद था, दोआब मिल की जीप उस के लिये स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रही होगी परन्तु उर्मिला से मिल पाने की तड़प उसे अमृतसर की ओर खींच ले गयी।

पुरी अमृतसर स्टेशन के वेटिंग-रूम में अपना बिस्तर और सूटकेस छोड़ कर, आठ बजे से कुछ पहले ही सिविल हस्पताल में पहुंच गया। अभी वार्डों में सफाई हो रही थी। पुरी ने अपना परिचय दिये बिना एक वार्ड-बॉय (सेवक-लड़के) से पूछा—"स्टाफ नर्स मिस उर्मिला ड्यूटी पर हैं या क्वार्टर में होंगी ?"

प्रौढ़ वार्ड-बॉय ने सोचकर पूछा—"उर्मिला मिस साहब, वही जिन का मोंगिया डाक्टर साहब से ब्याह हुआ है ?"

पुरी के मुख से निकल गया—"ब्याह हो गया ?"

कानों में गूंज रहे थे। चाह से तड़पा देने वाला उस का कमनीय शरीर कल्पना में आगया। पुरी को वह विषधर सर्प की भांति लगी जिसे कुचल देना चाहिये था परन्तु वह फिसल कर घास में निकल गया था। स्त्री का विश्वास ?··· वह स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहती, धोखा उस का एक मात्र बल है।

चेला पुरी के लिये थाली परोस कर ले आया। प्रातः से कुछ भी नहीं खाया था, भूख चेत गई। बेसुध खाता जा रहा था। पुरी ने कल्पना में उर्मिला के पूरे चरित्र को दोहराया––उस में सदा वासना प्रबल थी। इतने दिन क्या यों ही रही होगी ? कभी नहीं ! कैसी ठगनी निकली ? अच्छा हुआ, वह धोखे से बच गया।

पुरी का मन कहीं जाने को न हुआ। वह रात की अनिद्रा याद कर लेट गया। उर्मिला के ध्यान से मुक्ति पाने के लिये सोचने लगा····कनक से बात करनी होगी। यदि वह दुराग्रह कर बैठी ? गिल या रक्स ऐसा करते तो उन्हें नाज़िर से छुट्टी दे देता परन्तु कनक का नाम तो संचालक-संपादक के रूप मे पत्र पर जाता था। मार्च में विधान सभा के अधिवेशन के लिये जाते समय पुरी को खयाल था, पीछे कठिनाई न हो, इसलिये बैंक मे हिसाब भी उसी के हस्ताक्षरों से करवा दिया था पर पत्र और प्रेस का मालिक तो वही था।

पुरी अपने प्रति कनक की विरक्ति की चोट पर उर्मिला की अनुरक्ति का लेप करके सान्त्वना पा लेता था। अब वह उपचार हाथ से निकल गया था। कनक की विरक्ति असह्य हो गयी। वह कल्पना में अपने और कनक के प्रेम के इतिहास पर विचार करने लगा। पूरे परिवार का विकट विरोध ! मेरी उस समय की गरीबी और बेकारी, वैसी हालत में भी वह हवालात में पहुंची; कोई विश्वास करेगा ? नैनीताल बुलाया। लखनऊ से अच्छी नौकरी छोड़ कर जालंधर दौड़ी आयी। ओफ़, मैं कैसी स्थिति मे था। आंखों से सांप देख कर भी उसने मेरे कहने से विश्वास कर लिया कि रस्सी थी। सब कुछ सह गई। मेरा कितना अधिकार और विश्वास मानती थी ! पुरी का हृदय कृतज्ञता से द्रवित हो गया। दूसरा विचार आया—वह तो स्थिति को संभालने पर निर्भर करता था। मैंने किस चातुर्य से स्थिति को संभाल लिया था परन्तु अब यह कटुता क्यों; कहां से आगयी ? उसे मेरी इच्छा ही नही रही। यह प्यार है; पति-पत्नि का सम्बन्ध है ?···पर ऐसा क्यों ?

पुरी मस्तिष्क की पूरी तीव्रता और एकाग्रता से सोचता रहा···कारण है उस का अहंकार। उस की असहिष्णुता।····चुहल और प्यार से झंकारती रहती थी, मुझे नींद से उठाये बिना नही रहती थी। पहले तो वह ऐसी नही

थी । शायद इसीलिये वह प्रवृत्ति उफन कर समाप्त हो गयी । हो सकता है, पुरुष की तरह काम करने से नारी-भाव दब गया है । उसे नाजिर और प्रेस में उलझे रहने की क्या ज़रूरत है ! यह क्या घर है ? मेरे प्रेम के लिये उस ने क्या नहीं किया ? उस से अधिक 'डिवोटिड' (न्योछायर)पत्नी और क्या हो सकती है। स्थिति को संभालना आवश्यक है…

पुरी की नींद टूटी तो अढ़ाई वज रहे थे । नींद ले लेने से मन हल्का हो गया था । नींद आने से पहले का ख्याल फिर आया— उसे स्थिति संभालनी है । वह कुछ मिनिट लेटा रहा । निष्क्रियता सह्य नहीं हुयी तो उठ कर प्रेस में कनक को फोन किया ।

कनक ने फोन पर विस्मय प्रकट किया—"किस गाड़ी से आये ? मैंने तो आठ वजे स्टेशन से पूछ लिया था । गाड़ियाँ तो लेट नही थी ।"

"धन्यवाद !" पुरी ने कृतज्ञता से कहा, "सुबह एक्सप्रेस में नींद नही खुली । अमृतसर पहुंच गया था । साढ़े दस वजे लौटा हूं ।"

"फोन कर दिया होता; तुम्हें परेशानी हुयी होगी ?"

"तुम अढ़ाई मील दौड़ती, तुम्हें भी तो परेशानी होती !"

"यह कैसी वातें कर रहे है ?"

"नहीं, नही परेशानी कुछ भी नही हुयी । खाना खा कर सो गया था। अव ज़रा देर के लिये ज्ञानी जी के यहाँ विक्रमपुरा जा रहा हूं, शायद प्रेस में भी आ जाऊं पर पाँच के वाद प्रतीक्षा न करना । गिल से भी कहना, आ जाये ।"

कनक और गिल पुरी की प्रतीक्षा सवा पाँच वजे तक करके चल दिये थे । पुरी उन के पहुंचने के दस-वारह मिनट वाद पहुंचा । हाल-चाल के विषय मे साधारण वातचीत के प्रसंग में पुरी ने वताया--"यातायात समिति' ने पंजाब की कुछ और भी सड़कों पर सरकारी वसे चलाने का सुझाव दिया है । यातायात के राष्ट्रीयकरण का यह ढंग खूब व्यवहारिक रहेगा । होड़ में निजी वसे चलाने वाले भी स्तर सुधारेंगे । सरकार के लिये आय का साधन भी होगा । धीरे-धीरे निजी वसे समाप्त कर देंगे ।" फिर उस ने 'नाज़िर' के लेख का प्रसंग उठाया ।

पुरी ने 'नाज़िर' के सम्पादकीय का उत्तरदायित्व स्वयं अपने ऊपर लेकर वात की । खेद प्रकट किया—"लेख में आपत्ति के योग्य कोई वात नही है । समाज और देश की आर्थिक परिस्थिति के सम्बन्ध में एक भावुकतापूर्ण विचार है । कांग्रेस की मूलनीति से उस का कोई विरोध नही । पंडित नेहरू स्वयं उसी दृष्टिकोण की वात करते है परन्तु उस लेख के विरुद्ध सूद जी के कान

भर दिये गये। सूद जी तो अब बिलकुल मैकेनिकल हो गये है। बस राज्य कांग्रेस की वर्किंग कमेटी, मंत्री-मंडल के संगठन और भावी चुनावों की ही बात सोचते है। केवल विचार से उन्हें कोई मतलब नही है। उन्हें हर बात में समर्थन चाहिये। अजीब परेशानी है। मै यह कह दूं कि पत्र से उन्हें कोई प्रयोजन नही तो अच्छा नही लगता, उन्हे बड़े भाई की तरह मानता आया हूं।

"सूद जी से या किसी से भी डरने का मतलब क्या है? तुम दोनों ही जानते हो जब बिलकुल निस्सहाय था, तब भी सिद्धान्त के लिये जीविका तक की परवाह नहीं की थी। हाँ, सूद जी का निरादर नही कर सकता। वह जबान के कड़वे जरूर है पर दिल के काले नही है। कांग्रेस मे उन जैसा बेलाग मुझे तो दूसरा दीखता नही। उन का साथ न दूं तो स्वार्थी लोग उन्हें बिलकुल हाथ में कर लें। 'जी हुजूर' उन्हे सदा घेरे रहते है। लोगों ने उन का दिमाग भी बिगाड़ दिया है। सभी पत्र सरकार को प्रसन्न करके विज्ञापनों से लाभ उठाना चाहते है।''''नाजिर' मे हम लोग थोड़ा-बहुत साहस करते है परन्तु धूर्त लोगों ने तिकड़म करके हमारी जड़े काट डाली तो क्या करेंगे? अभी हम उन लोगों की मार से बचे रहें तो अच्छा है। एक प्रगतिवादी मोर्चा बना रहे वर्ना 'जी हुजूर' तो बेड़ा गरक कर देंगे। पत्र को तुम दोनो ही चला रहे हो। मै तो इतना ही कह सकता हूं कि ठोस काम कर सकने के विचार से उग्रता की अपेक्षा या जैसे दूसरे लोग सनसनी पैदा करके पाठकों को खींचना चाहते है—हम जनता मे गम्भीर सूझ पैदा कर सकें''''।"

पुरी कनक और गिल से आँख न मिलाकर बात कर रहा था। स्वर मे मन के बोझ, विवशता और खिन्नता की झंकार स्पष्ट थी। कनक ने अनुमान किया—कई दिन की थकान है। पुरी के फोन पर बात करने का ढंग भी याद आया। सोचा, सूद जी ने और दूसरे लोगो ने मेरे लेख के विषय में जरूर कुछ कहा होगा। आपत्ति की बात तो बतायें क्या है? शायद बाद मे कहेंगे।

"उस लेख में सरकारी नीति की आलोचना तो नही थी, समस्या पर दूसरे ढंग से विचार था।" गिल ने पुरी के समर्थन में कहा।

पुरी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुप बैठा रहा जैसे बहुत थक गया हो।

जया मां से उत्साह पाकर नर्सरी में सीखा गाना सुनाने लगी—

"छुन-छुन करती आयी चिड़िया,
दाल का दाना लायी चिड़िया,

कनक ने बहुत सराहना की, शाबाश, पापा को पूरा गीत सुनाओ। जया उत्साह से सुनाने लगी। पुरी ने उस की ओर ध्यान नही दिया, चुप बैठा रहा।

पुरी को चुप देख गिल उठ कर चला गया। कनक चेला से कुछ पूछने के लिये उठ गयी। पुरी भी अपने कमरे में चला गया। कनक का दिन भर नाज़िर में कट जाता था। संध्या समय उसे घर में कोई न कोई घरेलू काम रहता ही था। साढ़े आठ बजे चेला ने भोजन के लिये कहा। कनक ने बरामदे में पड़ी मेज़ की ओर जाते हुये आवाज़ दी—"खाने के लिये आ जाइये, रख दिया है।"

"यहाँ ही भिजवा दो।"

कनक ने पुरी के कमरे के दरवाज़े से झाँक कर पूछा—"क्यों क्या बात है?"

"अच्छा आ जाता हूं।" पुरी पलंग से उठ गया।

खाते समय पुरी चुप ही रहा। कनक ने बात करनी चाही—"आजकल शिमला में बहुत सर्दी होगी, उजाड़-उजाड़ लगता होगा।"

पुरी हुंकारा भर कर चुप रह गया।

खाने के बाद कनक ने हीरां को पुकार कर अपने पलंग पर सोयी जया के लिये खटोली लगवायी। हीरां से दूध रखने-जमाने के बारे में बात की। अपने कमरे में जाने से पहले पुरी के कमरे में देखने गयी कि उस का बिस्तरा ठीक से लगा दिया गया है या नहीं।

पुरी का बिस्तर लगा हुआ था। पुरी कम्बल ओढ़े आरामकुर्सी पर ठोड़ी हाथ में लिये बैठा था।

कनक ने कहा—"काम नहीं कर रहे हो, थके हुये हो तो लेट जाओ। दूध दे जाऊं!"

"थैंक्यू।" पुरी ने गर्दन घुमाये बिना उत्तर दिया।

"क्यों बात क्या है?" कनक ने पूछा—सुबह फोन पर भी तुम ने बहुत तकल्लुफ दिखाया था।"

"इस में तकल्लुफ क्या है। तुम मेहरबानी करो तो मुझे धन्यवाद देना ही चाहिये।" पुरी ने विनय से कहा जैसे कृतज्ञता से दबा हो।

"मेहरबानी क्या है। अपने घर में कौन काम नहीं करती? उसके लिये थैंक्स तो नहीं दिया जाता।"

पुरी चुप रहा।

"नाराज़गी का कारण क्या है?" कनक ने खड़े-खड़े ही पूछा, "उसी लेख के कारण?"

"छोड़ो उस बात को। मैंने जो कहना था, कह दिया।"

"तो फिर?"

"लेकिन मेरे लिये तुम्हें इतना कष्ट उठाने की जरूरत क्या है ?"

"आप अब नहीं चाहते मैं यह सब करूं ?"

"यह कैसे हो सकता है ? मैं तो आभारी हूं।"

"आभार की जरूरत नहीं है। जैसे चलता आया है, चलने दो। आज नयी बात की क्या जरूरत हो गयी ?" कनक जाने लगी।

"तुम बैठ सको तो बताऊं।"

कनक पुरी के पलंग की पाटी पर बैठ गयी।

पुरी का स्वर आर्द्र हो गया—"मुझे तुम से यह सब पाने का अधिकार इसलिये था कि हम-तुम पति-पत्नी थे।"

"तो अब क्या हैं ?"

"पहले सुन लो ! अपने इस सम्बन्ध के लिये हम ने कितने विरोध-बाधाओं का सामना किया था परन्तु हम क्या पति-पत्नी की तरह रह रहे हैं ?"

"क्यों और कैसे रह रहे हैं ?"

"तुम जानती हो जीवन की स्वाभाविकता" जिसे पति-पत्नी का सम्बन्ध कहते हैं, वह हम में नहीं रहा। उस का न रहना क्या हम में फटाव नहीं है। हमारे बीच का अन्तर क्या अस्वाभाविक नहीं है ?"

कनक की गर्दन झुक गयी। नजर खुले दरवाजे से गैलरी की ओर कर ली। क्षण भर चुप रही फिर कह दिया—"मेरे लिये मेरी एक लड़की काफी है। मैं उसी को संभाल लूं, बहुत है।"

"तुम तो ऐसी बात कर रही हो जैसे दम्पति का सम्बन्ध केवल सन्तान के लिये होता है या सदा ही सन्तान हो गयी हो। हमारा आकर्षण केवल सन्तान के प्रयोजन से था ?"

"खैर, फिर भी वह बात मेरे बस की नहीं है। इस के लिये क्षमा चाहती हूं।" कनक ने गर्दन झुकाये कह दिया।

पुरी ने पूछ लिया—"क्या मेरी इच्छा अनुचित या अप्राकृतिक है ?"

कनक मौन रही।

"कम से कम उत्तर तो दो, मैं अनुचित बात कह रहा हूं ?"

"यह नहीं कहती परन्तु मैं असमर्थ हूं।" कनक ने गर्दन नहीं उठायी।

"मैं यदि विवश होकर अन्यत्र यत्न करूं तो तुम्हें आपत्ति नहीं होगी ?"

"जो चाहो करो। मुझ से ऐसी चर्चा की जरूरत नहीं है।" कनक उठ कर खड़ी हो गयी।

"मैं यदि वह चोरी अनुचित समझूं तो उस के लिये दण्ड सहता रहूं।"

"मुझे बहुत खेद है।" कनक चली गयी।

आपसी मनमुटाव के कारण पति-पत्नी के मुंह सिल जाते तो चेला और हीरां सहम जाते थे और जया भी उदास हो जाती थी। पुरी क्रोध में परवाह न करता। कनक को यह स्थिति अपमानजनक लगती। बच्ची के लिये यह प्रभाव बुरा लगता। परेशान हो जाती, क्या करे? वह अपने मन को कुचल कर ऐसी स्थिति को छिपाये रखना चाहती थी।

दूसरे दिन तड़के की चाय वह स्वयं पुरी के कमरे में ले गयी। जो होना है हो, वेइज्जती तो न हो। पुरी बिलकुल नहीं बोला, कनक ने उस के नहाने का सामान गुसलखाने में रख दिया। कपड़े भी निकाल दिये। भोजन के समय भी साथ बैठी परन्तु पुरी नहीं बोला। भोजन के बाद उस ने चेला से रिक्शा मंगवायी और अकेला शहर चला गया। कनक भी समय पर दफ्तर चली गयी।

अगले दिन भी सुबह वैसा ही चला। पुरी तीन बजे दफ्तर में आया। बहुत व्यस्त और गम्भीर था। सीधा मैनेजर के कमरे में चला गया। बहुत देर तक बहुत ब्यौरे से हिसाब-किताब समझता रहा। उस के बाद सम्पादकों के कमरे में आया। कनक की उपेक्षा करके गिल से पूछा, आगामी अंक में क्या सामग्री जा रही थी। प्रत्येक कालम का मैटर देख गया। फालतू बात बिलकुल नहीं की। उठ खड़ा हुआ। फिर सहसा कनक की ओर मुस्करा दिया, "कब तक बैठोगी? मैं जरा आदर्शनगर होकर लौटूंगा।" फिर गिल की ओर देखा, "आओगे उधर? आ जाना।"

पुरी ने सब के सामने रुखाई दिखा कर कनक का अपमान कर दिया था। ऐसा व्यवहार पुरी ने पहली बार ही किया था। अब तक वह लोगों के सामने आपसी मनमुटाव पर पर्दा बनाये रहता था। यह कनक को पत्नी की तरह अनुगत न होने का दण्ड था। कनक का मस्तिष्क खौल गया था। न लिखते बनता था न सामने रखा हुआ पढ़ते बनता था। सोच नहीं पा रही थी क्या कह कर उठ जाये। दस मिनट बाद बोली—"मुझे बहन के यहाँ जरूरी काम है, जा रही हूं। यह कल ही करूंगी।"

कनक घर लौट, हीरां को सिर दरद बता कर अपने कमरे में लेट गयी थी। जया सुबह से बिछुड़ी मां से चिपटना चाहती थी। कनक बेटी को अपनी अपमानजनक खिन्नता से दूर रखना चाहती थी। उस ने चेला को बुला कर कहा—"आग लगने दे काम को, बबली को ज़रा 'चक्कर' तक घुमा ला!"

चेला चीखती हुयी लड़की को उठा कर ले गया।

हीरां कटोरी में घी ले आयी--"ला सिर पर रगड़ दूं।"

"रहने दे मौसी, सिर न खा।" कनक ने आंचल में मुंह छिपा लिया।

"हाय कमली धी (पागल बेटी)! लाल-लाल चाय पी-पीकर दिमाग झुलसा लिया है। दिन भर दिमाग का काम, सिर दरद नहीं होगा तो क्या होगा!"

हीरां घी लिये समीप खड़ी ही थी। कुछ सोच कर बोली—"ना पुत्तर, (बेटे), इन बातों पर नहीं रोना चाहिये। तू समझदार है, मिन्नत-खुशामद कर लेते है। तीमी (अबला) का क्या है। तू सुलक्खनी (सुलक्षणा) है। परमेश्वर जी न करे, तुझे तो कभी फूल भी नही छुआया। मेरे तो हाड़-गोड़ तोड़ देता था। मर्दों को तो गुस्सा आता ही है....।" कनक आंचल के भीतर दम साधे रही।

हीरां उदास होकर दूसरे काम में लग गयी।

प्राय: एक घण्टे बाद बराम्दे से गिल की पुकार सुनायी दी—"बबली!" फिर उस ने पुकारा, "चेला!"

हीरां ने आकर बताया--"बबली का ताया आया है।" हीरां ने गिल का यही नाम रख लिया था।

"तुझे नही मालूम मेरे सिर मे दरद है?" कनक खिसिया उठी।

"ना पुत्तर, उठ! शाबाश!" हीरां ने पुचकारा।

"अच्छा जाकर बैठा दे।"

कनक को उठना पड़ा। मुंह धोया। कंघी की, साड़ी भी बदली। जानती थी, आँखें तो लाल होंगी ही पर क्या कर सकती थी?

"पुरी नहीं आया?" गिल ने पूछा।

कनक इन्कार में सिर हिलाकर समीप की कुर्सी पर बैठ गयी।

"किस बात पर झगड़ा हो गया?"

कनक मौन रही।

"उस लेख पर फिर कुछ बात हुयी थी?"

कनक ने इन्कार में सिर हिला दिया।

"तो?"

कनक मौन रही।

"बोलती क्यों नहीं?" गिल आत्मीयता से झुंझलाया। कनक पत्थर की तरह सुन्न रही जैसे दम रोके हो।

"नहीं बताना चाहती?" गिल ने सहानुभूति से पूछा।

कनक ने बहुत गहरा सांस लिया—"इम्पौस्सीबल!"

"क्या है इम्पौस्सीबल ? बता सकना पौसीबल नहीं है ?"

कनक की नज़र फर्श पर गड़ी थी। उस ने दूसरा सांस लिया—"यहां रह सकना !"

गिल की भौं उठ गयीं—"कनी तुम बहुत मूर्ख हो।" प्यार से अंग्रेजी में बोला कि मैं तुम्हें बहुत अच्छी तरह समझा चुका हूं। तुम्हें सहिष्णु होना चाहिये।

"क्या सह लूं ? मैं क्या प्रौस (वेश्या) हूं ?" कनक फुंकार उठी और फिर घबराकर आंचल से मुंह ढक लिया। अपने कमरे में जा कर पलंग पर गिर पड़ी। कई मिनट तक आवाज दबाये फफक-फफक कर रोती रही। परिताप से मरी जा रही थी, मुंह से क्या निकल गया। स्वयं ही विरोध किया—ठीक तो है, इस घर में रहने के लिये, पत्नी बनी रहने के लिये, मुझे सब तरह रिझाने के लिये, सब कुछ सहना होगा। मैं स्वयं कुछ नहीं हूं ! प्रौस और क्या करती होगी ?....कभी नहीं करूंगी, नहीं सहूंगी। मैं पत्नी नहीं हूं।"

पलंग के समीप पुरी का शब्द सुनाई दिया—"कनी, बाहर आओ ! गिल बैठा है।"

कनक निश्चल रही।

पुरी खीझ उठा—"तुम लोगों के सामने बिहेव (निबाह) भी नहीं कर सकती ?"

"नहीं कर सकती। तुम ने दफ्तर में कैसे बिहेव किया था ?" कनक ने आंचल के भीतर से रुंधे हुए परन्तु क्रुद्ध स्वर में उत्तर दे दिया।

पुरी ने लौट कर गिल को बताया—"कनी की तबियत ठीक नहीं है। प्रायः ही सिर में बहुत जोर का दरद हो जाता है। मुझे ब्लडप्रेशर का सन्देह है। डाक्टर को दिखाऊंगा।"

"हां, आज दिन में भी बहुत थकी-थकी सी लग रही थी। डाक्टर की राय जरूर ले लो" गिल ने समर्थन कर दिया।

×

१३

तारा को डाक्टर नाथ पर क्रोध था:—

अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में अगरवाला साहब की कोठी से लौटते समय डाक्टर नाथ के प्रश्न के उत्तर में तारा ने कह दिया था--उस की कोई सुसराल नहीं थी परन्तु जब नाथ ने विस्मय से इस वाक्य का अभिप्राय जानना चाहा तो ससुराल में बिताई आधी रात का अनुभव और तत्-सम्बन्धी पूरी-पूरी आपबीती बता देना सरल नहीं था। तारा ने गर्दन झुकाये टूटते-टूटते शब्दों में संक्षेप से अंग्रेजी में बताया--"उसे मालूम हो चुका था मैं उससे विवाह नहीं करना चाहती थी। वह मन में बैर लिये था। मुझे अपने यहां विवश पाकर उसने बदला लेना चाहा। मेरा अपमान किया। मैने विरोध किया। उस ने बहुत मारपीट की। अचानक कुछ ही देर बाद आक्रमण हो गया और आग लग गयी। मैं साथ के मकान की छत पर कूद गयी। घटना का सत्य ब्योरा बहुत कष्ट से पहली बार तारा के मुख से निकला परन्तु कह देने पर उसे बहुत हल्कापन अनुभव हुआ जैसे फोड़े पर नश्तर की पीड़ा के पश्चात मवाद निकल जाने से शाँति मिल जाती है।

नाथ ने कोई प्रश्न नही किया। विस्मय या सहानुभूति का भी कोई संकेत नहीं किया। बिल्कुल निश्चल, मौन अधमुंदी आँखों से सुनता रहा। बीच में तारा बार-बार ओंठ काटकर चुप भी हुई। तब भी नाथ उस की असुविधा से आँख बचाये रहा।

तारा कह चुकी तो नाथ ने कहा—"पुरी के व्यवहार पर बहुत विस्मय है।" फिर पूछ लिया, "कैम्प में कैसे पहुंची ?"

तारा अपमान और अत्याचार का शिकार होने की बात कहकर क्षणिक सहानुभूति तो पाती परन्तु सदा के लिए लोगों की दृष्टि में गिर जाती। तारा यह नहीं चाहती थी। उस प्रसंग की एक कहानी उसने बना ली थी पर नाथ के सामने झूठ नहीं बोल सकी। गर्दन झुकाये पाँच वाक्यों में उत्तर दे दिया—"गली से कोई गुण्डा मुझे उठा ले गया था। उस के यहाँ से एक भले रिटायर्ड मुसलमान अफसर ने छुड़ाया। मुसलमान बनना स्वीकार नही किया इसलिये वहाँ से निकाल दी गयी। फिर दूसरी हिन्दू स्त्रियों के साथ गुण्डों की कैद में रही। भारतीय सेना ने हमें छुड़ाकर कैम्प में रख दिया था।" नाथ क्या सोचेगा तारा ने चिंता नहीं की। उस के सामने वह झूठ नहीं बोल सकती थी।

नाथ ने केवल एक ही वाक्य कहा—"तारा, तुम बहुत बहादुर हो, बहुत साहसी हो।" उस के स्वर में आदर और स्नेह छलक रहा था।

नाथ की बात से तारा की मुद्रा बदल गयी—"डाक्टर साहब, आप की बीबी, माई मीन हमारी भाभीजी खाना कैसा बनाता है?"

"गुजारे लायक। वह रसोइया तो है नहीं। दाल-सब्जी, रोटी बना लेता है। दोपहर में कटोरदान में खाना लाता है तो एक डिब्बे में दही जरूर ले आता है।"

"डाक्टर साहब, यह क्यों, ढंग का नौकर रखिये! खाना तो ढंग से मिलना चाहिये।"

"हाँ, चाहिये तो पर ढंग का नौकर कहाँ मिलेगा—धोखा दे गया तो? एक नालायक रखा भी था। उस का नाम तो भोला था पर सब सफाई करके ले गया। बस शरीर पर पहने हुए कपड़े ही रह गये थे। चार सौ नकद भी ले गया।"

"डाक्टर साहब, ताला-वाला नहीं लगाते?" तारा ने विस्मय प्रकट किया।

"लगाता तो था परन्तु कपड़े-वपड़े वही निकाल देता था। काम सब जानता था। बटन-बटन टूट जाय, कपड़ा प्रेस करवाना हो, सब कर लेता था। कभी-कभी उस से चाभी लेना भूल जाता था। उतना प्रलोभन उस के लिये था भी तो बहुत।" नाथ ने अपनी हानि को मजाक का रूप दे दिया।

"डाक्टर साहब, आप उसे स्वयं ही दे देते, बेचारे को चोरी न करनी पड़ती।" तारा ने नाथ के मजाक का उत्तर दिया।

"तुम मुझे इतना उदार समझती हो?"

तारा ने पूछ लिया—"भाभीजी भी सब संभाल लेता है?"

"बेचारा बूढ़ा है, सुई में धागा भी नहीं डाल पाता है।"

"तो आप को क्या सहायता मिलती है?"

"वही मुझे नहीं छोड़ेगा। उस के रहने की जगह का किराया, खाने-पीने का खर्च सब बचता है। खाना कुछ बेहतर ही मिलता होगा। पन्द्रह-बीस दे भी देता हूं। उसे हटा देना ठीक नहीं। उस का लड़का पढ़ रहा है। बेचारे ने उस की परीक्षा की फीस के लिये पचास रुपये उधार लेकर भेजे थे। लड़के ने इन्टर की परीक्षा दी है।"

"तो भाभी के लिये नौकर रख लीजिये। घर में बीबी हो तो क्या नौकर नहीं रखते? भाभी उस पर नजर भी रखेगा।" तारा ने मुस्कराकर सुझाया।

"हाँ, यह हो सकता है। यू आर राइट।" नाथ ने स्वीकार किया जैसे यह बात पहले ही सोच लेनी चाहिये थी।

तारा को डाक्टर का भोलापन अच्छा लगा। पूछ लिया—"डाक्टर साहब, कोई आदमी भिजवाने का यत्न करूं ?"

"क्यों, क्या तुम्हारे यहाँ एजेंसी है ?"

"डाक्टर साहब सचमुच एजेंसी है।" तारा हंस पड़ी, "अर्दली दुर्गा पांडे के तो शायद पूरे जिले के लड़के दिल्ली मे नौकरी ढूंढ़ते फिर रहे है। परसू को उसी ने भेजा है। पड़ोस मे दो और उसी के भेजे हुए है।"

"तो जरूर भिजवा देना।"

तारा ने वस का रास्ता और स्टाप पूछ लिया।

"डाक्टर साहब खाना खा कर जाइयेगा ! साढे आठ हो रहे है, लाऊं?"

"इसीलिये तो बैठा था ?"

"एक मिनट" तारा उठ गयी। रसोई में जा कर देखा, पूरनदेई ने क्या बनाया था। लगा, यह तो कुछ भी नहीं। सोचा—आते ही क्यों नही कह दिया मैंने। परसू को तुरंत भेजा कि नीचे रेस्तरां से और दूध वाले से कुछ ले आये। गुंधा हुआ आटा तैयार था। पूरणदेई उसे गरम-गरम और फूले-फूले फूल्के बना कर देती थी। तारा ने परौठे बनाने के लिए कह दिया।

तारा स्वयं थाली लगा कर लायी।

नाथ ने पूछा—"और तुम ?"

"आप लीजिये, हो जायगा।"

नाथ के आग्रह से तारा ने अपने लिये भी मंगा लिया।

नाथ ने उस की थाली की ओर देखा—"मुझे बाजार से मंगा कर खिला रही हो ? सीता की शादी के दिन भी ऐसा ही मामला था।"

तारा की थाली मे दो ही कटोरियां थी और डाक्टर की थाली में चार।

तारा लज्जा से गड़ गयी। क्या मालूम था ऐसा आग्रह करेंगे नही तो थोड़ा-थोड़ा अपनी थाली में भी रख लेती।

तारा ने क्षमा सी मांगी—"डाक्टर साहब पहले से खयाल नही किया ! अच्छा एक दिन स्वयं बनाऊंगी। इस रविवार ही सही।"

"इस रविवार तो नही। सप्ताह भर के लिये पटना जा रहा हूं। लौट कर बताऊंगा।" तारा के 'न न' करते रहने पर भी डाक्टर ने अपनी कटोरियों से आधा-आधा तारा की थाली मे डाल दिया।

तारा उस से अगले रविवार भी चुप रही। नरोत्तम दिल्ली से बाहर गया हुआ था। सोचा, अगले रविवार बुला लेगी। नरोत्तम को भी कह देगी परन्तु मंगलवार दफ्तर में दुर्गा पांडे ने, डाक्टर नाथ के बंगले का पुर्जे पर लिखा

पता दिखा कर निवेदन किया—"हुजूर माता जी, आप के हुकुम से साहब के बंगले पर आदमी भेजा था। हुजूर, साहब तो शिमला चले गये हैं। अब हुजूर का जब हुकुम होगा तो…"

तारा को बुरा लगा। खीझ भी आयी —यह क्या, पता भी नहीं दिया। कहा था, पटना से लौट कर बतायेंगे। जा रहे थे तो शिमला का पता देकर जा सकते थे।…अब तो कहीं सितम्बर के अन्त में आयेंगे। तारा ने अपने आप को समझा लिया—शिकायत और नाराजगी का मतलब क्या? अनायास जितनी कृपा मिले उस से ही सन्तुष्ट रहना उचित है। मिसेज अगरवाला की बात याद आ गयी। किसी को अधिक मुंह लगते देख कर वह कह देती थीं–'ज्यादा निचोड़ने से नींबू कड़ुवा हो जाता है। सोचा, डाक्टर साहब से पुराना परिचय जरूर है परन्तु जब मां-बाप, भाई को खोकर भी चुप हूं तो उन पर क्यों अधिकार जताऊं?

तारा के मन में कभी-कभी टीस उठ आती थी—मेरा कौन है? सोचती, अपने कैसे और क्या होते हैं? श्यामा, नरोत्तम, मर्सी, माथुर मेरे अपने ही हैं! रावत साहब और डाक्टर साहब भी हैं परन्तु ऐसा कौन था, जिस से लड़ सकती या जिस की चिन्ता में डूब सकती? पिछले तीन मास से तारा के उस प्यार को उस की गाड़ी ने समेट लिया था। आरम्भ में जब लोगों ने उसे छोटी सी सेकेण्डहैंड गाड़ी ले लेने के लिये कहा था तो उसे बहुत संकोच अनुभव हुआ था लेकिन अण्डर-सेक्रेटरी बन जाने के बाद वह आवश्यक हो गया था।

बरस भर तक कई गाड़ियाँ नापसन्द करते-करते ऐसी उमंग आयी कि सरकार से कर्ज लेकर बिलकुल नयी और बड़ी गाड़ी खरीद ली। वह गाड़ी तारा की पूरी कमाई और कर्ज समेट कर उस का सर्वस्व बन गयी थी। काले नग की तरह उज्ज्वल, क्रोमियम की पत्तियों की रेखाओं से बंधी, भीतर लाल मखमली कॉर्ड से मढ़ी उस गाड़ी से अधिक चिन्ता और रखवाली की वस्तु संसार में तारा के लिये दूसरी नहीं थी। गाड़ी को कोई जरब या झटका न आ जाये, इस विचार से उस ने आरम्भ में एक ड्राइवर रख लिया था परन्तु गाड़ी को समझने और ठीक से चलाने की शिक्षा उसे नरोत्तम स्वयं देता था। तारा इस विषय की दो छोटी-छोटी पुस्तकें भी खरीद लायी थी।

तारा की गाड़ी ने तारा के जीवन में रस उत्पन्न कर दिया था। दो ही मास में वह गाड़ी की चाल की आवाजों को खूब समझने-पहचानने लगी थी। स्टार्टर पर उँगली का स्पर्श पाते ही इन्जन महीन स्वर में किं-किं-किं बोल

उठता। एक्सिलरेटर पर पांव के संकेत से गाड़ी की गुर्राहट घट या बढ़ जाती जैसे वह सजीव हो, स्पर्श के संकेतों का उत्तर दे रही हो। तारा के संकेतों और स्पर्शों से वह धूप में व वर्षा में तारा को गोद में लिये वायु-वेग से चल सकती थी। यह सब शक्ति तारा की इच्छा और स्पर्शों पर निर्भर करती थी। तारा अपनी गाड़ी की गोद में बैठती थी परन्तु उसे बच्ची के समान प्यार करती थी। किसी अपरिचित स्थान में गाड़ी खड़ी करनी पड़ती तो मन में चिन्ता बनी रहती, कोई बच्चा कंकड़ से उस के शरीर पर खरोंच न लगा दे। कोई बेपरवाह ड्राइवर ठोकर न मार दे। तारा की मौन परन्तु सशक्त गाड़ी ही उस की गुप्त उदासी की साथिन थी। अकेलापन लगता तो तारा तीस-चालीस मील घूम आती। गाड़ी की गति से उमंग अनुभव करती। स्पीडोमीटर गाड़ी की गति ६० बताने लगता तो वह मन ही मन शाबाश! शाबाश! कह कर गाड़ी को पुचकार लेती—बस! बस!

नरोत्तम छः-सात माह कलकत्ता मे था तो तारा को नियमित रूप से प्रति दूसरे सप्ताह पत्र लिखा करता था। तिवारी ने भी अलीगढ़ से कई पत्र लिखे थे। तारा ने दो का ही उत्तर दिया था। उत्तर न पाकर तिवारी ने भी फिर नहीं लिखा। इस के अतिरिक्त तारा को पत्र नहीं आते थे। उस के नये संसार के सब परिचित दिल्ली में ही थे। इधर जुलाई के दूसरे सप्ताह मे उसे घर के पते पर एक पत्र मिला था। वह पत्र मिस देवा का था। नरोत्तम की मार्फत मिस देवा से तारा का परिचय हो गया था। एक दूसरे के यहाँ आना-जाना भी था। दोनों में खूब आत्मीयता हो गयी थी। देवा को लखनऊ में अच्छी जगह मिल गयी थी। जुलाई में वहाँ चली गयी थी। लखनऊ जाकर उस ने एक पत्र अपनी नयी परिस्थितियो के बारे मे तारा को लिखा था और आम का पार्सल भी भेजा था।

देवा को पत्र और आमों के पार्सल की रसीद मिलने के दो-तीन दिन बाद तारा को दफ्तर में अपने नाम से एक तार मिला। तारा को बहुत विस्मय हुआ, उसे किस ने, किस बात के लिये तार दिया होगा? भाई और माता-पिता की याद आ गयी। शायद···

तार था: तुम से मिल कर नहीं आ सका। अपने स्वास्थ्य और कुशल का समाचार देना—प्राणनाथ।

तार में डाक्टर प्राणनाथ का शिमले का पता भी था।

तारा गदगद हो गयी। हृदय उमग उठा। मन असीम सांत्वना और शाति से विभोर हो गया जैसे अनन्त कृपा और शुभ कामना ने उसे सभी प्रकार

के संकटों और आतपों से शरण दे दी हो। दफ्तर की फाइलों पर सब ओर तार के कागज पर टाइप किये हुये अंग्रेजी के शब्द ही दिखायी दे रहे थे। मन चाहा, तुरन्त पत्र लिख कर उत्तर दे। फिर सोचा, नहीं घर में शान्ति से बैठ खूब विस्तृत पत्र लिखेगी।

तारा ने रात बहुत देर तक जाग कर डाक्टर नाथ को पत्र लिखा। सूचना दिये बिना चले जाने की शिकायत और भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करके न आने की शिकायत भी थी। कितनी ही बातें...। आठ पृष्ठ लिख दिये तब भी असली बात रह गयी। तारा को लगा, यह सब व्यर्थ है। डाक्टर साहब को पत्र लिखने का मतलब उन्हें परेशान करना तो नहीं होना चाहिये। सोचा, पहले तार का जवाब तार से दे दूं। रात के ग्यारह बज चुके थे। फोन उठाया और फोन से एक्सप्रेस तार दे दिया : कृपा के लिये अनेक-अनेक धन्यवाद ! पूर्णत: स्वस्थ और प्रसन्न हूं। पत्र लिख रही हूं—तारा।

तारा का मन और शरीर पुलकित थे परन्तु संयम से सोच, व्यर्थ प्रसंग छोड़ कर पत्र लिखा। डाक्टर हिन्दी ऐसी-वैसी ही जानता था। तारा जो कुछ लिखना चाहती थी वह बात हृदय से अंग्रेजी में उठ नहीं रही थी। उस ने बहुत संवार-संवार कर छापे जैसे स्पष्ट अक्षरों में लिखा :—

"परम आदरणीय डाक्टर साहब,

अमित मंगल आशीष के रूप में आप का तार मिला। उस के अनुकूल धन्यवाद कैसे दे सकती हूं। आप की उदारता ने कभी ऐसी औपचारिकता की अपेक्षा भी नहीं की। बहुत दिन पहले ही कालेज में दाखिल होने की इच्छा करने पर ही आप ने मेरे भविष्य का अनुमान करके कहा था कि मुझे अपने पांव पर खड़ी होना सीखना चाहिये। इस प्रयोजन से आप ने जो उदार सहायता दी थी उसी के कारण मैं अपने निर्वाह के लिये, अपने पांव पर खड़ी होने में समर्थ हो सकी हूं। आप के आशीर्वाद से पूर्णत: स्वस्थ शरीर हूं। मन में भी कोई परेशानी नहीं है। हाँ, कभी-कभी यह खलता था कि परिस्थितियों ने मुझे अकेली बना दिया था परन्तु जिस दिन दिल्ली में अकस्मात आप के दर्शन हो गये, अपने भाग्य से वह शिकायत भी नहीं रही। अनुभव किया कि रक्षा की मंगल छाया मेरे सिर पर बनी हुयी है। मेरा परिवार आप से सदा सहायता पाता रहा है। मैं अब भी उस कृपा से वंचित नहीं हूं। उसे अपना अधिकार समझती हूं, धन्यवाद क्या दूं !

नरोत्तम जब भी मिलता है आप को आदर सहित याद करता है। उसी प्रकार चड्ढा, मर्सी दीदी, माथुर भाई भी। सभी लोग आप की सराहना

करते है तो मन ही मन गर्व अनुभव करती हूं कि आप की कृपा और उदारता को इन सब से अधिक मैं ही जानती हूं। आप के समय का मूल्य जानती हूं। इस देश की अनेक समस्याओं को सुलझाने के लिये योजना बनाने का, या देश के सब से आवश्यक काम का बोझ आप पर है। आप समाज और देश के लिये कितने उपयोगी है। मुझे लगता है, आत्म-निर्भर तो हो सकी पर समाज के लिये कुछ उपयोगी नहीं बन सकी। मेरा पथ-दर्शन आप ही करेंगे।

आप शायद दो मास तक आ सकेंगे परन्तु वहाँ से भी आप की मंगल कृपा पा रही हूं। वह कृपा मुझे जरा भी दूर नहीं लगती।

सदा आप के आशीर्वाद की कामना और अधिकार सहित

आप की शिष्या--तारा।"

तारा का अनुमान था, डाक्टर नाथ को लिखे पत्र का उत्तर सप्ताह-दस दिन में आ जायेगा। सप्ताह के बाद वह उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगी। दो सप्ताह तक उत्तर नहीं आया तो सोचा, उत्तर के लिये याद दिलाऊं। अनुमान किया, शायद शिमले से बाहर हों या बहुत ही व्यस्त हों; तो मेरे याद दिलाने से क्या लाभ होगा। उन्हों ने कृपा की है तो उस के लिये जवाब-तलब करने लगूँ? अगस्त के तीसरे सप्ताह तक भी नाथ का उत्तर नही आया।

तारा ने मन को समझा लिया--जानना चाहते होगे मैं स्वस्थ हूं, परेशान नहीं हूं। उन्हें उत्तर मिल गया। ठीक है। मैंने ऐसी कौन सी बात लिखी थी कि उत्तर देते।

सितम्बर के अन्त में तारा को डाक्टर नाथ का संदेश फोन से मिला। वह दिल्ली लौट आया था। संध्या छ: बजे घर पर आयगा।

नाथ संध्या तारा के यहां आया तो तौलिये में बंधी छोटी सी गठड़ी लिये था। गठड़ी तारा की ओर बढ़ा कर बोला—"यह लो!"

गठरी में बंधे सेब खूब महक रहे थे। तारा कृत-कृत्य और गद-गद हो गयी। नाथ के आत्मीयता भरे आशीर्वाद में डूब गयी। गठरी को आदर से दोनों हाथों में ले कर, हृदय पर चिपकाकर लाड से पूछ लिया--"मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया?"

"क्या उत्तर देता?" तुम ने कोई बात पूछी थी··· इतनी सकील हिन्दी! संस्कृत में ही लिखा था। डिक्शनरी देख कर भी समझना मुश्किल था। लगा भक्ति का उपदेश पढ़ रहा हूं।···भगवान की कृपा और आशीर्वाद से अब हिन्दी सीखनी होगी। हिन्दी सरकारी भाषा बन रही है। अब तुम से ही पढ़ूंगा।"

तारा को नाथ की मीठी झिड़की बुरी नहीं लगी परन्तु बाद में फिर खयाल आया—शायद मैं बहुत बढ़कर अधिकार-वधिकार की बातें लिख गयी। उन्हें यह दिखावा लगा होगा। ठीक नहीं हुआ""।

जून ५३ के पहले रविवार मर्सी के लड़के अशोक का मुंडन था।

हीरालाल अवसर मिलने पर मर्सी भाभी से उलझे बिना नहीं रह सकता था। मर्सी ने मुंडन के अवसर पर हवन-पूजा के अनुष्ठान के लिये एक पंडित बुला लिया था। हवन के बाद अशोक के जन्म के रेशम जैसे, काले, घुंघराले बाल काट कर सिर उस्तरे से मूंड दिया था।

हीरालाल बोल उठा—"भाभी, क्या जुल्म कर किया! हिन्दू से ब्याह करके तुम भी हिन्दू हो गयी। तुम्हारी सब अक्ल मारी गयी। इतने सुन्दर लड़के की शक्ल कोरी हांडी जैसी बना दी!"

मर्सी ने हीरालाल की ओर आंखें चमका कर कहा—"मैं क्या हिन्दू हो गयी; लड़के का चाचा केश कटा बैठा तो मैं इसे कब तक जटाधारी बनाये रखती?"

हवन कराने के बाद पंडित जी रह न सके, वे बताने लगे—जन्म के केश बालक के स्वास्थ्य के लिये हानिकर होते हैं। माता के गर्भ के केश अस्वच्छ होते हैं। उन से मस्तिष्क में गर्मी रहती है। आर्यों के सब संस्कार वैज्ञानिक""

पंडित जी का उपदेश मर्सी सह नहीं सकी, टोक बैठी—"दुनिया भर में मुंडन नहीं होता, वहां सब के दिमागों मे गर्मी भरी रहती है! मेरा ही मुंडन कभी नहीं हुआ। मेरे दिमाग में कौन गर्मी भरी है?"

"कुछ तो जरूर है?" नरोत्तम ने धीमे से कह दिया।

मर्सी ने नरोत्तम की ओर देख लिया और कहती गयी—"लड़के के सिर में फुंसियां हो रही थीं सिर तो मुंडाना ही था।"

पंडित जी उत्साह से बोल उठे—"यही तो वैज्ञानिक बात है। आर्यों ने""

नरोत्तम बोल उठा—"दीदी तो यह पाव भर घी क्यों जला दिया। परौंठे ही खिला देती।"

मर्सी झमक उठी—"तुम्हारी सरकार 'रिपब्लिक-डे' के लिये लाखों नहीं फूंक देती! मेरे लड़के के लिये छटांक भर घी भारी हो रहा है? बेचारे के इतने प्यारे-प्यारे बाल ऐसे ही कटा देती?"

'सरकार' और 'रिपब्लिक-डे' का जिक्र होते ही माथुर बोल उठा—"पी० एम० को तो प्रदर्शन का उन्माद है…"

राजनैतिक बहस शुरू हो गयी ।

तारा ने अशोक को गोद में ले लिया । उसे पहनाया हुआ फ्राक उतारती हुई बोली—मुंडन के बाद बच्चे को नानी के घर का कपड़ा पहनाने का रिवाज है । नानी का न सही मासी का कपड़ा पहनेगा ।" वह अशोक के लिये उपहार में 'रोम्पर' बना कर ले आयी थी। तारा ने अशोक को रोम्पर पहना कर गोद में ले लिया ।

"सुनो !" मर्सी ने अपनी ओर ध्यान आकर्षित करके तारा की ओर संकेत किया, "सच बताओ, यह खाली गोद अच्छी लगती है या भरी गोद ?"

तारा झेंप से लाल हो गयी। विरोध में बोल उठी—"दीदी, तुम ! अच्छा फिर तुम बैठो, मैं लड़के को ले जाती हूं ।"

तारा जीने की ओर घूम गयी कि लड़के को लेकर भाग जायगी ।

साढ़े नौ-दस तक लोग मुंह मीठा करके चलने लगे । तारा और नरोत्तम को मर्सी ने कह दिया था—"तुम लोग दोपहर का खाना खाकर जाना ।"

तारा ने नरोत्तम से कहा—"यहाँ तीन घंटे कामरेडों की बहस सुन कर क्या करेंगे ? यहाँ तक आये हैं, चाहो तो कंचन के यहाँ हो आयें ।"

तारा ने मर्सी से कह दिया—"हम लोग एक घंटे तक आ जाते हैं। फैज़-बाजार के दूसरी ओर किसी से मिलना है ।"

नरोत्तम तारा के साथ जीना उतर गया । तारा को बैठा कर गाड़ी चालू कर ली । फिर अचानक बोल उठा—"दीदी, इस समय उन के यहाँ जाना ठीक नहीं रहेगा ।"

कंचन के यहां जाने के लिये नरोत्तम की अनिच्छा से तारा को विस्मय हुआ—"क्यों, क्या बात है ?"

"ज़रा गाड़ी उधर निकाल लूं" नरोत्तम सोच में चुप रह गया ।

"क्या बात है ? " तारा ने फिर पूछा ।

"कनक भाभी आयी हुई है ।"

"कब आयीं ?"

"महीना भर हो गया !"

"है; मुझे तो नहीं बताया ?"

"मुझे भी नहीं बताया था ।"

"मालूम कैसे हुआ ?"

"मैं कल संध्या ही उधर गया था । भाभी कुछ खास बोली नहीं, बहुत उदास थीं । पिता जी भी बहुत उदास थे । घर में चुप्पी-चुप्पी थी । कंचन

मुझे गाड़ी तक छोड़ने आयी तो उसी ने बताया कि महीने भर से कनक दिल्ली में ही है। उस रविवार तुम्हारे यहाँ आयी थी, तब तो उस ने कोई जिक्र नही किया था !"

"बिलकुल नही, ताज्जुब है।"

"यही तो मैं सोच रहा हूं। महीने भर से यहां है तुम्हें भी मालूम नहीं। मैंने पूछा—तुम्हारे यहां गयी थीं? कंचन ने सिर हिला दिया। मैंने पूछा, कब तक रहेंगी? तुम्हें खबर दे दूं। उस ने कह दिया, फिर बात करेंगे।"

नरोत्तम गोलना के मोड़ पर बिना घूमे दिल्ली गेट की ओर निकल गया।

तारा ने चिंता प्रकट की—"पता तो करना चाहिये क्या बात है?"

मर्सी के यहां की भीड़ से बचने के लिये नरोत्तम और तारा कनाट प्लेस जाकर ब्नूनाइल में काफी के लिये बैठ गये थे। नरोत्तम ने कहा—"अभी कल ही गया था। इतनी जल्दी फिर चले जाना उचित होगा?"

"किसी बहाने चले जाओ।"

"क्या बहाना हो सकता है?"

"बहाना नहीं मिलता? दो सेर आम खरीद लो। कह देना, मिस देवा ने लखनऊ से भेजे है। थोड़े मैंने कंचन के लिये दिये हैं।"

"तो एक पुर्जा भी लिख दो। आज ही चला जाऊंगा, या कल सही।"

"कैसे सीधे बन रहे हो। जब शरारत करते थे तो किससे पूछते थे?"

"दीदी, वह मूड ही और होता है।"

"सुनो, कल जाना। कह देना, मुझ से कनक के दिल्ली आने की चर्चा की थी। मैंने कहा है कि मैं मिलने आऊंगी। वहां से लौट कर मुझे जरूर बताना। चाहे फोन ही कर देना।"

मर्सी के यहां लौटकर तारा ने कागज लेकर एक पुर्जा लिख दिया। '.......नरोत्तम से सुना है कनक भाभी आयी है। मुझे फोन कर देना कब लौट रही है। उनके लौटने से पहले मिलने आऊंगी।'

सोमवार की संध्या नरोत्तम ने आकर बताया—'कनक भाभी ने जाने की तो कोई बात ही नहीं की। पिता जी बाहर गये हुए थे। मां जी चौके में थी। हम लोग आंगन में बैठे थे। वह तो दिल्ली में ही नौकरी करना चाहती है। कह रही थी, डेढ़-दो सौ की ही मिल जाये। कुछ बात है जरूर। वह यहां स्वयं ही आने के लिये कह रही थी।"

तारा सुनकर बहुत हैरान हुई। चिंता ने दबा लिया, जालंधर में क्या हो गया होगा?

अगले रविवार कनक साढ़े आठ बजे सुबह तारा के यहां अकेले ही आयी। कंचन और जया को साथ नहीं लायी। तारा पंखे के नीचे बैठी केश सुखा रही थी। कनक को बहुत हुलास से आलिंगन में लेकर मिली।

"मुन्नी को नहीं लायी?"

"लौटते में धूप हो जायगी इसलिये नहीं लायी।"

"इतने दिन बाद आयीं? तुम ने यह न कह दिया होता कि स्वयं आओगी, तो मैं कभी की गयी होती।"

"मैं तो खाली बैठी रहती हूं। तुम दिन भर के काम से थकी लौटती हो।"

आगे आने वाली बात की आशंका से दोनों कुछ देर के लिये चुप हो गयीं। तारा ने घर के सब लोगों का हाल-चाल पूछना आरम्भ किया। वह भी हो गया तो फिर मौन। तारा ने पूछ लिया—"नरोत्तम कह रह था, यहां नौकरी कर लेने का विचार है?"

कनक ने गर्दन झुकाकर हामी भरी।

"पर क्यों? अखबार के काम में तो तुम्हें खूब रुचि है।"

"मैं जालंधर में नहीं रह सकती" कनक आंखें फर्श की ओर झुकाकर बहुत गम्भीर हो गयी।

"क्या बात हो गयी? मां ने कुछ कहा? भाभी जानती हो, वह तो...." तारा ने कनक की पीठ बांह में लेकर रहस्य के स्वर में कहा।

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं?" कनक ने टोक दिया और चुप रह गयी।

"तो?"

"मेरे लिए वहां रहना संभव नहीं है। मानती हूं, मेरा ही दोष है। मैं असहिष्ण हूं। 'उनकी' प्रकृति वैसी है। सब लोग उन का आदर करते हैं परन्तु मैं क्या करूं? समझ लो, मैं अपने आप को ही दंड दे रही हूं। पर मैं वहां रह नहीं सकती। सच कहती हूं, मैंने अपने दोष के कारण बहुत सहा है, अब नहीं सह सकती। मुझे उन की कोई बात अनुकूल नहीं लगती। विवाह के छः मास बाद से ही कटुता आरंभ हो गयी थी। पांच बरस निवाहा। अब नहीं सह सकती। निन्दा होगी, हो! मैं क्या करूं?" कनक ने आंचल से मुंह ढक लिया।

तारा कुछ समझी नहीं पर देख रही थी, कनक दुखी थी। उसने कनक के गले में बांह डाल दी और कहा—"चलो भीतर के कमरे में चलें।"

कनक दस मिनट तक रोती रही। भयंकर गर्मी के बावजूद तारा उसे अपने आलिंगन में समेटे रही। कनक कुछ स्वस्थ हुई तो तारा के अनुरोध

पर संक्षेप में मतभेद के कई प्रसंगों के संकेत कर दिये। स्वयं तारा का प्रसंग भी आ गया। गीलो कांड के सम्बन्ध में हुआ झगड़ा भी बता दिया। अंत में कहा—"हम लोगों की रुचि और प्रकृति एक दूसरे के अनुकूल नहीं है। लोक-लाज के लिये जितना निबाह सकती थी, निबाह दिया। अब नहीं निबाह सकती....।"

तारा को भाई के रोष या अप्रसन्नता से कोई भय नहीं था पर अपने सम्बन्ध में भाई की भावना जान कर मन को बहुत चोट लगी। समझ लिया, अब परिवार से मेल की कोई आशा और आवश्यकता भी नहीं है। उसे अपने लिये और सचाई के लिये लड़ने वाली कनक के प्रति ही सहानुभूति थी। सोचती रही, बेचारी गूंगी आज्ञाकारिणी बन कर कैसे रह जाती। ऐसे विवाह से अविवाहित भली। प्रथम आकर्षण कितना भ्रामक हो सकता है! यह बात उस ने कनक से कह दी।

कनक की आंखें फिर छलक आयीं। बताने लगी—"पिता जी, जीजा जी सभी लोग कितने विरुद्ध थे। पुरी के सम्बन्ध में जीजा से झगड़ा और तारा के सम्बन्ध में पुरी के कहे झूठ भी बता दिये। स्वयं पुरी के लिये क्या-क्या किया, स्पष्ट बता गयी और कह दिया—यह सब करके आज मेरी यह अवस्था है। यदि अपने को दबा सकती, मार सकती तो यह विवाह ही क्यों होता?"

तारा ने स्पष्ट कह दिया—"मैं तो तुम्हारा कोई दोष नहीं देखती। तुम ने तब भी ईमानदारी से ठीक किया था और अब भी तुम्हें दोष नहीं दे सकती।"

कनक ने पहली बार किसी के सामने इतनी बात कही और इस प्रकार सांत्वना पाई थी। वह तारा की गोद में सिर रख कर खूब रोयी।

तारा कनक को उस के घर तक छोड़ने गयी। लौटते समय वह उसे भाभी नहीं, प्यार के नाम कन्नी से ही सम्बोधन करके लौटी।

कनक ने अपने पिता से इतना ही कहा था—"मैं अभी जालंधर नहीं जाऊंगी। मन दिल्ली में रहने को करता है। मां की तबीयत ठीक नहीं है। कंचन को तो कालेज जाना पड़ता है। मैं मां के पास रहूंगी। मैं जालंधर में न रहूं तो क्या है? अखबार का ऐसा कौन काम है, दो आदमी वहाँ हैं। कुछ दिन आराम करना चाहती हूं....."

कनक के न कहने पर भी पंडित गिरधारीलाल जी बेटी और दामाद में मनमुटाव भांप गये थे। वह मनमुटाव खिचता जाने से वे चिंतित थे। उन्हें पता लगा कि कनक दिल्ली में नौकरी ढूंढ़ रही है तो और भी चिन्ता हुई।

समझ लिया, बहुत गहरा मनमुटाव हो गया है। बेटी के स्वभाव से परिचित थे, ज़िद् पकड़ लेगी तो परिणाम अच्छा नहीं होगा।

पंडित जी ने पुरी को साहित्यिक शैली में अत्यन्त आत्मीयता से पत्र लिखा—"··· कन्नी मेरी बेटी है और तुम मेरे बेटे हो। मेरे लिये तुम दोनों दो नहीं एक ही हो क्यों कि मैं तुम दोनों के पृथक्-पृथक हित और अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकता। तुम दोनों का कल्याण परस्पर एक और अनुकूल रहने में ही है। तुम्हारी समझ-बूझ और अनुभव अधिक गहरा है। तुम्हारा उत्तरदायित्व मुख्य है इसलिये कनक को तुम्हारे अनुकूल चलना चाहिये। हम तो उसे भरसक समझायेंगे ही लेकिन उसे समझाने और मनाने का अधिकार और कर्तव्य हमारी अपेक्षा तुम्हारा अधिक है। कनक तुम्हारी है। उस के पथ-दर्शक तुम्हीं हो इसलिये उस की भूल और दोष होने पर भी उत्तरदायित्व तुम्हें अपना ही समझना चाहिये। उस की भूलों और हानि से भी तुम्हारी हानि है। उसे आकर ले जाने में तुम्हारा बड़प्पन ही है।···"

पुरी पंडित गिरधारीलाल जी का पत्र पाते ही दिल्ली आया था। उसे आशा थी, पंडित जी के दबाव और उन की सहायता से कनक को वापिस ले जा सकेगा। पुरी के आने पर पंडित जी ने उसे स्थिति समझा देने के लिये एकान्त में बात की—"बरख़ुरदार, घटना और कारण मैं नहीं जानता। मुझे जानने की ज़रूरत भी क्या है?" वे आँखें मीच कर ज़ोर से हंस दिये, "तुम दोनों अब बच्चे नही, सियाने हो।" फिर धीमे स्वर में कहा, "मुझे लगता है कनक का मन बहुत दुखी है। इस स्थिति को केवल तुम्हीं संभाल सकते हो। वह तो यहाँ नौकरी ढूंढ़ रही है। वैसे तो बेटी तारा ने, अपनी भाभी को समझाया ही होगा। वह बहुत नेकबख्त बेटी है। कंची से यह भी मालूम हुआ कि तारा कनक की हमदर्दी में उस के लिये नौकरी भी तलाश कर रही है। तारा बेटी तो सब की मदद करना चाहती है लेकिन कनक की असली मदद तो उसे अपने घर लौटा देने में ही है···"

तारा की इस 'प्रशंसा' से पुरी जल उठा—कनक के लिये नौकरी ढूंढ़ रही है!·······कनक जालन्धर न लौटे! यह हर अवसर पर हम लोगों के विरुद्ध जायेगी! मोहनलाल को उजाड़ा, अब मुझे उजाड़ने की फिक्र में है।····मैं उस का मुंह नहीं देखूंगा!

पुरी ने एकान्त में कनक के सामने उस के प्रेम और त्याग की दुहाई देकर, सभी सम्भव प्रतिज्ञायें करके, आँखों में आँसू भर, कनक के पांव तक छूने का प्रयत्न करके समझाया। कनक न मानी तो पुरी ने क्रोध में तारा के लिये

यहाँ तक कह डाला—"…उस सांपिन के फरेब में पड़ी हो। उस ने किसे बरबाद नहीं किया ? वह तो अजीब मिसएंथ्रोप (मानुषद्रोही) है। परिवारों की बरबादी देखना उस की हाबी (बहलाव) है।…"

पुरी दिल्ली से असफल लौट गया। तारा से वह क्या मिलता ?

दिल्ली जाने और असफल लौट आने से पहले पुरी ने सवा मास तक कनक के जया को लेकर दिल्ली चली जाने की बात दबा रखी थी। मास्टर जी और मां से भी इस बात का जिक्र नहीं किया था। घर में किसी स्त्री के न होने से असुविधा जरूर थी। माई हीरां की समझ और सामर्थ्य बहुत कम थी। पुरी ने मां को माडल-हाउस में बुला लिया था। मां से कह दिया था कि कनक अपनी मां की बीमारी के कारण दिल्ली गयी है। शायद महीना-दो महीना वहाँ रह जाये। उस ने कांता या नैयर से भी कुछ न कहा था। आशा थी, कनक लौट ही आयेगी। पत्नी के उसे छोड़ कर चली जाने के अपमान की बात दबी ही रहेगी।

पुरी को कनक पर नैयर के प्रभाव से पुरानी ईर्षा थी। वह उसी से ही सहायता लेने के लिये मजबूर हो गया था। इस के लिये भी तैयार हो गया कि कनक नैयर के प्रभाव से ही लौट आये। इस से उस का अपमान नैयर तक ही सीमित रहता। पुरी से दोहरे सम्बन्ध के कारण नैयर और कांता का हित भी बात को दबाये रखने में ही था। पुरी ने अपनी कठिन परिस्थिति कांता और नैयर को बता दी :

"…अपनी उग्रता और असहिष्णुता के कारण जरा-जरा सी बातों का बतंगड़ बना कर सवा मास से दिल्ली में बैठी हुयी है। यह कैसे हो सकता है कि मैं पत्र और प्रेस के काम में जरा भी न बोलूं। मै जो कहता हूं, परस्पर हित के लिये, उस के हित के लिये भी कहता हूं। इस में मेरा विशेष क्या है ? रुपये-पैसे के मामले में जो चाहे करती रही है। मकान उसी के नाम है। मैंने सदा उसे अपने से अधिक महत्व दिया है। यदि आप लोग ऐसा ही उचित समझेंगे तो मैं किसी बात में नहीं बोलूंगा। मुझे असेम्बली, कांग्रेस और कमेटियों के कामों से फुर्सत ही कहाँ है। इसी ख्याल से बोल उठता था कि जो इतने परिश्रम से बनाया है, उसे बिगड़ते देख कर दुख जरूर होता है…।"

नैयर ने माथा झुका, उंगली से पलक मलकर सहानुभूति से कहा—"बहुत खेद और चिन्ता की बात है। बहुत विस्मय भी है, मामूली मतभेदों से इतना बवण्डर खड़ा हो गया।"

पुरी ने विश्वास दिलाया—"और दूसरी बात हो ही क्या सकती है ? अगर है तो वह आप दोनों से ही कह दे। यदि मेरा कोई ऐसा दोष है जो मैं नहीं जानता तो मुझे बताया जाय।" पुरी की मुद्रा बहुत ही निरीह और असहाय की सी हो गयी।

नैयर ने सांत्वना दी—"तुम विश्वास रखो, यह सब अस्थायी आवेश की बात है। तुम्हारे अतिरिक्त उस के लिये दुनिया में और है क्या ? भरोसा रखो, उस ने तराजू में एक ओर पूरी दुनिया को रख कर भी तुम्हें भारी पाया है...."

पुरी चाहता था कि कांता और नैयर पारिवारिक सम्मान के ख्याल से दिल्ली जाकर, कनक को समझाकर लौटा लायें। कांता ने पुरी को आश्वासन दे दिया कि वे दोनों, जो भी सम्भव होगा करेंगे। कनक को लाने के लिये दिल्ली जाना आवश्यक होगा तो दिल्ली भी जायेंगे। बात ज़रा भी नहीं फैलनी चाहिये।

नैयर ने कांता से स्पष्ट बात की—"मेरे-तुम्हारे करने से कुछ नहीं होगा। दोनों बिलकुल भिन्न प्रकृति के हैं। ऐसी अवस्था में कनक आदर और श्रद्धा के भाव से ही वश में रह सकती थी परन्तु स्वयं कनक की तुलना में इस आदमी का व्यक्तित्व वैसा नहीं है। उसे यह आदमी यौवन की उग्र उमंग में मिल गया था। अनुरक्त हुयी तो निष्ठा और आत्म-सम्मान की धारणा में, प्रेम की स्वतंत्रता की धारणा में उस ने कुछ भी सुनने-सोचने से इन्कार कर दिया। उस समय इन्हें एक दूसरे को परखने-समझने का अवसर कहाँ था। हम लोगों ने विरोध करके कनक की उग्रता को और बढ़ा दिया था। विवाह हो जाने से पहले एक दूसरे से कितनी बार मिल सके होंगे ? छिप-छिप कर मिलते भी थे तो आवेश की मूढ़ता में, हम लोगों के अन्याय का विरोध करने की उत्तेजना में। वह अवस्था चिरस्थायी तो नहीं हो सकती थी। अब ऐसे ही लड़ते-झगड़ते इन लोगों की जिन्दगी कटेगी।"

नैयर दिल्ली नहीं जा सका। कांता अकेली ही गयी। उसे चिन्ता थी कि आर्थिक कठिनाई में फंसे हुये माता-पिता के लिये और संकट हो गया। इस विषय में पिता जी ने उसे और नैयर को एक शब्द भी नहीं लिखा था। स्पष्ट था कि वे इस स्थिति को बहुत ही अपमानजनक समझ रहे थे। सब दुख अकेले ही समेट लेना चाहते थे। नैयर के विश्लेपण और तर्क से तो परिवार की नाक नहीं बच सकती थी। कनक को समझाना अनिवार्य था। मां कुछ कह ही नहीं सकती थी। ऐसे प्रसंग पर पिता जी भी बेटी से क्या कह सकते थे ?

कनक पिता जी के सामने घुमा-फिरा कर उत्तर देती-देती और पुरी को स्पष्ट उत्तर दे-देकर खीझ चुकी थी। कांता भी उस से बात करने और उसे समझाने दिल्ली आ पहुंची। कांता ने उस से मनमुटाव के असली कारण पूछे।

कनक उस प्रसंग की गहराई में नहीं जाना चाहती थी—"''''ऐसे ही। ''''अपना मन ही तो है।" कह कर टालने लगी।

कांता ने असली बात निकालने के लिये पुरी से सुनी बातें बता कर कहा, "इस में इतनी नाराजगी की क्या बात थी?"

कनक को उन बातों की सफाई, घटनाओं को अपने दृष्टिकोण से बता कर देनी पड़ी। कांता हैरान थी, दोनों की बातों में बहुत अन्तर था परन्तु कांता को तो किसी भी तरह समझौता कराना था। उस ने कहा—"मैं तुम्हारी बात ठीक मानती हूं पर वह तो इन बातों को इतना महत्व नहीं देता। वह तो तैयार है कि तुम चाहो तो वह प्रेस और पत्र के मामले में बोलेगा ही नहीं। मैं तो कहूंगी, तुम अखबार और प्रेस के झगड़ों को छोड़ो। अपना घर संभालो। मुझे तो तुम्हारा घर सदा उपेक्षित ही लगा है। जैसे गुजारा कर लेने के लिये डेरा हो।''''मरने दो 'नाज़िर' को।"

"नाज़िर में उलझी रहती थी इसलिये पाँच बरस काट भी लिये। यह नहीं होता तो दो बरस भी नहीं काट पाती।" कनक ने कह दिया।

"अजीब बातें करती हो। मैं तो कहती हूं, मतभेदों के कारण को ही छोड़ दो। तुम उस की अफसरी के क्षेत्र में दखल ही क्यों दो? केवल घर संभालो। घर को घर बनाओ। मैं भी रहती हूं कि नहीं? पत्नी और घरवाली बनकर रहो।"

"पत्नी के कर्तव्य और पति के अधिकार का ही तो सब से बड़ा झगड़ा है।" चारों सिरे से घिर कर कनक के मुंह से निकल गया।

"क्या कह रही हो तुम?" कांता ने घबराकर पूछा।

"और क्या कहूं?" कनक ने गर्दन झुका ली।

"ब्याह नहीं किया था? तुम उस की पत्नी नहीं हो?" कांता ने विस्मय और क्रोध दबा कर पूछा।

"-हूं, तो क्या करूं; मर जाऊं?" कनक ने फुंकार दबाने का यत्न कर कहा।

कांता ने कुछ सोच कर पूछा—"ऐसी क्या बात है?"

बात कनक के मुंह से निकल गयी थी तो बात पूरी करनी ही पड़ी—"विवाह किया था तो प्रौस, रखैल या क्रीतदासी तो नहीं हूं कि मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं!" वह क्रोध की फुंकार वश नहीं कर सकी।

कांता कई पल सोच में मौन रह गयी। उस ने समझने के लिये पूछा—

"ऐसी क्या बात है। एक ही लड़की तो है। वह चार साल की हो गयी है।"

कनक ने सिर हिला दिया—"पर मैं नहीं चाहती तो मुझे क्यों परेशान किया जाये ? परेशान करना हक बना लिया जाये ?"

कांता ने अविश्वास प्रकट किया—"इस में परेशानी की बात क्या है।" और फिर सहानुभूति से पूछा, "तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है, तुम ने किसी अच्छे डाक्टर से राय ली है ?"

कनक विवश हो गयी, कहना पड़ा—"मुझे क्या तकलीफ है। तकलीफ है तो उन्हीं को होगी; चाहे दिमाग में हो, चाहे मन में हो या शरीर में हो।"

कनक के लिये अब कहे बिना चारा न था। उन की जिद्द पूरी करके सदा पछताना पड़ा है। अजीब सी हालत हो जाती है। अजीब-अजीब नाटक करने लगते हैं। एकदम नाराज और उदास हो जाते हैं। उसी खीझ में कई बार बक दिया, उर्मिला ऐसी थी, वैसी थी; तुम तो ऐसी हो, वैसी हो। सिर के बाल नोचने लगते हैं। मुझे गाली दी, इतनी इंसल्ट की !"

कनक की आंसू भरी आँखें लाल हो गयीं। क्रोध में कह गयी—"फिर मर्दानगी पागल करने लगती है। पति होने का हक दिखाना जरूरी हो जाता है। मैं यह सब कैसे सहती रहूं। मुझ से नहीं होता।"

कांता की गर्दन झुक गयी। मिनिट भर ठोड़ी हाथ में लिये सोचती रही। फिर सहानुभूति और समवेदना के स्वर में बोली—"तुम्हें अपना घर छोड़ने की क्या जरूरत है ? तुम अपने घर में रहो। इस तरह की बात मानने की जरूरत नहीं।"

"पांच साल कोशिश कर ली। जया के होने के पहले से पर वह भी मानने को तैयार नहीं। इस बात में पति-पत्नी के स्वाभाविक सम्बन्ध की जिद्द है। यहां तक धमकी दी कि मैं अन्यत्र सम्बन्ध कर लूं तो कुछ न कहना ? मैंने कह दिया मुझे कुछ बताने की जरूरत नहीं है। तिस पर फिर परेशान करने से नहीं मान सकते।"

कांता ठोड़ी थामे सोचती रही और बोली—"उन्हें कुछ कमजोरी या तकलीफ तो नहीं है ?"

"यह मैं क्या जानूं ? मुझे जरूरत भी नहीं।"

"खैर, यह कैसे सह सकती हो पर कन्नी रहना तो अपने घर में ही चाहिये। इस तरह घर छोड़ जाने में तुम्हारी कितनी बदनामी है। दुनिया क्या कहेगी ?"

"कह तो रही हूं पांच बरस कोशिश की है। दुनिया क्या कहेगी, इसी ख्याल में अपनी मिट्टी खराब करती रही हूं ? मैं नहीं सह सकती !"

कांता क्या कह सकती थी ? कुछ देर चुप रह कर उसने पूछा, "यह उर्मिला कौन है ?"

कनक ने पहली वार जालंधर पहुंचने का आंखों देखा हाल सुना दिया।

कांता ने आंखें फाड़े, गाल पर उंगली रखे सांस रोके सुना। सुन कर कनक को फटकारा—"फिटे मुंह तेरा। आंखों देख कर भी तू जीती मक्खी निगल गयी। वड़ी समझदार, स्वाभिमानी वनती थी ? तुझे कुछ भी ख्याल न आया ?"

कनक की आंखों से आंसू झर रहे थे। होंठ काट कर गहरे निश्वास से कहा—"उन्होंने रो-रोकर ऐसी वातें वनायीं !··· दोष तो मेरा ही था। उस समय मैं उन पर अविश्वास कर ही नहीं सकती थी।"

कांता कनक को लौटाने में असफल जालंधर लौटी। उस ने नैयर को सव हाल वता दिया।

नैयर स्थिति का रहस्य सुन कर चिंता से वोला—"मुझे उन की प्रकृतियों का भेद स्पष्ट दीखता था इसलिये सोच लिया था, कनक ने अपनी जिद्द पूरी की है पर अव उसका जीवन झगड़े-झंझट में ही वीतेगा। हजारों का ऐसा ही वीतता है। सुभद्रा का भी यही हाल था पर उसने परिस्थितियों को अनिवार्य समझ कर, अपने आपको ढाल लिया है लेकिन इस असहाय स्थिति का तो अनुमान नहीं था। हो सकता है, उर्मिला की अतृप्त चाह ने पुरी के मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव छोड़ दिया है कि उसे छीन लेने वाले कारण के प्रति मस्तिष्क में गहरी घृणा वैठ गयी है। पुरी कनक से वदला लेने के लिये ही ऐसा करता है, फिर अपने प्रति घृणा अनुभव करता है। यह भी संभव हो सकता है कि कनक कद-काठ से पुरी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ है। पुरी दोनों में सामंजस्य न हो सकने से आत्मग्लानि और अपने पौरुष का अपमान समझता है। उस आत्मग्लानि और अपमान को धो देने के प्रयत्न में और अपमानित हो जाता है। दोनों भिन्न प्रकृति के है, यह तो स्पष्ट दीखता था। जिन्दगी मनमुटाव में ही समाप्त हो जाये यह कुछ अच्छा नहीं है परन्तु दोनों की उपस्थिति भी तो एक दूसरे के लिये सह्य नहीं होगी······।

"क्या मतलव ?" कांता ने चिंता से पूछा।

"यही कि यह घृणा तो पुरी और कनक को संतोष नही दे सकती। घृणा कष्ट ही देती है। घृणा को भुलाने और सन्तोष पाने की इच्छा तो स्वाभाविक है। यदि पुरी कहीं और उलझ गया या उर्मिला को ले आया तो इतना ववंडर खड़ा नहीं होगा परन्तु यदि वह कहीं और उलझ गयी तो ?"

"तुम क्या बका करते हो ? अपनी लड़की-बहन के लिये कोई ऐसा सोचता है ?"

"मुझे कनक के लिये सदा से ममता है इसीलिये यह सोच रहा हूं।"

"बेचारी बदकिस्मत है। उसके लिये ऐसी बात कहने की क्या जरूरत है ?"

"हमारी बहिन है तो क्या हुआ, है तो मानव शरीर। जो कुछ हमारे लिये स्वाभाविक है, उस के लिये भी है। यदि वह दब कर आत्म-हनन कर सकती तो केवल सहानुभूति से, दुःखी हो लेने से काम चल जाता। वह उग्र है, साहसी है। साहस के दो कदम उठा चुकी है। कोई और ख्याल दिमाग में आ गया तो क्या दब जायेगी ? मुझे तो स्वयं चिंता है कि तब हमारी क्या स्थिति होगी ? सदा उस का विरोध ही करना होगा ?"

कांता गहरा निश्वास लेकर मौन रह गयी थी।

नरोत्तम के आग्रह से तारा कभी-कभी उस के साथ क्लब चली जाती थी परन्तु अब नरोत्तम को भी क्लब का उतना उत्साह नहीं रहा था। पिछले वर्ष नवम्बर में कनक तारा के यहाँ आयी थी तो तारा ने उस के साथ जाकर उस का घर देख लिया था। कंचन तारा के यहाँ आने-जाने लगी थी। नरोत्तम से मिलना-जुलना हो गया था। कंचन नरोत्तम से तारा के यहाँ ही मिलती थी। दोनों का ढंग ऐसा था कि तारा को आपत्ति नहीं थी। उसे अच्छा ही लगता था।

तीन-चार सप्ताह से तारा समय मिलने पर कनक को नौकरी दिला सकने के लिये घूमती रही थी। क्लब का ध्यान क्या आता ?

जुलाई के अंतिम शनिवार नरोत्तम ने कहा—'कपूर ने मुझ से तुम्हें क्लब में लाने का बहुत आग्रह किया है ......।"

"मेजर क्या बोलना माँगता ?"

मेजर कपूर से तारा क्लब में तीन-चार बार मिल चुकी थी। वह प्रायः अंग्रेजी में बात करता था। नौकरों-चाकरों से हिन्दी बोलने की मजबूरी होने पर वह अंग्रेजी व्याकरण और अंग्रेजी उच्चारण से बोलता था। व्यवहार उस का बहुत संयमित था। तारा के शब्दों में—ज्योमैट्रिकल मैनर्स (रेखागणित के अनुसार व्यवहार) !

नरोत्तम ने बताया—"कपूर की बहिन मिसेज खन्ना और कर्नल खन्ना तुम्हें जानते हैं। वे लोग तुम से क्लब में मिलना चाहते हैं।"

कर्नल खन्ना और मिसेज खन्ना से तारा का परिचय वैशाखी के अवसर पर 'पंजाबी 'एसोसिएशन' के वार्षिक भोज में हुआ था। परिचय डाक्टर

नाथ ने ही कराया था। उस के बाद एक बार क्लब में और एक बार अगर-वाला साहब के यहाँ भी भेंट हुई थी।

क्लब में मिसेज खन्ना के अनुरोध पर तारा को भी तम्बोला में शामिल होना पड़ा। भाग्य से या दुर्भाग्य से तारा का 'स्नोबाल' आ गया था। तारा क्लब की मेम्बर नहीं थी। नरोत्तम ने अपने और तारा के लिए, दो-दो रुपये के दो कार्ड ले लिये थे। तारा उसी के कार्ड पर खेल रही थी। नरोत्तम ध्यान भी रखे था कि तारा कोई नम्बर चूक न जाये। नरोत्तम को तारा के हाथ के कार्ड पर एक सौ चौंसठ रुपये मिल गये। नरोत्तम रुपये ला कर तारा के हाथ में देने लगा।

तारा ने हाथ पीछे हटा लिया—"कार्ड तुम्हारा था।"

"मै अपने कार्ड के दो रुपये रख लेता हूं" नरोत्तम ने दो रुपये निकाल कर शेष रुपया तारा की गोद में डाल दिया। तारा मजबूरी में नोट समेट कर बटुये में रखने लगी।

मिसेज खन्ना ने कह दिया—"मिस तारा को डिनर खिलाना चाहिये।"

"वाह, मिस तारा क्यों खिलायें, वह तो गेस्ट हैं!" कपूर ने आपत्ति की।

"तो वह और नरोत्तम जानें। इतना बड़ा स्नोबाल आया है, इस का जश्न तो होना ही चाहिए!" मिसेज खन्ना ने आग्रह किया।

नरोत्तम ने कन्नी काटी—"मुझे क्या मिला?"

तारा ने बटुआ अभी बन्द नहीं किया था। तुरंत रुपये निकाल कर नरोत्तम के सामने रख दिये।

"लो, चोर पकड़ा गया।" मिसेज खन्ना ने नरोत्तम को चिढ़ाया।

"ओफ! तुम हमेशा उलझा देती हो।" नरोत्तम ने तारा पर झल्लाहट दिखायी। फिर स्वीकार कर लिया, "अच्छा, डिनर हो जायगा।"

"नो!" कपूर ने सिर हिला दिया, "रुपया वापस करो! कार्ड तारा जी ने भरा है, डिनर का बिल तुम्हें देना चाहिये। एटीकेट का कुछ तो खयाल करो।"

"पर मैंने तो कार्ड नरोत्तम के लिये भरा था" तारा बोली, "प्रेक्टिस और एटीकेट है कि गेस्ट के कार्ड पर प्राइज मिले तो प्राइज गेस्ट का होता है। इसे दो रुपये भी वापिस करने चाहिये।" कपूर ने आग्रह किया।

"खूब फंसे।" मिसेज खन्ना ने नरोत्तम को चिढ़ाया।

"सुनिये, मिस तारा क्लब में गेस्ट हैं। वह 'पेलेस' में डिनर दे देंगी" नरोत्तम ने जान बचायी।

"बिल्कुल ठीक है।" तारा ने समर्थन कर दिया।

"यह कैसे हो सकता है? गेस्ट से प्राइज़ लेना जेंटलमैन का कायदा है?" कपूर ने नरोत्तम को आंखे दिखायीं।

"तुम्हें मतलब? यह हमारा भाई-बहन का मामला है।" नरोत्तम ने कहा और तारा की ओर देखा, "क्यों?"

"हां-हां बिल्कुल ठीक है।" तारा ने हामी भरी।

कपूर अपनी हार से खिसिया गया—"पक्का बनिया है साला!" उस के मुख से निकल गया।

"देखो, देखो! इस की बत्तमीजी?" नरोत्तम ने तारा से शिकायत की। तारा मुस्करायी तो पर चेहरा गुलाबी हो गया।

मिसेज़ खन्ना खिल उठीं।

कपूर ने बहुत विनय से अंग्रेजी में क्षमा मांगी। उस के चेहरे पर सचमुच पश्चाताप की छाया आगयी थी—"मिस तारा, मुझे असीम खेद है। अभद्र शब्द के लिये क्षमा चाहता हूं। मैंने तो सिर्फ इसे ही गाली दी थी। ऐसा आदमी आप का भाई कैसे हो सकता है? आप ही कहिये यह बहुत बदमाश है न?"

तारा ने मुस्कराकर कह दिया--"भाई तो भाई है।"

"अब कहो!" नरोत्तम ने कपूर को चिढ़ाया।

डिनर के लिये तारा को नरोत्तम, कपूर, कर्नल खन्ना और मिसेज खन्ना के साथ पैलेस में जाना पड़ा। सवा ग्यारह तक डिनर समाप्त हुआ। तारा महंगे रेस्तरां के ढंग और खर्च से बिल्कुल अपरिचित नहीं थी। फिर भी बिल सामने आने पर विस्मय हुआ। तीन पुरुषों और एक महिला के लिये शराब का बिल बावन रुपये और पांच व्यक्तियों के लिये भोजन का बिल चवालीस रुपये। तारा ने दस-दस के छः और पांच नोट बिलों के साथ तश्तरियों में रख दिये थे।

नरोत्तम ने तारा के कान में कह दिया—"चेंज टिप के लिये रहने दो।"

एक सौ चौसठ में से एक सौ दस रुपये एक भोजन में समाप्त हो गये।

मिसेज खन्ना और कर्नल खन्ना ने विदाई लेने से पूर्व तारा से वचन ले लिया कि अगले सप्ताह रविवार दोपहर का भोजन वह उन के यहां करेगी। कपूर या नरोत्तम उसे छावनी ले जायेगा।

तारा के लिये एक सौ दस रुपये उपेक्षा की चीज़ नहीं थे परन्तु उन रुपयों के लिये उसे कोई मोह या चिन्ता नहीं थी। उस में से भी चौवन उस

के बटुये में शेष थे। उन पर भी उस की ममता नहीं थी पर सोचे बिना न रह सकी। एक सौ दस रुपया, एक सौ दस रुपया होता है। साधारण सरकारी क्लर्क इस से बहुत अधिक नहीं पाता। पाँच आदमियों के एक बार खाने-पीने में उड़ गये। चौदह रुपये बख्शीश। बैरे को रोज एक भी ऐसा ग्राहक मिले तो सरकारी डाक्टर की आरम्भिक तनख्वाह से अधिक आमदनी है। यह क्या तमाशा है?

तारा नरोत्तम के साथ गाड़ी में लौटती हुई सोच रही थी, कैसी विषमता है? हाल के दूसरे कोने में जमी पार्टी में उस ने मिस्टर सरन को पहचान लिया था। सरन भी उस के साथ ही सिलेक्शन में आया था। दोनों उद्योग-व्यापार के सचिवालय में थे। सरन ने पहचान की मुस्कान से तारा का अभि-नन्दन भी कर दिया था।

तारा नरोत्तम से बात किये बिना न रह सकी—"चार हजार या डेढ़-दो हज़ार पाने वाले सरकारी अफसर भी इतना व्यय कैसे कर सकते हैं?"

"अपनी जेब से कौन करता है?" नरोत्तम ने कह दिया, "यह सब खर्च व्यापारियों और उद्योग-धंधों के मालिकों के सिर चलते हैं। उन्हें पांच सौ खर्च करके एक परमिट या एक लाइसेंस मिल जाये तो समझो दफ्तर जाने के लिये टैक्सी का किराया दे दिया। ऐसी पार्टियां व्यवसाय का ढंग मात्र हैं। ईमानदारी की कमाई से यह खर्च नहीं चल सकते।"

अगस्त के दूसरे रविवार तारा दोपहर के भोजन के लिये कर्नल खन्ना के यहाँ छावनी गयी तो मिसेज़ खन्ना ने उसे नरोत्तम के साथ लौटने नहीं दिया। संध्या की चाय के लिये रोके रही। संध्या वर्षा होने लगी थी। वर्षा में कर्नल और मिसेज खन्ना घर से क्या जाते? मेजर कपूर अपने जीजा की गाड़ी में तारा को घर पहुँचाने गया। कपूर गाड़ी चला रहा था। तारा उस के साथ बैठी थी। कपूर रास्ते में उसे अंग्रेजी उच्चारण से अंग्रेजी में आसाम की वर्षा के अनुभव सुना रहा था।

तारकोल बिछी सड़क वर्षा के जल से फिसलनी हो गई थी। कपूर की गाड़ी के सामने, पचकुइयाँ रोड के मोड़ पर आगे-पीछे चलते दो टांगे दिखाई दिये। अगले टांगे का घोड़ा सुम फिसल जाने से गिर पड़ा और टांगा लुढ़क गया था। टांगे में जनानी सवारियां थीं। साइकिलों पर जाते तीन युवक और पिछले टांगे की मर्दानी सवारियाँ हल्की बूँदा-बांदी की परवाह न कर, टांगे को संभालने में सहायता देने के लिये रुक गये थे।

कपूर ने सड़क पर रुकावट देख कर गाड़ी धीमी कर ली थी । सड़क के बीचों-बीच लग गई भीड़ के कारण गाड़ी के लिये बहुत कम मार्ग रह गया था । कपूर ने रास्ता रोक लेने वालों के प्रति दबे अस्पष्ट स्वर में असंतोष प्रकट किया । धीमे-धीमे दो बार हार्न बजा कर चेतावनी दी । बहुत धीमे और सावधानी से बायीं ओर के फुटपाथ से गाड़ी चिपकाकर निकल जाने का यत्न किया । इस पर भी उस की गाड़ी का मडगार्ड सड़क के बीचोंबीच लेटा दी गई एक साईकिल के पहिये से छू गया और साइकिल ठिल गयी ।

"आईम सो''''" कपूर के मुख से बात निकल नहीं पायी थी कि टांगे की सहायता में लगे लोग पलट कर गाड़ी पर झपट पड़े । दो जवान गाड़ी के सामने हो गये । तीसरे ने अपनी साइकिल को उठाकर देखा । साइकिल पैंडल की धुरी पर आगे बढ़ गयी थी कुछ नुकसान नहीं हुआ था परन्तु नौजवान लड़ने के लिये गाड़ी की खिड़की के समीप आगया—"अंधे हो, दिखाई नहीं देता !"

दूसरे लोग भी नौजवान की तरफ से बोलने लगे ।

तारा ने देखा, कपूर का चेहरा तमतमा गया था । उसे स्वयं भी खिन्नता और घबराहट हुई । कपूर ने क्रुद्ध परन्तु संयत स्वर में प्रतिवाद किया—"आप को गाड़ी आता नहीं दीखता है । सब सड़क ब्लाक कर देगा ! दो बार हार्न दिया तो भी नहीं सुनता है !"

"हार्न का बच्चा !" गाड़ी को घेरे लोगों मे से एक ने लड़ने के लिये आगे बढ कर धमकाया ।

कपूर ने फुंकार छोड़ कर गाली देने वाले को घूर कर देखा । स्पष्ट था गाड़ी को घेरे लोग लड़ने पर उतारू होकर, कपूर का अपमान कर रहे थे ।

कपूर ने दांत पीस लिये । उन लोगों के बकने की परवाह न कर गाड़ी स्टार्ट कर दी । कपूर कुछ बोल न सका । तारा उस के अपमान की वेदना को अनुभव कर रही थी । विशेष कर एक युवती के सामने अपमानित होने की वेदना को ।

कपूर गाड़ी को सड़क से दुकानों के सामने ले आया और गाड़ी को गली के मुहाने के भीतर तक ले गया । तारा गाड़ी से ही नीचे की कुर्सी पर पांव रख सकती थी परन्तु जीने की दहलीज तक, फुट भर जगह में तारा पर वर्षा की बूंदें पड़ जातीं ।

कपूर ने अनुरोध कर तारा को गाड़ी से निकलने न दिया । स्वयं जीना चढ़ गया । परसू से तारा का छाता मांग लाया । स्वयं भीगते हुए तारा के

लिए छाता ताने खड़ा रहा। तारा को गोद के बच्चे या बीमार की तरह सहायता की जाने में संकोच अनुभव हुआ पर क्या करती ?

"आइये, कुछ देर बैठिये!" तारा ने कपूर पर हुए अन्याय की सहानुभूति में और शिष्टाचार से अनुरोध किया।

"अभी आप थकी हुई हैं।" कपूर ने कहा, "यदि आप को असुविधा न हो ?'

"नहीं, जरूर बैठिये, थके तो आप हैं। गाड़ी तो आपने चलायी है।"

कपूर ने कुर्सी पर बैठते ही गहरी सांस लेकर कहा—"बताइये, क्या यह उन लोगों की गुंडागर्दी नहीं थी ?"

"निश्चय ही उन लोगों का व्यवहार बहुत अनुचित था। आप ने बहुत संयम से काम लिया—मैं तो डर गयी थी।"

"यह हुआ है स्वराज्य का परिणाम!" कपूर ने क्रोध दबा कर कहा, "सब ओर अनुशासन की अवज्ञा और धृष्टता का अधिकार। लोग-बाग इसी को स्वतंत्रता समझते हैं।"

"अनुशासन की अवज्ञा, धृष्टता और अविनय तो अच्छी बातें नही हैं" तारा ने खिन्न कपूर का मन रखने के लिये पूछा, "चाय लेंगे, मंगवाऊं ?"

"नहीं-नहीं! अभी पीकर आये हैं। मुझे नहीं चाहिए। आप की इच्छा हो तो लीजिये!" कपूर उठ जाने के लिये सिमिट गया, "आप विश्राम कीजिये। इस समय आज्ञा लूंगा। आप से बातचीत का सुख पाने के लिये फिर कभी आऊंगा।"

कपूर चला गया। खिड़की से आती शीतल नमी से पंखे की हवा सुहावनी लग रही थी। तारा छोटे सोफा पर अधलेटी सोचने लगी—सड़क पर लोगों का व्यवहार निश्चय अनुचित था परन्तु कपूर भी क्या चाहता है ? मिसेज अगरवाला की और श्यामा की भी बातें याद आने लगीं। मोटर पर चलने वालों को पैदल और साइकिल वालों का व्यवहार सदा विरोधी ही क्यों लगता है ? उस ने जीवन के चौबीस साल पैदल चलकर ही बिताये थे। वह मिसेज अगरवाला की बात स्वीकार कर लेने के लिये तैयार नहीं थी कि पैदल लोग केवल मोटर वालों को परेशान करने के लिये ही, घर से निकल कर सड़क पर आ जाते हैं। उस ने बचपन से अब तक कितनी ही बार मोटर सवारों को पैदल चलतों पर बेपरवाही और अहंकार से धूल और कीचड़ फेंक कर निकल जाते देखा था। साइकिल-टांगे वालों को मोटरों से नुकसान पाकर विवश मौन रह जाते देखा था। शायद मोटर सवार यह सब नहीं देख पाते! या अब लोग पहले की तरह दब जाने के लिये तैयार नहीं हैं। या मुद्दतों दबाव

सहने के बदले में अब धमका देना चाहते है कि वे नहीं दबेंगे। कपूर यदि कह देता––मेहरबानी करके साइकिल हटा लीजिये……।

तारा को याद आ गया––मिसेज अगरवाला को उस के नयी मोटर खरीद लेने का समाचार मिला था तो उन्होंने फोन पर उलाहना दिया था––बहुत-बहुत बधाई! हमें अपनी गाड़ी नही दिखाओगी? हम भी खुश हो जाते! मिसेज अगरवाला के सामने अपनी गाडी पर जाने में तारा को झेंप लगती थी परन्तु बुलाने पर न जाना तो अहंकार होता। वह कोठी पर गाड़ी ले गयी तो ड्राइवर कृपालसिंह ही चला रहा था।

मिसेज चौसिया और मिसेज भंडारी भी कोठी पर आयी हुयी थी। सभी ने गाड़ी को बहुत सराहा। दाम-वाम सब कुछ पूछ लेने पर फिर मोटर सवारों के प्रति पुलिस की ज्यादतियों और पैदल भीड़ के विरोध की चर्चा होने लगी। मिसेज भंडारी ने समर्थन किया—"यह अच्छा है कि ड्राइवर है। खुद ड्राइव करने मे तो अब बड़ा खतरा है। बात-बात पर लोग झगड़ने को तैयार रहते है। गलती पैदल या साइकल-टाँगे की हो तो भी मोटर वाले पर हाथ चला देगे। ड्राइवर चला रहा हो तो फिर कुछ तरह दे जाये। स्टियर पर मालिक हो तो कभी नही छोड़ें। मारपीट किये बिना नही मानेगे। कम से कम गाली तो दे ही देगे। क्या जमाना आ गया है……?"

तारा ने सोचा—"ड्राइवर हो तो फिर कुछ तरह दे जाये पर मालिक को कभी नहीं छोड़ें…!" यह क्यों? यह क्या श्रेणी का दृष्टिकोण नही है?…. खैर, मैं ऐसे चक्कर से बची ही रहूं।

मेजर कपूर किसी दिन बातचीत के लिये आने की बात कह गया था। शनिवार उसने तारा को फोन किया– यदि दोपहर बाद सुविधा हो तो कुछ समय के लिए आ जाये। तारा ने सुविधा बतायी। कपूर ने साढ़े पाँच का समय बताया था।

तारा को अपने कपड़े स्वयं सीने का शौक था। दर्जी से सिलाये कपडो से सन्तोप नही होता था। अब वह सलवार-कमीज नही पहनती थी। केवल कभी-कभी ब्लाउज या जम्पर सी सकने के लिए मशीन खरीद लेना फिजूल-खर्ची जान पड़ी परन्तु मन नही माना। कढ़ाई के पुर्जे भी खरीद लिये थे। मेजपोश वगैरह काढ लेती थी। मर्सी के लड़के, शीलो की मुन्नी और मेहता की लड़की 'लिटल तारा' के लिये कुछ बना सकती थी।

मशीन खरीद लेना तारा के लिये मुसीबत बन गया था। मेहता की

पत्नी या बहन तो हर महीने सप्ताह भर के लिये मांग ले जाती थीं। तारा उन्हें मशीन देती थी तो दूसरे पंजाबी पड़ोसियों को कैसे इनकार कर देती। गनीमत यह थी कि मशीन केवल पंजाबी ही मांगते थे। यू० पी०, बंगाली, महाराष्ट्र लोगों को ऐसी कोई आदत नहीं थी। पड़ोसियों के यहाँ से लौटी मशीन को स्वयं चलाना चाहती तो आधे घंटे तक सफाई करनी पड़ जाती।

दफ्तर से लौट कर तारा ने कुछ देर विश्राम किया। आधे घंटे तक मशीन को तेल दे कर सफाई की और ब्लाउज सीने बैठ गयी। ब्लाउज पूरा नहीं कर पायी थी कि तिपायी पर रखी घड़ी में पाँच-पच्चीस हो गये। सोचा, कपूर आता होगा, तैयार हो जाये। परसू को पुकार कर दुकान से कुछ ले आने के लिये कह दिया। तारा ब्लाउज पूरा कर कंधे का बखिया समाप्त कर देना चाहती थी।

बैठक की ओर से धीमी, गंभीर आवाज अंग्रेजी में सुनाई दे गयी—"आ सकता हूं ?"

तारा की नजर फिर टाइमपीस की ओर चली गयी। साढ़े पाँच बज कर तीस सेकिंड भी नहीं हुए थे। तारा को लगा, कपूर डाकगाड़ी की तरह समय पर आया हो या घड़ी पर नजर लगाये सड़क पर खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। परसू अभी सीढ़ियाँ उतर कर गया ही था। बहुत संकोच अनुभव हुआ परन्तु जैसे थी वैसे ही आँचल संभाल कर जाना पड़ा—मन ही मन कटी जा रही थी। नरोत्तम, चड्ढा, माथुर या मेहता के सामने ऐसे चली जाती तो कोई बात नहीं थी परन्तु कपूर का व्यवहार बहुत औपचारिक था।

कपूर तारा के बैठ जाने के बाद कुर्सी पर बैठा। तारा ने मन का संकोच मिटाने के लिये कह ही दिया—"खयाल न कीजियेगा, घर के काम में उलझी हुयी थी। पता ही नहीं लगा साढ़े पाँच कब बज गये।"

"हो सकता है, मेरी घड़ी तेज़ हो। कुछ जल्दी ही तो नहीं आ गया हूं ?" 'कपूर ने शिष्टता से दोष अपने ऊपर ले लेना चाहा।

"साढ़े पांच तो बज गये हैं। मैं ही सिलाई में उलझी रही। धूल-गरद से भरी हूं। आशा है आप मुझे फूहड़ नहीं समझेंगे।" तारा ने मुस्करा दिया।

"ओह, नो नो ! ऐसी तो कोई बात नहीं है" कपूर ने विश्वास दिलाया, यही तो, ऐसा—आई मीन यदि आप कहने की अनुमति दें, स्वाभाविक व्यवहार ही तो व्यक्तित्व को प्रकट करता है।"

"आप की उदारता के लिये धन्यवाद।" तारा ने भी औपचारिक मुस्कान से उत्तर दे दिया।

कपूर ने छोटी मेज़ पर पड़े 'लिटररी डाइजेस्ट' की ओर संकेत किया, "आप नियमित रूप से इसे पढ़ती हैं ?"

"नियमित रूप से तो नहीं, नोतन छोड़ जाता है तो पढ़ लेती हूं ।"

कपूर पत्रिका उठा कर उस के पन्ने फरफराते हुये बोला—"यह अंक अभी मैंने नहीं देखा परन्तु प्रायः पढ़ लेता हूं । मुझे काफी पसन्द है ।"

"जी हां, रोचक ढंग से हल्की-फुल्की संक्षिप्त सामग्री अच्छी रहती है।"

कपूर ने भौं उठा कर सोचा परन्तु तुरन्त स्वीकार कर लिया—"बिल्कुल यही अभिप्राय है ।"

कुछ और हल्की-फुल्की बातचीत के बाद तारा ने अनुरोध किया--"इस समय तो एक प्याली चाय लीजियेगा न ?"

"मै तो चाय पीकर आया हूं । आप कष्ट न कीजिये । हाँ, अगर आप लेंगी तो मैं साथ दे सकता हूं ।"

चाय पीते हुए कपूर फिर साहित्यिक बात करने लगा । उस ने शा, मोपासां, माहम, सार्त्र और उन की कुछ पुस्तकों का ज़िक्र किया । सार्त्र की गहराई को सराहा और तारा का विचार जानना चाहा । कपूर ने गंभीरता से सुन सकने के लिये तारा से अनुमति लेकर सिगरेट जला ली ।

तारा ने सार्त्र का एक ही उपान्यास पढ़ा था । उस ने सराहना कर कहा, "....मुझे ऐसा लगा, वह अपनी मानसिक उलझन से मार्ग ढूंढ़ने की अपेक्षा साहस से, उलझन के भंवर के केन्द्र में समा जाने में ही त्राण समझता हो । क्षमा कीजिये, मै अपनी बात ठीक से नहीं कह सकती । मेरा अध्ययन बहुत कम है ।"

'नो, नो, आप ने बहुत अच्छा विश्लेषण किया है ।" कपूर ने सराहना की, आप की पहुंच साहित्य की आत्मा तक है । नरोत्तम तो आप की साहित्यिक परख का बहुत कायल है ।"

"उस का क्या है ? वह तो बहुत अत्युक्ति करता है । खुद भला है तो सभी की प्रशंसा कर देता है ।"

"नहीं, नहीं साहित्य तो आप का पारिवारिक गुण है । मुझे नरोत्तम ने बताया है--आप के भाई बड़े लेखक हैं, पत्र के सम्पादक है, विधान सभा के मेम्बर हैं । आप का परिवार तो कला-संस्कृति का पलना है ।"

"भाई तो ज़रूर प्रसिद्ध लेखक हैं । मेरी भाभी भी अच्छी लेखिका है परन्तु मैं साहित्य को उतना नहीं समझती । अर्थशास्त्र की विद्यार्थी थी ।"

कपूर साहित्य से फिल्मों की चर्चा पर आ गया और कुछ संकोच से बोला,

"यदि आपका दूसरा कार्यक्रम न हो और असुविधा न हो तो हम लोग साढ़े छः बजे से 'मादाम सुपोरी' देख लें।"

"असुविधा तो क्या बहुत अच्छा रहता परन्तु आज संध्या एक सहेली की प्रतीक्षा है।"

कपूर ने पौने सात बजे बहुत देर तक बैठे रहने के लिये क्षमा चाही। बताया, वह अफसरों के 'मेस' मे रहता है। क्लब में या बहिन के घर तारा के दर्शन पाने की या स्वयं तारा के यहाँ आ सकने की आशा प्रकट करके, बहुत विनय से नमस्कार कर चला गया।

कपूर डील-डौल और रंगरूप से सुदर्शन था। तारा को अच्छा लगता था परन्तु उस के अति सावधान व्यवहार से तारा को भी सावधान रहने, थकावट अनुभव हुए बिना न रहती थी।

तारा दफ्तर से लौट कर बैठी ही थी कि फोन बज उठा।

"तारा जी घर पर है ?" आवाज आयी।

'नमस्ते मिसेज खन्ना ! कहिये, मैं ही बोल रही हूं।"

"भई मैं तो प्यार से तारा ही कहूंगी। तुम से बड़ी हूं। तुम चाहे निम्मी दीदी कह लिया करो।"

"जरूर, जरूर दीदी !"

"मैं शापिंग के लिये कनाट प्लेस आ रही हूं। तुम ने उस दिन राजा को बहुत सिर चढ़ा लिया। तब से 'तारा आंटी !' तारा आंटी !' की रट लगाये है। भूलता ही नही। तुमसे मिलने आ रहा है। हम लोग सात बजे आजायें ?"

"दीदी, जरूर आइये ! मैं प्रतीक्षा करूंगी।"

मिसेज खन्ना राजेश्वर के साथ आयी। तारा ने राजा की खूब खातिर की प्यार भी किया। राजा अपने नये खरीदे चाबी से चलने वाले 'मेरी-गोराउंड' खिलौने में ही मस्त था परन्तु मिसेज खन्ना ने बहुत हिल-मिल कर बातें कीं। मिसेज खन्ना चलने लगी तो तारा ने शिष्टाचार से कहा—"जल्दी क्या है खाना खाकर जाइयेगा। एक दिन रूखा-सूखा ही सही।"

मिसेज खन्ना बोलीं—"बल्कि तुम मेरे साथ चलो, यहां अकेली बैठी हो, वहां ही खा लेना। दस बजे तक पहुंचा देंगे।"

"दीदी, फिर सही" कह कर तारा ने उस समय छुट्टी ले ली परन्तु मिस्टर और मिसेज खन्ना का स्नेह ऐसा था कि तारा को अगले रविवार उन के साथ ओखला पिकनिक पर जाना पड़ा।

पहली अक्तूबर की संध्या तारा दफ्तर से लौट, चाय पीकर, कमर सीधी करने के लिये सुबह का अखबार लेकर लेट गयी थी। सवा छः बजते देख कर उठ गयी। पूरणदेई को बुला कर कहा—"बुआ, म आज मिसेज खन्ना के साथ छावनी जा रही हूं, वहाँ ही खाऊंगी; सुबह लौटूंगी। मेरी फिक्र न करना। तुम अपनी सुविधा से जो चाहो बना लेना।"

तारा रात पहनने के लिये धोती और दूसरे दिन बदलने के लिये कपड़े समेट कर अटैची में रख लेना चाहती थी। मिसेज खन्ना उसे सात बजे लेने आने वाली थी। उस ने बहुत खुशामद की थी। मैं अकेली हूं, तुम्हें कल दफ्तर की छुट्टी है।

कर्नल खन्ना चार दिन के लिये लखनऊ गया हुआ था। रात खाने पर कपूर भी आने वाला था। तारा को रात घर से बाहर रहने के विचार से कुछ झिझक जरूर थी परन्तु कर्नल के बंगले के खूब खुले, फुलवाड़ी से भरे हाते की ठंडक में बैठना और टहलना भी अच्छा लगता था। अन्तर भी क्या था, यहाँ बुआ थी, वहाँ निम्मी दीदी थी।

फोन बज उठा। तारा ने उत्तर दिया—"हलो ?"

तारा पुलक उठी। डाक्टर नाथ की आवाज़ थी।

डाक्टर ने पूछा—"क्या हाल-चाल है ? मैं परसों आ गया था। दफ्तर से चल रहा हूं। तुम घर पर हो ?"

"जी हाँ" तारा के मुख से निकल गया। फिर सोचा, निम्मी दीदी तुरन्त ही न आ जाये।

तारा जानती थी डाक्टर नाथ दफ्तर में चार-पाँच बजे के बीच कैंटीन से चाय मंगवा लेता था। फिर भी तुरन्त चाय का पानी रखवा दिया। डाक्टर दस ही मिनट में आ गया। इस बार भी छोटे मेज़पोश में बंधी दो-अढाई सेर की गठरी लिये था। गठरी के आकार से ही स्पष्ट था कि फल थे। पहाड़ पर रहकर आने से डाक्टर का स्वास्थ्य अच्छा लग रहा था।

तारा ने सेवों की गठरी डाक्टर के हाथ से ले ली। बैठी तो गठरी को गोद में लिये रही।

डाक्टर ने पूछा—"सुनाओ, क्या हाल-चाल रहा।"

"बिलकुल ठीक। नरोत्तम ने कई बार कहा कि अगरवाला साहब आप को बहुत पूछते रहते हैं। सोनवां से आप के भाई साहब आये थे। अगरवाला साहब के यहाँ ही ठहरे थे।"

"कौन आया था, बृजकिशोर या राधाकृष्ण ?"

तारा को नाम मालूम नहीं था। उस ने शिकायत की—"इस बार तो आप ने एक भी पत्र नहीं लिखा?"

"हूं, और तुम ने?"

"डाक्टर साहब, मैं क्या लिखती? कुछ बात तो थी ही नहीं। यों ही आप का समय बरबाद करती।"

"समझदार हो न!"

तारा झेंप कर चुप रही और चाय ले आने के लिये उठ गयी।

डाक्टर ने चड्ढा, मर्सी, माथुर का हाल पूछा और बताने लगा—शिमला का अच्छा मौसम तो यही था परन्तु डाक्टर सालिस को सर्दी सताने लगी थी। मिनिस्टर से भी कुछ सलाह लेनी आवश्यक थी। तारा जानती थी, डाक्टर का दफ्तर दूसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा बना रहा था।

तारा ने सड़क से मिसेज खन्ना की गाड़ी का हार्न सुना। खिड़की से झांक कर देखा। डाक्टर से क्षमा माँगी—"एक मिनिट।" और जीना उतर गयी।

तारा ने मिसेज खन्ना से कहा—"दीदी, पाँच मिनट के लिये ऊपर आ जाओ। डाक्टर साहब आये हैं। अभी चलती हूं।"

मिसेज खन्ना डाक्टर से परिचित थीं। तारा ने बताया—"मैं लाहौर से डाक्टर साहब की स्टूडेंट हूं। मेरे बड़े भाई भी इन के स्टूडेंट थे।"

डाक्टर ने उठ कर अभ्यर्थना की और पंजाबी में बोला—"यह तो कहने भर को मेरी स्टूडेंट है। मुझे तो पट्टी ही इस के पिता जी ने पकडवायी थी। असल में तो वही मेरे गुरु हैं। इन के पूरे परिवार को जानता हूं।"

मिसेज खन्ना ने शिकायत की—"पंजाबी एसोसियेशन के डिनर के अतिरिक्त आप कभी मिलते ही नहीं।" उस ने डाक्टर से अनुरोध किया कि एक दिन अवश्य उन के यहाँ छावनी में आयें।

डाक्टर समझ गया था, मिसेज खन्ना तारा को ले जाने के लिये आयी हैं। तीन-चार मिनट में ही उठ गया—"इस समय तो मुझे आज्ञा दीजिये, फिर दर्शन करूंगा।"

तारा ने गलियों में रहने वाली स्त्रियों के स्वभाव की आशंका से सीता और पूरणदेई को सख्त ताकीद कर दी थी कि किसी भी हालत में, भोलापांधे की गली और ससुराल में उस के जल मरने की अफवाह की चर्चा किसी से भी न करें। उस का ससुराल-वसुराल कभी नहीं था। पूरणदेई उस रहस्य को अपने शरीर की लाज की भाँति ढके थी। पूरणदेई ने तारा की इस इच्छा

का सीधा अर्थ समझ लिया था कि जब चाहेगी, ससुराल हो जायेगा। ससुराल तो स्वाभाविक और आवश्यक होता है इसलिये उसे तायी के प्रस्ताव से उत्साह था।

तारा को तायी के भांजे का प्रसंग यों भी पसन्द नहीं था परन्तु जब कनक भाभी के अकस्मात, दो घण्टे के लिये आने पर भी तायी और पूरणदेई वह प्रसंग उठाये बिना न मानीं तो तारा खीझ उठी : कनक क्या सोचेगी! कनक से उस ने आशा से भी अधिक सहानुभूति और समवेदना पायी थी परंतु उस के सामने ऐसे प्रसंग से झेंप कैसे न आती। सोचा, मेरा ऐसा विचार ही नहीं है तो यह लोग भ्रम क्यों फैला रहे है?

कनक के लौट जाने के बाद तारा ने रात को सोने से पहले पूरणदेई को अपने कमरे में बुला कर दबे, केवल सांस के स्वर में बहुत डाँटा—"बुआ, तेरी अक्ल को क्या हो गया है? भाभी के सामने क्या बकवास शुरू कर दी थी। उसे क्या नहीं मालूम?...वह क्या समझेगी; मैं और ससुराल ढूंढ़ रही हूं?"

पूरणदेई ने भी वैसे ही दबे स्वर में उत्तर दिया—"ले, सिर स्वाह उन्हादे! (राख पड़े उन के सिर में) तुझे ब्याही कौन कहता है! हमें उन से क्या लेना-देना है। वह काम तो परमेश्वर जी को ही मंजूर नहीं था। तभी तो उन मरों के घर में अग्नि देवता ने प्रकट होकर तुझे बचा लिया। वह लोग जाने कहाँ वह गये, डूब गये होंगे? तेरा अपना घर क्यों नहीं बसेगा?"

"बुआ तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो? मैं तुम्हें क्यों भारी हो रही हूं? खबरदार, अब ऐसी बात नही करना। तायी को भी कह देना।"

पूरणदेई ने इस विषय में शीलो का समर्थन पाने के लिये यत्न किया था। उस ने भी कह दिया—"वाह बुआ, तुम्हारी अक्ल को क्या हुआ? न देखा, न सुना; कैसे हाँ कर दें? तारा का काम तो वहीं होगा, जहाँ उसे खुद पसन्द होगा।"

पूरणदेई ने विश्वास दिलाया कि तायी अपने भांजे को दो-चार दिन के लिये बुला लेने को तैयार है।

शीलो ने और भी विरोध किया—"वाह बुआ, मेरी बहिन के लिये दुहाजू (विधुर) ही रह गया है। ऐसा कौन राजकुमार है? मेरी बहिन नौ सौ-हजार तनखाह ले रही है, अपनी मोटर है। वह जंगल का बाबू, छः सौ नहीं, सात सौ लेता होगा। रिश्वतों का क्या है? तारा रिश्वत लेने वाले से ब्याह करेगी? उस का सात-आठ बरस का लड़का है। कोई सौ लाड़ करे, मतरेई तो मतरेई (विमाता) रहेगी। दूसरी के कोख की सन्तान के लिये जो करो,

जस नहीं मिल सकता ।"

पूरणदेई समझ गयी, तारा को दुहाजू पसन्द नहीं था। कुछ दिन बाद तायी ने पूछा—"तारा की भाभी का कोई खत-पत्तर नहीं आया ? जालन्धर में क्या हाल-चाल है ?" पूरणदेई ने स्वर दबा कर समझाया, "तुम जानती हो, इस के लिये लड़कों की क्या कमी है। मां-बाप ने तो कई जगह बात की है पर क्या करें ? यह लड़की बैरागन है।..."

तारा के यहाँ तायी का आना-जाना कम हो गया। आने पर भी वह प्रसंग नहीं उठाया। तारा ने यह झगड़ा समाप्त हो जाने की सांत्वना का सांस लिया ही था कि दूसरे झगड़े ने घेर लिया। इस झगड़े के लिये शंका के छोटे-मोटे संकेत उसे दो-तीन मास पहले ही अनुभव हुये थे लेकिन अपने विश्वास में उस ने स्थिति संभाल ली थी। सोचा था—क्षितिज पर दिखायी दी आंधी दूर से ही निकल गयी।

खूब सर्दी थी। साढ़े आठ बजे भी कोहरा इतना घना था कि आकाश बादलों से घिरा जान पड़ता था। तारा पुरानी आदत के अनुसार प्रातः ही ठंडे जल से नहा कर कम्बल में लिपटी रविवार के पत्र के मैगज़ीन सेक्शन में से कुछ पढ़ रही थी। फोन की आवाज पर उठना उसे खला। कम्बल में से बाँह निकालने को मन नहीं हो रहा था। सोचा, कौन होगा ? दफ्तर के काम के सम्बन्ध में कोई बड़ा अफसर इतनी जल्दी चिन्ता करेगा, ऐसी आशंका नहीं थी। ख्याल आया, रतन या माथुर हो सकता है। माथुर को संध्या आना होता तो सुबह जरूर फोन कर देता था। वह कई दिन से आया नहीं था।

डाक्टर नाथ की आवाज सुन कर तारा की झुंझलाहट प्रसन्नता बन गयी—"नमस्कार डाक्टर साहब !"

"लोगों ने मुझे तुम्हारा गार्जियन (अभिभावक) समझ लिया है।"

"डाक्टर साहब, ठीक ही तो समझा है।" तारा ने गर्व से कहा।

"ठीक समझा है ? खैर, संध्या घर में ही रहोगी ?"

तारा से हामी पाकर डाक्टर ने कहा कि संध्या आकर बतायेगा।

तारा बहुत उत्सुक थी, ऐसी कौन समस्या आ गयी ? मेरे सम्बन्ध में डाक्टर साहब से किस ने क्या कहा होगा ? अनुमान भी कर लिया—मिसेज अगरवाला ने शिकायत की होगी कि मैंने 'नारी-कल्याण' कमेटी में डाक्टर श्यामा को ले लिया है। तारा ने नरोत्तम से सुना था कि अगरवाला साहब डाक्टर नाथ के भाइयों से व्यवसायिक सम्बन्ध और मित्रता के नाते डाक्टर

से घनिष्टता बढ़ा रहे थे। रविवार उद्योग मंत्री उन के यहां लंच पर आये थे तो नाथ को भी बुला लिया था।

सध्या नाथ ने आकर बताया—"मुझे तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में अभिभावक बनाया जा रहा है। तुम ने मुझे अभिभावक मान लिया है। तुम बताओ, तुम्हारी स्थिति और समझ-बूझ की लड़की के विवाह के सम्बन्ध मे कोई दूसरा कैसे निश्चय कर सकता है ?"

तारा गर्दन झुकाये सकोच से चुप रह गयी।

नाथ हसी घुले स्वर मे बोला—"अच्छा, यदि संकोच के कारण स्वयं उत्तर देते अच्छा नही लगता तो तुम्ही बता दो, मिसेज खन्ना को क्या उत्तर दूं ?"

तारा सकोच से लाल हो गयी। गर्दन झुक गयी। झिझक कर धीमे स्वर में उत्तर दिया—"अभी तो ऐसा प्रश्न ही नही है। अवसर होगा तो आप ही उचित राय देंगे।" तारा बहुत कठिनाई से डाक्टर की ओर देख सकी।

"प्रश्न नही है ?" डाक्टर ने विस्मय प्रकट किया, "कर्नल खन्ना ने मुझे परसों रविवार लच पर बुलाया था। मिसेज खन्ना का अनुमान है कि उस का भाई तुम्हें पसन्द है। कपूर को तुम पसन्द होगी ही, तभी उन्हें उत्साह है। मैंने कपूर को उसी दिन देखा था।"

तारा ने मिथ्यारोप का विरोध किया—"नही डाक्टर साहब, ऐसी कोई बात नही है। उनका अनुमान निराधार है।"

"तुम निराधार समझती हो। वे लोग अपनी ओर से बहुत कुछ तय किये वैठे है। मैने तो कहा, तुम्हारे विवाह के विषय मे स्वय तुम्हे ही निर्णय करना चाहिये। तुमने और कपूर ने निश्चय कर लिया है तो ठीक है।" डाक्टर कहता गया, "मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। ऊपरी व्यवहार मे तो वे लोग इतने आधुनिक हे परन्तु भीतर से रूढियो से वहुत जकड़े हुये हे। मिसेज खन्ना बोली—लड़का-लड़की एक दूसरे को पसन्द कर ले, यह तो बहुत अच्छा है परन्तु प्रेम-विवाह ठीक नहीं है। विवाह से पहले ही प्रेम हो गया तो विवाह के बाद क्या होगा ? विवाह तो परिवार द्वारा ही होना चाहिये। कपूर की भाभी भी तुम्हें बहुत चाहती हे।"

डाक्टर ने विस्मय प्रकट करने के लिये भवें उठायी—"उन्हें तुम बहुत पसन्द हो पर वे इस विषय मे स्वयं तुम से बात करना उचित नही समझते। मै तुम्हारे परिवार का हितचिन्तक और विश्वासी हूं। लड़का मैने देख लिया है। लड़का-लड़की सहमत ह इसलिये मैं मास्टर साहब को सुझाव दे दूं। सुनो, मैंने तो असमर्थता प्रकट कर दी। कहा, मैं अपने परिवार के भी ऐसे मामलो

में कोई रुचि नहीं लेता। आप के अनुमान पर मास्टर जी को क्या लिख सकता हूं ? मुझे तो मास्टर जी का जालन्धर का पता भी मालूम नहीं है, तारा से ही पूछना होगा। आप ही उस से पूछ लीजिये। यह भी कहा--हाँ, तारा चाहती हो और मास्टर साहब इन्कार करें तब उस अवस्था में तारा मुझ से कहे तो मैं शायद मास्टर साहब से कुछ कह सकूं।"

डाक्टर अपने विचार में चुप हो गया। उस ने सिगरेट सुलगा ली। आधी सिगरेट जल जाने तक कुछ नहीं बोला जैसे अपने ही घर में बैठा हो। संगति में बैठ कर कुछ न कुछ बात करते रहने के विनय का कुछ ध्यान न रहा। फिर तारा की ओर देखे बिना बोला---"लेकिन कपूर गम्भीर स्वभाव लगता है। मुझे अच्छा आदमी लगा। शायद कुछ दिन के परिचय के बाद""।"

"डाक्टर साहब, उन से कई बार मिली हूं।" तारा ने निस्संकोच अंग्रेजी में कह दिया, "बिलकुल यंत्रवत व्यवहार लगता है। सम्भ्रांत होने की अजीब सी भावना है। वह तो अंग्रेजों के साथ ही चले गये होते तो अच्छा रहता।"

डाक्टर ने तारा का भाव समझ कर समर्थन में गर्दन हिलाई।

तारा अपनी बात समझी जाने का भरोसा पाकर मन की बात कहती गयी—"डाक्टर साहब, इन लोगों का अजीब ही ढंग है। दो बार उन के घर रह आयी हूं। सूरज निकलने के बाद देर से उठना। उस से पहले नौकर घर संभालने लगते हैं। पति को ड्यूटी पर जल्दी जाना होता है। नौकर वर्दी तैयार कर देते हैं। मेम साहब साढ़े सात बजे तक नाश्ते के लिये आ जाती हैं। बच्चों को तैयार करना आया का काम है। साहब नाश्ता करके ड्यूटी पर चले गये तो नाश्ते के बाद मेमसाहब ने ड्रेस किया, मेकअप किया और पड़ोस में 'माहजोंग' खेलने चली गयीं। दोपहर में खाना खाया। उस के बाद दिन में आराम हुआ। चार बजे चाय हुयी। फिर मिलने-जुलने चले गये या मिलने वाले आ गये। उन के यहाँ बात होती है, सिर्फ अफसरों की तरक्की और बदली के अनुमानों पर या फर्नीचर, शिकार और फिल्मों के बारे में। संध्या को क्लब। ऐसे जीवन से ये लोग ऊबते कैसे नहीं ?"

तारा कहती गयी, "उस दिन नरोत्तम कर्नल के यहाँ यू०पी० के विद्यार्थी-आन्दोलन की बात करने लगा कि लखनऊ यूनिवर्सिटी कानूनन ओटोनोमस बाडी है। यूनिवर्सिटी यूनियन के मामलों में गवर्नर का हस्तक्षेप गैरकानूनी है।"

कर्नल ने उसे टोक दिया---"मुआफ करना, हम लोगों को राजनीति से मतलब नहीं है। हम लोग इन विषयों से दूर रहते हैं।"

नरोत्तम ने पूछ लिया—"आप बात किस विषय पर करते हैं ?"

कर्नल ने उत्तर दिया—"सभी विषयों पर करते है परन्तु सैनिक नियम है कि हम लोग राजनीति के बारे में, धर्म के वारे में और स्त्रियों के वारे में बात नहीं करते ।" तारा ने हंस कर बताया, "नरोत्तम ने पूछ लिया—तो वात करने के लिये शेष रह ही क्या जाता है ?"

समर्थन में डाक्टर ने गर्दन हिलायी और पूछ लिया—"दूसरे परिवारों में स्त्रियां क्या करती है ? वही न जो सम्भ्रांत लोगों के नौकर करते हैं ?"

"नहीं डाक्टर साहब, यह आप क्या कह रहे हैं ? यहाँ पड़ोस की स्त्रियों को मैं देखती हूं, बचपन से भी देखती आयी हूं। वह केवल घर का काम नहीं कर देतीं, वे ही घर को बनाती हैं। उन के काम के बिना, परिवारों का जीवन सम्भव नहीं। मेरे विचार में तो उन का काम उत्पादक श्रम है।"

डाक्टर ने दूसरा सिगरेट लगा लिया था। उस ने हामी भरी और पूछ लिया—"तुम्हें पारिवारिक जीवन की कल्पना या इच्छा कभी नहीं होती ?"

तारा ने आँखें झुका लीं। पल भर सोच कर बोली—"मुझे अपने लिये स्त्री की यह दोनों ही अवस्थायें स्वीकार नहीं हैं।"

"तो तुम्हारी कल्पना क्या है ?" डाक्टर ने पूछा।

"इस विषय में सोचा नहीं है।"

"क्यों ? विशेष कारण न हो तो सोचना स्वाभाविक है।" नाथ के स्वर में सहानुभूति और स्पष्टता थी। वह तारा के अभिभावक के रूप में उस के हित के लिये ही बात कर रहा था।

"सोचने का ढंग परिस्थितियों के अनुसार ही हो जाता है।" तारा ने डाक्टर की ओर नहीं देखा।

"परिस्थितियों से क्या अभिप्राय है ?"

"जो होना था, हो गया।" तारा की गर्दन जरा और झुक गयी।

"यह फिजूल वात है। वह तो एक घटना थी। दूसरों की भूल या ज़बर-दस्ती के लिये तुम अपना उत्तरदायित्व मान लो तो संगत नहीं है। उस सब को भूल कर तुम्हें स्वस्थ दृष्किोण से जीवन में सन्तोष पा सकने की वात सोचनी चाहिये। व्यर्थ आत्मदमन नहीं करना चाहिये।" डाक्टर ने उपदेश देने के ढंग से कहा।

"मैं तो समझती हूं, ठीक ही है।"

नाथ गहरे कश खींचते हुये कुछ पल मौन रहा और फिर बिलकुल साधा-रण ढंग से पूछ लिया—"असद का कोई समाचार मिला ?"

तारा ने इन्कार में सिर हिलाया और फिर याद कर बोल उठी—"हाँ,

अखबार में देखा था। दो साल पहले लाहौर में गिरफ्तार हो गये थे। उन की पत्नी ने ज़मानत के लिये दरखास्त दी थी।" तारा ने बिलकुल साधारण भाव से बता दिया।

"हाँ-हाँ, याद आ गया।" नाथ फिर मौन हो गया।

तारा को कठिन प्रश्न का समुचित उत्तर दे सकने का सन्तोष अनुभव हुआ। फिर वह सहसा मुस्करा उठी।

"क्यों, क्या बात है ?" नाथ ने पूछ लिया।

"नहीं, कुछ नहीं।" तारा लजा गयी।

"कहो, क्या बात है ?" डाक्टर ने सिर कुर्सी की पीठ से लगा कर अधमुंदी आँखों से आग्रह किया, जैसे बात करना चाहता हो।

"आप स्वयं वैसे क्यों नहीं सोचते ?" तारा ने लजाते हुये कह डाला। फिर उसे लगा, कैसे बराबरी से बात कर गयी।

"मैं ?" नाथ ने प्रश्न से बात की, "ख्याल है तुम्हें बताया था।...उसी साल, जब मेरी दोनों भाभियों ने तुम्हारी ट्यूशन असम्भव कर दी थी ! तुम्हें नहीं बताया था ?"

तारा ने इन्कार में सिर हिलाया—"नहीं, कौन सी बात ?"

"वही परिस्थितियों की बात !"

जायदाद के झगड़ों के कारण भाभियों की तो यही तिकड़म थी कि मेरा ब्याह न हो। तुम तो सब बात जानती हो; पिता भी यही चाहते थे। इस मामले में गुमसुम रहते थे। विलायत से लौटा तो दादा का देहान्त हो चुका था। लाहौर में मेरा एक लड़की से प्यार हो गया था। लाहौर कन्वेंट में पढ़ाती थी। सिविल-मैरिज कर लेने का निश्चय भी कर लिया था। सन ४४-४५ की बात है। मैंने अपनी पारिवारिक स्थिति उसे बता दी थी। उस ने बहुत आग्रह किया कि मैं जायदाद के अपने भाग के लिये दावा करूं। बहुत बहसें होती रहीं। अजीब स्वभाव था। यों बहुत उदार और निर्लोभ थी परन्तु स्वभाव में असहिष्णुता भी थी। हमारा सभी तरह का सम्बन्ध था परन्तु विवाह इसी आधार पर करना चाहती थी कि मैं जायदाद के भाग के लिये दावा करने का वचन दूं। बात यहाँ तक पहुंची कि वह मुझे 'भीरू' 'बेदम' और जाने क्या-क्या कह गयी...। एक दिन मैंने डांट दिया। काफी कड़ी बातें कह दीं—तुम मुझ से शादी करना चाहती हो या मेरी जायदाद से ? उस ने और भी कड़ी बात कही—तुम अपने अधिकार के लिये लड़ने से डरते हो, बेइंसाफी के आगे सिर झुकाते हो, तुम नामर्द हो ! मैंने भी शुरू

मनाया, अगर कही सिविल-मैरिज हो जाने के बाद यह सब कांड करती तो क्या होता ?"

तारा कुछ पल मौन रही और फिर मुस्करा दी ।

"क्यों ?" डाक्टर ने फिर पूछ लिया ।

"डाक्टर साहब, वह तो एक घटना या भूल थी । किसी की ज्यादती के लिये आप··· ····।" तारा हसी की गुदगुदी से या शरारत से पूरी बात नही कह सकी ।

डाक्टर हस दिया—"मै उस गम मे जान नही दे रहा हू लेकिन तुम सोचो अगर मेरी पत्नी उसी बात पर आग्रह करे, उस के लिये स्वाभाविक भी हो सकता है तो मेरी स्थिति क्या होगी ? मुसीबत सहेड लू ?"

"आपकी तरह सोचने वाली भी तो हो सकती है ?"

"हॉ, असंभव नही है पर मै चालीस का हो रहा हूं ।"

"नही तो" तारा ने टोक दिया, "अड़तीस, उन्तालीस से ज्यादा नही हो सकते ।"

"खैर, पहले मै तीस-बत्तीस की विवाह योग्य स्त्री तलाश करूं फिर उस से प्रेम करूं या उस का मन जीतने का निश्चय करूं····।"

"मै एक परिचय करा सकती हू" तारा को डाक्टर श्यामा का ध्यान आ गया था ।

"ठीक है । मै तुम्हारे लिये तलाश करू तुम मेरे लिये तलाश करो । मेरा बताया तुम्हें पसन्द नही आया । मै ही तुम्हारी बतायी को क्यो पसन्द करूगा?"

"वह आप ने कहां बताया था ?"

तीन चार दिन बाद ही मिसेज खन्ना तारा के यहाँ आयी । घुमा फिरा कर बात की और उस के माता-पिता, भाई का पता पूछना चाहा ।

तारा पहले से ही तैयार थी । कह दिया—"बहिन जी मै तो इस विपय मे निश्चय कर चुकी हू । मेरे घर की आर्थिक अवस्था अच्छी नही है । मुझे अपने छोटे-भाई बहनों को पढाना है ।"

मिसेज खन्ना ने विस्मय प्रकट किया—"तुम्हारा भाई तो पंजाब असेम्बली का मेम्बर है, एडीटर है ।"

"बहिन जी, क्या होता है इस से । कांग्रेस के टिकट पर चुने गये है । उन्हें राजनीति से फुर्सत नही । मेरी भाभी भी अखबार मे काम करती है । दो छोटे भाई और दो बहने हे । कुछ भाई करेंगे, कुछ मुझे करना चाहिये ।

अभी तो गाड़ी का लिया कर्ज़ ही नहीं चुका पायी । आजकल के खर्चे तो आप जानती ही है ।"

मिसेज खन्ना ने आशा का सूत्र नहीं तोड़ा । कह गयी—"खैर, जल्दी क्या है । तुम यह मत समझना कि यही बात थी । मैं तो तुम्हें अपनी छोटी बहन समझती हूं । उधर कब आओगी ?"

तारा ने समझा गनीमत रही कि यह बात फैली नहीं ।

तारा को नरोत्तम पर खीझ थी । उस ने ही खन्ना-परिवार से तारा का परिचय बढ़ाने का यत्न किया था । नरोत्तम आया तो तारा ने पूछा—"यह खामुखाह का क्या झगड़ा तुम लोगों ने खड़ा कर दिया था ?……"

नरोत्तम ने विश्वास दिलाया कि इस मामले में उस का कोई सहयोग या उत्साह नहीं था । ममी ने मिसेज खन्ना के सामने तुम्हारी प्रशंसा की थी । तुम्हारे घर-बार के विषय में मुझ से लोगों ने जरूर पूछा था । अब तुम स्वयं बात कर रही हो इसलिये मैं पूरी बात बता दूंगा वर्ना कपूर ने मुझे वचन-बद्ध कर दिया था कि किसी से बात न करूं । मैं तो प्रतीक्षा में था कि इस विषय में तुम मुझ से कुछ बात करो । कपूर मुझे अपना मित्र समझता है परन्तु इस घटना से मेरा मन उस से फिर गया है । मैं नहीं चाहता था कि उस से तुम्हारी घनिष्टता बढ़े ।"

"वाह, तुम्ही ने तो सदा मेरा परिचय बढ़ाया ?" तारा ने शंका की ।

"पहले मैं जानता नहीं था । मुझे भी स्थिति अभी दो मास पहले ही पता लगी है ।"

"क्या बात है, अब तो बताओ !"

"बात ही ऐसे ढंग से हुयी कि कपूर ने मुझ पर प्रतिज्ञा का जाल डाल दिया था । डेढ़ बरस से उस का एक लड़की से मामला चल रहा था । वह लड़की के प्रति सचमुच अनुरक्त था । अंगूठी भी दी थी इसलिये जानता हूं । रुपया मुझ से उधार लिया था । रुपया उस ने लौटा दिया है । मुझ से बातचीत में उस लड़की को मेरी भाभी कहता था । तुम से परिचय बढ़ने पर मैंने उस का रुख बदलता देखा । मैंने पूछा, यह क्या हो रहा है ? उस ने मुझ से रहस्य रखने की प्रतिज्ञा ले ली तो बताया कि वह उस लड़की के विषय में धोखे में था । उस से विवाह कभी नहीं करेगा । तर्क दिया—जो लड़की विवाह के बिना आत्म-समर्पण कर सकती है, उस के आचरण का क्या भरोसा ? विवाह तो दिल्लगी की चीज नहीं !"

तारा सांस रोके निश्चल रह गयी ।

नरोत्तम ने क्रोध और घृणा से कहा—"मैंने उस के मुंह पर कहा, तुम यह बहुत नीचता कर रहे हो। यह धोखा है। उस की उच्छृङ्खलता मे तुम्हारा भाग अधिक है। उस ने तुम्हारे विश्वास पर, तुम्हें पति समझ करे आत्मसमर्पण किया है। यह उस के साथ धोखा है।

"उस ने बेशर्मी से उत्तर दिया– मैं अपनी कमजोरी और गलती मानता हू। उस के लिये हर्जाना भर सकता हूं परन्तु जिस लड़की का छिछोरपन जान चुका हूं, उस से विवाह नही कर सकता। विवाह और परिवार का आधार पवित्र होना चाहिये ? वह लडकी जरूर पहले से खराब थी वर्ना मेरे आग्रह पर भी विवाह से पहले समर्पण का क्या मतलब था ? यदि वह सच्ची थी तो उसे दृढ रहना चाहिये था।

"इस के बाद उस ने जो बात कही मै घबरा गया। बोला, अब यह छिछोरापन उसे पसन्द नही है। ऐसी लडकियों से घृणा हो गयी है। अन्तिम निश्चय कर लिया है, विवाह तुम से करेगा या नही करेगा। अब तक उसे एक ही लड़की मिली है जिसे वास्तव मे पवित्र और सच्ची समझ सका है, जिसे उस ने आदर के भाव से देखा है।

तारा सांस रोके निश्चल रही।

"मैने पूछा कि तुम ने 'प्रोपोज' किया है ? यदि वह 'हाँ' करता तो चाहे जो होता, मैं तुम्हे चेतावनी दे देता। उस ने कहा—तुम से वह ऐसी कोई ओछी बात नही करेगा। विवाह से पहले प्रेम की बात ही अनाचार है। बात परिवार की ओर से ही उठनी चाहिये। मैने उसे कुछ कहा नही। कहने से होता भी क्या ? परन्तु तब से मुझे उस का मुह देखना पसन्द नही है। पिछले दो-तीन मास में तुम ने मुझे कभी उस के साथ या उन लोगों के साथ देखा है ? फिर भी मै तुम्हारे प्रति उस के व्यवहार से और ऐसी बात उठने के अवसर के प्रति चौकन्ना था।"

तारा ने कपूर से न मिलने का निश्चय कर लिया था। इस झगडे से बिना किसी परेशानी के बच गयी थी परन्तु नरोत्तम की बातो से उसे बहुत चोट लगी। वह कुछ न बोली। नरोत्तम कुछ देर चुप बैठा रहा। स्थिति की कटुता में कुछ भी कहने का अवसर नही था।

उस रात और अगले दिन तारा का मन बहुत भारी रहा। सोचती रही, उसे केन्द्र बना कर अच्छी-खासी घटना हो गयी है। बात फैल जाती तो मुसीबत हो जाती। कोई पुरुप चाहने लगे, स्त्री की अच्छी-खासी मुसीबत है। किसी स्त्री को कोई चाहने लगे तो बदनामी स्त्री की है।...... स्त्री-पुरुप

अपराध करें तो दण्ड स्त्री भोगे।''''परीक्षा हो तो वह भी स्त्री की हो।''''सौ-सवा सौ बरस पहले की बात होती तो रीझ जाने वाला सूरमा स्त्री को उठा कर ही चल देता।''''आखिर वह गधा अपने आप को समझता क्या है?''''

तारा अपनी गोपनीय खिन्नता में डूबी हुयी थी। संध्या समय मेहता की पत्नी छोटी तारा को उंगली थमाये तारा के यहाँ आ गयी। छोटी तारा को मां रास्ते में खूब सिखा कर लायी थी। उस ने आते ही उंगलियाँ फैले छोटे-छोटे, गुनगुने हाथ जोड़ कर—'बुआ जी, मत्ते' कहा।

तारा ने उसे उठा कर सीने पर दबा लिया—"आ, मेरी गग्गो। तू इतने दिन क्यों नही आयी?"

सरोज ने आंचल में छिपायी हुयी कटोरी निकाली।

"यह क्या तकलीफ की तुम ने?" तारा ने कटोरी की ओर देख कर कहा।

"कुछ भी नहीं। मेरे जेठ कल आये थे। कर्नाल स्टेशन पर हैं न! सरसों का साग ले आये थे। बड़ी अच्छी गन्दलें थीं। चुनने, छीलने, काटने का बहुत झंझट होता है। आप को यह फुर्सत कहाँ। मैंने सुबह ही चूल्हे पर रख दिया था। सोचा, एक कटोरी लेती चलूं। पंजाब का साग है। मैं बुआ को दे देती हूं।"

"आओ बैठो!" तारा ने परसू को पुकार कर कटोरी रसोई में ले जाने के लिये दे दी।

सरोज ने अपने पड़ोसियों की शिकायत की। उस के मकान के दायें-बायें यू० पी० और बिहार के परिवार थे—"कैसे रूखे लोग हैं बहिन जी! चार साल हो गये, मजाल जो कभी माथे लगे हों! वे लोग नये-नये आये थे तो मैंने एक दिन साबुत उर्द बनाये थे। मैं किस्मत की मारी एक कटोरी उन के यहां देने चली गयी। कायस्थिन ने कहा—बहिन जी हम लोग तो दूसरे लोगों के घर का नहीं खाते। मैंने कहा—बहिना हम भी हिन्दू हैं। कहती है—इस से क्या, अपना-अपना रिवाज है।"

"दूसरों के घर का नहीं खाते, न खाये! मेरा-तुम्हारा क्या लेते हैं?" तारा ने झुलझलाहट से कहा, "पर पंजाबी पड़ोस से फिर अच्छे। तुम्हारी हर बात में नाक तो नहीं डालते! पंजाबी पड़ोसी तो नानके-दादके के पूरे सम्बन्ध न पूछ लें तो संतोष कहां! तुम्हारे मसालदान में जीरे-अजवायन तक का पता रखेंगे।"

गग्गी तारा की गोद से छूटने के लिये छटपटा रही थी। उसे मालूम था,

इस घर मे खाने की चीजे और फल कहां रखे रहते है। आकर मनमानी करती थी। उसे तारा के प्यार की अपेक्षा खाने के लिये कुछ पाने की लालसा थी। तारा समझ गयी। उस की पीठ प्यार से ठोंक कर छोड़ दिया—जा चुडैल, "बुआ के पास जा।" और सरोज से पूछा, "और सुनाओ क्या हाल-चाल है?"

सरोज तारा से सकेत पाकर सुनाने लगी—उस के घर मे उस की ननद कुंत के विवाह की समस्या विकट रूप लिये थी। मेहता की मां और कर्नाल मे रहने वाला बडा भाई कुंत का विवाह निपटा देना चाहते थे। बहुत खोज-पडताल के बाद कर्नाल वाले भाई ने एक लड़का तय किया था। कुत ब्याह से इंकार कर रही थी। मेहता की मां और बड़ा भाई नाराज थे कि मेहता और सरोज ने लड़की को बहका दिया है। उन पर लांछन लगा रहे थे कि छोटी कुआरी बहन की कमाई खा रहे है।

सरोज ने तारा के सामने कसम खाई—"बहिन जी, दिन-रात की सधि-बेला है; हमने अगर बहन की कमाई का एक पैसा भी खाया हो तो परमेश्वर हमारा बुरा करे। हमारे सिर पर तो—परमेश्वर ऐसी बात न कहलाये—उस का खर्च ही है। जानती हो, रुपये का दो सेर आटा मिल रहा है। सवा दो सौ रुपये मे हम लोग जैसे पर्दा बनाये है, हमी जानते है। इस पर जवान कुआरी लडकी की जिम्मेवारी! वह अपने शौक से पहनती-ओढ़ती है, बाकी डाकखाने मे जमा कर देती हे। हम तो कहते है, कल क्या—आज वह अपनी ससुराल जाये। पढ़-लिख कर उस की जबान लम्बी हो गयी है। कह देती है, तारा बहिन जी ने ब्याह नही किया, मैं भी ऐसे ही रहूगी। मैने कहा, तू चार बार जन्म ले तो भी तू तारा बहिन जी नही बन सकती…।"

"ऐसी फिजूल बात क्यो कहती हो, उसे लड़का पसद नही होगा! तुम कोई और लडका देख लो न!" तारा ने सरोज को चुप कराने के लिये टोक दिया।

छोटी तारा पूरणदेई से दो खूब बडे-बड़े संतरे ले आयी थी। सतरे उस के छोटे हाथों की पकड मे नही आ रहे थे। उन्हे अपने सीने पर टिकाये थी।

"ला गग्गी छील दूं। मेरे पास आ जा।" तारा ने उसे पुचकारा।

"हाय मरी इतना कैसे खायेगी! न बहिन जी, इतना न दो। अभी तो घर से खा कर आयी है।" सरोज ने तारा के स्नेह के प्रति कृतज्ञता से कहा।

"कोई बात नही। सतरे का क्या है। पानी ही तो है।" तारा ने गग्गी को गोद मे खीच लिया। उसे संतरे की फाड़ियां खोल-खोल कर खिलाती हुई सरोज की बात सुनती जा रही थी।

"वहिन जी, आजकल की लड़कियां हमारे जमाने की लड़कियां तो है नहीं कि अपने व्याह-शादी की बात होती देखती थीं तो शरम से उठकर चली जाती थीं। अब तो सामने से लड़ती हैं। कहती हैं कि व्याह करके आराम नहीं मिलना तो व्याह क्यों करें! बहिन जी, जहाँ आराम मिले, ऐसे अच्छे घरों के लिये, पच्चीस-पचास हजार के दहेज हम लोगों के बस के कहाँ हैं ? जरा खाते-पीते घर से बात करो तो कोई लड़का मोटर मांगता है, कोई मकान।" सरोज का स्वर धीमा हो गया, "वहिन जी, अब तो लड़कियां ही अपने लिये कोई ढूंढ़ लें। 'इनका' (मेहता का) कसूर तो यही है कि लड़की के साथ ज़बरदस्ती नहीं करना चाहते। कुंत तो साफ कहती है--मैं अपनी जिन्दगी क्यों बरबाद करूं ? उस की जिद् को हम क्या करें ?"

सरोज ने लज्जा से अपने होठों पर हाथ रख कर कहा —"दारवटन वाली करमदेई तो कहती हैं, हमारी पांच लड़कियां हैं। जो कुछ था वह भी पीछे छूट गया। हम इन के लिये दहेज कहां से लायेंगे। हमने तो कह दिया है, पढ़ा-लिखा देंगे। अपने लिये लड़के ढूंढ़ लेंगी तो व्याह हम कर देंगे, नहीं तो ईश्वर की इच्छा!"

सरोज ने अपनी बात के अंत में कहा—"कुंत को लोढ़ी और एतवार की छुट्टी है। सीने के लिये बहुत से कपड़े पड़े है। आप को असुविधा न हो तो दो दिन के लिये मशीन ले जाऊं ?"

तारा ने कह दिया—"अभी परसू बाहर गया है। लौटेगा तो मशीन तुम्हारे यहाँ दे आयगा।"

सरोज चली गयी तो तारा फिर उसी मानसिक उधेड़बुन में उलझ गयी ? लड़की से खामुखा नाराज़ हैं कि वह ज़िन्दगी भर की मुसीबत सहेड़ने से इंकार कर रही है। मां और बड़े भाई कर्त्तव्य पूरा न कर सकने के सामाजिक अपमान से डर रहे हैं। मेरी भी यही स्थिति थी।....जो लड़कियां जीविका कमाने का साहस कर रही हैं, वे अपना भाग्य दूसरों के हाथ में क्यों दे दें ? आज तो दिल्ली में सभी जगह लड़कियां काम करती दिखाई दे रही हैं.... विभाजन से पहले मैं नौकरी कर लेने की कल्पना करती थी तो खास साहस की आवश्यकता जान पड़ती थी पर अब तो साधारण बात है।...सरोज कहती है, अब तो लड़कियां ही ढूंढ़ लें!....हजारों जवान लड़कियों के घर वाले अब यही चाहते होंगे। छः बरस पहले ऐसी बात सुन कर लोग कान में उँगली दे लेते। विभाजन से बहुत ध्वंस हुआ परन्तु समाज को जकड़े-दबाये रखने वाली मजबूत परतें भी ऐसे टूट गयी हैं जैसे किसी जेल में बंद लोगों को भूडोल में

चोटें तो लगें परन्तु जेल की दीवारें गिरकर स्वतन्त्र हो जायें। बहुत लोग मर गये, बहुत से उस चोट से फिर पनप ही नही सके परन्तु पजाबी अब पहले से अधिक जीवट से खड़े हो गये जान पड़ते है।

तारा को कनक का खयाल आ गया। बेचारी ने लड़-झगड़ कर अपनी पसंद से ब्याह किया, काम मे आधो-आध हाथ बंटा रही थी। वह किस बात के लिये दब जाती। कंचन का खयाल आ गया; उस का सम्बन्ध नरोत्तम से हो जाये तो अच्छा है। कंचन को अपने पिता का कितना ख्याल है। उस के पिता है भी बहुत सहृदय। उन की सेहत बहुत गिर गयी है। लाहौर मे कितनी सुविधा से रहते थे। नरोत्तम कचन की बात करता है तो ऐसे संकोच से धीमे-धीमे कि कचन का नाम लेने से कंचन को धक्का न लग जाये। नरोत्तम के माता-पिता जरूर नाराज होंगे इसीलिये कि कंचन के पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नही है पर पंडित जी उन लोगों से कहीं बड़े है।

तारा कंचन के यहाँ गयी थी तो पडित जी पुरी के विषय में स्नेह-सराहना से बात करते रहे थे। तारा को अपने भाई के बारे मे उपेक्षा प्रकट करते बहुत संकोच होता था। वह मौन सिर हिलाती रही थी कि उसे तो सब मालूम है।

दूसरे दिन प्रातः ही कुंत आ गयी। उसे देखते ही तारा ने कहा—"हाय, मैं कल भूल गयी।" परमू को पुकार कर कह दिया—सिलाई की मशीन सरोज बीबी जी के घर दे आ। कुड़िये, बैठ न दो मिनिट!" तारा ने कुंत को बैठा कर पूछा, "सुना, क्या झगड़ा डाल लिया है घर मे।"

कुंत तारा से उम्र मे पाचेक बरस छोटी थी परन्तु तारा की स्थिति के विचार से उसे बहुत आदर से 'बहिन जी' कहती थी। अभिप्राय समझ गयी थी। संकोच से बोली—"नही बहिन, जी कोई झगड़ा नही है।"

"है कैसे नही! तेरे लिये अच्छा-भला लड़का मा ने देखा है। तू इकार क्यों कर रही है?"

"जी मां का क्या है?" कुंत ने संकोच से कहा, "बडे भाई भी वैसे ही है। लड़के की पचहत्तर तनखा है। भत्ता मिलाकर सौ हो जाता होगा। इतना बड़ा उन का परिवार है। घर मे भैंस है। नौकर एक भी नही।

"तो ब्याह नही करायेगी?"

"बहिन जी ऐसा व्याह कर के चौके-बर्तन, गोबर मे जिन्दगी खपा देने से क्या सुख मिल जायगा?"

"तू चाहती है पांच-सात सौ तनखाह हो, सवारी हो, नौकर हो ?"

"वहिन जी, व्याह हो तो कुछ सुख-आराम मिलना चाहिये" सरोज लाज से मुस्करा दी।

"मरी, तो फिर तू क्या करेगी ?"

"जो सब करती है ?" सरोज ने लज्जा छिपाने के लिये गर्दन झुका ली।

तारा ने गंभीरता से कहा—"आखिर तू भी तो स्कूल से रुपया पा रही है। डेढ़-दो सौ पाने वाला भी हो तो दोनों मिल कर आराम से नहीं रह सकते ?"

"हां वहिन जी, या तो कोई वैसा हो।" सरोज ने स्वीकार किया, "वहिन जी, मेरी सहेली गीता पोस्ट आफिस में नौकरी कर रही है। उस ने पोस्ट-आफिस के ही एक बाबू से व्याह कर लिया है। गीता को सवा सौ मिलता है उस के पति को एक सौ पचहत्तर। दोनों अच्छी तरह रहते हैं। सुबह घर में नाश्ता बना लेते हैं। सांझ दोनों होटल में खाते हैं, सैर करते है। दोनों मिल कर घर संभाल लेते हैं। वहिन जी, अव तो कई लोग ऐसे ही करते है। एतवार को गीता घर में पका लेती हैं तो उस का आदमी वर्तन धो देता है।" कुंत किलक से हंस पड़ी।

तारा ने ध्यान से सुन कर कहा —"बिलकुल विलायत बना लिया है ?"

"वहिन जी, तो क्या बुरा है ? हमें तो अच्छा लगता है।"

कुंत चली गयी तो तारा फिर सोचने लगी—स्थिति कैसे सब कुछ वदल देती है ! पांच-छः साल में यह लड़कियाँ कितनी वदल गयी हैं।

१४

दिल्ली में अब हज़ारों लड़कियाँ और स्त्रियाँ नौकरी करना चाहती थीं। सफलता उन्हें ही मिल सकती थी जिनके सम्पर्कों का प्रभाव था। बाहर से आयी कनक को तुरन्त नौकरी कैसे मिल जाती ! कनक पाँच वर्ष तक कर्मठ और व्यस्त रही थी। अव ठाली वैठे, प्रतीक्षा करते रहने का धैर्य न था। तारा के अनुरोध से 'समाज-विकास-विभाग की डिप्टी सैक्रेटरी मिस सक्सेना

के प्रयत्न से कनक को, दिल्ली से सत्ताइस मील दूर, अलीगंज के 'समाज-विकास-केन्द्र' में 'नारी-कल्याण-निरीक्षिका' की अस्थायी नौकरी मिल सकती थी। मिस सक्सेना ने उसे सहानुभूति से समझाया था कि कुछ मास कष्ट में निवाह लेगी तो इस अनुभव के आधार पर, उसे किसी 'शिक्षण-केन्द्र' में आराम की पक्की नौकरी के लिये चुनाव में आने का अवसर रहेगा। कनक ने अलीगंज जाना स्वीकार कर लिया था।

अलीगंज में कनक को रहने के लिये मकान और सहायता के लिये एक परिचारिका भी मिली थी। जया चार वर्ष पूरे कर चुकी थी। जालन्धर में वह नर्सरी स्कूल में जाती थी। अब उसे किसी किंडर गार्टन, मांटेसरी स्कूल या कन्वेंट में दाखिल कराना आवश्यक था। कनक लड़की की पढ़ायी के विचार से उसे दिल्ली छोड़ जाती तो कंचन बेचारी क्या-क्या करती? कालेज घर से दूर होने के कारण कंचन को स्वयं भी घर से जल्दी ही जाना पड़ता था। मां बिलकुल खटिया पर पड़ गयी थी इसलिये कनक जया को साथ ही ले गयी थी।

अलीगंज में कनक के लिये काम ऐसा था कि उसे दिन भर घूमना पड़ता था। परिचारिका खास कर इसी प्रयोजन के लिये दी गयी थी। जया को मकान पर किस के पास छोड़ जाती, साथ ही ले जाना पड़ता था। नगर में पली बच्ची गांव के अजीब-अजीब रूप और वेश के नये-नये आदमियों को देख कर घबराती थी। कनक जया को गांव के नंगे, मैल से पुते, पेट फूले, सूखे अंग बच्चों के साथ कैसे खेलने देती? वहाँ तो सांस में भीतर जाने वाली वायु में, धूल में सभी जगह बीमारी ही बीमारी भरी हुयी थी। कनक को गन्दे से गन्दे, भयानक रूप से अस्वास्थ्यकर स्थानों में जाना पड़ता था। गांव में सभी स्थान ऐसे ही थे। उन्हीं लोगों की सेवा के लिये कनक तनखाह पा रही थी। उन बच्चों और लोगों के बीच जया को न जाने देना, उन से घृणा करना था। जया को उन के साथ खेलने देना, जान-बूझ कर बच्ची को बीमारी के मुंह में धकेलना था।

कनक ने शान्त, आडम्बरहीन कहे जाने वाले ग्राम्य-जीवन का अनुभव पहली बार पाया था। वह बचपन से आधुनिक नगर के साधारणतः सम्पन्न घर में पली थी। बिजली का प्रकाश, पंखा, गुसलखाना उस के जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें थीं। अलीगंज में ऐसी सुविधायें स्वप्न थी। गांव का वह जीवन उस के लिये कठिन दंड था परन्तु उस की कर्तव्य-बुद्धि ने कहा—देश के नब्बे प्रतिशत लोग इसी अवस्था में रहते हैं। वह क्यों नहीं रह सकती?

तनखाह के अतिरिक्त भी तो अपने देश के लिये कुछ करना उस का कर्तव्य था ! अखबार के दफ्तर में, पंखे के नीचे बैठ कर, चाय की प्याली या बरफ के पानी का गिलास सामने रख कर, ग्रामीण जनता की वास्तविक स्थिति जाने बिना, उन के लिये सुधार और न्याय की पुकार के लेख लिखना कितनी विडम्बना थी। इस की अपेक्षा तो पुरी और सूद जी की तरह राजनीति को स्वार्थ-साधना और अपनी शक्ति बढ़ाने का उपाय समझना ही अधिक सार्थक था।

कनक, पुरी और जन-अपवाद से दूर रहने के लिये और किसी सीमा तक कर्तव्य-बुद्धि से भी गांव की कठिनाइयाँ और अस्वस्थ वातावरण सह लेने के लिये तैयार थी परन्तु जया के लिये अस्वस्थ वातावरण और उस की शिक्षा की उपेक्षा नहीं सह सकती थी। दिल्ली में बच्चों के लिये अच्छे से अच्छे स्कूल थे परन्तु दिल्ली से बाहर डेढ़-दो सौ मील तक लखनऊ, अम्बाला, देहरादून से इधर बच्चों के लिये आधुनिक उचित शिक्षा की व्यवस्था कहीं नहीं थी, जैसे केवल दिल्ली और बड़े नगरों में रहने वाले रईसों और सर-कारी अफसरों के बच्चों के लिये ही आधुनिक उचित शिक्षा और स्वास्थ्य की आवश्यकता हो। अंग्रेज शासकों ने अपने रहने के स्थानों में सब प्रबन्ध कर लिये थे। इस देश की साधारण जनता की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। वही व्यवस्था अब भी जारी थी।''''दिल्ली, लखनऊ और चंडीगढ़ में सरकारी इमारतों में और सरकारी अफसरों के लिये एयर-कंडीशनिंग (ताप-नियंत्रण) ज़रूरी है, वहाँ सड़कों पर फूल चाहिये। गांव में शौच-निवृत्ति के लिये भी प्रबन्ध नहीं। दिल्ली इन्हीं गांवों की रक्षा, विकास और कल्याण के लिये चिंतित है, उसी के लिये जीविका पा रही है '''

कनक के लिये समस्या हो गयी कि बेटी की उचित देख-भाल करे या जीविका और देश के लिये काम करे ? सोचती, जब तक देश में बच्चों के लिये जगह-जगह शिशु-शालायें न हों, जहाँ मां के जीविका के लिये काम करते समय बच्चे स्वच्छ-स्वस्थ परिस्थिति में भोजन और शिक्षण पा सकें, मां जीविका के लिये कैसे काम कर सकती है ? वह देश में शिशु-शालायें बनायी जाने के लिये आन्दोलन करे या जीविका के लिये नौकरी करे ?

कनक गांव की स्त्रियों को अपनी विकट कठिनाई में भी बच्चों को शरीर से लिपटाये, जीविका के लिये शरीरतोड़ परिश्रम में लगे देखती थी। वह स्त्रियों को स्तन से बच्चों को लगाये, खेत में निराई करते देखती, कमर पर एक बाँह से बच्चे को लिये गोबर समेटते देखती, गोद में बच्चा और सिर पर पानी का घड़ा लिये चलते देखती थी। घर के कच्चे फर्श पर बच्चों के मल-मूत्र

कर देने पर, काम में लगी स्त्रियाँ काफी समय तक फर्श पर पड़े मल-मूत्र की उपेक्षा करके दूसरे कामों मे लगी रहती। उन के सामने मक्खियाँ उस मल-मूत्र पर बैठ कर उन के शरीर, बच्चों की आँखो-ओठों और भोजन पर भी बैठती रहती परन्तु स्त्रियाँ हाथ मे लिया काम पूरा करके ही उस ओर ध्यान दे पाती थी।

कनक को आश्चर्य होता, यह लोग कैसे यह सब सह लेती है ? स्वय ही देखती थी कि उन लोगो को उस स्थिति से कुछ भी परेशानी नही होती। वह लोग मल-मूत्र और रोग के कीटाणुओ मे ही पैदा हुये थे। उन के लिये यह स्वाभाविक था और शायद वह लोग रोग के कीटाणुओ के प्रभाव से मुक्त हो गये थे। कनक इन लोगो को स्वच्छता से रहने और गृह-उद्योगों द्वारा उन की आर्थिक स्थिति सुधारने की शिक्षा देने गयी थी। कनक को उन की साधन-हीनता देख केवल उपदेश देते भी झिझक होनी थी।

एक दिन दिल्ली मे कुछ दिन रह आयी कलावती ने कनक के साथ रहने वाली परिचारिका की ओर सकेत कर कह दिया था—"बहिन जी, सफाई से रहना-ओढना तो सभी को अच्छा लगता है। हमारे यहाँ भी एक नौकरानी हो तो बहुत सफाई से रह सकती है।"

गांव मे कनक अगस्त की राते मसहरी मे काट सकना भी असभव पा रही थी। जया को मलेरिया के मच्छरो से बचाने के लिये रात मे तीन-तीन बार फ्लिट छिड़कती। वह अफसर थी। उस के कच्चे मकान के समीप सब गढे भरवा दिये गये थे। घास-फूस हटवा दिया गया था। गावो के लिये दी गयी फिनाइल और डी० डी० टी० अफसरो के मकानो की सफाई के लिये ही पर्याप्त होती थी परन्तु गांव मे भरे मच्छरो के बादलो से कैसे रक्षा हो सकती थी ? कनक को झुझलाहट होती—बनस्पति और हरियावल से भरी दिल्ली मे, खुले लान मे मसहरी के बिना सोया जा सकता है। वहाँ मच्छर का नाम नही परन्तु गाव मे कुछ नही हो सकता। नई दिल्ली मे राष्ट्रपति और राष्ट्र के नायक प्रधान मंत्री जो रहते है, वह संसार को दिखाया जाने वाला भारत है।

कनक जया के स्वास्थय और भविष्य का ख्याल कर उसे सितम्बर मे दिल्ली छोड गयी थी। कंचन से कह दिया था, लडकी को कन्वेन्ट मे या बच्चो के किसी अच्छे स्कूल मे दाखिल करा दे। उस का विचार था, प्रति शनिवार की संध्या दिल्ली जाकर सोमवार प्रात: ही बस से अलीगज लौट आया करेगी।

कनक ने शनिवार दोपहर मे क्षेत्र के अध्यक्ष के यहां संध्या समय दिल्ली

जाने और सोमवार प्रातः ही लौटने की सूचना भेज दी थी। अध्यक्ष ने मौखिक अनुमति दे दी थी। कनक ने दूसरे सप्ताह भी ऐसा ही किया। इस बार उसे अध्यक्ष के सामने आने का आदेश मिला।

केन्द्र के अध्यक्ष वर्मा जी ने बहुत रुखाई से बात की—"आप प्रति सप्ताह रविवार दो रात के लिये अपनी ड्यूटी छोड़ कर सैर के लिये दिल्ली नहीं जा सकतीं !"

कनक ने उत्तर दिया—"मैं सैर के लिये नहीं जा रही हूं। अपनी लड़की को देखने जा रही हूं। कल रविवार की छुट्टी है। इस से मेरे काम में कोई हर्ज नहीं होगा।"

अध्यक्ष ने कनक को चुप रहने का संकेत करके कहा—"मुझे नियमों का ध्यान रखना है। छुट्टी विश्राम के लिये है। बाहर जाने के लिये नहीं है। रविवार के दिन आप से काम करने के लिये नहीं कह रहा हूं। सरकारी नौकरी चौबीस घंटे, तीस दिन की है। बिना अनुमति के स्थान छोड़ कर नहीं जा सकतीं ! आप प्रति सप्ताह स्थान छोड़कर नहीं जा सकतीं !"

अलीगंज केन्द्र में आते ही कनक की वर्मा जी से खटपट शुरू हो गयी थी। गांव में समाज-कल्याण-विभाग के सभी अधिकारी नागरिक थे। नौकरी की मजबूरी से गांव में पड़े थे। उन के लिये गांव बहुत सूना-सूना और उदास स्थान था। आपसी गप्पबाज़ी और ताश पीट लेने के अतिरिक्त मन-बहलाव का कोई साधन नहीं था, दिल्ली से पत्र-अखबार हजार-हजार मील दूर बम्बई, कलकत्ता नगरों में दूसरे दिन पहुंच सकते थे। अलीगंज गांव था। वहां डाक दिल्ली से तीसरे कभी चौथे दिन भी पहुंचती थी। वर्मा जी और दूसरे अफसर भी बिना परिवार के थे। आधुनिक ढंग की, सिर पर आंचल न रखने वाली, निस्संकोच बातचीत करने वाली, सुन्दर युवती के गांव में आ जाने से वर्मा जी को बहुत आशा बंधी थी परन्तु कनक काम की बातचीत के अतिरिक्त अवकाश के समय किसी से मिलती नहीं थी। मिलने-जुलने के लिये उस का मन ही न होता था। चाय, भोजन और ताश में सम्मिलित होने का निमन्त्रण पाकर दो बार गई फिर टाल देने लगी। वर्मा जी को अपने आधीन करमचारी का ऐसा मिजाज अच्छा नहीं लगा। उन्हों ने कनक को अपना अधिकार और शक्ति दिखा देना आवश्यक समझा।

कनक नियम के अनुसार 'आकस्मिक आवश्यकता' (कैयुअल लीव) के लिये छुट्टी लेकर दिल्ली जाने लगी। प्रति सप्ताह नहीं जा सकती थी, पन्द्रह दिन बाद जाने लगी। वर्मा जी कनक को टोकने के लिये कोई न कोई बहाना

देने ढूँढ़ लेते थे। उसे केन्द्र से आठ-दस मील दूर जाने का आदेश देने लगे परन्तु जाने के लिये जीप न देते। जीप वर्मा जी अपने काम के लिये रोक लेते। कनक अपना लिखित बयान डायरेक्टर के पास भेजने का आग्रह करती। नौकरी और आत्म-सम्मान की रक्षा में द्वंद्व हो रहा था।

कनक, नरोत्तम और कंचन के परस्पर आकर्षण और उन के सम्बन्ध के लिये पिता जी की सहर्ष अनुमति की बात जान गयी थी। पंडित जी चाहते थे, यह काम शीघ्र ही, उन के देखते-देखते सम्पन्न हो जाये पर कंचन टाले जा रही थी। कनक दशहरे की छुट्टी में दिल्ली आयी थी तो एक दोपहर तारा के यहाँ रही थी। तारा को मालूम था कि कंचन माँ की बीमारी में पिता जी को अकेले छोड़ जाने के लिये तैयार नहीं थी। नरोत्तम ने कंचन को आश्वासन दिया था कि दिल्ली से उस की बदली किसी आर्डनेंस फैक्टरी के वर्क्स मैनेजर के काम पर आसानी से हो सकती थी। फैक्टरी में उसे बंगला मिलेगा। पिता जी और माँ भी साथ रह सकेंगे। कंचन पिता जी से ऐसी बात कहने के लिये कभी तैयार नहीं थी।

नरोत्तम का ऐसा प्रस्ताव कनक को भी पसन्द नहीं था। उस ने अनुभव किया, सब कुछ उसी पर निर्भर करता था। उस की अलीगंज की नौकरी ही कंचन के ब्याह में बाधा बनी हुयी थी। उस नौकरी से कनक स्वयं खिन्न थी। सोचती थी, उस नौकरी के लिये व्यर्थ तारा को परेशान किया। कनक देख रही थी कि पिता जी की अवस्था प्रेस का काम करने लायक नहीं थी, आयू साठ के ऊपर हो चुकी थी। स्वास्थ्य, आयू के विचार से बुरा नहीं था परन्तु नजर बहुत खराब हो गयी थी।

पंजाब सरकार ने आठवीं कक्षा तक की पाठ्य-पुस्तकों की छपाई और बिक्री सरकारी नियंत्रण में ले ली थी। सरकार स्वयं पुस्तकें तैयार करवा कर पुस्तक विक्रेताओं को दे रही थी। इस से हानि केवल पंडित जी जैसे प्रकाशकों को हुयी जो फुटकर बिक्री नहीं करते थे। प्रेसों को तो पुस्तकों की छपाई का काम मिल ही रहा था। पंडित जी की दो छोटी-छोटी पुस्तकें पाठ्य-क्रम में थीं। उन से साढ़े तीन-चार हजार वार्षिक आय का सहारा था, वह जाता रहा। पिछले साल का बचा स्टाक रद्दी बन गया। इस अवस्था में पंडित जी ने अपने क्लर्क को छुट्टी दे दी थी।

जुलाई के अन्त में गिल भी 'नाजिर' का काम छोड़ कर दिल्ली आ गया था। दिल्ली से सरोला, हीरालाल और अजय प्रायः ही उसे लिखते रहते—

तुम्हारा 'नाज़िर' तो बिल्कुल नाकिस (निरर्थक) हो गया है। भाड़ पर लिखना है तो दिल्ली ही आ जाओ। कलम पकड़ने की तमीज़ हो, और फर्ज़ के लिये ही लिखने की कसम न हो तो दिल्ली में भूखे नहीं मर सकते।

गिल को पंडित गिरधारीलाल जी का पता मालूम था। कनक से पत्र-व्यवहार भी चलता था। गिल कनक के अलीगंज से आने का समाचार पा कर मिलने के लिये घर आया था। पंडित जी से मिलने भी आता रहता था। पंडित जी को गिल गम्भीर, समझदार नौजवान लगा। उन्हों ने कनक की अनुपस्थिति में गिल से पुरी के व्यवहार के विषय में जानना चाहा। गिल ने जालन्धर में पुरी की स्थिति, सूद जी, सूरजप्रकाश, रिखिराम और सोमराज से उस के सम्बन्धों और कमल प्रेस के सम्बन्ध में मास्टर जी और कनक के मतभेदों की बातें भी उन्हें बता दीं। तारा के सम्बन्ध में पुरी ने उसे जो बताया था, गिल ने वह प्रकरण भी कनक से सुने पक्ष के साथ पंडित जी को बता दिया था कि पुरी ने सोमराज से झगड़े की परेशानी और अपनी बदनामी की आशंका से, तारा को सोमराज के घर में स्थान दिलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया था।

"तारा को मैं जानता हूं, बहुत सुशील बेटी है।" पंडित जी ने कहा और फिर अपना सिर दोनों हाथों में दबा कर सोचते रहे। एक गहरी सांस ली। अपना चश्मा उतार कर कुर्ते के दामन से साफ करके बोले, "बरखुर्दार, हालात से पस्त न होना ही मर्दानगी है। ह्वाट इज़ फेट? आवर सर्कमस्टांसिज़ आर आवर फेट! हमारे गिर्दोनवां के हालात और ताल्लुकात ही हमारी किस्मत हैं। अगर किस्मत के आगे सरन्डर (समर्पण) नहीं करते तो मैदान में खेत रहते हैं। सरन्डर करते हैं तो हमारी कांशियेंस (विवेक-बुद्धि) मर जाती है। वह और भी बुरी मौत है। मरना तो हर हालत में है।" पंडित जी जोर से हंस पड़े, "मेरे प्यारे, झूठ-फरेब के अमल (राज) में, बन्दा झूठ-फरेब को कबूल न करने की सज़ा पाता है। सचाई पर कायम रहना है तो मुसीबत से, परेशानी से क्या डरना? सफरिंग इज़ द टेस्ट आफ आनेस्टी (दुख सह लेना ही ईमानदारी की कसौटी है)।"

पंडित जी की नजर फर्श पर झुक गयी थी। मस्तिष्क में चकराती चिंता के बोझ के कारण, एक हाथ पर कनपटी को सहारा दे लिया था। दूसरे हाथ के पंजे को कभी फैला देते, कभी मुट्ठी बन्द कर लेते थे जैसे हाथ में अपने विचारों को परख रहे हों। फिर बोले—"बरखुर्दार, कनक ने खुद सफरिंग का रास्ता चुना है। वह अपने जजमेंट और कांशियेंस पर चलना चाहती है।

उसे इस की कीमत भी अदा करनी चाहिये। अपनी पसन्द से शादी करना उस का हक था। उस शादी को निबाहना, अपने शौहर को सही रास्ते पर लाना उस का फर्ज़ है। पीठ दिखाने का क्या मतलब ? उस के खैरख्वाह लोगों को उसे यही नसीहत देनी चाहिये।"

गिल को दिल्ली आकर स्वतंत्र पत्रकार के रूप में जीविका कमा सकने में महीना भर काफी कठिनाई रही थी। वह अजय के यहाँ टिक कर काम ढूंढ़ता रहा। दिल्ली में उस ने ऐसे अनेक साप्ताहिक, मासिक देखे, जिन की बिक्री बाज़ार में नहीं थी। उन की डेढ़-दो हज़ार प्रतियाँ कोई राजदूतावास पूरे मूल्य पर खरीद लेता था। शेष प्रतियाँ प्रचारार्थ सरकारी दफ्तरों और पुस्तकालयों में भेज दी जाती थीं। लेखकों के लिये विचित्र अवसर बन गये थे। बताये गये विषय पर लेख लिख कर, जेब से पाँच-दस रुपये देकर लेख को किसी ज़िले के पत्र में भी छपवा देते, तो उस लेख के लिये किसी राजदूतावास के सूचना विभाग से, एक सौ रुपया पा सकते थे। ऐसे लेखों के लिये चित्रों के बने-बनाये ब्लाक मिल सकते थे। ऐसे लेख छापने वाले पत्रों को अच्छे मूल्य पर विज्ञापन भी मिल सकते थे।

पुराने पत्रकार आपस में हंसते थे—इस देश में राष्ट्रीय पत्रों का जन्म आदर्शों के लिये संघर्ष के साधन के रूप में हुआ था। विदेशी शासन के समय सम्पादक के लिये सदा जेल और पत्र की जब्ती का खतरा बना रहता था। पत्रकार और लेखक का जीवन तपस्या समझी जाती थी। देश की स्वतंत्रता ने उसे व्यवसाय-मात्र बना दिया था।

गिल को पहले एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक में दो कालम लिखने का काम, बीस रुपया प्रति सप्ताह पर मिल गया। फिर उर्दू दैनिक 'सर्दार' के लिये दिल्ली की 'साप्ताहिक डायरी' लिखने का काम मिल गया। बाद में एक राजदूतावास के 'सूचना-पत्र' के उर्दू-पंजाबी अनुवादों का भी काम मिल गया। तीन-साढ़े तीन सौ मासिक का प्रबन्ध हो गया तो उस ने साठ रुपये मासिक पर एक कमरा रामनगर में ले लिया था। दिल्ली के खर्चों के कारण अवस्था जालंधर से बेहतर नहीं थी परन्तु देश के राजनैतिक भंवर के केन्द्र में और अन्तर-राष्ट्रीय सम्पर्कों में रहने की उत्तेजना अवश्य थी।

कनक विजयदशमी की छुट्टी पर दिल्ली आयी थी तो गिल ने उसे दिल्ली में ही रहने के लिये समझाया था : "···वहाँ तुम्हें किस उद्देश्य के लिये कष्ट सहने का सन्तोष है ? वहाँ नौकरी पाये लोगों का प्रयोजन तो आराम से बैठ कर सरकारी तनखाह पाना है। उन सरकारी कर्मचारियों की अपनी कोई

आस्था या विश्वास नहीं है। तुम उन से भिन्न ढंग से चलती हो तो उन्हें परेशानी होती है। वह तुम्हें वहाँ से निकालने का प्रयत्न करेंगे ही। तुम्हें वहाँ जितनी तनखाह मिलती है, उस से तुम्हारा गांव का खर्च और बब्ली के स्कूल की फीस ही तो पूरी पड़ती है। दिल्ली अन्तरराष्ट्रीय राजनीति और सैद्धांतिक संघर्ष का अखाड़ा बन गयी है। यहाँ प्रचार-युद्ध के लिये दोनों पक्षों के मोर्चे हैं। दोनों पक्षों को प्रचार की तोपों, यानि लेखकों की जरूरत है। उस के लिये रुपया बह रहा है। बिक सकने वालों ने ईमानदारी की मेहनत का अवसर हम लोगों के लिये छोड़ दिया है। यहाँ तुम्हारे लिये काम की कमी नहीं होगी। सूत्र मुझे मालूम है। पिता जी की सहायता का ख्याल है तो यहाँ ही आकर रहो।...”

कनक ने अलीगंज लौट कर, एक मास में छुटकारा मिल जाने के लिये त्याग-पत्र दे दिया था। तीसरे ही सप्ताह में बीमारी के दौरे में मां के समाप्त हो जाने की सूचना का तार मिला। कनक अपना सामान समेट कर दिल्ली चली आयी।

१५

योजनाओं के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में जो कुछ भी रहता था, तारा ध्यान से पढ़ लेती थी। पहली पंचवर्षीय योजना के तीन वर्ष बीत चुके थे। पहली योजना मुख्यत: कृषि-सम्बन्धी थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में उद्योग-धन्धों को अधिक महत्व दिया जाने का प्रस्ताव था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 'अवाडी' अधिवेशन में पंडित नेहरू ने घोषणा की थी कि देश की आर्थिक कठिनाई को दूर करने और देश के औद्योगिक विकास के लिये समाजवादी ढंग की नीति और मार्ग अपनाना होगा। नेहरू जी कांग्रेस के प्रधान और कांग्रेसी सरकार के प्रधान मंत्री भी थे। उन की बात कांग्रेस और सरकार दोनों की बात थी। इस घोषणा की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इस घोषणा की दृष्टि से नयी योजना का अर्थ था, बड़े-बड़े उद्योग-धंधों का राष्ट्रीय साधनों से, राष्ट्रीय नियंत्रण में आरम्भ किया जाना। नयी नीति की घोषणा

से कुछ क्षेत्रों मे सनसनी और कुछ क्षेत्रो में स्फूर्ति फैल गयी थी। कुछ लोग इतने बड़े परिवर्तन पर सहसा विश्वास कर लेने के लिये तैयार नही थे।

योजना कमीशन के मुख्य आर्थिक परामर्शदाता डाक्टर सालिस और उद्योग विभाग के आर्थिक परामर्शदाता डाक्टर नाथ का उत्तरदायित्व और महत्व सहसा बहुत बढ गया था। दूसरी योजना के लिये समाजवादी ढंग की नीति स्वीकार कर ली जाने से आशंकित लोग उन के विचार जानने और उन्हे अपनी दृष्टि से सही सुझाव पहुंचा सकने के लिये चिंतित थे। डाक्टर नाथ से मिलने वालों और बातचीत के लिये उसे लच और डिनर पर बुलाना चाहने वालों की सख्या बहुत बढ़ गयी थी। चड्ढा और कई दूसरे कम्युनिस्ट, लोक-सभा के कम्युनिस्ट और दूसरे मेम्बर भी अपना दृष्टिकोण नाथ के सामने रखने के लिये आतुर रहते थे। नाथ से बातचीत कर पाने के लिये कभी उसे निमत्रण देकर बुला लिया जाता, कभी लोग उस के बंगले पर भी पहुच जाते थे।

दिल्ली आकर गिल का कम्युनिस्टो से फिर हेल-मेल हो गया था। खास कर चड्ढा जैसे उदार कम्युनिस्टो से। चड्ढा से गिल का परिचय कम्युनिस्टो के युद्धकालीन आन्दोलन के समय से भी था। दिल्ली मे गिल का व्यवसायिक सम्बन्ध राष्ट्रीयकरण के विरोधी एक महत्वपूर्ण साप्ताहिक से भी था।। उस पत्र के दृष्टिकोण का उसे खूब परिचय रहता था। गिल डाक्टर नाथ का विद्यार्थी रह चुका था। चड्ढा डाक्टर के यहाँ जाता तो गिल को अक्सर साथ ले लेता था। नाथ का बगला अलीपुर रोड से भी काफी दूर था। बस-स्टाप से प्राय. पौन मील पैदल रास्ता था। चड्ढा के अनुरोध पर तारा उन्हे अपनी गाड़ी मे नाथ से मिला लाती थी।

कामरेड लोगो के आने पर नाथ अपना सिगरेट का डिब्बा उन के सामने रख देता था। पानी और चाय के लिये भी जरूर पूछ लेता था। नाथ के यहाँ जाने पर तारा ने 'भाभी' चपरासी भूपसिह का भी परिचय पाया।

तारा ने दुर्गा पाडे से कह कर, नाथ के यहाँ घरेलू काम के लिये नौकर भिजवाया था। बंगले पर नौकर न दिखायी देने से कुछ समझ नही पा रही थी।

भूपसिह बंगले पर चपरासी की वर्दी नही पहनता था। पट्टा लगी पगडी भी उतार कर रख देता था। काली गोल, बिना दफ्ती की टोपी खोपडी पर चिपकी रहती थी। कमीज कई दिन का पहना हुआ या घर पर धोया हुआ रहता। कमर मे पुरानी वर्दी का पाजामा, कुमायूंनी ढंग मे कमीज के ऊपर, बिचिस की तरह बधा होता। चेहरे पर दो-तीन दिन की हजामत, लम्बी मूंछो मे काले वाल अब भी थे। उम्र पचपन से ऊपर थी। शरीर से सुस्त नही

डाक्टर ने अंग्रेज़ी में उत्तर दिया—"यह किसी को टिकने भी दे ! खुद भी एक आदमी ला चुका है। एक से कुछ चोरी-चकारी के मामले पर झगड़ बैठा। तुम ने जो भिजवाया था, उसे भी यह चाबियाँ नहीं देता था। राशन खुद निकाल कर देता था। उस से भी इस की कहा-सुनी हो गयी। मुझे भी इस की बात रखनी पड़ती है।"

"मालकिन जो ठहरा।" तारा मुस्करा दी।

"फ्यूडल लायल्टी (सामन्ती स्वामिभक्ति) का नमूना है।" डाक्टर का ध्यान प्यालों की ओर गया। एक प्याला कम पड़ रहा था। उस ने निस्संकोच कहा, "आप लोग लें, मैं बाद में लूंगा।"

मर्सी ने आग्रह किया, वह बाद में पी लेगी।

तारा ने जल की बूंदें जमी दूध की ठंडी बोतल की ओर संकेत कर अनुरोध किया—"मुझे तो ऐसा जल मिल जाय तो ज्यादा अच्छा हो।"

"जल ?" डाक्टर ने भूपसिंह की ओर देखा।

भूपसिंह ने एक गिलास और फ्रिज से बोतल लाकर मेज़ पर रख दी।

डाक्टर को याद आ गया—"भूपसिंह, बिस्कुट तो होंगे, दिये नहीं !"

भूपसिंह बिस्कुट लेने गया था। तारा ने पूछ लिया—"डाक्टर साहब, पांडे से कहूंगी, जरा समझदार आदमी देख कर भेज दे।"

"क्या लाभ ? यह नहीं टिकने देगा।"

"वैसा ही समझदार न भेज देना !" माथुर ने नाथ को टोक दिया, "जैसा मेरे यहाँ भिजवाया था।"

"क्यों, क्या हुआ ?" तारा ने पूछा। सभी की दृष्टि माथुर की ओर हो गयी।

"क्या बताऊं।" माथुर संकेत से बोला, "यह सब के लिये नौकर ढूंढ़ देती है। बद-किस्मती से मैं भी नौकर के लिये, इन से कह बैठा था। पिछले हफ्ते, मैं सांझ घर लौटा तो देखा, बराम्दे में बाहर कुर्सी पर एक नौजवान बैठा था। कमीज-पतलून पहने था। उस से पूछा, कहिये, किस से मिलना चाहते हैं ?"

"माथुर साहब से मिलना चाहता हूं" नौजवान ने कहा।

"मैं माथुर हूं, कहिये !"

नौजवान ने बताया—"आप को नौकर की जरूरत है। मुझे मिस तारा जी के चपरासी दुर्गा पांडे ने भेजा है।"

हैरान रह गया। संभल कर कहा—"नौकर घरेलू काम के लिये चाहिये।"

"जी, सब कर लूंगा।" मेरे सामने, कुर्सी पर बैठे नौजवान ने कहा।

मुझे अच्छा नहीं लगा—"पूछा, तुम कैसे करोगे ? तुम तो पतलून पहनते हो, बराबर कुर्सी पर बैठते हो !"

नौजवान ने उत्तर दिया—"अभी बैठा हूं। जब आप नौकर रख लेंगे, आप के सामने कुर्सी पर नहीं बैठूंगा।"

माथुर की बात से सभी के होठों पर मुस्कान आ गयी।

"बहुत ठीक कहा।" मर्सी बोल पड़ी, "तुम ने उसे इन्कार कर दिया ?"

"यह नये परिवर्तन के चिन्ह है ! सहने पड़ेगे।" नाथ ने चेतावनी के ढंग से कहा।

"मानता हूं"माथुर ने तुरंत स्वीकार किया, "लेकिन पहली बार नयी बात से झेप गया था। मै तो मान भी लेता परन्तु भीतर गया तो मां ने पूछा, वाहर कौन मिलने आया था। उन्हें बताया तो उन की आँखें लाल हो गयी।"

"बेचारे ने अपने आप को आदमी समझ लेने की सजा पायी।" गिल ने भी कहा।

भूपसिंह ने बिस्कुट का डिब्बा लाकर रख दिया था। दुबारा कहे जाने पर प्लेट भी ले आया।

डाक्टर ने कहा—"आप लोग पहली बार आये है। खाने को कुछ भी नहीं है। तारा, तुम ही क्यों नही कुछ ले आयी ?"

"डाक्टर साहब, सब कुछ तो है।" तारा ने तुरन्त कहा। मर्सी ने भी उस का समर्थन किया।

चड्ढा ने डाक्टर की ओर झुक कर अपनी बात शुरू कर दी—"....मुद्रा-स्फीति की आशंका बिलकुल गलत है। मजदूरी मे अधिक रुपया लोगों के पास आयेगा तो उसे लोग अभी निर्यात होने वाले माल को खरीदने के लिये व्यय करेंगे। कपड़े और दूसरे सौदों की हमारी पैदावार जनता की आवश्यकता से अधिक तो नही है। इस से कृषि की भूमि पर दबाव घटेगा, लोगों का जीवन-स्तर भी सुधरेगा। हम विकास के मामले में काफी आत्म-निर्भर हो सकेंगे। हम बुलडोजर खरीदने के लिये पचास-पचास हजार रुपया विदेशों को क्यों दें ? उस से पचास भूमिहीन किसानों को रोजी क्यों न दें...."

मर्सी कुछ मिनट सुनती रही फिर उस ने चड्ढा की बात की ओर कान लगाये तारा को धीमे से सम्बोधन किया—"आओ, जरा मकान तो देखें।" और अनुमति के लिये नाथ की ओर देखा।

"मै दिखाऊं ?" नाथ उठने को तैयार हुआ।

"आप बात कीजिये।" मर्सी ने नाथ के कन्धे पर हाथ रख कर उठने से रोका, "हम देख लेंगे।"

ड्राइंग-रूम के साथ के कमरे में डाक्टर नाथ के काम करने का कमरा था। बड़ी सी मेज़ के साथ चार-पाँच कुर्सियाँ थीं। दो शेल्फ, फाइलों और सरकारी रिपोर्टों और पुस्तकों से भरे थे। मेज़ पर भी काफी फाइलें और कागज थे। दीवारों पर कोई चित्र या कैलेण्डर नहीं था। ध्यान देने से सफेद दीवारों पर धूल की महीन गर्द देखी जा सकती थी। दफ्तर की बगल में ही सोने का कमरा था। बिस्तर भट्ठी से रंग उड़े पलंगपोश से ढका हुआ था। शीशे के दरवाज़े लगी आलमारी में, समेट कर रख दिये मैले कपड़े दिखायी दे रहे थे। सोने के कमरे के कोने में फ्रिज किट-किट, किट-किट कर रहा था। मर्सी ने फ्रिज भी खोल कर देख लिया। दूध-दही की खटास की गन्ध आयी। आधी डबलरोटी, मक्खन की टिकिया और मिट्टी के कोरे कसोरे में दही भी था। दो बोतलें सोडे की, आधी बोतल ह्विस्की और दो बोतलें बियर भी थीं।

"पूरी गृहस्थी फ्रिज में ही है। बुड्ढे ने क्या गंद फैला रखा है?" मर्सी ने पीठ पीछे खड़े भूपसिंह के खयाल से अंग्रेजी में कहा। कमरे के साथ गुसल-खाना था। मर्सी उस में झांके बिना भी न रही। असंतोष से 'उँह' मुख से निकल गया।

भूपसिंह तारा और मर्सी पर आंख रखे पीछे-पीछे चल रहा था। वे ड्राइंग-रूम के साथ की गैलरी के दूसरी ओर बढ़ीं। तीनों कमरे बन्द थे। मर्सी ने घूमकर पूछ लिया—"यह बन्द ही रहता है?"

"हां हुजूर, पलंग-फर्नीचर पड़ा है।" भूपसिंह ने अनिच्छा से उत्तर दिया। उसे यह हस्तक्षेप अच्छा नहीं लग रहा था।

मर्सी ने पूछा—"किचन-रसोई कहां है?"

भूपसिंह ने पिछवाड़े के बराम्दे की ओर संकेत कर दिया।

मर्सी और तारा रसोई की ओर बढ़ीं। भूपसिंह ने आगे बढ़कर रसोई की सांकल खोल कर बिजली जला दी। ऊंचा अंग्रेजी ढंग का चूल्हा था। आलमीनियम के दो पतीले थे। शेष दो-चार बर्तन भी आलमीनियम के मैले-मैले दीख रहे थे। चूल्हे के चौंतरे पर लकड़ी का कोयला पड़ा था।

रसोई में आलमारियाँ और रेक अधिकांश में खाली थे। दो-तीन पोटलियां पड़ी थीं। एक से कुछ आटा बिखरा हुआ था। एक पोटली से दाल के दाने गिरे हुये थे। एक आधी कटी लौकी लाल हो रही थी।

मर्सी और तारा ने पैंटरी में भी झांका। तीन-चार चीनी की प्लेटें और एक पीतल की छोटी थाली खूब उजली मंजी हुई, फर्श पर दीवार से टिकी हुयी थी। तारा ने मर्सी के कान में अंग्रेजी में कह दिया—"यह थाली मालकिन की होगी।"

मर्सी ने अंग्रेजी में पूछ लिया—"तुम अपना यह चार्ज कब संभालोगी?"

भूपसिंह समीप था। तारा ने स्वर में झुंझलाहट तो प्रकट नहीं की परन्तु कह दिया—"दीदी, तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है। जबान पर ही काबू रखा करो।"

"हूं" मर्सी ने सिर हिलाया और मकान का पूरा निरीक्षण करने के लिये बंगले की परिक्रमा कर तारा के साथ सामने वेवास के आंगन में आ गयी।

तारा डाक्टर नाथ की पत्नी को देखने के लिये बहुत आग्रह करके मूर्ख बनी थी। वह बात याद आ जाने पर उसे हंसी आ जाती थी। तारा ने वह बात मर्सी को भी बता दी थी। मर्सी ने तारा की ही बुद्धि पर विस्मय प्रकट किया था।

तारा ने अपनी सफाई दी थी—"दीदी, मैंने तो विस्मय प्रकट किया था कि विवाह कब हुआ? उन्हों ने मुझे बेवकूफ बना दिया। अविश्वास की बात क्या थी?" मर्सी और तारा के बीच उस सम्बन्ध में फिर कोई चर्चा नहीं हुई।

भूपसिंह से दूर होकर मर्सी ने तारा की डांट का उत्तर दिया—"मेरे दिमाग में क्या खराबी है? मेरी क्या आंखें नहीं है? तुम पर उस का अनुराग है और तुम हजार जान से उस पर मरती हो। दिल की बात साफ क्यों नही कह देती?"

तारा ने एतराज किया—"तुम्हारी दृष्टि में आदर का कोई ध्यान नहीं है। तुम्हें सब कुछ बता चुकी हूं, भाई के गुरू है, मेरे गुरू है। हमारी सब मुसीबतों में सहायक रहे हैं। देश के बड़े से बड़े विद्वानों में से हैं। मैं क्या, सभी उन का आदर करते है। जितना पिता जी का आदर करती हूं, उस से अधिक इन का करती हूं। तुम्हें ऐसी बातें कह देते शरम भी नहीं आती?"

"चल-चल बातें न बना।" मर्सी ने तारा की नाराजी पर विश्वास नहीं किया, "तुम जिसे कुछ न समझो—घृणा करो, उस से विवाह करोगी? वह बेचारा कहता भी होगा तो तुम नखरे दिखाती होगी।"

"आखिर तुम ने ऐसी क्या बात देख ली है?"

"खूब देखती हूं, सब देखते है। वह तुम्हें लाइक करता है।"

"ऐसे तो वह मुझे आठ बरस पहले भी लाइक करते थे।" तारा ने अपने

विचार में मर्सी को चुप करा देने योग्य तर्क दे दिया परन्तु साथ ही सोचा, "क्या कह गयी। अब यह और भी बकेगी।"

"ओ-हो!" मर्सी ने तारा की आशंका पूरी कर दी।

तारा रूठ कर मौन हो गयी परन्तु नाराजगी के बजाय सोचने लगी—"जाने लोग क्या देखते हैं?...कुछ ऊटपटांग अफवाह फैल गयी तो क्या होगा?...... यह मेरी चिन्ता में चड्ढा और माथुर से बकती रहती होगी। मेरी चिन्ता में अच्छा संकट कर देगी! दो टूक स्पष्ट बात कर लेना ही उचित है।

तारा चड्ढा, माथुर और मर्सी को अपनी गाड़ी में वापिस ला रही थी तो चड्ढा और माथुर चाँदनी चौक में काम के कारण, लाल किले के सामने ही उतर गये थे। तारा मर्सी के साथ उस के घर चली गयी। एकान्त देख कर, उस ने बहुत गम्भीरता से कहा—"दीदी, मैं एक बात अन्तिम रूप से कह देना चाहती हूं।"

मर्सी ने आँख के संकेत से पूछा—"क्या?"

"तुम मेरे विवाह के सम्बन्ध मे न तो कोई चिंता करो और न इस विषय में किसी से एक शब्द भी कहोगी। तुम्हें वचन देना होगा!"

"पर क्यों चिन्ता न करूं और क्यों बात न करूं?"

"मैं तुम से सैंकड़ों बार अन्तिम रूप से कह चुकी हूं, मुझे विवाह नहीं करना है, नहीं करना है, नहीं करना है!" तारा की आँखें गुलाबी हो गयी थीं और भीग भी गयी थीं।

मर्सी ने तारा को बाँह में ले लिया—"आखिर, कारण तो बतायेगी। मुझ से भी भेद रखेगी?"

तारा ने आँसू रोक कर कह दिया—"क्या कारण बता दूं? जो भी कारण समझ लो! मेरी मानसिक या शारीरिक स्थिति समझ लो, मेरी प्रकृति समझ लो! बस कह दिया, नहीं करूंगी, नहीं करूंगी!" तारा ने आंचल से मुख ढंक लिया और फफक कर रो पड़ी।

मर्सी ने तारा का सिर अपने कन्धे पर टिका कर वचन दे दिया—'तुम इतना बुरा मान जाती हो तो मैं ऐसी बात नहीं करूंगी।"

कुछ दिन बाद एक रविवार चड्ढा और गिल प्रोफेसर के यहाँ दोपहर बाद गये तो मर्सी साथ नहीं थी, कनक थी। तारा की गाड़ी कामरेडों के लिये फ्री टैक्सी बनी हुयी थी। अपनी गाड़ी वह नरोत्तम के अतिरिक्त किसी दूसरे के हाथ में नहीं देना चाहती थी इसलिये उन्हें खुद ही ले जाती थी।

"बिलकुल नहीं डाक्टर साहब।" कनक ने चेतावनी दी, "बहुत से लोग लड़ मरेंगे पर मैं जिसे पसन्द नहीं करूंगी, इस के पास नहीं फटकने दूंगी !"

तारा तीन वर्ष से अंडर-सैक्रेटरी के पद पर काम कर रही थी। उद्योग-विभाग में, विस्तार के लिये आर्थिक सहायता देने के काम पर भी उसे डेढ़ वर्ष हो गया था। काम उसे कठिन नहीं लगता था, कुछ अधिक जरूर लगता था क्योंकि काम पिछड़ने न देने के लिये, दूसरे लोगों का काम भी समेट लेती थी। सन ४८ में तारा ने सीनियर ग्रेड क्लर्क की नौकरी पायी थी तो काम को शीघ्र सीख लेने की तत्परता थी, फिर सन ५० में 'सार्वजनिक-सेवा-आयोग' के चुनाव में सफल हो सकने के लिये तैयारी में भी उत्साह था। अब वैसा कोई उत्साह नहीं रहा था।

सचिवालय की नियमित, सुरक्षित नौकरी थी। आरम्भ के वर्षों में उस की रिपोर्ट 'एक्सेलेंट रही थी। अब उस की रिपोर्ट पर दूसरा रिमार्क दे देना भी आसान नहीं था। ऐसा रिमार्क देने वाले उच्चाधिकारी को अपनी बात प्रमाणित करना आवश्यक हो जाता। उस की नौकरी की रक्षा के लिये स्वयं सरकार जिम्मेवार थी। काम में विशेष तत्परता या योग्यता दिखाने से कुछ अन्तर नहीं पड सकता था। वेतन नियमानुसार पचास रुपया वार्षिक बढ़ता जा रहा था। पद में उन्नति, अवसर आने पर क्रम से ही हो सकती थी। अवसर और उस की बारी आ जाने पर, नियमानुसार उन्नति होनी ही थी। तारा के लिये पुलक और उत्साह का कोई कारण हो सकता था तो दफ्तर से बाहर के जीवन में ही। दफ्तर का काम और जीवन नितान्त एक-रस था। अपनी सूझ और निर्णय से कुछ भी करने का अवसर नहीं था। उस का काम नियमों के अनुसार कार्रवाई करते जाना ही था। अपनी स्थिति के प्रति पूरी निश्चिन्तता और प्रयत्न से भी उन्नति के अवसर का अभाव ! जो सरकारी नौकरों को शिथिल, निरपेक्ष और अहंकारी बना दे सकता है परन्तु तारा के घटनाहीन एक-रस दफ्तर के जीवन में भी एक घटना ने चिन्ता और क्षोभ का भंवर उत्पन्न कर दिया था।

तारा लंच के लिये विराम के समय, अपने कमरे से बाहर नहीं जाती थी। चाय कमरे में ही मंगा लेती थी। कभी मन होता तो पन्द्रह-बीस मिनट चुप बैठ लेती या साथ लाया अखबार देख लेती थी। लंच के बाद तारा के असिस्टेंट ने फोन उस की ओर बढ़ा दिया—"डिप्टी-सेक्रेटरी मिस्टर चारी...."

मिस्टर चारी ने कहा—"मिस पुरी, तुम्हारे पास मिस्टर साहनी को भेज

रहा हूं। एम० आई० (मिनिस्टर आफ इन्डस्ट्रीज़) के पी० ए० ने इन के विषय में कहा है। कोआपरेटिव लोन का मामला है। अपनी एप्लीकेशन तुम्हें देंगे। हो सके तो इन का काम आज ही हो जाये।"

तारा ने तुरन्त उत्तर दिया—"सर, नियत रकम तो पूरी बंट चुकी है।"

"फिर भी देख लो। मैंने केस अभी डिस्पोज़ नहीं किये हैं। एम० आई० के पी० ए० ने फोन किया है।" चारी ने अन्तिम वाक्य पर जरा बल दिया।

तारा मन ही मन झुंझलायी। वह सब केस निबटा चुकी थी। उस ने बहुत सोच और जांच-पड़ताल कर, कई प्रार्थना-पत्र नामंजूर करके, केवल पात्र और अधिकारी लोगों के ही प्रार्थना-पत्र स्वीकार किये थे। अब किस का मामला, कैसे रद्द कर दे।

डिप्टी-सैक्रेटरी का चपरासी तारा के कमरे का दरवाज़ा ठेल कर भीतर आया और अपने पीछे आते व्यक्ति के लिये दरवाजा खोले रहा। भीतर आये, सफेद गांधी टोपी, जवाहर बंडी और कुर्ता पहने कद्दावर आदमी को देख कर, तारा की आँखें विस्मय में फैल गयीं और फिर गर्दन झुक गयी।

सोमराज साहनी पंजाब के सर्व-शक्तिमान मंत्री सूद जी से केन्द्र के उद्योग-मंत्री के नाम सिफारिशी पत्र लेकर दिल्ली गया था। जानता था, प्रार्थना-पत्रों और पत्रों से तो काम महीनों लटके रहते हैं। काम स्वयं जाने से, अफसरों को साथ लेने से ही हो सकते हैं। मंत्री महोदय ने पी० ए० को आदेश दे दिया था। पी० ए० ने मंत्री महोदय की ओर से फोन पर सम्बन्धित डिप्टी-सैक्रेटरी को कह दिया था। डिप्टी-सैक्रेटरी के यहाँ सोमराज को आश्वासन मिला था और उन्होंने मंत्री महोदय की कृपा पाये व्यक्ति को अंडर-सैक्रेटरी के कमरे तक पहुंचा देने के लिये अपना चपरासी साथ कर दिया था।

सोमराज साहनी चपरासी के साथ अंडर-सैक्रेटरी के यहाँ इतने भरोसे से गया था कि उस ने कमरे के बाहर अफसर के नाम पर नज़र डाल लेना भी आवश्यक नहीं समझा। कमरे में जाकर अपने सामने कुर्सी पर तारा को बैठी देख कर पहचानने में भूल नहीं हुयी। तारा को अप्रत्याशित और सहसा देख कर सकपका गया।

तारा ने आँखें झुका कर दांत दबा लिये। अपनी स्थिति के ध्यान से अपने आप को संभाला। आँखें झुकाये ही सोमराज को सामने की कुर्सी ले लेने का संकेत किया और कागज़ों के लिये हाथ बढ़ा दिया।

तारा सोमराज से लिये कागज़ों को, ओट के लिये चेहरे के सामने करके देखने लगी। कागज़ों पर उसे अक्षर नहीं, कल्पना में सात वर्ष पूर्व की

घटनायें दिखायी दे रही थीं। सूखे गले से कई घूँट भरे, किसी तरह अपने आप को संभाला। सहकारी ऋण के लिये सोमराज का प्रार्थना-पत्र पढ़ा।

सोमराज ने प्रार्थना-पत्र देश की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष में दंड पाने वाले पुराने राजनैतिक पीड़ित के रूप में दिया था।

झूठ! धोखा! तारा के मस्तिष्क में क्रोध की ज्वाला भभक उठी परंतु प्रार्थना-पत्र के साथ राज्य-कांग्रेस-कमेटी के कागज़ पर, राज्य-कांग्रेस-कमेटी की मोहर सहित, सोमराज साहनी के राजनैतिक कारणों से दो वर्ष जेल काटने का प्रमाण-पत्र मौजूद था।

तारा ने कागज़ों को उलट-पलट कर देखा, विभाग के इंस्पेक्टर की आवश्यक रिपोर्ट भी मौजूद है या नहीं? रिपोर्ट नहीं थी। तारा समझ गयी, जाव्ते की लम्बी-चौड़ी कार्रवाई के झगड़े में न पड़ कर ऊंची सिफारिश के ज़ोर से काम बनवा लेने का प्रयत्न था।

तारा ने हाथ में लिये कागज़ों के पर्दे की सहायता पाकर आठ मिनिट में अपने आप को बिलकुल संयत, दृढ़, तटस्थ अफसर-मात्र बना लिया था। कागज़ों की ओट से ही अंग्रेज़ी में कह दिया—"उत्तर डाक से भेज दिया जायेगा।"

अफसर की कुर्सी पर अभिमान से बैठी तारा के सामने प्रार्थी के रूप में बैठना सोमराज को बहुत असह्य हो रहा था, जैसे सूलों पर बैठा हो। उत्तर पाते ही वह उठ कर, बिना कुछ बोले, कमरे से बाहर चला गया। फिर वह इस विषय में किसी से कुछ कहने नहीं गया।

सोमराज प्रायः ही सरकारी दफ्तरों में अपने काम करवाता रहता था। इतना अनुभवहीन नहीं था कि उस मामले में अब भी सफलता की आशा करता। जानता था, अंडर-सैक्रेटरी तो क्या, क्लर्क भी फाइल में जाव्ते का अड़ंगा लगा दें तो बड़े से बड़ा अफसर भी जाव्ते के विरुद्ध नहीं जा सकता। अपनी असफलता का दुखड़ा रोते फिरने से अपनी ही फजीहत होती। वह खून का घूंट भर कर रह गया था।

तारा के लिये सोमराज के केस की अप्रिय परेशानी से बचने का उपाय कठिन नहीं था। केस पर इन्क्वारी का आर्डर लिख दे सकती थी या यों ही फाइल को, विचार के लिये एक ओर रख देती परन्तु डिप्टी-सैक्रेटरी ने स्वयं कुछ भी न लिख कर केवल जबानी आदेश दे दिया था—हो सके तो आज ही हो जाये। अभिप्राय था, इसे कर डालो! उन्हें उत्तर देना आवश्यक था।

तारा प्रायः चालीस मिनिट तक दूसरी फाइलें देखती बहुत व्यग्रता से सोचती रही-क्या करे ? कर देने में अड़चन तो कुछ भी नहीं थी। वह किसी भी दूसरे स्वीकृत प्रार्थनापत्र को रद्द करके इस केस में पच्चीस हजार का ऋण मंजूर कर देती तो केस में इंक्वायरी न होने या प्रार्थना-पत्र विलम्ब से आने के विषय में आपत्ति करने वाला कोई नहीं था। उसे केवल उच्चाधिकारी का मौखिक निर्देश ही पूरा कर देना था परन्तु कर नहीं पा रही थी। मन विरोध कर रहा था—सब जाल है, फरेब है, धोखा है !

सोमराज के प्रार्थना-पत्र पर तारा यह नोट कैसे दे सकती थी ! फोन पर डिप्टी-सैक्रेटरी को यह उत्तर कैसे दे देती ! उसे यह सब तो मालूम नहीं था ? जाब्ते से उसे कांग्रेस कमेटी के प्रमाण-पत्र पर विश्वास करना चाहिये था। अपने अफसर के आदेश को पूरा करना चाहिये। वही उस का उत्तरदायित्व था परन्तु सोमराज का प्रार्थना-पत्र मंजूर करना, दूसरे पात्र और अधिकारी लोगों का अवसर छीनना था। यह भी जानती थी, नित्य ऐसे बीसियों मामले सचिवालय में होते थे। वह इस मामले में रोक लगा देगी तो क्या हो जायगा ? उस ने अभी तक जान-बूझ कर किसी मामले में ऐसा नहीं किया था इसीलिये वह सख्त अफसर समझी जाती थी, अच्छी अफसर नहीं समझी जाती थी ?

तारा के मन ने विरोध किया—मंत्री ने स्वयं कुछ न लिख कर पी० ए० से कह दिया, पी० ए० ने मौखिक सुझाव डिप्टी-सैक्रेटरी को दे दिया, डिप्टी-सैक्रेटरी ने स्वयं कुछ न लिख कर उसे फोन कर दिया। मौलिक बात तो उस की कलम से ही लिखी जायगी ! जाब्ते से पूरे जाल की जिम्मेदारी तो उसी पर होगी ! यह नहीं करूंगी !

तारा ने निश्चय करके मिस्टर चारी को फोन कर दिया—"सर, इस केस में मुझे कई कठिनाइयां जान पड़ती हैं। केस आप के पास भेज रही हूं। आप जैसा नोट देंगे, कर दिया जायगा।"

मिस्टर चारी ने तारा की बात सुन कर क्रोध से फोन पटक कोई उत्तर नहीं दिया। पी० ए० के आदेश पर भी वे अंडर-सैक्रेटरी के नोट का आधार हुए विना, कैसे नोट दे देते ? वे तो अंडर-सैक्रेटरी का समर्थन ही कर सकते थे। अपने हाथ से लिख कर अपने हाथ तो नहीं कटा सकते थे !

तारा अपने अफसर की नाराजगी सिर पर लेकर मन ही मन चिंतित और क्षुब्ध हुए बिना कैसे रह सकती थी ? इस चिंता और क्षोभ की बात किसी को तो बता कर मन हलका करना था। उस ने सोमराज का नाम-धाम और परिचय बताये विना, नरोत्तम से चर्चा की और डिप्टी सैक्रेटरी प्रभा

सक्सेना के सामने भी अपनी मानसिक यंत्रणा का क्षोभ प्रकट कर दिया। दोनों ने उसे आश्वासन दिया—"तुम इन खुशामदी बेईमानों की परवाह मत करो, मिनिस्टरी के ऐसे ही ढंग तो इनके हौसले बढ़ाते हैं।''' तुम्हारा क्या बिगाड़ लेगा ? रिपोर्ट में खराब रिमार्क देगा तो तुम भी उत्तर दे सकती हो। बहुत कर लेगा, दूसरे विभाग में बदली करवा देगा ! रिकार्ड तो तुम्हारा खराब कर नहीं सकता !"

तारा पर नौकरी के आरम्भ में भी ऐसी मुसीबत आयी थी। उसे भानुदत्त का मामला याद आ गया। उस समय तारा को, न्याय पाने के लिये होम-सैक्रेटरी रावत का भरोसा था ! अब वे रिटायर होकर सार्वजनिक-सेवा-आयोग में चले गये थे परन्तु तारा घबरायी नहीं। उस के कदम नौकरी में पक्के हो चुके थे।

सोमराज के अकस्मात प्रकट हो जाने के कारण तारा ने दफ्तर की कार्रवाई में क्षोभ पाया था। उस विषय में दो-तीन जगह बात करके मन हलका कर लिया था परन्तु सोमराज को देख कर मन में गहरी, दबी हुई जो भयंकर टीस फिर जाग उठी थी, उसे किसी से नहीं बंटा सकी थी। अतीत की बात सोच-सोच कर उस का सिर चकरा जाता था।

''''उस का जीवन किसने बरबाद किया ?''''दुष्ट सोमराज ने या उसे गली में से उठा ले जाने वाले दुष्ट गुंडे ने ?''' यदि सोमराज ने वैसा व्यवहार न किया होता तो उस गुंडे के हाथ क्यों पड़ती ?''''सोमराज के साथ जीवन बिता सकना कैसे संभव होता ?'' क्या हम हजारों स्त्रियों की यही नियती थी ? यह हमारे किस अपराध का दंड था ? लाहौर से अमृतसर लायी जाते समय, सड़क पर देखी मुस्लिम स्त्रियों की दुर्दशा कल्पना मे जाग उठी। तारा के रोंगटे खड़े हो गये।''''भाग्य में बदा था तो किस अपराध के कारण ? ''''क्या इस वैतरणी में से पार होना आवश्यक ही था ?'' वैतरणी पार करके मैं कौन स्वर्ग में पहुंच गयी हूं ?'''अभी क्या पता है ?''' मेरा जीवन तो वृक्ष से टूट कर हवा में उड़ते जाते पत्ते की तरह है; उस के भविष्य का क्या ठिकाना ?'''जीवन को स्वयं ही समाप्त कर देना पड़ेगा ?

सुबह के ही पत्र में कश्मीर की सीमा पर भारतीय और पाकिस्तानी सेना मे भयंकर संघर्ष हो जाने का समाचार था। दोनों देशों मे भयंकर युद्ध हो जाने की आशंका थी। तारा सोचने लगी—क्या मैं ही एक बर्बाद हुयी हूं ? लाखों बर्बाद हो चुके, मिट चुके। यदि परस्पर द्वेष का प्रलय अब भी शान्त नहीं होता तो जाने क्या होकर रहेगा ?

उस घटना के परिणाम में तारा की बदली सूचना विभाग में हो गई थी। बदली से उस की हानि तो कुछ भी नहीं हुई फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से यह उस की पराजय और बेईमानी की विजय थी। घटना तारा के मन में एक कसक छोड़ गयी थी।

१६

कनक को जालंधर से आये दो बरस हो गये थे।

कांता कनक को समझा कर लौटा ले जाने के लिये दिल्ली गई थी पर निष्फल जालंधर लौटी थी। पुरी कांता से मिलने गया था। कांता उसे क्या कहती, बात टाल दी—"भई जितना समझा सकती थी, समझाया पर उस की तो खोपड़ी में जो समा जाये, उस से टल नहीं सकती। " तुम क्या नहीं जानते ?"

परन्तु पुरी ने प्रयत्न नहीं छोड़ दिया था। उस ने कनक को पत्र लिखे। पत्रों के उत्तर नहीं आये तो इस के बाद वह पंडित जी को लगभग प्रतिमास पत्र लिखता रहा। पुरी पंडित जी को विनय से 'मोहतरिम' (आदरणीय) संबोधन कर साहित्यिक शैली में पत्र लिखता था। पत्र में विधानसभा, समितियों सार्वजनिक कामों तथा 'नाज़िर' के कारण व्यस्तता का जिक्र रहता था। जया और कनक के स्वास्थ्य के विषय में चिंता रहती थी।""जया अब कैसी लगती है ? कैसी बातें करती है ? देखे इतने दिन हो गये। उस का ताजा चित्र भेज सकें तो कृपा होगी। वह अपने पापा को याद करती है या नहीं ?"''घर की तो जो अवस्था होगी, आप स्वयं कल्पना कर सकते हैं। घर की मालकिन के बिना""।

ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था पंडित जी की चिंता बढ़ती ही जा रही थी। पंडित जी ने मन को समझा लिया था कि समय का मरहम घावों को ठीक कर देगा, अब टूटता जा रहा था। सन् ५८ मई में कंचन और नरोत्तम का विवाह हो गया था। कंचन नरोत्तम के साथ कानपुर चली गयी थी। दिल्ली के पत्रों में कनक को काफी फुटकर काम मिल गया था। वह अच्छी-खासी जम गयी थी। सप्ताह में तीन दिन संध्या समय एक राजदूतावास में हिन्दी पढ़ाने भी

जाती थी। एक पाक्षिक हिन्दी पत्र में नियमित काम था। अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद का काम भी मिल जाता था। मेहनत बहुत पड़ती थी परन्तु अढ़ाई-तीन सौ मासिक या कुछ अधिक भी बन जाता था। कनक ने जिद्द करके नया हिन्द प्रेस दो सौ रुपये महीने पर ठेके में दे दिया था।

पंडित जी ने नया ढंग अपना लिया था। चाय, दूध, फल, मांस सब छोड़ दिया था। खुश्क रोटी और उबली हुयी तरकारी ही खाना चाहते थे। कनक को यह बुरा लगता था। पंडित जी कहते--बेटा, इस उम्र में सेहत के लिये परहेज जरूरी है। पच नही पाता तो तकलीफ होती है। पुरानी पोशाक, बन्द गले का कोट और चूड़ीदार पाजामा और पगड़ी छोड़ कर आधी बाँह का ढीला कुर्ता और सीधा पाजामा पहनने लगे थे। पगड़ी अनावश्यक बोझ लगती थी। अपने पहनने के कपड़े स्वयं धोना चाहते थे।

कनक झुंझला उठती—"पिता जी, यह क्या कर रहे है ?"

पंडित जी बहुत स्नेह से समझाते---"बेटा, इस से जरा हाथ-पांव हिल जाते है। सोचो, दिन भर खाट पर पड़े रहने से दो रोटी की भूख भी नही लगती। खाने के लिये रुचि हो इसलिये भूख तो लगनी चाहिये।" पंडित जी चाहते थे स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये संध्या का खाना बन्द कर दें परन्तु कनक भी खाने मे इन्कार कर देती थी। वे विवश हो जाते।

पंडित जी की एकमात्र चिन्ता और दिल-बहलावा जया ही थी। उस के साथ उस की ही आयु के बन कर बाते करते रहते थे। उसे मौखिक अंग्रेज़ी पढ़ाते रहते थे। स्पेलिंग और पहाड़े याद कराते, कहानियाँ सुनाते रहते। उसे नहलाने-धुलाने के लिये उत्सुक रहते थे परन्तु बाल नही बांध पाते थे।

गिल प्रायः आता रहता था। पंडित जी उस से इकबाल और सूफी शायरों के काव्य के सम्बन्ध में बात करने लगते थे। सामयिक राजनीति की चर्चा करते तो अन्तिम बात सदा एक ही कहते – आदमी सही रास्ते पर तभी चल सकता है जब सेल्फलेस (निस्वार्थ) हो। समाज के विकास मे हर एक पीढ़ी अपना कर्तव्य पूरा कर चली जाती है। भविष्य की जिम्मेदारी और मोह व्यर्थ है।

पंडित जी राजनीति की बात करते-करते जीवन-मृत्यु की बातो में बह जाते। मृत्यु की अनिवार्यता के सम्बन्ध मे कई शेर कह जाते –

"कैदे-हयात बन्दो-गम दोनों असल मे एक हैं,
मौत से पहले आदमी इन से निजात पाये क्यों !"

आखिरी बात होती---बरखुर्दार, जिस्म तो लहू और गोश्त की मशीन है। चेतना इस मशीन से उत्पन्न गति है। मशीन तो एक दिन घिस जायेगी।

को नहीं बुलाया ?"

वहन जी रहने दो। यहां रहेगी तो जरा पिताजी को टोक्ती तो रहेगी। नही तो ..."

कनक और कांता जया को आहट न पाने देने के लिये आंगन में से दवे पांव ड्योढी की ओर चली गयीं।

कांता दो दिन दिल्ली में रहकर जालधर लौट गयी थी। कनक बहुत ध्यान और चिंता मे पंडित जी की अवस्था देख रही थी। उन की सब चिंता और दुख उसी के कारण था। यह लज्जा उसे मारे डाल रही थी। पंडित जी अपनी चिंता छिपा कर साधारण व्यवहार करने का प्रयत्न कर रहे थे परन्तु ऐसा कर नही पा रहे थे। 'दीवाने-गालिब' या 'मुसद्दसे-हाली' या मोटे अक्षरों में छपी 'गीता' लेकर पीठदार मोढ़े पर बैठ जाते। कनक उन की ओर कनखियों से देख लेती थी। पंडित जी पुस्तक गोद में रखे रहते परन्तु कनपटी मुट्ठी पर टिकाये चिंता में डूबे रहते। कनक जानती थी—उस की फूटी किस्मत के सिवा सोचने को और क्या था ?

लगभग एक सप्ताह बाद पंडितजी का व्यवहार फिर पूर्ववत दिखायी देने लगा। संध्या समय जया को कहानियाँ सुनाने और मौखिक गणित सिखाने लगे। कनक सुन रही थी, पिता जी ने जया को 'हकीकतराय' की कहानी सुनायी। ब्यौरे मे बताया कि दुष्ट लोगो ने उस बहादुर लड़के को पांव से आरम्भ करके धीरे-धीरे इंटों और चूने से गले तक दीवार में चुन कर कहा कि तू अब भी अपना धर्म छोड़ दे लेकिन वह बहादुर लड़का डरा नहीं। उस ने धर्म छोडना स्वीकार नही किया। उसे पूरी दीवार में चुन दिया गया। उस का शरीर मर गया परन्तु उस का 'धर्म' उस का 'नाम' अब भी जिन्दा है।

कनक दिन भर की थकावट के बाद भोजन तैयार हो जाने की प्रतीक्षा मे खाट पर लेट गयी थी। दुर्रानी गली मे आकर बस गई एक पंजाबिन विधवा दोनो समय उन के यहां रसोई-चौके का काम कर जाती थी। कनक खाट पर लेटी हुई सुन रही थी। उस के पिता उस की बेटी को समीप लिटाकर कहानी सुना रहे थे। कनक को खयाल आ रहा था, धर्म के भेद का झगड़ा कब और कहां जाकर समाप्त होगा। वह हकीकतराय जैसे मासूम बच्चों को ले मरा। उसी झगड़े के कारण वे लोग लाहौर छोड़ कर बेघर-बार हो गये! धर्म के कारण उस मकान और गली के लोगों को पश्चिम भाग जाना पड़ा। यह सब केवल अदृश्य भगवान के प्रति धारणाओं मे भेद से है। पिता जी की

बात सुनने की इच्छा के कारण ठीक से सोच नहीं पा रही थी। सोचने से लाभ भी क्या था ?

कनक को याद आ रहा था—वह भी बचपन में पिता से इसी तरह कहानी सुना करती थी। कनक ने सुना, जया ने बड़ी तन्मयता से पूछ लिया—"हकीकतराय मर गया फिर क्या हुआ ?"

पंडित जी ने उत्तर दिया—"बेटा, जो बच्चे धर्म और अच्छे काम करने से, सच्ची बात कहने से नहीं डरते वे बहादुर होते हैं। ऐसे लोग कभी नहीं मरते !"

जया का प्रश्न फिर सुनाई दिया—"उन का गला काट देते हैं फिर भी नहीं मरते ?"

सुन कर कनक को बेटी के भोलेपन पर प्यार आ गया। जया प्रश्न पर प्रश्न पूछती चली जाती थी। याद आया—पिता जी प्रायः कहा करते थे—कन्नो, तू बचपन में भी बहुत प्रश्न पूछती थी, बाल की खाल निकालती रहती थी।

कनक पिता का उत्तर सुनने के लिये सतर्क हो गई।

पंडितजी ने कहा—"हाँ बेटा, जो अच्छे काम से नहीं डरते, वे कभी नहीं मरते ?"

कनक की नज़र बेटी की ओर चली गयी। जया ने अपना पांव हाथ में पकड़ कर फिर पूछा—"कभी भी नहीं मरते ? सब लोग मर जाते हैं तो भी नहीं मरते ?"

पंडित जी ने उत्तर दिया—"हां बेटा, वे कभी नहीं मरते। सुनो, उन की बहादुरी और अच्छा काम देख कर दूसरे लोग बहादुर बनते हैं। धर्म और अच्छा काम करना सीखते हैं।"

जया ने फिर पूछा—"धर्म क्या होता है ?"

पिताजी ने धर्म की व्याख्या की—"जो बच्चा कभी नहीं डरता, बड़ों का कहना मानता है, सच बोलता है, किसी की चीज़ नहीं लेता, लालच नहीं करता, गंदी चीजें नहीं खाता, साफ़-सुथरा रहता है, किसी को नहीं मारता, वह बहादुर होता है, धर्म करता है। तुम भी धर्म करोगी और बहादुर बनोगी।"

"मम्मी भी बहादुर है ?" जया ने पूछ लिया।

सुनकर कनक को रोमांच हो आया। पिता जी का उत्तर सुनने के लिये उस ने होंठ दांत तले दबा लिया।

पंडित जी ने उत्साह से कहा—"तुम्हारी मम्मी बहुत बहादुर है। मम्मी

धर्म करती है। अच्छा काम करने से कभी नहीं डरती। किसी को धोखा नहीं देती। हमारी बेटी भी ऐसी ही बनेगी।"

कनक ने दीर्घ निश्वास छोड़ा—मैं तो क्या अच्छा काम कर सकी। यह लड़की तो कुछ बन जाये। परन्तु उस का मन हल्का हो गया। पिता जी उस से रुष्ट नहीं थे। पिता उस के कारण लज्जित नहीं थे तो उसे किसी की चिन्ता नहीं थी।

पंडित जी संध्या का भोजन आठ बजे अवश्य कर लेते थे। भोजन के पश्चात एक मील घूम लेने का भी नियम बना लिया था। अंधेरा हो जाने पर गलियों में से बाहर जाने में उन्हें असुविधा होती थी। आंगन की परिक्रमा के कदम गिन कर हिसाब कर लिया था कि सत्तर बार आंगन की परिक्रमा कर लेने से एक मील और छत्तीस गज घूमना हो जाता था। कनक पिता के साथ भोजन कर लेती थी तो परिक्रमा में पिता जी का साथ देती थी। उस समय पिता और बेटी सभी तरह की बातें कर लेते थे—काश्मीर को भारत का अंग मानने के सम्बन्ध में युक्तियां, गवर्नमेंट की सफलता-असफलता, भारत के किसी भी सामरिक गुट में सम्मिलित न होने का औचित्य, अंतरराष्ट्रीय शान्ति के लिये भारत की देन, जया की पढ़ायी और स्वास्थ्य, कंचन-नरोत्तम के पत्र, दूसरी पंचपर्षीय योजना की सभावनायें, सामाजिक, नैतिक और कभी दार्शनिक प्रसंग भी। यह प्रसंग प्रायः कई बार दोहराये जा चुके थे। कनक पिता के विचारों और दृष्टिकोण से परिचित थी।

कांता के जालंधर लौट जाने के प्रायः मास भर बाद कनक को लगा, पंडित जी कुछ नये ढंग से या नयी-नयी बातें सोचने लगे थे। कुछ ऐसी बातें जो उन के लिये तीस-चालीस वर्ष पूर्व सोचना अधिक स्वाभाविक होता। उचित-अनुचित के निर्णय में परम्परा और बहुमत की अपेक्षा अपने विवेक पर भरोसा करने के साहस की आवश्यकता। परिस्थिति के अनुसार जीवन की पूर्णता के लिये जो अनुकूल हो, वही उचित है।·· औचित्य की कोई धारणा शाश्वत नहीं। मनुष्य कर्म का फल अवश्य पाता है। इस का अर्थ यह नही कि हम जिन कर्मो को जानते नहीं उन के फल से नियंत्रित है बल्कि यह कि हम अपने प्रयत्न और कर्म से स्वयं को और समाज को जैसा बनाने का प्रयत्न करते है, हमारा जीवन उसी के अनुसार बन जाता है। जीवन में प्रयत्न का समय कभी समाप्त नहीं होता।···सुकर्म-कुकर्म की कसौटी ज्ञान और भावना है।···· कार्य और कर्म तो क्षण में समाप्त हो जाते है। वे मनुष्य को नहीं बाँध

सकते । भावना और ज्ञान बहुत समय तक बने रहते हैं । उन से एक के वाद दूसरे कार्य और कर्म होते रहते हैं, ज्ञान और भावना ही मुख्य है ।…यदि समझ और भावना ठीक है तो मनुष्य भूलों को सुधार सकता है ।….भूल की परख तो ज्ञान से होती है ।… मनुष्य का ज्ञान सदा एक सा नहीं रहता । यदि हम पचास वर्ष पूर्व के समाज की आलोचना, अपने आज के विचारों से करें तो कहेंगे, उस समय मनुष्य वैज्ञानिक नियमों के सम्बन्ध में, औषधियों के सम्बन्ध में, खेती और कारीगरी के सम्बन्ध में, व्यवस्था और कानूनों के सम्बन्ध में भी बहुत गलतफहमियों में था । उन्हीं गलतफहमियों और भूलों से सीख कर समाज आज यहाँ पहुंचा है ।

कनक केवल विचार के लिए विचार की इन वातों से ऊबने लगती थी। कभी यह भी ख्याल आता, पिता जी कहीं बीते सुविधामय जीवन की याद में ही तो नहीं बहक रहे है या आयु बढ़ने और शरीर की शक्ति क्षीण होने पर बुढ़मस के लक्षण तो नहीं आ रहे हैं ? चुपचाप सुन लेतीं । जो भी हो, अव इन का मन हल्का तो है ।

पंडित जी ने भोजन के बाद आँगन की परिक्रमा करते हुये बिल्कुल तटस्थ भाव से एक बात कह दी । कनक उस का उत्तर देने में फरवरी की गुलावी सर्दी में भी पसीना-पसीना हो गयी थी । उत्तर दे देने के बाद पिता के साथ टहल सकना भी संभव न रहा । अपने पलंग पर जाकर लेट गयी ।

दूसरे दिन प्रात: ही वह बात गिल को वता देने के लिए कनक का मन छटपटा रहा था । उस ने बहुत निग्रह से काम लेने का निश्चय किया । बताये बिना रह सकना संभव नहीं था परन्तु बता कर परिणाम क्या होगा ? स्थिति को संभाल भी पायेगी ?….उस का सिर उड़ा जा रहा था । दफ्तर में काम कर सकना सम्भव नही हो रहा था । दफ्तर में तीन बार हाथ फोन पर चला गया कि गिल से संध्या समय मिलने के लिये कह दे परन्तु हाथ रोक लिया, आशंका थी— फिर क्या होगा ? उस बाढ़ को रोक सकेगी ?… पिछली वरसात के दिनों दिल्ली में देखी यमुना की बाढ़ का दृश्य कल्पना में नाच गया । कनक परिणाम के विचार से आत्म-निग्रह में छटपटाती रही । रात इसी परेशानी में नींद भी नहीं आ रही थी । आखिर उपाय सूझ गया—पहले वचन ले लूँगी कि मेरे अनुरोध की रक्षा का वचन देना होगा । कनक को नींद आ गयी ।

कनक की शंका और सावधानी अकारण नही थी । गिल ने जालन्धर में

चार वर्ष तक ऐसा संयम निबाहा था मानो कनक और उस के बीच कभी कोई आकर्षण या रहस्य न रहा हो। वह कनक के बड़े भाई की तरह ऐसे व्यवहार करता था कि उसे बहिन या 'सखा' की सभी कमजोरियाँ और रहस्य मालूम हों और बहन या 'सखा' का हित उस का उत्तरदायित्व हो। कनक के हित के विचार से वह सदा पुरी का पक्ष लेना उचित समझता था क्योंकि कनक का हित पुरी को दोषी प्रमाणित कर देने में नहीं था। कनक के हित में कड़ी बात कह देने में भी संकोच नहीं करता था। कनक भी गिल के हित के प्रति उत्तरदायित्व समझती थी। कनक के अतिरिक्त गिल की चिन्ता करने वाला और था कौन ? कनक ने गिल की भलाई के लिये आग्रह से एक बार गिल को बहुत खिन्न भी कर दिया था।

महेन्द्र नैयर मंडी बाजार में रहता था तो उस के मकान के सामने ही डाक्टर बेदी ने भी मकान ले लिया था। नैयर और बेदी की भेंट दस-ग्यारह बरस बाद हुयी थी पर देखते ही पहचान गये थे। विद्यार्थी जीवन में दोनों को टैनिस का शौक था। 'रैंगल' में दो-तीन बार एक दूसरे का सामना भी किया था। बेदी 'मेडिकल कालेज' में और नैयर 'ला कालेज' में था। जालन्धर में भेंट हुयी तो दोनों लिपट कर मिले।

नैयर और अनूपसिंह बेदी के मकानों में गली की चौड़ाई का ही अन्तर था। दोनों परिवारों में खूब आना-जाना हो गया था। नैयर को किसी के घर जाने की आदत कम ही थी परन्तु डाक्टर बेदी के यहाँ कभी-कभी जा बैठता था। नानो या धीरु को छींक भी आती तो कांता बेदी 'भ्राजी' को दिखाकर या बुलाकर राय ले लेती। बेदी की पत्नी बसंतकौर बहुत मिलन-सार थी। उस से भी अधिक कांता को अच्छी लगती थी डाक्टरनी की देव-रानी अमरो (अमरकौर)।

अमरकौर असाधारण सुन्दरी थी, बिलकुल कलाकार की कल्पना जैसी। एक जबड़े पर नीचे की ओर, दिठौने जैसा घाव का दाग था; शायद इसलिये कि इतने नूर पर नजर न लग जाये ! स्वभाव भी वैसा ही सौम्य। बोलती कम थी। जब बोलती, बोलों में लाज और मिठास घुली रहती। कनक अमरो को बहिन के घर दो ही बार देख कर उस पर मुग्ध हो गयी थी। उस की करुण कहानी सुनी तो स्तब्ध रह गयी।

डाक्टर अनूपसिंह बेदी का भाई ईश्वरसिंह बेदी भी डाक्टर था। उस ने भी मिंटगुमरी में ही प्रैक्टिस आरम्भ की थी। विभाजन से बरस भर पहले

ही उस का विवाह हुआ था। ईशरसिह ने प्रैक्टिस के लिये चौड़े बाजार में दुकान ले ली थी। विभाजन से छः मास पूर्व ही वह अमरकौर को लेकर, गली के कोने पर दुकान के ऊपर के कमरों में रहने लगा था। आस-पास अधिकांश मुस्लिम बस्ती थी। चार-छः घर ही हिन्दुओं के थे।

शहर मे सनसनी फैल गयी तो डाक्टर अनूपसिह ने छोटे भाई को अपने यहाँ ही आ जाने के लिये कह दिया था। उन की गली मे सब बस्ती हिन्दू सिक्खों की ही थी। वह स्थान उन के लिये सुरक्षित था। ईशरसिह ने कहा, उस की गली से एक भी परिवार भागा तो पड़ोसियों का हौसला टूट जायेगा और पड़ोस के मुसलमानों का हौसला बढ जायेगा। उस ने भाई के यहां से बन्दूक और कारतूस लेकर रख लिये थे।

ईशरसिह बन्दूक लाया तो अमरो ने कौतुहल से बन्दूक को देखा था। ईशरसिह ने प्यार से पूछा —"तुम बन्दूक क्या जानो; पहले भी कभी देखी है ?" अमरो रिटायर्ड सूबेदार की पोती थी। उस ने बताया, उस के घर में बन्दूक थी। दादा को शिकार का भी शौक था। उन की जमीनों की सीमा पर तालाब थे। वहाँ जल-मुर्गियां बहुत आती थी। दादा सुबह-शाम घूमने जाते तो बन्दूक हाथ में रहती थी। कभी पोते-पोती घर पर होते तो उन्हें भी साथ ले जाते थे। अमरो कई बार जल-मुर्गियो पर बन्दूक चला चुकी थी। दादा जब भी उस से फायर करवा देते तो दो दिन तक बेचारी के कन्धे मे दरद बना रहता था।

साईं की गली मे १९ अगस्त की संध्या समाचार पहुंचा कि चौडे बाजार के हिन्दुओं पर आक्रमण हो गया है। मुस्लिम पुलिस पर क्या भरोसा किया जा सकता था ? साईं की गली से लगभग पचास आदमी शस्त्र लेकर, चौड़े बाजार के हिन्दुओं की सहायता के लिये गये। उन के पहुंचते-पहुंचते प्रायः सब कुछ समाप्त हो चुका था। सशस्त्र हिन्दुओं के आ जाने से मुसलमानों की भीड भाग गयी। अमरकौर दूसरी मंजिल की खिड़की के नीचे बन्दूक हाथ मे लिये बेहोश पड़ी थी। उस के कपड़े खून से लथपथ थे। गोद की बच्ची गोली लगने से मर चुकी थी। उस का पति ईशरसिह भी कई गोलियाँ लग जाने से मरा पड़ा था।

डाक्टर अनूपसिंह ने बताया—गरीब लडकी कितने फायर कर सकती थी। दो-चार फायर किये होगे। झटके से दायी ओर हंसली का जोड़ खुल गया था। कन्धे से नीचे बांह पर छर्रा धंस गया था। एक छर्रा जबडे को छील गया था। बेहोशी की हालत मे उठाकर घर लाये। महीना भर कैम्प

में रहे फिर जालन्धर पहुंचे। अमरकौर डाक्टर के हाथों में थी, इसीलिये बच गयी।

बसंतकौर ने बताया— अमरकौर बहुत ही चुस्त और हंसोड़ थी परन्तु पति और लड़की की मृत्यु और स्वयं सहे जख्मों के प्रभाव से प्रायः दो बरस तक बिलकुल सुन्न हो गयी थी। फिर सोचा होगा, जिन्दगी है तो पत्थर बनी रह कर तो नहीं बितायी जा सकेगी। मैट्रिक पास थी। उस ने अपने जेठ से अनुरोध किया कि वह कोई काम सीख ले। डाक्टर अनूपसिंह ने स्वीकार कर लिया। सोचा, लड़की किसी तरह जीवन के प्रति कुछ रुचि अनुभव करे!

अमरकौर ने हेल्थ-स्कूल का कोर्स कर लिया था। सन् ५१ में धीरू के जन्म के समय उसी ने सब काम संभाला था। वह कांता के ही यहाँ आ गयी थी। कांता और कनक की वह इतनी अपनी हो गयी थी कि वे उसे 'अमर' या 'अमरो' कह कर पुकारने लगी थीं। नैयर, पुरी और गिल भी अमर के प्रति सहृदय थे। 'कलाकार की कल्पना सी' शब्द पुरी के ही थे। कनक ने गिल के सामने अमरो के शील, सौन्दर्य की सराहना की तो गिल ने भी कहा था— ऐसी युवती को देख पाना ही सौभाग्य है।

अमर अपने जेठ-जेठानी के लिये बोझ नहीं थी, वे ऐसा समझते भी नहीं थे। सहृदयता के कारण वे इस बात के लिये तय्यार थे कि जो होना था हो चुका, जवानी में कदम रखती युवती जीवन भर एकाकीपन की यातना में क्यों पड़ी रहे! यदि अमरो माने तो उस का विवाह हो जाये। वे स्वयं ऐसी बात कहना नहीं चाहते थे पर आपत्ति न होने का संकेत देते रहते थे। डाक्टर बेदी अक्सर गिल को बुला लेता था। कई लोगों ने भांप लिया था कि अमरो को गिल अच्छा लगता था। कांता और कनक इस विषय में पुरी की ईर्षा भी भांप गयी थीं।

बसंतकौर ने कांता के कान में बात की। कांता ने नैयर से परामर्श करके अत्यन्त रहस्य के रूप में, कनक और पुरी से कहा। कनक ने आश्वासन दे दिया; गिल भाई को मैं मना लूंगी।

कनक के अन्तरतम में इच्छा थी कि गिल का विवाह हो जाये। इस काम में सहायता दे, वह गिल के प्रति किये अन्याय का प्रतिशोध कर देना चाहती थी। गिल का विवाह हो जाने पर उस के साथ अधिक निस्संकोच हो सकती थी।

गिल ने उत्तर दिया—"क्या फिजूल बात करती हो। मुझे ब्याह का ख़याल ही नहीं है।"

कनक अवसर मिलते ही गिल को समझाने लगती—"स्वयं तो कहते हो

उसे देख पाना सौभाग्य है । उस से अच्छी लड़की और क्या हो सकती है ? तुम्हारी संगति में पढ़ने, बात करने का अवसर मिलेगा तो देखना ? बहुत प्यारा स्वभाव है ।"

"ठीक है, लड़की बहुत अच्छी है इसलिये मैं व्याह के लिये तैयार हो जाऊं ? अजीब बात है । उस के सम्बन्ध में मुझे कभी ऐसा खयाल नहीं आया ।"

कनक ने ज़िद्द नहीं छोड़ी, कहा—"तुम्हें एक साथ देख कर हमारी आंखें तृप्त हो जायंगी । इस से अच्छी जोड़ी की तो मैं कल्पना नही कर सकती ।"

गिल बार-बार अनुरोध से चिढ़ गया था—"मेरी जोड़ी बना देने का क्या मतलब ? मैं क्या नसल बढ़ाने के लिये हूं । ऐसी बात है तो मैं वेदी के घर कभी नहीं जाऊंगा ।"

वह बात तो आयी गयी हुई परन्तु जालंधर में गिल ने कनक से कितनी ही बार एकांत में बातें की पर उस ने न कभी कनक को स्पर्श करने की इच्छा का और न बातचीत में रहस्य उत्पन्न करने का कोई संकेत किया । कनक खूब जानती थी कि गिल को पुरी जरा भी पसंद नहीं था । वह जालंधर में कनक के कारण ही था । यह बात मन में गहरी कसक पैदा कर देती थी । गिल को दिल्ली से भी कई पत्र आ चुके थे कि वहां काफी अच्छा अवसर था । कनक को इन बातों से गिल के प्रति कृतज्ञता और गर्व अनुभव होता था । सामाजिक सम्बन्ध न होकर भी गिल पर उस का भरोसा था । सोचती थी, सचमुच संयमी, लौहपुरुष है पर उस के प्रति प्यार की चिंता भी मन में आ जाती थी ।

कनक अलीगंज में नौकरी करते समय जया को घर छोड़ जाने के लिये आयी थी तो दिल्ली में गिल से पहली बार भेंट हुई थी । गिल को मालूम था कि पुरी और कांता कनक को समझाने के लिये आकर असफल लौट गये थे । गिल उसे बात कर सकने के लिये राजघाट पर ले गया था । सब कुछ सुन कर उस ने पूछा था "—""क्या यह अंतिम निश्चय है ।"

"बिलकुल अंतिम ।"

गिल ने समझाया—"केवल अपनी इच्छा और अपने विश्वास से ही तो सब कुछ नहीं कर लिया जा सकता । संभव है, परिवार और समाज के विचार से तुम्हें फिर सोचना पड़े ।"

"मैं जितना सोच सकती थी, सब सोच चुकी हूं ।""""हो सकता है, आत्महत्या कर लूं ।"

"मुझे एक आशंका है, उस स्मृति से तुम्हारे मन में कोई आत्म-ग्लानि या लज्जा की गाँठ तो सदा के लिये नहीं बैठ जायगी ?"

"मुझे तो कोई कारण नहीं लगता। अपनी भूल को भूल मान लिया है, मैं उसे भूल जाना चाहती हूं। कोई चाहे तो अपराध कह ले। उसे सहने के बजाय मुझे अपराध का दण्ड मंजूर है।"

कनक अलीगंज से जब भी दिल्ली आती थी, गिल से अवश्य मिलती थी। दोनों दूर तक अकेले घूमने जाते थे। बहुत सी बातें कहने को रहती थीं। गिल का व्यवहार जालंधर जैसा ही था। कनक अलीगंज की नौकरी छोड़ कर दिल्ली में आ गयी तो गिल का व्यवहार बदल गया।

कनक विचित्र यंत्रणा में थी। गिल को रोकने के लिये पहले अपने आप को रोकना आवश्यक था। अपने आप को रोक सकने के लिये अपने रोम-रोम, श्वास-श्वास से लड़ना आवश्यक था।

गिल ने खीझ कर कहा, "अब भी तुम मुझ से भागती हो? हम पति-पत्नी नहीं हो सकते? तुम मुझे नहीं चाहती जैसे मैं अमरो को नहीं चाहता।"

कनक ने आत्म-निग्रह की पीड़ा से नाराज हो कर कहा—"तुम्हें जो कहना है कह लो। बेशक मेरा मुंह न देखो। तुम मेरी वास्तविक स्थिति नहीं जानते? मुझे अपनी नजर में चोर-अपराधी बना कर, गिराकर तुम्हें क्या सन्तोष मिलेगा? मेरा क्या है, आत्मग्लानि नहीं सह सकूंगी, यमुना में डूब मरूंगी! अपना ख्याल करो! लोगों की नजर में तुम्हारी क्या स्थिति होगी? डाक्टर साहब, चड्ढा भाई, तारा तुम्हें क्या समझते हैं? उन सब के सामने अपने आप को और मुझे लज्जित करोगे?...."

कनक रुलाई न रोक सकी। सब के विचार में इतना गंभीर, उदार, समझदार गिल उस के समीप कितना बेबस और आपे से बाहर हो जाता था? देख कर कनक स्वयं विवश हो जाती थी। कनक गिल की नाराजगी पर छिप-छिप कर रोती थी। उस रोने में कितना गर्व और माधुर्य था? यही तो सब से बड़ी कठिनाई थी। एक ही उपाय था, कनक ने गिल से एकांत में न मिलने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

कनक ने गिल को फोन पर काफी हाउस की भीड़ में छः बजे मिलने के लिए कह दिया था। गिल आया पर उस से पहले गिल और कनक का परिचित सरकारी पत्रकार मित्तल उस के साथ आ बैठा था। एक विदेशी सरकार से छात्रवृत्ति पा कर 'भारतीय रंगमंच' के विषय में अनुसंधान करने वाली मिसेज रैना भी आ बैठी थीं। गिल के आ जाने पर वे लोग और भी जम गये।

कनक पछता रही थी, कहां आ बैठी। काफी हाउस में शांति से बात कैसे हो सकती है? पूरा समय प्रधान मंत्री के व्यवहार पर बहस होती

रही''''प्रधान मंत्री काम किस समय करते हैं ? प्रतिदिन पत्रों में उन का वक्तव्य होता है, प्रति सप्ताह कोई शिला-न्यास और कोई उद्घाटन ? कला प्रदर्शनी या बच्चों के जलसे का उद्घाटन, किसी पुल का उद्घाटन। यात्रा व्यवसाय के लोगों का सम्मेलन हो या दार्शनिक तत्वों के विमर्श के लिये सम्मेलन हो, उद्घाटन के लिये प्रधान मंत्री सदा प्रस्तुत हैं। प्रधान मंत्री की यात्राओं, दौरों और भाषणों की कोई सीमा नहीं। प्रधान मंत्री की प्रत्येक यात्रा के समय कम से कम चार-पांच सौ आदमी प्रबंध में व्यस्त हो जाते हैं। इस अपव्यय का कुछ ठिकाना है ? प्रधान मंत्री सदा कहते है यह भाषणों का नहीं कार्य का समय है। स्वयं प्रतिदिन भाषण का ही उदाहरण देते हैं।

कनक काफी-हाउस में गिल से बात नहीं कर सकी। बात कर सकने के लिये दोनों कनाट-प्लेस से साथ-साथ पैदल चले। साढ़े सात बज गये थे। झुटपुटा अंधेरा हो गया था। कनक आठ बजे तक घर पहुंच जाना चाहती थी। भीड़ से निकल कर बाराखम्बा रोड पर आते ही बोली--''एक खास बात कहती हूं परन्तु पहले वचन दो कि मेरा अनुरोध मानोगे।''

''तुम्हारी कौन बात मैंने नहीं मानी ?''

''फिर भी खास बात है इसलिये वचन लूंगी।''

''क्या वचन चाहती हो ?''

''मेरा अनुरोध मानने का वचन दो, तभी बात बताऊंगी।''

''ऐसी क्या बात है ?''

''है न !''

''बहुत ही खास बात है ?''

''हाँ, खास है।''

''यों बाँध लेना क्या उचित है ?''

''विश्वास रखो, मैं अनुचित बात नहीं करूंगी।''

''क्या मेरा विश्वास नहीं है ?''

''है, तभी तो वचन माँग रही हूं।''

''अच्छा, वचन दिया।''

''पिता जी को फिर जालन्धर से 'उन का' पत्र आया था कि वे इस तरह कब तक प्रतीक्षा करते रहेंगे। कोई सीमा होनी चाहिये, यदि वे कुछ कर बैठें तो उन पर धैर्य न रखने का दोष न लगाया जाये। पिता जी ने कह दिया है कि जिस सम्बन्ध में कोई तत्व या सार नहीं है उसे बनाये रखने में कोई लाभ नहीं है ! वह तो केवल कानूनी बन्धन है। ऐसा सम्बन्ध दोनों ओर के

लिये व्यर्थ मानसिक बाधा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसे समाप्त कर देना उचित है। मुझ से पूछा, मैंने 'हाँ' कर दी है। पिता जी कह रहे थे, जीजा जी को पत्र लिखेंगे कि 'उन से' बात करें। बिना क्रोध और उत्पात किये इस सम्बन्ध को कानूनी तौर पर समाप्त कर दिया जाये।"

"डाईवोर्स ?"

"और क्या।"

"पिता जी ने स्वयं कहा है ?"

"यही तो कह रही हूं।"

"मैं बरस भर से यही कह रहा था तो गलत बात कह रहा था ?"

"मैं अपने मुख से कैसे कह देती !"

गिल और कनक मंडी-हाउस के चक्कर में टैक्सी के अड्डे के समीप थे। गिल ने हाथ उठा कर आवाज़ दी—"टैक्सी !"

"हाय क्यों ?" कनक ने आपत्ति की, "बात करते-करते चलेंगे।"

"टैक्सी में ही बात करेंगे।"

टैक्सी सड़क पर आयी तो गिल ने कनक की पीठ बांह में ले ली और अकाट्य अनुरोध से कहा—"इस घटना की बधाई में तो एक चुम्बन देना ही होगा !"

कनक अपनी मूढ़ता में भी, पूर्व दृढ़ निश्चय से गिल के कन्धे को हाथ से हटा कर परे हो गयी। जल्दी से बोली—"सुनो-सुनो, तुम ने मेरी बात मानने का वचन दिया है।"

"क्या ?" गिल ने रूठे स्वर में विरोध किया।

कनक की मुंदी हुयी पलकों के कोनों में आँसू आ गये—"प्लीज़ एक्सक्यूज़ मी" होंठ काट कर बोली, "जब तक इस बात का निर्णय न हो जाये, मुझे नहीं छूना। वैसे ही रहोगे जैसे जालन्धर में थे।"

गिल मौन हो गया।

कनक ने गिड़गिड़ा कर कहा—"गिलू, सब कुछ तुम पर ही निर्भर है। तुम बहुत दृढ़ हो। मुझे अपने पर नहीं, तुम पर भरोसा है। तुम्हारे पांव छूती हूं, सहायता करो ! केवल छः मास और !"

गिल निश्चल मौन रहा।

"गिलू, नाराज़ न हो !" कनक ने बहुत ही कातरता से अनुरोध किया।

"अच्छा, ठीक है।"

× × ×

१७

सन् १९५७ के आरम्भ मे लोक-सभा और राज्यों की विधान-सभाओं के नये चुनाव होने वाले थे। कांग्रेसी सरकार जनता का विश्वास पाने के लिये चुनाव से एक वर्ष पूर्व—सन् ५६ के आरम्भ में ही अपनी दूसरी विशाल आर्थिक योजना लागू कर देना चाहती थी।

राजनैतिक नेता भी अपनी सीमित दृष्टि से आगे नही देख पाते। जनता हाथी के विशाल शरीर से कही बड़ा समुदाय है। राजनैतिक नेता जनता के जिस अंग के सम्पर्क में आते है, उसी अग को सम्पूर्ण जनता का रूप मान लेते है। यही बात दूसरी राष्ट्रीय-पचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में थी।

कांग्रेस के प्रधान और कांग्रेसी सरकार के प्रधान मंत्री और उन के समर्थक नेता राष्ट्रीय साधनों से, राष्ट्रीय नियंत्रण मे देश का औद्योगिक विकास करने की नीति और योजना द्वारा जनता का विश्वास और समर्थन पाने की आशा में थे। अनेक प्रभावशाली कांग्रेसी नेता योजना के इसी रूप के कारण जनता के विमुख हो जाने की आशंका में थे। कांग्रेस के प्रधान मंत्री, कांग्रेस के प्रकाशनों द्वारा जनता को सांत्वना दे रहे थे कि कांग्रेस की सोशलिस्टिक पालिसी (समाजवादी ढग की नीति) के प्रस्तावों का लक्ष पश्चिम का समाज-वाद नही है। उस का प्रयोजन स्वतंत्र-निजी व्यवसाय की नीति को सोशलिस्ट टोटेलिटेरियनिज्म (समाजवादी समुच्चय) के भय से बचाना है। बड़े-बड़े व्यवसाइयों की सम्पत्ति—देश के अधिकांश पत्र, राष्ट्रीय साधनों द्वारा, राष्ट्रीय नियंत्रण में, औद्योगिक विकास को राष्ट्र-हित के लिये घातक वता रहे थे।

उस संनसनी में एक छोटी सी घटना हो गयी थी। सन ४७ मे कांग्रेस सरकार ने अंग्रेज सरकार से शासन का अधिकार लिया था। उस समय ब्रिटिश साम्राज्यशाही सरकार के भारतीय प्रधान सेनापति के लिये वनायी गयी, महलनुमा इमारत 'फ्लैग स्टाफ हाउस' को, कांग्रेसी सरकार के प्रधान मत्री का निवास-स्थान निश्चित कर दिया गया था।

कांग्रेसी प्रधानमंत्री अपने आप को गरीब जनता का प्रतिनिधि समझते थे। उन्हें महलनुमा इमारत मे रहना असगत आडम्वर जान पड़ता था। उन का सुझाव था कि भारत के प्रधानमंत्री के लिये ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधानमंत्री के मकान की ही भांति 'साधारण और सादा' मकान होना चाहिये।

सरकार के सार्वजनिक-निर्माण-विभाग ने प्रधानमंत्री के योग्य 'साधारण

और सादा' मकान का खर्चा चार लाख रुपये कूता था। प्रधान मंत्री इतना खर्च सुन कर घबरा गये थे। उन्हों ने कह दिया—ऐसा मकान वे निजी प्रबन्ध में लाख-सवा लाख रुपये में बनवा सकते थे। उन्हें नये 'साधारण और सादा' मकान का प्रस्ताव स्थगित कर देना पड़ा था। मितव्ययता के विचार से महल-नुमा मकान में ही रहना स्वीकार कर लिया था। राष्ट्रीय नियंत्रण में उद्योगों के विकास के विरोधियों ने, इस उदाहरण को अपने पक्ष में बहुत बड़ा तर्क बना लिया था।

प्रधानमंत्री और योजना तैयार करने वाले लोग इस उदाहरण से यह मान लेने के लिये तैयार नहीं थे कि राष्ट्रीय नियंत्रण में अपव्यय के कारण, उद्योगों और व्यवसायों की असफलता निश्चित थी। वे इस उदाहरण को सरकारी व्यवस्था में, अंग्रेजी शासन की विरासत में पायी धांधली और अप-व्यय का प्रमाण समझते थे।

इस समाचार से सर्व-साधारण में धांधली के विरुद्ध प्रायः चलती रहने वाली चर्चा में गरमी आ गयी थी। तारा के परिचित और पड़ोसी जानते थे कि तारा रिश्वत नहीं लेती थी इसलिये उस के सामने रिश्वत और धांधली की चर्चा और आलोचना निर्भय की जा सकती थी। तारा जानती थी, लोग रिश्वत स्वीकार करने वाले अफसरों के सामने ऐसी चर्चा नहीं करते। यह भी जानती थी कि उस के कुछ न लेने से, लोग उस से विशेष सहायता भी नहीं पा सकते थे इसलिये उस की गणना भले अफसरों में नहीं थी। लोगों को तो इसी में सुविधा थी कि उन्हें अवसर मिले, अफसर भी दक्षिणा के तौर पर पांच सौ-हजार ले ले। दोनों का भला हो। धाँधली और रिश्वत की रोक-थाम के लिये काफी शोर और पुकार थी परन्तु केवल सतह पर! रिश्वत लेने वालों और देने वालों को भी लाभ था। हानि केवल सरकार या सार्व-जनिक हित की थी। समझदारों की नजर में वह चिंता परायी बला थी; उसे कौन गले सहेडता!

रतन रिश्वत देता था और रिश्वत लेने वालों को गाली भी देता था। तारा को यह अच्छा नहीं लगता था। रतन उस के सामने स्पष्ट कह देता था—ट्रैफिक पुलिस को साल का पांच सौ फी ट्रक, और रुपया महीना फ़ी चौराहा न दें तो ट्रक चल ही नहीं सकते। कभी ओवरलोड कह कर या स्पीड ज्यादा बता कर, कभी लाइसेंस चेक करने के बहाने सड़क पर रोक लेंगे। उन्हें तो हाथ से इशारा भर कर देना है। तफतीश के लिये कोतवाली जाओ, दिन भर उसी में डूब जायगा। चालीस-पचास का नुकसान हो जायगा। ट्रक

वाले तो रोज अदालत में ही खड़े रहा करें! ऐसे नुक्सान की मार कौन सह सकता है। हम तो मजबूरी मे अपना पेट काट कर देते है। हम नाजायज़ फायदा क्या उठा लेते है ?"

इस प्रसंग पर तारा को रतन से सहानुभूति नही थी। कह देती—"नाजायज फायदा क्यों नही उठाते ? जहाँ चाहते हो भरे बाजार मे ट्रक खड़ा कर देते हो! रास्ता रोक देते हो। उस कारण कितने एक्सीडेंट होते है। लोग रास्ता न पाकर कितने परेशान होते है ? तुम्हारे दूसरे भाई सामान लादने-उतारने के लिये पूरे फुटपाथ घेर कर जगह को अपनी जमीदारी बना लेते है। मैंने लोगों को अपनी आंखों उलझ-उलझ कर गिरते देखा है। तुम्हें उस का कोई खयाल नही है ?"

माथुर का असंतोष शासन की नीति और शैथिल्य के प्रति बढता ही जा रहा था। वह कह बैठता—शक्ति और अवसर हाथ में होने पर अनुचित लाभ न उठाने वाले मुझे तो केवल अपवाद रूप ही दीखते है। लोगों को कान्स्टेबलों, चपरासियों और बाबुओं की ली हुई रिश्वत दिखाई दे जाती है। मैं पूछता हूं, शासन मे चोटी से लेकर पांव के अंगूठे तक कौन अनुचित लाभ नहीं उठा रहा है ? रिश्वत लेकर आदमी अपने बाल-बच्चे और कुनबे को ही तो पालेगा ? मुझे बता दो, शासन संभाले लोगों मे से किसका कुनबा नही पल रहा है ? सरकारी नौकर उदाहरण देखकर ही तो चलेंगे ? अफसरों के लिये भेंट उपहार न लेने के कानून बना दिये है। अफसर ऐसे भोले नही है कि कानून के हाथों से बचकर रिश्वत न ले सकें। मरण तो सर्व-साधारण का है। टैक्स पर टैक्स और मंहगाई पर मंहगाई! सरकारी रिपोर्टों में उत्पादन बढ़ता है और बाजारों मे मंहगाई बढ़ती है। हमे तो योजनाओ से कुछ बनता दिखाई नही देता। जनता का अरबों रुपया करोड़पतियों और सरकारी अफसरों की जेबों में चला जा रहा है। भाखड़ा-नांगल जाकर तमाशा देख लो। जनता के खर्च पर इतना सीमेंट खरीदा गया है कि भाखड़ा के पचास-साठ मील चारो ओर सब मकान सीमेंट के बन गये हें। सीमेंट फैक्टरियों की चांदी है, ठेकेदारों की चांदी है, सरकारी अफसरों की चांदी है, बरबादी टैक्स देने वालों की है। सीमेंट की जगह रेत भरी जा रही है। चवन्नी की जगह रुपये का एस्टीमेट बनता है। फिर उस चवन्नी में से भी तीन आने खा जाना चाहते हे। सीमेंट की जगह रेत से बनाये गये बांध टूटेंगे तो नुकसान किस का होगा ? उस नुकसान को न इंजीनियर पूरा करेंगे न ठेकेदार!

नरोत्तम वर्क्स-मैनेजर बन कर सीतलपुर शस्त्रों के कारखाने में चला

गया था। दिल्ली आने पर तारा से अवश्य मिलता था। फैक्टरी में वह चारों ओर शैथिल्य और धांधली और उस शैथिल्य और धांधली पर पर्दा डाले रहने के प्रयत्न देख कर बहुत खिन्न रहता था। उसे जान पड़ रहा था कि ईमानदारी के रास्ते पर चल सकने के लिये पिता के व्यवसाय से असहयोग करना केवल मृग-मरीचिका थी। ऐसी चर्चा में उपस्थित रहने पर वह एक बार कह बैठा था--"···ईमानदार है कौन ? क्या कानून बनाने वाले विधान सभा के मेम्बर ईमानदार हैं ? जेब का पन्द्रह, बीस-पच्चीस हजार रुपया खर्च करके यह लोग देश-सेवा करने के लिये ही चुनाव लड़ते है ? हमारे मामा अपने गांव के एक एम० एल० ए० की बात सुनाते है : आन्दोलन में जेल जरूर गये थे। चौदह बीघे जमीन और छोटा, पुराना गिरा हुआ मकान था। लखनऊ में ट्यूबवेल लगाने की दरखास्त देकर पाँच हजार सरकारी कर्ज ले आये थे। या कहिये, कांग्रेस कमेटी ने दिला दिया। धरती, मकान मामा के यहाँ रहन रख कर पांच हजार और कर्ज लिया। कांग्रेस टिकट पर इलेक्शन लड़ गये। अब साढ़े तीन साल में दो मकान पक्के खड़े कर लिये हैं और साठ बीघे खेतों के मालिक हैं। थानेदार से आठ आने का हिस्सा है। सरकार के यहाँ से सब कुछ करवा देने की एजेंसी चला रहे हैं। मामा के यहाँ सन्देश भिजवा देते हैं—लाला, एक कनस्तर घी भिजवा देना। मामा दाम माँगने के बजाय 'जयराम जी' कह कर ही रह जाते हैं कि समय पड़ने पर वही काम आयेंगे !

तारा को इस प्रकार की शिकायतों से बहुत खीझ उठती थी परन्तु स्वयं उस के मकान के नीचे, दुकानों के सामने वही हाल था। फर्नीचर वाले, रेस्तोरां वाले दुकान के सामने की जगह रोके रहते, जनरल स्टोर्स वाले भी दो-दो आलमारियाँ बाहर रख कर 'शो' बढ़ा लेते। यातायात पुलिस सार्वजनिक स्थान का दो-दो, चार-चार रुपया किराया लेकर जेब में डाल लेती थी। पड़ोस के लोगों को बहुत परेशानी होती थी। तलवार साहब और तारा को गाड़ी लाने-निकालने में परेशानी होती थी। भुनभुनाते सब रहते थे पर प्रकट विरोध कोई नहीं करता था—पड़ोसियों से झगड़ा कौन मोल लेता ? तारा भी खीझ कर चुप रह जाती थी। सोचती थी--जब लोग आवाज उठाने तक को तैयार नहीं तो सरकार ही क्या करे !

तारा ने यह बात एक बार मर्सी के इसी प्रकार की शिकायतें करने पर कह दी थी। मर्सी बिगड़ उठी थी—"हाँ, तुम्हें अब सरकार में दोष क्यों दिखायी देगा ! नमक की खान में जो चला जाता है, नमक हो जाता है।"

गिल भी बैठा था। उस ने दूसरी तरह बात की—"अपने कष्ट और धांधली के प्रति आवाज उठाने का साहस लोगों में न रहे तो यह सुव्यवस्था और सुशासन का सूचक तो नहीं है ?"

तारा ने मर्सी को कुछ उत्तर नहीं दिया परन्तु गिल से कहा—"लोग यदि अनुचित लाभ के अवसर के लिये अव्यवस्था और धांधली को स्वीकार करते जा रहे हैं तो दोष किस का है ?"

डाक्टर नाथ स्वतंत्र उद्योगों और व्यवसाय के तरीकों से काफी परिचित था। यह भी जानता था कि स्वतंत्र और निजी क्षेत्र के उद्योगपति और व्यवसायी, अतिरिक्त आय-कर से बचने के लिये उत्पादन और व्यवस्था का व्यय कल्पित संख्याओं में बढ़ा कर लाभ का अंश कम से कम दिखाने का यत्न करते हैं। उस के विचार में कोई कारण नहीं था कि राष्ट्रीय नियंत्रण में उत्पादन देश के लिये अधिक सुलभ और सस्ता न हो और उस से भावी विकास के लिये पूंजी न निकले।

कालीचरण कौल लाहौर में डाक्टर पर श्रद्धा रखने वाले विद्यार्थियों में से था। अब भी डाक्टर के यहाँ आता-जाता रहता था। एम० ए० पास करके भी वह विभाजन के समय तक, नौकरी की दृष्टि से बेकार था। लाहौर में मकानों के किरायों पर निर्वाह कर रहा था। विभाजन के पश्चात जीविका का अवलम्ब ढूंढना आवश्यक हो गया था। सन् ४८ में वह आई० ए० एस० में ले लिया गया था। उसे आय-कर विभाग में नौकरी मिल गयी थी। नौकरी करते-करते उस ने 'चार्टर्ड-ऑडीटर' की परीक्षा पास कर ली थी। उस ने नौकरी छोड़ कर लाइसेंस ले लिया और 'चार्टर्ड-ऑडीटर' का दफ्तर बना लिया था। वह आय-कर की अदालतों में वकालत करने लगा था। कौल आय-कर विभाग में अफसर रह चुका था। उस के अनुभव का बहुत मूल्य था। उस के दफ्तर में एक एकाउन्टेंट और पाँच क्लर्क थे। उस का काम था : व्यापार के लेखों को परख कर सही होने की तसदीक करना। लाइसेंस के आधार पर उस के दफ्तर से परखा हुआ हिसाब अदालतों को कानूनी तौर पर स्वीकार करना पड़ता था।

कौल को उद्योग-धंधों पर राष्ट्रीय-नियंत्रण का विरोध करने वालों के तर्कों की पोल खोलने का बहुत उत्साह था। वेधड़क कह देता था—"...मैं इन लोगों का तीन-चार लाख न बचाऊं तो यह मुझे तीन-चार हजार क्यों दें ? मेरा पेशा कानूनी है। मेरे पास लाइसेंस है। वह नाम ले-लेकर बताता

था'''सलाह लेते रहने के लिये रिटायर्ड इन्कमटैक्स कमिश्नरों को पैंतीस-चालीस हज़ार रुपया सालाना पर नौकर रखे हुये हैं। अपने लाभ छिपा कर हिसाब बनाने के लिये साल में तीन-चार लाख खर्च कर देते हैं, वे कितना कर बचाते होंगे ? यह सब कानून से और सीनाज़ोरी से होता है। उत्पादन के राष्ट्रीय नियंत्रण में इस प्रकार के अवसर तो नहीं रहेंगे !

माथुर या गिल डाक्टर नाथ के सामने ही आपत्ति कर देते—"तब नियंत्रण और उत्पादन करने वाले अफसर खायेंगे।"

"क्यों, कैसे खायेंगे ?" कौल विरोध करता "जब व्यक्तिगत पूँजी से लाभ उठाने का अवसर न हो और आप को अपनी जमा पूँजी के लिये हिसाब देना पड़े तो चोरी करके रखियेगा कहां ? हलवाई की दुकान पर काम करने वाला चुरा कर मिठाई खायेगा तो कितनी खा लेगा !"

गिल ने सुझाया—"तुम तो पूरी समाजवादी व्यवस्था की कल्पना कर रहे हो। कांग्रेस के मंत्री आश्वासन दे रहे हैं कि सोशलिस्टिक पालिसी देश को टोटेलिटेरियन नीति से बचाने के लिये है।"

'वे जो कहें ! यदि राष्ट्रीय शक्ति और साधनों से देश का औद्योगिक विकास करना है तो उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करना ही होगा, नहीं तो इन की योजनायें चल नहीं पायेंगी।

ऐसे अवसरों पर तारा एक ही बात सोचती थी—लोग भविष्य में विश्वास क्यों नहीं कर सकते ? क्यों सदा पहले विफलता की ही बात सोचते हैं ?''''

राष्ट्रीय नियंत्रण में उत्पादन देश के लिए अधिक लाभकर होना चाहिये इस बात को डाक्टर सालिस और नाथ सब से अधिक समझते थे परन्तु उन की अपनी धारणा और विश्वास ही पर्याप्त नहीं था। उस नीति को शासन द्वारा व्यवहार योग्य बना सकने के लिये स्पष्ट कार्यक्रम और आंकड़े चाहिये थे। डाक्टर नाथ का सेक्शन ऐसे आंकड़े और विवरण तैयार कर रहा था। उसके दफ्तर को निरंतर दूसरे सरकारी दफ्तरों के संपर्क में रहना आवश्यक था। इसी कारण पिछले वर्ष से उस का दफ्तर गर्मियों में पहाड़ पर नहीं गया था। प्रधान मंत्री, प्रति वर्ष गर्मियों में दफ्तरों और अफसरों की पहाड़ यात्रा के अंग्रेजी रिवाज को पसंद भी नहीं करते थे।

चड्ढा इस विषय में की हुई अपनी खोज और एकत्र किये हुये आंकड़ों को अधिक प्रामाणिक समझता था। उस ने डाक्टर नाथ की सहायता के लिये यह सब सामग्री १५ जुलाई संध्या तक दे देने का आश्वासन दिया था। चड्ढा

ने इस काम में अपने कई साथियों को लगा लिया था। तारा गणित अच्छा जानती थी। चड्ढा उस से भी सहायता ले रहा था। उस ने भी कई आधी राते पखे के नीचे बैठ-बैठ कर काम किया था। तारा ने उन लोगों को डाक्टर के यहां पहुंचा देने का आश्वासन दिया हुआ था। चड्ढा उस संध्या नरोतम की गाड़ी मे चला गया था। तारा गिल और कनक को ले कर गई थी। वे लोग डाक्टर के यहां पहुचे तो वह घर पर नही था। लगभग एक घटे प्रतीक्षा के बाद आया।

डाक्टर ने आते ही विलम्ब के लिये क्षमा मांगी—"अजीब मुसीबत मे फस गया था....।"

उस दिन दोपहर बाद दिल्ली मे प्रधान मंत्री ने 'भारतीय मानव-विज्ञान-परिषद' का उद्घाटन किया था। डाक्टर नाथ भी निमंत्रित था। डाक्टर सालिस का नाम सयोजकों मे था। उस ने नाथ से आने के लिये अनुरोध कर दिया था।

डाक्टर नाथ खिन्नता से बोला--"जरा सोचिये, स्वागत समिति के अध्यक्ष ने प्रधान मंत्री से परिषद का उद्घाटन करने का अनुरोध किया तो उन्हें 'हमारे वैज्ञानिक प्रधान मंत्री' कह कर संबोधन किया। प्रधान मत्री जन-संख्या की बढ़ती और खाद्यान्न की समस्या पर प्रकाश डालने लगे तो सवा घटे तक बोलते रहे। जैसे उन की आदत है, हरेक बात को तीन बार कहते थे। वे जो कुछ कहे जा रहे थे, निगल लेना कठिन था। विषय को समझे बिना उस पर कहने की जरूरत ही क्या थी ?"

डाक्टर सालिस को भी कुछ बोलने के लिये कहा गया तो डाक्टर कहे बिना न रह सका—"प्रधान मंत्री ने जन-संख्या और खाद्यान्न के सम्बन्ध मे जो विचार प्रकट किये है, उनके आधार पर राष्ट्रीय कार्य-क्रम बना लेना दुस्साहस होगा। यह विचार नये समझे जा सकते हे पर वैज्ञानिक मान्यताओ के अनुकूल नही है।

प्रधान मंत्री बिगड़ कर बोले—"आप लोग अपने विषयों के इतने अधिक विशेपज्ञ हो गये है कि बिल्कुल यांत्रिक ढंग से सोचने लगे है। विज्ञान को व्यवहारिकता और व्यापक जीवन की कसौटी पर परखना चाहिये.."

चड्ढा कनपटी पर हाथ रखे, बहुत एकाग्रता से सुन रहा था। उस ने आंखे झपक कर पूछ लिया—"प्रधान मंत्री की बात का मतलब क्या हुआ ? उन्हें तो वैज्ञानिक विवेचन की गोष्ठी का उद्घाटन स्वीकार ही नही करना चाहिये था!"

"पर लोग ही उन से अनुरोध करते है ।" तारा ने कहा ।

गिल बोल उठा—"लोग जानते है कि प्रधान मंत्री ऐसे सम्मान से फूल उठते हे इसलिये वे अनुरोध करते है ।" वह डाक्टर की ओर घूम गया, "डाक्टर साहब, प्रधान मंत्री अपने आप को सचमुच वैज्ञानिक समझते है ? उन्हें 'वैज्ञानिक' कह कर सम्बोधित किया गया तो उन्हों ने आपत्ति नही की ?"

डाक्टर के उत्तर से पहले ही तारा बोल पड़ी—"दिल्ली यूनिवर्सिटी ने प्रधान मंत्री को 'डाक्टर आफ साइंस' की उपाधि दी है । इस में प्रधान मंत्री का क्या दोप है ?"

"प्रधान मंत्री स्वयं नही जानते कि वे राजनीतिज्ञ है, वैज्ञानिक नही" कनक बोली, "ऐसी डिग्री स्वीकार करना तो खुशामद को प्रोत्साहन देना है ।"

"प्रधान मंत्री की आँखों में घी की सलाई लगा दीजिये । उन्हें कुछ दिखायी नही देगा । उन्हें जो कुछ आप कहेंगे, उसी पर विश्वास करना होगा ।" गिल ने सुझाया, "मैं जब लखनऊ में था, यदि सुबह मेहतर न आये, हमारी गली की सफाई न हो तो समझ लेते थे कि दिल्ली से प्रधान मंत्री आये होगे । उस दिन सब मेहतर प्रधान मंत्री के स्वागत में, सड़क बुहारने के लिये बुला लिये जाते थे । प्रधान मंत्री को सड़क साफ दिखायी देनी चाहिये, जनता चाहे दुर्गन्ध मे सड़ती रहे । नौकरशाही का तो 'गुरुमंत्र' यही है, अपने से ऊपर का अफसर सन्तुष्ट रहना चाहिये ।"

कनक बोल पड़ी—"सरकारी अफसर को तो रिपोर्ट और फाइल पूरी रखने मे मतलब है । यदि राष्ट्रीय उत्पादन का काम इसी ढंग पर चला तो....."

चड्ढा गहरी चिन्ता से बोला—"उत्पादन की व्यवस्था मे मजदूरों का प्रतिनिधित्व हुये बिना....."

"एक सेकिंड" डाक्टर ने अपनी बात कह सकने का संकेत किया । उसे बोल पाने का अवसर ही नही मिल रहा था । उस ने भूपसिंह को बुला कर चाय के लिये कह दिया और बताया, "मै चाय के लिये वहाँ ठहरता तो और विलम्ब हो जाता ।"

"मै बनवाती हूं ।" तारा भूपसिंह के साथ भीतर चली गयी ।

तारा बैठक के साथ के कमरे मे बिजली की केटली लगाये भूपसिंह की सहायता से चाय बना रही थी तो नरोत्तम का उत्तेजित स्वर सुनायी दे रहा था । समझ गयी थी, सीतलपुर फैक्टरी का प्रसंग था । नरोत्तम छुट्टी लेकर दिल्ली आया हुआ था । आते ही उस ने तारा के सन्मुख उस घटना के सम्बन्ध मे अपनी खिन्नता प्रकट की थी । मजदूर यूनियनों की धांधली की शिकायत

लेकर चड्ढा से भी बहुत झगड़ा था। डाक्टर नाथ को भी वह बात बता देना चाहता था। उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि उद्योग-धन्धों की व्यवस्था में मज़दूरों को प्रतिनिधित्व देना उत्पादन और राष्ट्रीय हित के लिये बहुत घातक होगा।

तारा भूपसिंह के साथ चाय लेकर आयी तो नरोत्तम नाथ, गिल और कनक को सुना रहा था—"मैंने सुपरिन्टेन्डेंट को लिख कर दे दिया था कि गरारी में दाँते काटने के लिये चकली पर दो बार बाबरी मारने की ज़रूरत नहीं है। सुपरिन्टेन्डेंट खुद भी यह खूब समझता है। दो बार बावरी छोड़ देने से लागत घटेगी तो पीस वर्क में मज़दूरों की एक घंटे की मज़दूरी कटनी चाहिये। यूनियन ने स्ट्राइक का नोटिस दे दिया। सुपरिन्टेन्डेंट के पांव काँप गये। वह डरता है, उस पर स्थिति संभाल न सकने का लांछन आ जायेगा। मुझ से कहा कि मैं नोटिंग कर दूं कि हमारी मशीनें 'बावोरा' फैक्टरी की मशीनों की अपेक्षा पुरानी हैं, उतना साफ काम नहीं करतीं। दो बार एक्सट्रा बाबरी ज़रूरी होती है। मैं इस के लिये तैयार नहीं हुआ। सुपरिन्टेन्डेंट ने टाइम काटने का आर्डर स्थगित करके, कान्फीडेंशल नोट में स्ट्राइक की आशंका की बात डाइरेक्टर-जनरल को लिख कर भेज दी। डाइरेक्टर-जनरल के यहाँ से फोन पर गोल-मोल सुझाव आया, स्ट्राइक नहीं होनी चाहिये। स्थिति का स्पष्टीकरण क्यों नहीं कर दिया जाता ?

"मज़दूर ऐसे हर सुधार का विरोध करते हैं, जिस में मजदूरी बच कर लागत घटे। वे कभी तैयार नहीं कि दस मज़दूरों का काम आठ कर सकें।"

"बेरोज़गारी का डर तो सभी को होता।" गिल ने टोका, "उन्हें दूसरी जगह काम की गारन्टी होनी चाहिये।"

"गारन्टी है पर वे दूसरी फैक्टरी में तबादला नहीं चाहते। उन के लिये अपना आराम पहली चीज़ है। आठ घन्टे में से दो घन्टे चकलत्स में काट देंगे। सुपरवाइजर कुछ नहीं कह सकता। बोले तो पिट जाये। मज़दूरों के खिलाफ एक्शन लो तो स्ट्राइक ! अफसर जानते हैं, स्ट्राइक की स्थिति में सरकार उन का साथ नहीं देगी। स्ट्राइक से सरकार की जनप्रियता की पोल खुल जाती है इसलिये अफसरों के लिये आवश्यक है कि रिपोर्ट में स्थिति पर लीपा-पोती करके सब कुछ चुस्त और उचित दिखाते रहें। उन्हें अपनी तनखाह से मतलब है, सरकार को सन्तुष्ट रखना है पर यह फैक्टरी के साथ, देश के साथ, जनता के साथ तो धोखा है। मैं इस झगड़े में व्यर्थ फंस गया हूं।"

"यह तो देश के साथ बहुत बड़ा धोखा है। तुम अखबार में क्यों नहीं

देते ?" कनक ने नरोत्तम से कहा।

"ऐसा न कर बैठना।" नरोत्तम ने चेतावनी दी, "यह सरकारी रहस्य है परन्तु आप देख लीजिये कि देश-हित का ख्याल न मजदूरों को है, न नौकरशाही को और न मिनिस्ट्री को। मज़दूर चाहता है—कम से कम काम और अधिक से अधिक मजदूरी। नौकरशाही का काम हैं अपनी तनखाह के लिये मिनिस्ट्री को सन्तोषजनक रिपोर्ट देते रहना। मिनिस्टरों को दुबारा चुनाव लड़ना है। वे जनता को नाराज़ कैसे करें ?"

चड्ढा ने बहुत विस्तार से समझाया कि अभी मजदूर अपने आप को शोषित समझ कर विरोध का व्यवहार कर रहे हैं। उत्पादन की व्यवस्था में संगठित मज़दूरों का प्रतिनिधित्व ही उन्हें उत्पादन के प्रति उत्तरदायी बना सकता है।"

नरोत्तम मज़दूरों का विश्वास करने को तैयार नहीं था। वह कहे जा रहा था—"यह कभी नहीं हो सकता....।"

"आखिर तुम क्या चाहते हो? क्या यूनियनों को समाप्त किया जा सकता है ?" डाक्टर ने उसे टोक कर उत्तर माँगा।

"ऐसे प्रजातंत्र में तो नहीं किया जा सकता। डिक्टेटरशिप ही एकमात्र उपाय है।" नरोत्तम ने दृढ़ विश्वास प्रकट किया।

"प्रधान मंत्री को डिक्टेटर बनाना चाहते हो ?"

"इस समय तो वही भरोसे लायक है। वह देश को प्रतिगामी मार्ग से भी बचा सकता है।"

"अगर उसे आँखों में घी की सलाई लगाने वालों ने घेर लिया तो ?"

"और अभी क्या नहीं घेरे हुये हैं ?"

तारा कई बार घड़ी देख चुकी थी। वह बहस से ऊब रही थी। ऐसी बातें एक बार नहीं, सैकड़ों बार सुन चुकी थी। बहस ही बहस, सुलझाव कोई नहीं। अवसर देख कर बोल उठी—"डाक्टर साहब, अब आज्ञा दीजिये!"

तारा ने बेबसी में ऐसा बहुत कुछ सहा था जिस के कारण, उस की समझ और कल्पना की पहुंच के बाहर थे। उस सब आप-बीती को वह केवल अपने प्रति भाग्य की विडम्बना ही कह सकती थी। अब सात वर्ष के सफल और सन्तुष्ट जीवन ने उस में आत्म-विश्वास उत्पन्न कर दिया था। उसे अपनी समझ और व्यवहार पर भरोसा हो गया था परन्तु वह फिर अजीब परिस्थितियों में फंस कर बेबस अनुभव कर रही थी। पिछले अगस्त में पूरणदेई क्वींस रोड

पर, हनुमान जी के मन्दिर से लौटते समय खूब भीग कर सर्दी खागयी थी। तब से उस की अवस्था बिगड़ती ही गयी थी।

मुसीबत और परेशानी अकेली कब आती है ? तारा पर भी वही बीत रही थी।

मई में रविवार की दोपहर, पड़ोसी तलवार का नौकर खेमसिंह तारा के नौकर परसू के साथ आया और बहुत विनय से हाथ-पांव जोड़ कर तारा के सामने फर्श पर बैठ कर बोला—"सरकार, एक अरजी है।"

खेमसिंह ने पास-पड़ोस के घरेलू नौकरों की ओर से प्रार्थना की—"हजूर सरकार, यहाँ आप ही बड़ी अफसर है। हजूर ही इन्साफ कर सकती है। आप के ही सामने दरखास्त कर सकते है। यहाँ हम लोगों की और कौन सुनेगा ? हजूर, नयी दिल्ली में अफसर लोगों के यहाँ, घर के नौकरों को दिन में चार घन्टे की छुट्टी मिल रही है। हफ्ते मे एक शाम की छुट्टी मिलती है। अम्बासियों (राजदूतावासो) में एतवार की छुट्टी भी मिलती है। नीचे होटल के नौकरों को भी दोपहर की छुट्टी मिलती है। सरकार, हम लोग भी तो आदमी है। हमे भी कभी अपना काम होता है। हजूर, हमें भी रेस्ट का टेम मिलना चाहिये।"

तारा ने खेमसिंह की प्रकट विनय मे अधिकार की मांग और उस की प्रार्थना की गम्भीरता समझी : अभी बहुत विनय से प्रार्थना कर रहा है, कुछ दिन बाद हड़ताल की धमकी देगा। दिल्ली के घरेलू नौकरों में नयी हवा चल पडी थी। घरेलू नौकरों के नये तर्ज और उन की बढी हुयी तनखाहों से सभी भले लोग परेशान हो रहे थे। वह स्वयं परसू जैसे मूर्ख छोकरे को अठा-रह रुपये, खाना-कपड़ा दे रही थी। परसू की समझ चाहे जितनी मोटी थी पर इतना जरूर समझता था कि वह खेमसिंह से पुराना नौकर था। खेमसिंह बीस रुपया महीना पा रहा था तो उसे भी बीस मिलने चाहिये थे। जानता था कि दिल्ली में घरेलू नौकरी की कमी नहीं थी। जहाँ जायेगा, दो रुपया अधिक ही ले सकेगा। अलबत्ता 'बीबी जी' के यहाँ आराम बहुत था। बीमारी में इलाज पर बीबी जी का पैसा खर्च होने के एहसान का ख्याल था पर उस के लिये दो रुपये महीना का नुकसान कब तक सहता रहता !

तारा स्थिति से अपरिचित नही थी। सन ५२ से पहले उस ने स्वयं नौकर नही रखा था परन्तु जानती थी कि मर्सी चिम्मो को बारह रुपये और खाना दे रही थी। लाहौर में उस की गली मे डाक्टर प्रभुदयाल, दीवानचंद और घसीटाराम के यहाँ नौकर रहते थे। उस समय घरेलू नौकरों की तनखाह

आठ-दस न हुयी बारह हो जाती होगी। नौकर बिना किसी चूं-चरां के सुबह मालिकों के जागने के पहले से लेकर रात मालिकों के सो जाने के बाद तक काम करते रहते थे। रेस्ट और छुट्टी के 'नखरों' की आशा घरेलू नौकरों से नहीं की जाती थी।

तारा इस परिवर्तन का कारण भी जानती थी। डाक्टर नाथ के यहाँ पच्चीस और तीस रुपये माहवार पर दो बार नौकर रखे जा चुके थे। काम किसी ने भी ठीक नहीं किया था। भूपसिंह चिढ़ कर खेद प्रकट करता था—साले छोटे लोगों के दिमाग बिगड़ गये है। पहले भूख के मारे पहाड़ से भागे चले आते थे। अब वहाँ बीस काम मिलने लगे हैं। जहाँ देखो सरकारी आफिस खुलते जा रहे हैं। और कुछ नहीं तो नयी सड़कें बन रही हैं। सवा-डेढ़ रुपये की पगार वहाँ ही मिल जाती है। अब तो ऐसे हरामखोर लोग ही आते हैं जो बिना मेहनत किये खाना चाहते हैं। उस पर मालिकों की चोरी करते हैं। इन लोगों को नमक खाने की भी शरम नहीं है। आँखों में पानी नहीं रहा…।"

तारा ने सोचा—खेमसिंह उस के सामने दुहाई देने इसलिये आया था कि उसी ने दुर्गा से कह कर तायी के लिये नौकर बुलवा दिया था। जो भी हो, खेमसिंह को परसू की तरफ से वकालत करने का और तारा से मुहल्ले के नौकरों के लिये पंचायत करवाने का क्या मतलब था! इस मामले में पास-पड़ोस के लोगों का क्या रुख होगा, तारा खूब जानती थी।

तारा ने कहा—"परसू को जो कुछ कहना होगा, खुद कह लेगा। तुम्हें उस की वकालत करने की क्या जरूरत है? तुम्हें जो कहना है, तलवार साहब से कहो।"

तारा से रूखा उत्तर पाकर भी खेमसिंह ने विनय से कहा—"हजूर, वह तो सीधा आदमी है। मुझ से कह रहा था, तुम बीबी जी से कह दो।"

"नहीं, तुम्हें परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। तुम उस की फिक्र मत करो! अपने लिये तुम्हें जो कहना है, तलवार साहब से या तायी जी से कहो! हमें किसी से कोई मतलब नहीं है। परसू पर कौन मुसीबत है? हम दस बजे चले जाते हैं। यह ग्यारह-बारह से पाँच बजे तक क्या करता है? दिन भर सोता है, आवारागर्दी करता है। हमें मालूम नहीं है क्या?"

खेमसिंह फिर भी नहीं उठा। हाथ जोड़े खीसें निकाल कर बोला—"सरकार, आप के यहाँ किसी को क्या तकलीफ हो सकती है। हजूर, आप तो बच्चों की तरह रखती है पर सरकार फिर भी ड्यूटी तो है। हजर, कभी

आदमी को अपना काम भी तो रहता है !"

"परसू को जरूरत होगी तो कह देगा, तुम जाओ।" तारा ने बात खत्म कर दी।

तीसरे-चौथे दिन परसू ने आँखे झुकाये, हाथों के पंजे एक-दूसरे मे उलझा कर, एक पांव के अंगूठे से दूसरे पांव की एडी को खुजाते हुये, झेंपते-झेंपते कहा—"बीबी जी, शब नौकरों को दोपहर मे पाँच बजे तक छुट्टी मिलती है। बुआ जी हमे छुट्टी नही देती।"

तारा ने बात न बढने देने के लिये उसे डांट दिया—"फिजूल बकवास मत करो। तुम दोपहर से शाम तक क्या काम करते हो ?"

"हजूर, मैं जरा बाहर चला गया था, बुआ जी ने बहुत हल्ला किया।"

तारा ने और क्रोध दिखाया—"तुम बुआ जी की शिकायत करने आये हो। नहीं जानते, उन की तबियत खराब है। वह हमें भी डांट देती है। मां की तरह है। तुम्हें बच्चे की तरह मानती है। तुम्हारी मां कभी कुछ नही कहती थी ? कैसी बेवकूफी की बात कहते हो !"

तारा ने पूरणदेई से सिफारिश कर दी—"मोये (मरे) को दो-तीन घन्टे छुट्टी दे दिया करो। आज-कल का जमाना ऐसा ही है। भरोसे लायक है। कभी चोरी-चकारी नही की। मरा भाग जायेगा तो तुम्हें ही अधिक परेशानी होगी।"

पूरणदेई ने परसू के झूठे लांछन का विरोध ऊचे स्वर मे किया—"सारी दोपहर मगरमच्छ की तरह सोता है। दो आने की चीज लेने जाता है तो दो घन्टे मे लौटता है। जब चाहता है, बिना पूछे उड जाता है। मुझे क्या है, जहाँ मर्जी घूमा करे, मैं क्यों बोलूं !"

तारा ने परसू को डांटा—"काम करना है तो ढंग से करो। बुआ जी को खामुखाह परेशान करते हो। बिना पूछे कही नही जाना होगा। अपने काम से जाना हो तो पूछ कर, एक बजे से पाँच बजे तक जा सकते हो लेकिन ठीक समय पर आना होगा !"

सप्ताह भी नहीं बीता था कि तायी और गुरांदेई ने तारा के यहाँ आकर शिकायतें कीं—···"हमने तुम्हारा क्या बिगाडा है ? तुम हम लोगों के सिर पर मुसीबत डाल रही हो। सब नौकर कह रहे हे कि तुम ने नौकरों को चार घंटे छुट्टी का हुक्म दे दिया है।"

तारा ने विरोध किया—"गलत हे ! मुझे मुहल्ले की पंचायत से कोई मतलब नही है। मुझे दूसरो के नौकरों से कोई मतलब नही है। मैंने किसी को

कुछ नहीं कहा है।" तारा के इस विरोध से किसी का समाधान नहीं हुआ।

ताई के दोनों नौकर एक बजे से चार तक उड़ जाने लगे थे। वैसे ही गुरांदेई का मुरली भी। नौकर कह देते—सक्रटरी साहब परसू को छुट्टी देती है। सभी जगह नौकरों को छूटटी मिलती है, हम भी छुट्टी लेंगे! सब नौकर इकट्ठे बैठ कर ताश या कौड़ियां खेलते रहते।

तायी तारा से नाराज होकर उस के विरुद्ध प्रचार करने लगी—"इसे क्या है, इस के घर में काम ही क्या है? बूढ़ी बुआ को टुकड़ों पर नौकर बनाये है। दफ्तर के चपरासी हैं। जो चाहे करवा ले। इसे हम लोगों की परेशानी देखने में मजा आता है।"

गुरांदेई ने तायी से भी कड़वी बातें कहीं—"इसने दोपहर की छूट्टी के लिये नहीं बहकाया तो मैं मुरली को बुलाती हूं, उस के सामने कहे! फिर हम देख लेंगे!"

तारा नौकरों को बुलाकर पंचायत में उन के द्वारा फैलायी गयी झूठी अफवाह का प्रतिवाद करने के लिये तैयार नहीं हुयी। इस का मतलब होता, वह पास-पड़ोस के लोगों के सामने नौकरों से मैं-मैं तू-तू करती।

गुरांदेई जीने में खड़ी होकर परोक्ष से चिल्ला-चिल्ला कर तारा को सुना गयी—"''''अफसरी और मोटर का घमंड होगा तो अपने घर बैठे! हम क्या किसी का खाते है जो दबें। संडी बनी बैठी है। न खसम, न बच्चे! इस के घर काम ही क्या है! दूसरे बाल-बच्चेदार लोगों को देख कर जलती है। ऐसी है, तभी तो सब कुछ होते भी भगवान के श्राप से संडी बनी है।"

पास-पड़ोस के भले लोग तारा को नौकरों को भड़काने वाली कह कर उस से रूठ गये।

तारा पछताने लगी—वह इस मकान में रही क्यों? सन् ५३ में फीरोजशाह रोड पर नये बने सरकारी मकानों में उसे चार कमरे का मकान मिल सकता था। तब पड़ोसियों ने स्नेह का अधिकार जताया था कि वे उसे नहीं जाने देंगे। तारा ने स्वयं भी सोचा था, उतनी जगह कौन संभालेगा? उस ढंग से रहकर खर्च पसारने से क्या लाभ? वह मकान ले लेने पर तनखाह के हिसाब से किराया कटता। एक नौकर और रखना पड़ता। सौ रुपये मासिक का नुकसान था। अर्थ-विभाग के डिप्टी असिस्टेंट सैक्रेटरी सिद्धू ने भी उस से अनुनय किया था कि कृपा करके वह उसे जगह ले लेने दे इसलिये उस ने स्थान नहीं बदला था। अब पछता रही थी—क्यों नहीं यहां से चली गयी। वहां सभ्य, शालीन लोगों का पड़ोस तो होता। इन झंझटों से बची रहती।

कभी सोचती, इस झगड़े से तो अच्छा है, मिस हलदार की तरह 'वर्किंग वीमेंस होस्टल' मे चली जाये परन्तु पूरणदेई को कहाँ फेक देती ?

तारा को इस खिन्नता मे सात्वना देने वाला कोई नही था। मेहता की पत्नी सरोज सब पडोसियो की कही हुई बाते तारा को बता देती थी और अंत मे अपने घर की कठिनाइयो का भी जिक्र करने लगती। उन बातो से तारा को क्या संतोष होता ? मन पर बोझ बढ जाता था।

तारा के लिये आने-जाने की चार-पाच ही जगहे थी। मर्सी के यहाँ सदा ही चड्ढा की राजनैतिक बातो और सरकार की सदा ही विरोधपूर्ण आलोचना से वह बहुत ऊबने लगी थी। वह मान लेने के लिये तैयार नही थी कि सरकार कुछ भी नही कर रही या एक दिन मे ही सब कुछ हो जाना सभव है। शीलो को तारा के ब्याह की मर्सी से भी ज्यादा फिक्र थी। उसे विश्वास था, तारा मन से असद को नही भूली है। वह बड़े दर्द से वही बात चला देती। तारा ने कई बार उसे मना किया परन्तु शीलो समवेदना प्रकट किये बिना मानती ही न थी। तारा को समझाने लगती—असद ने ब्याह कर लिया है तो तुझे क्या है"!

तारा कचन के यहाँ जाती तो मिसेज अगरवाला का फूला हुआ मुह देखने को मिलता। उन्हें विश्वास था कि तारा के ही प्रपच से नरोत्तम गरीब घर की लड़की के चगुल मे फंस गया था। डाक्टर श्यामा उसे ब्रिज पार्टी मे या क्लब मे ले जाने का आग्रह करने लगती थी। यदि दूसरे मूड मे होती तो मिसेज दास की शिकायते करने लगती।

तारा अन्य परिचितो से ऊब जाती और घर मे पूरणदेई से परेशान हो जाती तो संध्या समय प्रभा सक्सेना के यहाँ चली जाती थी।

प्रभा सक्सेना अब शिक्षा-विभाग मे डिप्टी-सैक्रेटरी थी। सैक्रेटेरियट मे उस की योग्यता और रोब की धाक थी। चुस्त और बेलाग समझी जाती थी परन्तु तारा पर उस का बहुत स्नेह होने से, तारा उस के जीवन की भीतरी सीवनो से भी परिचित हो गयी थी। स्वयं प्रभा को लगता था कि विवाह न करके उस ने जीवन मे जो सफलता पायी थी वह बिलकुल निस्सार थी। आरम्भ मे जैसे रावत ने तारा के संरक्षक का भार ले लिया था वैसे ही प्रभा को भी उस की चिन्ता रहती थी। रावत मुहफट तो था ही। तारा पर प्रभा का अनुराग देख कर एक दिन क्लब मे रावत ने संस्कृत के श्लोक के उद्धरण से मजाक कर दिया था—"तारा की कोमलता देख कर मिस सक्सेना मे पुरुष-भाव जाग उठता है।

प्रभा अकेले में तारा को 'तू' या 'लड़की' सम्बोधन कर लेती थी। शायद तारा के अतिरिक्त किसी और के सामने वह अपना मन नहीं खोल सकती थी। मन हल्का करने के लिये अपने असफल प्रेमों की कहानियाँ तारा को सुना देती। तारा को उस की कहानियाँ डाक्टर श्यामा की कहानी का ही दूसरा रूप जान पड़तीं। प्रभा ने सफलता और प्रतिष्ठा पर सब कुछ निछावर कर दिया था। अब नौकरी की समाप्ति का समय निकट आ गया था। भविष्य में क्या करेगी, यह विचार उसे चिंतित कर देता था। उच्छ्वास से कहने लगती—"लड़की, ऐसी भूल न करना। देख, मेरा क्या है; किसी भांजे-भांजी को दे जाऊंगी पर वह 'मेरा' तो नहीं हो जायेगा। मैं तो जीवन का टाट-फट्टा समेट रही हूं। मेरा नारीत्व तो केवल धूप में सूख कर ही समाप्त हुआ। अपने पेट की सन्तान को पालने का सन्तोष नहीं पाया तो क्या पाया? ....किसी ने अपनी समझ कर कोई अधिकार नहीं जताया न कभी किसी के सामने मान किया, न किसी के सामने रोयी।.... ....कभी किसी के लिये पकाकर प्रतीक्षा नहीं की।...."

तारा को यह बातें अच्छी नहीं लगती थीं। यह बातें सुन कर अपने जीवन का चित्र बहुत भीषण लगने लगता था जैसे सूने मरघट में खड़ी हो और चीत्कार कर देना चाहती हो!....जीवन तो जैसा है वैसा ही रहेगा।... जीवन में अकेलापन है, तो है।....क्या मैं भी अकेली नहीं हूं।....इच्छा होना तो स्वाभाविक है पर कोई इच्छा पूरी न हो सके तो स्वयं अपनी विडम्बना करने से क्या लाभ? यह बातें सोच कर तारा को मन पर एक अजीब सा दबाव अनुभव होने लगता।

सितम्बर में भी मौसम बहुत खराब चल रहा था। वर्षा हो जाती तो कीचड़ होकर बाहर जाना असम्भव हो जाता या हवा रुक कर व्याकुल कर देने वाली गर्मी हो जाती। सदा पढ़ते रहना, निष्प्रयोजन पढ़ते रहना भी तो सम्भव नहीं था। तारा जाती भी तो किस के यहाँ? सदा वही बातें करने और सुनने को मन न चाहता और अकेली बैठी अजीब चिन्ताओं और उधेड़बुन में उलझ जाती थी। इस बेचैनी से बचने का एक ही उपाय था। गाड़ी पर तीस-चालीस मील घूम आना या छोटी-मोटी बातों में भूल जाने का यत्न करना। अच्छे ढंग से कपड़े पहन कर, अपनी आँखों में सुन्दर लगने का सन्तोष पाना और कुछ देर के लिये बाजार की भीड़ में चले जाना। बाजार जाकर कोई कीमती साड़ी या दूसरी चीज खरीद लेती। विश्वास कर लेना चाहती

थी, संतुष्ट हूं—मुझे क्या कमी है। जो चाहती हूं, कर सकती हूं। कुछ खर्च कर देने से सन्तोष होता था, जैसे अपने लिये कुछ कर लिया हो।

बन-ठन कर घूमने चली जाना भी सर्वथा निरापद नहीं था। लोगों की आँखें गड़ने लगती थीं या बोली-ठोली कान में पड़ जाती थी। उस के मकान के नीचे फर्नीचर वाला पंजाबी उसे गाड़ी में से निकलते देखता तो बोली से पड़ोसी को संकेत कर देता—"ब्लैक एण्ड ह्वाइट लोगे ?"

पड़ोसी उत्तर देता—"भाई, बहुत ऊंचे मिजाज की चीज़ है। उतना दाम कौन दे! हम तो देख कर नशा पूरा कर लेते है।"

तारा खूब समझती थी। प्रायः ही उस की पोशाक में काला और सफेद रंग रहता था। गाड़ी भी उस की काली और सफेद थी। कनाट-प्लेस में पीठ पीछे से सुनायी दे जाता—"अबे, वह माल आया है!" तारा को इस आशिक-मिजाज़ी पर क्रोध के बजाय हंसी आ जाना चाहती पर होंठ दबाये रहती। ....ऐसा अवसर न आने देना ही बेहतर था।

उस संध्या भी तारा घर मे अकेली थी। कुछ सोच घूमने के लिये तैयार हो गयी थी। खूब कीमती सफेद जार्जेट की साड़ी पहन ली थी। 'सोच लिया था, फिल्म का नाम देखे बिना किसी भी सिनेमा मे चली जायेगी; फिर उस से अच्छी बात सूझ गयी। करोलबाग जाकर शीलो के लड़के और लड़की को या फ़ैज़ बाजार से जया को ले आयेगी। उसे आइसक्रीम खिलाकर खिलौने खरीद देगी। बच्चों को मनाना-रिझाना और खिलौने खरीदना उसे बहुत अच्छा लगता था। सोच रही थी, करोलबाग जाये या फ़ैज़ बाज़ार? खूब संवार कर जूड़ा बाँधा। बटुये मे सौ रुपये का एक और नोट डाल लिया। अचानक जीने के किवाड़ों पर खट-खट सुनायी दी।

"यह कौन आ गया?" तारा झुंझलायी। देखने के लिये परसू को आवाज़ दे दी। उसे अकेलेपन की शिकायत थी परन्तु इस समय नही चाहती थी कि कोई आकर सोचे हुये विनोद मे अड़चन डाल दे।

"डाक्टर शाब।" परसू ने बताया।

तारा समझ गयी डाक्टर नाथ। झुंझलाहट मिट गयी। तुरन्त बैठक में आ गयी। डाक्टर गरमी के कारण छत का पखा चालू कर रहा था।

तारा को विस्मय हुआ; नाथ पसीना-पसीना हो रहा था और इतनी उमस भरी गर्मी मे हल्के सलेटी रंग की ऊनी कमीज़ और गहरे सलेटी रंग की ऊनी पतलून पहने था।

तारा को आशंका हुयी, तबीयत तो ठीक है! गरमी के मौसम मे उस ने

डाक्टर को कभी भी सफेद कमीज़ या बुशशर्ट और सफेद पतलून के अतिरिक्त कुछ और पहने नहीं देखा था ।

"तुम तो बाहर जा रही हो ?"

"नहीं-नहीं, बैठिये ! बैठी-बैठी ऊब कर यों ही जा रही थी । शायद आप के बंगले की ओर ही चली जाती । ऊनी कपड़े क्यों पहने हुये हैं ?" तारा ने पूछ लिया ।

"क्या बताऊं ?" नाथ ने कुर्सी पर बैठते हुये कहा, "भूपसिंह अच्छी मुसीबत कर गया है । मालूम नहीं कपड़े किस लाण्ड्री मे या किस धोबी को देता था । लाण्ड्री की रसीद-वसीद नहीं दे गया । कल और परसों तो आलमारी में कमीज़ और पतलून मिल गये थे । मेरा अनुमान था बक्स में और भी कमीज़-पतलून होंगे । आज सुबह देखा तो कुछ नहीं मिला । सुबह दफ्तर जाते समय एक दुकान पर चार सूती पतलूनों के लिये कह दिया था । विश्वास दिलाया था कि चार बजे दे देंगे । सात बजे तक भी तैयार नहीं किये । अब आठ बजे फिर जाना होगा । दो बुशशर्ट सिली हुयी ले ली हैं । भूपसिंह दफ्तर में भी नहीं आया । जाने कहाँ चला गया है ?"

"भूपसिंह कहाँ चला गया ?" तारा ने चिंता से पूछ लिया ।

"तुम्हें नहीं मालूम ?" डाक्टर ने पूछा, "अखबार नहीं पढ़ती ? क्लास फोर गवर्मेंट एम्पलायीज़ यूनियन के आन्दोलन की बात नहीं जानती ?"

"हाँ, अखबार में तो देखा है पर भूपसिंह तो अपनी ही इच्छा से आप के यहाँ रहता था ।" तारा ने विस्मय से कहा, "उसे अब नहीं रहना था तो दो-तीन दिन पहले कह देता । आप मुझे फोन कर देते !"

केन्द्रीय सचिवालय के चपरासियों की यूनियन ने प्रस्ताव पास कर दिया था—चपरासी सरकारी नौकर है । वे अफसरों के घर काम नहीं करेंगे । घर की सफाई या मोटर धोना, अफसरों के बच्चों को स्कूल पहुंचाना या बच्चों को सैर कराने ले जाना, अफसरों के घर से दफ्तर में खाना लाना, उन के लिये चाय, सिगरेट, पान ला देना या सुराही से गिलास में पानी देना भी उन का काम नहीं है । यह काम उन के लिये अपमानजनक हैं । वे केवल सरकारी काम के लिये हैं । उन की ड्यूटी—कमरा साफ कर देना, सुराही भर कर साहब के कमरे में रख देना और फाइलें या सन्देश इधर से उधर पहुंचाना है । घरेलू नौकरों का काम उन की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल और गैर-कानूनी है । अपने निश्चय के कानूनी समर्थन में वे 'मैनुअल' की धारायें और नियम-

संख्या बता सकते थे।

अफसरों को चपरासियों के व्यवहार से बहुत अपमान अनुभव हो रहा था। मोटर न साफ करने की बात वे मान सकते थे परन्तु घर से खाना ला देना या कैंटीन से चाय और सुराही से पानी दे देने पर एतराज उन्हें केवल धृष्टता मालूम देती थी। तारा का भी ऐसा ही विचार था। तारा अपने चपरासी से घर का कोई काम नही लेती थी। दफ्तर में कभी-कभी चाय जरूर मंगवा लेती थी या तिपायी पर रखी सुराही से जल का गिलास दे देने के लिये कह देती थी। इस के लिये उस का चपरासी मामूली रिवाज के अनुसार होली, दिवाली, दसहरा और नववर्ष के अवसर पर सलाम के लिये दो-दो रुपया भी पाता था। दुर्गा पांडे ने पिछले वर्ष बहुत कातरता से हाथ जोड़ कर अपनी पत्नी की दवाई के लिये तीस रुपये भी उधार मांग लिये थे। रुपया अभी तक लौटा नहीं सका था।

तारा ने अखबार में यह समाचार पढ़ा। उसी दिन अपना व्यवहार स्पष्ट कर देने के लिये उस ने तीन बजे घंटी दबा कर दुर्गा को कमरे में बुलाया। उस की ओर देखे बिना हुक्म दिया—"कैंटीन के बेरे से कहो, चाय दे जाये !" साधारण व्यवहार के अनुसार चाय ले आने के लिये नहीं कहा।

दस मिनट बाद तारा ने फिर घंटी बजायी। दुर्गा को फिर आदेश दिया—"कैंटीन में जाकर बेरे को याद दिलाओ कि चाय नही लाया।"

दुर्गा ने हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी—'हुजूर माता जी, इस में हमारा कोई कसूर नहीं है। हमने हजूर, कभी साहब लोगों के जूते साफ करने से भी एतराज नहीं किया। हजूर, जब नौकरी कर रहे हैं तो मिजाज क्या ? जब से नये-नये अंग्रेजी पढ़े लौंडे भरती हुये है तो यह कानून बघारे जाने लगे है। माता जी, चाय ले आने में हमारी क्या जात बिगड़ती है ? हमेशा से लाते थे। हम तो ले आयें, ये लौंडे हम पर 'थू ! थू !' करने लगेंगे। यह लौंडे हमारी फजीहत करायेंगे।"

तारा का क्रोध उतर गया। ख्याल आया—मनुष्य इतना दीन क्यों बन जाये। दैन्य का विरोध करना क्या बुरा है ? सीता की बात याद आ गयी, वह अपने सीनियर डिस्पेचर के लिये क्या कहती थी। दफ्तरों में काम करने वाली दो-चार और लड़कियों के भी ऐसी शिकायतें करने की अफवाहें सुनी थीं।""आदमी को परिस्थितियों से दब जाते क्या देर लगती है !

× × ×

डाक्टर नाथ ने बताया—भूपसिंह यूनियन वालों से अड़ गया था कि वह अपनी इच्छा और नफे-नुकसान का मालिक था। उस के मामले में किसी को बोलने की जरूरत नहीं थी। उस की नौकरी का समय भी पूरा हो रहा था। सात ही महीने शेष थे। वह डाक्टर जैसे साधु, राजा अफसर की सेवा छोड़ने की अपेक्षा नौकरी छोड़ देने के लिये तैयार था।

दो दिन पहिले सांझ साढ़े छः बजे डाक्टर बंगले पर पहुंचा तो काफी गोलमाल देखा। पच्चीस-तीस चपरासी बंगले के फाटक पर जमा थे। भूपसिंह बरामदे में तना खड़ा था।

डाक्टर ने घबराकर पूछा—"क्या बात है?"

यूनियन के लोग भूपसिंह की चुनौती से चिढ़ गये थे। सैक्रेटेरियट के दफ्तर बन्द होने के बाद यूनियन का उग्र कार्यकर्ता बसन्तलाल अपने समर्थकों को लेकर डाक्टर के बंगले पर पहुंच गया था।

एक जवान चपरासी ने आगे बढ़ कर साहस से बात की—"सर, हम कोई उपद्रव नहीं कर रहे हैं। हम बंगले के बाहर खड़े हैं। अगर कोई चपरासी यूनियन का फैसला नहीं मानेगा, अफसरों के घर पर काम करेगा तो हम उसे समझायेंगे। यह हमारी 'किलास' की इज्जत का सवाल है।"

"ठीक है, मैं भी यूनियन के निर्णय के विरुद्ध चपरासी से अपने घर का काम नहीं करवाना चाहता।" डाक्टर ने उत्तर दिया।

नौजवान ने कहा—"सर, माफ कीजिये, तो फिर भूपसिंह रात को बंगले में क्यों रहते हैं? हमें मालूम है, वे सब काम करते हैं। खाना बनाते हैं, बर्तन भी मलते हैं।"

डाक्टर ने स्वीकार किया—"भूपसिंह पर कोई दबाव नहीं है। वह अब तक अपने लाभ के लिये, अपनी इच्छा से काम करता है। यूनियन को एतराज है तो उसे नहीं करना चाहिये।" डाक्टर ने भूपसिंह की ओर देखा, "हम तुम्हारी यूनियन के फैसले के विरुद्ध काम नहीं करवाना चाहते!"

भूपसिंह ने गहरा सांस लेकर डाक्टर की ओर देखा। वह अपमान और क्रोध से स्तब्ध रह गया था। घूम कर अपनी कोठरी की ओर चला गया। अपना बिस्तर और टीन का बक्सा लेकर बरान्दे में आ गया। उस ने चाबी का गुच्छा डाक्टर के सामने डाल दिया। आँखें झुकाये नमस्कार किया और चुपचाप बंगले के बाहर चला गया। उस के पीछे यूनियन के लोग 'इन्कलाब जिन्दाबाद!' के नारे लगाते चले गये।

रात साढ़े नौ बजे डाक्टर को फोन आया। फोन पर गिल कनाट-प्लेस

के एक काफी-हाउस से बोल रहा था। उस ने डाक्टर से संध्या की घटना के विषय में पूछा और बताया कि उस का साथी एक पत्रकार कह रहा था कि पत्र में डाक्टर के बंगले की घटना का समाचार जा रहा था। डाक्टर की प्रशंसा में यूनियन के सैक्रेटरी का बयान भी था।

डाक्टर ने बहुत अनुनय से अनुरोध किया––"गिल, यह समाचार न छपने देना। ऐसी मशहूरी मुझे नही चाहिये।"

गिल ने हंस कर आश्वासन दे दिया––"मुझे भी सदेह था, तभी आप से पूछ लिया।"

डाक्टर ने तारा के सामने विवशता प्रकट की—"भूपसिह के साथ ऐसा व्यवहार करने के लिये मुझे बहुत दुख है। रात भर ख्याल आता रहा लेकिन क्या कर सकता था ? मै उसे अपनी यूनियन का विरोध करने के लिये कैसे कह देता ! सामूहिक रूप से उन की बात भी गलत नही है। कानून भी उन के ही पक्ष मे है। वे लोग पुरानी बातों के बदले की भावना और उत्तेजना से बातों को बढा रहे है परन्तु मूलत: उन की बात गलत नही है।"

"आप खाना कहाँ खा रहे है ?" तारा ने चिन्ता से पूछा।

"वह तो इतनी बड़ी समस्या नही है।" डाक्टर ने वेपरवाही मे हाथ हिलाया, "दिल्ली मे खाना चाहे जहाँ मिल सकता है पर तीन दिन से झाड़ू नही लगा। कोई मिलने वाला आ जाये तो बैठाऊं भी कहाँ ? तुम अपने चपरासी से या नौकर से कहना, जल्दी कोई आदमी ढूंढ कर दे।"

तारा ने होंठ काट कर मान से जवाब तलब किया––"आप ने अब तक मुझे फोन क्यों नहीं किया ?"

"अच्छा सुनो, पुरी यहाँ आया था ?" डाक्टर ने पूछ लिया।

तारा अप्रत्याशित प्रश्न से विस्मित रह गई, बोल न सकी। केवल इनकार में सिर हिला दिया।

डाक्टर पल भर खिडकी से बाहर देख कर बोला––"योजना के प्रकाशन से पूर्व अंतिम विचार के लिये परामर्श समिति की बैठक हो रही थी। उसी सिलसिले में लंच और डिनर प्राय नित्य ही इधर-उधर होता रहा। पंजाब से विश्वनाथ सूद भी समिति मे है। उन का विचार है कि अभी राष्ट्रीय नियंत्रण में उत्पादन के लिये उपयुक्त समय नही आया है। सूद समिति मे तो अधिक नहीं बोले। आज दोपहर 'मंडल' के यहां लंच के समय मुझ से कहा कि मेरे मकान पर आकर बात करना चाहते है। मेरे यहाँ जैसी हालत है, उन्हें आने के लिये कैसे कहता। यही उचित समझा कि वे जहाँ ठहरे है, मैं ही चला

जाऊं। वे चौसिया के वहाँ ठहरे है। वही से आ रहा हूं। सूद के साथ पुरी भी था। उसे तुम्हारा पता नहीं मालूम? पर कनक''''खैर ठीक है।" डाक्टर अनुमान में चुप हो गया।

तारा आंखें फिराये मौन रही।

डाक्टर ने कुर्सी पर करवट बदली—"क्या अजीब लोग है और क्या इन का बात करने का ढंग है। सूद की बात कह रहा हूं। पुरी भी बिलकुल उस की हां में हां मिला रहा था। मेरा अनुमान है, सूद ने पुरी से मेरे विषय में पहले बात कर ली होगी। लोग नौकरशाही ढंग को कोसते है। सूद का ढंग तो पूरा तानाशाही है। विलकुल जैसे अमरीकन बौस अपने कारोबार में हुक्म चलाता है। मेरी बात नहीं सुनी। हकला-हकला कर, 'क्या नाम-क्या नाम' करता अपनी ही बात कहता गया, क्या तर्क है? क्या तरीका है? अजीब आदमी है।"

तारा ने उत्सुकता से डाक्टर की ओर देखा।

डाक्टर ने बताया—"सूद कहता है, मान लिया इस योजना में बहुत शीघ्र औद्योगिक विकास हो सकता है पर योजना को कार्यान्वित कौन करेगा? योजना को कार्यान्वित करने के लिये सब से पहले मजबूत सरकार की जरूरत है। योजना तो बहुत अच्छी है लेकिन यदि नये चुनाव के परिणाम में कोई दूसरी प्रतिक्रियावादी सरकार बन जाये और वह इस योजना को अव्यवहारिक बताकर रद्दकर दे तो? दूसरी योजना की मूलनीति को चुनाव से पहिले लागू कर दिया गया तो कांग्रेस जनता के सब से महत्वपूर्ण अंग का विश्वास और सहयोग खो बैठेगी। यह योजना तो उन लोगों के लिये सीधी-सीधी कम्यूनिज्म की धमकी है। यदि कांग्रेस, सरकार बनाने में ही सफल न हो सकी तो योजना को कार्यान्वित कौन करेगा? योजना आत्महत्या बन जायेगी।

"पुरी ने सूद के समर्थन में तर्क किया'''देश की पूंजी अपने लिये प्रतिकूल परिस्थिति देख कर बाजार से सिमिट जायेगी। पश्चिमीय राष्ट्र हमारी नीति में 'टोटेलिटेरियन' प्रवृत्ति देख कर सहायता से हाथ खींच लेगे। योजना को केवल आर्थिक सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यवहारिक राजनीति के दृष्टिकोण से देखना आवश्यक है।

"सूद ने मुझे चेतावनी दी, कांग्रेस सरकार कोई योजना लागू करे तो पहला व्यवहारिक लक्ष्य तो कांग्रेस सरकार की स्थिरता होना चाहिये।

"मैने सूद जी से कहा—भावी चुनाव मे क्या होता है, यह योजना का विषय नही है। राजनैतिक भविष्य को राजनीतिज्ञ ही अच्छी तरह समझते

है। हम लोगों ने योजना की व्यवस्था सरकार द्वारा निर्दिष्ट सीमाओं में ही बनायी है। इस में कम्यूनिज्म या मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व का अवसर कहीं नहीं है। हमारी अविकसित परिस्थितियों में, जिस बोझ को स्वतन्त्र-निजी व्यवसाय की व्यवस्था नहीं उठा सकती उसे राष्ट्रीय साधनों और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व से पूरा करने का प्रयत्न है। मेरा ख़याल है, इस समय कांग्रेस की यही नीति है। इस योजना के मुख्य आधार प्रधान मंत्री और मंत्री-मंडल ने निश्चित किये हैं। योजना की रूपरेखा उन्हें समय-समय पर बतायी जाती रही है।

"सूदजी बिगड़ कर घुघलाने लगे—प्रधान मंत्री तो हवा में रहते हैं। प्रधान मंत्री लाखों आदमियों की भीड़ से एक साथ मिलते हैं। काम भीड़ से नहीं चलता। प्रधान मंत्री भीड़ से चुनाव के लिये चंदे की ही अपील करके देख लें? लाख की भीड़ से दस हजार भी नहीं मिलेगा। आगामी इलेक्शन के लिये एक-एक राज्य में करोड़-करोड़ का खर्च पड़ेगा। प्रधान मंत्री इकट्ठा कर देंगे ये रकम? सोशलिस्टिक ढंग एक बात है पर ढंग व्यवहारिक तो होना चाहिये। अव्यवहारिक ढंग हम लोग कैसे मंजूर कर सकते हैं! जिम्मेदारी तो हमारी है। वे तो अपना आशीर्वाद देकर एक तरफ हो जायेंगे। यह बात आप को जरूर ध्यान में रखनी होगी।

"फिर सूद दूसरी बातें करने लगे; अजीब बातें। विस्मय है और दुख भी है क्योंकि मुझे वह पुरी की सूझ लगी। सूद ने कहा—तुम तो केवल अर्थ-शास्त्र के विद्वान हो। खोज और अध्ययन तुम्हारा विषय है। तुम खामुखाह इस झगड़े में समय बरबाद कर रहे हो। यह तो मामूली सेक्रेटरियों के काम हैं। तुम्हारे लिये उचित स्थान 'राष्ट्रीय-खोज-संस्था' में है। तनखाह भी यहाँ से अच्छी हो जायगी। अध्ययन के लिये पूरा अवकाश रहेगा। साल दो साल में पंजाब में या किसी भी युनिवर्सिटी में वायस-चांसलर बनने का अवसर हो सकता है। सूद इस के लिये आश्वासन देने को भी तैयार थे....।"

तारा मौन रही फिर गहरा सांस लेकर बोली—"....चक्रों के भीतर चक्र चल रहे हैं। मुझे तो डर ही लगता है, यह लोग जाने क्या कर डालें?"

डाक्टर फिर बोला—"पर मुझे पुरी पर विस्मय होता है। मुझे बाहर छोड़ने आया तो जरूर अपनेपन से कुछ बात की पर सूद के सामने बिलकुल रूखा बना रहा। मुझे ख़याल था यहाँ आयेगा। अब तक आ गया होता। वे लोग तो रात की ही गाड़ी से पंजाब लौट रहे हैं।"

"डाक्टर साहब खाना लाऊं?" तारा ने प्रसंग बदलने के लिये कहा।

"खाना खाऊंगा पर पहले कनाट प्लेस से पतलूनें तो ले आऊं, दुकान आठ बजे बन्द हो जायेगी। आठ-दस मिनट में लौटता हूं।" डाक्टर अपना ब्रीफ-केस और खरीदे हुये कपड़ों का बंडल तिपाई पर छोड़ कर जीना उतर गया।

तारा रसोई की ओर गयी। खाट पर लेटी पूरणदेई ने कमजोर आवाज में पूछ लिया—"डाक्टर साहब आये हैं। मैं उठ कर दो फुल्कियां सेक दूं!"

"नहीं बुआ, तुम न उठना मैं देख लूंगी। अभी जरा देर में आयेंगे।"

तारा ने देखा परसू ने क्या बनाया है। फुलके बनाने के लिये शेष थे। उस ने परसू से कहा—"फुलके मैं बनाती हूं। तुम एक पाव रबड़ी और नीचे होटल से एक कटोरी मीट ले आओ। झटपट खाकर तैयार हो जाओ, तुम्हें साथ जाना है।"

नाथ ने लौट कर खाना खाया। खाते समय उसे फिर पुरी की याद आ गई—"कनक को मैंने तीन-चार बार ही देखा है। भीतरी बात नहीं जानता पर मुझे वह सच्ची और साफ लगी। पुरी के ऐसे ही किसी व्यवहार से उस का मन फट गया होगा।"

तारा ने स्वीकार किया—'बहुत साहसी है, सच्ची है। उस का परिवार इस विवाह के विरुद्ध था। भाई की उस अवस्था में कनक का इस विवाह के लिये आग्रह बहुत साहस और त्याग की बात थी। अनुमान है, उसे किसी बात में जरूर असह्य निराशा हुई है। बहुत कुछ कह रही थी ...."

डाक्टर अपना ब्रीफकेस और कपड़े उठाने लगा तो तारा ने रोक दिया—"डाक्टर साहब, परसू आप के साथ जायेगा। जब तक दूसरा आदमी नहीं मिलता, वहीं रहेगा। जैसा-तैसा खाना बना ही लेता है।"

डाक्टर ने विरोध किया—"क्या कहती हो? यहां कैसे काम चलेगा? बुआ बीमार है। तुम उसे और आदमी लाने के लिये कह दो। तुम क्या होटलों में खाने जाओगी? क्या पागलपन है?

"नहीं डाक्टर साहब!" तारा ने दृढ निश्चय से कहा, "मैं उसे कह चुकी हूं। अब तो बुआजी की हालत काफी सुधर गयी है।" तारा ने परसू को बुला लिया और डाक्टर का सामान उस के हाथ में दे दिया।

परसू के न होने के कारण पूरणदेई सुबह नहाकर, दीवार और किवाड़ों का सहारा लेकर रसोई की ओर जा रही थी। तारा ने उसे रोक दिया—"नहीं, अभी चूल्हे के पास नहीं जाना। मैंने दोनों के लिये खिचड़ी बना ली है।"

तारा बहुत दिन बाद रसोई में गयी थी। देखा, परसू ने खूब कूड़ा जमा

कर रखा था। सोचा, मर्दों को रसोई और घर की सफाई में रुचि नहीं होती। किसी तरह निबाह देने के लिये काम-कर देते है। वहां बंगले पर,जाने क्या हाल होगा, परसू क्या कर सकेगा ? तीन बजे दफ्तर मे स्वयं जाकर देख आऊंगी। परसू को समझाती भी आऊंगी।

तारा तीन बजे डाक्टर के बंगले पर चली गयी। बंगले का फाटक मुंदा था। तारा ने दो बार हार्न दिया। कोई उत्तर नहीं मिला। समझ गयी, परसू सो रहा होगा। खुद ही फाटक की अड़ेस हटा कर गाड़ी भीतर ले गयी। परसू दरवाजे बन्द किये, ड्राइंग-रूम में पंखा छोड़ कर दरी के बीचोंबीच सो रहा था।

तारा ने घूम-घूम कर देखा। परसू ने ऊपर-ऊपर से झाड़-पोंछ दिया था परन्तु धूल-कूड़ा सब जगह मौजूद था।

तारा ने परसू को गंदगी दिखा कर काम के लिये चुस्त किया। झाड़ू-झाड़न लाने के लिये कहा। स्वयं भी साड़ी का आंचल कमर में कस लिया। परसू से ड्राइंग-रूम की दरी उठवाई। दरी के नीचे कब से जमा गर्द की तह जमी हुई थी। ऊपर कोनों से जाला साफ कराया। दीवारें झड़वायी। पानी की बाल्टियां मंगवा-मंगवा कर फर्श धोना शुरू किया। परसू बार-बार कह रहा था—"बीबी जी मैं करता हूं, आप रहने दीजिये।"

तारा ने कहा—"मैं सफाई करके दिखाती हूं कि कैसे करनी चाहिये!"

ड्राइंगरूम का फर्श सूख रहा था तो तारा ने दफ्तर का कमरा साफ करवाया। चाहती थी, डाक्टर के लौटने से पहले सब कुछ ठीक कर दे। परसू से कह दिया—तुम रसोई के सब बर्तन मांज कर ठीक कर दो। गुसलखाने में झांका तो दो-तीन गंदे तौलिये और उतारे हुये बनियान-जांघिये पड़े थे। कपड़े धोने का साबुन नहीं था। तारा ने परसू से एक डिब्बा साबुन का चूरा ले आने के लिये कह दिया।

तारा ने दफ्तर के बाद सोने के कमरे की ओर ध्यान दिया। देखा, डाक्टर अपने बिस्तर को जैसे-तैसे सीधा करके पलंगपोश से ढक कर चला गया था। चादर में खूब सलवटें पड़ी थी। खेस और दरी में भी सलवटें थी। पलंग के सामने बिछे छोटे से कालीन को हटाने के लिये तारा नीचे झुकी तो देखा पलंग के नीचे पहने हुए कपड़े पड़े थे। तारा ने पलंग के नीचे से कपड़े खींच लिये। उतारी हुई चार सफेद पतलूनें और कमीजें थीं। कपड़े उठा कर आलमारी में रख देने के लिये तारा ने पतलून-कमीजें बाँहों में समेट लीं। मर्दाने कपड़ों को छूने का अवसर बरसों बाद आया था।

डाक्टर की पतलूनें और कमीज़ें बाँह में समेट लेने से तारा को अजीब

सा लगा। पसीने की तीखी सी गंध अनुभव हुई। मन कपड़े फ़ेंक देने को नहीं हुआ।······गंध प्यारी सी लगी। ख्याल आ गया—डाक्टर साहब के हैं। कपड़ों में माथा छुआ दिया। कपड़ों को आलमारी में न रख कर बाँह में लिये रही। फिर लजा गयी—हाय, यह क्या पागलपन है।

सवा पाँच बज रहे थे। तारा सब कुछ कर चुकी थी। परसू साबुन लेकर नहीं लौटा था। तारा परेशान हो रही थी। चाहती थी शेष काम भी जल्दी समाप्त करके डाक्टर के आने से पहले लौट जाये। उस के कपड़े और सिर गर्द से भर गये थे। ऐसी अवस्था में डाक्टर के सामने कैसे होगी!

परसू पाँच बजे लौटा। तारा घबरा रही थी, डाक्टर नाथ के लौटने में अधिक समय नहीं रहा था। तारा ने तुरंत बाल्टी गुसलखाने के नल के नीचे रख कर बहुत साबुन घोल लिया। तौलिये, जाँघिये, बनियान, बाल्टी में डाल दिये। परसू से कहा—"धूप थोड़ी देर ही है। कपड़ों का साबुन निकाल कर गुसलखाने से देती जाऊंगी। तुम दौड़-दौड़ कर बाहर धूप में दीवार पर डालते जाओ। यह भी ख्याल रखना, कोई आता-जाता उठा न ले जाय।"

परसू ने एक बार कपड़े लाकर बाहर फैला दिये थे। फिर लेने जा रहा था कि डाक्टर की आवाज़ सुनाई दे गयी—"परसराम फाटक खोलो।"

डाक्टर की गाड़ी बंगले के फाटक पर पहुंच गयी थी। परसू ने दौड़ कर फाटक खोला।

डाक्टर ने गाड़ी भीतर करते हुए. दीवार पर सूखते कपड़ों की ओर देख कर प्रशंसा से कहा—"वाह, तुम तो बहुत मेहनती जवान हो! कपड़े धो दिये! साबुन कहाँ से लाये?"

"हजूर, बीबी जी धो रही है। उन्हीं ने साबुन मंगाया है।"

डाक्टर की नज़र ड्योढ़ी में खड़ी तारा की गाड़ी पर पड़ गयी। वह तारा की गाड़ी के पीछे गाड़ी रोक कर लपकता हुआ भीतर गया। आवाज़ दी—"तारा, सुनो! यह क्या हो रहा है?"······

तारा गुसलखाने में थी। कपड़े धोते समय साड़ी पर छींटे न पड़ जायें इसलिये साड़ी उतार कर खूंटी पर लटका दी थे। ब्लाउज़-पेटीकोट पहने जल्दी-जल्दी शेष कपड़े निचोड़ रही थी कि गुसलखाने के उड़के दरवाजे से डाक्टर की आवाज़ सुनी। तारा शरम से मर गयी। हाथ से कपड़े गिर गये।

डाक्टर कई बार पुकार चुका था। तारा साड़ी पहनने लगी। जल्दी के प्रयत्न में हाथ शिथिल होकर और देर हो रही थी।

डाक्टर झुंझला-झुंझला कर तारा को बाहर आने के लिये कह रहा था।

तारा ने कपडे पहन कर दरवाजा खोला।

डाक्टर सामने ही खड़ा था। माथे पर परेशानी के तेवर थे।

तारा ने शरमा कर पीठ फेर ली और गुसलखाने के दरवाजे की चौखट पकड़े रही।

"यह क्या कर रही हो ?"

तारा पीठ फेरे मौन रही।

"आई एम वेरी सारी। अच्छा, इधर आओ!" डाक्टर का स्वर नरम हुआ।

तारा ने डाक्टर की ओर नही देखा सिर झुकाये कह दिया—"हम नही बोलते।"

"यह सब करने की क्या जरूरत थी ?"

तारा मुंह फेरे मौन किवाड़ की चौखट को नाखून से खोंटती रही।

"तुम इधर आओ !"

"हम नही बोलते।" तारा ने मान और लज्जा से कहा।

"यह तुम्हारी बहुत ज्यादती है, इधर आओ न !"

"हम नही बोलते।"

"क्यों ?"

"हमें खबर नहीं दे सकते थे !"

"पर यह क्या किया तुमने ?"

तारा सिर झुकाये मौन रही।

डाक्टर ने हार कर तारा को कोहनी से पकड़ कर गुसलखाने के दरवाजे से खींच लिया।

तारा मे इतना बल कहां था कि जवान मर्द की खीच को रोक सकती। रुकने के प्रयत्न में लड़खड़ा कर डाक्टर के सीने पर गिर पड़ी।

तारा ने इतना मानसिक संघर्ष और मानसिक व्यथा अपने जीवन में कभी नही पायी थी। इस से पूर्व यातना और संकट ने उसे मूर्छित और जड़ कर दिया था। इस मानसिक संघर्ष और व्यथा में उस की चेतना अत्यन्त उग्र थी। देश को टुकड़े करने वाला प्रलय अब शान्त हो गया था परन्तु उस प्रलय के भीषण भूकम्प की पीड़ा उस के शरीर में सदा के लिये रह गयी थी। ··· मेरे साथ जो भी हुआ; मैं किसी का जीवन कैसे बर्बाद कर दूं ? कभी उसे जान पड़ता था, पाताल में गिरी जा रही है, कभी जान पडता था स्वर्ग को ओर उड़ जाना चाहती है। स्वर्ग और पाताल उसे अपनी-अपनी ओर खीच

कर छिन्न-भिन्न कर देना चाहते थे। वह स्वयं भी चाहती थी, उस का शरीर छिन्न-भिन्न हो जाये। उस के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायें और आँधी में, पत्तों की तरह उड़ जाये।...उड़ कर नाथ के चरणों की धूल बन जाये....।

नाथ ने बहुत संकोच से, हिचकते हुये उस के सामने प्रस्ताव रख दिया था—"........तुम ने कहा था, समय आने पर तुम्हारे विवाह के विषय में मैं ही निर्णय करूंगा।.......मेरी आयु अधिक न लगे तो मुझ से विवाह करना स्वीकार करोगी ?"

तारा नाथ के कपड़े धोती हुयी पकड़ी गयी थी। नाथ ने उस की बाँह पकड़ कर गुसलखाने से खींचा तो स्नेह और मान की मूढ़ता में वह रुकते-रुकते नाथ के सीने पर गिर पड़ी थी। उस घटना की स्मृति से वह एक पल भी मुक्ति नहीं पा सकी थी। उस पृष्ठभूमि में नाथ का ऐसा प्रस्ताव बिलकुल अप्रत्याशित भी नहीं था परन्तु नाथ का प्रस्ताव सुन कर तारा की गर्दन झुक गयी।

तारा की बैठक में उस के सामने नाथ ही था। दोनों का आमने-सामने बिलकुल चुप, जड़वत बैठे रहना नाथ को उचित नहीं लग रहा था। उस ने प्यार से रूंधे स्वर में पूछ लिया—"कुछ भी नहीं बोलोगी ?"

तारा को इतनी ज़ोर से रुलाई आ गयी थी कि उसे उठ कर अपने कमरे में चली जाना पड़ा। वह नाथ को उत्तर देने के लिये रुलाई रोकने का प्रयत्न कर रही थी। उसे पता ही नहीं लगा, कितना समय बीत गया। संयत होकर बाहर आयी तो नाथ जा चुका था। खिड़की से बाहर नज़र गयी तो सब ओर बिजली का प्रकाश हो चुका था। तारा आध घन्टे तक रुलाई वश नहीं कर सकी थी।

तारा अपनी अभद्रता के प्रति ग्लानि से धरती में गड़ गयी। सोचा, अभी फोन करके क्षमा मांग ले। फोन पर हाथ रखा तो फिर आँसू बह आये। डर गयी—बात नहीं कर पायेगी। फोन से हाथ खींच लिया।

तारा ने रात दस बजे दृढ़ निश्चय करके बैठक के दरवाज़े बन्द कर लिये। फोन पर नम्बर मिलाया। आँसू बहते जा रहे थे पर वह होठों को दाँतों से दाबे थी।

"मैं तारा...." कहते ही हिचकी आ गयी पर उसी सांस में कह दिया, "क्षमा कीजिये, मैं विवाह के योग्य नहीं हूं।"

तारा केवल इतनी ही बात कह देना चाहती थी परन्तु नाथ ने तुरन्त पूछ लिया—"क्या मतलब ? ऐसा क्यों कहती हो ?"

"ठीक कहती हूं। क्षमा कीजिये, ऐसी ही बात है।" तारा ने बहुत यत्न किया परन्तु नाथ को उस के रोने का आभास मिल गया था।

"इस समय फोन रख दो। मैं वहीं आकर बात करूंगा।" नाथ ने कहा।

तारा फिर अपने पलंग पर लेट कर, आंचल में मुंह दबाये रोने लगी। चाहती थी, अपने शरीर को आँसुओं में गला-गला कर बहा दे।

पूरणदेई विस्मित थी, लड़की को क्या हो गया है। अवश्य कोई बहुत विकट पीड़ा होगी। तारा ने खाने से भी इन्कार कर दिया था। पूरणदेई बार-बार हाल पूछने आ जाती थी। तारा ने चिढ़ कर अपने कमरे के दरवाज़े बन्द कर लिये थे।

दूसरे दिन तारा की अवस्था ऐसी थी कि उसे दफ्तर से छुट्टी ले लेनी पड़ी। तारा का मस्तिष्क निरन्तर चकरा रहा था--नाथ को कैसे उत्तर देगी! सचाई और स्पष्टता के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं था।

रविवार प्रातः आठ बजे ही नाथ का फोन सुना, बहुत प्यार और अधिकार से उस ने कहा--"तारा इस समय सुविधा हो तो मैं आ जाऊं? तुम्हारी हाँ सुनने के लिये बहुत व्याकुल हूं।"

"डाक्टर साहब, यहाँ ठीक नही रहेगा।" तारा ने बहुत तटस्थ, स्थिर स्वर में कह दिया—"नौ-साढे नौ तक वहाँ ही आ जाऊंगी।"

सात वर्ष पूर्व तारा के मन में बार-बार आता था, आत्म-हत्या कर ले। उस समय उस ने अपनी प्रतारणा की थी—इस प्रकार कायरता से क्यों मर जाये! जब समय आ जायेगा, मरने से भी नहीं डरेगी! तारा अपनी गाडी में नाथ के बंगले की ओर जाते समय सोच रही थी—आज वह समय आ गया है। इस समय वह अपने आप को बिलकुल शान्त रखना चाहती थी।

तारा को देख कर नाथ को विस्मय हुआ। तारा के चेहरे पर बनी रहने वाली मुस्कान गायब थी। वह पीली-सफेद, मोम की मूर्ति, स्वप्न में चलती सी लग रही थी।

नाथ ने ड्राइंग रूम में नहीं, अपने दफ्तर में समीप कुर्सी पर बैठाया। तारा कुर्सी की बाँह पर कोहनी टिकाकर, मुट्ठी पर ठोड़ी रखे, आँखें झुकाये हुये थी।

नाथ ने तारा को दो पल सांस लेने का अवसर देकर, आर्द्र स्वर में पूछ लिया--"विवाह के योग्य न होने का क्या मतलब; बताओ तो सही?"

तारा ने आँखें झुकाये तुरन्त उत्तर दिया—"मैं रुग्ण शरीर हूं।" शब्द उस के होंठों पर ही रखे हुये थे।

"क्या मतलब ?…कैसा रोग ?" नाथ के माथे पर विस्मय के तेवर पड़ गये।

तारा ने उसी प्रकार निश्चल, आँखें झुकाये, निस्संकोच उत्तर दिया—"आप को बता चुकी हूं। आप से कभी झूठ नहीं बोली, कुछ नहीं छिपाया।"

"क्या बता चुकी हो ?" नाथ का विस्मय और बढ़ गया।

"आप को बताया था" तारा ने गले का अवरोध निगला, "बन्नी हाते के मकान में आग लगा दी जाने के बाद भागी थी तो" तारा ने फिर घूंट भरा, "गली में से एक गुण्डा मुझे उठा ले गया था।"

नाथ कुछ पल चिंता में चुप रह गया। फिर गहरा सांस लेकर उस ने पूछा—"यह कैसे सम्भव है, इतने वर्ष हो गये; कैसे ख्याल हुआ ?"

तारा वैसे ही मुट्ठी पर ठोढ़ी टिकाये, निश्चल आँखें झुकाये, सांस लेने के लिये रुक-रुक कर परन्तु दृढ़ निश्चय से कहती गयी—"मुझे कभी-कभी बहुत ही सूक्ष्म कष्ट अनुभव हुआ है।"

"ऐसा था तो तुम ने इलाज क्यों नहीं कराया ?"

"सन् ४८ में मर्सी के साथ रहती थी तो ठीक से समझती नहीं थी। उस से बात करने का यत्न किया था। उस ने अविश्वास से कह दिया था—यह संभव नही है। कुमारी को वैसा कष्ट नहीं हो सकता, भ्रम है। वे सब लोग मुझे कुमारी ही समझते रहे है। उन बातों की सफाई कैसे देती; इलाज के लिये इतनी लाँछना और अपमान कैसे उठाती ? उस ने रोग के विषय में कहा था, बरसों शरीर मे छिपा रह सकता है। कभी सहसा भड़क भी सकता है। सोच लिया था, जब वैसी स्थिति आयेगी तो लाँछना और अपमान उठाने के बजाय आत्म-हत्या कर लूंगी।"

तारा ने दृढ़ता से अपना कर्तव्य निबाह दिया था। उठ कर चली जाना चाहती थी परन्तु शरीर ने साथ नहीं दिया। जितना निश्चय और साहस संचय करके लायी थी, उस का उपयोग कर चुकी थी।

नाथ कई पल फर्श की ओर देखता चुप रहा। फिर उस ने तारा की ओर आँखें उठायी। बहुत स्पष्ट स्वर में बोला—"ठीक है, जो रोग कुमारी को नहीं हो सकता, उसका इलाज कुमारी नहीं करा सकती लेकिन मेरा अधिकार और कर्तव्य है कि अपनी पत्नी का इलाज करवाऊं। मिसेज नाथ को इलाज कराना पड़ेगा……"

तारा का शरीर काँप जाने से कोहनी कुर्सी की बाँह पर से फिसल गई।

नाथ ने उठ कर तारा की सहायता के लिये, उस के कंधों को सहारा

देना चाहा। तारा ने मुख आँचल में छिपा लिया था। नाथ के स्पर्श से वह बहुत जोर से कांप उठी।

नाथ ने समझा, तारा को असुविधा अनुभव हुई है। उस ने हाथ हटा लिये। पल भर सोचा और फिर वैसे ही निश्चय से कहा—"तुम न चाहो तो मेरे साथ कभी न रहना पर जब तक तुम्हारा इलाज नहीं हो जाता, तुम मिसेज नाथ हो। यहाँ इलाज कराने में संकोच है, तो बम्बई में व्यवस्था हो सकती है। वहाँ भी नहीं चाहती तो मैं तुम्हें इंगलैंड ले जा सकता हूं, वियाना ले जा सकता हूं। इस क्षण से ही तुम मिसेज नाथ हो। तुम मुझे अपना अभिभावक स्वीकार कर चुकी हो, यह मेरी आज्ञा है। तुम चाहो तो अगले इतवार या किसी भी दिन अदालत में या जहाँ-जैसे चाहो, विवाह की रस्म पूरी की जा सकती है।"

नाथ फिर कुर्सी पर बैठ गया। कई मिनट सोचता रहा। तारा चेहरे से आँचल नहीं हटा सकी।

नाथ ने पूछ लिया—"अब भी तुम्हें कुछ कहना है ?"

तारा कुर्सी से उठी। नाथ के पाँव के समीप गिर सी पड़ी। नाथ ने खड़े हो कर उसे उठाना चाहा। तारा नाथ के घुटनों पर सिर दबा कर लिपट गई और फफक-फफक कर रो पड़ी।

१८

पंडित गिरधारीलाल जी ने कई दिन सोच-विचार कर मार्च ५६ में, कनक की जटिल समस्या के सम्बन्ध में महेन्द्र नैयर को फिर एक पत्र लिखा था। पंडित जी ने पुरी के अंतिम पत्र की बात संक्षेप में बताकर, स्वीकार किया—बरखुर्दार, पुरी ने बहुत धैर्य से काम लिया है पर कनक का जालंधर लौटना अब संभव नहीं जान पड़ता। ऐसी अवस्था में पुरी अपनी कठिनाई सुलझाने के लिये दूसरा मार्ग बनाना चाहता है तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। कनक भी पुरी के मार्ग में बाधा नहीं बनी रहना चाहती। पुरी चाहता है तो ईश्वर इच्छा मान कर, हमें भी उन के विवाह को कानूनी तौर

पर समाप्त कर देना मंजूर करना ही-पड़ेगा । यह अनिवार्य है तो इसे यथा-सम्भव सद्भावना से कर डालना चाहिये । बेटा, इस कठिन काम को तुम्हारे सिवाय और कौन निवाह सकता है ।

विभाजन के बाद से सब प्रकार की कठिनाइयों में फंसे हुये अपने ससुर की मानसिक यातना की कल्पना करके नैयर को बहुत दुख हुआ । वह कांता से पुरी और कनक के दाम्पत्य के वैषम्य का ब्यौरा सुन चुका था । यह भी जानता था कि कांता ने लाचार होकर उस स्थिति का कुछ संकेत पंडित जी को भी दे दिया था । नैयर ने समझ लिया कि पंडित जी कनक को समझा सकने में असफल और असमर्थ हो गये हैं । कनक को उस की इच्छा के विरुद्ध बांध कर तो जालंधर भेज नहीं सकते । पुरी भी शायद खिन्न होकर तलाक की धमकी दे रहा है । पिता जी परेशान होकर झंझट को समाप्त कर देने के लिये कह रहे है पर ऐसी घटना उन के लिये कितना बड़ा मानसिक आघात होगी, इस का भी अनुमान था ।

नैयर ने पडित जी को सहानुभूतिपूर्ण उत्तर दिया—जो अनिवार्य है, उसे भाग्य-विधाता की इच्छा मान कर स्वीकार करना ही होगा परन्तु मैं एक बार सब पहलुओं पर विचार करके और पुरी से भी बात करके लिखूंगा । पुरी आजकल विधान-सभा के अधिवेशन के सिलसिले में चंडीगढ़ में है । उस के लौटने पर उस से बात करूंगा ।

नैयर के मन में कई प्रकार के अनुमान थे । वह समझता था——कनक तो शायद जालंधर नही लौटेगी परन्तु पुरी जैसी स्थिति में पहुंच गया था, तलाक और दूसरे विवाह से होने वाली बदनामी की उपेक्षा नही कर सकता था । वह पुरी की अन्ततः भीरू प्रकृति से भी परिचित था । कभी सोचता, शायद वह लड़की उर्मिला, पुरी के इतनी अनुकूल थी, वह उस की स्मृति में इतनी छायी हुई है कि पुरी उसे भूल नही सकता । शायद फिर उसे पाना चाहता है या यह कनक से पायी घृणा की प्रतिक्रिया है । ऐसी अवस्था में पुरी को समझाना कठिन ही होगा । फिर भी एक बार टोह लेने में क्या हानि है । नैयर कनक पर भी नाराज था । कनक ने अपनी आंखों सब कुछ देख कर भी विवाह के लिये आग्रह किया था । यह कितनी बड़ी मूर्खता थी ?···पुरी ने उस समय उर्मिला को छोड़ देना क्यों स्वीकार कर लिया ?···गलती तो दोनों की ही थी । अब उन्हें निवाहना ही चाहिये । समाज में बदनाम होकर दोनों कहां मुंह दिखायेंगे ! बदनामी केवल उन की ही नहीं, सम्बन्धियों का सिर भी तो नीचा होगा । कई बीमारियां असाध्य होती है उन्हें जीवन भर

सहना ही पडता है ।

पुरी जालन्धर लौट आया तो नैयर ने उसे फोन किया—"क्या बहुत व्यस्त रहते हो ? कभी तो मिलना चाहिये । दिल्ली से पिता जी का पत्र आया है । तुम्हें फुरसत हो तो म आज या जब कहो, सध्या समय मिलना चाहता हू ।"

पुरी ने दिल्ली से आये पत्र की बात सुन कर तुरन्त आत्मीय शिष्टता से उत्तर दिया—"जीजा जी, चार दिन पहले ही तो लौटा हू । बहुत काम जमा था । यह भी ख्याल था कि आप व्यस्त रहते है । मै ही आ जाऊंगा । आप के यहाँ कुछ खाने-पीने को मिलेगा । आप जानते है, यहाँ तो मेरे जैसे ही दो-चार मलंग पड़े रहते है । भूतो का वासा बना हुआ है ।"

नैयर के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से पुरी ने अपनी दयनीय विवशता निस्संकोच उस के सामने कह दी—"जीजा जी, मै ऐसी बात भला कैसे सोच सकता हू । उम्र चाहे उतनी ज्यादा नही परन्तु राजनीति और सार्वजनिक जीवन आदमी को बूढ़ा बना देते है । लोग छीकने और डकार लेने पर तो कानाफूसी करने लगते है । मेरा यह कम सामाजिक अपमान है कि मेरी पत्नी मेरे घर पर नही रहती ! आप से क्या पर्दा है, यदि कोई खामुखाह भी उस की बदनामी मे कुछ कह दे तो मेरा अपमान पहले है । ····उस का स्वभाव आप मुझ से ज्यादा जानते ह । वह असहिष्णु है । चलिये मै ही सह लूंगा । घर तो वास्तव मे उस का ही है । मै तो उसे भी कह चुका हूं कि मै किसी बात पर एतराज ही नही करूगा पर हम दोनो का सामाजिक सम्मान तो बना रहना चाहिये ।"

नैयर को अपना अनुमान ठीक लगा । वह मन ही मन कनक की विरक्ति के मुख्य कारण की बात सोच रहा था कि उस का क्या उपाय हो सकेगा ? वह उपाय हुये बिना कनक पुरी के साथ कैसे रह सकेगी ? नैयर और पुरी 'हमजुल्फ' पत्नियो के सम्बन्ध से भाइयो की तरह थे । रहस्य की बात भी निस्संकोच कर सकते थे । नैयर ने आँख चुरा कर अंग्रेजी मे कह डाला—"यौन रुचियों और प्रकृतियों की विषमता भी तो कभी-कभी असह्य हो जाती है ।"

सकेत पाकर पुरी का गोरा चेहरा अपमान की लज्जा से लाल हो गया । उस ने अग्रेजी मे ही प्रतिकार किया—"मै ठीक से नही समझा । हम लोगों के एक लडकी है । यदि उपाय न किये होते तो और भी बच्चे होते ।"

"नही-नही, मै दूसरी ही बात कह रहा हूं ।" नैयर ने आश्वासन दिया,

"मैं केवल अनुमान के आधार पर बातें कर रहा हूं। तुम जानते हो, ऐसी अत्यन्त निजी बातें कोई किसी को स्पष्ट नहीं बताता। कांता का अनुमान या कल्पना ही हो सकती है।" नैयर पुरी से आँखें बचाये तटस्थ बात कहने के ढंग से बोला, "यह तो मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि कुछ स्त्रियों के मन में, कारण चाहे कुछ भी हो, यौन विषयक आतंक बैठ जाता है। देखने में स्वस्थ लगने पर भी उन में वैसी प्रवृत्ति मर जाती है। यौन व्यापार उन के लिये असह्य हो जाता है।"

पुरी समझने के लिये मौन रहा।

"साधारण स्वस्थ पति को तो पत्नी का ऐसा असहयोग अन्याय ही जान पड़ेगा।" नैयर ने फिर कहा, "परन्तु पत्नी साधारण अवस्था में या स्वस्थ न हो, निर्बल या रोगी हो जाय तो वह क्या करे? मेरा अभिप्राय है, रोगी को तो रोगी समझ कर सहूलियत देनी ही पड़ती है।"

नैयर अपनी बात समाप्त कर उत्तर की प्रतीक्षा में था। कनक और पुरी में समझौता करा सकने के लिये उसे उलटी बात कहनी पड़ी थी।

पुरी ने बहुत गहरा सांस लिया—"जीजा जी, मैं तो सब कुछ आप के निर्णय पर छोड़ देने के लिये तैयार हूं। आप जो कहेंगे, इन्कार नहीं करूंगा। आप जानते हैं, मैंने उसे घर की नौकरानी या अपनी सम्पत्ति कभी नहीं समझा। आप क्या मेरे विचार नहीं जानते? सदा, सब कुछ ही उस के हाथ में रहने दिया है। उसे किसी भी यातना से बचाने के लिये मैं अपना दमन करने के लिये तैयार हूं। उस की इच्छा के विरुद्ध मुझे कोई आग्रह नहीं है। वह अपना घर संभाले। मुझे तो सब से पहले लड़की का ख्याल है।" पुरी की आँखें छलक आयीं।

"...आप जानते हैं, मेरा घर से बाहर रहना उतना असंगत नहीं होगा जितना उस का घर में न रहना है। मैंने यहाँ अभी तक किसी को नहीं बताया है कि उस ने नौकरी कर ली है। यही कह देता हूं कि जया की शिक्षा और पिता जी की बीमारी के कारण दिल्ली में है। इस समय हमारा घर दिल्ली में है। यह मकान तो जालन्धर आने-जाने पर ठहरने के लिये ही है। मैं तो अधिकांश में बाहर ही रहूंगा। '५७ के शुरू में ही चुनाव आ रहा है। मुझे फुर्सत ही कहाँ होगी? मैं सब बात आप ही पर छोड़ रहा हूं। जो सम्भव और उचित समझें कीजिये।"

नैयर इस से अधिक क्या आशा कर सकता था? उसे स्थिति के सुलझाव का मार्ग पा लेने का सन्तोष हुआ। मन में पुरी और कनक दोनों के लिये

करुणा अनुभव हुयी परन्तु दूसरा कोई मार्ग नहीं था।

पुरी स्वयं कई बार नैयर के यहाँ गया। रात के भोजन के बाद देर तक बैठ कर बात करता रहता। उस ने बताया—"भावी चुनाव में पंजाब के कांग्रेसी उम्मीदवारों का निर्णय सूद जी के ही हाथ में है। पार्लमेंटरी बोर्ड में वही सब कुछ है। अकाली दल से कांग्रेस का समझौता हो गया है। कम्युनिस्ट क्या कर सकते हैं? संघियों का प्रभाव केवल शहरों में, छोटे व्यापारी वर्ग पर ही है। उन के भी प्रभावशाली लोग सूद जी के साथ हैं। बड़े पूंजीपति और उद्योगपति लोग योजना से आशंकित तो ज़रूर हैं पर कांग्रेस के सिवा उन्हें भरोसा किस का है?...कांग्रेस या सूद जी, घास के पुतले को भी चुनाव में खड़ा कर दें तो हार नहीं सकता।...सवाल तो कांग्रेस की टिकट पाने का है।...कांग्रेस अपना आधार व्यापक करने के लिये कांग्रेस के बाहर के भी कुछ लोगों को अपना टिकट देगी...।"

नैयर ने समर्थन किया—"हाँ, ठीक है। कांग्रेस को अपना क्षेत्र व्यापक बनाना ही चाहिये।"

इस विषय में नैयर का विचार पुरी से भिन्न था पर पुरी से व्यर्थ विवाद से लाभ क्या था? सुबह ही अपने मकान में नीचे रहने वाले किरायेदारों को परेशानी प्रकट करते सुना था। गेहूं रुपये का दो सेर बिक रहा था। कन्ट्रोल की दुकानों से तीन सेर के भाव मिल सकता था परन्तु वहाँ से गेहूं मिलना ही सम्भव नहीं था। कन्ट्रोल की दुकान वाले सरकार से गेहूं लेकर ब्लैक में बेच रहे थे। उन का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। सूद जी ने सरकारी गेहूं पाने वाली प्रत्येक दुकान से, इलेक्शन-फण्ड में हज़ार रुपया ले लिया था। दुकानदारों को वह कमी भी तो पूरी करनी थी। कांग्रेस को हज़ार देकर पाँच हज़ार न कमाया तो बात क्या? नैयर का विश्वास था, सूद जी से लाभ उठाने वालों की धांधलियों और दुर्व्यवहार से साधारण जनता सूद जी से खिन्न हो गयी थी।

मई के अन्त में पंडित गिरधारीलाल जी को नैयर का पत्र मिला। नैयर ने उन्हें आश्वासन दिया था: पुरी ने क्षोभ और उत्तेजना से अपने पत्र में कुछ लिख दिया होगा। मैंने उस से अच्छी तरह बात की है। वह ऐसी स्थिति में बंध चुका है कि सामाजिक भय से कोई भी अनुत्तरदायित्वपूर्ण कदम नहीं उठा सकता। भविष्य में वह इस प्रकार से रहने के लिये तैयार है कि कनक कोई कठिनाई अनुभव न करे। उस ने तो जया के भविष्य और

सामाजिक स्थिति के विचार से यहाँ तक स्वीकार किया है कि यदि कनक अकेली ही रहना चाहे तो भी यहाँ मकान में ही रहे। नैयर ने अपनी और कांता की भी राय लिखी कि जैसी भी स्थिति हो कनक का अपने मकान में ही रहना उचित है।

पंडित जी दो दिन तक कभी माथा पकड़े और कभी आंगन में चहलकदमी करते, कनक के भविष्य के विषय में सोचते रहे। तीसरे दिन उन्हों ने कनक के घर लौटने पर कहा—"बेटा, जालन्धर से नैयर और कांता का खत आया है। तुम भी देख लेना। 'दीवाने गालिब' में रख दिया है।"

कनक जया के लिये कुछ खरबूजे लेती आयी थी। बेटी उस से चिपट गयी थी। उसे दो खरबूजे खिला कर इच्छा हुयी नहा ले। पसीने से लथपथ थी परन्तु पत्र के प्रति उत्सुकता के कारण पहले पत्र ही पढ़ा। पत्र पढ़ा तो सांस रोक कर रह गयी। कुछ पल निश्चल बैठी रही फिर नहाने चली गयी। भोजन के बात पंडित जी के साथ आंगन में टहल नहीं सकी। पलंग पर लेटी रही।

पंडित जी ने कनक को पत्र पढ़ते देखा था। दूसरे दिन कनक बाहर जा रही थी तो उस का आशय जानने के लिये पूछ लिया—"बेटा, कांता का खत देख लिया है? कहाँ रखा है? आज उसे जवाब दे दूं।"

कनक ने आँखें झुकाये उत्तर दे दिया—"जीजा जी, व्यर्थ झंझटों में पड़े है। मैं तो जालन्धर नहीं जाऊंगी।"

नैयर पंडित जी का दूसरा पत्र पाकर विस्मित रह गया। उसे बुरा भी लगा कि पंडित जी ने पहले पत्र में अपना अभिप्राय स्पष्ट क्यों नहीं लिखा था। वह पुरी से उस प्रकार बात करके विचित्र उलझन में पड़ गया था।

इस बार पंडित जी ने लिखा था: "....चिरंजीव पुरी का धैर्य प्रशंसनीय है परन्तु वह स्वयं स्वीकार करता है कि उन के सम्बन्ध में अब कोई तथ्य और अनुराग शेष नहीं है। जिस व्यवहार में तथ्य न हो वह छलना मात्र होगा। दूसरों को छला जा सकता है, अपने-आप को तो छला नहीं जा सकता। ऐसी अवस्था में परस्पर-संगति कैसे सह्य हो सकती है? चिरंजीव पुरी सामाजिक कर्तव्य या सम्मान के विचार से अपने भावों का दमन करके, स्थिति को निबाहने के लिये तैयार हैं परन्तु यह स्वाभाविक तो नहीं होगा। सम्बन्ध का जो शरीर निस्सत्व हो चुका है, यदि बना रहेगा तो सड़ कर दुर्गन्ध जरूर फैलायेगा। उस दुर्गन्ध को ढक कर, दबा कर रखने की कोशिश की जायेगी तो वह अस्वास्थ्यकर अवश्य होगी। चिरंजीव पुरी का पहला ही विचार

स्वाभाविक था। कन्नी भी यही चाहती है। मेरा अनुरोध है कि दोनों ने अगर पहले भूल की थी तो उन की भूल क्षमा करके, उन्हें निरन्तर मानसिक क्लेश से मुक्त करने का यत्न किया जाना चाहिये।''

'कन्नी भी यही चाहती है' शब्दों पर नैयर का ध्यान विशेष रूप से गया। उस ने खीझ कर कांता से कहा—''यह बात पिता जी ने पहले इस तरह लिख दी होती तो मैं पुरी को उल्टा क्यों समझाता, मैं चुप ही रह जाता। समझाना था तो कन्नी को ही समझाना चाहिये था। अब उसे समझायें भी क्या, पिता जी उस से सहमत है।''

नैयर साली और ससुर के प्रति अपनी खीझ को पत्नी पर उतार लेना चाहता था परन्तु कांता ने गृहणी की बुद्धि से दूसरी ही बात कही—''इस लड़की का दिमाग तो कभी ठीक रह ही नहीं सकता। पहले हम सब की नाक रगड़वा कर, अपनी जिद् से ऊटपटांग शादी कर ली, अब तलाक लेकर हमारे झंडे गड़वायेगी। पिताजी को भी जाने क्या हो रहा है। उन्हें तो अभागिन लड़की की ममता मारे डाल रही है। चाहते है, किसी तरह शांति पाये पर सन्तोष भाग्य में न हो तो कहां से पायेगी? क्या और शादी करेगी? हमें तो समधियों को भी मुंह दिखाना है। हम लोग मास्टर जी के सामने क्या मुंह दिखायेंगे? पिताजी का क्या है, उन्हें तो अब किसी और को जवाब देना नहीं है। केवल कन्नी का खयाल है। वह हमेशा ही मुंह जोड रही है। मैं कन्नी को लिखती हूं, यहा आये। मै उससे बात करूंगी। यह क्या तमाशा है!''

नैयर और क्या कहता, चुप रह गया। भवों पर उंगलिया फेरता हुआ कई पल विचार में डूबा रहा और फिर अंग्रेजी में बोला—''कंती, एक बात है। तुम चाहे जो कहो, बुडऊ का मैं बहुत आदर करता हूं। बात तो वे न्याय की ही कह रहे है। हमे तो खयाल है न कि हम लोगों को मुंह कैसे दिखायेंगे! उन्हें बेटी के वास्तविक दुख-सुख का खयाल है। वह जवानी मे ही क्रान्तिकारी नही थे, अब भी विचारों मे क्रान्तिकारी है। जब भी इंसान भय और स्वार्थ की चिंता न करके न्याय की बात सोचता है तो क्रान्ति की शक्ति का स्फुरण होता है। निस्वार्थ और निर्भय हुये बिना न्याय की बात सोची ही नहीं जा सकती...''

कांता को पति के मुख से पिता की सराहना तो अच्छी लगी परन्तु पिता की अव्यवहारिक बात का समर्थन कैसे कर सकती थी! उस ने झमक कर कहा—''तो तुम तलाक करवाओगे दोनों का? तुम्हें क्रान्ति करना मंजूर है?''

''खैर, मैं क्या करूंगा या क्या कर सकता हूं, यह मेरे साहस पर निर्भर

करेगा" नैयर ने भवों को उंगलियों से सहलाते हुये उत्तर दिया, "पर मन में तो सही बात सोच सकता हूं।"

जालंधर में कनक को उसे केवल बहिन के घर जाना था पर उसे जालंधर जाना ही पसंद नहीं था। वहाँ वह किसी को मुंह नहीं दिखाना चाहती थी। दिल्ली में वह काम में इतनी व्यस्त रहती थी कि काम छोड़ कर जाना भी कठिन था परन्तु जीजा और बहन ने बुलाया था। उन लोगों के विरोध करने से मुसीबत हो जाती। कनक ने इस विषय में गिल के सामने भी आशंका प्रकट की थी।

गिल ने कहा था—वकील आदमी है। वह जो चाहेगा, उसी के अनुसार युक्तियां बना लेगा। तलाक कानून तो टेढ़ा है। तलाक लेने-देने की जिम्मेवारी पुरी पर ही छोड़ना ठीक है। यह समझ कर कि पुरी तलाक देना चाहता था, गिल को संतोष था। अब चिंता का कारण हो गया था। कनक को फैसले के लिये जालंधर जाना ही था।

कनक जालंधर पहुंचने की तिथि की सूचना नहीं दे सकी थी। बहिन को लिख दिया था, उस रविवार या अगले रविवार पहुंचने का यत्न करेगी। जिस प्रकार की बातचीत के लिये जालंधर जा रही थी, बहिन के बहुत अनुरोध के बावजूद जया को साथ नहीं ले गयी थी। जया के चले जाने से पिता जी भी उदास हो जाते।

कनक जालंधर स्टेशन पर मेल से उतरी तो सूर्योदय हो चुका था। जून के प्रभात का सूर्य क्षितिज के ऊपर उठते ही आंखें चौंधिया रहा था। कनक किसी भी परिचित से आंख नहीं मिलाना चाहती थी। आंखें झुकाये स्टेशन से निकली और रिक्शा लेकर कचहरी की ओर चल दी। भाग्य की बात, रिक्शा चहारबाग के चौक मे जा रही थी तो सुना—"बीबी जी नमस्ते!"

नमस्ते चेला ने की थी। वह कनक को देख कर साइकिल से उतर गया था। चेला कनक को देख कर हर्ष से पुलक उठा। फिर साइकिल पर चढ़ कर रिक्शा के साथ चलने लगा और बताया—उसे पुरी ने मेहराजी के यहाँ चिट्ठी दे आने के लिये भेजा था। बबली को न लाने पर विस्मय प्रकट किया। कनक कुछ उत्तर न दे सकी।

कनक का रिक्शा नैयर के मकान के रास्ते पर मुड़ा तो चेला ने रिक्शा-वाले को चेतावनी दी—"किधर जा रहा है; माडल टाउन चलो!"

कनक को बोलना पड़ा—"अभी मैं बहनजी के यहाँ जा रही हूं।"

चेला ने समझ लिया—दिल्ली से बहन जी के लिये कुछ सामान लायी है। उन से मिल कर घर आयेंगी। वह पहले समाचार दे देने के लिये तेज़ी से माडल टाउन की ओर चल दिया।

कनक, जीजा और नानो-धीरू से दो बरस बाद मिली थी। बच्चों को खूब प्यार किया। जीजा-साली मे नोक-झोंक हुई। पिता जी और जया के सम्बन्ध मे समाचार दिये। अभी मिलन के उल्लास की बाते हो ही रही थी कि फोन की घंटी बज उठी। नानो दौड़ कर भीतर गयी। फोन सुन कर उस ने डैडी को पुकार लिया।

नैयर फोन पर बात करके लौटा तो उस ने चिंता से पूछा—"पुरी को कैसे मालूम हो गया कि तुम आयी हो?"

"मरा चेला चौक मे मिल गया था।"

"खूब! बात करने के लिये जो ढंग सोचा था, सब पलट गया। पुरी कह रहा है कि तुम आ रही थी तो हम ने उसे सूचना क्यों नही दी! मुझे कहना पड़ा, तुम ने आने की सूचना नही दी थी। अभी-अभी आकर बैठी है।"

"मुझे 'उन से' कोई बात नही करनी" कनक ने आंखे झुकाये कह दिया।

"लेकिन मै उसे कैसे कह देता कि तुम अपनी पत्नी से मिलने के लिये न आओ या तुम अपनी पत्नी से बात नही कर सकते। तुम लीगल इम्पली-केशन (कानूनी उलझाव) नही समझती। वह अभी आ रहा है।"

"आप मुझ से पूछ लेते!"

"क्या बात करती हो? मै कैसे कह देता कि तुम्हारी पत्नी से अनुमति ले लूं?"

समीप खड़ी कांता ने चिन्ता से कहा—"अच्छा तो यही होता कि पहले हम लोग बात कर लेते।"

"सोचा तो यही था" नैयर ने स्वीकार किया, "लेकिन मै उसे कैसे रोक दूं! मै कुछ और कहता तो वह समझता, मै अड़चन डाल रहा हूं।"

नैयर कनक की ओर घूम गया—'सुनो कन्नी, हमारा तुम से यही अनु-रोध है कि बात को बिगाड़ना नही।"

"बात बनाने-बिगाड़ने का सवाल क्या है? बात तो सब हो चुकी। पिता जी ने आप को लिख दिया है।"

नैयर ने प्यार से समझाया—"हाँ, पिता जी ने लिख दिया है पर पुरी डाइवोर्स नहीं चाहता। वह समझेगा, हम और पिता जी ही यह मन्त्र कर रहे है। तुम्हें स्वयं भी तो उसे कहना चाहिये। अपनी इच्छा का कारण बताना

चाहिये, उस की बात सुननी चाहिये । उसे बात कहने का तो हक है । उस की बात सुन कर ही तो अन्तिम निर्णय कर सकती हो । दो-चार मिनट में आता होगा । उस के पास गाड़ी है । कन्नी, हम दोनों का ही अनुरोध है, पुरी में जो भी न्यूनतायें हों, उस का तुम पर वास्तविक अनुराग है । जन्म के भविष्य का प्रश्न है ! तुम संयम से बात करना, उसे दुतकारना नहीं । तुम्हारा जो भी निश्चय हो, बात नम्रता से ही करना ।"

"कन्नी, हमें तो सुलह..." कांता भी कहना चाहती थी कि जीने पर कदमों की आहट सुनायी दी । कांता चुप रह गयी ।

पुरी बिना सूचना दिये ही ऊपर आ गया । खूब उजले बरफ की तरह खद्दर के कपड़े पहने था ।

"आओ ! आओ !" नैयर ने उल्लास से स्वागत किया, 'तुम तो इतने तेज हो कि हमें फोन करने का भी अवसर नहीं दिया । हम तो इस के अकस्मात आ जाने से विस्मय में ही थे कि तुम्हारा फोन आ गया ।"

"विस्मय तो हमें हुआ, इन्हें क्या विस्मय है ?" कांता ने मजाक किया, "इन्हें तो दिल में तार मिल गया होगा कि आ रही है और क्या मालूम, यह खबर वहाँ देकर यहाँ आ बैठी कि सवारी लेकर लेने आयें ।"

पुरी ने झूठ-मूठ की मुस्कान से होंठ हिला दिये ।

कनक गर्दन झुकाये निश्चल रही ।

"अब तो चाय लाओ ! कन्नी तुम्हारी प्रतीक्षा में ठहरने के लिये कह रही थी ।" नैयर ने पुरी के कन्धे पर थापी दी, "और सुनाओ !" उसे प्रसंग के अनुकूल कोई बात नहीं सूझ रही थी ।

पुरी ने रुमाल से माथे का पसीना पोंछ कर कहा—"सुबह-सुबह ही कितनी तीखी धूप है !"

नैयर ने पिछली रात की गर्मी की शिकायत की । छत पर पंखा रखे बिना नींद नहीं आ सकी ।

कांता नाश्ते पर, स्कूल के लिये लेट हो जाने की झुंझलाहट प्रकट करती हुई कमरे से चली गयी । नैयर दो-तीन मिनट और बैठा । मौसम की शिकायत करता रहा—"दो सप्ताह तो ऐसा ही हाल रहेगा । अभी तो मानसून बम्बई में पहुँची है । कम्युनिस्ट लोग कहेंगे कि अमरीका ने हाइड्रोजन बम के परीक्षण से मौसम खराब कर दिया है ।"

दीनू चाय ले आया । नैयर ने सुझाया—'तुम लोग मेरे कमरे में बैठो । यहाँ तो दीनू को सफाई भी करनी होगी । वहाँ सफाई हो चुकी है ।"

पुरी उठ खड़ा हुआ। कनक वैसे ही गर्दन झुकाये निश्चल बैठी रही। नैयर ने उस की पीठ पर थापी दी—"उठ न, छः महीने मायके क्या रह आयी है फिर नयी बहू की तरह नखरे करने लगी है।"

कनक को बाँह खींची जाने से उठ जाना पड़ा।

नैयर ने दोनों को साथ के कमरे में पहुंचा कर कहा—"तुम चाय पियो, मैं नहा लूं। मैं नहा कर पियूंगा।" कमरे का पंखा चालू करके बाहर निकलते हुये उस ने मुस्कराकर किवाड़ उड़का दिये, "कोई नहीं आयेगा!"

कमरे में एक पलंग था, एक कुर्सी और एक तिपाई। दीनू चाय तिपाई पर रख गया था। नैयर ने कनक को बाँह से पकडे लाकर पलंग पर बैठा दिया था।

पुरी कनक के समीप पलंग पर बैठ गया। इतने दिन बाद कनक को एकान्त में पाकर उस का रोम-रोम झनझना रहा था। भरे हुये गले से कहा, "मुझे आने की खबर भी नही दी।"

कनक सीने पर बाहें बांधे आँखें झुकाये बैठी थी। वह मौन और निश्चल रही।

"कन्नी!" पुरी ने प्यार से धीमे स्वर में पुकारा और बांह कनक के कंधे पर रख दी।

कनक पलंग से उठ कर कुर्सी पर बैठ गयी।

पुरी की सम्पूर्ण उत्तेजना कड़वाहट में बदल गयी। पल भर अपने आप को वश मे करके फिर बोला—"कन्नी, मेरे लिये तो तुम अब भी वही हो जो विवाह से पहले और विवाह के बाद थी। चलो, अपने घर चलो!"

कनक ने इन्कार मे सिर हिला दिया।

पुरी कुछ देर सोच कर बोला—'वह घर मेरा नही तुम्हारा है। तुम्हारे कहने से ही वह मकान लिया था। तुम्हें वहाँ ही रहना होगा। मेरा रहना पसन्द न हो तो मुझे निकाल देना। मैं प्रतिज्ञा करता हूं, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई बात नहीं होगी।"

कनक ने फिर भी इन्कार मे सिर हिला दिया।

"आखिर तुम मेरे साथ रहना क्यों नही चाहती?"

कनक बोली—"सम्भव नही है।"

"सम्भव क्यों नही है?"

"नही है!"

"मैं प्रतिज्ञा करता हूं, तुम्हें जिस बात से विरक्ति थी" पुरी ने कातर

स्वर में ही स्पष्ट बात करनी चाही, "वह नहीं होगी। मैं पति के अधिकार का तकाजा या उस तरह के सम्बन्ध की इच्छा कभी नहीं करूंगा। तुम अपने घर में रहो !"

कनक ने इन्कार कर दिया।

"मैं तुम्हारी सब बातें मानने को तैयार हूं तो फिर सम्भव क्यों नहीं ?"

"जब सम्बन्ध नहीं तो मतलब क्या ?"

"सम्बन्ध क्या केवल वही होता है ?"

कनक ने समझा, पुरी उसे धृष्टता से संकोच और झेंप में बांधने का यत्न कर रहा था। उत्तर दे दिया—"पति-पत्नी में विशेष वही सम्बन्ध होता है।"

"मैं तो समझता हूं और बहुत कुछ भी होता है।"

"और बहुत कुछ तो सभी के साथ हो सकता है।"

पुरी को मौन हो जाना पड़ा। कुछ सोच कर बोला—"तुम्हें क्या सचमुच मुझ से इतनी घृणा हो गयी है ?"

"इन बातों से लाभ ?" कनक आंखें झुकाये रही।

"मैं तुम्हारी सब बातें मान लेने के लिये तैयार हूं तो हम क्यों साथ नहीं रह सकते ?"

"हमारा कोई सम्बन्ध नहीं तो साथ रहने का कारण क्या ?"

"मेरा तुम से कोई सम्बन्ध नहीं है ?"

कनक ने इन्कार में सिर हिला दिया।

"मैं तुम्हारी बेटी का पिता हूं। मेरा उस पर अधिकार है।"

"कोई अधिकार नहीं है।"

"यह कैसे हो सकता है ?" पुरी ने प्रबल युक्ति पाकर कहा।

"वह मेरी बेटी है।"

"तुम्हारी बेटी है, पर मैं भी उस का पिता हूं। वह मेरी भी सन्तान है। सन्तान के लिये पिता का कर्तव्य और अधिकार होता है।"

"आप ने जब उर्मिला को निकाला था तो आप को सन्तान का सन्देह था। इस बात को याद करके रोये भी थे। उस सन्तान के प्रति अधिकार और कर्तव्य कहां गया था ?" कनक ने पुरी की ओर देख कर उत्तर मांगा।

पुरी झिझक कर बोला—"यदि मैं किसी समय परिस्थितियों की मजबूरी और अपनी कमजोरी के कारण कर्तव्य नहीं निबाह सका तो दोषी था परन्तु कर्तव्य निबाहने के लिये उत्सुक हूं तो अधिकार भी है।"

"अधिकार मां का है। मुझे अपनी बेटी के लिये संरक्षण मांगने की जरूरत

नहीं है। मैं नहीं चाहती।"

"कन्नी, ऐसे निवाह कैसे होगा ?"

"जैसे अब हो रहा है।"

"यह निवाह है या बरबादी ?"

"आप ने ही पिता जी को पत्र लिखा था, ऐसे निवाह नहीं हो सकता, डाइवोर्स दे देंगे। मैं भी वही चाहती हूं। पिता जी भी वही उचित समझते हैं।"

"मैंने तो यह शब्द कभी नहीं लिखे। मैं तो डाइवोर्स की कल्पना भी नहीं कर सकता।"

"मैं तो वही चाहती हूं।"

"कन्नी तुम्हें क्या हो गया है ?" पुरी का कंठ भर आया, "हम लोग दुनिया को क्या मुंह दिखायेंगे ?"

"छलना से फायदा क्या है ? तथ्य तो तथ्य है। दुनिया में डोंडी पीटने की ज़रूरत भी नहीं है ?"

पुरी मौन रहा।

कनक भी गर्दन झुकाये, आँखें फर्श पर लगाये थी। पुरी के आँसुओं का घूंट भरने की गटक सुनायी दी। मन में आया, क्या व्यर्थ नाटक है। उस ने मुंह फेर कर पूछ लिया—"मैं जाऊं ?"

पुरी ने बहुत गहरा निश्वास लिया—"तुम चाहे जैसे या जहाँ रहो, हमारा सम्बन्ध अटूट है। डाइवोर्स नहीं होगा।"

'मुझे चाहिये।"

"आखिर उस नाटक की ज़रूरत क्या है ?"

"नाटक तो झूठा बन्धन है। मैं मरे सांप की केंचुल से अपने को क्यों बाँधे रहूं।"

पुरी का स्वर क्रोध से कड़ा हो गया—"स्वतंत्रता चाहिये ? दूसरा विवाह करना चाहती हो ?"

"जो मेरी इच्छा होगी।"

"किस से विवाह होगा ?"

"आप को मतलब नहीं !"

"गिल से ?"

"आप को मतलब नहीं !"

"मुझे मतलब है। तुम मेरी पत्नी हो !"

"आप की पत्नी नहीं हूं। आप ने स्वयं पति का अधिकार छोड़ दिया है।'

"वह बात मैंने तुम्हारे प्रति सहृदयता के कारण कही थी लेकिन तुम ने मुझे धोखा दिया है। मेरे साथ छल किया है।"

"मैंने छल कभी नहीं किया।" कनक ने दृढ़ता से कहा, "जिस दिन असह्य हो गया, स्पष्ट कह दिया। न छल किया है, न करने के लिये तैयार हूं।"

"डाइवोर्स नहीं दूंगा। सम्बन्ध का बन्धन तोड़ कर उच्छृङ्खल कभी नहीं होने दूंगा!"

"वैर पूरा करने के लिये, मेरी ज़िन्दगी बर्बाद करने के लिये ही सम्बन्ध रखेंगे?"

"मैंने कभी किसी के साथ धोखा और क्रूरता नहीं की। तुम्हारे कारण उर्मिला को जाना पड़ा। अब यह गुल खिला रही हो?"

"आप ने जो किया है, जानती हूं; उर्मिला के साथ, अपने माता-पिता के साथ, तारा के साथ। किस के साथ छल और क्रूरता नहीं की।"

"तारा के साथ मैंने क्रूरता की है?"

"मैं सब जानती हूं।"

"जानती हो तो ठीक है।" पुरी ने क्रोध में दांत पीस लिये।

पुरी ने कुछ सोच कर पूछा—"तुम ने यहाँ से जाते समय तो डाइवोर्स की बात नहीं की थी? मैं उसी प्रकार प्रबन्ध करता!"

"तब मेरे मन में यह ख्याल नहीं था।"

"यह शिक्षा दिल्ली में मिली है?"

"मुझे किसी ने शिक्षा नही दी।"

"जिसने शीलो को दी थी उसी ने तुम्हें भी दी होगी!"

"यह ग़लत बात है। झूठा आरोप है।"

पुरी कमरे से निकलने लगा तो कनक ने फिर कह दिया—'आप डाइवोर्स नहीं देंगे तो मैं दूंगी।"

पुरी कमरे से बाहर निकल कर सीधा जीने की ओर जा रहा सा। नैयर ने उसे बुला लिया और अपने दफ्तर में ले गया। उस ने पुरी के कंधे पर हाथ रखकर पूछा—"क्या बात हुई? उसे कुछ समझ में आया?"

पुरी का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। कुछ देर बोल न सका। फिर उस ने विस्मय प्रकट किया—"आप मुझे कह रहे थे कि डाइवोर्स की बात न सोचूं। वह तो खुद डाइवोर्स के लिये जिद्द कर रही है। कहती है, पिता जी भी यही चाहते हैं।"

"यह बिल्कुल अभी इधर की बात होगी। इसने जिद्द की होगी तो पिता

जी मान गये होंगे। यह बिल्कुल अव्यवहारिक बात है। तुम अपना इरादा बताओ ! उस के कहने से तो सब कुछ नहीं होगा। तुम्हें तो अभी धैर्य है ?"

पुरी ने गहरा सांस लिया –"धैर्य क्या है। आप खुद कह रहे हैं वह बात अव्यवहारिक है।"

"तो ठीक है" नैयर ने आश्वासन दिया, "उस के चाहने से ही नहीं होगा। उसे दिल्ली में ही रहने दो।"

नैयर और कांता यथा-संभव कनक को तलाक के विचार से रोकना चाहते थे परन्तु वह जिद्द पकड़े थी। लम्बी बहस में फिर वही बात आगई—"तुम सब परेशानियों से दूर दिल्ली में रहती हो। नाम-मात्र के सम्बन्ध से तुम्हें क्या संकट है ? बंधन को तोड़ देने की क्या आवश्यकता है ? तुम्हारी स्वतंत्रता में क्या कमी है ?"

"व्यर्थ के सम्बन्ध से लाभ क्या ?" कनक ने फिर भी जिद्द की।

"तुम कहती हो यह सम्बन्ध व्यर्थ हो चुका है" नैयर ने तर्क किया, "उस का तुम पर अब कोई प्रभाव नहीं है तो तुम्हें क्या बाधा है ?"

"बाधा क्यों नहीं है" कनक ने अपने नाखूनों की ओर देखते हुये उत्तर दिया, "बाधा ही तो है। कम से कम कानूनी बन्धन तो है।"

"क्यों, दूसरे विवाह का विचार है ?" नैयर ने पूछ लिया।

"प्रश्न व्यर्थ बन्धन का है।"

"फिर विवाह के लिये स्वतन्त्रता चाहिये ?"

"हो सकता है।" कनक ने सिर झुकाये कह दिया।

कांता को क्रोध आ गया—"मर जा तू, तभी पुरी असह्य हो गया है ! क्या असली बात यही है ?"

कनक को गर्दन उठानी पड़ी––"यह बिल्कुल गलत है। ऐसे किसी विचार से जालंधर से नहीं गयी थी। पिछली बार आप के दिल्ली से लौटने के बाद जब पिता जी ने कहा कि इस निस्सार सम्बन्ध को बनाये रखने से कोई लाभ नहीं, तब तक इस विषय की कल्पना भी नहीं की थी।"

"असंभव लगता था इसलिये कल्पना नहीं की होगी। मन में इच्छा तो रही होगी।" नैयर ने कठोरता से कहा।

"बिल्कुल गलत। जब तक उन्हें पति माना, ऐसी इच्छा की कल्पना भी नहीं की।" कनक ने गर्दन उठा कर दृढ़ता से विरोध किया।

"सुनो, तुम्हारा ब्याह अपनी मर्जी से हुआ था। लड़की के कितने ब्याह

होते हैं ?" कांता ने पूछा ।

"आप लोग ही कहते थे, वह मेरी भूल थी । एक भूल हो गयी तो क्या जीवन का हक नहीं रहा !"

"हक हो तो भी तुम्हें अपनी और अपने सम्बन्धियों की स्थिति का, लड़की के भविष्य का भी ख्याल करना चाहिये ।" नैयर ने नरमी से कहा ।

कनक उत्तेजित हो गयी थी । उस ने कह दिया—"आप लोग अपनी झेंप या ख्याली बदनामी की चिन्ता में मुझे बलि दे देना चाहते है तो समझ लीजिये, आप के लिये मैं मर गयी । आप लोगों के मुंह नहीं लगूंगी । मेरी लड़की किसी पर बोझ नहीं बनेगी ।"

कनक आंचल में मुंह लपेट कर दूसरे कमरे में चली गयी और पलंग पर पड़ गयी ।

नैयर ने कुछ देर बाद कनक को बुला लिया और समझाने लगा—"कन्नी, मैं तुम्हारे भाव समझता हूं । मन में तुम्हारे साहस की सराहना भी करता हूं कि तुम व्यर्थ आडम्बर और छलना का विरोध कर रही हो परन्तु इस काम में तो चाहने पर भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकूंगा। तलाक का एक कानून है। कानूनन तलाक तुम तभी दे सकती हो जब यह साबित कर सको कि या तो पति नपुंसक है या वह तुम्हें मारता-पीटता रहा है या उस का किसी अन्य स्त्री से अवैध सम्बन्ध है या उसे ऐसा कोई असाध्य रोग है जिस से तुम्हारे स्वास्थ्य की आशंका हो या वह तुम्हें छोड़ कर चला गया हो या उस ने तुम्हें घर से निकाल दिया हो । इन में से कोई भी बात तुम साबित नहीं कर सकती…।"

"पुरी के पास अलबत्ता और भी कारण हो सकते हैं । उदाहरणत:—तुम्हारा उस के घर में रहने से इनकार करना । उस ने तो तुम्हें घर में रखने से इनकार नहीं किया । तुम उस के साथ रहना सम्भव नहीं समझती, इस बात का कानून की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है। पुरी की जिस अजीब प्रकृति की बात कांता ने मुझे बतायी है, वह जरूर असह्य होगी परन्तु उस के लिये अदालत में गवाही के रूप में कोई प्रमाण पेश नहीं किया जा सकता । अदालत तथ्यों को गवाही के प्रमाण से ही मान सकती है। तलाक की इच्छा करना व्यर्थ है ।"

कनक जालन्धर से लौट रही थी तो दिमाग बहुत परेशान था—गिल को क्या बतायेगी ?

× × ×

१६

मंत्री-पद स्वीकार कर लेने के बाद सूद जी के रहन-सहन का पुराना ढंग शनै.-शनै: बदल गया था। मडी बाज़ार मे, छोटे से मकान की दूसरी मजिल पर, एक कमरे मे निर्वाह मम्भव नही रहा था। उतनी कम जगह मे मत्रियो के लिये नियुक्त शरीर-रक्षक और सन्तरी कहाँ खड़े हो सकते थे ? दूसरे मत्री और बड़े-बडे सरकारी अफसर मंत्रणा के लिये आते तो कहाँ बैठते ? उन के लिये उचित फर्नीचर भी चाहिये था। मत्री से परामर्श के लिये आने वाले लोगो को भी प्रतीक्षा के लिये स्थान चाहिये था। ऐमे लोगों की संख्या इतनी थी कि अंतरग व्यक्तियो के अतिरिक्त लोग दो-दो, तीन-तीन दिन प्रतीक्षा और यत्न किये बिना, उन तक पहुच नही पाते थे। नियमानुसार उन्हें सरकारी मकान मिला था और सरकारी झण्डा लगी मोटर यातायात के लिये थी। पाँच-सात मेहमान बने ही रहते थे।

आरम्भ मे पजाब सरकार के मत्रियो के निवास-स्थान शिमला मे थे। राजधानी चंडीगढ मे स्थानातरित हो जाने पर सूद जी को अधिकतर वहाँ ही रहना पडता था। बडे और भव्य मकान मे रहने पर भी सूद जी के व्यक्तिगत अभ्यासों मे विशेष परिवर्तन नही आया था। अब अपने कपडे स्वयं धो लेने के लिये समय नही था परन्तु कपडे अब भी वैसे ही मोटे, खद्दर का कुर्ता-पाजामा या कुर्ता-धोती ही पहनते थे। मशीन फिरी हुयी खोपड़ी पर चिपकी हुयी गांधी टोपी और पांव मे चप्पल रहती थी।

सूद जी सुबह-शाम या रविवार के दिन घर पर मिलने आने वालो से जाघिया-बनियान या केवल जाघिया पहने ही मिल लेते थे। ऐसी ही वेश-भूपा मे वे ड्राइंग रूम मे, खूब बडे सोफा पर घुटने समेटे लुढके रहते थे। सिर पर हाथ फेरते हुये या एगजीमा खुजाते हुये अतिथियो से बातें करते रहते सैक्रेटरियो और कमिश्नरो को धमकाते रहते। अपने आप को विशिष्ट श्रेणी का जीव समझने वाले सरकारी अफसरो को, सादगी और दरिद्र नारायण के प्रतिनिधि को सिर झुकाना पडता।

सूद जी ने अपने लिये कोई मकान, बंगला या हवेली नही बनवायी थी। बैंक मे भी उन के हिसाब मे चर्चा करने लायक रुपया नही था। उन्हो ने व्यक्तिगत आर्थिक लाभ की चिन्ता कभी नहीं की थी परन्तु उन के प्रति भक्ति दिखाने और निबाहने वाले निहाल हो गये थे और अभी दुगने-तिगुने हो सकने

की आशा और विश्वास में थे। सूद जी की कृपा पाये लोगों को कानून और सरकारी अनुशासन का भी भय न था। राज्य के ही नहीं, देश भर के बड़े से बड़े व्यवसायी और उद्योगपति उन की शक्ति से परिचित थे और उन के प्रति आदर से उन के मित्र बन गये थे। सूद जी के संकेत पर वे किसी को हज़ार-दो हज़ार रुपया मासिक पर घर बैठे रहने की नौकरी दे सकते थे।

सूद जी ने अपने लिये धन संचय नहीं किया था परन्तु वे राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में धन की शक्ति से बेखबर नहीं थे। वे कितनी ही संस्थाओं के सूत्रधार थे। सूद जी के प्रभाव से इन संस्थाओं के कोषों में दो-अढ़ाई करोड़ रुपये से अधिक जमा था। उस धन के कर्ता-धर्ता सूद जी ही थे। इन संस्थाओं, स्कूलों, हस्पतालों, समितियों में नौकरी पाये लोग, अपने आप को सूद जी के ही 'आदमी' समझते थे। अन्यथा वे बिना किसी औपचारिकता के बरखास्त हो जाते। उन के संकेत या उन की सिफारिश पर बड़े-बड़े उद्योगों और व्यवसायों में नौकरी पाये लोगों की भी संख्या बहुत बड़ी थी। वे सब लोग अपने मालिकों की अपेक्षा सूद जी के ही अनुगत थे।

सूदजी के वेश और शारीरिक व्यवहार की ही तरह उन का स्वभाव और बर्ताव भी मूलतः पहले जैसा ही था। वही स्पष्टवादिता, अपने पक्ष की दृढ़ता और विचारों की एकाग्रता। स्थिति के दूसरे पक्ष के लिए उन की कल्पना में स्थान ही नहीं था। उन की शक्ति असीम रूप से बढ़ जाने के कारण उन के व्यवहार की तीव्रता और उस का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। उन की स्पष्टवादिता, हाकिमाना रूखापन और अपने पक्ष की दृढ़ता, विरोधी पक्ष को समाप्त कर देने की प्रवृत्ति बन गयी थी। विचारों की एकाग्रता ऐसी असहिष्णुता बन गयी थी कि केवल अपनी ही बात की प्रतिध्वनि सुनना चाहते थे। अफसरों की दृष्टि मे मुख्यमंत्री के आदेश की अपेक्षा सूद जी के सुझाव का ही मूल्य अधिक था। वे 'चीफ मिनिस्टर' (मुख्यमंत्री) नहीं थे परन्तु उन का उल्लेख मिनिस्टर-इन-चीफ (नायक मन्त्री) के रूप मे किया जाता था। सभी जानते थे कि वे जब चाहें मुख्यमंत्री बन सकते थे।

जैसे किसी वस्तु या पदार्थ के बढ़ने पर उस की छाया भी बढती है वैसे ही किसी स्थिति या अवस्था के बल पकड़ लेने पर उस की प्रतिक्रिया भी अवश्य होती है। सूदजी के प्रति लोगों की श्रद्धा-भक्ति, निष्पक्षता या बेलाग व्यवहार के कारण नहीं, उन से पायी कृपाओं से ही बढ़ी थी। उन के प्रबल समर्थकों की संख्या बहुत बढ गयी थी परन्तु प्रत्येक कृपा के अनेक इच्छुक थे। कृपा पाने में असफल रह जाने वाले खिन्न होकर उन के पक्षपात के विरोधी

बन गये थे। सूदजी सदा समर्थकों से घिरे रहने के कारण इस प्रतिक्रिया से अपरिचित ही थे।

सूदजी कृपालु होने पर निहाल कर दे सकते थे तो अप्रसन्न हो जाने पर विरोधी को धूल चटा देना या उसे निर्मूल कर देना भी आवश्यक समझते थे। अपने से मतभेद को वे अपनी सत्ता के प्रति शंका और विरोध समझते थे। योजना-आयोग के परामर्शदाता डाक्टर सालिस और डाक्टर प्राणनाथ ने प्रधान मंत्री के समर्थन के भरोसे सूदजी के सुझावों की अवज्ञा की थी। उन्होंने दूसरी पंचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास का प्रधान अंश, सूदजी के पक्ष की आपत्ति के बावजूद, राष्ट्रीय नियंत्रण में रख लिया था। योजना सन् ५६ के आरम्भ से लागू भी हो गयी थी। बड़े-बड़े उद्योगपति और व्यवसायी, कांग्रेस के समाजवादी ढंग की प्रवृत्ति रखने वाले पक्ष से आशंका अनुभव करके, पहले की अपेक्षा भी सूदजी के पक्ष और सूदजी की कृपा के अधिक आकांक्षी बन गये थे परन्तु सूदजी ने डाक्टर सालिस और डाक्टर नाथ को क्षमा नहीं कर दिया था।

गत आठ वर्षो में सूदजी के अनेक विरोधी और डाक्टर राधेलाल के समर्थक सूदजी की शक्ति देख, उन की छत्र-छाया में आ गये थे। डाक्टर प्रभुदयाल भी कांग्रेस में डाक्टर राधेलाल का दल छोड़कर सूदजी के पक्ष में हो गया था। विभाजन के बाद डाक्टर साहब की कृपा से डाक्टर प्रभुदयाल को फीरोजपुर में असिस्टेंट सर्जन का स्थान मिल गया था। फिर उन की अमलदारी में उसे मैडिकल कालेज में असिस्टेंट प्रोफेसर की जगह मिल गयी थी। डाक्टर प्रभुदयाल सन् ५० से ही सूदजी का अनुगत बन गया था। सन् ५५ मे वह अवकाश लेकर इंगलैंड चला गया था और स्पेशल कोर्स छः मास में कर आया था। डाक्टर प्रभुदयाल की नज़र नये मैडिकल कालेज मे 'प्रोफेसर आफ मैडिसन' के पद पर थी। उस पद के लिये उस की अपेक्षा पुराने कई एम० डी० भी उम्मीदवार थे परन्तु लोग जानते थे, सूदजी की 'कृपा सों पगु गिरि लंघे, मूक होंय वाचाल'।

सूदजी के शरीर में, बैठने के स्थान पर एग्ज़िमा (पुरानी खाज) हो गया था। खाज उठने पर हाथ विवश हो जाते थे। बरसात में यह कष्ट बढ़ जाता था। मैडिकल कालेज के 'त्वचा विशेषज्ञ' ने सूदजी के रक्त, मल-मूत्र और खाज की सफ़ेदी का विश्लेषण करके और बहुत सी दवाइयों का प्रयोग करके राय दी थी कि खाज फिजिकल एलर्जी (स्थानीय रगड़) से

उत्पन्न होती है। फुंगस की जड़ें एपीडर्मिस (भीतरी त्वचा) में पहुंच चुकी है। खाज का कारण रगड़ रहेगी तो खाज भी होगी। यथा-संभव कुर्सी पर न बैठें परन्तु डाक्टर प्रभुदयाल सूदजी के इस इलाज के लिये महीने में दो बार अपने खर्च पर चंडीगढ़ पहुंचता था। नयीसे नयी दवाइयां और 'अल्ट्रा वायोलेट' लेम्प साथ ले आता था। स्वयं दवाई मलता और बिजली की किरणें उस स्थान पर छोड़ता था। खाज न होने पर भी प्रीकाशन (सावधानी) के लिये प्राफीलेक्टिक ट्रीटमेंट (पूर्वोपचार) कर जाता था। सूदजी को फुरसत न होती तो डाक्टर प्रभुदयाल उन की सुविधा की प्रतीक्षा में घंटों बैठा राजनैतिक चर्चा सुनता और करता रहता।

अगस्त के पहले रविवार डाक्टर प्रभुदयाल सूदजी के इलाज के लिये चंडीगढ़ आया था। सूद जी ड्राइंग-रूम में सोफा पर लुढ़के हुये एक बहुत आवश्यक फाइल देख रहे थे। प्रभुदयाल प्रतीक्षा में समीप बैठा बीच में गोल तिपाई पर पड़े अखबारों और पत्रिकाओं के पन्ने पलटता जा रहा था।

सूदजी ने फाइल देख-कर एक ओर पटक दी। वे चश्मा उतार रहे थे। डाक्टर प्रभुदयाल ने एक सचित्र पत्रिका का खुला पृष्ठ उन की ओर बढ़ा दिया—"भाप्पा जी, यह चमत्कार देखा आपने ?"

"क्या ?"

"मर चुकी लड़की ज़िन्दा होकर, सूचना विभाग में अंडर सैक्रेटरी बन गई। योजना-आयोग के सैक्रेटरी डाक्टर प्राणनाथ ने उस से व्याह कर लिया है।"

"क्या, कब ?" सूद जी ने पूछ लिया।

प्रभुदयाल ने पत्रिका का पृष्ठ सूदजी के सामने करके तर्जनी से चित्र दिखा दिया।

सूदजी चित्र पर नजर डाल ही रहे थे कि प्रभुदयाल बोल उठा—"बिलकुल चमत्कार है। तारा पुरी तो जलकर मर गयी थी। भाप्पाजी, अपने जयदेव पुरी की ही तो बहिन है।"

"जल कर मर गयी थी तो क्यानाम यह उस के भूत का फोटो है ?" सूद जी ने पत्रिका एक ओर फेंक दी।

"नहीं भाप्पाजी" प्रभुदयाल ने आग्रह किया, "अजीब तमाशा है। लड़की को मैं नहीं पहचानूंगा। बिल्कुल तारा है, जो कहिये शर्त लगाता हूं। भोला पांधे की गली में हमारे मकान के सामने ही तो पुरी रहता था। तारा मेरी पत्नी की बहुत सहेली थी। उस के माथे पर चोट लगी थी तो मैंने ही ड्रेसिंग किया था। इस की तो पार्टिशन से पहले, मुझे तारीख याद है, २९ जुलाई ४७ को

शादी हुई थी। आप के सोमराज साहनी से ही व्याह हुआ था ! वही सोमराज जालंधर वाला। आपने ही तो मेहरबानी करके उसे सैक्रेटेरियट के बाग की चारदिवारी का ठेका दिलाया है। हिन्दू मैरिज हुई थी। आप पुरी से पूछ लीजिये !"

"हूं !" सूदजी ने फिर पत्रिका उठा ली, "तो क्या नाम प्राणनाथ से विवाह कैसे हो गया ?" उन्हों ने चित्र को बहुत ध्यान से देखा। चित्र के नीचे छपी पंक्ति को पढ़ने के लिये आंख के समीप किया और विस्मय से बोल उठे, "व्याह नयाहिंद प्रेस दिल्ली में हुआ है ? क्यानाम नयाहिंद प्रेस तो पंडित गिरधारी लाल का है। यह तो पुरी की ससुराल है ?····यह क्या तमाशा है ? सोमराज़ तो चंगा-भला है"

सूदजी खाज का इलाज कराने के लिये पट्ट लेट गये थे। प्रभुदयाल उन की खाज पर पालिश करते समय और उस पर बिजली का प्रकाश छोड़ते हुये रहस्यमय घटना का अनुमान प्रकट करता गया।

तारा के व्याह से पहले अफवाह थी कि वह व्याह नही करना चाहती। वही सोमराज है न, प्रोफेसर दीनमुहम्मद के केस वाला। मेरा तो खयाल है, सोमराज के घर पर आग लगी है तो तारा जली नहीं, भाग गयी होगी। पुरी बेचारे को कुछ पता नही है। वह और सोमराज तो इसी खयाल में हैं कि तारा जलकर मर गयी थी। तारा ने अपने घर कुछ पता ही नहीं दिया। लड़की बड़ी ब्रिलियंट थी। जाने कहां रही ? भाप्पाजी, ग़लती की तो कोई बात ही नहीं है। तस्वीर सामने है····हंड्रेडवन परसेंट तारा है।······"

सूदजी इलाज कराकर उठे तो चपरासी को बुला कर आदेश दिया—"बारी साहब को बुलाओ !" पर्सनल असिस्टेंट के आने पर सूदजी ने आदेश दिया, "जालंधर में जयदेव पुरी के मकान माडल हाउस में फोन मिलाना।"

पुरी चंडीगढ़ से सूद जी का फोन पाकर पहले तो कुछ समझा नहीं। सूद जी ने उसे अगस्त के पहले सप्ताह का 'दिल्ली सचित्र-साप्ताहिक' भी देख लेने के लिये कह दिया था।

पुरी ने दोपहर तक पत्र मंगवा लिया था। पत्र देखा तो उस का सिर घूम गया। पति जिन्दा रहते तारा का व्याह, वह भी नयाहिंद प्रेस में ! मेरी छाती पर मूंग दल कर दिखाई गई है।····चित्र छपवाना भी जरूरी था।····खूब षड़यंत्र बांधा है। कनक भी यही करना चाहती है, मैं डाइवोर्स दूं या न दूं ! यह खबर मुझे ही चुनौती है।

पुरी क्रोध में तारा और कनक के कलेजे निकाल कर चबा जाने के लिये

तैयार था परन्तु क्या करता, चोट अपने ऊपर ही पड़ती थी।""कहाँ मुंह दिखाता।

सूदजी के आदेश की अवज्ञा पुरी के लिये संभव नहीं थी। सूदजी ने पुरी और सोमराज को आश्वासन दे दिया था कि सब कार्रवाई सरकारी रहस्य के ढंग से बिल्कुल गुप्त, केवल विभाग द्वारा ही की जायेगी। डाक्टर प्राणनाथ को तो होश आ जायेगा।

पुरी को डाक्टर नाथ के प्रति भी कम क्रोध और घृणा नहीं थी""यही है उस की संस्कृति और सज्जनता! हमारे ही, अपने गुरु के घर में ही आग लगाने का संतोष चाहिये था!""उसे छोटी बहन कहता था।""ट्यूशन के बहाने घर बुलाने का जाल रचा था।

डाक्टर नाथ और तारा तो सन ५५ के नवम्बर में ही विवाह कर लेना चाहते थे परन्तु अनेक व्यवधान पड़ते रहे। नवम्बर के आरम्भ में डाक्टर नाथ अर्थ मंत्री के साथ सलाहकार के रूप में इंगलैंड चला गया। वहाँ से लौटा तो विकास मंत्री के साथ परामर्शदाता के रूप में अमरीका जाना पड़ा। जुलाई ५६ से पहले अवसर नहीं बन सका। तारा को सिविल मैरेज का रूखा-रूखा, केवल कानूनी मान्यता पा लेने का ढंग पसन्द नहीं था और इस आयु में विवाह के समय किसी भी प्रकार के प्रदर्शन या आडम्बर से तारा और नाथ दोनों को ही झिझक थी।

डाक्टर नाथ का प्रस्ताव था कि रीति पूरी करने के लिये किसी पंडित या ग्रंथी को अपने बंगले पर बुला ले। तारा को प्रथा सहित विवाह होने का संतोष हो जाये। यह निश्चय था कि निमंत्रितों की संख्या पच्चीस से अधिक नहीं होगी। इस संख्या में डाक्टर सालिम, डाक्टर श्यामा, प्रभा सक्सेना, चड्ढा-मर्सी, कनक-गिल, नरोत्तम-कंचन रतन-शीलो माथुर सम्मिलित थे।

कनक और मर्सी प्रतियोगिता में कर्ता-धर्ता बनी हुई थीं। दोनों को ही यह स्वीकार नहीं था कि विवाह डाक्टर के बंगले पर हो। कनक ने अंतिम निश्चय दे दिया—हमारी लड़की ब्याह कराने नहीं जायेगी। डाक्टर साहब उसे कायदे से ब्याह करके ही ले जायेंगे।

ब्याह नयाहिन्द प्रेस में हुआ। कन्यादान पंडित गिरधारीलाल जी ने किया। मर्सी ने डाक्टर के बंगले पर ननद बन कर तारा का स्वागत किया।

डाक्टर नाथ और तारा ने तीन मास की छुट्टी का प्रबन्ध कर लिया था। विवाह के तीन-चार दिन बाद ही वे दोनों स्विटजरलैंड चले गये थे।

तारा रोम-रोम से अनुभव कर रही थी कि उस ने पृथ्वी पर स्वर्ग पा लिया था। वह अपनी प्रसन्नता और संतोष मे कोई भी न्यूनता नही रहने देना चाहती थी।

तारा को छुट्टी से लौटे पूरा सप्ताह ही हुआ था कि दोपहर बाद उसे गृह-विभाग के सैक्रेटरी के चपरासी ने स्वयं कमरे मे आकर एक मोहरबंद लिफाफा देकर हस्ताक्षर ले लिये। लिफाफे पर तारा के सरकारी ओहदे के अतिरिक्त उस का नाम भी था। पत्र पर 'अत्यन्त गुप्त' शब्द छपे हुये थे। तारा को कुछ विस्मय हुआ। वह अपने स्टैनो को कुछ पत्र और उत्तर लिखा रही थी। लिफाफा एक ओर रख कर पत्र समाप्त कर दिये।

अत्यन्त 'गुप्त' पत्र पढ कर तारा का सिर चकरा गया। तर्जनी दांतो के तले चली गयी। आंखे अपलक रह गयी। एक मिनट स्तब्ध-सी रह गयी जैसे कपाल पर घन की चोट पड जाने से सज्ञा-शून्य हो गयी हो। एक गहरा सांस लिया और पत्र के साथ नत्थी कागज़ों को पढने लगी। प्रत्येक कागज़ पढकर उसे लग रहा था कि अतल-अंधेरे कुये मे गिरती जा रही थी। सब कागज पढ़ डाले। पत्र और कागज मेज पर डाल दिये। अपने आप को सम्भाले रहने के लिये दोनों हाथो से कुर्सी के बाजू पकड़ लिये। अपलक आंखे मेज़ पर लगी हुई थी। उसे कुछ भी दिखायी नही दे रहा था।

तारा ने व्यवस्थित हो सकने के लिये कई गहरे सास खीचे। मेज पर कागज और फोन दिखायी देने लगे। उस का हाथ फोन की ओर उठा परन्तु औचित्य के विचार से हाथ पीछे हट गया। उडते जाते सिर को सभाले रखने के लिये माथे को दोनो हाथो से जकड लिया। मन मे आवेश उठा कि सिर को ज़ोर से मेज़ पर पटक-पटक कर तोड दे। पति की दहलीज पर सिर पटकती वंती कल्पना मे दिखाई देने लगी। तारा कुर्सी के बाजुओ का सहारा लेकर उठ खडी हुई और कमरे मे मेज़ के चारों ओर चक्कर लगाने लगी।

फोन बज उठा। तारा सुनना नही चाहती थी। घंटी असह्य हो गयी। सोचा, उठा कर रख दे परन्तु बेसुधी मे हाथ ने फोन कान पर रख लिया—"यस !"

डाक्टर नाथ की आवाज थी—"तारा सुनो, शायद तुम्हें कोई पत्र मिला हो……"

"हां, मिला है।"

"घबराना नही। मै अभी नही, पांच-सवा पाच तक लेने आऊंगा।"

तारा ने समझा⋯पत्र उन्हें भी मिला है। चोट पर और भी भयंकर चोट लगी—खुद तो मरी 'इन्हें' भी मुसीबत में डाला।

तारा ने लड़खड़ा जाने से बचने के लिये मेज का सहारा ले लिया—मेरा भाग्य क्या 'इन्हें' भी ले डूबेगा ?

तारा जैसे-तैसे अपने आप को सभाले हुये थीं। डाक्टर की बांह का सहारा पाकर उस की सब शक्ति समाप्त हो गयी। वह डाक्टर की बांहों में हो गयी थी। नाथ ने तारा को सहारा देकर गाड़ी से उतारा और सोने के कमरे में ले गया। उसे पलंग पर लिटा, समीप बैठ कर सान्त्वना देने लगा।

नाथ ने तारा को मिला पत्र देखा और स्वयं पाया पत्र उसे दिखाया। दोनों पत्रों का विषय एक ही था। दोनों पत्रों के साथ पुरी, सोमराज और डाक्टर प्रभुदयाल के 'विशेष पुलिस' को दिये गुप्त बयानों की लिपियाँ थीं।

तारा नाथ के घुटने पर सिर रख कर रो पड़ी।

नाथ ने उस के सिर पर हाथ रख कर पूछा—"यह डाक्टर प्रभुदयाल कौन है ?"

तारा ने बताया—"गली में हमारे मकान के सामने ही रहता था। यह सब भाई की करनी है। जाने क्या द्वेष माने बैठे है ?"

"पुरी ही नहीं, पुरी की पहुंच इतनी दूर नहीं हो सकती। इस में सूद का हाथ है। यह वार तुम पर नही है, सूद की मेरे प्रति नाराजगी का परिणाम है। पुरी तो उस के हाथ का पांसा बन गया है। गेहूं के साथ घुन की तरह तुम्हें भी पीसा जा रहा है। तुम ने क्या सोचा है, क्या उत्तर दोगी ?"

"क्या उत्तर दे सकती हूं।" तारा ने आह भरी, "आप को मालूम है, घटना के रूप में इन लोगों के बयान ठीक है लेकिन मै कभी भी 'उस की' पत्नी नहीं थी। मैने कभी उसे पति स्वीकार नहीं किया। कभी उस के साथ नहीं रही। मैने कोई अनैतिक काम नहीं किया ! यदि यह कानूनन अपराध है तो इस का उत्तरदायित्व मुझ पर है। जो दंड देना है, मुझे दें। आप तो विवाहित नहीं थे। मुझे इन की नौकरी नही चाहिये।"

"क्या बात कहती हो ? प्रश्न तुम्हारी नौकरी का नहीं, सम्मान का है।" नाथ ने टोक दिया, "मैने सब कुछ जान-बूझ कर किया है। मुझे सब कुछ मालूम था। विवाह का प्रस्ताव भी मैने ही किया था। उत्तरदायित्व मुख्यतः मेरा है। हमें सन्तोष है कि हम ने कोई अनैतिक काम नहीं किया है परन्तु आरोप नैतिक नहीं, कानूनी आधार पर है। आरोप का निराकरण भी कानूनी

युक्ति से करना होगा ।"

"हजूर, गिल बाबू जी आये है ।" परसू ने दरवाजे के बाहर से पुकारा ।

"मै उसे कह देता हूं, आज बात नही कर सकूंगा ।" डाक्टर ने तारा से कहा और बैठक की ओर चला गया ।

गिल दिल्ली के दो पत्रो के लिये मास मे दो बार राष्ट्रीय आर्थिक समस्याओं पर और दूसरी पचवर्षीय योजना के सम्बन्ध मे टिप्पणियाँ लिखा करता था । इस के लिये उसे डाक्टर नाथ से सामग्री मिल जाती थी । गिल ने पिछले दिन डाक्टर से समय माँगा था । उसी प्रसंग मे गिल ठीक समय पर आ गया था ।

गिल नाथ के स्विटजरलैंड से लौटने पर पहली बार मिलने आया था । डाक्टर की अनुपस्थिति मे, डाक्टर और तारा के चित्र सहित उन के विवाह की सूचना पत्रिका मे छपी थी । गिल पत्रिका डाक्टर को दिखाने के लिये लेता आया था । उस ने डाक्टर के बैठक मे आने से पहले ही पत्रिका का पृष्ठ खोल कर तिपाई पर रख दिया था ।

डाक्टर का बहुत गम्भीर चेहरा और कुछ गुलाबी आँखे देख कर गिल ने पूछ लिया—"डाक्टर साहब, क्या बात है, तबीयत तो ठीक है ?"

"जरा परेशान हूं ।" डाक्टर ने गिल को कुर्सी पर बैठने का सकेत करके कहा, "मुआफ करना, तुम इतनी दूर से आये''''।"

"नही-नही डाक्टर साहब, इस बात की आप बिलकुल चिता न कीजिये । भाभी तो ठीक है ?"

"नही, वह भी परेशान है ।"

"क्या बात है डाक्टर साहब ? मै कुछ कर सकता हू तो निस्संकोच कहिये !" गिल ने बहुत आग्रह से पूछा ।

"क्या बताऊं गिल ?" डाक्टर ने गहरी सास ली, "पत्रिका के सामने खुले पृष्ठ की ओर सकेत कर कह दिया, "यही बात है । यह कूटनीति के पैतरे है । सूद और पुरी की मेहरबानी है । वे मुझे कमीशन से हटाना चाहते है । नीचता की सीमा है ।"

नाथ ने सक्षेप मे गिल को चिन्ता का कारण बता दिया । पुरी, सोमराज, प्रभुदयाल के बयानों की बात भी बता दी और दिखाता हूं कह कर डाक्टर कागज़ लाने के लिये भीतर चला गया ।

नाथ कागज लेकर लौटा तो मुस्कराने का यत्न कर बोला—"तुम्हारी

ही करतूत है । तुम अखबार में छपवाये बिना नहीं रह सके । विवाह भी उस की ससुराल में हुआ ।"

"हूं, यह तो क्रोध का बहुत बड़ा कारण होगा ।" गिल ने स्वीकार किया ।

"हमें विश्वास है कि हम ने कोई अनैतिक काम नहीं किया । हमारे विवेक को पूरा सन्तोप है" नाथ ने कहा, "परन्तु अपराध का आरोप कानून के आधार पर है । कानूनन केवल विवेक और सत्य ही नहीं है । कानून के बहुत से पहलू होते हैं, उस की व्याख्या होती है । किसी वकील से राय ले लेना आवश्यक है । बात फैलनी भी नहीं चाहिये ।"

"वकील से राय लेना चाहते हैं तो कल तक ठहर जाइये ।" गिल ने अनुरोध किया, 'यों भी दुसहरे के कारण दफ्तर बन्द रहेंगे । कनक का जीजा नैयर कल आ रहा है । गम्भीर आदमी है, बहुत सफल वकील भी है । वह पुरी और सूद को खूब जानता है । विवाह गैरकानूनी है तो इस में सहयोग के लिये कनक और पंडित जी पर भी जिम्मेवारी आनी चाहिये ! कन्यादान तो पंडित जी ने ही किया था । मैं यहां से लौट कर कनक के यहाँ जाकर बात करता हूं ।"

नैयर के दिल्ली आने का प्रयोजन तो कुछ और था :

जून के अन्त में कनक के जालन्धर से लौटने के बाद पंडित गिरधारीलाल जी ने बहुत सोच-विचार कर अगस्त के आरम्भ में एक और पत्र नैयर को लिखा था । इस पत्र में पंडित जी ने नैयर से अनुरोध किया था कि वह पुरी को समझाने का यत्न करे कि जीवन केवल दिखावे की वस्तु नहीं है । पुरी और कनक के जीवन में जो वैपम्य और कटुता आ गयी है, उस से दोनों के लिये मुक्ति आवश्यक है । पुरी बहुत समझदार है । वह स्वयं ऐसा उपाय सोचे कि दोनों का आत्म-सम्मान बना रहे और दोनों कटुता से मुक्त हो जायें । पंडित जी ने स्वयं तलाक कानून को पढ़ कर सुझाव दिया था कि पुरी चाहे तो कनक को 'डेज़र्शन' (छोड़ जाने) के आधार पर तलाक का नोटिस दे दे । कनक की ओर से कोई सफाई नहीं दी जायेगी । इस ढंग से पुरी पर कोई भी बात नहीं आयेगी । अदालत से कार्रवाई कैमरा में (गुप्त) की जाने की प्रार्थना की जा सकती है ।

नैयर ने पंडित जी को इस प्रकार कनक का समर्थन करते देखा तो उत्तर-दायित्व अपने ऊपर न लेने के लिये पुरी को सब बात बता दी थी ।

पुरी नयाहिन्द प्रेस में तारा के विवाह की घटना से बहुत खिन्न था । उस ने तारा के विवाह का जिक्र न कर रूखा सा उत्तर दे दिया था—"पंडित

"कानून तो होता ही परेशान करने के लिये है।" कनक ने नैयर की ओर कटाक्ष किया।

"इसीलिये उस से सावधान रहना चाहिये !"

नैयर के होठों पर भी मुस्कान आ गयी। उसे व्यवसायिक ढंग से बात करने का अवसर मिल गया : "रक्षा के लिये भी कानून की ही शरण लेनी पड़ेगी। कानून की चोट से कानून की ही ढाल बचा सकती है। यह स्थिति कुछ विचित्र है। इस मामले में न तो सीधी कानून और अदालत की बात है और न साधारण नैतिकता या विवेक बुद्धि की बात है। यह अदालती कार्रवाई नहीं है परन्तु आप पर कानून की आड़ लेकर शासकीय शक्ति से, विभागीय कार्रवाई का वार है। मामला अदालत में होता तो सोमराज पर 'इन्हें' इरादतन जला कर मार डालने का उल्टा आरोप लगा दिया जा सकता था। उचित तहकीकात किये बिना, इन के जल कर मर जाने की अफवाहें उड़ा देने और जल्दी से क्रिया-कर्म कर देने की क्या आवश्यकता थी ? गवाही तो बाद में तैयार हो जाती।"

नैयर ने भौवों को सहलाते हुये तारा की ओर देखा—"इन लोगों के बयानों को तो गलत नहीं कह दिया जा सकता ?"

तारा ने आँखें झुकाये उत्तर दिया—"कानून के शब्दों की दृष्टि से बयान चाहे ठीक हों पर वास्तव में मैंने उसे कभी पति स्वीकार नहीं किया। पिछले नौ वर्षों में मेरा उस से कोई सम्बन्ध या सम्पर्क नहीं रहा।"

नाथ ने कह दिया—"वास्तव में सूद को नाराजगी तो मुझ से है। प्रयोजन मुझे मार्ग से हटाना है।"

नैयर ने स्वीकार किया—"मैं जानता हूं, मैं अभी तारा जी पर लगाये गये आरोप की बात कर रहा हूं" उस ने तारा से पूछा, "आप को कोई अदालती नोटिस मिला है कि आप का यह विवाह अवैध है, आप कानूनन सोमराज की ही पत्नी है ?"

तारा ने इनकार में सिर हिला दिया।

नैयर ने गर्दन सीधी कर ली—"तब तो अदालत की दृष्टि से आप लोगों पर लगाया गया यह आरोप बिलकुल निराधार है। खैर, यह स्पष्ट है" नैयर ने नाथ की ओर देखा, "वही बात जो आप कह रहे थे कि यह शिकायत सोमराज की नहीं है। शिकायत सोमराज की होती तो पहले आप के विवाह को अवैध घोषित करके तारा जी पर उस के अधिकार की प्रार्थना होनी चाहिये थी। इन्हें उस का नोटिस मिलना चाहिये था। इस षड़यन्त्र में सोमराज

को साधन बनाया गया है। सूद वकील है इसलिये कानूनी दांव देख कर उछल पड़ा परन्तु प्रैक्टिस नहीं करता इसलिये चूक गया है। मुझे विस्मय है कि आप के विभाग ने इस बात पर क्यों ध्यान नहीं दिया ? कानूनी परामर्श-दाता की राय क्यों नहीं ली गयी ? हो सकता है, सरकारी अधिकारी के अनैतिक व्यवहार (मौरल टर्पटीच्यूड) की युक्ति ले ली गयी हो।"

नैयर ने पल भर सोच कर पूछ लिया—"आप को इस नोटिस का कोई पूर्वाभास नहीं था ? मानता हूं, केस गुप्त रूप से तैयार किया गया होगा पर बातें इधर-उधर से रिस कर पता भी लग ही जाता है।"

"हम दोनों नौ दिन पहले ही लौटे हैं। विदेश में थे।" नाथ ने याद करके कहा, "हाँ, इतना तो सुना था, कुछ लोग मेरे पीछे पड़े हैं। ऐसी बातें तो कई बार सुन चुका हूं।"

"मुझे कुछ उल्टा सन्देह है। आप के खिलाफ मामला तैयार करने वाले ने बे-मन से अधूरा ही काम किया है। इस में कई कड़ियाँ शिथिल हैं। खैर, अनुमान स्पष्ट है कि विभाग का रवैया इस मामले में संदिग्ध है। कुछ प्रभाव-शाली लोग तो ज़रूर आप के विरुद्ध हैं।"

गिल बोल उठा--"यह पूरी घटना पोलिटिकल है। पोलिटिकल साबोताज और पोलिटिकल ब्लैकमेल है।" (राजनैतिक अड़ंगा और राजनैतिक छल है)

नैयर ने नाथ से पूछा—"आप इस मामले में अपने विभाग से सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण का भरोसा कर सकते हैं ?"

"नाथ ने आशंका प्रकट की—"योजना के राष्ट्रीयकरण के पक्ष के विरोधियों का प्रभाव कुछ कम नहीं है। मंत्री-मंडल में भी योजना के इस रूप के प्रति सभी लोगों को प्रधान मंत्री की तरह उत्साह नहीं है पर वे बोल नहीं पाते। खैरात में परामर्श देते रहने वाले विदेशी परामर्शदाता बहुत ऊपर तक पहुंचे हुये हैं वर्ना--जैसा आप ने कहा, शायद यह नोटिस ही न आता। मैं तो अपने उत्तर में स्थिति की पूरी पृष्ठभूमि--सूद से बातचीत का भी उद्धरण दूंगा।"

"इस मामले का निर्णय आप के ही सचिवालय के हाथों में रहने देना ठीक नहीं होगा। योजना-आयोग के सभापति तो प्रधान मंत्री हैं न ?" नैयर ने माथे पर बल डाल कर पूछा।

"पर हमें तो नियमानुसार अपने-अपने विभाग के अधिकारियों को ही उत्तर देना होगा और निर्णय विभाग के मंत्री के हाथ में रहेगा। प्रधान मंत्री तक पहुंचना अवैधानिक होगा।" नाथ ने विवशता प्रकट की।

"परन्तु हमारे लिये तो ऐसा कोई बन्धन नहीं है।' कनक और गिल

प्राय: एक साथ ही बोल उठे, "हम तो इस पोलिटिकल ब्लैकमेल के विरुद्ध प्रधान मंत्री तक आवाज़ उठा सकते हैं।"

"मैं गाडीवाला से बात करूँगा" गिल ने कहा, "वह कांग्रेस पार्टी में और लोक-सभा में भी प्रश्न कर सकता है। उस का कांग्रेस की समाजवादी अर्थ-नीति में विश्वास है। आप जानते ही हैं, लोकसभा में दो बार पूँजीपतियों के राष्ट्रीयकरण-विरोधी षड्यंत्र और ऊंचे सरकारी अफसरों की धांधली का भंडा फोड़ चुका है।"

नैयर ने फिर कनपटी को अंगूठे और मध्यमा में पकड़ कर सुनने का संकेत किया—"आप के विरुद्ध कानूनी दांव से पोलिटिकल सावोताज और ब्लैकमेल किया गया है। आप को भी आत्म-रक्षा के लिये पोलिटिकल साधनों का उपयोग करना होगा और विभागी कार्यवाई के उत्तर में इस आरोप को कानूनन भी निर्मूल सिद्ध करना होगा।"

नैयर ने तारा की ओर देखा—"यह प्रमाणित करना जरूरी है कि आप के विवाह से पहले उस तथाकथित विवाह का बंधन समाप्त हो चुका था। उस के लिये आप 'डजर्शन की प्ली' (छोड़ दी जाने की युक्ति) दे सकती हैं। इस प्रयोजन से ऐसी साक्षी चाहिये कि उस आदमी को आपने नहीं छोड़ा बल्कि उस ने आपको छोड़ा है। इस बात का महत्व है। कानूनी स्थिति ऐसी ही है। साक्षी चाहिये—कि आपने सम्बन्ध और सम्पर्क कायम रखने का यत्न किया परन्तु आप के प्रयत्न की उपेक्षा की गयी। ऐसी साक्षी तो बन सकेगी ?"

तारा ने इनकार से सिर हिला दिया।

"क्यों, इस में क्या कठिनाई होगी ?" नैयर ने विस्मय प्रकट किया।

"मैंने कभी भी उन लोगों को कोई पत्र नहीं लिखा। कभी वहां गयी नहीं। न चाहती ही थी।"

नैयर ने भौवें ऊंची करके पूछा—"प्रश्न यह नहीं है कि आप क्या चाहती थीं या आप ने क्या किया ! मैं साक्षी की बात कर रहा हूं। सुनिये, पुरी, सोमराज और प्रभुदयाल के बयान साक्षी में है कि आप सोमराज की पत्नी हैं, क्या यह सच है ?"

"यह केवल झूठ सच है !"

"परन्तु उस झूठ को सच प्रमाणित करने के लिये साक्षी मौजूद है। उस झूठ का निराकरण करने के लिये साक्षी चाहिये ! वास्तविक सच को प्रकट करना आवश्यक है। वास्तविक सच को बल देने के लिये भी साक्षी आवश्यक है।" नैयर ने तर्जनी दिखा कर चेतावनी दी, "यह न समझिये कि मैं झूठ बोलने

के लिये कह रहा हूं । घटना तो झूठ-सच नही होती । झूठ-सच तो घटना को प्रकट करने के प्रयोजन में होता है । मूल सत्य को प्रकट करने के लिये प्रयत्न करना या उसे जमाना भी आवश्यक होता है । सच को बल देने के लिये साक्षी आवश्यक होती है ।

"स्वयं पुरी की पत्नी साक्षी है कि पुरी को आप के विषय मे सन्-४९ से मालूम था । पुरी और सोमराज का सम्पर्क बहुत गहरा है । नौ बरस से दोनों एक ही नगर मे रहते है । उन में इतना सम्बन्ध है कि पुरी बहिन के विरुद्ध और उस के पक्ष मे बयान दे रहा है । पुरी के लिये यह स्वभाविक था और उस का कर्तव्य भी था कि आप का पता पाने पर, सोमराज को आप का पता देता । वह यह कभी नही कह सकेगा कि उसने सोमराज को पता नही दिया । पुरी ने आप को जालंधर नही बुलाया क्योंकि वह जानता था, सोमराज आप को छोड़ चुका था ।

नैयर ने कनक की ओर देखा—"क्या कनक यह कहने के लिये आश्वासन नही दे सकती कि इन की इच्छा और प्रयत्नों के बावजूद पुरी ने बहिन की उपेक्षा की क्योंकि सोमराज इन्हें शरण नही देना चाहता था ?"

"मैं जरूर दे सकती हूं ।" कनक ने आगे झुक कर दृढ निश्चय से कहा, "यही वास्तविक सच है । सोमराज तो मेरे जालंधर जाने से पहले से अपनी भाभी को रखे हुये था । पुरीजी खूब जानते थे, उसी डर से बात दबाये रहे । उन के माता-पिता भी सोमराज की सब बाते जानते थे । मैं जरूर कह सकती हूं—अदालतों में, पब्लिक मे, सब जगह कह सकती हूं । यह झूठ नही सच है । सोमराज और पुरी जी दोनों ही नही चाहते थे कि तारा जालंधर आये । यह बिल्कुल सच है ।"

तारा ने गहरी सांस ली । विस्मित थी कार्य-कारण के तर्क का विचित्र क्रम बनता जा रहा था,जो उस पर लगाये गये झूठे आरोप का एक मात्र उत्तर हो सकता था । तारा सोमराज से घृणा करती थी, उसे पति नहीं मानती थी, इस तथ्य का कोई मूल्य नही था ।

नैयर ने कनक को सुनने का संकेत करके तारा से कहा—"आप को इसी साक्षी के आधार पर उत्तर देना चाहिये । एक बात आवश्यक है, आप अपने उत्तर में विभाग को यह चेतावनी भी जरूर दें कि यदि समाप्त विवाह को बहाना बनाकर आप के विरुद्ध कोई अन्यायपूर्ण कार्रवाई की जायगी तो आप अदालत की शरण लेंगी । अवसर आये तो आप को अदालत से संकोच भी नही करना चाहिये । अदालत मे केवल कनो की साक्षी के आधार पर उन

का अभियोग जाल साबित हो सकेगा।"

बहुत देर तक मंत्रणा से निश्चय हुआ कि तारा और डाक्टर अपने बयान लिख कर, नैयर के जालंधर लौट जाने से पहले उसे दिखा लें। कनक, पुरी की पत्नी के रूप में राष्ट्रीयकरण की नीति के विरुद्ध पोलिटिकल साबोताज और ब्लैकमेल की सूचना देने के लिये एक पत्र प्रधान मंत्री को और दूसरा पत्र कांग्रेस के प्रधान को लिखेगी।

नैयर ने ध्यान से सुनने का संकेत करके कहा—"प्रधान मंत्री और कांग्रेस प्रधान के लिये पत्र मे इस असंगति की ओर ध्यान दिलाना जरूरी है है कि यदि मामला सोमराज के प्रति न्याय के लिये उठाया गया है तो इस विवाह को रद्द करने के लिये अदालत में आवेदन से आरम्भ होना चाहिए था। पुरी ने अपनी बहिन को उस के ससुराल में बसाने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया। उस ने अपनी बहिन के विरुद्ध बयान, किस उद्देश्य के प्रति निष्ठा या कर्त्तव्य-बुद्धि से दिया है ? इस बात की तहकीकात अवश्य होनी चाहिये कि 'विशेष पुलिस' को इस विषय में जांच करने का आदेश, किस रिपोर्ट के आधार पर दिया गया था ? पहली रिपोर्ट किस सूत्र से आई है ? मामले का वास्तविक कारण राजनैतिक नही तो क्या है ? तुम स्पष्ट लिखो, पुरी और सोमराज सूद की कृपा से अनुचित लाभ उठाने वाले, उस के हाथ के मोहरे मात्र है......"

पंडित गिरधारीलाल जी को डाक्टर प्राण और तारा पर किये गये नीच आक्रमण की बात मालूम हुई तो उन का मन दुख और ग्लानि से भर गया। बहुत देर खेद प्रकट करते रहे—राजनीति इस स्तर पर आ गयी है तो देश का क्या होगा ? नयाहिंद प्रेस मे दो दिन लगातार इसी प्रसंग पर चर्चा होती रही परन्तु पंडित जी बेटी की समस्या को कैसे भूल जाते। उस दिन नैयर को रात की गाडी से लौटना था। पंडित जी ने दोपहर बाद प्रसंग उठाया—"बरखुरदार, कनक के मामले में क्या सोचा है ?"

नैयर ने संक्षेप मे कह दिया—'पिताजी, पुरी के ढंग आप देख रहे है। इस विषय में सौजन्य के नाते उस से कोई आशा व्यर्थ है परन्तु मैने कनक से कहा है कि वह प्रधान मंत्री और कांग्रेस के प्रधान को लिखे अपने एक पत्र नकल पुरी को भी भेज दे और लिख दे कि इस अन्याय के विरुद्ध तारा को अदालत की शरण लेगी। वह पुरी की पत्नी की स्थिति से सब कुछ जानने कारण, अदालत मे मिथ्यारोप के विरुद्ध गवाही देगी। देखिये, क्या होता है ?"

डाक्टर नाथ और तारा ने नोटिसों के उत्तर अक्तूबर के अंत में ही दे दिये थे। तारा को एक-एक दिन एक-एक युग की तरह भारी हो रहा था, क्या निर्णय होता है। उसे नौकरी चली जाने की चिंता नहीं, कलंक की वेदना थी। उस ने बहुत कुछ सहा था परन्तु इतना आदर-सम्मान पाकर ऐसे कलंक की वेदना असह्य थी।

नाथ ने पूरी घटना डाक्टर सालिस को बता दी थी। डाक्टर सालिस वैदेशिक सम्बन्धों के सचिवालय के भी आर्थिक परामर्शदाता थे। वैदेशिक विभाग के मंत्री स्वयं प्रधान मन्त्री थे। सालिस की बात उन से होती रहती थी। सालिस की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कारण, प्रधान मंत्री उन का बहुत आदर और विश्वास करते थे। सालिस इस विषय में प्रधान मंत्री से बात करना चाहते थे परन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिल रहा था।

प्रधान मंत्री आगामी चुनावों की योजनाओं और उस सम्बन्ध में कांग्रेसी उम्मीदवारों के निर्णय में इतने व्यस्त थे कि जनवरी ५७ के पहले सप्ताह से पूर्व, सालिस प्रधान मंत्री से मिल ही नहीं सके। प्रधान मंत्री से मिल कर सालिस ने नाथ और तारा को आश्वासन दे दिया था कि प्रधान मंत्री ने मामला अपने गौर के लिये स्थगित करा दिया है। वे इन तिकड़मों को और सूद को भी खूब समझते है।

डाक्टर सालिस से आश्वासन पाकर भी तारा की चिंता मिट नहीं गयी। दोषी तो वह अपने आप को कभी भी नहीं समझती थी। उसे तो कलंक की छाया से ग्लानि थी परन्तु प्रधान मंत्री के यहाँ से निर्णय का अर्थ ही था, विलम्ब। पत्रों में नित्य ही प्रधान मंत्री के चुनाव सम्बन्धी हवाई दौरों के समाचार रहते थे। चुनाव के सम्बन्ध में उनके भाषण और संदेश छपते थे। वे प्रायः एक ही बात कहते थे। देश की गंभीर स्थिति और उत्तरदायित्व की चेतावनी देते थे---जमाना बहुत तेज चाल से चल रहा है। हमें भी उस के साथ चलना है। हमारे सामने बड़े-बड़े मसले है। राष्ट्रीय समस्यायें हैं और अन्तरराष्ट्रीय समस्यायें भी है परन्तु आप लोग छोटे-छोटे व्यक्तिगत मामलों में ही उलझे हुये है। हमें व्यक्तिगत मामलों से ऊपर उठ कर देखना चाहिये।

तारा ने नौ वर्ष पूर्व, स्वराज्य के आरम्भ में, शरणार्थी कैम्प में, असहाय अवस्था में भी प्रधान मंत्री के मुख से यही बातें सुनी थी। नौ वर्ष बाद भी फिर उन का वही सन्देश पढ़ कर गहरी सांस लेकर चुप रह गई।

डाक्टर और तारा के यहाँ जो भी आता, चुनाव की ही बात करता था। दिल्ली देश का केन्द्र है इसलिये यहाँ प्रत्येक राज्य के चुनाव की चर्चा सन-

जा रही थी। नाथ के बहुत समझाने पर कह देती—"नहीं, मैं कहां चिंता कर रही हूं !"

नाथ देख रहा था, स्विटजरलैंड से लौटने पर परिचित लोग तारा का स्वास्थ्य देख कर बधाई देते थे। अब वह पहले से भी बावी रह गयी थी। चेहरा बिलकुल पीला-सफ़ेद पड़ गया था। नाथ को उस का शरीर भी गरम जान पड़ता था। एक दिन नाथ थर्मामीटर ले आया। तारा ने बहुत टाल-मटोल की आखिर थर्मामीटर लगाया ही गया। तारा को लगातार निन्नानवे या सौ बुखार चल रहा था।

नाथ और भी चिन्तित हो गया। तुरन्त डाक्टर सालिस को फोन किया—"........मैं क्या करूं ? यदि प्रधान मंत्री निर्णय नहीं कर सकते तो मैं ही त्याग-पत्र दे दूं। इसी ख्याल से रुका हुआ हूं कि मैं स्वयं उन लोगों के षड़यन्त्र का उद्देश्य पूरा कर दूंगा।"

डाक्टर सालिस ने विवशता प्रकट की—"प्रधान मंत्री दिल्ली में हों तो मैं कुछ कह सकता हूं। जानते हो, कल वे फिर पंजाब गये हैं, कांग्रेस के उम्मीद-वार यानि सूद के समर्थन में भाषण देने। यह राजनीति है। सूद प्रधान मंत्री की जड़ पर चोट भी करता है और उसी से अपना समर्थन भी करवाता है। खैर, लौटेंगे तो मैं जरूर यत्न करूंगा।...."

जालन्धर में सुबह दस बजे से सूद जी के चुनाव के वोट गिने जा रहे थे। दिल्ली मे परिणाम की प्रतीक्षा बहुत उत्सुकता से हो रही थी। कांग्रेस के समर्थक और विरोधी, सभी जानते थे कि वे जीत जायेंगे। उत्सुकता यही जानने की थी कि उन से टक्कर लेने वाला कितने वोट ले सकेगा। परिणाम संध्या छः बजे तक आने का अनुमान था। गिल पौने छः बजे ही समाचार-एजेंसी के दफ्तर में पहुंच गया था।

मुख्य सम्पादक जा चुका था। दफ्तर में काफी शोर था। कई स्वतंत्र पत्रकार उत्सुकता के कारण दफ्तर में आ गये थे। चुनाव के समय और उस से पूर्व पंजाब से पहुंची हुयी अफवाहों का ज़िक्र हो रहा था। कांग्रेस के विरोधी सभी दल सूद जी को हरा सकने के लिये संयुक्त हो गये थे। कांग्रेस के विरुद्ध संयुक्त मोर्चे का यह पहला उदाहरण था। लोग उस का परिणाम देखना चाहते थे। यह भी अफवाह थी कि सूद जी की धांधली और तानाशाही से असन्तुष्ट बहुत से कांग्रेसी लोग भी छिपे-छिपे उन के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे। उन्हों ने अपने वोट विरोधी दल को दिये थे। सरकारी नौकरों के वोटों

पर कांग्रेस को पूरा भरोसा था लेकिन अफवाहें थीं कि सरकारी नौकर सूद जी के कारिन्दों के भय से, पर्ची तो कांग्रेस कैम्प से बनवाते थे पर वोट किसे देते थे, यह भेद वोट गिने जाने पर ही खुलना था। कितने लोगों ने ऐसा किया होगा, यह अनुमान की बात थी।

समाचार-एजेंसी का सहायक-सम्पादक संगल मुनीश को चिढ़ा रहा था, "तुम्हें सूद जी के हार जाने की उम्मीद है? आओ शर्त लगा लो! मैं एक पर दस लगाता हूं। सूद जी जीत जायें तो तुम मुझे दस रुपये देना अगर हार गये तो मैं सौ दूंगा। लगाओगे शर्त?"

मुनीश दबे स्वर में कहे जा रहा था—"अरे देखो, अभी दस-पन्द्रह मिनिट में मालूम हो जायेगा।" शर्त लगाने का साहस उसे नहीं हो रहा था।

बात चल रही थी: पंजाब में कांग्रेस को बहुमत तो मिल ही चुका था। कांग्रेस के नायक, कांग्रेस की ओर से चुनाव के कर्ता-धर्ता की सफलता में क्या सन्देह हो सकता था?

कुछ पत्रकारों का अनुमान था कि सूद जी के प्रतिद्वंद्वी की जमानत जब्त होगी। वह चुनाव का परिणाम सुनने से पहले ही चुनाव के निर्णय के विरुद्ध, चुनाव में धांधली की शिकायत का आवेदन टाइप कर चुका होगा।

सिद्धू ने कहा—"मैं चुनाव से तीन दिन पहले जालन्धर में ही था। अमा, वह भी कोई मुकाबला था। जैसे बकरा भैंसे से भिड़ने के लिये बढ़ आया हो! गरीब की जमानत गयी...."

प्रसाद इतना अन्तर स्वीकार कर लेने के लिये तैयार नहीं था। उस ने कहा—"मैं भी तो वहाँ ही था। विरोध काफी था। विरोधियों के पास मोटर, जीप, ट्रक नहीं थे लेकिन मैंने कांग्रेसियों को ही कहते सुना – कांग्रेस को सूद से बचाना जरूरी है। हमें अनुशासन की परवाह नहीं, हम तो धांधली के पक्ष में वोट नहीं देंगे। बच्चों की टोलियाँ गलियों में चिल्लाती फिरती थीं—'गली-गली शोर है, सूद-पुरी चोर है।' भीतर ही भीतर लोगों में बहुत असन्तोष था। विरोधियों का शोर चाहे कम था परन्तु उन का गुप-चुप प्रचार खूब चल रहा था। अनुमान था, प्रतिद्वंद्वी भी दस-पन्द्रह हजार वोट जरूर ले जायेगा।"

संगल बाँह उठाये सौ का नोट दिखा-दिखा कर सब को चिढ़ा रहा था, "कोई इस पर लगाता है, दस ही लगाओ!"

संगल सौ का नोट हाथ मे लिये 'टेलीप्रिन्टरों' के बीच खड़ा था। कमरा मशीनों की किट-किट, किट-किट से गूंज रहा था। एक साथ दो-दो, तीन-तीन मशीनें समाचारों के तार छापती जा रही थीं। किसी टेलीप्रिन्टर पर

नया समाचार आरम्भ होता तो संगल झुक कर देख लेता। नागपुर, बम्बई, कलकत्ता या लखनऊ देख कर मुंह मोड लेता।

मिर्ज़ा और चक्रवर्ती टेलीफोन पर कोशिश किये जा रहे थे, शायद किसी पत्र मे जालन्धर से ट्रक-काल आ गयी हो।

संगल ने उन्हें रोका—"रहने दो भाई! ट्रंक-काल आयेगी तो भी पहले यहाँ ही आयेगी लेकिन ट्रक मिलेगी किसे? सूद के चुनाव का परिणाम है। सैंकडों रिजर्व कराये बैठे होगे।"

टेलीप्रिन्टर पर जालन्धर देखते ही संगल ने संकेत के लिये बाँह उठा दी और मशीन पर झुक गया। कमरे मे सन्नाटा छा गया। कई लोग सांस रोके टेलीप्रिन्टर पर झपट पडे।

पत्रकार पागल हो उठे। समाचार-एजेंसी के दफ्तर के अनुशासन की परवाह न कर 'इन्कलाब जिन्दाबाद!' और 'तानाशाही मुर्दाबाद!' के नारे लग गये।

पत्रकार एक दूसरे को आलिगन मे ले-ले कर कूदने लगे। संगल उल्लास और उत्साह से बोल नही पा रहा था।

गिल टेलीफोन की ओर लपका। फोन खाली नही था। दूसरे लोग भी अवसर के लिये फोन को घेरे खडे थे। गिल तुरन्त जीना उतर गया। पहिली दुकान में गया कि फोन से सूचना दे दे। वहाँ भी फोन खाली नही था। गिल अपने उल्लास और उत्साह को वश नही कर पा रहा था। समीप मिठाई की दुकान पर गया। नयाहिन्द प्रेस मे फोन किया। चपरासी मुरली ने उत्तर दिया ' पडित जी अभी-अभी बाहर गये है, कनक जी अभी नही लौटी।

गिल डाक्टर नाथ को फोन करना चाहता था परन्तु मिठाई की दुकान ने विचार बदल दिया। उस ने पाच रुपये की मिठाई खरीद ली और दुकान से निकल, टैक्सी लेकर सीधा डाक्टर नाथ के यहाँ चल दिया।

-

नाथ के यहाँ बैठक मे कोई नही था। गिल ने ऊंचे स्वर में आवाज दी—"डाक्टर साहब! भाभी जी!"

नाथ बैठक में आया। गिल का प्रफुल्ल चेहरा देख कर नाथ ने प्रसन्नता से चमकती आँखों से पूछ लिया—"तुम्हें खबर मिल गयी?"

नाथ के पीछे-पीछे तारा भी आ गयी थी। तारा का चेहरा और आँखे भी चमक रही थीं।

"है, आप को खबर मिल भी गयी?" गिल ने नाथ और तारा की

प्रसन्नता देख कर विस्मय से पूछा ।

"क्या खबर ?" तारा ने होंठ पर तर्जनी रख कर जानना चाहा ।

"पहले आप बताइये, क्या खबर है ?" गिल ने मिठाई का डिब्बा सीने पर दबा कर पूछा ।

"आज सुबह ही हम लोगों को पत्र मिले हैं, हम लोग एक्ज़ोनरेट (दोष-मुक्त) हो गये !" नाथ बोल उठा ।

गिल किलक कर उछल पड़ा—"वाह ! वाह ! बधाई ! बधाई !"

गिल ने डाक्टर और तारा दोनों से हाथ मिलाये—"आप के मुंह मीठे कराता हूं । मैं भी खबर लाया हूं । मेरा भी मुंह मीठा कराइये !"

"क्या खबर ?" नाथ और तारा ने उत्सुकता से पूछा ।

"सूद जी सत्रह हज़ार वोट से हार गये !"

"क्या ?" नाथ का मुंह खुला रह गया ।

"हैं ?" विस्मय से तारा की भौवें चढ़ गयीं ।

गिल ने अपनी बात दोहरायी—"अभी समाचार-एजेंसी में टेलीप्रिन्टर पर देख कर आ रहा हूं । पन्द्रह मिनिट में तो विशेषांक बाज़ार में आ जायेंगे । मैं कनक को फोन कर दूं ।"

डाक्टर सहसा गम्भीर हो गया—"गिल, अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है ! जनता सदा मूक भी नही रहती । 'देश का भविष्य' नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ मे है ।"